सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

४१

(जून-अक्टूबर १९२९)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें १ जूनसे १५ अक्तूबर १९२९ तक लगभग साढ़े चार महीनोंकी सामग्री संग्रहीत है। इस पूरी अवधिमें गांधीजी स्वतन्त्रता-संग्रामके उस आगामी संघर्षके विषयमें जनताको समझाते रहे, एक वर्ष पहलेके कलकत्ता कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार जिसके छेड़े जानेकी सम्भावना थी। अप्रैल और मईमें आन्ध्रका जो लगातार दौरा हुआ, उसमें वे थक गये और विश्रामके विचारसे अलमोड़ा-अंचल स्थित कौसानी चले गये। वहाँ उन्होंने 'भगवद्‌गीता' का गुजराती अनुवाद पूरा किया। वे इस कामको कुछ दिनों पहले हाथमें ले चुके थे; यहाँ वह समाप्त हुआ और बादमें 'अनासक्तियोग' के नामसे प्रकाशित हुआ। आन्ध्रके दौरेमें गांधीजीने भोजनके जो प्रयोग किये वे भी इस खण्डकी सामग्रीमें आ जाते हैं। जुलाई-अगस्तमें गांधीजीने अहमदाबाद कपड़ा मिलोंके मजदूरोंके वेतनका प्रश्न भी, जो उनके सामने सेठ मंगलदास गिरधरदासने पंचायतके स्थायी सदस्यकी हैसियतसे रखा था, बारीकीसे देखा-समझा और अपने पक्षका समर्थन करते हुए एक वक्तव्य भी किसी निर्णायकके सामने रखनेके लिए तैयार किया। (पृष्ठ ४०४-८) सितम्बरके पहले सप्ताहमें गांधीजीने अपनी यात्रा फिरसे शुरू की और उत्तरप्रदेशमें खादीका प्रचार करनेके लिए निकल पड़े।

खण्डका प्रारम्भ होता है विदेशी वस्त्र बहिष्कार समितिके कामके जायजेसे। गांधीजीने समितिके सदस्य जयरामदास दौलतरामको "कर्त्तव्यनिष्ठ और उत्साही सचिव" कहकर उनकी प्रशंसा की, किन्तु इस बातकी शिकायत भी की कि आमतौर पर नेताओंमें खादी कार्यक्रमके प्रति प्रामाणिकताका अभाव रहा है। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि बहिष्कार-आन्दोलनको सफल बनानेके लिए खादीका उत्पादन बढ़ाना निहायत जरूरी है; उन्होंने इसके उपाय भी सुझाये। उन्होंने खादी कार्यक्रमके प्रति लोगोंकी उपेक्षाका एक कारण बताते हुए कहा, "कांग्रेसकी प्रतिष्ठा जितनी व्यापक हुई है उसकी ज्ञान-शक्ति उसी अनुपातमें व्यापक नहीं हुई, यह दुःखकी बात है। पर कौन जाने, सन्धिकालमें यही अनिवार्य था। सरकारी साँचेमें ढले विदेशी अर्थ-शास्त्रके विद्यार्थी कांग्रेसकी ग्रामाभिमुखता देनेवाली अर्थ-नीतिकी कद्र नही कर सके, उससे समरस नहीं हो सके, आवश्यक त्याग नहीं कर सके, इसलिए उन्होंने उसे छोड़ दिया।" (पृष्ठ २९९) इस उपेक्षाका दूसरा कारण था लोगोंके मनमें कुछ भी कर सकनेकी अपनी शक्तिके प्रति अविश्वास। और यह अविश्वास इस कारण था कि उन्होंने गुलामीको अपनी स्वाभाविक अवस्था ही मान लिया था: "यह हालत प्रत्येक मनुष्यके लिए दुःखद और पतनकारी है"। (पृष्ठ ६५)

'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक रामानन्द चटर्जीके घरकी सरकार द्वारा तलाशी लिये जानेपर गांधीजीने कहा कि सरकार जानबूझ कर देशकी जनताका अपमान करनेकी नीति अपनाये हुए है और वह इसी नीतिके अन्तर्गत यह आवश्यक समझती है कि लोगोंको इसका ठीक-ठीक एहसास कराते रहनेके विचारसे बीच-बीचमें हमारे बड़ेसे-बड़े व्यक्तियोंका मान भंग करते रहना आवश्यक है। श्री रामानन्द चटर्जीका अपमान इसी खूनी पंजेके प्रदर्शन की नीतिका परिणाम है। (पृष्ठ १६-१७) उन दिनों प्राय: धारा १२४-अ के अन्तर्गत विद्रोहका अपराध लगाकर मुकदमे चलाये जा रहे थे। गांधीजीने भारतीय दण्डसंहिताकी इस धाराको रद्द करवानेके लिए एक जोरदार जन-आन्दोलन चलानेका सुझाव दिया; किन्तु यह भी कहा कि इस धाराको रद्द करवानेके लिए जिस शक्तिकी आवश्यकता होगी उसका स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए आवश्यक शक्तिकी तरह प्रबल होना जरूरी है। उन्होंने यह भी कहा कि "मुझे शक है कि हममें से कई स्वराज्यको एक तोहफेकी तरह प्राप्त करना चाहते हैं, एड़ी-चोटीका पसीना एक करके नहीं।" (पृष्ठ २३१) किसी सज्जनने खादी आन्दोलनकी बिना सोचे-समझे आलोचना की; गांधीजीने उन्हें जवाब देते हुए कहा, "अकेले भाषणों, तमाशों, जुलूसों आदिसे स्वराज्य नहीं मिल सकता। उसके लिए स्थायी और रचनात्मक कार्यक्रमकी बड़ी आवश्यकता है। हम अपने नौजवानोंके सामने केवल भाषण आदि पेश करते रहते हैं।" (पृष्ठ ३१४) किसी पत्र-लेखकने कहा कि जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस-जैसे नेताओंको चाहिए कि वे एक राष्ट्रीय स्वयंसेवक-सैन्यका संगठन करें और वल्लभभाई मजदूर और किसानोंकी सेनाका। गांधीजीने कहा कि जनता और नेताओंका एक-दूसरेपर आधारित रहना आवश्यक है। अगर बारडोली-जैसी जनता न हो तो वल्लभभाईके नेतृत्वका क्या उपयोग है। उन्होंने पूछा कि आज देशमें निर्णय पर बारडोलीके समान प्राणपणसे अमल करवानेवाले अंचल कितने हैं। (पृष्ठ ३१४-५)

चूँकि संघर्ष सामने दिख रहा था, इसलिए एक बड़ी संख्यामें सदस्योंने कहा कि अगले वर्षके लिए गांधीजीको कांग्रेसकी अध्यक्षता स्वीकार कर लेनी चाहिए; किन्तु उन्होंने यह जिम्मेदारी उठाना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं यह भी जानता हूँ कि घटनाएँ जिस रफ्तारसे हो रही हैं उसके मुकाबलेमें मेरी गति धीमी है और इस तरह उगती हुई पीढ़ी और मेरे बीच एक खाई-सी खड़ी है . . . मैं महसूस करता हूँ कि मुझे पिछली पंक्तिमें बैठना चाहिए और उमड़ती हुई लहरको अपने ऊपरसे गुजर जाने देना चाहिए। . . . बूढ़े नेताओंका कार्यकाल, उनका जमाना समाप्त हो चुका है; आगे आनेवाले संग्राममें जूझनेका काम नौजवान स्त्री-पुरुषोंका है। इसलिए यह सर्वथा उचित है कि उनकी रहनुमाईके लिए उन्हींमें से कोई खड़ा

किया जाये। (पृष्ठ २७८-७९) अध्यक्षपदके लिए उन्होंने जवाहरलालका नाम सुझाया और कहा, "वह सभापति हुए तो क्या और मैं हुआ तो क्या; विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममें मतभेद भले ही हों, हमारे दिल तो एक है। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रताके होते हुए भी, अपने कड़े अनुशासन और एकनिष्ठता आदि गुणोंके कारण वह ऐसे अद्वितीय सहयोगी हैं कि उनमें पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।" (पृष्ठ २७९)

अपने आहार सम्बन्धी प्रयोगोंके विषयमें उन्होंने कहा कि मैं जानता हूँ कि लोग मुझे, सनकी, झक्की, दीवाना आदि कहते हैं (पृ० ३३)। तथापि उन्होंने स्पष्ट किया कि ये प्रयोग उनके जीवनके अंश बन गये हैं और उनकी अपनी मानसिक शान्तिके लिए भी वे आवश्यक हैं। घनश्यामदास बिड़लाको लिखे पत्रमें उन्होंने लिखा कि लम्बी अवधि तक प्रयोग और जाँच-पड़ताल करके मैंने देखा है कि भोजनके बारेमें ऐसा कोई एक भी नियम नहीं है जो सभी व्यक्तियों पर समान रूपसे लागू हो सके। तथापि मैं एक सत्य-शोधक होनेके नाते किसी ऐसी खुराककी खोज करते रहना जरूरी मानता हूँ जो आदमीके शरीर, मन और आत्माको स्वस्थ बनाये रख सके। (पृष्ठ ३४७) इस विषयमें पत्र लिखनेवाले सज्जनों और 'नवजीवन' के पाठकोंको वे अपने प्रयोगोंके परिणामोंसे सदा अवगत करते रहे और अपने अनुभवके आधार पर उन्हें सलाह-मशविरा भी देते रहे। (पृष्ठ ३०२-५) बिना पकाए भोजनके विषयमें उन्होंने उन्हीं दिनों जो प्रयोग किये थे, वे सफल सिद्ध नहीं हुए थे; इसलिए उन्होंने उन्हें अगस्तके मध्यमें छोड़ तो दिया किन्तु फिर कभी अधिक सावधानीसे करके उनमें सफलता पानेकी आशा नहीं छोड़ी। (पृष्ठ ३३-५, ५९, २३२-६, २४७-९, २५१, ३०३-५ और ३४७)

अल्मोड़ामें विश्राम करते हुए गांधीजीने हिमालयकी श्रेणियोंके सौन्दर्यको जी-भर कर पिया और एकाध बार पत्रों आदिमें उनका कवित्वमय वर्णन भी किया। उन्होंने हिमालयको एक जगह 'ऋषिराज' कहा है (पृष्ठ ७३) और लिखा है कि ये हरी-भरी सुन्दर श्रेणियाँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो उन्होंने हरित शस्यके परिधान पहन रखे हों। (पृष्ठ ८०) किन्तु सौन्दर्यके इस वैभवका आनन्द लेते हुए उनके मनमें काँटा-सा खटकता रहता था; वह एक क्षणके लिए भी देशके दुःखको नहीं भुला पाते थे और उन्हें लगता था कि इस सारे सौन्दर्यका उपभोग करनेका औचित्य ढूँढ़ निकालना कठिन है। (पृ० ८०, १८२) कई बार गांधीजीको ऐसा लगता था मानो उन्हें वहाँ बैठे हुए शंकराचार्यका स्वर सुनाई पड़ रहा है और वे कह रहे हैं कि "सचमुच यह अद्भुत दर्शन है, मगर सारी ईश्वरीय माया है। न हिमालय, न मैं हूँ, न तू है; जो-कुछ है सो वह है और वह भी ब्रह्म ही है। वही सत्य है, जगत

मिथ्या है।" (पृष्ठ २१८) गांधीजीने इस तरह लिखते-लिखते अन्तमें कहा कि "सच्चा हिमालय हमारे हृदयोंमें है"। सच्ची तीर्थ-यात्रा ... "हृदयकी गुफामें ही निहित है और वहीं शिवके दर्शन हो सकते हैं।" (पृष्ठ २१८)

'हिन्दी नवजीवन'में बुद्धि बनाम श्रद्धा शीर्षकसे लिखते हुए गांधीजीने स्पष्ट किया कि जिन बातोंको बुद्धिकी कसौटी पर जाँचा जा सकता है, जो बुद्धिगम्य हैं, उन्हें श्रद्धाका विषय नहीं बनाना चाहिए। "किसी भी मामलेमें श्रद्धाकी पुष्टिके लिए अनुभूत ज्ञानका होना आवश्यक है क्योंकि आखिर श्रद्धा तो अनुभवपर अवलम्बित है, और जिसे श्रद्धा है उसे कभी-न-कभी अनुभव होगा ही।" (पृष्ठ ४८१-८२) उन्होंने दूसरे एक सन्दर्भमें कहा कि "सच्ची बात तो यह है कि 'महात्मा' शब्दको भी बुद्धिकी कसौटी पर कसकर देखना चाहिए। और अगर वह पूरा न उतरे तो उसका त्याग करना चाहिए।" (पृष्ठ ५६) पैर छूकर भक्ति प्रदर्शित करनेवालोंके प्रति अपनी परेशानी भी उन्होंने कई बार व्यक्त की और मीराबहनको जो उनके सान्निध्यके लिए विकल रहती थी 'बुतपरस्ती'की भावनासे आक्रान्त माना। (पृष्ठ ७९)

आधुनिक सभ्यताके कुछ पहलुओंके प्रति गांधीजीके मनमें बड़ी विरक्ति थी। समाचारपत्रोंमें छपनेवाले विवरणोंके विषयमें उनका यह कथन द्रष्टव्य है "सिनेमा-की प्रगति, विमानोंकी गति, खूनके समाचार, जगतमें हो रहे विप्लवोंसे सम्बन्धित समाचार, अदालतोंमें चल रहे गन्दे मुकदमोंका गन्दा विवरण, घुड़दौड़ और सट्टेके समाचार, मोटर आदिकी दुर्घटनाएँ? ज्यादातर तो समाचार ऐसी बातोंके बारेमें ही होते हैं।" (पृष्ठ २२१) अपने व्यक्तिगत और दीर्घ अनुभवके आधारपर गांधीजीने कहा कि हमें अपनी रुचियोंमें संयमसे काम लेना चाहिए और कुछ व्रत भी ले रखना चाहिए। किसी भी व्यक्तिको अपने चरित्रमें दृढ़ता और स्थायित्व लानेके लिए व्रतका बड़ा सहारा होता है। (पृष्ठ ३११)

इस खण्डमें 'अनासक्तियोग' नामक गांधीजी-कृत 'गीता'की टीका भी आती है जिसमें उन्होंने सर्वसामान्य अर्थ देनेके अतिरिक्त चुने हुए श्लोकोंपर टिप्पणियाँ और 'गीता'के उपदेश और अभिप्रायको स्पष्ट करनेवाली एक प्रांजल भूमिका भी दी है। १९४६ में इसीका एक परिवर्धित अंग्रेजी संस्करण 'गॉस्पल ऑफ सेल्फलेस एक्शन ऑर दि गीता अकार्डिंग टु गांधी' प्रकाशित हुआ था। गांधीजीके गुजराती अंशोंका अनुवाद किया था महादेव देसाईने। गांधीजीने 'माई सबमिशन' नामसे एक अध्ययनपूर्ण भूमिका उसके साथ लगा दी थी। मूल गुजराती भूमिकाका गांधीजीने यरवदा जेलमें अनुवाद किया था और वह 'यंग इंडिया'के ६-८-१९३१ के अंकमें प्रकाशित हुआ था। 'यंग इंडिया'में प्रकाशित करते समय गांधीजीने अपने मूल अनुवादमें कुछ परिवर्तन भी किये गये थे। यह अनुवाद खण्ड १० में आये

'हिन्द स्वराज्य' के अनुवादकी तरह गुजरातीसे गांधीजी द्वारा किये गये अनुवादोंकी शैली व्यक्त करता है।

दार्शनिक सिद्धान्तोंकी पकड़का बिना कोई दावा किये और बिना उनकी ऊहा-पोहमें पड़े, गांधीजीने भूमिका और टिप्पणियोंमें सामान्य पाठककी दृष्टिसे 'गीता' के उपदेशकी मूलग्राही नैतिक शिक्षाको स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। उन्होंने कहा है कि जो साधारण पाठक, फिर चाहे वह स्त्री हो, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र, साहित्य की दृष्टिसे निष्णात नहीं है और जो मूल 'गीता' को पढ़नेकी न इच्छा रखता है और न उतना समय ही जिसके पास है और फिर भी जिसे 'गीता' के अवलम्बनकी आवश्यकता है (पृष्ठ ९३) इससे लाभ उठा सकता है। उन्होंने कहा कि मुझे 'गीता' की टीका लिखनेका अधिकार केवल इसीलिए मिलता है कि मैंने ३८ वर्षोंतक नित्य उसके अर्थको अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न किया है। (पृष्ठ ९३) इसी अधिकारके बल पर गांधीजीने 'गीता' के चलते चले आनेवाले, परम्परागत अनेक महत्वपूर्ण अभिप्रायोंसे भिन्न आशय प्रकट किये। 'अनासक्तियोग' इस बातका उदाहरण है कि गांधीजीका सभी शास्त्रोंकी तरफ देखनेका दृष्टिकोण क्या होता था। उनका कहना था कि अनुशासित और पवित्र बुद्धि रखकर आगमोंका अर्थ समझनेका प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने कहा कि, कविके अर्थोंका कोई अन्त ही नहीं है। "जिस प्रकार मनुष्यका विकास होता रहता है, उसी प्रकार महावाक्योंके अर्थका भी विकास होता ही रहता है।" (पृष्ठ. ९८) उन्होंने कहा कि 'गीता' के गायकने यज्ञ और संन्यास जैसे शब्दोंके अर्थका विकास करके हमें भी अर्थोंके विकास करनेकी प्रक्रिया समझाई है। प्राचीन धर्म-शास्त्रोंको अर्वाचीन नैतिक दृष्टिसे देखकर समझनेका यह प्रयत्न ही ऐसी चीज है जिसने गांधीजीको पुराने धार्मिक सूत्रोंके पीछे सुप्त किन्तु जीवन्त तथ्योंका साक्षात्कार कराया और उन्हें अपने जीवनमें उतारनेका उत्साह प्रदान किया। 'अनासक्तियोग' में गांधीजीने इसी दृष्टिकोणको अपनाया है और प्रयत्न किया है कि वे उस उपदेशकी एक व्यक्तिगत और सर्जनात्मक मीमांसा प्रस्तुत कर सकें।

'गीता' का कर्मयोग सिद्धान्त अभीतक अपने कथित ऐतिहासिक सन्दर्भसे जुड़ा हुआ माना जाता था और परम्परा यही माननेकी पड़ गई थी कि अर्जुनके मनमें करुणाका रूप लेकर जो मोह उत्पन्न हुआ है, 'गीता' का उपदेश उसे छोड़ देनेके लिए दिया गया है और उससे यह कहा गया है कि युद्धका फल भगवानके ऊपर छोड़ कर, उसे अपना क्षात्र-धर्म निभाना चाहिए। लोगोंके विचारमें भगवानने अर्जुनसे यह कहा था कि उसे अपनी जातिसे सम्बन्धित सारे कर्त्तव्योंको भी निष्काम भावसे धर्मयुद्धकी तरह ही करना चाहिए। आधुनिक कालमें जातिधर्मके बदले नियतकर्म पर अधिक जोर दिया गया (अध्याय ३, श्लोक १८) और यह माना गया कि

आत्मसंयमपूर्ण कर्म ही नियत-कर्मका अर्थ है; और इसलिए स्वधर्मके क्षेत्रको जन-सेवा और राष्ट्र-सेवाका दरजा प्राप्त हो गया तथा बाल गंगाधर तिलक तथा श्री अरविन्दके नेतृत्वमें उससे मातृभूमिकी मुक्ति और पुनरुत्थानके लिए अनेक देशभक्तोंको प्रेरणा मिली।

'गीता' से गांधीजीका पहला परिचय एडविन आर्नोल्डके 'सांग सेलेस्टियल' के द्वारा हुआ था। उन्होंने जब उसे पढ़ा था तब उनके मनमें वे नैतिक और धार्मिक विचार सिर उठा रहे थे, इंग्लैंडमें वकालत पढ़ते समय जिनसे उनका साक्षात्कार हुआ था। यह बात तो तभी उनकी समझमें आ गई थी कि इस ग्रन्थमेंसे उनकी सभी धुँधली-धुँधली शंकाओंका निराकरण हो सकता है और सही प्रेरणाएँ मिल सकती हैं। (खण्ड ३९, पृष्ठ ५७-५८) किन्तु जब १९०३ के बाद उन्होंने ग्रन्थका गहरा अध्ययन किया तब उनकी यह श्रद्धा दृढ़ हो गई और उन्हें अपनी राजनीतिक, मानवीय और नैतिक चिन्ताओंको एक अध्यात्मक नींव देनेमें बल मिला। इसके बाद तो 'गीता' उनके लिए "आध्यात्मिक निदान ग्रन्थ" ही बन गई। (पृष्ठ ९३)

गांधीजीने 'गीता' को उसके ऐतिहासिक सन्दर्भसे भी मुक्त किया। उन्होंने कहा कि महाभारतका युद्ध एक रूपक है, जिसमें भौतिक युद्धका दृष्टान्त लेकर वास्तवमें मनुष्यके हृदयमें चलनेवाले सतत द्वन्द्वका वर्णन किया गया है। (पृष्ठ. ९४) उन्होंने कहा कि 'गीता' के कृष्ण परिपूर्ण और निर्दोष ज्ञानकी मूर्ति है किन्तु वे हैं काल्पनिक। उन्होंने कहा कि इस दृष्टिसे देखें तो इसका मंशा किसी उचित उद्देश्यके लिए भौतिक युद्धके लिए उभारना नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य किसी जिज्ञासुसे यह कहना है कि हमें आध्यात्मिक चेतनाको अपने प्रत्येक कर्मका आधार बनाना चाहिए; उन्होंने 'गीता' के उपदेशके द्वारा इस आचरणको हस्तगत करनेके उपाय भी बताये। उन्होंने कहा कि व्यक्तिका धर्म यज्ञ-भावसे, आत्म-बलिदानके भावसे अपने कर्त्तव्यको करना है और इसका फल समर्पित करना है सर्वभूत हृदयस्थित भगवानको। गांधीजीने यह कहा कि ऐसा प्रयत्न किसी भी उद्देश्यके प्रति किसी भी रूपमें हिंसा और असत्यके आचरणकी सम्भावनाको समाप्त कर देता है। (पृष्ठ ९७) स्थितप्रज्ञके वे लक्षण जो 'गीता' के दूसरे अध्यायमें वर्णित हैं योद्धाके कर्त्तव्योंसे किसी प्रकारका कोई साम्य स्थापित नहीं करते। (पृष्ठ ९४) इसी प्रकार अध्याय १२ में भक्तके जो लक्षण बताये गये हैं वे भी स्थितप्रज्ञके लक्षणोंसे किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं। इसलिए गांधीजीने कहा कि इस ग्रन्थका सम्बन्ध भौतिक युद्धसे न होकर आध्यात्मिक युद्धसे है।

इसी प्रकार गांधीजीने 'गीता' के दो अन्य प्रधान शब्दों, यज्ञ और स्वधर्मको भी परम्परागत अर्थसे बहुत आगे ले जाकर लोगोंके सामने रखा। गांधीजीने कहा कि यज्ञका अर्थ कर्मकाण्डमें दी जानेवाली आहुतियाँ न होकर निःस्वार्थ सेवाके उन

कर्मोंसे है जो भगवानको समर्पित किये जाते हैं। (पृष्ठ १११) इसी प्रकार उन्होंने कहा कि स्वधर्मका अर्थ केवल जाति या वर्णगत कर्म न होकर वे सारे कर्त्तव्य-कर्म हैं जो व्यक्ति सेवाके क्षेत्रमें करता है। (पृष्ठ ११६) 'गीता' ने कहा है कि जो कर्म इस प्रकार निष्काम भावसे नहीं किया जाता वह बन्धनकारी बन जाता है; फिर कोई भी व्यक्ति प्रकृतिके सार्वभौम नियमोंका पालन करते हुए अकर्मा बनकर तो रह ही नही सकता, कर्म तो उसे करने ही होते हैं। इसलिए 'गीता' ने कहा कि मुक्तिका केवल एक ही मार्ग है और वह है भगवानके चरणोंमें समर्पणकी भावनासे निष्काम यज्ञ करना। (अध्याय ३, श्लोक ५ व ९ तथा अध्याय ४, श्लोक २७) गांधीजीकी दृष्टिसे 'गीता' के उपदेशका मर्म यही है।

इस तरह हम देखते हैं कि 'गीता' केवल आध्यात्मिक प्रयत्न अथवा नैतिक आचारका बखान करनेवाली कोई पुस्तक ही नही है बल्कि वह उत्तम ढंगसे आत्म-दर्शन करानेवाली मार्गदर्शिका भी है और इसी बातमें उसकी विशिष्टता है। (पृष्ठ ९४) उसने जीवनके दु:खोंका एक बहुत ही सरल और व्यापक उपाय सामने रखा है, "यह अद्वितीय उपाय है, कर्मके फलका त्याग।" यह वह केन्द्रबिन्दु है जो 'गीता' के ज्ञानकी परिधिके हर बिन्दुसे सम्बन्धित है। (पृष्ठ ९५) सच्चा भक्त ऐसा त्याग करनेमें समर्थ है। गांधीजीने अपने दीर्घ-जीवन और जन-सेवापूर्ण साधनासे यह दिखा दिया कि प्रार्थनामें विश्वास, भगवानके नाममें निष्ठा, ऐसी शक्तियाँ हैं जो असफलतामें व्यक्तिको मुरझाने नहीं देतीं और सफलतामें उसके मनमें गर्वका संचार नहीं करतीं, "रामनाम बुद्धिसे नहीं लिया जा सकता" उसे तो श्रद्धासे लेना चाहिए . . . शान्ति मिले या न मिले, सुख मिले या दु:ख किन्तु रामनाम तो लेना ही ठीक है। यह विश्वास रखकर हम रामनाम जपते रहें, कभी हारें नहीं।" (पृष्ठ २८५)

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, नई दिल्ली; नेहरू स्मारक संग्रहालय व पुस्तकालय, नई दिल्ली; श्री एस० वी० सुब्बाराव, श्री घनश्यामदास बिड़ला; श्री नारणदास गांधी; श्री फूलचन्द शाह; श्री वालजी गोविन्द देसाई; श्री शान्तिकुमार मोरारजी; श्री हरिभाऊ उपाध्याय; श्रीमती गंगा-बहन वैद्य; श्रीमती राधाबहन चौधरी; श्रीमती वसुमती पण्डित; श्रीमती शारदाबहन शाह; तथा 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स'; 'बापुना पत्रो:-६ गं० स्व० गंगाबहेनने'; 'बापुना पत्रो:-७ श्री छगनलाल जोशीने'; 'बापुना पत्रो:-९ श्री नारणदास गांधीने'; 'बापुना पत्रो:-५ प्रेमाबहेन कंटकने'; 'बापुनी प्रसादी' इन पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'आज', 'ज्योत्सना', 'ट्रिब्यून', 'नवजीवन', 'प्रजाबन्धु', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'लीडर', 'हिन्दी नवजीवन', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली और कागज-पत्रोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायताके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका फोटो-विभाग, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है; किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलोंको सुधार कर दिया गया है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही अनुवादकी भाषा सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामको सामान्यतः जैसे बोला जाता है, वैसे ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारण संदिग्ध हैं उनको वैसा ही लिखा गया है, जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीचमें चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण, वक्तव्य आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश अनूदित है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द, जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं है, वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और जहाँ आवश्यक हुआ, उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशन की है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका; 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ सामग्री परिशिष्टोंमें दे दी गई है। साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ अन्तमें दी गई हैं।

विषय-सूची

१. बहिष्कारकी चाल

विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति अपना काम नियमानुसार कर रही है। इस समितिका अध्यक्ष होते हुए भी मैं इसकी नियमितताका जरा भी श्रेय नहीं ले सकता। इस बातका सारा श्रेय समितिके उत्साही और कर्त्तव्यपरायण मन्त्रीको है। श्री जयरामदासने जबसे यह पद स्वीकार किया है, तबसे वह दूसरी और सभी बातोंको बिलकुल ही भूल गये हैं। ऐसी एकाग्रताके बिना इस जगत्‌में मन्त्री-पदके गौरवको कोई कभी नहीं बढ़ा सका है। अगर इस समितिको पूरी सहायता मिले तो बहिष्कारको सफल बनानेमें न कोई कठिनाई आये न बहुत समय ही लगे, क्योंकि इसमें खास बात संगठनकी है। अगर महासभाका संगठन एक जीता-जागता संगठन बन जाये, कार्यकर्त्तागण सच्चे विश्वाससे मर-खप कर काम करें तो इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि जनता बहिष्कारके लिए तैयार हो जायेगी – वह तो तैयार है ही। उसे तो केवल उसके धर्मका भान कराने और उसके सामने यह साबित कर देनेकी ही जरूरत है कि बड़े-बड़े लोगोंने विदेशी कपड़ा पहनना छोड़ दिया है और वे भी खादी पहनने लगे हैं। लेकिन त्रुटि तो इसी बातकी है कि स्वयं बड़े लोग रास्ता भूले हुए हैं, वे ही खरे नहीं हैं। कुछ लोग दिखावटके लिए खादी पहनते हैं, कुछ सिर्फ विशेष अवसरों-आदिपर खादी पहनते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो खादी पहननेसे साफ इनकार करते हैं और फिर भी कांग्रेसमें बने हुए हैं और अपने बड़प्पनका दुरुपयोग करते हुए किसी भी प्रकारके नियमको नहीं मानते। यही कारण है कि हमारा जनतापर जितना चाहिए उतना प्रभाव नहीं पड़ता। जन-साधारण मूर्ख नहीं बल्कि चतुर होते हैं। कई बातें ऐसी हैं, जिन्हें वे इशारेमें समझ लेते हैं। खादी, दूसरे शब्दोंमें बहिष्कार की गतिके सरपट न होनेका यह भी एक जोरदार कारण है।

बहिष्कारकी चाल धीमी हो या सरपट हो, इतना तो स्पष्ट है कि उसका असर विलायतवालोंपर पड़ने लगा है। बहिष्कार समितिने पिछले दो महीनोंका जो विवरण छापा है, उससे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। दिल्लीके वस्त्र-व्यवसायी मण्डलके अध्यक्ष श्री राबर्ट्सने अपने भाषणमें कहा है कि मैंचेस्टरपर बहिष्कारका बहुत असर पड़ रहा है। मगर दुःख है कि हमारा उत्साह थोड़े समय तक टिकता है और फिर शिथिल हो जाता है; फलस्वरूप इस प्रकारका असर देर तक नहीं रह पाता। इस असरको स्थायी बनानेके लिए हमें सच्चे बनना चाहिए और लगातार कोशिश करते रहना चाहिए। इस समय तो बहिष्कारकी चाल इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि कुछ लोगोंको डर मालूम हो रहा है कि कहीं खादी कम न पड़ जाये। मगर, यदि हम खादीके मन्त्रको भली-भाँति आत्मसात कर सकें तो हमें उसके चुक जानेका डर ही नहीं रहना चाहिए। जिस तरह गेहूँके आटेके रहते हुए किसीको रोटियोंके चुक जानेकी शिकायत करना निरर्थक है, उसी तरह जबतक भारतवर्षमें रुई है तबतक खादीके चुक जानेका भय ही नहीं हो सकता। आज हमें

जो डर लग रहा है, उसका कारण तो यह है कि हम खादीकी शक्तिको भूले बैठे हैं और उसमें अपना विश्वास भी खो चुके हैं। जिस तरह घर-घर रोटी बनाना सरल है उसी तरह घर-घर सूत कातना और खादी बुनना भी सरल है। खादीका सारा दारोमदार सूतपर है। जुलाहे तो आज भी जगह-जगह मिल जाते हैं। मगर कत्तिनें या कतैये इतनी आसानीसे नहीं मिलते।

हाथ-कते सूतकी उत्पत्तिके तीन तरीके हैं, एक स्वावलम्बन, दूसरा मजदूरी; तीसरा यज्ञ। पहला तरीका सबसे ज्यादा व्यापक हो सकता है, और वही सबसे ज्यादा आसान माना जाना चाहिए। इस तरीकेका मतलब यह है कि किसान अपनी जरूरतके मुआफिक सूत कात लें और उससे कपड़ा बुनवा लें; इस तरह तैयार की गई खादी उन्हें मिलके कपड़ेसे सदा सस्ती पड़ेगी। इस तरीकेका एक लाभ और भी है कि कपड़ेके ग्राहक ढूँढ़ते फिरनेकी मेहनत बच ही जाती है। जो लोग शहरोंमें रहते हैं या जो किसान नहीं हैं, उन्हें खादी तैयार मिलनी चाहिए। ऐसे लोगोंके लिए दूसरा तरीका मुफीद है, यानी मजदूरी देकर सूत कताना। आज इसीका जोर है; यही खूब सफल हो रहा है; क्योंकि खादी-प्रवृत्तिकी शुरुआत इसीसे हुई, और यही एक तरीका सम्भव था। खादीकी प्रवृत्तिकी शुरुआत तो मध्यम श्रेणी और शिक्षित वर्गसे हुई है। उनकी यह स्थिति नहीं थी कि वे स्वावलम्बनकी पद्धतिसे खादी बनवाकर पहनते। भारतमें भूखसे पीड़ा पानेवालोंका एक ऐसा वर्ग है, जिसे अगर प्रतिदिन एक आना और मिलने लगे तो उसका दारिद्रय दूर हो जाये। इसी विचारसे मजदूरी देकर सूत कतवाना शुरू किया गया। इस तरीकेमें एक बड़ा लाभ और भी है। इस तरीकेकी वजहसे मध्यम श्रेणीकी संगठन-शक्ति बढ़ी है, एक बड़ा सेवा-तन्त्र पैदा हुआ है, और मध्यम श्रेणीके लोगोंके लिए ईमानदारीके साथ जीविका कमानेका एक बड़ा और नया जरिया पैदा हुआ है। यह लाभ कोई छोटा-मोटा लाभ नहीं है। तीसरा तरीका यज्ञार्थ सूत कातनेका है। अनुकूल वायुमण्डलके अभावमें इसकी गति बहुत मन्द रही है। अगर यज्ञका वायुमण्डल तैयार किया जा सके तो इस तरीकेसे करोड़ों गज सूत उत्पन्न किया जा सकता है। म्युनिसिपल स्कूलोंमें, जहाँ हजारों लड़के-लड़कियाँ पढ़ते हैं, खेल-ही-खेलमें तकलीपर बहुत-सा सूत कात लिया जा सकता है। इस तरह खर्च कम पड़ेगा और काम निरन्तर चलता भी रहेगा। इस तरह तैयार सूत फौरन जुलाहेके घर पहुँचाया जाकर उसकी खादी बनवाई जा सकती है और यह लोगोंमें विश्वास पैदा कर सकता है। इस कामकी व्यवस्था सहज ही हो सकती है। इसी तरह अगर तीनों तरीकोंसे पूरा-पूरा काम लिया जाये तो भारतमें मनमाना सूत पैदा किया जा सकता है; दूसरे शब्दोंमें, जरूरत के मुताबिक खादी पैदा करना बिलकुल आसान हो सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-६-१९२९

२. अस्पृश्यता-निवारण समिति

कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितिने अस्पृश्यता-निवारणके लिए एक जुदी समिति नियुक्त की है। भारत-भूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजी इस समितिके अध्यक्ष और श्री जमनालालजी मन्त्री हैं। समितिका प्रधान कार्यालय ३९५, कालबादेवी रोड, बम्बई है। इस समितिके मुख्य उद्देश्य नीचे लिखे अनुसार हैं:

१. अन्त्यजोंके लिए सार्वजनिक मन्दिर खुलवाना;

२. अन्त्यजोंको सार्वजनिक कुओं परसे पानी भरने देना;

३. सार्वजनिक पाठशालाओंमें अन्त्यज बालकोंके प्रवेशकी जो रुकावटें हैं, उन्हें दूर कराना;

४. सफाई सम्बन्धी उनकी हालत सुधारना और

५. मुर्दा ढोरोंका मांस खाने और शराब पीनेकी उनकी आदत छुड़वाना।

इस कामके लिए हिन्दुओंका बहुमत तैयार करनेमें समिति हिन्दू-मात्रसे सहायता पानेकी आशा रखती है। जो इस काममें मदद देनेको तैयार हों वे ऊपर बताये पतेपर श्री जमनालालजीको लिखें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २-६-१९२९

३. गुजरातका अंशदान

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने निश्चय किया है कि हर प्रान्तको अपने क्षेत्र की देशी रियासत और रक्षित (गवर्नर द्वारा शासित) क्षेत्र छोड़कर, शेष भागकी जनसंख्याके १/४ प्रतिशत लोगोंको अगस्तके अन्ततक कांग्रेसका सदस्य बना लेना चाहिए और ये सदस्य प्रदेशके कमसे-कम आधे जिलोंमें से, उन जिलोंके अन्तर्गत आनेवाली आधी तहसीलों तथा तहसीलोंमें आनेवाले कमसे-कम दस गाँवोंमें से बनाये जाने चाहिए। यह अनुपात कुछ बहुत अधिक नहीं है। जो प्रान्त इस अनुपातमें भी सदस्य नहीं बना सकते उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें अपने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार नहीं होना चाहिए।

कांग्रेसने जो रचनात्मक कार्य करनेका निर्णय किया है यदि वह तदनुसार उसे करनेकी थोड़ी भी तैयारी करे और उसके बाद भी प्रति चार सौ लोगोंमें से यदि कांग्रेस एक व्यक्तिपर भी अपना प्रभाव न डाल सके तो इस कार्यकी कोई कीमत नहीं होगी। रचनात्मक कार्यक्रम एक ऐसा कार्य है जिसमें सभी लोग भाग ले सकते हैं। यह विधानसभामें नहीं जाना है, जिसमें अंगुलीकी पोरोंपर गिने जा सकने योग्य इनेगिने कुछ व्यक्ति ही भाग ले सकते हों। यदि स्वयंसेवक मिल सकें तो इसमें

करोड़ों व्यक्तियोंसे काम लिया जा सकता है। खादीका काम ऐसा है कि जिसमें करोड़ों व्यक्तियोंकी इच्छा और सहायताके बिना बहिष्कार सफल नहीं हो सकता। अस्पृश्यता-निवारणका अर्थ है २३ करोड़ हिन्दुओंकी सम्मति। मद्यनिषेधका तात्पर्य है लाखों हिन्दू-मुसलमानोंपर आत्मशुद्धिका सच्चा असर पड़ना। यदि कांग्रेस यही नहीं कर सकती तो अगले वर्ष १ जनवरीतक जो बात कर डालनेकी हमें आशा है वह तो कभी सफल हो ही नहीं सकती। अतः मुझे आशा है कि गुजरात पहले की भाँति अगस्तका महीना खत्म होनेके पहले ही अपने हिस्सेसे अधिक काम पूरा कर दिखायेगा। यदि हम ऐसा करना चाहते हों तो हमें गुजरातका नकशा लेकर पहले यह तय कर लेना चाहिए कि हर जगह अर्थात् हर ताल्लुकेसे कितने लोग लिये जाने चाहिए और तदनुसार काम बाँट लेना चाहिए।

इस विषयपर विचार करते हुए हमें सहज ही कांग्रेसके संविधानमें उल्लिखित सूत सम्बन्धी शर्तका ध्यान आ जाता है। कुछ लोग जैसे-तैसे इस बन्धनसे छुटकारा पा जाना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि गुजरातके कार्यकर्त्ताओंमें ऐसा कोई नहीं है। किन्तु संयोगसे यदि कोई ऐसे सज्जन हों तो उनकी खातिर मुझे यह जता देना चाहिए कि कांग्रेसके सदस्यके रूपमें अपना नाम दर्ज करवाते समय उक्त बन्धन लागू नहीं होता। जो व्यक्ति कांग्रेसके उद्देश्यको स्वीकार करता है और चार आने या दो हजार गज सूत देता है वह कार्यकर्त्ताको कांग्रेसके सदस्यकी तरह कार्यालयमें अपना नाम दर्ज करनेपर विवश कर सकता है। किन्तु जो अपने मताधिकारका प्रयोग करना चाहता है, अनिवार्यतः खादी पहननेका नियम उसीपर लागू होता है। इस अन्तरको समझ लेना आवश्यक है। किन्तु यह भी अर्थपूर्ण है। हो सकता है कि कांग्रेसमें शामिल होनेवाला विदेशी वस्त्रोंका शौकीन हो, शायद खादीकी निन्दा भी करता हो किन्तु हमें यह आशा रखनी चाहिए कि हमारे सम्पर्कमें आने, हमारी सेवाको स्वीकार करने, हमारे प्रेमका अनुभव कर लेनेके बाद विदेशी वस्त्रोंके प्रति उसका मोह छूट जाये और वह खादीका व्यवहार करने लगे। यह भी सम्भव है कि मत देनेकी इच्छाके वशीभूत होकर ही उसे खादी पहननेकी प्रेरणा मिले। और इस सबके बावजूद जबतक वह खादी नहीं पहनता, वह उस अवधि तकके लिए अपना मत देनेका अधिकार गँवा देता है। कांग्रेसने खादीकी उपयोगिता और आवश्यकताको इस प्रकार कूता है। मैं बहुत बार लिख चुका हूँ कि यदि अधिकांश लोगोंकी यह मान्यता हो कि खादीका बन्धन कांग्रेसके काममें बाधक है और जनमत उक्त प्रतिबन्ध हटा देनेके पक्षमें हो तो इसे हटा लेना हमारा कर्त्तव्य है। किन्तु जबतक यह प्रतिबन्ध लागू है तबतक उसपर ईमानदारीसे अमल होना चाहिए, इस बारेमें मेरे मनमें कोई शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-६-१९२९

४. कराचीका खादी भण्डार

जब मैं कराचीमें था, तब मैं उक्त भण्डार देखने गया था; किन्तु मैं उसे बहुत ध्यानसे नहीं देख सका। बादमें मैं वहाँकी दरोंके ज्यादा होनेकी शिकायत सुनी थी; इसलिए मैंने उसके बारेमें मौन धारण कर लिया था। भण्डारके संचालक भाई दयाराम टोपणदासने इस मौनकी शिकायत की। मैंने कारण बताया। उसपर उन्होंने मेरे पास इस विषयमें सफाईके प्रमाण पेश किये। इस स्पष्टीकरणमें साधु वासवाणी, आचार्य गिडवानी आदिके प्रमाणपत्र हैं और भाई चन्द्रशंकर बुचने भण्डारका विशेष निरीक्षण करके लिखा है।[1]

इसके बाद भाई दयाराम टोपणदास तो यह माँग कर रहे हैं कि चरखा संघ उसके अपने खर्चेपर हिसाबकी जाँच करे और उसे प्रकाशित करे; और यदि कोई और व्यक्ति भण्डारको ज्यादा अच्छी तरह चलानेके लिए तैयार हो तो वे उसे सौंप देनेके लिए भी तैयार हैं। मेरे मनमें कीमतों या व्यवहारको लेकर कोई शंका नहीं रही। इस दुकानमें दोनों पक्ष [हानि-लाभ] बराबर बैठते हैं, यह सच है; किन्तु यह तो दोष नहीं गुण है। यह तो इस बातका सूचक है कि संचालकको भण्डार चलाना आता है। जो सावधानीके साथ भण्डार चलाते हैं उन्हें हानि नही होती। इसमें बहुत नफेकी गुंजाइश तो शायद ही होती है; पर हानि होनेका भी कोई कारण नहीं होता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-६-१९२९

५. आदर्श बाल-मन्दिर

बालकोंको शिक्षा देना सरलतम काम होना चाहिए, लेकिन देखते क्या हैं कि वह कठिनसे-कठिन हो गया है अथवा बना दिया गया है। अनुभव तो यह सिखाता है कि बालक अपनी इच्छा या अनिच्छासे, कुछ-न-कुछ भली-बुरी शिक्षा पाते ही रहते हैं। कई पाठकोंको यह बात कुछ अजीब-सी मालूम पड़ेगी, किन्तु यदि हम इस बात-पर विचार कर लें कि बालक कौन है, शिक्षासे मतलब किसी चीजका है, और बच्चोंको शिक्षा या तालीम कौन दे सकता है, तो सम्भव है, ऊपरके वाक्यको पढ़कर हमें कोई आश्चर्य न हो। बालकसे मतलब दस वर्षसे कम या लगभग इस उम्रके बालक-बालिकाओंसे है।

शिक्षाके मानी अक्षरज्ञान नहीं है। अक्षरज्ञान शिक्षाका एक साधन-भर है। शिक्षा या तालीमका मतलब तो यह है कि बालक यह जान ले कि वह अपने मन

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

और दूसरी सब इन्द्रियोंका सदुपयोग कैसे कर सकता है। यानी बालक अपने हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियों और नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंका सच्चा उपयोग करना जान जाये। यह जानने लगना कि हाथोंसे न चोरी करनी चाहिए, न मक्खियाँ मारनी चाहिए, न अपने साथीको या छोटे भाई-बहनोंको सताना या पीटना चाहिए, बालककी तालीम शुरू हो चुकना है। यह कहा जा सकता है कि जो बालक अपना शरीर, अपने दाँत, जीभ, नाक, कान, आँख, सिर, नाखून वगैराको साफ रखनेकी जरूरत समझता है और उन्हें साफ रखता है, उसने तालीम पाना शुरू कर दिया है। जो बालक खाते-पीते समय हठ नहीं करता, अकेलेमें या समाजके साथ बैठकर खाने-पीनेकी तमाम क्रियाएँ ठीक ढंगसे करता है, ठीक तरहसे बैठ सकता है, शुद्ध और अशुद्ध खुराकके भेदको समझकर शुद्ध खुराक ही चुनता है, अघोरीकी तरह नहीं खाता, जो देखता है उसे माँगने नहीं लगता, उसके न मिलनेपर भी शान्त रहता है; कहना चाहिए, उसने शिक्षामें अच्छी तरक्की की है। जिस बालकका उच्चारण शुद्ध है, जो अपने आसपासके प्रदेशका इतिहास-भूगोल इन विषयोंके नाम न जानते हुए भी हमें बता सकता है, जिसे देशकी हस्तीका भान हो चुका है, उसने भी शिक्षाकी खासी मंजिल तय कर ली है। जो बालक सच-झूठका, सारासारका भेद जान पाता है, और अच्छी और सच्ची बातका ही संग्रह करता है, बुरी और झूठी बातका त्याग करता है, वह भी तालीमके रास्तेमें बहुत तरक्की कर चुका है। इस विवेचनको और अधिक बढ़ाकर लिखनेकी जरूरत नहीं है। शेष बातोंकी पूर्ति पाठक खुद कर सकते हैं। सिर्फ एक बात स्पष्ट रूपसे कह देनी चाहिए। ऊपर जो-कुछ कहा गया है उसमें अक्षरज्ञान या लिपिज्ञानकी कहीं भी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। बालकोंको वर्णमाला सिखानेमें लगाये रखना, उनके मनपर और उनकी दूसरी इन्द्रियोंपर बोझा लादनेके समान है, उनकी आँखों और उनके हाथोंका दुरुपयोग करना है। सच्ची तालीम पाया हुआ बालक समय आनेपर सहज ही अक्षरज्ञान प्राप्त कर सकता है, और सो भी बड़ी दिलचस्पी लेकर। आज बालकोंके लिए यही ज्ञान बोझरूप हो जाता है, जो प्रगतिके लिए अच्छेसे-अच्छा समय है, उसका निरर्थक दुरुपयोग होता है, और आखिर ये सुन्दरसे-सुन्दर अक्षर लिखने और खूबीके साथ पढ़नेके बदले चींटेकी टाँगों-जैसे अक्षर लिखते हैं और जो पढ़ते हैं उसमें भी गलतियोंकी भरमार रहती है और उनके पढ़नेका ढंग गलत होता है। इसे शिक्षा कहना शिक्षापर अत्याचार करना है। अक्षरज्ञानसे पहले बालकको उक्त प्रकारकी प्राथमिक शिक्षा मिल जानी चाहिए। अगर ऐसा किया जाये तो यह गरीब देश, अनेक पाठ्य पुस्तकों, वाचनमालाओं, बालोपयोगी पुस्तकों आदिके खर्चेसे बच जाये और दूसरे अनर्थोंसे भी सुरक्षित रह सके। अगर बालोपयोगी पुस्तकोंकी किसीको जरूरत है, तो शिक्षकोंको; जिन बालकोंका मैंने जिक्र किया है उनको कदापि नहीं; अगर हम प्रवाहमें नहीं बह रहे हैं तो हमें यह बात दीपकके समान स्पष्ट दिखाई दे सकनी चाहिए।

ऊपर जिस शिक्षाका जिक्र किया है बालक उसे घरपर ही पा सकता है, और सो भी सिर्फ माताके द्वारा। यों थोड़ी-बहुत शिक्षा तो बालकको मातासे मिलती

है। अगर आज हमारे घर छिन्न-भिन्न हो गये हैं, माता-पिता बालकोंके प्रति अपने कर्तव्योंको भूल गये हैं, तो इस हालतमें बच्चोंको तालीम जहाँतक हो सके, ऐसे वायुमण्डलमें दी जानी चाहिए, जहाँ रहकर बालक कुटुम्बमें रहनेका ही अनुभव कर सके। इस धर्मका पालन माता ही कर सकती है, अतएव बच्चोंकी शिक्षाका प्रबन्ध स्त्रियोंके ही हाथोंमें होना चाहिए। स्त्री जिस प्रेम और धीरजसे काम कर सकती है, पुरुष आजतक उसका परिचय नहीं दे सका है। अगर यह सब सच है, तो बाल-शिक्षाकी समस्याको हल करते समय सहज रूपसे स्त्री-शिक्षाकी समस्या हमारे सामने आ खड़ी होती है। मुझे यह कहते हुए थोड़ा भी संकोच नहीं होता कि जब तक सच्ची बाल-शिक्षा देने योग्य माता तैयार नहीं होती तबतक बालकोंके लिए सैकड़ों पाठशालाएँ होते हुए भी वे शिक्षासे शून्य ही रहेंगे।

अब मैं बाल-शिक्षाकी रूप-रेखाके सम्बन्धमें दो बातें कहूँगा। मान लीजिये कि एक माता-रूपिणी स्त्रीकी देखरेख में पाँच बालक हैं। इन बालकोंको न तो बोलनेकी तमीज है, न चलनेका भान; नाकसे जो रेंट बहती है, उसे वे हाथसे पोंछकर या तो पैरोंपर गिरा लेते हैं या अपने कपड़ोंपर। आँखें गीडसे भरी रहती है; कानों और नाखूनोंमें मैल भरा रहता है; बैठनेके लिए कहनेपर पैर फैलाकर बैठते हैं; जब बोलते हैं तो मानो फूल झड़ते हैं; 'हूँ' को 'शूं'[1] कहते हैं और 'मै' के बदले 'हम' का उपयोग करते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिणका उन्हें ज्ञान नहीं होता। बदनपर मैले कपड़े पहने रहते हैं। गुह्य इन्द्रिय खुली रहती है, उसे मला करते हैं, मना करनेपर और ज्यादा मलने लगते हैं। अगर जेब है तो उसमें एक-न-एक मैली कुचैली मीठी चीज़ पड़ी रहती है, जिसे वे समय-समयपर निकालकर चबाते रहते हैं, उसका कुछ भाग जमीनपर बिखेरते रहते हैं और पहलेसे चिकटे अपने हाथोंको और चिकटे बनाते चले जाते हैं। सिरपर जो टोपी होती है उसका निचला भाग कोयले-जैसा काला होता है और उसे हाथमें लेते ही बदबू आती है। इन पाँच बालकोंकी देखरेख करनेवाली स्त्रीके मनमें यदि मातृ-भावना जागे, तभी वह इन्हें शिक्षा दे सकती है। पहला सबक उन्हें राहपर लगानेका होगा। माँ उन्हें प्रेमसे नहलायेगी, कई दिन उनके साथ हँसी-खेल और बातचीतमें ही बितायेगी, और कई तरहसे, जैसे अबतक माताओंने किया है, जैसे कौशल्याने बालक रामके प्रति किया था, उसी तरह, यह माता भी इन बालकोंको अपने प्रेम-पाशमें बाँधेगी और फिर जैसा नचाना चाहेगी वैसा नचायेगी। जबतक माताके पास यह गुण नहीं होगा, वह बिछुड़े हुए बछड़ेके पीछे विकल होकर चारों ओर चक्कर लगानेवाली गायकी तरह, इन पाँच बालकोंके पीछे दौड़ा नहीं करेगी, चक्कर नहीं काटती रहेगी जबतक ये बालक स्वेच्छासे साफ नहीं रहने लगते। इनके दाँत, कान, हाथ, पैर वगैरा जैसे चाहिए वैसे नहीं रहते, इनके गँदले कपड़े जबतक साफ-स्वच्छ नहीं रहने लगते, और जबतक 'शूँ'का 'हूँ' नहीं हो जाता है, तबतक माता अपने लिए आराम हराम

१. गुजरातीमें 'हूँ'का अर्थ 'मैं' होता है और 'शूँ'का क्या। वहाँ कई लोग 'स' और 'ह'के उच्चारणोंमें भेद नहीं करते।

समझेगी। उनपर इतनी विजय पा लेनेके बाद माता बालकको पहला सबक रामनाम का देगी। इस रामको कोई 'राम' कहेगा, कोई 'रहमान' कहेगा; मगर बात एक ही होगी। धर्मके बाद अर्थको तो स्थान मिलेगा ही, अतएव माता अंकगणित पढ़ाना शुरू करेगी। बच्चोंको पहाड़े सिखायेगी और जोड़, गुणा, बाकी वगैरा हिसाब जबानी सिखायेगी। जिस जगह बालक रहते हैं, उन्हें उस जगहका ज्ञान तो होना ही चाहिए। अतएव माता उन्हें आसपासके नदी-नाले, पर्वत, पहाड़ियाँ, मकान वगैरा दिखायेगी और साथ ही दिशा-ज्ञान तो करा ही देगी। बच्चोंके लिए वह अपना ज्ञान भी बढ़ायेगी, अपने विषयोंको भी सँवारेगी। इस कल्पनामें इतिहास और भूगोल जुदे विषय नहीं हो सकते। दोनोंका ज्ञान कथा-कहानियोंके जरिये ही दिया जाना चाहिए। माता इतनेसे ही सन्तुष्ट न रहे। हिन्दू माता बालकको बचपनसे ही संस्कृतकी ध्वनिका आदी बनाये; अर्थात्, उसे ईश्वर-स्तुतिके श्लोक जबानी याद करा दे और इस तरह बचपनसे ही बालककी जीभको शुद्ध उच्चारणका अभ्यास करा दे। राष्ट्र-प्रेमी माता बालकको हिन्दी तो सिखायेगी ही। इसके लिए वह बालकके साथ हिन्दीमें बातें करे, हिन्दीकी पुस्तकोंमें से कुछ पढ़कर उसे सुनाये और इस तरह बालकको द्विभाषी बनाये। इस उम्रमें वह बालकको अक्षरज्ञान भले ही न दे। किन्तु उसके हाथमें कूँची तो अवश्य पकड़वाये। माता बालकसे भूमितिकी शक्लें बनवाये, सीधी, गोल, आड़ी-टेढ़ी सुन्दर रेखायें खिंचवाये। माता उन बालकोंको शिक्षित न माने जो न फूल बना सकते हैं, और न त्रिभुज तैयार कर सकते हैं। और यह माता बालकको संगीत ज्ञानसे-शून्य तो कभी रखे ही नहीं। माताके लिए यह असह्य होना चाहिए कि उसके बालक मीठे स्वरसे, एक साथ, राष्ट्रीय गीत, भजन वगैरा नहीं गा सकते। माता उन्हें तालबद्ध गाना सिखलाये, अधिक दूरदर्शी हो तो उनके हाथोंमें एकतारा और झाँझ सौंपे, उन्हें डण्डोंकी तालपर रासक्रीड़ा करना सिखलाये। उनके शरीरोंको सुगठित बनानेके लिए माता उन्हें कसरत करने, दौड़ने और कूदनेको कहे। साथ ही बालकोंको सेवा-भावकी तालीम भी देनी है, अतएव माता उनसे कपास चुनवाये, फिर उन्हें ओटने, धुनकने और कातनेको कहे और इस तरह हँसते-खेलते रोज कमसे-कम आध घंटा कतवा ले।

इस शिक्षाक्रमके लिए आजकलकी पाठ्य-पुस्तकें एकदम निरुपयोगी हैं। प्रत्येक माताका प्रेम ही उसके लिए नई-नई पुस्तकें बना देगा। क्योंकि हरएक गाँवका इतिहास-भूगोल नया और जुदा होगा, अंकगणितके उदाहरण भी नये ही बनेंगे। भावना-प्रधान माता प्रतिदिन तैयार होकर बालकोंको सिखाये और अपने रोजनामचेमें नई बातें, नये उदाहरण वगैरा लिखकर उन्हें सिखाती रहे।

इस पाठ्यक्रमको अधिक विस्तृत करनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। इन बातों के आधारपर हर तीन महीनोंका क्रम तैयार किया जा सकता है, क्योंकि हम सभी बालकोंके लिए कोई एक ही पाठ्यक्रम नहीं बना सकते। समय-समयपर मिले हुए बालकोंको देखकर ही उनका पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है। कई बार तो बालक जिन बुरी या गलत बातोंको सीख कर आते हैं, उन्हें भुलाना पड़ता है। छः-सात

वर्षका बालक चाहे जैसे अक्षर लिखना सीख गया हो, या उसे पानीकी जगह 'पापा' कहनेकी बुरी आदत पड़ गई हो तो माता पहले इन बातोंको ठीक करे। जबतक यह भ्रम न मिटे कि बालक पुस्तकें पढ़कर ही ज्ञान प्राप्त करता है, तबतक वह आगे कदम न बढ़ाये। यह एक सहज और कल्पना-गम्य बात है कि जिसने जन्मभर 'अ-आ' लिखना-पढ़ना नहीं सीखा है, वह भी विद्वान बन सकता है।

इस लेखमें मैंने कहीं भी 'शिक्षिका' शब्दका उपयोग नहीं किया है। माता ही शिक्षिका है। जो माताका स्थान नहीं ले सकती उसे शिक्षिका बनना ही नहीं चाहिए। बालकको यह पता ही नहीं चलना चाहिए कि वह पढ़ रहा है, तालीम पा रहा है। जो बालक माँ की आँखोंके आगे ही बना रहता है वह बालक चौबीसों घंटे तालीम पाता रहता है। पाठशालामें छः घंटे बैठकर लौट आनेवाला बालक कुछ भी तालीम नहीं पाता। सम्भव है, आज तकके इस अस्त-व्यस्त जीवनके कारण स्त्री शिक्षिकाएँ न मिलें। हो सकता है, इस समय बाल-शिक्षाका काम पुरुषोंको ही करना पड़े। ऐसी दशामें पुरुष-शिक्षकको भी माताका महापद प्राप्त करना पड़ेगा और आखिरकार माताको तो तैयार होना ही पड़ेगा। लेकिन अगर मेरी कल्पना उचित हो तो प्रत्येक माता, जिसके हृदयमें प्रेम है, थोड़ी-सी सहायतासे इस कामके लिए तैयार हो सकती है। और फिर स्वयं तैयार होकर वह बालकोंको भी तैयार कर सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-६-१९२९

६. गो-सेवा संघ

उद्योग-मन्दिरमें २८ मईको गो-सेवा संघकी एक बैठक हुई और उसम आग दिया गया संविधान[1] स्वीकार किया गया। इस सेवक-संघमें सेवकोंका भर्ती होना इष्ट तो है, मगर साथ ही सेवक बननेकी इच्छा करनेवाले भाइयोंको यह बतलाकर सावधान कर देना भी जरूरी है कि रुपयों, सूत या चमड़ेके रूपमें चन्दा जमा करने-मात्रसे कोई सेवक नहीं बन सकता। सेवकके जो कर्त्तव्य बताये गये हैं उनमें कुछ तो अनिवार्य हैं और कुछका आवश्यक होते हुए भी स्वेच्छापूर्वक प्रयत्न करना है। उन कर्त्तव्योंमें से अनिवार्य कर्त्तव्योंका जो पालन करे और दूसरे कर्त्तव्योंके सम्बन्धमें प्रयत्नशील रहे वही सेवककी हैसियतसे अपना नाम दर्ज करा सकता है। जो गो-सेवाकी तीव्र लगन रखते हैं, उनके लिए उन कर्त्तव्योंका पालन कठिन नहीं है। संघकी बैठकमें यह सवाल उठाया गया था कि जो फिलहाल अनिवार्य कर्त्तव्योंके पालनमें अपने-आपको असमर्थ पाते हों, मगर फिर भी जिनकी तीव्र इच्छा संघसे नजदीकका सम्बन्ध बनाये रखनेकी हो, वे क्या करें? इसके फलस्वरूप सहायक वर्गकी एक योजना बनाई

१. देखिए परिशिष्ट १।

गई है। लेकिन जो सहायक न बन सकें वे पहलेकी भाँति दान तो अब भी भेज सकेंगे, और मुझे आशा है कि वे बराबर दान भेजते रहेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-६-१९२९

७. पत्र : माधवजी वी० ठक्करको

साबरमती आश्रम
२ जून, १९२९

भाईश्री माधवजी,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैं जब भी आश्रम आता हूँ तब हमेशा ही पत्रोंका जवाब लिखनेको फुरसत कम रह जाती है। प्रयत्न करनेसे तुम्हारा क्रोध अवश्य जायेगा। मैं देखता हूँ कि तुम सावधान तो हो। तुम्हारा जीवन-वृत्तान्त पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई है। ईश्वर तुम्हें दीर्घायु करे, निरोगी बनाये और तुम्हारी सेवापरायणतामें वृद्धि करे। कभी-कभी रोटी छोड़ देने अथवा दूसरी कोई चीज जो भारी लगती हो, छोड़ देनेसे लाभ ही होगा।

यह लिखानेके बाद आज तुम्हारा पत्र मिल गया है। देखता हूँ, तुम्हारी तबियत ज्वारभाटेकी तरह कम-ज्यादा होती रहती है। तुम जुलाईमें आओगे तो फिर ज्यादा अच्छी तरह इलाज हो सकेगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० ६७८५)की फोटो-नकलसे।

८. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
२ जून, १९२९

चि० जमनालाल,

मैंने रुखीके[1] विषयमें सन्तोकके[2] साथ बात कर ली है। गुजराती हिसाबसे वर्ष दिवालीको पूरा होता है। इसलिए इस वर्ष विवाह करना हो तो असाढ़ महीनेमें करना चाहिए; क्योंकि सन्तोक कहती है कि बादमें शादी हो ही नहीं सकती। असाढ़में करना बहुत जल्दी हो जायेगा। इसके सिवा सन्तोकका आग्रह है कि बनारसी, विवाह होनेके पहले, गुजराती सीख ले। इसलिए वह कहती है कि अगर विवाह अगले साल हो तो जेठ महीनेमें हो। इसलिए बात एक साल आगे सरक गई। सन्तोकके मनमें यह लोभ तो है ही कि रुखी इस दरमियान अधिक पढ़-लिख ले। यह ठीक लोभ है।

१. मगनलाल गांधीकी पुत्री।
२. छगनलाल गांधीकी पत्नी।

इससे मुझे ऐसा लगता है कि अब इस बातको हम ज्यादा न छेड़ें। अगले वर्ष लग्न है या नही, मैं यह जाननेका प्रबन्ध कर रहा हूँ। मुझे लगता है कि इस प्रकारके दूसरे विवाह सम्बन्धोंको रोकनेकी कोई जरूरत नहीं है। जिनकी सगाई हुई है उनका विवाह तो होगा ही, हम तो यह मानकर चलें। और अब जो सम्बन्ध होंगे उनमें शायद विवाह तुरन्त करना पड़े। किन्तु यह तो तुम्हें ज्यादा अच्छी तरह मालूम होगा। अस्पृश्यता सम्बन्धी कामकी ठीक व्यवस्था कर लेना और हो सके तो उसके बारेमें कुछ-न-कुछ समाचार हर सप्ताह भेजते रहना। आज पूछनेपर मालूम हुआ है कि अगले वर्ष भी विवाह होंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ९०४६) की फोटो-नकलसे।

९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

उद्योग मन्दिर, साबरमती
२ जून, १९२९

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला। मुझको उससे बहुत शान्ति हुई है क्योंकि मुझको अवश्य ऐसा आभास आया कि . . . को[1] आपके पास रखनेकी सलाह देनेमें मेरी कुछ गलती हुई हो। लड़कीके रिश्तेदारोंने . . . के[2] साथ बहुत बुरा बर्ताव किया इसमें तो कुछ सन्देह नहीं होता है, इस बारेमें एक खत आया है। आपको पढ़नेके लिए भेजता हूँ। . . . ने[3] इसका इशारा किया था। . . . का[4] लिखना कि . . . का[5] मृत्यु हृदयके बंद होनेसे ही हुआ है सच्चा है क्या?

'फोरवर्ड' के बारेमें मैं समझा। जाहरी जीवनमें आक्रमण तो होता ही रहेगा परन्तु हमारे तो न्याय ही तुलना है। सुभाषाकी हिम्मत स्तुति योग्य है।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१७१ से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१, २, ३, ४ और ५. नाम छोड़ दिये गये हैं।

१४. एकत्र विवरण

आन्ध्रमें जमा किये गये चन्देका एकत्र विवरण[1] नीचे प्रकाशित किया जा रहा है। मैंने इसका वचन दिया था। इसे श्री नारायणमूर्तिने अ० भा० चरखा संघके लेखापरीक्षककी हैसियतसे तैयार किया है और देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैयाने इसकी जाँच की है।

पिछले आठ वर्षोंमें मुझे अपने दौरोंके प्रबन्ध और उनपर होनेवाले खर्चकी जाँच तथा देखभालका न तो अवसर मिला और न मैंने इसकी इच्छा ही व्यक्त की थी। आन्ध्रके इस कार्यक्रमोंसे भरपूर दौरेके खर्च आदिके बारेमें मैं पहली बार यह कर रहा हूँ। इसके पहले भी खर्चके मामलेमें बहुत अधिक ढिलाई और सामान इत्यादि खरीदनेमें मैंने बड़े खुले हाथों खर्च करनेकी प्रवृत्ति देखी थी। ज्यादातर इस शाही खर्चका कारण था तो मेरे प्रति लोगोंका वैयक्तिक स्नेह ही; पर जब खर्चकी रकम दरिद्रनारायणके नामपर इकट्ठे किये कोषमें से काटी गई तो यह स्नेह खटकने लगा और इसलिए मैंने आन्ध्रप्रदेशकी यात्राके दौरान, जहाँ तक सम्भव हुआ, प्रबन्ध-व्यवस्था अपने ही हाथ रखी और इस बातपर जोर दिया कि माल मँगानेके बीजक पेश करके उनके खर्चकी मुझसे मंजूरी लिए बिना एकत्र कोषमेंसे कोई कटौती न की जाये। मैंने इस बातपर भी जोर दिया कि अपने दलके लोगोंका रेल खर्च भी मैं स्वयं वहन करूँगा ताकि इस खर्चसे संचित कोषमें कमी न पड़े। मैंने इस बातपर भी जोर दिया था कि जहाँ स्थानीय मेजबान द्वारा खाने-पीनेकी व्यवस्था न हो, अपने साथियोंके भोजनका खर्च भी मैं ही दूँगा। अतः प्रमाणित खर्चेमें आम तौरपर केवल मोटर-किराया, पेट्रोल, स्वयंसेवकोंका रेल-किराया, अथवा ऐसी ही अन्य मदें शामिल हो सकती थीं। इस प्रकारका खर्च एकत्रित धन-राशिके ५ प्रतिशतसे अधिक नहीं बैठता। ३१९ गाँवोंमें एक बड़ी जागृति पैदा करनेके लिए इतना खर्च अधिक नहीं है। खर्चके पक्षमें इतना कहनेके बाद भी मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि एकत्रित धन-राशियाँ बहुत बड़ी ही क्यों न हों, पर एकसे दूसरे स्थानपर तेजीसे दौड़ते फिरना और इसके लिए मोटरोंका ऊँचा-ऊँचा किराया भरते जाना हमारी आर्थिक सामर्थ्यसे बाहरकी बात है। दौरेपर रहते हुए, मैंने एक बिलका[2] पूरा ब्यौरा प्रकाशित किया था। अगर पाठक मेरे द्वारा प्रकाशित खर्चके इस विवरणका पूरा-पूरा महत्व समझते हैं, तो उन्हें उक्त बिलका ध्यान आ गया होगा। उसमें भी सुधार या बचतकी काफी गुंजाइश थी। चूँकि अपने सभी दौरोंमें से, जिनका मुझे स्मरण है, यह दौरा सबसे अधिक मितव्ययितापूर्ण रहा है इसलिए इसका ऐसा उल्लेख करना अशोभनीय लग सकता है। आसानीसे सन्तुष्ट हो जाना या आदर्श परिस्थिति

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२. देखिए खण्ड ४०, पृष्ठ ३३१-३२।

तक पहुँचे बिना सन्तुष्ट हो जाना गलत होगा। आसानीसे सन्तुष्ट हो जानेका अर्थ प्रगति न करना कहलायेगा; अप्रगति तो अगति और अन्ततः अधोगतिकी ओर ले जानेवाली चीज है। ऊपर चढ़ना तो चींटीकी चालसे होता है और उसकी तुलनामें ढाल परसे उतरनेकी गति या अधोगति बहुत अधिक होती है। अतः कार्यकर्त्ताओंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि आन्ध्रकी खर्च-व्यवस्था भविष्यके लिए मार्गदर्शनका काम तो जरूर दे सकती है, किन्तु इसके अनुसार भी सोच-समझकर और इसमें पर्याप्त सुधारके बिना नहीं चलना चाहिए। जब प्रत्येक कार्यकर्त्ता यह समझने लगेगा कि राष्ट्रीय कोषके धनके प्रयोगमें उतनी ही सख्ती और मितव्ययिता बरतनी है जितनी कि एक सतर्क गृहस्थ अपने धनके प्रयोगमें बरतता है, तब यह काम अपने-आप सध जायेगा। अलमोड़ा, सावधान।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-६-१९२९

१५. गो-सेवा संघ

गत ता० २८-२९ मईके दिन गो-सेवा-संघकी एक बैठक उद्योग-मन्दिरमें हुई थी। बैठकमें नीचे लिखी संघटना[2] स्वीकार की गई थी। आशा है, पाठक यह देखकर कि इस योजनामें सदस्योंको अधिकार तो एक भी नहीं दिया गया है, उलटे उनसे विचित्र-विचित्र कर्त्तव्योंके पालनकी आशा की गई है, इसकी इस नवीनतासे दुविधामें न पड़ें। स्थायी समितिके सदस्य बहुत विचारके बाद इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि गो-सेवाका अति कठिन काम उस समयतक सम्भव नहीं है जबतक स्त्री-पुरुषोंका एक बड़ा समुदाय सच्चे सेवा-भावसे इस दिशामें काम न करने लगे और साथ ही जबतक उसमें गोरक्षा-विज्ञानको सीखनेकी तीव्र इच्छा और तत्परता न हो। चन्देके लिए हाथ-कते सूत और और मरे ढोरके चमड़ेके जो विकल्प रखे गये हैं उन्हें पढ़कर भी पाठक आश्चर्य न करें। सालाना पाँच रुपये दे देना अपने-आप मरे हुए दो ढोरोंका चमड़ा देनेसे कहीं अधिक आसान है। बिना किसी प्रतिनिधि या सहायकके द्वारा खुद प्रयत्न करके ऐसे चमड़ेका संग्रह करना परिश्रमका काम है और इससे चमड़ेके सम्बन्धमें जानकारी बढ़नेकी सम्भावना है। यह कोई छोटा-मोटा लाभ नहीं है। साथ ही अगर पाठक यह भी सोचें कि गाय शब्द उस व्यापक अर्थमें लिया गया है जिसमें सारे प्राणी आ जाते हैं, जो मानव जातिकी सेवा करते हैं और उससे अपनी रक्षाकी आशा रखते हैं, तो वे सहज ही समझ जायेंगे कि अपने हाथ-कते सूतका गो-सेवा-संघसे क्या सम्बन्ध है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-६-१९२९

१. इसके बाद गांधीजी अलमोड़ाके दौरेपर जानेवाले थे।

२. देखिए परिशिष्ट-१।

१६. नादिरशाही

आजकल देशमें दमनचक्र जिस ढंगसे चलाया जा रहा है, उसमें बिना किसी उचित कारण अथवा शंकाके निर्दोष और इज्जतदार आदमियोंकी गिरफ्तारी, उनपर बुर्का डाल, उन्हें हथकड़ी-बेड़ियाँ पहनाकर पुलिस थानेपर ले जाना वगैरा मामूली बातें हैं, मगर मुझे यह आशा न थी कि किसी दिन सुप्रसिद्ध 'मॉडर्न रिव्यू' मासिक पत्रके कार्यालयकी और उसके उतने ही लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जीके घरकी तलाशी भी ली जायेगी। अतएव ज्यों ही यह खबर मेरे कानोंतक पहुँची, तार करके मैंने श्री रामानन्द बाबूसे खबर मँगाई। उनके पत्रसे[1] पता चलता है कि डा० संडरलैंडकी 'इंडिया इन बॉन्डेज' नामक पुस्तकके सम्बन्धमें पिछली ता० २४ मईको उनके कार्यालय और घरकी तलाशी ली गई थी। तलाशीका वारंट लेकर उनके घर एक पुलिस अधिकारी पहुँचा था, उसने उक्त पुस्तककी छपी हुई और हस्तलिखित प्रतियाँ तथा पुस्तकके सम्बन्धमें ग्रन्थकर्त्ता और श्री रामानन्द बाबूके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह सब तलब किया था। रामानन्द बाबूके पास जो-कुछ भी था, उन्होंने अधिकारीके सामने ला रखा, पुस्तककी बिक्रीके सम्बन्धमें ग्रन्थकर्त्ताके साथ जो इकरार हुआ था, उसका दस्तावेज भी उन्होंने पेश किया। रामानन्द बाबू लिखते हैं कि अधिकारीका बरताव अत्यन्त सभ्यतापूर्ण था। अधिकारी अपने जानेसे पहले ऊपर बतलाई हुई सब चीजोंकी रसीद उन्हें देता गया। जिस अधिकारीने कार्यालयकी तलाशी ली उसके पास श्री सजनीकान्तदास, बी० एस– सी० (प्रस्तुत पुस्तकके मुद्रक और प्रकाशक)की गिरफ्तारी और कार्यालयकी तलाशीका वारंट था। पुलिस अधिकारी कार्यालयसे उक्त पुस्तकके दूसरे संस्करणकी ४२ प्रतियाँ, पहले संस्करणकी एक प्रति, मूल हस्तलिखित प्रति और पुस्तककी बिक्रीके प्रमाणस्वरूप कतिपय बिल ले गया। श्री सजनीकान्त गिरफ्तार किये गये और एक हजारकी जनामतपर छोड़े गये। इस अधिकारीका बरताव भी सभ्यतापूर्ण था।

इन अधिकारियोंके सभ्यतापूर्ण बरतावके लिए हम उनके आभारी हैं। अगर वे इतना भी न करते तो उनकी कार्रवाई राक्षसी ही गिनी जाती। मगर तलाशी तो आखिर तलाशी ही है, फिर वह चाहे जितनी सभ्यतापूर्वक क्यों न ली गई हो। स्वाभिमानी पुरुषके लिए बेड़ी सोनेकी हो चाहे लोहेकी, दोनों समान रूपसे दु:खदायक हैं। उनका दु:खदायी-पन धातुके प्रकारमें नहीं बल्कि उनके बेड़ी होनेमें है। इस तलाशीका किसी भी तरह समर्थन नहीं किया जा सकता। क्योंकि श्री रामानन्द चटर्जी कोई मामूली सम्पादक नहीं हैं। वे चोटीके पत्रकारोंमें से एक हैं। वह और उनका मासिक क्या देश और क्या विदेश सर्वत्र प्रतिष्ठा पा चुका है। 'माडर्न रिव्यू'

1. गांधीजीने **यंग इंडिया**, ६-६-१९२९ में रामानन्द बाबूका पूरा पत्र उद्धृत किया था; किन्तु **नवजीवनकी** टिप्पणीमें इस प्रकार उसका आशय-भर अपने शब्दोंमें लिख दिया था।

अपनी मर्यादा और सत्यशीलताके लिए प्रसिद्ध है। वह एक अत्यन्त संस्कारवान मासिक है। उसके लेखक मण्डलमें भी भारतके कई सुप्रसिद्ध लेखक हैं। ऐसे मासिकके कार्यालय और उसके सम्पादकके घरकी तलाशीका कारण क्या हो सकता है? अगर डॉ० संडरलैंडकी पुस्तक राजद्रोहपूर्ण हो तो उसके प्रकाशकपर मुकदमा चलाया जा सकता है; और पुलिसको जरूरी जानकारी तो उस तमाशेके बिना भी मिल सकती थी। मगर सरकारको आजकल तमाशे करके काम करना ही ज्यादा पसन्द हो रहा है। दूसरा कोई तरीका उसे रुचता ही नहीं। हममें जो बड़ेसे-बड़े हैं उन्हें भी यह सरकार अपनी सत्ताका मजा चखा देनेकी जरूरत महसूस करती है। कहीं ऐसा न हो कि हम लोग भूल जायें कि हम गुलाम हैं! सन् १८५७ के विद्रोहके दिनोंमें लोगोंकी बेइज्जती करनेवाले दृश्य उपस्थित किये जाते थे। श्री रामानन्द चटर्जीके कार्यालय और घरकी तलाशी, और दूसरी धर-पकड़ वगैराको वैसे ही नाटकोंकी पुनरावृत्ति कहा जा सकता है। जबतक ये बिलावजह किये गये अपमान हमें असह्य नहीं हो उठते और हम इनका विरोध नहीं करते तबतक ये इसी तरह चलते रहेंगे।

मुझे दुःख है कि मैं डॉ० संडरलैंडकी पुस्तकके बारेमें कुछ भी नहीं जानता। छपनेसे पहले ही ग्रन्थकर्त्ताने उसकी एक हस्तलिखित प्रति मेरे पास सम्मत्यर्थ भेजी थी, मगर अनेक कामों और यात्राके कारण मैं उसे पढ़ नहीं पाया था। वह हस्त-लिखित प्रति अबतक मेरे पास पड़ी है। समयानुसार पुस्तक छपकर प्रकाशित हुई और उसके बाद भी उसके विद्वान लेखकने मेरी सम्मति जाननी चाही। लेकिन मैं उसे पढ़नेका समय ही न निकाल सका; मैं उम्मीद तो रखता था कि आन्ध्रकी यात्रामें उसे पढ़ डालूँगा। मगर जो काम मैं मित्रके नाते न कर सका, सम्पादकके नाते अब उसे करना पड़ेगा। और यह अशक्य भी नही है, क्योंकि अब तो यह मेरे रोजके सम्पादकीय कर्त्तव्यका ही अंश होगा। सवाल इस पुस्तकमें राजद्रोहके होने या न होनेका नहीं है। सवाल तो यह है कि जहाँ तलाशी और धरपकड़का कोई उचित कारण नहीं होता और जहाँ उनके बिना भी काम चल सकता है, वहाँ उनका आश्रय लिया जाता है। आज भारतमें जगह-जगह इसी नीतिका प्रयोग किया जा रहा है, सिर्फ इसलिए कि तमाम जनताके दिलमें डर भर दिया जाये, और एक समूचे राष्ट्रको नीचा दिखाया जाये। मुट्ठी-भर, लाखसे भी कम राज्यकर्त्ता ३० करोड़ लोगोंपर राज्य कर सकें, केवल इसलिए जो उपाय उन्होंने ढूँढ निकाले हैं, लोगोंको लिए जानबूझकर नीचा दिखलानेके लिए यह उन्हींमें से एक उपाय है; इस परिस्थितिको समाप्त करनेके लिए हमें कुछ भी उठा नहीं रखना चाहिए। अपने योग्य सम्मान हमें दिया ही जाये, ऐसी स्थिति पैदा करना स्वराज्य-पथकी पहली सीढ़ी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-६-१९२९

१७. विदेशी वस्त्र बहिष्कार

श्रीयुत जयरामदासने सभी जिला कांग्रेस-कमेटियोंको बहिष्कारसे सम्बन्धित उनके कर्त्तव्योंके बारेमें एक खुला पत्र भेजा है। अमलसे सम्बन्धित इस पत्रके अंश नीचे दिये जा रहे हैं:

> विदेशी वस्त्र बहिष्कार समितिने अपनी २४ मईकी बैठकमें जो नया कार्यक्रम तैयार किया है, उसका पूरा पाठ नीचे दिया जा रहा है। मेरा अनुरोध है कि इस कार्यक्रमको आप अपनी कार्य-समितिकी आपतकालीन बैठकमें प्रस्तुत करें और इस कार्यक्रमकी विभिन्न मदोंको देखते हुए उनके आधारपर अपने क्षेत्रके लिए अपनी कार्यनीति स्वयं निश्चित करें। इसका कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता कि बम्बईमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी हाल ही की बैठकमें कांग्रेसके सदस्य बनानेका जो कार्यक्रम स्वीकार किया गया है वह विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारके इस नये कार्यक्रमके आड़े आये। बल्कि जब आपके कांग्रेसका सदस्य बनाने जायेंगे तब सदस्यता अभियान चलाते हुए विदेशी वस्त्र बहिष्कारका सन्देश हजारों लोगों तक ले जाना और भी आसान हो जायेगा। लोगोंको सदस्य बनानेके पहले उनको कांग्रेसका सन्देश तो समझाना ही होगा और उसमें विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारकी बात भी आ जाती है। मुझे आशा है कि पिछले पाँच महीनोंमें विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारका जितना काम आप कर पाये हैं, अगले चार महीनोंमें उससे अधिक अच्छा काम करके दिखा सकेंगे।
>
> **विदेशी वस्त्र बहिष्कार प्रस्ताव**
>
> (क) कार्य समिति द्वारा निर्धारित विदेशी वस्त्र बहिष्कार कार्यक्रमको सफल बनानेमें लोगोंने पिछले तीन महीनोंमें जो पहल की है, विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति उससे अवगत हुई। समिति सभी कांग्रेस कमेटियों तथा बहिष्कार आन्दोलनमें सहयोग करनेवाले अन्य सभी संगठनोंसे अनुरोध करती है कि वर्षके शेष महीनोंमें वे उस कार्यक्रमपर मुस्तैदीसे अमल करें।
>
> (ख) समितिका सुझाव है कि उपर्युक्त कार्यक्रमके अनुसार नीचे लिखी बातोंपर पूरा जोर लगानेके लिए संगठित प्रयत्न किये जायें:—
>
> १. बड़े-बड़े शहरोंके बाहर दौरे करनेके लिए प्रचार-टोलियोंका संगठन;
>
> २. लोगोंको विदेशी वस्त्र-बहिष्कारके समर्थक बनानेके लिए घर-घर जानेका प्रबन्ध करना;
>
> ३. जहाँ घर-घर जाकर प्रचार करना सम्भव न हो, वहाँ जनसभाएँ करना;

४. सप्ताहमें अधिकसे-अधिक, जितनी बार सम्भव हो, खादी बेचनेके लिए फेरी लगाना;

५. जहाँ भी आवश्यकता हो, छोटे-छोटे खादी-भण्डार खोलनेके लिए पर्याप्त धन इकट्ठा करना;

६. प्रति सप्ताह रविवार और बुधवारको नगर-कीर्तन और गली-गलीमें प्रचार-कार्य चलाना;

७. प्रत्येक माहके पहले रविवार, यानी २ जून, ७ जुलाई, ४ अगस्त और १ सितम्बरको विदेशी वस्त्र बहिष्कारका विशेष कार्यक्रम करना;

८. उन स्थानीय संस्थाओंकी विशेष बैठकें बुलानेका आयोजन करना जिन्होंने बहिष्कार आन्दोलनमें अपना सहयोग देनेके बारेमें विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति द्वारा रखे गये सुझावोंपर अबतक विचार नहीं किया है;

९. विदेशी वस्त्र बहिष्कार कार्यकी प्रगतिका लेखा-जोखा प्रति सप्ताह सोमवारको लिख भेजना; और

१०. २ अक्तूबर (गांधीजीका जन्मदिवस), १९२९ का दिन विदेशी वस्त्र बहिष्कार दिवसके रूपमें मनाना;

मैंने पिछले सप्ताह यह बता दिया था[1] कि पुनर्गठन सम्बन्धी प्रस्तावसे रचनात्मक कार्यक्रममें कोई विघ्न पड़ना तो दूर, वास्तवमें रचनात्मक कार्यक्रमको बल ही मिला है। जबतक हम यह न बतायें कि कांग्रेसका उद्देश्य क्या है, राष्ट्रके हितमें वह क्या करती है तथा प्रत्येक कांग्रेसीसे क्या अपेक्षा की जाती है, लोगोंसे केवल कांग्रेसकी सदस्यताके लिए कहनेका कोई अर्थ नहीं।

मैं भारत सचिव (सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया) द्वारा लन्दन वाणिज्य मण्डलमें दिये गये उनके हालके ही एक भाषणके कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ। इनसे बहिष्कारके लिए जोरदार प्रचार करनेकी आवश्यकता और उभर कर सामने आ जाती है। उनके कथनका विवरण इस प्रकार दिया गया है:

> यह अनुमान लगाना कठिन है कि ब्रिटेनकी कितनी बड़ी पूंजी भारतमें फँसी है; और मैं बिना किसी हिचकके यह माननेको तैयार हूँ कि यह पँजी ७०,००,००,००० (सत्तर करोड़) पौंड तक अथवा १,००,००,००,००० (एक अरब पौंड) तक भी हो सकती है। इस वर्ष रेल विभागको विश्वास दिलाया गया था कि उपयोगी किस्मके लाभकारी निर्माण-कार्यपर २,००,००,००० (दो करोड़) पौंड खर्च किये जा सकेंगे। रेलवेमें लगी हुई पूँजीके अलावा, भारत सरकारने लगभग १०,००,००,००० (दस करोड़) पौंडकी रकम अन्य लाभ-दायी उद्यमोंमें विनियोजित कर रखी है। इन विशाल उद्यमोंके कारण ही भारतीय राष्ट्रीय ऋणकी राशिमें इतनी अधिक वृद्धि हो गई है। पर इतना

१. देखिए खण्ड ४०, पृष्ठ ४४५-४७।

ही नहीं, इस विशाल राशिमें हमें भारतके बड़े-बड़े व्यापारिक उद्यमोंमें फँसी हुई अपार पूँजीको भी जोड़ लेना चाहिए और फिर इन व्यापारिक उद्यमोंका मूल्य भी दिन-दिन बढ़ता रहा है। . . .

भारतने लगभग ८,५०,००,००० (आठ करोड़ पचास लाख) पौंडकी लागतका तैयार माल हमसे खरीदा है और जनता भली-भाँति समझ सकती है कि यदि भारतीय बाजार हाथसे बिलकुल चला जाये अथवा बहुत छोटा रह जाये, तो ब्रिटेनमें बेरोजगारीकी समस्यापर उसका कितना भारी प्रभाव पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि यदि ब्रिटेनका व्यापारी वर्ग प्रिंस ऑफ वेल्सके परामर्शको हृदयंगम कर ले तो ब्रिटेन अपनी व्यापारिक ईमानदारी और श्रेष्ठतर ब्रिटिश कौशलके बलपर व्यापारके क्षेत्रमें पुनः वही स्थान प्राप्त कर लेगा, जिससे वह इधर कुछ वर्षोंसे पिछड़ गया है। इस समय भारत ब्रिटेनसे जो कुल खरीदारी करता है वह प्रतिव्यक्ति ५ शि० ३ पैं० की बैठती है, जब कि न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया द्वारा की जानेवाली खरीदारी क्रमशः १३ पौं० ५० शि० ५ पैंस और ८ पौं० १७ शि० ३ पैं० प्रति-व्यक्ति बैठती है।

लॉर्ड पीलने भारतमें विनियोजित ब्रिटिश पूँजीके और भारत द्वारा की जानेवाली ब्रिटिश मालकी खरीदारीके भारी आँकड़े प्रस्तुत करते हुए जैसी खुशी महसूस की है, हम उसमें उनका साथ नहीं दे सकते और न हम उन आँकड़ोंसे निकाले उनके निष्कर्षोंपर प्रकट की गई खुशीको ही अपने मनमें महसूस कर सकते हैं। हमें तो इससे दूसरी ही शिक्षा मिलती है। इस प्रकारकी अधिकांश खरीदारी भारतीय किसानोंके लिए तो बर्बादीका कारण ही बनती है। यह याद रखना चाहिए कि भारत द्वारा इस तरहकी खरीदारीकी आधीसे अधिक रकम ब्रिटिश वस्त्रोंकी खरीद पर ही खर्च होती है, जब कि लाखों भारतीय वर्षमें छः महीने निठल्ले बैठे रहते हैं और जब कि वे अपनी-अपनी झोपड़ियोंमें बैठे-बैठे ही आसानीसे अपनी आवश्यकताके लायक पूरा-पूरा कपड़ा तैयार करके अपने देशसे धनके इस भारी निकासको रोक सकते हैं।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-६-१९२९

१. देखिए "बहिष्कारकी चाल", २-६-१९२६ भी।

१८. टिप्पणी

एक सफल प्रयोग

बहुत थोड़े पाठक अखिल भारतीय चरखा संघके बारेमें जानते हैं और उसके गठनमें रुचि तो शायद उससे भी कम लोग रखते हैं। पाठकोंको याद होगा कि इसकी कार्यकारिणीने बहुत डरते-डरते अपनी अवधि समाप्त होनेके पूर्व ही चुनाव द्वारा तीन सदस्योंको सम्मिलित करनेका एक प्रयोग किया है। 'क' और 'ख' श्रेणीके जिन सदस्योंने अपना चन्दा चुका दिया था मतदान उन्होंने किया। यद्यपि इस चुनावकी हदतक 'ख' श्रेणीकी सदस्यता इन्हीं पृष्ठोंमें[1] बताये कारणोंके आधारपर समाप्त कर दी गई थी, फिर भी अनेक दृष्टियोंसे अवैध होते हुए भी 'ख' श्रेणीके सदस्योंको उक्त चुनावमें भाग लेनेकी अनुमति दे दी गई थी। अपनाई गई प्रणाली आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली थी। मतदान डाक द्वारा हुआ। परिणाम बहुत सन्तोष-प्रद रहा। मतदाताओंने अपनी जिम्मेदारी समझी और प्राप्त सुविधाकी कद्र की। पाँच उम्मीदवारोंमें से तीन चुनने थे। चुनाव-सम्बन्धी सूचीका सार रोचक है; वह नीचे दिया जा रहा है:

कुल मत	२९०
अवैध	३१
वैध मत	२५९
आवश्यक संख्या	$\frac{२५९}{३+१} + १ = ६६$

पहला मत

श्रीयुत वी० वी० जेराजाणी	१४८
डॉ० वी० सुब्रह्मण्यम्	५५
श्री के० सन्तानम्	४१
श्री देवशर्मा विद्यालंकार	१३
एन० रामालिंगम्	२

श्रीयुत जेराजाणीके मत पत्रोंपर दूसरी पसन्दगीका विश्लेषण

श्रीयुत के० सन्तानम्	७०
डॉ० वी० सुब्रह्मण्यम्	३१
श्री देवशर्मा विद्यालंकार	९
श्री एन० रामालिंगम्	शून्य

१. देखिए खण्ड ४०, पृष्ठ ४१०-११।

पहली पसन्दगीके प्राप्त-मतपत्रोंको इनमें जोड़नेके बादका योग लगानेके बाद परिणाम इस प्रकार रहा:

श्रीयुत के० सन्तानम्	१११[1]
डॉ० वी० सुब्रह्मण्यम्	८६
श्रीयुत देवशर्मा विद्यालंकार	२२
श्रीयुत एन० रामालिंगम्	२

डॉ० बी० सुब्रह्मण्यम् और श्रीयुत के० सन्तानम् चुने गए

कुल मतदाता	४९० श्रेणी 'क' के
	८३ श्रेणी 'ख' के
योग	५७३
कुल मतदान (वैध)	
	२१२ श्रेणी 'क'
	४७ श्रेणी 'ख'
योग	२५९

इस प्रकार किसी प्रचार अथवा हंगामा मचाये बिना ४० प्रतिशतसे कुछ अधिक मतदाताओंने चुनावमें भाग लिया। किसी भी प्रकारका अशोभनीय विरोध नहीं हुआ: चुनावके आधारके रूपमें ऐसी कोई आनी-बानीकी बात भी सामने नहीं थी। २९० मतपत्रोंमें से ३१ अवैध पाये गये। निःसन्देह यह बड़ी संख्या है। लेकिन आनुपातिक आधारपर हुए प्रथम चुनावकी दृष्टिसे यह संख्या बहुत अधिक नहीं है। हमें आशा रखनी चाहिए कि और अधिक संख्यामें स्त्री-पुरुष अखिल भारतीय चर्खा संघके चुनाव में भाग लेंगे क्योंकि यह संस्था भारतमें केवल सुदूर ग्रामोंको चर्खेका सन्देश देनेका कार्य ही नहीं करती बल्कि साथ-साथ उस विशाल प्रजातन्त्र प्रणालीके निर्माण हेतु प्रशिक्षण-स्थलकी तरह काम करती है, जिसमें सेवाभावका ही उच्चतम स्थान है; और योग्यताके आधारपर मिलनेवाले इस पदको पानेकी सामर्थ्य हमारे मध्य छोटेसे-छोटे व्यक्तिकी भी हो सकती है। यह उल्लेखनीय है कि अखिल भारतीय चर्खा संघका मताधिकार संसारकी सभी ज्ञात प्रणालियोंसे अधिक जनतान्त्रिक है। मेरी रायमें आयुको छोड़कर अन्य सभी प्रकारकी योग्यताके बिना दिया गया मताधिकार कोई मताधिकार नहीं है। इससे सच्चे जनतन्त्रकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-६-१९२९

१. साधन-सूत्रमें यह संख्या ७९ है जो सही नहीं लगती।

१९. आत्मशुद्धिकी आवश्यकता

आन्ध्रयात्राके दौरान करनूलमें मुझे एक गुमनाम खत मिला था। पत्रमें यह शिकायत की गई थी कि स्थानीय स्वागत समितिके सदस्य मेरे स्वागत-मात्रके लिए ही खादीधारी बने थे, वैसे तो वे आम तौरपर विदेशी कपड़े और विदेशी ढंगकी पोशाक पहननेवाले थे। सभामें भी विदेशी वस्त्र पहने हुए काफी लोग नजर आ रहे थे। अतएव मैंने इस पत्रकी बात सभामें कही और साथ ही गुमनाम खत लिखनेवालेको भी नाम छुपानेके कारण खरी-खोटी सुनाई। पत्र-लेखकने मेरा भाषण सुनकर तुरन्त ही मुझे अपना नाम लिख भेजा। उनका पत्र उनके गौरवको बढ़ाता है और दूसरी दृष्टिसे बोधप्रद भी है, अतएव मैं उसे नीचे पूराका पूरा देता हूँ:

> **गुप्त व्यवहार-मात्र पाप है। परन्तु नीचे लिखे कारणोंसे मैंने कल अपना नाम नहीं दिया था। मैं सरकारी नौकर हूँ। आप भली-भाँति जानते हैं कि एक सरकारी नौकरकी हैसियतसे मैं अपने देशकी स्थिति और आवश्यकताके बारेमें अपनी सच्ची राय प्रकट नहीं कर सकता। क्योंकि वह बड़ेसे-बड़ा राज-द्रोह माना जाता है। फिर भी कल जो लोग आपकी सेवामें हाजिर हुए थे उनमेंसे कई लोगोंका बनावटीपन मैं सह न सका। मुझे उससे आघात पहुँचा। शिक्षित-वर्गका कर्त्तव्य है कि वह अशिक्षितोंको समझाकर सन्मार्गपर लाये। लेकिन अगर शिक्षित लोगोंका ऐसा ख्याल हो कि साधारण अशिक्षित जनताको ढोंग और पाखण्ड द्वारा समझाया जा सकता है, तो यह उनकी बड़ी भूल है। अगर हरएक आदमी निश्चय कर ले कि और कहीं नहीं तो वह कमसे-कम अपने घरमें तो आपकी सलाहके मुताबिक चलेगा, तो मुझे विश्वास है कि थोड़े ही समयमें भारत एक स्वतन्त्र देशकी तरह अपना सिर ऊँचा उठा सकनेमें समर्थ हो सकेगा। मिथ्याचारके द्वारा लोगोंकी बुद्धिमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता, उलटे अपने खोखलेपनके कारण हम झूठी मिसाल पेश करते हैं और दुनियाकी नजरमें हँसीके पात्र बनते हैं। इन विचारोंसे मैं बेचैन था, इसीसे मैंने आपको पत्र लिखा था। मैं बहुत ही गरीब हूँ, फिर भी जबतक मुझे विश्वास न हो जाये कि मैंने जो-कुछ किया है, वह बुरा किया है, तबतक नाम देने या न देनेके बारेमें मैं चिन्ता नहीं करता। आपको नाम बतानेसे मेरे निर्वाहका एकमात्र आधार मेरी सरकारी नौकरी भी अगर जोखिममें पड़े तो मैं उसकी परवाह न करूँगा।**

इन लेखकको और दूसरोंको जो प्रतिष्ठित समाचारपत्रोंके नाम पत्र भेजते हैं, जानना चाहिए कि जो लेखक अपना नाम सिर्फ सम्पादककी जानकारीके लिए लिख भेजते हैं, उनके नाम प्रकट न करनेके लिए सम्पादक बाध्य रहता है; अतएव प्रस्तुत

पत्र-लेखकको विश्वास रखना चाहिए कि उनका नाम कभी प्रकट नहीं किया जायेगा। अगर इन पत्र-लेखकको यह जानकर आश्वासन मिले, तो मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि मैंने उनका पत्र पढ़कर उसमें से उनके नामवाला भाग उसी समय फाड़ डाला था; और अब तो याद करनेपर भी वह मुझे याद नहीं आता।

मेरे विचारमें अगर इन सज्जनने अपना पहला पत्र भी नाम सहित छपनेके लिए भेजा होता तो इनकी कोई हानि न होती। पत्र एकदम निर्दोष था और कोई भी सरकारी नौकर बिना किसी खतरे या भयकी आशंकाके ऐसा लिख सकता है। हम अक्सर बिला वजह डरकर सच्चा काम करनेसे भय खाते हैं। सचाईको अमलमें लानेकी हिम्मत हममें होनी चाहिए।

मुझे पता नहीं करनूलके नेताओंके खिलाफ की गई इन लेखककी शिकायत सच है या नहीं, फिर भी यह तो मैं भी जानता हूँ कि सार्वजनिक जीवनके पाखण्डके बारेमें इन्होंने जो-कुछ लिखा है वह बिल्कुल सच है। अगर नेता लोग जैसा बोलते हैं, वैसा करने भी लगें, तो सर्व-साधारणके साथ साफ-साफ बात करनेमें हमें कठिनाई न हो। अतएव आज जरूरत तो नेता लोगोंकी आत्मशुद्धिकी है। इस आत्मशुद्धिके होते ही और बातें अपने आप हो जायेंगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ६-६-१९२९

२०. धोती पर टोप

शिवनीके पण्डित दुर्गाशंकर मेहता लिखते हैं:

> **मैं वकालत करता था लेकिन १९२१ में असहयोग किया। परिस्थितियोंने मुझे फिर वकालत करनेपर मजबूर कर दिया है। लेकिन मैं कट्टर खादीवादी हूँ। मैंने पैंट और टाईका उपयोग करना छोड़ दिया है तथा अदालत और स्थानीय विधानसभामें धोती पहनकर जाता हूँ। अपने जिला परिषद्के प्रधानके नाते मैं अकालके दिनोंमें चलनेवाला सड़क निर्माण कार्य देख रहा हूँ। इसके लिए मुझे धूपमें घूमना भी पड़ता है। हाल ही में मुझे हलकी-सी लू लग गई थी और इसलिए मैंने एक टोप खरीद लिया; मैंने इसे शुद्ध खादीसे बनवाया है। इसपर बहस शुरू हो गई है। क्या आप इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करेंगे?**

यह विरोध पुराना है। मेरी संकुचित राष्ट्रीयता टोपके खिलाफ बगावत करती है; पर मेरी प्रच्छन्न अन्तर्राष्ट्रीयता स्वीकार करती है कि यूरोपसे प्राप्त कतिपय वरदानोंमें टोप भी एक है। राष्ट्रके मनमें टोपके विरुद्ध भयंकर पूर्वग्रह न हों तो मैं टोपके प्रचारके लिए स्थापित किसी संस्थाका सभापति बनना स्वीकार कर लूँ। मेरे विचारसे भारतीय शिक्षित समाजने इस जलवायुमें अनावश्यक, अशुचिकर एवं

अशोभनीय पतलूनको अपनाकर तथा टोपको अपनानेकी तरफ कुल मिलाकर हिचकते रहकर, गलती की है। मैं मानता हूँ कि किसी भी राष्ट्रकी रुचि-अरुचिका तर्क-सम्मत होना जरूरी नहीं। स्काटलैंडका निवासी शत्रु द्वारा आसानीसे पहिचाने जाने और उसका शिकार होनेके भयको भी नजर अन्दाज करके अपने बेडौल 'किल्ट'[1]को नहीं त्यागता। मैं नहीं मानता कि भारत टोपके प्रति उदार हो सकेगा; फिर भी दुर्गाशंकरजीकी कोटिके कार्यकर्त्ताओंको आलोचनासे परेशान नहीं होना चाहिए और खादीसे तैयार टोपकी तर्जपर बनी चीजका उपयोग कर लेना चाहिए। सच पूछा जाये तो यह सहज संवहनीय छतरी है, जो अपना एक हाथ उलझाए बिना ही सिर ढँकनेके काममें लाई जा सकती है। कलकत्तेके पुलिसमैनको अपने कमरपटेमें छाता रोपकर धूपसे अपना सिर बचाना पड़ता है; इस तरह उसे किसी अंग्रेज पुलिसमैनकी तुलनामें दुहरी असुविधा होती है। टोपके बारेमें, जिनका घोर दुराग्रह है, वे मेरे द्वारा इंगित इन दो उदाहरणोंपर ध्यान दें। यहींपर मैं पाठकोंका ध्यान इस प्रकारके देशी और कारगर टोपकी ओर भी दिला दूँ; जिसे मलाबारके गरीब किसान पहनते हैं। यह भी पत्तोंकी बनी बिना डंडीकी एक छतरी-सी होती है जिसे सिरमें फँसा रखनेके लिए छालके गोल घेरेसे काम लिया जाता है। यह सस्ता है और पूरी तरह कारगर भी है। टोपसे इसका कोई साम्य नहीं है; फिर भी यह उतना ही उपयोगी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-६-१९२९

२१. क्षमा प्रार्थना

मुझे हमेशा दुःख रहा है कि हिन्दी नवजीवनका सम्पादक होते हुए भी मैंने इसके लिए कुछ लिखा ही नहीं है। लिखनेकी इच्छा तो प्रबल रही है; परन्तु इससे पहले उसे सफल न कर सका। अबसे इरादा है कि हर सप्ताह कुछ-न-कुछ लिखता रहूँगा।

हिन्दी नवजीवन, ६-६-१९२९

२२. कताई बनाम बुनाई

खादी आश्रम रींगससे मूलचन्दजी लिखते हैं:[2]

मैं ऐसा मानता हूँ कि जो कृषक बुनना सीखना चाहते हैं उनको बुनना सिखाना खादी-सेवकका धर्म है। परन्तु जैसे धुनाईका सफलतापूर्वक प्रचार किया जा सकता है, और वह आवश्यक है, वैसा बुनाईके बारेमें नहीं कहा जा सकता। बुनाई कताई-का अविभाज्य अंग है; जैसे, रोटी पकानेके लिए आटा गूँधना। जो आटा नहीं गूँध

१. स्कॉटलैंड वासियोंकी चुन्नटदार घाघरानुमा पोशाक।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्रमें लेखकने आश्रमके कामका विवरण देते हुए पूछा था कि क्या बुनाई सिखाना भी धुनाई सिखानेके समान ही महत्त्वपूर्ण नहीं है?

सकता, और चूल्हेके नजदीक बैठकर रोटी पका सकता है, उसके बारेमें यह नहीं कहा जाता कि वह रोटी पकाना जानता है। इसलिए बुनाईका प्रचार उतना ही आवश्यक है जितना कताईका।

बुनाई अलग प्रक्रिया है; अलग पेशा है। इसका नाश नहीं हुआ है। हिन्दुस्तानके दारिद्र्यके साथ बुनाईका सम्बन्ध नहीं है; जब कि कताईके नाशसे कृषकोंकी हालत चिन्ताजनक और दारिद्र्यपूर्ण हो गई है। स्वावलम्बन पद्धतिके प्रचारार्थ भी बुनाईके प्रचारकी आवश्यकता नहीं है। स्वावलम्बन पद्धतिका यह अर्थ हरगिज नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब काम खुद कर ले। ऐसा प्रयत्न करना भी व्यर्थ और हानिकर है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाजपर अवलम्बित है। स्वावलम्बन पद्धतिका यह अर्थ है कि प्रत्येक देहातमें वहाँके लोग अपना अनाज आप पैदा करें, अपने कपड़े आप बना लें। वहाँ श्रम-विभाजन अवश्य होगा। केवत सूत कातना सबके लिए कर्त्तव्य होगा। भूतकालमें ऐसा था, आज ऐसा होना चाहिए, भविष्यमें ऐसा रहना चाहिए। थोड़ा ही विचार करनेपर हम समझ जायेंगे कि कताईकी क्रिया हाथोंसे की जानी है और वह की जानी चाहिए — वह उसी तरह सम्भव हो सकती है।

हमारे दिलमें यह ख्याल भी नहीं आना चाहिए कि चूँकि जुलाहे सच्चाईसे काम नहीं करते है, इसलिए कृषकोंको बुनाईका काम सीख लेना चाहिए। हमारा काम जुलाहोंको अच्छा बनानेका है। वे भी प्रजाके एक अंग हैं। हाँ, एक काम हमें अवश्य करना चाहिए। कई खादी-सेवकोंको बुनाईका काम अच्छी तरह सीख लेना चाहिए, ताकि उन भाइयोंपर हम असर डाल सकें और हम उन लोगोंको अपने अज्ञानवश होनेवाले अन्यायसे भी बचा लें।

हिन्दी नवजीवन, ६-६-१९२९

२३. कौंसिल-प्रवेश

कौंसिल प्रवेशके बारेमें एक सज्जन लिखते हैं:[1]

इस विषयमें मेरा जो अभिप्राय सन् १९२०-२१ में था वह आज भी है। मैं नहीं मानता कि कौंसिलोंमें जानेसे देशको लाभ हुआ है। परन्तु यदि कौंसिलोंमें जाना ही है तो वहाँ जाकर भी लोग खद्दर इत्यादिका रचनात्मक कार्य करनेकी चेष्टा करें तो अवश्य अच्छा हो। कौंसिलमें न जाना बुद्धिमानीका प्रथम लक्षण है, जानेके बाद वही कार्य करना जो हम बाहर भी करना चाहते हैं दूसरी श्रेणीकी बुद्धिमानी है।

पाठकोंको मेरी सलाह यह है कि जिन्हें कौंसिलोंमें जानेका या किसीको भेजनेका मोह नहीं है, वे उनका नामतक मनसे निकाल दें।

हिन्दी नवजीवन, ६-६-१९२९

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकका प्रश्न यह था कि क्या कलकत्ता कांग्रेसमें गांधीजीने जो-कुछ कहा था उसके आधारपर उन्हें कौंसिल-प्रवेशका समर्थक मानना उचित हो सकता है।

२४. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

८ जून, १९२९

भाई मूलचन्दजी,

आपका दूसरा पत्र मिला। 'हिन्दी नवजीवन' में[1] इसका उत्तर दिया गया है। कृपया देख लीजिए।

आपका,

मोहनदास

जी० एन० ८३१ की फोटो-नकलसे।

२५. बर्माका १९२६ का चन्दा

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके लिए श्री मणिलाल कोठारी १९२६में चन्दा उगाहने बर्मा गये थे। उस समय मिले पैसेकी प्राप्ति-सूचना 'नवजीवन' में छापी जाये इसका सुझाव जब मैं रंगूनमें था तब दिया गया था। मैंने यह सुझाव स्वीकार भी किया था। किन्तु उसके तुरन्त बाद यात्रामें निकल पड़ा, इसलिए आँकड़े प्राप्त न कर सका; इससे देरी हुई। इसके लिए टिप्पणीकी आशा करनेवाले भाइयोंसे माफी माँगता हूँ। अलग-अलग समयोंमें प्राप्त हुए तीन चैकोंसे रु० ३९,७८७-१४-३ मिले थे। उनमें से रु० १९,७४३-४-० काठियावाड़में ही खर्च करनेके लिए थे; इस कारण वे सत्याग्रह आश्रमकी बहियोंमें जमा कर दिये गये और उसका वितरण आश्रमके द्वारा किया गया। बाकीकी रकम अखिल भारतीय चरखा संघके खातेमें जमा की गई और उसके खर्चका हिसाब उसकी बहियोंमें प्राप्त है। एक पुराने कागजसे देखता हूँ कि इस चन्देमें रु० ३,३७६ अभीतक प्राप्त नहीं हुए हैं। जिन्होंने नाम लिखवाये थे उनके नाम मेरे पास हैं। मुझे आशा है कि जिन्होंनें यह रुपया लिखवाया है वे उसे भेज देंगे अथवा कार्यकर्त्ता उसकी उगाही करके भेज देंगे। इसके सिवा किसी दानदाताको अतिरिक्त जानकारीकी जरूरत हो तो वह उद्योग-मन्दिरके मन्त्रीको लिखे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-६-१९२९

१. देखिए "कताई बनाम बुनाई", ६-६-१९२९।

२६. कांग्रेसका प्रस्ताव

गुजरात प्रान्तीय समितिने कांग्रेसके प्रस्तावपर अमल करनेमें जरा भी आलस्य नहीं किया है। उसने अपनी सूचनाओंके साथ इस प्रस्तावकी नकलें जगह-जगह भेज दी हैं और सेवकोंके सुभीतेके लिए यह भी बतलाया है कि प्रान्तके पाँचों जिलोंमें कितने ताल्लुके हैं, हरएक ताल्लुकेमें कितने गाँव हैं, ताल्लुकेकी आबादी कितनी है, और उसे अपना काम किस हदतक करना है। अगर प्रत्येक ताल्लुका अपने धर्मका पालन करे तो यह समझा जायेगा कि कांग्रेस कमेटीने जो प्रस्ताव पास किया है उस पर ठीक-ठीक अमल हो रहा है। प्रान्तीय समितिने जो आँकड़े निकाले हैं, वे सदाके लिए उपयोगी हैं, भविष्यमें भी सेवकोंको उनसे सहायता पहुँचेगी, इस विचारसे उन्हें नीचे दे रहा हूँ:[1]

मुझे आशा तो यह है कि गुजरात अपनी आबादीके ५। फीसदी सदस्य बनाकर ही सन्तुष्ट न हो जायेगा, बल्कि जैसे पहले उसने अपनी विशेष शक्तिके अनुसार विशेष काम करनेकी प्रतिज्ञा की थी, वैसी ही इस बार भी करेगा और उसे करना चाहिए। प्रान्तीय समितिके कार्यकर्त्ता मिलकर अपनी शक्तिका अन्दाज लगायें, प्रत्येक जिला भी इतना तो करे ही। हरएक जिलेके कार्यकर्त्ता भी इस तरह अपनी शक्तिका अन्दाज लगाकर अपने हिस्सेमें आनेवाला चन्दा तो दें ही, साथ ही कुछ और बढ़ने–अधिक देनेकी भी कोशिश करें। इस तरह काम करनेसे थोड़े परिश्रमसे भी अच्छा फल मिल सकेगा और पिछड़े हुए जिले या ताल्लुकोंकी बात रह जायेगी। गुजरातको याद रहना चाहिए कि कांग्रेस कमेटीने ५। फीसदीका निश्चय कमजोरसे-कमजोर प्रान्तको ध्यानमें रखकर किया है; मगर गुजरात तो कार्यक्षेत्रमें अपने आपको कमजोर नहीं मानता। दूसरे प्रान्त भी गुजरातको कमजोर नहीं मानते। अतएव गुजरात ५। फीसदी सदस्य बनाकर ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता। गुजरातने तो एक करोड़के चन्देकी अपीलके जमानेमें होड़ बदी थी और सूरतने अपने हिस्सेके चन्देसे कहीं अधिक चन्दा दिया था। क्या सूरत और खेड़ा जिले पंचमहालकी बराबरी करके ही सन्तुष्ट रह सकते हैं? जहाँ एकता होती है वहाँ सबलोंने सदा निर्बलोंका बोझ उठाया है। उसी न्यायानुसार अगर हम अपनेको भारतका अविभाज्य अंग गिनें तो हमें कमजोर प्रान्तोंका बोझ उठा लेना चाहिए और हममें जो निर्बल हों हमारे बीचके सबल उनका भार उठा लें। जहाँ इस तरह वृत्तिका विकास होता है वहाँ निर्बलको अपनी कमजोरी असह्य नहीं मालूम होती, और सबलको गर्व नहीं होता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-६-१९२९

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

२७. नगरपालिकाएँ क्या करें ?

यह जानने योग्य है कि विविध बहिष्कारोंके सिलसिलेमें गुजरातकी नगरपालिकाएँ और स्थानिक संस्थाएँ क्या करती हैं। मुझे पता नहीं कि गुजरातकी नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायोंमें से कितनोंपर कांग्रेसका प्रभाव है। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समितिके सामयिक प्रकाशनोंसे इस बातका पता चलता रहता है कि जिनमें कांग्रेसके सदस्य चुने गये हैं उनमें बहिष्कारके सम्बन्धमें कितना काम हो सकता है। यह समिति काम करनेवाली नगरपालिकाओंके नाम प्रकाशित करती रहती है। इन सूचियोंमें गुजरातकी संस्थाओंके इने-गिने नाम ही रहते हैं। होना तो यह चाहिए कि इस काममें भी गुजरातका बड़ा हिस्सा हो। गुजरातमें या भारतमें ऐसी नगर-पालिकाएँ या स्थानीय निकाय बहुत थोड़े होंगे, जो बहिष्कारको न मानते हों।

ये संस्थाएँ एक काम बड़े पैमानेपर कर सकती हैं। यह तो निश्चित है कि जब बहिष्कार-आन्दोलन जोरपर होगा तब खादीकी माँग खूब बढ़ेगी। इस माँगको पूरी करनेमें नगरपालिका भली-भाँति हाथ बँटा सकती है। ये सभी संस्थाएँ अपनी पाठशालाओंमें सूत कतवायें और अपने नगरोंमें ही उसे बुनवा लें। यह काम बड़ी आसानी और कम खर्चेमें ही हो सकता है। अगर इस तरह तैयार खादी सम्बन्धित गाँवों या शहरोंमें न खप सके तो दूसरे स्थानोंमें तो आज वह सहज ही बेची जा सकती है। अगर यह काम सार्वत्रिक रूप धारण कर ले तो कपड़ेकी कमी कभी पड़े ही नहीं। जैसे, गेहूँ मिलते हैं, तबतक हम रोटीकी कमीकी कल्पना तक भी नहीं कर सकते, वैसे ही जबतक देशमें रुई मिलती है, तब तक लोगोंको कपड़ेकी कमीका अनुभव ही न होना चाहिए।

ऐसे संगठित कामके लिए खादीमय वातावरणकी जरूरत है। अगर ऐसा वातावरण हो तो घर-घर याज्ञिक पाये जायें और घर-घर सूत कते। इस तरहके वातावरणके निर्माणका आरम्भ नगरपालिकाकी शालाओं द्वारा शीघ्र ही किया जा सकता है।

जो बात नगरपालिकाओंके लिए ठीक है, वही राष्ट्रीय शालाओंपर लागू होती है। विद्यार्थियोंका खादी-फेरीके लिए बाहर जाना तो अच्छा है ही, लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरत तो खादीके उत्पादनकी है। उत्पादनके लिए अधिक परिश्रम, कला और धीरजकी अपेक्षा रहती है। अतएव जो लोग खादी और बहिष्कारके तत्वको समझते हैं उन्हें इस समय उत्पादनपर अधिक जोर देना चाहिए। गुजरात, गरीब बहनों द्वारा कता सूत भले ही कम पैदा करे, मगर उसमें यज्ञार्थ सूत कातनेकी तो अटूट शक्ति होनी चाहिए। आजकल काठियावाड़में भाई फूलचन्दकी मण्डली खादी-फेरी करती रहती है। यह स्तुत्य कार्य है। उन्हें सफलता भी मिलती है। मगर यही मण्डली सूत पैदा क्यों न करे, और क्यों न दूसरोंको सूत कातना सिखाये ?

[गुजरातीसे]
नवजीवन ९-६-१९२९

२८. गुप्तदान

'कुदरती लागणी'[1] उपनामसे एक दानीने अपने गुमनाम पत्रके साथ १००) भेजे हैं। इनमें से ५०) लालाजी-स्मारकके लिए, १०) मगनलाल-स्मारकके लिए, २५) दक्षिण-संकट-निवारणके लिए और १५) गो-रक्षाके लिए हैं।

'कुदरती लागणी'को मैं इस गुप्तदानके लिए धन्यवाद देता हूँ। यों गुमनाम खत लिखनेकी आदत बहुत बुरी है, मैं बहुत बार यह लिख चुका हूँ। यह भीरुताकी निशानी है, और इसे कभी उत्तेजन न दिया जाना चाहिए। मगर 'कुदरती लागणी' नामवाले सज्जनका खत गुमनाम होकर भी इनमें से किसी एक भी दोषका पात्र नहीं है। संसारमें होकर भी ऐसी बहुत थोड़ी वस्तुएँ हैं, जो सब जगह और सब समय अच्छी या खराब ही होती हों; 'कुदरती लागणी'का खत इसका एक नमूना है। यह वांछनीय है कि कई लोग 'कुदरती लागणी'का अनुकरण करें। दाताको अखबारमें अपना नाम छपा देखनेकी बड़ी हविस होती है। और कमसे-कम इतना लोभ तो हरएकमें होता ही है कि जिसे दान दिया जाता है, वह दाताका नाम जान ले। इनमें अगर कोई ऐसा निकल आये जो दान लेनेवालेको अपना नाम बताना न चाहे तो उसका हौसला बढ़ाना मुनासिब है। इससे दान लेनेवालेकी भी अच्छी परीक्षा हो जाती है। क्योंकि दानी छिपे तौरपर यह भली-भाँति देख सकता है कि उसके दिये हुए दानका कैसा उपयोग किया जा रहा है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ९-६-१९२९

२९. बलसाड़के भंगियोंकी दुर्दशा[2]

१. ऊपरका लेख[3] एक भी अक्षर बदले बिना ठक्करबापा द्वारा दिये शीर्षकसे ही छापा गया है। उन्होंने एक दिन बलसाड़में रुककर कोई रचनात्मक सुझाव देकर ऐसी निर्दयताका हल निकाला होता तो कितना अच्छा होता; यदि हल न भी निकल पाता तो उससे नगरपालिकाके सदस्यों और दूसरे प्रतिष्ठित नागरिकोंकी निर्मम भावनाका अनुमान तो हो ही जाता। किन्तु ठक्करबापाको ऐसा सुझाव भी किसलिए? वे अपना सारा समय इसी तरहके कामोंमें ही तो बिता रहे हैं। इस लेखको पढ़कर

१. स्वभाविक स्नेह।

२. ठक्कर बापाने अस्पृश्यता विरोधी कार्यकर्त्ताओंके साथ बलसाड़का दौरा किया था। उसका विवरण इस शीर्षकसे छापा गया था।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

बलसाड़के विभीषण[1] क्या करेंगे, यह देखना बाकी है। नगरपालिका चाहे तो एक दिनमें ही इस अमानुषिक स्थितिका हल निकाल सकती है। मुख्य अधिकारी, इन भंगियों पर कितना कर्ज है यह मालूम करके पठानोंसे मिलकर पैसे चुकानेका फैसला कर सकता है; और बड़ी आसानीसे सहकारी मण्डल बना सकता है। उन्हें क्यों कर्ज लेना पड़ता है, यह मालूम किया जा सकता है; और फिर जो गलत तरीकेका कर्ज लेता है, उसे ऐसा न करनेके लिए समझा सकता है। ऐसे काममें अधिकारीको बहुत कम समय लगेगा और काम भी फौरन ठीक ढंगसे निबट जायेगा।

२. यही अधिकारी उनके खर्चकी जाँच करके वेतन कम ज्यादा करनेका विचार भी कर सकता है।

३. यदि कोई अपने कुएँमें से उन्हें पानी भरने देनेके लिए तैयार न हो तो नगरपालिका उन्हें कुआँ बनवा दे। विभीषणधर्मी हिन्दुओंको चाहिए कि वे दूसरोंके सन्मुख उदाहरण पेश करनेके लिए समय-समयपर उसमें से अपने लिए पानी भरें और इसी निमित्त कुएँको साफ भी रखें।

४. ४२ नौकरोंके रहनेके लिए मनुष्योंके योग्य जितनी जगह जरूरी हो उतनी जगह बिना विलम्बके बनवा दी जाये और उनके रहनेके स्थानके पास जो पाखाने बनाये जायें उनको इस्तेमाल करनेकी छूट भंगी स्त्रियोंको भी है, यह बात भंगी स्त्रियों और दूसरी स्त्रियोंको भी समझा दी जाये।

५. यदि चालू शालामें भंगी लड़कोंको लानेसे बलसाड़के लोग क्रुद्ध हों तो नगरपालिका भंगियोंके लिए एक अच्छी शाला भी बनवाये और सवर्ण विभीषण उसमें अपने बच्चोंको भेजें। ये सभी काम ऐसे हैं जिन्हें नगरपालिका तुरन्त कर सकती है। किन्तु यदि नगरपालिका अपने कर्त्तव्यका पालन न करे तो बलसाड़के कांग्रेसी उसे करें; उसका युवक संघ उसे करे। ४२ व्यक्तियोंकी दुरवस्था सुधारनेमें न कोई बड़ा आर्थिक प्रश्न उठता है न बहुतसे कार्यकर्त्ताओंके होने न होनेका प्रश्न उठता है। प्रश्न तो मात्र दया-भावना का ही है। यदि बलसाड़में कहीं दया देवीका वास न हो तो ऐसी निर्दयताकी कहानी 'नवजीवन' की फाइलमें ठक्करबापाके दुखकी निशानीके रूपमें बनी रहेगी। बलसाड़में कोई सतर्क व्यक्ति हो तो इस सम्बन्धमें कुछ किया गया है या नहीं यह 'नवजीवन' को लिखकर बता सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-६-१९२९

१. आशय उन सवर्ण हिन्दुओंसे है जो अन्य सवर्ण भाइयोंके इस अत्याचारको उसी प्रकार बुरा मानते हैं जिस प्रकार विभीषण अपने भाई रावणके कर्मोंको बुरा मानते थे।

३०. पत्र : माधवजी ठक्करको

१० जून, १९२९

भाईश्री माधवजी,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। जुलाई मासमें तुम अवश्य आ जाओ। जुलाईके पहले सप्ताहमें तो मैं यहाँ लौटकर आ ही जाऊँगा[1]।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० ६७८७)की फोटो-नकलसे।

३१. पत्र : फूलचन्द कस्तूरचंद शाहको

[११ जून, १९२९][2]

भाईश्री फूलचन्द,

जूनागढ़में अन्त्यजोंके लिए कुआँ खुदवानेका काम कितने वर्षोंसे अधूरा पड़ा है। देवचन्दभाईको मालूम है। वे कुछ प्रबन्ध भी कर रहे थे। मालूम करना। तुम्हारे दलको कुआँ पूरा करना ही चाहिए। देवचन्दभाईको खर्च भेज देनेके लिए तो लिख ही चुका हूँ।

मणिलाल कोठारीको तुमने युवक परिषद्में नहीं लिया? उसे तो लेना चाहिए। रंगूनसे ७५० रुपये आये हैं। इनके विषयमें भी उसने कहा था। इस रुपयेका क्या उपयोग करें इसका निर्णय भाई नानालालसे पूछकर करना ठीक होगा। उसे तुम दोनोंके हस्ताक्षर सहित पत्र भेजा जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

भाई फूलचन्द कस्तूरचन्द
केलवणी मंडल, वढवान सिटी,
काठियावाड़

गुजराती (जी० एन० ९१८९)की फोटो-नकलसे।

१. अल्मोड़ासे; देखिए पृष्ठ १०–१३।
२. डाककी मुहरसे।

३२. पत्र : छगनलाल जोशीको

मंगलवार, [११][1] जून, १९२९

चि० छगनलाल,

वल्लभभाईका कहना है कि बारडोलीसे मैं जो नौ सौ रुपयेका चैक लाया था उसकी पहुँच 'यंग इंडिया' में नहीं दी गई। वल्लभभाईके पूछनेपर और दुबारा जाँच करनेपर तुमने लिखा कि तुम्हें उस रुपयेके बारेमें कुछ मालूम नहीं है। पूरी बात क्या है इसके बारेमें लिखना। अब तो नींद आ रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४२१)की फोटो-नकलसे।

३३. 'दीवाना'[2]

लोग मुझे सनकी, झक्की और दीवाना कहते हैं। सचमुच ही मैं इस कीर्तिके योग्य हूँ। क्योंकि जहाँ-कहीं जाता हूँ, अपने आसपास सनकियों, झक्कियों और पागलों को इकट्ठा कर लेता हूँ। आन्ध्रमें भी खासी तादादमें ऐसे लोग हैं। वे अक्सर साबर-मतीतक जा पहुँचते हैं। इसलिए अगर आन्ध्रके अपने दौरेमें मुझे ऐसे लोगोंके नमूने देखनेको मिलें तो इसमें आश्चर्य ही क्या? लेकिन आज मैं पाठकोंको इनमें से अपने-जैसे केवल एक ही झक्कीका परिचय दे रहा हूँ। इनमें अपने कार्यके प्रति जीवन्त श्रद्धा है; इस श्रद्धासे मैं इनपर मुग्ध हो गया और मैं फिरसे खुराक सम्बन्धी उस प्रयोगमें गहरी दिलचस्पी लेने लगा, जिसे मैंने लन्दनमें एक विद्यार्थीकी हैसियतसे, करीब ४० साल पहले शुरू करके छोड़ दिया था।[3] इन सज्जनका नाम सुन्दरम् गोपालराव है। वे राजमहेन्द्रीके रहनेवाले हैं। मैं विजगापट्टममें ही एक सर्वेक्षण अधिकारी (सर्वे सुपरिंटेंडेंट)से यह सुन चुका था कि गोपालराव बिलकुल कच्चे अन्नपर ही रहते हैं। राजमहेन्द्रीमें उनका एक प्राकृतिक चिकित्सालय है; अपना सारा समय वह उसीको देते हैं। गोपालरावने मुझसे कहा: "कटि-स्नान और इसी तरहके दूसरे उपाय एक हदतक ही उपयोगी होते हैं। लेकिन ये भी हैं तो कृत्रिम ही। सर्वथा नीरोग बननेके लिए अग्निपक्व अन्नका त्याग ही उपाय है। हमें प्रत्येक पदार्थको उसके मौलिक रूपमें ही ग्रहण करना चाहिए, जैसा कि पशु आदि प्राणी करते हैं।"

१. मूल पत्रमें तारीख १२ जून है लेकिन मंगलवार ११ जूनको था।

२. देखिए "बनपक्व बनाम अग्निपक्व", १६-६-१९२९ भी।

३. देखिए खण्ड ३९, **आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १४ और १७।

मैंने पूछा: "क्या आप मुझे एकदम कच्ची खुराक खानेकी सलाह देंगे?"

गोपालरावने कहा: "अवश्य ही, इसमें हानि ही क्या है? मैंने ऐसे कई वृद्ध स्त्री और पुरुष रोगियोंको नीरोग किया है, जो बरसोंसे अजीर्णके शिकार थे। और सो भी एक परिमाणमें सत्वमय कच्चा अन्न खिलाकर।"

मैंने धीमेसे प्रश्नके स्वरमें कहा: "लेकिन इसके लिए संक्रमण अवस्थाकी खास आवश्यकता होगी?"

गोपालरावने उत्तर दिया: "ऐसी कोई खास अवस्था जरूरी नहीं है। कच्चा अन्न, जिसमें कच्चा मैदा (स्टार्च) और प्रोटीन भी शामिल है, अग्निपक्व अन्नसे कहीं अधिक पाचक होता है। आप एक बार परीक्षा करके देखिए तो, आपको बड़ा लाभ पहुँचेगा।"

मैंने कहा: "आप जिम्मेदारी लेते हैं? अगर आन्ध्रमें ही अग्नि-संस्कारका मौका आया तो लोग मेरे साथ आपको भी चितापर चढ़ा देंगे।"

"हाँ, मैं यह जोखिम उठानेको तैयार हूँ।" गोपालरावने कहा।

"तो फिर अपने भिगोये हुए गेहूँ भेज दो। मैं आज से ही श्रीगणेश कर देता हूँ।" मैंने कहा।

बेचारे गोपालरावने भिगोये गेहूँ भेज दिये। मगर कस्तूरबाईको क्या पता था कि वे मेरे लिए भेजे गये हैं। उन्होंने गेहूँ स्वयंसेवकोंमें बाँट दिये और वे चट कर गये। अतएव मुझे दूसरे दिन, ९ मईसे अपने प्रयोगका आरम्भ करना पड़ा। और इस तरह आज लगभग एक महीने प्रयोग करनेके बाद मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ।

इस प्रयोगके कारण मुझे कोई हानि नहीं पहुँची है। यद्यपि मेरा वजन पाँच पौंडसे भी ज्यादा घट गया है, तथापि मेरी शक्ति अक्षुण्ण ही है। और पिछले आठ दिनोंमें तो वजन बराबर बढ़ता रहा है।

मेरे-जैसे दीवानोंके लिए यह जानना जरूरी है कि इस समय मैं क्या ले रहा हूँ। मैं साधारणतया

८ तोला अंकुरित गेहूँ, ८ तोला मीठे बादामका चूर्ण, ८ तोला हरी भाजीकी कटी या पिसी पत्तियाँ, ६ खट्टे नींबू, और २ औंस शहद लेता हूँ। सप्ताहमें दो या तीन दिन गेहूँके बदले उतने ही अंकुरित चने खाता हूँ। और जिस दिन चने खाता हूँ, उस दिन बादामके चूर्णकी जगह खोपरेका दूध लेता हूँ। दिनमें दो बार भोजन करता हूँ; सवेरे ११ बजे और शामको ६। बजे। पानी ही ऐसी एक चीज है जिसे उबालकर पीता हूँ। नींबू और शहद सुबह और फिर दिनमें एक दफा और उबाले हुए पानीमें मिलाकर पीता हूँ।

गेहूँ और चने, दोनोंमें ३६ घंटोंमें अंकुर फूट आते हैं। दाने चौबीस घंटों तक पानीमें भीगते रहते हैं। फिर पानी निकाल डाला जाता है। और दाने खादीके गीले कपड़ेमें रातभरके लिए लपेटकर रख दिये जाते हैं। सवेरे वे आपको खाने योग्य अंकुरित रूपमें मिलते हैं। जिनके दाँत हैं, उन्हें इन दोनोंको पीसकर खानेकी कोई जरूरत नहीं रहती। नारियलके दूधके लिए उसकी गिरीका पाव

हिस्सा खूब बारीक पीस लेते हैं, और बादमें मजबूत खादीके टुकड़ेमें रखकर निचोड़ने से दूध निकल आता है।

यहाँ और अधिक तफसीलमें जाना जरूरी नही है। ऊपर जो कुछ लिखा है उसपर से खुराकके प्रयोग करनेवाले सज्जन अपने अनुभव सूचित करके मेरी मदद कर सकते हैं। मैं यों तो वर्षोंतक फलों और मूंगफली वगैरापर रहा हूँ, लेकिन कच्चे अनाज और दाल खाकर रहनेका मौका एक पखवाड़ेसे ज्यादा पहले कभी नहीं आया था। अतएव जिन्हें अग्निसे सर्वथा अछूते आहारका कुछ भी अनुभव है वे मेरे पास तत्सम्बन्धी साहित्य या अपने अनुभव लिख भेजनेकी कृपा करें।

चूँकि यह प्रयोग मेरी दृष्टिमें बहुत महत्वपूर्ण है, यहाँ उसका जिक्र करना मैंने उचित समझा है। अगर यह प्रयोग सफल हो जाये तो इससे विवेकशील स्त्री-पुरुषोंको अपने आहार और रहन-सहनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेका मौका मिलेगा। स्त्रियाँ रसोई-घरकी भयंकर गुलामीसे मुक्त हो जायेंगी और फिर यह गुलामी ऐसी है जो कुटुम्बको सुखी बनानेकी अपेक्षा उसे रोग-ग्रस्त बनाती है। बिन उबाले आहार का नैतिक मूल्य तो अतुलनीय है। आर्थिक दृष्टिसे भी इस आहारके जितने लाभ हैं, शायद ही किसी उबाले हुए आहारमें मिल सकें। अतएव मैं उन तमाम चिकित्सा-शास्त्र विशारदों और गृहस्थोंसे सहानुभूतिपूर्ण मददकी आशा रखता हूँ, जो खुराकके सुधार सम्बन्धी मामलोंमें दिलचस्पी लेते हैं।

कोई भी सज्जन इस प्रयोगका अन्धानुकरण न करें। मुझमें गोपालरावके बराबर श्रद्धा नहीं है। मैं अपने प्रयोगकी सफलताका अभी दावा भी नहीं कर रहा हूँ। मैं बड़ी सावधानीके साथ कदम बढ़ा रहा हूँ। प्रयोगकी बातोंका उल्लेख तो इस विचारसे किया है कि दूसरे खुराक-सुधारक सहयोगियोंके अनुभवसे अपने अनुभवोंका मिलान कर सकूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-६-१९२९

३४. डाक्टर संडरलैंडकी पुस्तक

यदि 'मोडर्न रिव्यू' के सम्पादकके घरकी तलाशी ली जा सकती है,[१] तो उन्हें गिरफ्तार भी क्यों नहीं किया जा सकता, बंगाल सरकारने हमें इस शंकामें अधिक समयतक नही रखा। रामानन्द चटर्जीको गिरफ्तार कर लिया गया है और अब उनपर राजद्रोहका मुकदमा चलाया जायेगा। स्पष्ट ही उन्होंने जो राजद्रोह किया है वह है उनका रेवरेंड संडरलैंडकी पुस्तक प्रकाशित करना। इस पुस्तकके सम्बन्धमें कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कहा है :–

> रेवरेंड डॉ० संडरलैंडसे मेरा व्यक्तिगत घनिष्ठ परिचय हुआ। उनकी भारत-यात्रा और मेरी अमेरिका यात्राओंके दौरान मुलाकातोंमें आरम्भसे ही मेरे हृदयमें उनके प्रति सम्मानकी भावना रही है। उन्होंने अपनी पुस्तकमें भारतीय जनताकी समस्याको उठाकर अपूर्व साहस, गाम्भीर्य और सदाशयताका परिचय दिया है; इसकी मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ। . . . भौगोलिक सीमाओंसे निर्बाध और जातीयताके बन्धनोंसे मुक्त, उनके मानव-प्रेमसे हम सभी ऐसे लोगोंको शिक्षा लेनी चाहिए जो उनके आदर्शोंसे प्रेरणा लेना और उनके कामको आगे बढ़ाना चाहते हैं।

पुस्तककी भूमिकामें लेखकने कहा है :[२]

> मेरी बड़ी इच्छा है कि पुस्तक लिखनेके मेरे उद्देश्यको गलत न समझा जाये। कोई यह न कह पाये और न क्षण-भरके लिए इसपर विश्वास ही कर पाये कि यह पुस्तक लिखनेमें मेरी भावना ग्रेट ब्रिटेनसे शत्रुताकी रही है। ऐसी कोई बात नहीं है। इसका अर्थ उन दलीलोंसे जरा भी आगे नहीं जाता, जो अमेरिकी गुलामीके पुराने जमानेमें गुलामोंकी मुक्तिके लिए दी जानेवाली दलीलों का होता था। वे दलीलें भी गुलामी प्रथाको कायम रखनेवाले अमेरिकी राष्ट्रके प्रति किसी शत्रुताकी भावनासे पेश नहीं की जाती थीं। . . . मैं किसी भी अर्थमें इंग्लैंडका शत्रु अथवा अहित चाहनेवाला नहीं हूँ। मेरा विश्वास है कि, भारतके पक्षमें मैं जो बातें कह रहा हूँ, वे इंग्लैंड और भारत दोनोंके भलेके लिए हैं। मैं नहीं चाहता कि भारतमें अथवा दूसरी किसी जगह इंग्लैंडके प्रति किसी भी प्रकारकी दुर्भावना उत्पन्न हो। लेकिन मैं यह भी चाहता हूँ कि इंग्लैंड भारतके प्रति और भारतके माध्यमसे संसारके प्रति कोई अन्याय न करें। . . .
>
> सभी जानते हैं कि अमेरिकाकी ही भाँति इंग्लैंड भी दो हैं। एक इंग्लैंड वह है जो अपने देशमें ही नहीं, समस्त संसारमें न्याय एवं स्वतन्त्रता देखना

१. देखिए "नादिरशाही", ६-६-१९२९।

२. यहाँ कुछ ही अंश दिये जा रहे हैं।

चाहता है। मैं इसे ही सच्चा इंग्लैंड मानना चाहता हूँ। यह इंग्लैंड है 'मेग्ना-कार्टा' (स्वतन्त्रताका घोषणापत्र) वाला इंग्लैंड, मिल्टन और पिग व हेम्पडनका इंग्लैंड; पिट, फॉक्स और बर्क जैसी उन विभूतियोंका इंग्लैंड, जिन्होंने १७७६ में अमेरिकी उपनिवेशोंके लिए न्याय माँगा था; उन बर्क और शेरिडनका इंग्लैंड जिन्होंने वारेन हेस्टिंग्सके मुकदमेके समय भारतके साथ न्याय करनेकी माँग रखी थी। यह वही इंग्लैंड है जिसने अपने देशसे १८०७ में और सभी ब्रिटिश उपनिवेशोंसे १८३३ में गुलामोंका व्यापार खत्म कर दिया था। यह वही इंग्लैंड है जो समय-समयपर सुधार-विधेयक स्वीकृत करता रहा है; जहाँ पिछले जमानेमें कॉबडेन और ब्राइट, लॉर्ड रिपन, मेरी कारपेन्टर, प्रोफेसर फौसेट, चार्ल्स ब्रेडला, ए० ओ० ह्यूम, सर विलियम वेडरबर्न, सर हेनरी कॉटन, और अन्य अनेक भारत मित्रोंने जन्म लिया था और जहाँ संसदमें और संसदके बाहर भी (विशेषकर लेबर पार्टीमें) भारतके अनेक मित्र आज भी मौजूद हैं।[1] . . .

मैं इसी इंग्लैंडको सम्मान देता हूँ, इससे प्रेम करता हूँ। दुर्भाग्यकी बात है कि एक दूसरा इंग्लैंड भी है। यह वह इंग्लैंड है जो 'मेगना कार्टा'के विरुद्ध लड़ा था; जिसने सन् १७७६ में अमेरिकी उपनिवेशोंके साथ न्याय करने और उनको स्वाधीनता देनेका विरोध किया था; जो लगातार सैन्यवाद और साम्राज्य-वादका समर्थक रहा है; जिसने चीनपर अफीम थोपनेके लिए दो लड़ाइयाँ लड़ी थीं; जिसने लम्बे अर्सेतक आयरलैंडको परतन्त्रतामें रखा; जिसने गुलामोंके व्यापार एवं गुलामी प्रथा समाप्त करनेके प्रयत्नका विरोध किया; जिसने इंग्लैंडमें लगभग सभी राजनीतिक और सामाजिक सुधारोंका विरोध किया है और जो आज भी भारतको समृद्धिके सुनहरे सपने तो दिखाता है पर आजादीके लिए आन्दोलन चलानेवाले भारतीय नेताओंको बिना मुकदमा चलाये जेलोंमें ठूँस देता है और ऐसा कोई आश्वासन नहीं देता कि वह सम्राट जार्जके "भारतीय साम्राज्य" परसे अपनी फौलादी जकड़ कभी भी ढीली करनेका सचमुच कोई इरादा भी रखता है।

इस इंग्लैंडको न तो मैं प्रेम करता हूँ और न ही उसका सम्मान। मेरा अपना विश्वास है कि यह एक खतरनाक इंग्लैंड है। और मेरी पुस्तकके इन पृष्ठोंमें जितना भी आक्रोश या आलोचना आपको मिलेगी वह सब पूरी तरहसे इसी दोषसे पूर्ण, इसी दूसरे इंग्लैंडके विरुद्ध है। . . .

मेरा विश्वास है कि यदि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'के सिद्धान्तको माननेवाला यही साम्राज्यवादी इंग्लैंड सत्तारूढ़ बना रहा, तो ब्रिटेनके हाथसे

१. यहाँसे बड़े हाशियेका बचा हुआ हिस्सा रवीन्द्रनाथका ही है।

भारतका निकल जाना उतना ही निश्चित है जितना सूर्यका उदय होना। इस दूसरे इंग्लैंडकी बागडोर इस युगके लॉर्ड नॉर्थके भाईबन्दोंके हाथमें है, जो भारतको क्रान्तिकी ओर उसी प्रकार धकेल रहे हैं जिस प्रकार सन् १७७६ में लॉर्ड नार्थ और जार्ज तृतीयने अमेरिकी उपनिवेशोंको क्रान्ति करनेपर आमादा कर दिया था। यदि भारतमें क्रान्ति हुई तो उस क्रान्तिके साथ समस्त एशियाकी सहानुभूति होगी और संसार-भरके विवेकशील स्वतन्त्रता-प्रेमियोंकी सहानुभति भी उसको प्राप्त होगी। और उस क्रान्तिके दमनकी भी कोई सम्भावना नहीं रहेगी। तब भारत ब्रिटेनके प्रभावसे सर्वथा मुक्त, एक स्वतन्त्र, आत्म-निर्भर और महान राष्ट्रके रूपमें उदय होगा।

भारतके बारेमें लिख सकनेकी मेरी पात्रताके बारेमें भी यहाँ कुछ कह देना चाहिए। . . . पिछले चालीस वर्षोंसे मैं भारतके महान धर्मों, उसके विस्तृत साहित्य, उसके दार्शनिक विचारों, उसकी असाधारण कला, उसके लम्बे इतिहास और सबसे अधिक तो वर्तमान कालकी उसकी तात्कालिक तथा महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओंका लगातार अध्ययन करता रहा हूँ। . . .

डाक्टर संडरलैंड नब्बे वर्ष पार कर चुके हैं। वे कोई दुःसाहसी युवक नहीं हैं। अगर वे राज्यद्रोही हैं, तो किसीका उनके साथ गिना जाना एक गौरव की बात है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकमें बड़ी सख्त-सख्त बातें बड़े सख्त शब्दोंमें कही गई हैं। पर उसमें दुर्भावना कहीं नहीं है। पुस्तक सुप्रसिद्ध अंग्रेज लेखकोंके उद्धरणोंसे भरी पड़ी है। एक ही वर्षमें पुस्तकके दो संस्करण निकल चुके हैं। डाक्टर संडरलैंडकी पुस्तक प्रकाशित करनेके लिए और इस प्रकार ऐसे मुकद्दमेके अभियुक्त बननेका सौभाग्य अकेले ही पा जानेके लिए मैं श्री रामानन्द चटर्जीको बधाई देता हूँ। उनकी यह गिरफ्तारी ब्रिटिश शासनपर डाक्टर संडरलैंड द्वारा लगाये आरोपोंका एक सशक्त प्रमाण है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-६-१९२९

३५. खादी गाइड

अखिल भारतीय चरखा संघकी ओरसे 'खादी गाइड' और सन् १९२७-२८का वार्षिक विवरण अभी हाल ही प्रकाशित हुआ है। ये दोनों पुस्तकें अखिल भारतीय चरखा-संघके कार्यालयों या उसके अनेक भण्डारोंसे क्रमशः १=) और ।)में मिल सकती हैं। गाइडसे देश-भरके प्रान्तोंके खादी-आन्दोलनका परिचय मिल जाता है; उसमें चित्र भी अच्छी संख्यामें दिये गये हैं। गाइडमें कुछ उपयोगी नक्शे भी हैं। प्रत्येक देशभक्तका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह इस संस्थाके कार्योंका अध्ययन करे, जिसके कारण प्रायः १,००० मध्यम श्रेणीके लोगोंको जीविका प्राप्त होती है, और जो इनके द्वारा देशके २,०००से भी अधिक गाँवोंमें बसी हुई करीब १ लाख बहनों, ५,००० जुलाहों, ७०० पिंजारोंमें प्रति वर्ष २४ लाख रुपये बाँटती है। विवरणमें जाँचा हुआ हिसाब दिया गया है; कार्यकुशल, सावधान कार्यकर्त्ता उसपर अपनी टीका भेज सकते हैं। संघको सहानुभूति और जानकारीपूर्ण उपयोगी टीकाकी बड़ी जरूरत है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-६-१९२९

३६. बारडोली जाँच-समितिका प्रतिवेदन

सर्वश्री ब्रूमफील्ड और मैक्सवेलके प्रतिवेदनसे अनेक बातोंपर प्रकाश पड़ता है। इस विवरणसे यह बात प्रमाणित होती है कि उन्होंने निर्धारित शर्तोंका सीमाओंमें रहते हुए अत्यधिक कर्तव्यनिष्ठा और अध्यवसायके साथ अपना काम पूरा किया है। निर्धारित शर्तोंमें अमलसे सम्बन्धित वाक्य शब्दशः (व्याकरणकी एक स्पष्ट भूल समेत) वही थे, जो जनताके प्रतिनिधियोंने लिख छोड़े थे। इसलिए निश्चय ही सरदार वल्लभभाई पटेल और सम्बन्धित इलाकेकी जनता इसके निष्कर्षोंको स्वीकार कर लेंगी; हालाँकि लगानकी राशिके प्रश्नपर प्रतिवेदनमें जो निर्णय दिया गया है वह त्रुटिपूर्ण है और इसे मेरी समझमें तो महादेव देसाईने पूरी तरहसे सिद्ध कर दिया है।[1] अब यह काम उस जनताका ही है कि वह प्रतिवेदनके निर्णयकी त्रुटियोंका खुलासा करे और सरकारको कमसे-कम उनकी जानकारी तो करा दे और उनको ठीक करनेका काम उसपर ही छोड़ दे। निर्धारित लगान यद्यपि भारी था, परन्तु इस वीरतापूर्ण जन-संघर्षमें शुरूसे आखिरतक रुपये, आने, पाईके प्रश्नको तो अहमियत दी ही नहीं गई थी। प्रश्न था, सिद्धान्तका; न्यायका। जनताको नाराजी तो इस बातपर हुई थी कि उसकी ओरसे रखी गई दलीलोंके प्रति एक बहुत ही अफसराना और

१. देखिए **यंग इंडिया**, २३-५-१९२९ में शीर्षक "बारडोली रिपोर्ट: देन अनेलेसिस"।

अपमानजनक रुख अपनाया गया था। प्रतिवेदनकारोंने उसका औचित्य पूरी तरहसे स्वीकार किया है।

अधिकारियोंसे आशा की गई थी कि वे

"बारडोली ताल्लुका व वालोड महाल और चौरासी ताल्लुकेकी जनता द्वारा की गई शिकायतोंकी जाँच करें और अपनी रिपोर्ट दें—

(क) कि हाल ही में की गई लगान-बृद्धि भू-राजस्व संहिताकी शर्तों या नियमों को देखते हुए अनावश्यक हैं;

(ख) कि जनताको उपलब्ध रिपोर्टोंमें दिये गये आँकड़े उतने पर्याप्त नहीं हैं जिनके आधारपर लगान-वृद्धि उचित ठहराई जा सके और कुछ आँकड़े तो गलत भी हैं;

और उनको यह भी

पता लगाना था कि अगर जनताकी शिकायत न्यायपूर्ण है तो लगानकी पुरानी दरोंमें कितनी कमी या वृद्धि आदि करनी हो या की जानी चाहिए।

आयुक्तोंने इन सभी प्रश्नोंपर जनताका पक्ष सबल पाया। पहली शिकायतके सम्बन्धमें आयुक्तोंका मत था कि अधिकारियोंने खण्ड १०७ के विरुद्ध कार्य किया है। दूसरी शिकायतकी जाँच ब्यौरेवार, सर्वांगीण, कुशल और शिक्षाप्रद है। प्रतिवेदनका यही सर्वश्रेष्ठ भाग है; जो कुल प्रतिवेदन ७७ पृष्ठोंका है और यह भाग ४० पृष्ठोंका। इस जाँचसे यह पूरी तौरपर सिद्ध हो जाता है कि जनता द्वारा सर्वश्री जयकर और ऐंडर्सनके विरुद्ध लगाये सभी आरोप सही हैं। इसका इससे बढ़कर और क्या समर्थन हो सकता :—

> **कहना ही पड़ेगा कि हमें विचारार्थ सौंपे गये विषयके भाग (ख) में उल्लिखित शिकायत सार-रूपमें सही है। कुल लगान और भू-विक्रयके आँकड़ोंको अलग रखकर देखें, तो रिपोर्टोंमें जो जानकारी या आँकड़े उपलब्ध हैं, स्पष्ट ही उनके आधारपर न तो लगानकी अधिकतम दरोंमें मंजूर की गई आम किस्तकी वृद्धिका और न ही कुछ खास-खास गाँवोंके लगानमें की गई बहुत अधिक वृद्धिका पर्याप्त रूपसे कोई औचित्य सिद्ध होता है। लगान और भू-विक्रय सम्बन्धी आँकड़े इकट्ठे करनेमें लापरवाही बरती गई है और यह साफ दिखाई देता है कि अधिकांश मामलोंमें ये आँकड़े बिल्कुल गलत हैं; और आम तौरपर कहा जा सकता है कि ये विश्वसनीय नहीं हैं। इतना ही नहीं, हमारी रायमें तो आँकड़ोंको इस्तेमाल करनेकी परम्परागत विधि भी सिद्धान्ततः निर्दोष नहीं है और अन्य जिलोंमें इसके उपयोगका व्यवहारमें जो भी परिणाम निकले, पर गुजरातके इस भागमें तो इससे सन्तोषजनक परिणाम हाथ लग ही नहीं सकते; क्योंकि इस इलाकेमें पट्टों और भू-विक्रयके सौदोंपर तरह-तरहकी बहुत सारी चीजोंके परस्पर विरोधी प्रभाव पड़ते रहते हैं। इस निष्कर्षको ध्यानमें रखते हुए, हमारा निवेदन है कि वर्तमान बन्दोबस्तको दोनोंमें से किसी भी ताल्लुकेमें बरकरार नहीं रखा जा सकता।**

सरकार द्वारा लगानकी राशिमें की गई वृद्धि, सम्बन्धित संहिताके खण्ड १०७के विरुद्ध थी और सरकारने जिन आँकड़ोंको आधार बनाया था वे अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण थे; इस प्रकार इन निष्कर्षोंपर पहुँचनेके बाद आयुक्तोंको यह भी बताना पड़ा कि लगानकी पुरानी दरोंमें यथास्थिति कितनी वृद्धि या कटौती की जानी चाहिए। मेरी रायमें तो आयुक्तोंके सामने दरपेश मामलेमें यही एक फैसला दिया जा सकता था कि लगानकी पुरानी दरें काफी घटा दी जायें, परन्तु स्पष्ट है कि इस तरहका कोई प्रस्ताव रखना उनके क्षेत्राधिकारसे बाहर था। लगानकी दरोंपर पुनर्विचार करनेका परम्परागत अर्थ अब यही हो गया है कि दरोंमें वृद्धि की जाये, वह चाहे कितनी ही थोड़ी क्यों न हो। अस्तु, २२ प्रतिशत वृद्धिका सरकारी सुझाव तो उन्होंने अत्यधिक कहकर ठुकरा दिया है, पर उन्होंने स्वयं ५.७ प्रतिशतकी वृद्धिका सुझाव दिया है। इसका अर्थ है १,८७,४९२ रुपयेके स्थान ४८,६४८ रुपयेकी वृद्धि।

उन्होंने प्रतिनिधियोंकी सर्वथा निःसंकोच भावसे प्रशंसा ही की है। आयुक्तोंके प्रतिवेदनमें इन प्रतिनिधियोंके "बहुमूल्य सहयोग" की बिना लाग-लपेटके प्रशंसा की गई है, जिसे उद्धृत करनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

> **हमारी जाँचके दौरान सदा ही किसानोंका पक्ष प्रस्तुत करने, उसे सुस्पष्ट बनानेमें उन जन-प्रतिनिधियोंने भी योग दिया जिन्हें इस कार्यके लिए विशेष रूपसे नियुक्त किया गया था। इन प्रतिनिधियोंमें श्री नरहरि परीख और महादेव देसाई प्रमुख थे। इन सज्जनोंने अपने ढंगसे अत्यधिक उपयोगी जानकारी एकत्र करनेके अलावा हमारे जाँच कार्यक्रममें सम्मिलित प्रत्येक गाँवमें जाकर हमारे पहुँचनेसे पूर्व ही लगान-दर या बिक्री-नामोंकी व्यवस्थित रूपसे जाँच की और प्राप्त जानकारीको तालिका-बद्ध किया। और उनको अलग-अलग हर मामलेकी ब्यौरेवार गहरी जानकारी थी, जिसके कारण हम बहुधा, अपेक्षाकृत अधिक सही जानकारी पानेमें सफल हुए जो वैसे हमें न मिल पाती। पक्षपात रहित एवं निष्ठापूर्ण ढंगसे दी गई उनकी इस सहायताको और इस जाँचके लिए उसकी उपयोगिताको हम साभार सहर्ष स्वीकार करते हैं।**

लेकिन जैसा मैंने पहले भी कहा है इस प्रतिवेदनकी कुछ खामियाँ भी हैं। यद्यपि आयुक्तों द्वारा प्रस्तावित वृद्धि कुल मिलाकर बहुत कम है, परन्तु मामलेके तथ्योंको देखते हुए इस वृद्धिका भी कोई औचित्य नहीं है और कुछ मामलोंमें तो अनजानेमें ही सही, आयुक्तोंके हाथों घोर अन्याय हो गया है। अगर सरकार समझदार है तो इस अन्यायका निराकरण कर देगी। यह वह अन्याय है जिसे रोकना आयुक्तोंके अधिकार-क्षेत्रमें था और जिसे वे चाहते तो टाल सकते थे और यदि उन्हें पर्याप्त समय मिलता और यदि वे प्रस्तावित लगान-वृद्धिके बारेमें जन-प्रतिनिधियोंकी पूरी बात भी सुन लेते जो उनको सुननी ही चाहिए थी तो उसे टाल भी देते। जब प्रत्येक मामलेकी अथवा प्रत्येक गाँवकी अलग-अलग जाँच नहीं की जा रही हो तो इस तरहकी सावधानी बरतना आवश्यक हो जाता है। सर्वश्री ब्रूमफील्ड और मैक्सवेलने कुछ खास गाँवोंके लिए लगानकी दर निर्धारित करनेका आधार उन निष्कर्षों

को बनाया है जो उन्होंने अपनी समझमें कुछ वैसे ही मिलते-जुलते अन्य गाँवोंकी परिस्थितियोंको देखकर निकाले थे। इसलिए वे जो नहीं कर सके, या करनेमें असफल रहे उसे अगर चाहे तो सरकार आज अविलम्ब या बिना किसी कठिनाईके कर सकती है और इस प्रकार अलग-अलग मामलोंमें वांछित न्याय दिला सकती है।

पर इस प्रतिवेदनमें कुछ ऐसी भी खामियाँ हैं जिनकी पूर्ति करना आयुक्तोंकी शक्तिके बाहर था। वे सब लोग जिन्होंने भूराजस्व नीतिका अध्ययन किया है, सरदार वल्लभभाईके इस कथनसे सहमत हैं कि जमीनपर पहलेसे ही अधिक लगान लगा चला आ रहा है। और प्रश्न लगान निर्धारणके किसी विशेष मामलेमें कोई बदलाव करनेका नहीं, बल्कि समूची भू-राजस्व नीतिमें आमूल परिवर्तन करनेका है। इस बहुमूल्य प्रतिवेदनके पृष्ठोंसे पता चलता है कि राजस्व सम्बन्धी कानून और प्रशासन का ढंग दोनों ही कतई सन्तोषजनक नहीं हैं। परन्तु बारडोलीके लोगोंने यह प्रश्न नहीं उठाया था। अब समूचे देशका ही यह कर्त्तव्य है कि कानून और प्रशासनमें बड़े-बड़े परिवर्तनोंकी माँग उठाये। इसके लिए दोनोंके आलोचनात्मक अध्ययनकी और राजस्वके मामलेमें जनताको सामान्य जानकारी प्राप्त कराने एवं उसके सम्बन्धमें प्रचार करनेकी आवश्यकता है। यदि सरकारका दुराग्रह अब भी बना रहा और उसने जनताकी राय पर ध्यान नहीं दिया तो सरदारको अपना अधिकसे-अधिक कौशल दिखाना पड़ेगा और उनको अखिल भारतीय स्तरपर सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़नेके लिए एक मंच, एक प्रश्न मिल जायेगा। वैसे इस तथ्यपूर्ण प्रतिवेदन और बारडोलीमें मिली सफलताके बाद ऐसे किसी साहसिक कार्यको आवश्यकता रहनी नहीं चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १३-६-१९२९

३७. पण्डित नेहरूजीकी अपील

पण्डित मोतीलाल नेहरूने धारासभाके कांग्रेसी सदस्योंके नाम नीचे लिखी अपील निकाली है:

आपने अवश्य ही धारासभाकी अवधिको बढ़ानेके सम्बन्धमें वाइसराय और प्रान्तीय सरकारोंकी घोषणाएँ दिलचस्पीके साथ पढ़ी होंगी। आपको यह बात भी मालूम ही होगी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और कार्य-समितिने इस पर विचार करके यह निश्चय किया है कि धारासभाके तमाम कांग्रेसी सदस्योंको यह आदेश दिया जाये कि दूसरी सूचनाके प्रकाशित होनेतक वे धारासभाओंमें न जायें। साथ ही उनसे यह भी कहा गया था कि वे फुरसतका अपना तमाम समय देशमें कांग्रेसके कार्यक्रमको आगे बढ़ानेमें लगायें।

यह स्पष्ट है कि राष्ट्रकी सच्ची शक्तिका निर्माण वर्तमान धारासभाओंके बाहर रहकर किये जानेवाले कामसे ही हो रहा है और धारासभाओंमें हमारा

काम भी उसी अनुपातमें शक्तिशाली बन पाता है जिस अनुपातमें हमारे पीछे संगठित शक्तिका बल होता है। चारों ओरके लक्षणोंसे पता चलता है कि समय शीघ्र ही विषम बन जायेगा; अतः कमसे-कम सालके अन्ततक तो हमें विश्वास-पूर्वक उस घड़ीका सामना करनेको तैयार हो जाना चाहिए। यही वजह है कि अ० भा० कां० क० ने अगले तीन महीनोंके लिए पुनः संगठनकी दृष्टिसे एक विशेष कार्यक्रम निश्चित कर दिया है, जिसे पूरा न करनेपर या तो सम्बन्धित समिति टूट जायेगी या फिर वह प्रामाणिक नहीं रह जायेगी। हममें से जो लोग कांग्रेस की ओरसे केन्द्रीय धारासभा या प्रान्तीय कौंसिलोंके सदस्य हैं, उन्हें अपने रचनात्मक कार्यों द्वारा यह बतला देना चाहिए कि हम जिस तरह कौंसिलोंमें उसी तरह उनसे अलग रहकर भी ठोस काम कर सकते हैं। कौंसिलके भावी कार्यकी दृष्टिसे भी अपने-अपने क्षेत्रोंमें काम करके कांग्रेसकी स्थितिको मजबूत बनाना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है।

मैं इस पत्र द्वारा आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप कांग्रेसके इस कार्यक्रम को पूरा करनेमें अपना कुछ-न-कुछ समय और अपनी शवित अवश्य लगायें। यह तो स्वाभाविक ही है कि आप स्वयं अपने क्षेत्रमें ही काम करना पसन्द करेंगे। यही ठीक भी है। लेकिन मैं इतनी सूचना दे देना चाहता हूँ कि आप शीघ्र ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीसे सम्पर्क कर लें, जिससे आपके समयका पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके और आपके प्रयत्नोंमें दूसरे भी हाथ बँटा सकें।

आप कांग्रेस कार्यक्रमके किसी भी एक अंगपर अपनी शक्ति केन्द्रित करन के लिए स्वतन्त्र हैं। मगर मैं ग्राम कांग्रेस कमेटियों और स्थानीय समितियोंकी स्थापना, एवं विदेशी वस्त्र-बहिष्कारके लिए कांग्रेस सदस्यों और स्वयंसेवकोंकी भर्तीको ओर खास तौरपर आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ। साथ ही जोरदार शब्दोंमें आपसे सिफारिश करता हूँ कि आप कांग्रेसके कामके लिए चन्दा भी इकट्ठा करें। चन्देकी यह रकम सम्बद्ध प्रान्तीय समितियोंके पास भेज दी जाये और वे दाताओंके नाम प्राप्ति-स्वीकृति भेज दें। यह रकम अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यालय, इलाहाबादके पास भी सीधे ही भेजी जा सकती है।

मैं चाहता हूँ कि कांग्रेसके धारासभाई सदस्योंके कार्योंका अलग हिसाब रखा जाये, जिससे हम देशको यह बतला सकें कि कौंसिलके बाहर भी हम कितना काम कर सकते हैं। अतएव मैं आपसे यह निवेदन करता हूँ आप प्रति मास मेरे पास कांग्रेस कार्यक्रमकी पूर्तिके लिए किये गये अपने महीने-भरके कार्योंका विवरण भेजें। ये विवरण सीधे मेरे पास भेजे जाने चाहिए।

अगर आपके सामने कोई कठिनाई हो तो अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यालय बड़ी खुशीसे उसे दूर करनेमें आपकी सहायता करेगा।

पण्डितजीके ये अधिकारपूर्ण उद्गार कि "राष्ट्रकी सच्ची शक्तिका निर्माण वर्तमान धारासभाओंके बाहर रहकर काम करनेसे ही होगा," बिलकुल सामयिक है। अगर धारासभाके सदस्य इस स्पष्ट सत्यको पहचान जायें और इस वर्षके शेष महीनोंमें अपने कामों और भाषणों द्वारा इसपर जोर देते रहें तो समय आनेपर हम देशके सम्मुख उपस्थित किसी भी विषम समस्याका सामना करनेमें समर्थ हो सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-६-१९२९

३८. धुनाईकी लगन

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार धुनकी (पींजन)की तारीफ नीचे लिखे शब्दोंमें करते हैं:[1]

जैसा कि भाई महावीरप्रसाद लिखते हैं, धुनकी उसी प्रशंसाके योग्य है। जो कातनेकी कलाका पूरा दर्शन करना चाहें उसके लिए धुनकी अत्यावश्यक है। धुनकीसे धुनना सीखना आसान है, चलाते समय उससे जो संगीत निकलता है, वह बहुत श्रुतिमधुर होता है। बर्फके समान सफेद-साफ रुईकी पूनियाँ बनाकर कातनेवाले सब याज्ञिकोंको मेरी सलाह है कि वे महावीरप्रसादजीका अनुकरण करें।

हिन्दी नवजीवन, १३-६-१९२९

३९. विवाह और वेद

आजकल हिन्दू-संसारमें विवाह-विधि जिस तरह होती है, उसमें धर्म कम है और विलास ज्यादा। जिनके विवाह होते हैं उनको पता भी नहीं चलता कि इस विधिमें क्या होता है, उसके मानो क्या हैं, और विवाहितका क्या धर्म है? यह शोचनीय बात है। वेदोंमें विवाहको धार्मिक कार्य माना गया है और उसकी विधि भी बतलाई गई है। विवाह-कार्य उसीके अनुकूल होना चाहिए। माता-पिता और गुरुजनोंका यह धर्म है कि वे वरवधूको विवाह-धर्म समझायें और विवाह-विधिका अर्थ स्पष्ट करके बतलायें। यह विधि क्या है और वर-कन्याकी प्रतिज्ञाएँ क्या हैं, सो सब 'नवजीवन' में बताया गया था, पाठक उसे देख लें।[2]

हिन्दी नवजीवन, १३-६-१९२९

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने धुनाईके महत्त्व और उसकी खूबीकी चर्चा करते हुए हर एक गाँवमें उसके प्रचारपर जोर दिया था और उस दिशामें अपनी सेवाएँ समर्पित करनेकी बात भी कही थी।

२. देखिए ४ मार्च १९२६ के 'हिन्दी नवजीवन' में 'आदर्श विवाह' शीर्षक लेख, उसमें विवाह-विधिका तो जिक्र था, लेकिन वरवधूकी प्रतिज्ञाएँ नहीं दी गई थीं। उनके लिए देखिए ७ मार्चके 'नवजीवन' का अंक।

४०. टिप्पणियाँ

यज्ञार्थ सिलाई

श्री महावीरप्रसाद और लिखते हैं[1] :–

हम परोपकारार्थ जो भी कार्य करते हैं वह सब यज्ञ है। खादीकी सफलताके लिए बहुत-से छोटे-मोटे यज्ञोंकी आवश्यकता है। चर्खा-यज्ञ सबसे बड़ा, सर्वव्यापक यज्ञ है। जिनके पास समय है वे सब थोड़ा समय खादी सीनेमें दे सकें तो खादी पहनना बहुत सस्ता पड़ सकता है। यह कार्य वहीं संगठित हो सकता है, जहाँ खादी भण्डार हैं और खादी-भण्डारवाले ही इसपर नियन्त्रण रख सकते हैं। इसलिए मैं भाई महावीरप्रसादको इस आरम्भके लिए धन्यवाद देता हूँ, घनश्यामदास जीको भी। मुझे उम्मीद है कि उन्होंने जिस पवित्र कार्यका आरम्भ किया है, वे उसे कभी न छोड़ेंगे। कलकत्तेमें ऐसी सीनेवाली स्वयं-सेविकाओंका मिलना कोई मुश्किल बात न होनी चाहिए।

नवजीवन-माला

श्री महावीरप्रसादजीके लोभका अन्त नहीं है। खादी-प्रचारके विचारोंमें वह निमग्न रहते हैं। उन्होंने 'नवजीवन' मेंसे खादी इत्यादिसे सम्बन्ध रखनेवाले लेखोंको लेकर (उनके संग्रहकी) हजारों प्रतियाँ छपवाई हैं, जो सस्ते दामोंमें सुलभ हैं। ये पुस्तकें 'नवजीवन माला' के मनकोंके रूपमें निकलेंगी। मैंने इस मालाके तीन मनके देखे हैं। मैं इनका प्रचार आवश्यक समझता हूँ। जनतामें खादी-साहित्यका प्रचुर प्रचार होनेसे उसे खादीकी शक्तिका भान होगा।

हिन्दी नवजीवन, १३-६-१९२९

४१. पत्र : लीलावतीको

बरेली
१३ जून, १९२९

चि० लीलावती,

तुम्हारे पत्रका जवाब पहले नहीं दे सका। मुझे थोड़ी-सी भी फुरसत नहीं थी। तुम्हें जो-कुछ भी करना है, सो केवल तुम्हारे अपने बलपर निर्भर होगा। मैं तो इतनी ही सलाह दे सकता हूँ कि जिस चाचाको तुमसे इतना स्नेह है, उससे

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकका सुझाव था कि खादीके कपड़ोंकी सिलाई मुफ्त करके भी लोग खादी-यज्ञमें हाथ बँटा सकते हैं। पत्रमें घनश्यामदास बिड़लाके घरमें ऐसी योजनाके शुरू हो जानेका उल्लेख भी था।

कहनेपर यदि वह उसे ठीक माने, तो तुम तदनुसार जो-कुछ करना चाहो, कर सकती हो। वह तुम्हारा विचार ठीक न माने और फिर भी तुम कोई कदम उठाना चाहो तो उसके लिए दो शर्तें होनी चाहिए, उसमें संयम हो और अन्तरात्मा वैसा कहे। अन्तरात्माकी आवाजके आगे तो अपने सगे-सम्बन्धियोंके बन्धन भी ढीले पड़ जाते हैं। पर यह भी जान लेना चाहिए कि कई बार अन्तरकी आवाज समझनेमें भूल हो जाती है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ९३१४)की फोटो-नकलसे।

४२. पत्र: छगनलाल जोशीको

बरेली
१३ जून, १९२९

चि० छगनलाल,

भाई पारनेरकरने मुझे सर पुरुषोत्तमदासको लिखे जानेवाले पत्रके लिए कुछ मुद्दे भेजे थे। उन्हें इसके साथ भेज रहा हूँ। ये मुझे ठीक लगते हैं। इस पत्रमें इतना स्पष्ट कर देना कि बाड़ उन्हें बनवानी चाहिए। उसपर कितना खर्च हो जायेगा यह भी लिखना। और हमें उसपर पच्चीस वर्षके लिए कब्जा मिलना चाहिए। उसके बाद यदि हमने कुछ मकान बनाये तो जितना उस समय तय किया जाये उन मकानोंका उतना खर्च भी मिलना चाहिए। और इस सम्बन्धमें दोनोंमें मतभेद हो तो पंच नियुक्त किया जाये और यह पंच जो रकम मुकर्रर करे वह हमें मिल जाये। हानि होनेपर भी पाँच वर्षतक हमें उनके पशु लेने ही होंगे। इस विषयमें बम्बईका मण्डल और चर्चा करना चाहे तो पारनेरकर वहाँ चला जायेगा। यह भी लिखना।

चि० कान्तिके साथ तुम समय-समयपर बात करते रहना। वह शान्त हो गया है यह अभी नहीं कहा जा सकता।

इसके साथ रणछोड़भाईका पत्र भेज रहा हूँ। उसने जो आलोचना की है उसका उपयोग करना।

रसोईके बारेमें तुरन्त फेरफार किया जा सकता है।

आश्रमके स्थानोंके नामके बारेमें जो सुझाव दिये गये हैं उनके बारेमें मुझे एक बात कहनी है। मुझे उसमें समानता नहीं दिखती। बंगाली, मराठी, फारसी शब्दोंकी खिचड़ी है। उसमें बुद्धिपूर्वक विचार नहीं किया गया। 'कुटीर' किसलिए? 'कुटी' क्यों नहीं? और उसका नाम 'मगन कुटीर' या 'मगन निवास' क्यों न रखें। 'स्त्री निवास' जैसे सूचक नामको बदलनेसे क्या लाभ होगा? 'प्रार्थना भवन' क्यों न रखें? अथवा प्रार्थनाका स्थान मैदान ही है, यह समझ सकने लायक या ऐसा सूचित करनेवाला शब्द क्यों न ढूंढें?

अतिथिगृहको 'नन्दिनी' कहनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता। महादेवके घरके साथ भणसालीका नाम जोड़ना मुझे तो अच्छा लगेगा। उसे 'जय भवन' क्यों न कहें? रसोईका नाम 'शारदा मन्दिर' किसलिए? 'भोजनशाला' क्यों नही? वहाँ दोनों चोजें हैं। इसलिए दोनों नाम होने चाहिए। 'बुनकर-निवास'के लिए 'कैलाश' नाम आडम्बरपूर्ण लगता है। 'रुस्तम ब्लाक' से कुछ सूचित हो सकना चाहिए। ब्लाकके लिए गुजराती शब्द ढूँढ़ना होगा। गोशाला सूचक शब्द है; उसे बदलकर गोकुल जैसा परम पवित्र नाम रखनेका हमें कोई अधिकार नहीं है। उत्तर प्रान्तर् और दक्षिण प्रान्तर् मुझे तो ठीक नही लगते। राजमार्ग-नामको तो छोड़ ही देना चाहिए। वीथीको रहने दूँ कि नही इस विषयमें कुछ शंका है। तीर्थको भी छोड़ ही देना चाहिए।

मेरी इन आपत्तियोंके मूलमें क्या कारण है, वह अब सहज ही समझमें आ सकेगा। प्रार्थनाके समय नामोंके बारेमें कहनेको कहा गया था; इसलिए उसके उत्तर में यह कहा गया है, ऐसा मानना। इसपर अमल होना ही चाहिए, ऐसा बिलकुल नहीं समझना। दूसरी बातोंके साथ इसपर भी विचार कर लें, इतना ही काफी है। इसके बारेमें काका ज्यादा अच्छी तरह विचार कर सकेंगे।

साथ भेजे जा रहे नोटिस[1]को सँभालकर रखना। छगनलाल जब जाये तब प्रबन्धकसे जरूर मिले। यदि कोई काम शुरू किया होगा, तब तो कोई समस्या ही न रहेगी।

बहियलमें खादीके उत्पादनके बारेमें भाई छोटालालने दुबारा जो योजना बनाई है, उसे मैंने देख लिया है। उसे इसके साथ भेज रहा हूँ। कताई सम्बन्धी अंश उसका सबसे कमजोर हिस्सा है। नये वर्गमें से जो लोग निकले हैं, उन्हींमें से यदि कोई पिंजाई करे, तभी वह सफल हो सकती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १५८०२)की फोटो-नकलसे; **बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने** पृष्ठ ११४–६, से भी

१. छगनलाल गांधी बीजापुर खादी-आश्रमके व्यवस्थापक व न्यासी थे। उल्लिखित नोटिस उन्हें गायकवाड़ सरकारने भेजा था।

४३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

बरेली
१३ जून, १९२९

चि० मणिलाल और सुशीला,

इधर-उधर यात्रामें रहनेपर तुम्हें नहीं लिख पाता। इरादा बहुत रहता है किन्तु साप्ताहिक डाकका समय आ जाता है और पत्र रह जाता है। इस समय भी मुसाफिरीपर हूँ। पहाड़की मुसाफिरी है। आज तो हम एक पहाड़की तलहटी, बरेली में हैं। खूब गर्मी है। इस बार अच्छा खासा साथ है। बा है, पुरुषोत्तम है, पृथुराज है, प्यारेलाल है। देवदास अलमोड़ामें मिल जायेगा। मुसाफिरोका प्रबन्ध प्रभुदासने किया है। बहनोंमें से जमनाबहन, खुर्शीदबहन, मीराबहन और कुसुमबहन साथ हैं। महादेवको वल्लभभाईने रोक लिया है। तुम दोनों न आ सको और सुशीला आ जाये तो भी ठीक है। किन्तु उसका स्वास्थ्य ठीक रहता हो और माता-पिताका वियोग बहुत खलता न हो तो। जबतक दोनों न आ सको तबतक वह वहीं रहे इसमें मुझे कोई बुराई नहीं दिखाई देती। अर्थात् तुम दोनोंकी जो इच्छा हो, उसी के अनुसार करना। सुशीलाकी इच्छा आनेकी हो तो उसे बिलकुल न रोकना। छापा आदिका ठीक बन्दोबस्त न हो सके तो तुम्हारा आना नहीं हो सकता। रामदासका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। वह अभी मानसिक रोगसे मुक्त नहीं हुआ। मेरा स्वास्थ्य तो अच्छा ही है। आजकल मेरे खुराक सम्बन्धी प्रयोगके विषयमें 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया'में पढ़ोगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७५५)की फोटो-नकलसे।

४४. पत्र : माधवजी वी० ठक्करको

बरेली
१३ जून, १९२९

भाईश्री माधवजी,

तुम्हारे पत्रके जवाबमें एक बात रह गई थी। सामान लानेके बारेमें तुम बहुत सावधान रहना चाहो तो दो कटोरे, एक थाली और एक लोटा ले आना। उद्योग मन्दिरमें पहुँचनेकी तारीख अभी निश्चित नहीं कर सका हूँ, किन्तु जुलाईके पहले सप्ताहमें वहाँ पहुँच ही जाऊँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० ६७८८)की फोटो-नकलसे।

४५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

बरेली
१३ जन, १९२९

भाई घनश्यामदासजी,

हरभाई दक्षिणामूर्ति भवनमें नानाभाईके साथी हैं। नानाभाई बीमार हो गये हैं। वर्धेमें इस विद्यालयके बारेमें हमारे बीचमें बात हुई थी इसपर से मैं उनको आपके पास भेजता हुं। इस संस्थाको क्या मदद देना वह आप ही सोचनेवाले थे। आज तो मैंने नानाभाईको अभयवचन भेज दीया है। वह आप ही के दानके आधारसे हैं। अब आप हरभाईसे सब बात सुन लेंगे, संस्थाका हिसाब देखेंगे और उचित करेंगे।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१७३ से।
सौजन्य : घश्यामदास बिड़ला

४६. भाषण : नैनीतालमें

१४ जून, १९२९

अब मेरे पास सन् २१ की-सी आवाज नहीं है, अब मुझे बोलना बन्द कर देना चाहिए। मैं बोलना भी नहीं चाहता, किन्तु जो मनुष्य अपनेको दरिद्रनारायणका प्रतिनिधि कहे वह भिक्षा माँगना छोड़ नहीं पाता। मैं अशक्त हो गया हूँ। किन्तु आप मुझको कुछ देते रहते हैं। इसलिए मैं इस लालचको छोड़ नहीं सकता। मानपत्र और थैलीके लिए धन्यवाद। समय बचानेके लिए काव्य-पाठका कार्यक्रम छोड़ दिया गया उसके लिए एहसान मानता हूँ। जिला बोर्डके अध्यक्षने सारा मानपत्र नहीं पढ़ा; धन्यवाद। आपने पैसे काफी नहीं दिये। यहाँ जो भाई हैं वे गरीब नहीं हैं। गरीबोंके कन्धेपर सवारी करनेवाले हैं। मैं उनको याद दिलाने आया हूँ कि वे अपने कर्त्तव्य को पहिचानें। यहाँकी आबादी ३ लाखसे २ लाख हो गई है। इतनी कमी क्यों हुई? आबोहवा अच्छी होने पर भी यहाँ पर ह्रास क्यों? इतने लोग मर गये या कहीं चले गये? लोगोंके पास धन्धा नहीं है। बेकारीसे लोग तंग हैं। हमने अपना ऊन विदेशोंमें या मिलोंमें भेज दिया। मिलके कपड़े पहन-पहनकर हम गरीबोंके हाथसे रोटीका टुकड़ा छीन रहे हैं। हमारी रुचि बदल गई है। हम स्वदेशी कपड़ोंको खराब समझते हैं और मिलके कपड़ोंको हम अच्छा समझते हैं। हमें साहब लोगों जैसे कपड़े

पहननेका शौक लग गया है। हमने गलत ढंगकी नकल करके गरीब लोगोंको तबाह कर दिया। लोग डरपोक बन गये हैं। किन्तु यदि वे कोशिश करें तो उनका डर जाता रहे। ईश्वरके नामसे डरना चाहिए और किसीसे नहीं। आज मैं भारतकी दरिद्रता और डरपोकपनका सबसे बड़ा इलाज विदेशी वस्त्रोंका त्याग मानता हूँ। इसमें सब भाई-बहन मदद दें। यह काम तो आसानीसे हो सकता है। लोग गायन सुनाते हैं, कविता सुनाते हैं, किन्तु इनसे भूख नहीं मिटाती। सच्ची बात तो यह है कि चरखा हमारी भूख मिटा सकता है और हमें स्वराज्य दे सकता है। जबसे चरखेका पैगाम भारतमें फैलाया गया है, करोड़ों औरतोंके बदनमें जान आ गई है। जो भाई विदेशी कपड़े पहनते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे देशी भाइयोंका बनाया हुआ मोटा कपड़ा पहनें। इससे वे सैकड़ों मनुष्योंको रोजी दे पायेंगे। कांग्रेसने शराबखोरी बन्द करनेकी भी आज्ञा दी है। मुझे मालूम नहीं यहाँ कितने लोग शराब पीते हैं। यदुकुलमें कृष्णके होते हुए भी उसका नाश हो गया था। भगवान कृष्णने कहा था कि तुम लोग शराब पियोगे और जुआ खेलोगे तो नाशको प्राप्त हो जाओगे। पर वे न माने और उनका नामनिशान भी न रहा। आप लोगोंसे मैं कहूँगा कि आप शराबखोरी छोड़ दें। कांग्रेसमें सब लोगोंको चन्दा देकर भरती होना चाहिए। वहाँ प्रतिज्ञा करनी होती है कि हम शान्ति और सचाईसे स्वराज्य चाहते हैं। हरएक आदमी इस तरह कांग्रेसमें दाखिल हो सकता है।

इस तरह हम स्वराज्य हासिल कर लेंगे। मैं यह बात कहने आया हूँ कि यदि प्रत्येक पुरुष तकलीसे सूत निकालेगा, अपना कपड़ा पहनेगा तो स्वराज्य निकट आयेगा। मैं कमजोर आदमी हूँ किन्तु जो दो बातें मैंने सन् २१में कही थीं, वही आज भी कहता हूँ। एक यह कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सब भारत-वासी आपसमें मिल जायें और सिरफुटौवल न करें तो स्वराज्य आज मिल जाये। किन्तु आप लोग तो पागल हो चुके हैं; आप लोगोंको होशमें आना होगा। आपके हाथोंमें तो आज भी स्वराज्य है। दूसरी बात मैं यह कहता हूँ कि अस्पृश्यता मिटा दें। यदि नहीं मिटाते तो हिन्दू धर्म मिट जायेगा। जो हिन्दू अद्वैतवादको मानता है वह अस्पृश्यताको कैसे मान सकता है? इसको मिटाना हमारा परमधर्म है। जिन लोगोंने धन नहीं दिया वे धन दें। मुझको जो स्त्रियाँ जेवर भी दे सकती हैं, वे जेवर भी दें। आप लोगोंने दो मंजूषाएँ मुझे दी हैं, ये बहुत अच्छी हैं। लेकिन मेरे पास जगह कहां कि मैं ऐसी खूबसूरत चीजें रख सकूँ? मैं इनका भी सौदा कर लेना चाहता हूँ। आप लोग इनका अच्छा दाम देकर बदलेमें मुझे पैसा दे दें। मैं घूमते समय इन्हें कहाँ ले जाऊँ, आश्रममें कहाँ रखूँ?

आज, ४-७-१९२९

४७. सुधारकोंका कर्त्तव्य

अहमदाबादके सुधारक मण्डल द्वारा भेजा गया गत ता० २९ मईका एक पत्र मुझे पिछले सप्ताह मिला था; वह नीचे दिया जाता है :[1]

इस पत्रमें दी गई घटना तो शायद अब पुरानी पड़ गई होगी, मगर पत्रमें जिस वस्तुस्थितिका बयान किया गया है, वह तो बार-बार सामने आती रहेगी। यह निर्विवाद है कि हमारी कई बुरी आदतें, जो हममें घर कर बैठी हैं, जल्दी नहीं मिटेंगी। उन्हें मिटानेके लिए, हमें वही प्रयत्न करना पड़ेगा, जो आज हम स्वराज्यके लिए कर रहे हैं। ऐसे प्रयत्नोंके फलस्वरूप वही शक्ति जो स्वराज्यके प्रयत्नमें से प्रकट हो रही है पैदा होगी, हो ही रही है, क्योंकि दोनोंका मतलब एक ही है। हम इस भ्रममें पड़े हुए हैं कि शक्तिहीन होनेके कारण हमारे किये कुछ हो नहीं सकता। हमारा दूसरा भ्रम यह है कि अपनी अल्पसंख्याकी वजहसे हम कुछ कर नहीं पाते। मगर सच तो यही है कि अगर हम अनिष्ट, अनीति और बुराइयोंको जहाँ-जहाँ देखें, वहाँ-वहाँ उनके नाशका प्रयत्न करेंगे तो हमारी शक्ति अवश्य ही बढ़ेगी।

लेकिन इस प्रयत्नकी अपनी मर्यादा है और वह है सत्य और अहिंसाकी। जहाँ अहिंसा है, वहाँ विवेक और विनय तो होते ही हैं। हम अपनी मनचाही करें; मगर साथ ही बड़े-बूढ़ोंकी गालियाँ, लाठियाँ और छुरियाँ भी सहें। मेरी मर्यादामें न्यायालयको स्थान नहीं है। आजकलके न्यायालय न्यायालय नहीं हैं। उनमें जीतना सच्ची जीत नहीं। सुधारककी सच्ची जीत तो विरोधीके हृदयको पिघला देनेमें है। यह काम न तो न्यायालय कर सकता है, न लाठी। अकेली सहनशक्ति ही इसे कर सकती है। अगर नौजवान हर तरहके कष्टोंको चुपचाप सहन करते चले जायें, तो निःसन्देह एक-न एक-दिन बड़े-बड़े पिघलेंगे ही। मगर सहनेका मार्ग कायरका नहीं; शूरवीरका है। जो इस मार्गमें नामर्दी या कायरता महसूस करे, उसके लिए यह मार्ग नही है। अतएव अगर न्यायालयकी मददसे अहमदाबादकी पोलोंके सुधरनेकी सम्भावना हो, तो सुधारक अवश्य उनकी मददसे उन्हें सुधारें। इन पोलों, पाखानों, पेशाब-घरों वगैराको सुधारनेके लिए जबर्दस्त साहसकी जरूरत है। इस कामको करते हुए अगर बहुतेरे नवयुवकोंको अपनी बलि भी देनी पड़े तो मुझे आश्चर्य न होगा। डॉ० हरिप्रसाद[2]

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उसमें कहा गया था कि सुधारक मण्डलकी तीन महीने पहले नींव डाली गई थी। तब उसमें केवल नौ सदस्य थे। उन्होंने गलियोंकी सफाईका काम प्रारम्भ किया और नगरपालिकासे एक पेशाब-घर बनवानेको कहा। सफाई विभागके लोगोंने आकर स्थानको देखा। किन्तु कुछ लोगोंने विरोध किया और गालियाँ सुनाईं तथा मार-पीट तक की। यदि वे शान्त न रहते तो परिस्थिति बहुत बुरी हो जाती। सुधारक मण्डलने गांधीजीसे पूछा था कि जवाबमें मार-पीट अथवा अदालतकी शरण लेना, ये दो ही मार्ग रह जाते हैं — क्या किया जाना चाहिए।

२. हरिप्रसाद व्रजराज देसाई।

ने यह काम फिरसे अपने हाथोंमें लिया है। अगर युवक-वर्ग उनकी मदद पर दौड़ जाये, तो बहुत-कुछ सुधार हो सकता है। युवकगण सभामें जा सकते हैं, नाटक खेल सकते हैं, जुलूस निकाल सकते हैं। ये सब काम अच्छे हैं और एक मर्यादामें रहकर करने योग्य हैं। मगर तनिक-से भी रचनात्मक कामके सामने इनकी कीमत नगण्य है। नौजवानोंको अपने हाथों सड़कें साफ करनी चाहिए, गटरें और मोरियाँ धोनी चाहिए। हम सबको भंगी बनना आना चाहिए। जो बात मोहल्लोंके सुधारके बारेमें ठीक है, वही दूसरे कई कामोंके बारेमें भी उपयुक्त है। अगर विद्यार्थी अपने आपको सच्ची स्वराज्य सेनामें बदलना चाहते हैं तो उन्हें व्याख्यानबाजीसे हटकर रचनात्मक कामोंमें जुट जाना चाहिए। विद्यार्थियोंकी रिपोर्टमें भाषणों, नाटकों आदि के जिक्रकी जगह अब तो यह लिखा जाना चाहिए कि उन्होंने इन कामोंके सिवा कितने पाखाने साफ किये, कितने गाँवोंके कुओंकी सफाई की, कितने बाँध बाँधे, कितने मरीजों-रोगियोंकी सेवा की, कितनी खादी बुनी, कितने तालाब या कुएँ खोदे और कितनी रात्रिशालाओं आदिका संचालन किया।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १६-६-१९२९

४८. वनपक्व बनाम अग्निपक्व

कुछ लोग मुझे मूर्ख, सनकी या खब्ती मानते हैं। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं जहाँ भी जाता हूँ, मूर्ख, सनकी और दीवाने मुझतक पहुँच ही जाते हैं। इसपर से ऐसा जान पड़ता है कि उक्त तीनों 'गुण' मुझमें होने चाहिए। आन्ध्र-प्रदेशमें पर्याप्त संख्यामें इन तीनों गुणवाले लोगोंके नमूने मुझे मिल रहे हैं। कुछ लोग तो ठेठ उद्योग-मन्दिरतक आ पहुँचते हैं, तब फिर मैं आन्ध्र प्रदेशमें जाऊँ और वे न मिलें यह तो सम्भव ही नहीं हो सकता। किन्तु फिलहाल मैं इन तीनों जातियोंके सज्जनोंसे पाठकोंका परिचय कराने नहीं जा रहा हूँ। मेरी सनकोंमें खुराकके प्रयोग एक 'सनक' है। मैं यहाँ खुराकके एक सनकीसे ही पाठकोंको परिचित कराना चाह रहा हूँ। क्योंकि उनके प्रभावमें पड़कर मैंने जो प्रयोग प्रारम्भ किया है, उसके बारेमें लिखनेकी मेरी इच्छा है। इनका नाम है सुन्दरम् गोपालराव। वे राजमहेन्द्रीमें रहते हैं। वे जल-चिकित्सा और आहार-चिकित्साका एक आरोग्य भवन चलाते हैं। उनकी देखरेखमें अनेक लोगोंको लाभ हुआ है—ऐसा मुझसे कहा गया और मैंने इसपर विश्वास भी किया है।

गोपालराव एक सालसे कच्चे अनाजपर ही जी रहे हैं। उनका विश्वास है कि मनुष्यकी खुराकको अग्निका स्पर्श न होना चाहिए। सूर्य पोषक है, अग्नि नाशक है। सूर्य अन्न पकाता है, अग्नि उसका सत्व छीन लेती है। अग्नि-स्पर्शसे अनाजका सत्त्व जल जाता है। इसी विचारधाराके सहारे उन्होंने अग्निके सम्पर्कमें आये हुए अन्नका त्याग किया और स्वयं अनुभव करके उसे अपने रोगियोंपर आजमा कर देखा।

उनका कहना है कि नाजुकसे-नाजुक जो जठराग्नि सीझा हुआ अनाज पचा सकती है, वह कच्चा अनाज भी अवश्य ही पचा सकेगी।

मैं कई वर्षोंसे यह मानता आया हूँ कि कच्चा अन्न ही खाना चाहिए। जब मैं बीस वर्षका था तब एक बार रंधे हुए अन्नका त्याग किया था, लेकिन वह पन्द्रह दिनसे ज्यादा न टिक सका। सन् १८९३ में ट्रान्सवालमें फिरसे इस प्रयोगको दुहराया, लेकिन इस बार भी पन्द्रह दिनसे आगे न बढ़ सका।

गोपालरावकी बात और उनके अनुभवोंने मुझे आकर्षित किया और जिस प्रयोग को मैंने जवानीमें भीरुतावश छोड़ दिया था, उसे साठ सालकी इस उम्रमें फिर शुरू किया है। इस प्रयोगका परिणाम बहुत ही महत्वपूर्ण होगा, इसी दृष्टिसे पाठकोंको मैं इसका परिचय दे रहा हूँ। वनपक्व मेवेपर तो मैं लगातार छः सालतक रहा हूँ। मगर वनपक्व अन्नपर मैं बहुत दिनोंतक नहीं रहा और यह इसलिए कि मैं मानता था कि मुझ-जैसेको कच्चा अन्न पच नहीं सकता।

आजकलके पाश्चात्य वैद्योंका यह मत है कि हमारी खुराकमें एक तत्त्व होना चाहिए, जिसके अभावमें मनुष्य अपनी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रख सकता। वे उसे 'विटामिन' कहते हैं। 'विटामिन'का अर्थ है, जीवनतत्त्व। रसायनशास्त्री इस तत्त्वका विश्लेषण करके इसे पहचान नहीं सके हैं, फिर भी आरोग्य-शास्त्रियोंने आहारमें इसकी कमीका अनुभव किया है। कई तरहकी खुराकके प्रभावोंका निरीक्षण करके आरोग्य-शास्त्रियोंने ठहराया है कि यह जीवन-तत्त्व आवश्यक है। उनका कहना है कि राँधनेसे वनस्पति-मात्रका यह तत्व नष्ट हो जाता है। उन्होंने इस तत्वका वर्गीकरण भी किया है। इसमें 'अ' वर्ग भाजियोंमें और अनाजके अंकुरित दानोंमें होता है। अतएव वे पिछले कई सालोंसे जीवन-तत्त्ववाली वस्तुएँ ग्रहण करनेकी सिफारिश करते रहे हैं, और तदनुसार बहुतेरे आदमी अनाजके साथ भाजी, भीगी हुई अंकुरित दाल और गेहूँ वगैरा खाते हैं।

मगर कुछेक शास्त्रियोंकी यह भी राय है—गोपालराव भी उससे सहमत हैं—कि वनपक्व और अग्निपक्व अन्नको मिलाना ही नहीं चाहिए। अगर वनपक्वसे पूरा-पूरा लाभ उठाना हो तो सीझे हुए अन्नका सर्वथा त्याग ही करना चाहिए।

मुझे इस दलीलमें विश्वास है। यह मत दिन-दिन बढ़ता जाता है। क्षयरोगके विशारद डॉ० मुथुकी पुस्तकके भोजनवाले प्रकरणमें भी इस मतका समर्थन मिलता है।

लेकिन इस खुराकमें मेरा तो आरोग्यके सिवा एक दूसरा भी मोटा स्वार्थ है। मैं वनस्पतिके नाशको भी हिंसा मानता हूँ। मगर यह नाश मनुष्यके लिए अनिवार्य है, यह मानते हुए भी अहिंसा धर्मका जानकार इस तरहकी कमसे-कम हिंसा करे। हाँ, खुराक या आहारका स्थूल ब्रह्मचर्यके साथ निकट सम्बन्ध तो है ही। मेरे आहार-सम्बन्धी सब प्रयोगोंके मूलमें यह जिज्ञासा रही है कि स्थूल ब्रह्मचर्यके पालनमें कौन-सा आहार अधिकसे-अधिक मदद पहुँचा सकता है।

कमसे-कम समयमें और कमसे-कम खर्चमें कौन-सी खुराक खाकर आरोग्यकी सम्पूर्ण रक्षा की जा सकती है, इस बातका पता पा जाना ही मेरे प्रयोगोंका उद्देश्य है। गोपालरावके प्रयोगोंमें यह सब देखकर मैंने उन्हें अपना लिया है।

कोई जल्दबाजीमें आकर मेरे प्रयोगोंकी नकल न करे। जिन्हें ऐसे प्रयोगोंका अनुभव नहीं है वे तो कदापि न करें। मेरा प्रयोग अभी प्रारम्भिक स्थितिसे आगे नहीं गया है और मैं यह भी नहीं कह सकता कि उसमें सफलता मिल रही है। गोपालराव जैसी श्रद्धा मुझमें नहीं है। वे इसे जितना आसान मानते हैं, [यह प्रयोग] इतना आसान नहीं है। फिलहाल तो मैं इतना ही उसके विषयमें कह सकता हूँ कि मैंने ५।। रतल वजन खोया है; किन्तु शरीरकी शक्ति कम हो गई है, ऐसा मैं नहीं कह सकता। पिछले हफ्तेसे वजन बढ़ना शुरू हुआ है; एक रतल वजन बढ़ा है। मेरे सतत चलते रहनेवाले काम-धाम अव्याहत चल रहे हैं। इस प्रयोगके बारेमें लिखनेकी इच्छा इसीलिए होती है। जो नतीजे समझमें आयेंगे, सो पाठकोंके सामने रखता रहूँगा। यदि वे आयुर्वेद शास्त्री जिन्हें इस प्रकारका कोई अनुभव है, इसके विषयमें मुझे जानकारी देंगे तो मैं आभार मानूँगा। अब अपनी खुराकका विवरण देता हूँ :

अंकुरित गेहूँ	८ तोला
पिसा बादाम	८ तोला
चटनी जैसी पिसी हरी सब्जी	८ तोला
नींबू	८
शहद	५ तोला

जब गेहूँ नहीं लेता तब उतने ही अंकुरित चने लेता हूँ। इस हफ्तेसे मैंने गेहूँ और चने दोनों एक साथ लेना शुरू किया है। कभी-कभी मैं बादामकी जगह कसी हुई नारियलकी गिरी लेता हूँ। और अगर गुंजाइश हो तो पाँच चीजोंमें किशमिश अथवा कोई दूसरा फल ले लेता हूँ।

यदि गेहूँ अथवा चनोंको २४ घंटोंतक पानीमें भिगोकर रखें और फिर पानी निथारकर उन्हें रात-भर एक गीले कपड़ेमें बाँधकर रख छोड़ें तो उनमें अंकुर फूट निकलते है। इस खुराकमें नमककी कोई जरूरत नहीं पड़ती। मैं नमक लेता भी नहीं हूँ। हाँ, खुराककी तादाद और मिकदारमें फेरबदल करता रहता हूँ। ऊपर दिया गया अनुपात मार्गदर्शक-मात्र है। पिछले तीन दिनोंसे चने और गेहूँ एक-साथ ही लेता हूँ। जब चने लें तो बादाम न लें, क्योंकि स्नायुवर्धक पदार्थ दोनोंमें होता है। मैंने शुरुआत चनेसे की है; मगर चनेकी जगह मूँग आदि दूसरी दालें भी यही काम कर सकती हैं। सम्भव है, गेहूँके बदले ज्वार या बाजरासे भी काम चल सके। यह क्षेत्र विशाल है, दिलचस्प है और शोधके योग्य है। इस गरीब देशमें यह बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। 'जैसा आहार वैसा आचार' यह वेदवाक्य है; इस कथनमें बहुत सचाई है। हमने खाद्याखाद्यको धर्मका रूप दे दिया है और उसमें भी छूत-छातको ला रखा है, मगर यह उक्त वचनका दुरुपयोग है। मैं पिछले चालीस वर्षोंसे यह मानता आया हूँ कि अतिशयता किये बिना आहारका प्रश्न गम्भीर और विचारणीय है। आज ईश्वरने मुझे अन्तिम प्रयोग करनेकी शक्ति और बुद्धि दी है, अतएव उसका आभार

मानता हूँ और इस लेख द्वारा पाठकोंको भी इस प्रयोगसे मिलनेवाले आत्मानन्दमें अपना हिस्सेदार बनाता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-६-१९२९

४९. टिप्पणियाँ

मुझे चेतावनी

जब मेरे 'यह कैसी जीवदया' शीर्षक लेखोंने[1] कोलाहल मचा रखा था, मेरे पास पत्रोंकी वर्षा-सी हो रही थी। तब जो पत्र आये थे उनमें से सरल भावसे लिखे एक पत्रको मैंने सँभाल कर रख छोड़ा था। पत्र ता० १५-१०-१९२६ का है। पत्रकी बातें मुझे सचेत रख सकती हैं, इसलिए मैंने उसे अपनी फाइलमें रख छोड़ा था। जब मैं हर सप्ताह 'नवजीवन' का दफ्तर खोलता हूँ तो उसमें से अखाकी पंक्तियाँ बरबस मेरा ध्यान खींच लेती हैं। वे पंक्तियाँ ये हैं:[2]

झीणी माया ते छानी छरी, मीठी थइने मारे खरी;
वलगी पछी अलगी नहि थाय, ज्ञानी पण्डितने मांहीथी खाय
अनेक रूपे माया रमे, ज्यां त्यां तेवुं गमे;
वड़ही जो कोई ने ज्ञान उपजे, तो ज्ञानी थईने भेली भजे।
जे कर्म होय मूकवा जोग, अखा तेनो ज पडावे भोग;
एवा मायाना घणा छे घाट, ज्यां जोइए त्यां मायाना हाट.

पत्रकी इबारत लम्बी है। उसमें मेरे लेखके विरोधमें दलीलें दी गई हैं मगर उनकी ध्वनि तो यही है कि सूक्ष्म मायाके वश होकर कहीं मैंने धर्म समझकर अधर्म तो नहीं किया है? मुझे यह ख्याल न तो उस समय हुआ था, न आज ही होता है। लेकिन फिर भी उससे क्या मतलब? यह तो सच है कि माया मीठी छुरी बनकर वार करती है। अगर मुझे यह मालूम पड़ जाये कि मैं मायासे घिरा हुआ हूँ तो फिर वह माया ही कहाँ रही? अन्धा अगर देख सके तो फिर वह अन्धा ही क्यों कहा जाये? अनेक प्रवृत्तियोंमें फँस कर उनमें निवृत्तिके दर्शनकी चेष्टामें, मैं कब मायाका

१. आठ क्रमिक लेख; देखिए खण्ड ३१ और ३२।

२. गुजरातके प्रसिद्ध भक्त कवि अखाकी इन पंक्तियोंका अर्थ इस प्रकार है: "सूक्ष्म माया छिपी छुरीके समान है, जो मीठी बनकर वार करती है। एक बार लिपटनेपर फिर अलग नहीं होती, और जो ज्ञानी या पण्डित हैं उन्हें भीतर-ही-भीतर कुतरती रहती है। माया अनेक रूपमें क्रीड़ा करती है और जहाँ जैसा देखती है, वहाँ वैसी बन जाती है। अगर किसीको ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो माया भी उसके साथ ज्ञानी बनकर उसके भजन-पूजनकी संगिनी बन जाती है। जो काम छोड़ने योग्य होते हैं, माया मनुष्यको उन्हींमें फँसा देती है। अखा कहता है कि इस मायाके अनेक रूप हैं; जहाँ जाते हैं, वहीं मायाका हाट आबाद मिलता है।"

शिकार बन जाता होऊँगा, मैं क्या जानूँ? अतएव ऊपरकी पंक्तियाँ छापकर और उनका सन्दर्भ देकर ईश्वरसे मायासे बचा लेनेकी प्रार्थना करता हुआ मैं शान्तिका अनुभव करता हूँ। विवेकशील पाठक इसमें से एक सबक जरूर ले सकते हैं। मैं 'महात्मा' कहलाता हूँ। इस कारण कोई यह मानकर न चले कि मेरी सब बातें सच ही होती हैं। हम नहीं जानते कि 'महात्मा' क्या है, कौन है? सच्ची बात तो यह है कि 'महात्मा' शब्दको भी बुद्धिकी कसौटीपर चढ़ा कर देखना चाहिए। और अगर यह पूरा न उतरे तो उसका त्याग करना चाहिए।

दक्षिणमें अकाल

राजाजीने उक्त विषयमें फिरसे अपनी झोली फैलाई है। उनके सभी काम स्पष्ट मर्यादित और कारगर होते हैं। जहाँ कुछ लोग सुखसे रह रहे हैं और अनेक कष्ट भोग रहे हैं वहाँ जिनके पास देनेको है वे देकर मदद पहुँचाते हैं। राजाजीकी पहली माँगका पाठकोंने समुचित आदर किया था। मुझे आशा है कि यह अतिरिक्त माँग भी समयपर पूरी कर दी जायेगी।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १६-६-१९२९

५०. विद्यार्थी

प्रेम [विद्याल]य
१[६ जून, १९२]९[1]

जो विद्याका भूखा है सो विद्यार्थी। विद्या अर्थात् जानने योग्य ज्ञान। जानने के योग्य तो आत्मा ही है। इसलिए विद्याका अर्थ हुआ आत्मविद्या। किन्तु आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित इत्यादि जानना चाहिए। ये सब साधन-रूप हैं। इन विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अक्षरज्ञान आवश्यक माना गया है। बिना अक्षर-ज्ञानके भी ज्ञानी होते हैं, यह बात अनुभवमें आई है। जो इसे जानता है वह अक्षर-ज्ञान अथवा साहित्य आदिके ज्ञानके पीछे पागल नहीं होता। वह तो आत्मज्ञानके लिए व्याकुल होता रहता है।

जो-जो बातें आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें विघ्न-रूप बनती हैं, वह उनका त्याग करता है और जो सहायक होती हैं उनका सेवन करता है। जो इस बातको समझता है उसका विद्यार्थी जीवन कभी समाप्त नहीं होता और वह खाते, पीते, सोते, खेलते, खोदते, बुनते, कातते — सारी क्रियाओंको करता हुआ ज्ञान ही प्राप्त करता रहता है। इसके लिए अवलोकन-शक्तिका विकास किया जाना चाहिए। ऐसे व्यक्तिको हमेशा

१. गांधीजी इसी तारीखको प्रेम विद्यालय पहुँचे थे।

शिक्षक-समुदायकी जरूरत नहीं पड़ती अथवा कह सकते हैं कि वह समस्त जगतको शिक्षक रूपमें गिनता है और प्रत्येक वस्तुसे गुण ग्रहण करता रहता है।

बापू

गुजराती (एम० एम० यू० –२)की माइक्रोफिल्मसे।

५१. पत्र: प्रभावतीको

१६ जून, १९२९

चि० प्रभावती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें भेज देनेके बाद थोड़ी चिन्ता हुई थी। वह पत्र मिलनेसे दूर हो गई। मुगलसरायमें गाड़ीका पता चलाने और जगह प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं हुई? क्या भाड़ा दससे कुछ ज्यादा देना पड़ा था? गीता, गणित और अंग्रेजीका रोज अध्ययन करना। रोज दैनन्दिनी लिखना। संस्कृत जानने वाले किसी व्यक्तिके पास बैठकर श्लोकोंका उच्चारण करना और डरना नहीं। पिताजी के स्वास्थ्यका समाचार लिखना। हम सब मजेमें हैं। ठण्ड तो यहाँ भी है ही।

बापूके आशीर्वाद

चि० प्रभावतीबहन
द्वारा बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद
डा० खा० सिवान
जिला छपरा, बिहार

गुजराती (जी० एन० ३३५१)की फोटो-नकलसे।

५२. भाषण: प्रेमविद्यालय ताड़ीखेतमें[1]

१६ जून, १९२९

यहाँ आनेसे पहले ही मैं आप लोगोंके दुःख और दर्दका किस्सा सुन चुका हूँ। मेरे पास इसका एक ही अक्सीर उपाय है, और वह है, आत्मशुद्धि एवं कर्त्तव्यपरायणता। हमारी तमाम व्याधियोंका मूल कारण हमारे मनकी संकुचितता है। हम कुटुम्बके लिए मर-मिटनेके धर्मको तो समझते हैं, मगर अब एक कदम और आगे बढ़ानेकी जरूरत है। हमारे कुटुम्ब-प्रेममें सारे गाँवको स्थान मिलना चाहिए; गाँवमें ताल्लुकेको, ताल्लुकेमें जिलेको, जिलेमें प्रान्तको, यहाँतक कि आखिरकार सारा संसार हमारे लिए कुटम्बवत् हो जाये। भारतके किसी भी कोनेसे आनेवाले मनुष्यकी सेवा

१. यह भाषण वार्षिकोत्सवमें अध्यक्षकी हैसियतसे दिया गया था। इसे यहाँ प्यारेलालकी यात्रा-विवरणसे उद्धृत किया गया है।

करते समय हमें यह अनुभव होना चाहिए, मानो हम अपने रिश्तेदारकी सेवा करते हैं। कांग्रेसके संगठनके मूलमें भी इस कल्पनाका हाथ है। आज हमारी कांग्रेसकी कमेटियाँ मृतप्राय: हो गई हैं। आप लोगोंको चाहिए कि आप अधिकाधिक संख्यामें कांग्रेसके झण्डेके नीचे आयें और उसे फिरसे एक जीवन्त संस्था बना दें।

मैं कह चुका हूँ कि हमारे रोगका इलाज हमारे हाथोंमें है। केवल चीनको छोड़कर हमारी जनसंख्या और सब देशोंसे ज्यादा है। मगर आज हम आत्मविश्वास खो बैठे हैं। यह खोया हुआ आत्मविश्वास हमें फिरसे प्राप्त कर लेना है। हम किसीसे न डरें, अकेले उस प्रभुकी शरणमें जायें। ईश्वरसे महान् दूसरी कोई शक्ति नहीं है। जिसके हृदयमें ईश्वरका डर हो उसके हृदयमें दूसरा कोई डर होता ही नहीं।

यहाँ आनेपर आपके विद्यालयके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ देखा या सुना है, उससे आशा होती है कि एक दिन वह अपने नामको सार्थक करेगा और प्रेम-विद्यालय सचमुच ही प्रेमका साक्षात् स्वरूप बन जायेगा।

पुरुषार्थ मनुष्यका धर्म है, मगर होता वही है जो विधाताने ठहरा रखा है। आपने अपने निवेदनमें पैसेकी कमीकी शिकायत की है लेकिन इससे आप घबरायें नहीं। अपने चालीस वर्षके अनुभवसे मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि हरएक संस्थाको उसकी सच्ची उपयोगिताके अनुसार धन मिल ही जाता है। और जिस संस्थाको जनताकी सेवा करनी है, उसे तो आर्थिक मामलोंमें जनतापर आधार रखना ही इष्ट है। इससे उसपर जनताका अंकुश रहता है, संस्था जागृत रहती है, और उसे विनयका सबक सीखना पड़ता है। इसके विपरीत जब कोई संस्था बहुत-सा धन इकट्ठा करके आर्थिक चिन्तासे मुक्त हो जाती है, बहुधा यह देखा जाता है कि तब वह निरंकुश और लापरवाह बन जाती है। हरएक संस्थाके लिए सबसे अच्छा नियम तो यह है कि वह अपनी आर्थिक हैसियतके भीतर रहकर जितना काम कर सके, करे; और कर्ज लेकर काम बढ़ानेकी लालचमें न फँसे। सारांश, अगर आपकी ताकत सिर्फ एक ही विद्यार्थीको रखनेकी है तो आप उसे अकेला ही रखिए, मगर कर्जदार न बनिये यही सलाह है।

मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि प्रेमविद्यालयने अपने कार्यक्रममें खादीको स्थान दिया है और चरखेको अपनाया है। आजसे इक्कीस वर्ष पहले मैंने यह आविष्कार किया था कि हिमालयसे कन्याकुमारी और कराचीसे असम तककी करोड़ों भारतीय जनताको एक सूत्रमें संगठित करनेके लिए सूतके कच्चे धागेसे अधिक जोरदार और कोई उपाय नहीं है। आज भी मेरी इस विषयमें उतनी ही श्रद्धा है। मैं चाहता हूँ कि आप कच्चे सूतके धागेमें छिपी हुई शक्तिको समझें और चरखा-आन्दोलनकी कीमत रुपया-आना-पाईमें नहीं बल्कि लोकमतको जोरदार बनानेकी उसकी उपयोगिताको खयालमें रखकर कूतने लगें।

हिन्दी नवजीवन, ४-७-१९२९

५३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१७ जून, १९२९

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। देखता हूँ, आप स्वालम्बनकी दिशामें लगातार एक-सी प्रगति कर रहे हैं।

मुझे यह भी मालूम हुआ कि आपने बिना राँधा आहार लेना आरम्भ कर दिया है। शरीरको नुकसान पहुँचाए बिना यदि आप इसे निबाह लें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मैंने देखा है कि जिसे डॉ० मुथु आहारकी प्राणशक्ति और विद्युत शक्ति कहते हैं, कूटनेसे वह नष्ट हो जाती है। लगता है इस प्रकारका अंकुरित अन्न दूध जितना सुपाच्य होता है और यदि अधिक नही तो कारगर भी उतना ही। यदि बिना कुटा-पिसा अन्न खाया जाये तो वह कभी कोई विकार पैदा नहीं करेगा। परन्तु कूटने-पीसनेपर अवश्य विकार करता है। अगर आपके दाँत मजबूत हैं, तो आग्रहपूर्वक बिना कुटा-पिसा अन्न, कच्ची सब्जियाँ और साफ तथा ताजे काटे फल ही हैं। बिना राँधे आहारके समुचित लाभके लिए उसे चबा-चबाकर खाना अनिवार्य है। गुटकनेसे बचनेके लिए कौर छोटे-छोटे लीजिए और उन्हें अच्छी तरह चबाइये। जो कौर मुँहमें है उसका खयाल रखें और प्रयत्न करें कि कौर गलेसे नीचे उतरनेके पहिले तरल बन जाये। इस प्रकार भोजन करनेमें आपको ४५ मिनट लग सकते हैं। किन्तु इसमें लगनेवाले समयकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भोजन करते समय घनिष्ट लोगोंके अलावा और लोग वहाँ न रहें। ठीक तरह चबानेकी आदत हो जाने पर आप भोजन करते हुए दूसरे काम भी कर सकेंगे। बिना राँधा, साबुत अन्न स्वच्छ होता है और उससे कोई चीज गन्दी भी नहीं होती। इसे आप टहलते हुए भी खा सकते हैं। ट्रान्सवालमें कूचके दौरान भी मैं गिरी और फल चबाया करता था। बिना राँधे अन्नमें स्निग्धताकी दृष्टिसे गिरीका होना जरूरी है। दाल काफी मात्रामें प्रोटीन (वसा) देती है; उसके प्रयोगके दिनोंमें पानीवाले नारियलकी गिरी खाना सबसे अच्छा होता है। साबरमतीसे कुछ पुस्तकें भेजी गई थीं। आपको इस प्रयोगकी ओर धीरे-धीरे ही बढ़ना होगा।

सप्रेम,

बापू

पुनश्च :]
आवश्यक

मैं तुम्हारा प्रश्न भूल रहा था। यदि तुम्हें गवाहीके लिए बुलाया जाये तो अपने सिद्धान्तके आधारपर आनेसे इनकार कर सकते हो। इस आधारको लिख रखिए।

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० १६०५)की फोटो-नकलसे।

५४. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

१७ जून, १९२९

भाईश्री बहरामजी,

मुझे लगता है कि ७ सितम्बरको शनिवार है। यदि ऐसा हो तो यह दिन मेरे लिए ठीक है। उसी दिन शामको मुझे छुट्टी मिल जाये ऐसा प्रबन्ध करना।

तुम दोनोंको
बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६५९४)की फोटो-नकलसे।

५५. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

नैनीताल
मौनवार, १७ जून, १९२९

बहनो,

तुम्हारी जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। 'आदर्श बाल मन्दिर' के बारेमें किशोरलालका जो पत्र आया है, वह साथमें भेज रहा हूँ। तुम पढ़ना और शिक्षकोंको पढ़नेके लिए देना। मैं चाहता हूँ कि जिन बहनोंको दिलचस्पी है, वे पूरी तरह खूब तैयार हो जायें। नारणदासको खूब तंग करके भी उससे सीख लेना। यह सम्भव है कि उससे भी ज्यादा होशियार कोई सिखानेवाला हो। मगर 'एकहि साधे सब सधे' वाली बात है।

रसोईघरको तो अच्छी तरह चलाती ही रहोगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७१५)की फोटो-नकलसे।

५६. पत्र : छगनलाल जोशीको

१७ जून, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। सलाह न माँगनेका निश्चय मुझे अच्छा लगा है। वहाँ जो हैं, उनसे पूछ लेना ही काफी है। निर्णय भी जल्दी कर लेना। भूल होनेका डर मनमें न रखना। हो तो होने दो।

तुम लिखते हो आज मेरी तबीयत अच्छी है। इससे लगता है कि तुम्हारा इससे पहलेका कोई पत्र मुझे अभी नहीं मिला। यह १३ तारीखका पत्र है।

वल्लभभाईकी शिकायतके बारेमें तुम्हें पत्र लिखा है।[1] वह मिल गया होगा।

सब लोग मजेमें हैं। मेरा प्रयोग चल रहा है। किशोरलालका पत्र बहनोंके लिए है। तुम और शिक्षक पढ़ लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४२२)की फोटो-नकलसे।

५७. पत्र : महादेव देसाईको

१७ जून, १९२९

चि० महादेव,

तुम्हारा पत्र अभी मिला है अभी अर्थात् ८-२५ बजे। मौन छोड़नेमें पाँच मिनिट हैं; इसलिए यह लिख रहा हूँ। तुम दोनोंने वहाँ जाकर ठीक ही किया है। दोनोंको थोड़े आरामकी जरूरत तो थी ही। मुझे तो अभी आराम नहीं मिला, मिलनेका सवाल भी नहीं था। बाईसके बाद एक सप्ताह (आराम लेने)का विचार है और उस अरसेमें गीताको समाप्त करनेकी बात है। यह हो सके तो अच्छा है। यहाँ भी पैसा मिलेगा। तुम साथ नहीं हो यह अखरता तो है। यहाँके अनुभव भी कोई साधारण नहीं हैं; पर सभी-कुछ थोड़े ही मिल सकता है? वहाँ वल्लभभाईका साथ है, वह भी इतना ही अच्छा है।

कल प्रेम विद्यालयमें पहुँचे। जवाहरलालकी पत्नीकी बीमारीका तार आ गया इसलिए आज वह चला भी गया है। कृपलानी साथमें है। देवदास नैनीतालमें मिल गया था। व्रजकृष्ण भी साथ है। अच्छा खासा साथ तो है ही।

१. ११ जूनका; देखिए पृष्ठ ३३।

अभी बरसातने परेशान नहीं किया। हवा अच्छी है। प्रभुदासका स्वास्थ्य ठीकहै।

'यंग इंडिया' के लिए तुमने जो भेजा है उससे काम पूरा हो गया है। मैं सोलह कालम नहीं भेज सका। ज्यादा भाग प्यारेलालने पूरा किया। मै तो केवल तीन कालम ही लिख पाया। 'नवजीवन' के लिए आज काफी भेज दिया है। अभी तो 'हिन्दी नवजीवन' के लिए भी हर सप्ताह कुछ लिखना अपने सिर लिया है। यह तो मालूम होगा ही? वहाँसे हीं आश्रमकी देखरेख कर सकते हो। सुरेन्द्रका लम्बा पत्र आया है। उसकी मूर्च्छा उतर गई है और अब उसे अपना दोष और अभिमान स्पष्ट दिखाई दे गया है। वह सरल हृदय है। इसलिए किसी दिन तो उसे अपनी भूल दिखाई देनी ही थी। उसे नामके निर्णयकी जरूरत नहीं पड़ी।

वहाँ रेवेन्यूके शास्त्रका अध्ययन करनेको मिलेगा; वह तो बहुत अच्छा हुआ है। मैं चाहता हूँ कि तुम अभ्यास करके करारा जवाब दो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ११४५२)की फोटो-नकलसे।

५८. भाषण: ईसाई समाज, अलमोड़ामें[1]

१८ जून, १९२९

गांधीजीने भारत और भारतके बाहरके ईसाइयोंके साथ हुई अपनी मित्रता और घने स्नेहकी बात कही और खास कर सेंट स्टीफेन्स कालेजके स्व० आचार्य रुद्रके साथ अपनी घनी मैत्रीका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा:

एक जमाना ऐसा भी था जब ईसाई भाई अपनेको हिन्दुस्तानी कहते लजाते थे; यह बतानेमें कि वे हिन्दुस्तानी भाषा बोल ही नहीं सकते और यूरोपीय लोगोंके रीति-रिवाज एवं रहन-सहनकी नकल करनेमें ही वे अपना गौरव समझते थे। इससे मेरा मतलब किसीके दोष बताना नहीं है; मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि यह समयका दोष था। आज हालत बदल गई है, और ईसाई भाई भी अन्य भारतीय भाइयोंके साथ 'वन्देमातरम्' गाते हैं। फिर भी सुधारकी अभी बहुत गुंजाइश है। कई ईसाई युवक मुझसे शिकायत करते हैं कि उनके बड़े-बूढ़े उन्हें राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें भाग नहीं लेने देते, और अगर वे उसमें हाथ बँटाते हैं, तो कहा जाता है, वे बहुत ही बड़ा अपराध या देशद्रोह कर रहे हैं। मैं आपसे यही नम्र प्रार्थना करता हूँ कि हम इस भयंकर हालतमें से उबर जायें।

वर्तमान युग आत्मशुद्धिका युग है; मगर कई यूरोपीय लोग इसमें केवल अपवित्रता के ही दर्शन करते हैं। आपने अपने मानपत्रमें वर्तमान आन्दोलनको आत्मशुद्धिका यज्ञ

१. प्यारेलालकी यात्रा-विवरणसे उद्धृत। गांधीजीने यह भाषण मानपत्रके उत्तरमें दिया था।

कहा है, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा रखता हूँ कि आप भी इस यज्ञमें पूरा-पूरा हाथ बँटायेंगे।

मैं सब धर्मोंको सच्चे मानता हूँ। मगर ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो सम्पूर्णता का दावा कर सके। क्योंकि धर्म तो हमें मनुष्य-जैसी अपूर्ण सत्ता द्वारा मिलता है; अकेला ईश्वर ही सम्पूर्ण है। अतएव हिन्दू होनेके कारण अपने लिए हिन्दू धर्मको सर्वश्रेष्ठ मानते हुए भी मैं यह नहीं कह सकता कि हिन्दू धर्म सबके लिए सर्वश्रेष्ठ है; और इस बातकी तो स्वप्नमें भी आशा नहीं रखता कि सारी दुनिया हिन्दू-धर्म को अपनाये। आपको भी यदि अपने गैर-ईसाई भाइयोंकी सेवा करनी है, तो आप उनकी सेवा उन्हें ईसाई बनाकर नहीं, बल्कि उनके धर्मकी त्रुटियोंको दूर करनेमें और उसे शुद्ध बनानेमें उनकी सहायता करके भी कर सकते हैं।

जिस समाजमें आपने जन्म लिया है, जिस देशका आपने अन्न खाया है, उसका तिरस्कार करना आपको शोभा नहीं देता। किसी चीजके साथ असहयोग करना धर्म्य हो सकता है, बशर्ते कि उसमें दुष्टताका कोई खास तत्त्व हो। भारतकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता, जिसके फलस्वरूप देशमें इतने बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हो गये हैं, जिसने श्री चैतन्य और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे सुपुत्रोंको जन्म दिया है, और जिसके लिए आज भी कितनी ही पवित्र आत्माएँ तपश्चर्या कर रही हैं, विश्वासघातके योग्य नहीं है। आपके विचारानुसार अगर गैर-ईसाई लोग अन्धकारमे पड़े हैं, तो वे इस सभ्यताके सच्चे प्रतिनिधि भले न हो सकें; मगर आपको, जैसा कि आप दावा करते हैं, अगर सच्चा ज्ञान मिला है, तो इस सभ्यताका संरक्षक बनना चाहिए, नाशक नहीं।

आज हमारे धनवान लोग गरीबोंके कन्धोंपर चढ़ बैठे हैं। अगर आपको गरीबोंके साथ सच्चा हेलमेल पैदा करना है, करोड़ोंकी सेवा करनी है, और स्वेच्छासे निर्धन बने हुए नहीं बल्कि अनिच्छासे दारिद्र्य पीड़ित जनताकी सहायता करनी है, तो चर्खा-यज्ञमें हाथ बँटाना ही उसका एकमात्र उपाय है।

हिन्दी नवजीवन, ४-७-१९२९

५९. तार : स्वामीको[1]

[१८ जून, १९२९ अथवा उसके पश्चात्][2]

स्वामी
द्वारा श्री
बम्बई

चमड़ा कमाने की मनाही पर धोलका जमीनकी शर्तें नामंजूर।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५४०२)की फोटो-नकलसे।

६०. पत्र : छगनलाल जोशीको

बुधवार [१९ जून, १९२९][3]

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। छगनलालका मामला थोड़ा नाजुक है। इस बारेमें मिलनेपर ही पूछना। अब ज्यादा दिन नहीं हैं।

डाह्याभाई अपनी पत्नीके साथ रहते हैं, और किस तरह रहते हैं, आदि मालूम हो जाये, तो सलाह दे सकता हूँ। इसकी भी चर्चा मेरे वहाँ आनेपर करना। यह तो चाहता ही हूँ कि वह हमारे पास रहे।

तुमने सत्यमूर्तिको लिखा है इसलिए अब मैं नहीं लिख रहा हूँ। जो-कुछ लिखा है ठीक लिखा है।

अपना स्वास्थ्य बिगड़ने न देना। यहाँका कार्यक्रम लगभग पूरा हो गया है; अब एक ही जगह बाकी रह गई है। किन्तु डाक तो अलमोड़ा ही भेजी जा सकती है। यदि आराम करूँ तो ६ जुलाईको वहाँ पहुँच सकता हूँ; न करूँ तो ३० जून को। मनमें निर्णय नहीं कर पाया हूँ। गीताको समाप्त कर डालनेका इरादा है तो सही।

१ और २. दिनांक १८ जूनको साबरमतीसे छगनलाल गांधी द्वारा भेजे तारके उत्तरमें जो इस प्रकार है: "गोरक्षा मण्डलकी अपराह्नमें हुई बैठका कोई खर्च उठानेपर राजी नहीं। किराया हजार हो सकता है। चमड़ा कमानेका विरोध। उनकी भूमिपर चमड़ा न कमाया जाये तो शायद स्वीकार कर लें। पुरुषोत्तमदास सहायताके लिए आतुर। वे स्वीकृतिकी सलाह देते हैं। वे बढ़ा हुआ किराया देनेको तैयार। तार स्वामीको द्वारा श्री भेजें।" (एस० एन० १५४०२)। देखिए अगला शीर्षक और "पत्र: छगनलाल जोशीको", २४-६-१९२९ भी।

३. साधन-सूत्रके अनुसार।

उसकी खातिर एक स्थानपर ६ दिनतक रुका तो जा सकता है। एक-दो दिनमें निर्णय करना है।

अपनी जिम्मेदारीपर तुम काम करते रहो यह तो अच्छा है ही। जो-कुछ मुझे बताने लायक लगे वह बताना; इसमें मुझे कोई एतराज नहीं है।

कृष्णमैया देवी[1] अवश्य ही दार्जिलिंग जा सकती है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मेरा मन तो थानेवाली जमीन बेच डालनेका है। छगनलाल क्या कहता है यह मालूम करना और यदि ठीक लगे तो भाई हीरजीको लिख ही देना।

[गुजरातीसे]

बापूना पत्रो : श्री छगनलाल जोशीने पृष्ठ ११७

६१. खादी और बहिष्कार

हमारा अविश्वास एक विचित्र वस्तु है यह हमारी एक असाधारण विशेषता है। हमें अपनी कार्यशक्तिपर थोड़ा भी विश्वास नहीं है। सम्पूर्ण मद्यपान-निषेधको हम असम्भव मानते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एक्यको दिवा-स्वप्न समझते हैं। सनातनियोंके विरोध के सामने हम अछूतोद्धारकी कल्पनातक नहीं कर सकते। इस तरह ऐसा एक भी काम नहीं रह जाता जिसे हम सम्भव समझकर कर सकें। अतएव स्वराज्य एक असम्भवप्राय: सिद्धान्त और गुलामी हमारी प्राकृत अवस्था बन जाती है। यह हालत प्रत्येक मनुष्यके लिए दु:खद और पतनकारी है।

आत्मविश्वासकी यह कमी हमारी स्वराज्य-यात्राके मार्गमें एक सबसे बड़ी रुकावट है। आइये, हम इस तर्ककी जाँच करें कि खादीके जरिये बहिष्कार सफल नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि हमारी जरूरतोंके मुकाबलेमें खादीकी पैदाइश काफी नहीं है। जो लोग इस तरहकी बातें करते या लिखते हैं, वे खादीका ककहरा भी नहीं जानते। खादीमें विस्तारकी अनन्त शक्ति भरी पड़ी है, क्योंकि रोटीकी भाँति ही खादी भी हमारे घरोंमें तैयार हो सकती है, बशर्ते कि हम दिलसे इसकी इच्छा करें। यहाँ मैं बहिष्कारके लिए खादीके अर्थशास्त्रपर कुछ विचार करना जरूरी नहीं समझता। मान लीजिए कि इंग्लैंड और जापान अपना कपड़ा भेजना बन्द कर देते हैं, और देशकी मिलें भी किसी-न-किसी वजहसे बन्द हो जाती हैं, ऐसे समय हम खादीके अर्थ-शास्त्रपर विचार करते हुए बैठे नहीं रहेंगे; बल्कि एकदम अपनी जरूरतकी खादी घरपर ही बनाना शुरू कर देंगे। इस दशामें जो व्यापारी अपना विलायती कपड़ोंका व्यापार खो बैठेंगे, वे भी सबके-सब खादी-उत्पत्तिके काममें लग जायेंगे। हमने अपने

१. नेपालके एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्री खड्गबहादुर सिंहकी विधवा।

आसपास दर्दनाक नामर्दीका जो कुत्सित वायुमण्डल तैयार कर लिया है उसकी वजहसे हम अपने-आपको आसानसे-आसान काम करनेमें भी असहाय पाते हैं। अगर हमारी मनःस्थिति एकदम निराश और असहाय न होती, तो कोई कारण न था कि जिस कामको बिजौलिया बहिष्कारके उत्तेजक वातावरण और दबावके अभावमें भी कर सका उसीको हम महान और देशभक्तिपूर्ण वातावरणमें रहकर भी नहीं कर सकते। यही काम आज बारडोलीमें इतने बड़े पैमानेपर हो रहा है कि हमारे यन्त्र विभागको चरखों और दूसरे आवश्यक सामानको पूरा कर पाना बहुत कठिन होता जा रहा है।

इसमें शक नहीं कि अगर हरएक आदमी निरा आलोचक और दर्शक – तमाशबीन – बना रहेगा और कोई भी आन्दोलनके साथ अपनापन महसूस नहीं करेगा तो हमारा यह आन्दोलन एकदम नाकामयाब हो जायेगा। इस आन्दोलनकी सफलता लाखोंकी हार्दिक इच्छा और संगठित सहकारपर निर्भर है। यह सहकार बातकी बातमें प्राप्त हो सकता है, बशर्ते कि सुशिक्षित और विचारशील लोग पूर्ण सफलताकी दृढ़ आशा लेकर चरखेपर काम करना शुरू कर दें। ये लोग याद रखें कि नाम-मात्रकी पूँजीसे चलाया जानेवाला यह आन्दोलन अपने ढंगका एक ही प्रगतिशील और जागृत संगठनवाला आन्दोलन है। राष्ट्रको चाहिए कि वह इस ओर अपनी सारी शक्ति लगा कर काम करे; सफलता तो निश्चित ही है।

ध्यान रहे कि इस समय राष्ट्रके सामने इसके सिवा दूसरा कोई भी प्रभावकारी और देशव्यापी रचनात्मक काम नहीं है। मैं इन पृष्ठोंमें बारबार यह बतला चुका हूँ कि खादीकी बेशुमार पैदाइश कैसे की जा सकती है। पाठकोंको मेरे बतलाये हुए तीन तरीके याद होंगे; अर्थात् मजूरी देकर कताना, खुद कातना और यज्ञार्थ कातना।[1] राष्ट्रमें सच्चे त्यागकी भावनाके जागते ही देशके बाजारोंको हाथ-कते सूतसे पाट देना बिलकुल आसान हो जायेगा। मैं यह तो बतला ही चुका हूँ कि खादी-उत्पत्तिका गुर हाथ-कते सूतकी पैदावार बढ़ाना है। आज भारतके मदरसोंमें ९७ लाख से ज्यादा विद्यार्थी तालीम पा रहे हैं। दुःखकी बात है कि यह संख्या कुल आबादीके ४ प्रतिशतसे भी कम है। फिर भी यज्ञार्थ कताईके संगठनके लिए विद्यार्थियोंकी यह तादाद काफी है। इस संख्यामें उन अनेक संस्थाओंको छोड़ दिया गया है, जो यदि हमें पूरा विश्वास हो कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कारके लिए खादी ही रामबाण है तो इसी तरह थोड़े परिश्रमसे संगठित की जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-६-१९२९

1. देखिए "बहिष्कारकी चाल", २-६-१९२९ तथा खण्ड ४०, पृष्ठ ४४८ भी।

६२. टिप्पणियाँ

सेठ जमनालालजीका सत्कार्य

एक स्वाभिमानी पुरुषके नाते सेठ जमनालालजीने पण्डित सुन्दरलालजीकी 'भारत में अंग्रेजी राज्य' पुस्तकके सम्बन्धमें बम्बई-पुलिसके डिप्टी कमिश्नरकी प्रार्थनाका जो उत्तर दिया है, वह सर्वथा उनके अनुरूप ही है। उनका कहना सच है कि संयुक्त प्रान्तीय सरकारकी यह कार्रवाई 'निरंकुश और अन्यायपूर्ण है;' और पुस्तकको लेकर देश-भरमें मकानोंकी जो तलाशी ली गई है वह 'अत्यन्त अपमानजनक, आक्षेपयोग्य और बदलेकी भावनासे पूर्ण है।' वे कहते हैं कि उन्होंने पुस्तक पढ़ी है और उनकी रायमें वह न केवल बिलकुल निर्दोष है और अहिंसाका पाठ पढ़ानेका एक स्तुत्य प्रयत्न भी है। उनके यह विश्वास दिलानेपर भी कि पुस्तक न उनके मकानमें है, न कार्यालयमें, पुलिसका दोनों जगहोंकी तलाशी लेना, इस बातका एक अतिरिक्त प्रमाण है कि जमनालालजीने पुलिसके कार्योंकी जिन शब्दोंमें निन्दा की है, वे उचित ही हैं। इस खानातलाशीका मकसद पुस्तककी तलाशी न होकर जमनालालजीकी बेइज्जती करना था। ऐसे अपमानोंका उचित उत्तर तो यही होना चाहिए कि जिन लोगोंके पास पण्डित सुन्दरलालजीकी पुस्तक है, वे उसकी इत्तला अपने जिलेके पुलिस दफ्तरमें दे दें, समाचारपत्रोंमें छपा दें, और सरकारको तलाशी लेने या मुकदमा चलाने या दोनोंके लिए चुनौती दें। अगर जनता इस नीतिको अपनाकर चलेगी, और यदि अबतक भी पुस्तककी कई प्रतियाँ लापता होंगी तो सरकारको जल्दी ही पता चल जायेगा कि इस तरह लगातार असंख्य मकानोंकी निरर्थक खाना-तलाशी लेते रहना अपनी हँसाई आप कराना है। तलाशियाँ, गिरफ्तारियाँ, सजाएँ, तभीतक असरकारक हैं, जबतक लोग उनसे डरते रहते हैं।

राष्ट्रीय शालाओंमें गीता

एक संवाददाता पूछते हैं कि क्या राष्ट्रीय शालाओंमें हिन्दू और अहिन्दू सब बालकोंको गीता अनिवार्य रूपमें सिखाई जा सकती है। दो साल पहले जब मैं मैसूरमें सफर कर रहा था, तब एक हाई स्कूलके हिन्दू बालकोंके गीतासे परिचित न होनेका मुझे दुःखके साथ उल्लेख करना पड़ा था।[1] इस तरह गीताके प्रति मेरा पक्षपात स्पष्ट है। मैं तो चाहता हूँ कि गीता न केवल राष्ट्रीय शालाओंमें ही बल्कि प्रत्येक शिक्षा-संस्थामें पढ़ाई जाये। एक हिन्दू बालक या बालिकाके लिए गीताका न जानना शर्मकी बात होनी चाहिए। मगर अनिवार्यताके बारेमें मेरा आग्रह राष्ट्रीय शालाओंतक सीमित है। यह सच है कि गीता विश्वधर्मकी एक पुस्तक है। फिर भी यह एक ऐसा दावा है, जो किसीपर लादा नहीं जा सकता। सम्भव है, कोई ईसाई, मुसल-मान या पारसी इस दावेका विरोध करे, और बाइबल, कुरान या अवेस्ताके बारेमें

१. देखिए खण्ड ३४ पृष्ठ ४२८-२९।

ऐसा ही दावा पेश करे। मुझे भय है कि हिन्दू कहे जानेवालोंके लिए भी गीताकी शिक्षा अनिवार्य नहीं बनाई जा सकती। कई सिख और जैन अपने-आपको हिन्दू मानते हैं, मगर सम्भव है, वे अपने बालक-बालिकाओंको अनिवार्य रूपसे गीताके पढ़ाये जानेका विरोध करें। साम्प्रदायिक या जातीय शालाओंकी बात ही दूसरी होगी। मसलन एक वैष्णव शालाके लिए गीताको धार्मिक शिक्षाका अंग बनाना मेरी रायमें बिलकुल उचित होगा। प्रत्येक स्वतन्त्र शालाको हक है कि वह अपनी पढ़ाईका पाठ्य-क्रम स्वयं निश्चित करे। मगर एक राष्ट्रीय शालाको तो स्पष्ट मर्यादाओंमें रहकर काम करना पड़ता है। जहाँ अधिकार या हकमें दस्तन्दाजी नहीं होती, वहाँ अनिवार्यताका भी प्रश्न नहीं उठता। एक खानगी पाठशालामें प्रवेश करनेका कोई दावा नहीं कर सकता, मगर यह मानी हुई बात है कि राष्ट्रके प्रत्येक सदस्यको राष्ट्रीय शालामें जानेका अधिकार है। अतएव एक जगह जो बात प्रवेशकी शर्त मानी जायेगी, वही दूसरी जगह अनिवार्य नहीं होगी। बाहरी दबावसे गीता कभी विश्वव्यापिनी नहीं होगी। वह विश्वव्यापिनी तो तभी होगी, जब उसके प्रशंसक उसे जबर्दस्ती दूसरोंके गले न उतारकर स्वयं अपने जीवन द्वारा उसकी शिक्षाओंको मूर्तरूप देंगे।

एक प्रतिवाद

पाठकोंको याद होगा कि आन्ध्रके एक पत्र-लेखकने शिकायत की थी कि तनुकूकी उस सभामें शरीक बहनोंने, जिसमें मेरे साथ एक अन्त्यज कन्या लक्ष्मी उपस्थित थी, पवित्र होनेके विचारसे अपने-अपने घर पहुँचनेपर नहाया-धोया था और तब मैंने इस शिकायतपर कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं।[1] अब दो सज्जनोंने पत्र लिखकर इस बातका प्रतिवाद किया है और कहा है कि यह बात बिलकुल ही गलत है। मैं उन दो पत्रोंमें से एक यहाँ दे रहा हूँ।[2]

> **'यंग इंडिया' के १६ तारीखके अंकमें आपकी तनुकूकी महिलाओं सम्बन्धी 'अस्पृश्यता' शीर्षक टिप्पणी पढ़कर हम सबको हैरत हुई है। पत्र-लेखकने जो कहा है अगर वह सच होता तो आपका कथन ठीक कहलाता। किन्तु कहते हुए दुःख होता है कि आपके संवाददाताने जबर्दस्त भूल की है . . .।**
>
> **मैं खुद सभा-स्थलमें उपस्थित था क्योंकि वहाँ मेरे परिवारकी स्त्रियाँ भी गई हुई थीं। मैं ब्राह्मण हूँ और मेरे परिवारकी स्त्रियोंने लौटकर पवित्र होनेकी दृष्टिसे स्नान नहीं किया। सभामें उपस्थित अन्य अनेक महिलाओंको भी मैं जानता हूँ। उनसे बात करनेपर उन्होंने बताया कि ऐसी कोई बात उन्होंने सोची ही नहीं थी। शामका भोजन बनानेके पहले कुछ बहनोंने नहाया हो यह तो सम्भव है किन्तु यह कहना कि एक अन्त्यज लड़कीका स्पर्श हो जानेके कारण अपनेको पवित्र करनेकी दृष्टिसे उन्होंने स्नान किया, एक बड़ा लांछन लगाना है।**

१. देखिए खण्ड ४० पृष्ठ ३९५-९७।
२. अंशतः उद्धृत।

दोनों ही पत्र-लेखकोंने अपने नाम दिये हैं। उनकी बातपर अविश्वास करनेका मेरे पास कोई कारण नहीं है। मुझे उनकी तथा सभामें उपस्थित महिलाओंकी भावनाको दुखानेका दुःख है। जिस बातका प्रतिवादन किया गया है उसे लिख भेजनेवाले सज्जनका नाम-पता भी मेरे पास था और इसलिए मैंने उनसे पूछा है कि उन्होंने ऐसा गम्भीर आरोप किस आधारपर लगाया था। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि यदि आजकल कथित अन्त्यज-सभाओंमें उपस्थित रहनेके कारण कोई बहनोंसे कहे कि वे तब अपवित्र होनेका अनुभव करती हैं तो वे खिन्न होती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-६-१९२९

६३. कुछ प्रश्न

एक सज्जनने कुछ प्रश्न पूछे हैं। आरम्भ मेरी स्तुतिसे किया गया है। मुझे पूर्ण निर्भय, पूर्ण त्यागी, पूर्ण निर्वैर और पूर्ण सत्याग्रही माना है। ऐसे विशेषणोंका प्रयोग मानपत्रोंमें तो होता ही है; परन्तु मानपत्रोंमें हमेशा अतिशयोक्ति होती है, इसलिए वहाँ यह भले ही क्षन्तव्य माना जाये। किन्तु पत्रोंमें ऐसे विशेषणोंका उपयोग अक्षन्तव्य है, अविनय है। किसी मनुष्यकी उसके सामने स्तुति करना असभ्यता है। हिन्दीके पत्रोंमें ऐसी स्तुति विशेषतया देखता हूँ इसीलिए मैंने यह उल्लेख यहाँ किया है। वस्तुतः मैं पूर्ण निर्भय, पूर्ण निर्वैर, पूर्ण त्यागी नहीं हूँ। सत्याग्रही शब्दका धात्वर्थ लेनेसे पूर्ण सत्याग्रहीपनका आरोपण मुझपर हो सकता है। क्योंकि सत्यकी कीमत समझ लेनेके बाद सत्यका आग्रह रखना आसान है। यह याद रखा जाये कि सत्यका आग्रह एक वस्तु है, सत्यका आचार दूसरी। मुझे यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि मैं पूर्णतया निर्वैर, निर्भय और त्यागी नहीं हूँ। केवल स्थूल यानी बाह्यत्यागसे इन गुणोंमें पूर्णता नहीं आ सकती। मानसिक त्याग बहुत कठिन है और मैं यह प्रतिज्ञा, यह दावा हरगिज नहीं कर सकता कि मैं मनसे भी वैर, भय इत्यादिसे मुक्त हूँ। हाँ, मनपर भी काबू पानेका मेरा सतत प्रयत्न है; परन्तु प्रयत्न और सिद्धिमें उतना ही अन्तर है, जितना पृथ्वी और सूर्यके बीच। इसलिए कोई यह न मान ले कि मैं जो-कुछ भी कहता हूँ, उसमें कभी भूल हो ही नहीं सकती। निर्मल बुद्धिसे मैं जितना देख सकता हूँ उतना ही कहता हूँ। अगर कोई सज्जन अपनी बुद्धि द्वारा उसकी प्रतीति न कर सकें, तो उसे छोड़ दें। अन्धश्रद्धासे हमें बहुत हानि हुई है। मैं अपने प्रति अन्धश्रद्धा नहीं चाहता; उससे बचना चाहता हूँ। लोगोंकी अन्धश्रद्धा मेरे मार्गमें रुकावट डालती है। अब मैं उक्त सज्जनके प्रश्नोंपर आता हूँ। उनपर वे और अन्य पाठकगण बुद्धिपूर्वक सोचें।

पहला प्रश्न यह है:

श्रवण तथा कथन-मात्रकी अपेक्षा न रखनेवाला आत्मबल कौन-कौनसे साधनोंकी अपेक्षा रखता है — वह आत्मबल जिसका उपयोग प्रह्लाद आदिने किया था?

श्रवण और कथन-मात्रकी सर्वथा उपेक्षा करनेसे आत्मबलकी प्राप्ति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। आत्माकी मूर्च्छित स्थितिमें पवित्र श्रवणादि चिनगारीका काम देते हैं। जब अन्तर्ज्ञान प्रकट होता है तब श्रवणादिकी आवश्यकता मिट जाती है। प्रह्लादमें तो अन्तर्ज्ञानका प्राचुर्य था। मनुष्यके लिए श्रवणादि पहला पाठ है।

दूसरा प्रश्न यह है:

क्या विधवाओंकी आधुनिक विपत्तिको दूर करनेके लिए भारतके सतीत्व धर्मकी ध्वजाको अवनत करनेवाले पुनर्विवाहके सिवा और कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए वे कर्म-क्षेत्रमें भाग ले सकें? भारतमें क्वाँरों तथा विधुरोंकी अपेक्षा कन्याओं तथा विधवाओंकी संख्या अधिक है; यह परिस्थिति पुनर्विवाहसे क्योंकर पूरी हो सकती है?

यह कहना कि विधवा-विवाहसे सतीत्वका नाश होता है, भ्रममूलक और भ्रमजन्य है। जो विधवा पुनर्विवाह करना चाहती है, उसको बलात् अविवाहित रखनेसे धर्म और सतीत्वका लोप होता जाता है। बाल-विधवाका विवाह ही धर्मकी और सतीत्वकी रक्षा कर सकता है। विधवाओंका आदर करनेसे, उनके लिए ज्ञान-प्राप्तिके साधन मुहैय्या कर देनेसे और उन्हें पुनर्विवाहकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता देनेसे ही ब्रह्मचर्यकी रक्षा हो सकती है। आज तो मानसिक और शारीरिक व्यभिचार व्यापक बन गया है और उसका कारण है, विधवापर होनेवाला बलात्कार। यह सिद्ध नहीं हो सकता कि लड़कियों और विधवाओंकी संख्या लड़कों और विधुरोंकी अपेक्षा ज्यादा है। कई जातियोंमें ऐसा अवश्य है। किन्तु असंख्य जातियोंका तो समाप्त होना ही इष्ट है। चार वर्णोंके अतिरिक्त कोई जाति हो ही नहीं सकती। असंख्य जातियोंकी हस्तीके लिए हिन्दू-धर्म-शास्त्रमें कोई मान्य प्रमाण नहीं है। सम्भव है कि जब जातियोंके ये विभाग बने तब उनकी कुछ उपयोगिता रही हो, आज तो न उनकी कोई उपयोगिता है, न आवश्यकता ही।

हिन्दी नवजीवन, २०-६-१९२९

६४. भाषण: अलमोड़ामें

२० जून, १९२९

आप मुझे अपने मानपत्रोंमें जो सुनाना चाहते थे सो मैंने सुन लिया। किन्तु मेरा मन इस वक्त पद्मसिंहके साथ है। पद्मसिंह उस भाईका नाम है जो मुझे मोटरमें भेंट चढ़ाने आया था और दब गया। डाक्टरको आशा थी और उसके कहनेसे मैं भी आशा करता था कि वह बच जायेगा। किन्तु जीवन डोरी टूट गई। मैंने वर्षोंसे बहुत मुसाफिरी की है, ऐसे मजमोंमें भी बहुत आया गया हूँ, और इस कारण बहुत-सा सफर मोटरोंमें भी किया है; लेकिन मेरे अन्तिम दिनोंमें यह पहला मौका है; इसका दुःख मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। मैं मृत्युसे नहीं डरता; ऐसा मैं मानता हूँ। किसी दिन मौत हम सबको आनेवाली है।··पद्मसिंह तो इस तरह मृत्युका आलिंगन

करके अमर हो गया। दुःख मुझे इस बातका है कि मैं इस घटनाका निमित्त हुआ। मैंने हमेशा स्वीकार किया है कि मोटर आदिकी सवारीसे लोगोंमें घमंड आ जाता है। मोटर चलानेवाले शोफर राजसी मिजाजके और ऐंठ रखनेवाले होते हैं। तेज मोटर चलानेवाले ऐसे मिजाजी ड्राइवरोंसे बचना चाहिए; किन्तु मैं इस मोहमें कि सेवा ज्यादा होगी उसमें सफर करता हूँ। उसका नतीजा आज मिल गया है।

तो भी मैं प्रतिज्ञा नहीं कर सकता कि आजसे मोटरोंका त्याग कर दूँगा, क्योंकि हिन्दुस्तानकी सेवा करनेका मोह नहीं छोड़ सकता। इससे सभाके सामने मैंने अपना दुःख प्रकट किया। शोफरोंको खयाल रखना चाहिए कि इतने गुस्सेमें न रहें। इस मोटरको चलानेवाला ज्यादा गुस्सेवर था, यह मैंने देख लिया था। पद्मसिंहने उसे क्षमा कर दिया और मजिस्ट्रेटके सामने जो बयान दिया वह उदार था; किन्तु मैं अपनेको और मोटरवालेको उस कुसूरसे मुक्त नहीं समझता। असल बात तो यह है कि ऐसे हुजूममें उतर जाना मेरा कर्त्तव्य था और मोटरवालेका कर्त्तव्य था तेज न चलाना। किन्तु वह अवश्य मोटर तेजीसे चला रहा था। मैं इस दुःखको कैसे भूल सकता हूँ; पद्मसिंह बहादुर था; कल वह आरामसे बातें कर रहा था। किन्तु उसके नसीबमें मौत थी और उस मृत्युको देखना मेरे नसीबमें था; वह चल बसा। आप लोग ऐसी घटनासे सावधान हो जायें। काल हम सबको अपने मुखमें रखे है और नचा रहा है। जीवन डोरी कच्चे सूतसे भी कच्ची है, थोड़े दिनमें दुनियासे मिट जाना है, तब कर्त्तव्यसे क्यों भ्रष्ट हों, क्यों काम, क्रोधमें जीवन गँवा दें?

आपने मानपत्रमें बतलाया है कि आप हिन्दुस्तानकी मुक्ति और स्वराज्य चाहते हैं। यह भी बतलाया कि स्वराज्य केवल शान्तिसे मिल सकता है। इस वास्ते आपको खयाल रखना चाहिए कि आपके कार्यमें कोई त्रुटि न हो, मार्ग सीधा है। जिला बोर्डके मानपत्रमें कहा गया है कि हम लोग बालकोंसे कताईका काम कराते हैं। मैं इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। आमदनीमें से आप ६० फीसदी तालीममें व्यय करते हैं; और यह भी कहा है कि आप इसे भी अपर्याप्त मानते हैं। आप प्रयत्नपूर्वक शिक्षाका काम कर रहे हैं। इसलिए अपना अनुभव बतलाता हूँ।

करोड़ों रुपये भी आयें तो इस तरह हिन्दुस्तानमें शिक्षा देना असम्भव है। शिक्षा स्वाश्रयी हो अर्थात् तालीमके लिए खर्चकी आवश्यकता न हो। इस तरीकेसे शिक्षा देनेमें सफल हो जानेमें दो अर्थ सिद्ध होते हैं। एक पैसेकी बचत, दूसरे सच्ची तालीमकी प्राप्ति। आज हमारे लड़के-लड़कियाँ तालीम पाते हैं और नीतिभ्रष्ट, अस्वस्थ और चंचल हो जाते हैं। अगर हम स्वाश्रयी तालीम बनायें तो उसका परिणाम ऐसा होगा कि शरीर शक्तिशाली, मन स्थिर और नैतिक चरित्र उच्च बनेगा। मैं इतनी प्रार्थना जिला बोर्डसे करूँगा कि इसका प्रयोग आप एक या दो मदरसोंमें करके देख लें; उसमें आपको निःसन्देह सफलता होगी।

थैली जो दी है उसके लिए मैं अनुग्रह मानता हूँ। कुछ भेंटें जो दी गई हैं। उनके बारेमें आपको मालूम हो गया है, मैं भेंटें लेने योग्य नहीं हूँ और निजी कामके लिए उन्हें स्वीकार भी नहीं कर सकता। ऐसा करनेसे मैं मार्ग-भ्रष्ट हो जाऊँगा,

मेरे प्रतिनिधित्वमें खामी आ जायेगी। जिला बोर्डने जो चादर और आसन दिया है, उन्हें अपवाद मान लेता हूँ। आश्रममें जो छोटा-सा संग्रहालय है उसमें आसन प्रेम और परिश्रम तथा लड़कोंके कामकी यादगार मानकर रख दिया जायेगा। ओढ़नेकी चादर प्रेमपूर्वक जाड़ेमें ओढूंगा और जिन लड़कोंने इसको बनाया है उनका स्मरण नाम न जानते हुए भी रखूंगा।

जिन्होंने अभीतक दान नहीं दिया है उनसे प्रार्थना है वे अब दे दें। उसका उपयोग भी आप लोग समझ लें। यह गरीब लोगोंके लिए कताई-बुनाईके काममें आयेगा; ऐसे गरीबोंके जो आपके बीच गरीबसे भी गरीब हैं उनसे भी गरीब हैं। हिन्दुस्तानमें १ करोड़ लोगोंको एक ही वक्त सूखी रोटी और नमक मिलता है। उनका नाम दरिद्रनारायण है। उनके वास्ते आपने ये पैसे दिये हैं।

कुली और बेगार प्रथा सन् १९२१ में बन्द हो गई थी, यह मैं जानता हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप डरना बिलकुल छोड़ देंगे, फिर डरानेवाला भले ही कोई बड़ा अफसर हो, अंग्रेज हो। जब हम अपने रास्तेसे चले जा रहे हैं तो क्यों डरें। स्वराज्यके मार्गमें डर रुकावट है। अब भाषणका समय खत्म हो गया है। सौदेके लिए भी समय माँगूँगा। मुझसे कहा गया था कि मैं इनका नीलाम न करूँ, यहाँ ऐसे लोग मौजूद हैं जो कीमत देकर ये चीज ले सकेंगे। हाँ, दो बातें और हैं उन्हें नहीं छोड़ सकता। यहाँ एक नायक कौम है जो धर्मके नामसे अधर्म करती है। बहन बेटोंसे व्यभिचार कराते हैं। मैं अदबसे कहता हूँ वह इस अधर्मको छोड़ दे। इससे हिन्दुस्तान और उन दोनोंकी हानि है। उनकी लड़कियोंका विवाह हो और उन्हें शिक्षा दी जाये। कोई औरत इस दुनियामें व्यभिचारके लिए पैदा नहीं हुई है। प्रत्येक औरतको सीताकी तरह पवित्र बनना चाहिए। इसी तरह अस्पृश्यता हमारा कलंक है। इस धब्बेको धोना हरएक हिन्दूका कर्त्तव्य है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई मिलकर रहते हैं, इसके लिए धन्यवाद है।

आज, ४-७-१९२९

६५. तार: मोतीलाल नेहरूको[1]

[२० जून, १९२९ या उसके पश्चात्]

आपका तार। ५ जुलाईको दिल्ली सुविधाजनक रहेगी ताकि रातकी गाड़ीसे रवाना हो सकूँ। कमला कैसी है?

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४०३) की फोटो-नकलसे।

१. इलाहाबादसे दिनांक १९ जूनको भेजे मोतीलाल नेहरूके तारके उत्तरमें जो ३० जूनको अल्मोड़ामें मिला था। इसमें गांधीजीसे कार्य समितिकी उस बैठकके लिए उपयुक्त तारीख और स्थान सुझानेका अनुरोध था जिसमें विधानसभाओंके कामपर विचार होना था।

६६. पत्र : महादेव देसाईको

[२१ जून, १९२९][1]

चि० महादेव,

मैं हिमालयकी गोदमें बैठा हुआ हूँ। और यह ऋषिराज अपने श्वेत वस्त्र पहने हुए सूर्य-स्नान करते-करते आनन्दमें लीन है। उसकी समाधि द्वेषके योग्य है। इस द्वेषमें भाग लेनेके लिए तुम यहाँ नहीं हो, यह बात खटकती है। किन्तु तुम्हारा स्थान वहाँ है, इसलिए इसका दुःख कुछ कम हो जाता है।

आजसे गीताके अधूरे कामकी समाप्ति आरम्भ करनेवाला हूँ।

तुमने अध्यक्षता स्वीकार करके अच्छा ही किया। ऐसे कामोंमें भी तुम्हें भाग तो लेना ही है।

वल्लभभाईसे कहना कि स्वस्थ और ताजा हुए बिना वहाँसे न चलें। 'यंग इंडिया' के लिए जो लिखो वह सारा मुझे दिखानेका आग्रह न रखना। गलतियाँ हो जायें तो हों।

सुन्दरलालने अपने ऊपरसे बोझ हटा दिया है, यह पसन्द नहीं आया। उसकी पुस्तक[2] गुजराती या अंग्रेजीमें मुझे देख लेनी चाहिए।

अब ज्यादा लिखूं तो 'गीताजी' या काकाके प्रति द्रोह करनेके बराबर होगा। मैं ज्यादा समय 'गीता'को दूं तभी यहाँका वैभव सहन हो सकेगा।

यहाँसे मंगलवार २ तारीखको रवाना होंगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

५ तारीखको दिल्लीमें कार्य-समितिके लिए और ६ तारीख रातको आश्रम। कार्य-समितिकी बैठक न हो तो ६ तारीख सुबह आश्रम पहुँचेंगे।

गुजराती (एस० एन० ११४५३)की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने गीताका अधूरा काम कौसानी पहुँचते ही २१ जून, १९२९ को पुनः आरम्भ किया था। देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", १७-६-१९२९।

२. भारतमें अंग्रेजी राज्य।

६७. तार: करीमगंज कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षको[1]

[२२ जून, १९२९ को या उसके पश्चात्]

तार अपूर्ण। अपना परिचय दें। बाढ़की तारीख लिखें। भेजनेके लिए पैसा नहीं है। प्रामाणिक तथ्य मिलनेपर जाँच के हेतु प्रतिनिधि भेज सकता हूँ। तभी आवश्यकता हुई तो अपील करूँगा।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४०४)की फोटो-नकलसे।

६८. तार: घनश्यामदास बिड़लाको

[२२ जून १९२९ या उसके पश्चात्][2]

घनश्यामदास बिड़ला
रायल एक्सचेंज
कलकत्ता

क्या आप करीमगंज असममें बाढ़की हानि जाँचनेके लिए प्रतिनिधि भेज सकेंगे?

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४०४)की फोटो-नकलसे।

१. करीमगंज कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षके तार, दिनांक २० जूनके उत्तरमें जो २२ जूनको नैनीतालमें प्राप्त हुआ। तार इस प्रकार है:

"करीमगंज, असमके चारों ओर प्रलयंकर बाढ़के कारण हजारों लोग बेघर हो गये। लोगोंने रेल-लाइनके ऊँचे बांधों और पहाड़ियोंपर शरण ली है। पांच सौ वर्ग मीलके क्षेत्रपर असर। सभी संचार-साधन अस्तव्यस्त। कई स्थानोंसे लोगोंके मरने और पशुओंके बहनेके समाचार। बाढ़ नियन्त्रण कर्मचारियोंकी कमीसे मृत्यु और भुखमरीका भय। कांग्रेस कमेटीने सहायता कार्य आरम्भ कर दिया है। एक लाख रुपयोंकी अपील है। कृपया दस हजार तुरन्त भेजें।"

२. देखिए पिछला शीर्षक।

६९. कांग्रेस और खादी

श्री चिनाई लिखते हैं :[१]

हमने जैसा बोया है, वैसा ही काट रहे हैं। खादीके प्रचार-कार्यमें हमने अबतक शिथिल रहकर काम किया; ये कठिनाइयाँ उसीका परिणाम हैं। लोगोंको अज्ञानमें रखकर सदस्य बनानेकी सलाह तो मैं किसी भी हालतमें नहीं दूँगा। लेकिन यह कहकर मैं लोगोंकी तरफ पत्थर भी न फेंकूँगा कि 'आप सदस्य बनिये, मगर जबतक खादी न पहनेंगे मताधिकार न मिलेगा।' मैं उनके हाथमें सरल समझने योग्य पत्रिका दूँगा, उसमें कांग्रेसके खादी सम्बन्धी नियम होंगे और मैं उन्हें सदस्य बननेके लाभ और कर्त्तव्य समझाऊँगा। हमारा हेतु लोगोंको भड़कानेका नहीं, वरन् उन्हें कांग्रेसकी ओर आकर्षित करनेका है। विद्यार्थी और वकील वर्गका सवाल टेढ़ा है। वे सब-कुछ समझते हैं। किन्तु अगर उन्हें खादी प्यारी नहीं है, तो उन्हें कैसे समझाया जाये? फिर मैं तो उनसे यही कहूँगा : 'अगर आप कांग्रेसको एक महान शक्ति समझते हों और खादीमें विश्वास न रखते हों तो कांग्रेसमें आइए, नियमपालनकी दृष्टिसे खादी पहनिए और खादीके नियमको रद करानेकी कोशिश कीजिए। कांग्रेसका काम बहुमतसे होता है, अतएव जबतक खादीका नियम रद न हो तबतक उसका पालन कीजिए, या मताधिकारका मोह छोड़कर कांग्रेसकी सेवा करके, उसकी सदस्यताका गौरव प्राप्त कीजिए।' यदि वे इतना भी न समझें तो मैं समझ लूँगा कि वे कांग्रेसमें या किसी अन्य संगठनमें रहने योग्य नहीं हैं। क्योंकि संगठनमें शामिल होनेकी पहली शर्तका पालनतक वे नहीं समझते। संस्थामें शामिल होते हुए वे ऐसा जानते हैं, मानों उन्होंने उसपर उपकार किया हो। ऐसे सहायक न कांग्रेसकी सेवा कर सकते हैं, और न स्वराज्य-प्राप्तिमें उनसे कुछ मदद ही मिल सकती है। उनके अभावमें कांग्रेसकी किसी तरह हानि होनेकी सम्भावना नहीं है। वे जिस संस्थामें जायेंगे, बोझ बनकर रहेंगे। कार्यकर्त्ताओंका धर्म है कि वे वकील और विद्यार्थियोंसे विनती करें, मगर इतनेपर भी अगर वे न समझ सकें तो उनके अभावमें भी काम कर लेना चाहिए। इन लोगोंसे तो मैं यही कहूँगा कि उन्हें—जैसा भाई चिनाई कहते हैं—हठ नहीं करना चाहिए।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने जो सूरत कांग्रेस कमेटीके मन्त्री थे, लिखा था कि हमने १७५० सदस्य बनानेका निर्णय किया है। इस समय केवल ७० खादीधारी सदस्योंके नाम दर्ज थे। खादीधारी हुए बिना सदस्य किसी कार्यकारी पदके लिए खड़ा नहीं हो सकता, यह नियम सदस्य-संख्या बढ़नेके आड़े आ रहा है; यहाँतक कि स्थानीय युवक संघके अध्यक्ष भी इसीलिए सदस्य नहीं बने। और इस नियमको बताये बिना सदस्य बनाना तो अनुचित है। प्रश्न किया गया था कि ऐसी अवस्थामें क्या किया जाये?

हमारा सच्चा काम तो उन लोगोंतक पहुँचना है, जिनकी अबतक हमने उपेक्षा या अवगणना की है। वे हैं व्यापारी, कारीगर, किसान और मजदूर। मैं मानता हूँ कि युवक-संघके अध्यक्षने जो दलीलें पेश की हैं, इन वर्गोंके लोग वैसी दलीलें पेश नहीं करेंगे। इनके बीच प्रचारके लिए बनाई गई पत्रिकाओंमें कांग्रेसका आरम्भसे लेकर अबतक का इतिहास हो, उसके खास-खास कार्योंका वर्णन हो और शामिल होनेसे होनेवाले लाभ बताये गये हों। इतनेपर भी अगर ये लोग सदस्य न बनें तो हमारा यह आन्दोलन ही राजनैतिक लोक-शिक्षाका काम देगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि जहाँ कांग्रेसके सेवकोंने काम किया है, और लोग उन्हें जानते हैं, वहाँ तो इन वर्गोंको कांग्रेसमें शामिल करनेमें जरा भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

अब रही यह बात कि 'सब-कुछ करनेपर भी लोग खादीकी धाराके कारण सदस्य न बनें तो?' तब तो फिर यही बचा कि कांग्रेससे कहकर खादीका नियम रद कराया जाये। अथवा यदि खादीको कीमत स्वयं स्वराज्यके समान ही समझते हों, तो जबतक लोग खादीको न अपना लें तबतक धीरज रखें। भारतमें ऐसे लोगोंकी कमी कहाँ है जो कहते हैं: "हमें स्वराज्य नहीं चाहिए?" तिसपर भी अगर स्वराज्यका अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता कहा जाये तो और भी अधिक लोग डर जायेंगे। इतना होनेपर भी स्वराज्य ही जिनका श्वास है, वे अपने स्वराज्यकी शर्तोंको ढीली तो नहीं ही करेंगे।

खादीकी धाराके बारेमें मैं स्वयं तटस्थ हूँ। मेरे लिए खादी प्राण है। अतएव मैं तो जहाँ जाता हूँ, खादी देखना चाहता हूँ। लेकिन मेरा कोई आग्रह नहीं है कि खादीका नियम कांग्रेसके संगठनमें रहे ही। अगर दूसरे साथियोंको खादीमें मेरे समान विश्वास न हो, और उनकी दृष्टिसे इस नियमके कारण कांग्रेसके काममें रुकावट होती हो, तो खादीका नियम निकाल डाला जा सकता है। खादीका प्रचार तो उसके बिना भी होता ही रहेगा। और मेरा यह विश्वास अटल रहेगा कि हम जितने गज खादी अधिक बनायेंगे उतने गज स्वराज्य निकट आयेगा। मेरे विचारमें खादीहीन स्वराज्य बाँझके पुत्र-जैसा होगा, क्योंकि उससे तीस करोड़ जनताका कोई सम्बन्ध न रहेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-६-१९२९

७०. मौर्य साम्राज्य और अस्पृश्यता

एक पाठकने नीचे लिखा विचारणीय उद्धरण भेजा है[1]:

> **चन्द्रगुप्त मौर्यके साम्राज्यमें १८ मन्त्री होते थे। उनमें मुख्यमन्त्री ब्राह्मण होता था। मुख्य ब्राह्मण प्रधानके अधिकारोंके उल्लेखमें आचार्य चाणक्यकी एक आज्ञा यों है: "जो पुरोहित द्वारा आज्ञाके देनेपर भी अस्पृश्यको वेद न पढ़ाये, अस्पृश्यको यज्ञ करा देनेसे इनकार करे, वह अपनी जगहसे हटा दिया जाये।" चन्द्रगुप्तके राज्यमें अस्पृश्यता हद दर्जेको पहुँच गई, मगर उस समय भी यह नियम था; यह बात विशेष रूपसे दृष्टव्य है।**

पाठकने ऊपरका उद्धरण 'मौर्य साम्राज्यका इतिहास' नामक पुस्तकमें से लिया है। इस उद्धरणसे पता चलता है कि अस्पृश्यताके खिलाफ होनेवाला आन्दोलन कोई अर्वाचीन एवं नई बात नहीं हैं। पूर्वज भी उसके मुकाबलेमें खड़े हुए हैं। यह विष-वृक्ष जड़मूलसे उखाड़ फेंकने योग्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-६-१९२९

७१. 'नवजीवन' के बारेमें सुझाव

एक 'नवजीवन' प्रेमी लिखता है:[2]

मैं इस सुझावका विरोध नहीं करता। जबसे 'नवजीवन'ने साप्ताहिकका रूप लिया है और मेरे हाथमें आया है तबसे उसकी मर्यादा निर्धारित कर दी गई है। इस मर्यादाका कारण है मेरी शक्तिकी सीमा। समाचार देना भी कला है। 'इंडियन ओपिनियन'के लिए मैंने उसे खास तौरपर सीखा था। मैं कमसे-कम स्थानमें ज्यादासे ज्यादा समाचार देता था और मैंने अपने साथियोंको भी ऐसा करना सिखाया था। वहाँ ऐसा करना जरूरी था। यहाँ 'नवजीवन'का काम दूसरी तरहका है। यहाँ समाचार देनेवाले अखबारोंकी कमी नहीं है। 'नवजीवन' छापनेके पीछे मन्शा उसे खबर देनेवाले पत्रकी तरह निकालनेकी नहीं थी। 'नवजीवन' द्वारा सत्याग्रह, अहिंसा इत्यादिका प्रचार करना था। उसमें उसे अच्छी सफलता मिली है, ऐसा कहा जा सकता है। 'नवजीवन'को समाचारपत्र बना डालनेमें दोनों उद्देश्योंपर आँच आनेका भय था। आज भी यह भय मौजूद है। फिर आज दस वर्ष पहले मुझपर जितना

१. अंशतः उद्धृत।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पाठकका सुझाव था कि **इंडियन ओपिनियन**की तरह **नवजीवन**में भी एक दो स्तम्भोंमें वर्तमान समाचार दिये जायें।

बोझ था, उससे ज्यादा बोझ है। इसलिए मैं स्वयं तो यह काम नहीं कर सकता। यदि समाचार देनेका फैसला करूँ तो 'नवजीवन' की छपाई आदिका खर्च भी बढ़ाना पड़ेगा। उसका आकार भी शायद बड़ा करना पड़े। ऐसे नये कुशल व्यक्तियोंको नियुक्त करना पड़ेगा जिनका काम खबर देना ही हो। सामान्य कोटिके मनुष्यसे खबरें देनेका काम ठीक तरहसे नहीं बन सकता। इसलिए 'नवजीवन प्रेमी' खबरें देनेके कामको जितना आसान मानते हैं वह उतना आसान नहीं है।

खबर देनेका काम कठिन है, मैं यह मानते हुए भी प्रस्तुत सूचनाको एकदम दरकिनार नहीं कर देना चाहता। इसलिए नीचेके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर द्वारा पाठकोंका अभिप्राय जानना चाहता हूँ।

१. क्या आपको भी 'नवजीवन' प्रेमीका सुझाव पसन्द है?

२. यदि है तो क्या आकार बढ़ाना जरूरी मानते हैं; या इसी आकारसे ही काम चल जायेगा?

३. क्या आपको 'नवजीवन' के अतिरिक्त दूसरे पत्रोंको पढ़कर आवश्यक समाचार प्राप्त नहीं होते?

इन तीनों प्रश्नोंका उत्तर पाठक मुझे पोस्टकार्डपर लिखकर भेजें तो काफी होगा। पोस्टकार्ड लिखें तो पोस्टकार्डके बायें कोनेपर और लिफाफा भेजें तो लिफाफेके बायें कोनेपर 'नवजीवनके बारेमें' लिख दें जिससे यह पत्र मुझे जरूर मिल जाये। जितने पत्र मेरे नाम आते हैं उन सबको मैं पढ़ता हूँ, ऐसा सोचनेकी भूल तो कोई पाठक नहीं करता होगा। मेरे हाथ तो वही पत्र आते हैं जो मेरे साथियोंको लगता है कि मुझे पढ़ने ही चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-६-१९२९

७२. तार: मोतीलाल नेहरूको[1]

[२३ जून, १९२९ या उसके पश्चात्]

आपका तार। निःसन्देह मैंने पाँच तारीख सुझाई थी, पन्द्रह नहीं।[2]

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४०५)की फोटो-नकलसे।

१. २३ जूनको प्राप्त उनके तारके उत्तरमें।

२. "तार: मोतीलाल नेहरूको" २०-६-१९२९ के अनुसार।

७३. पत्र : मीराबहनको

२४ जून, १९२९

चि० मीरा,

यह ठीक ही है कि तुम नहीं चाहती कि जो हुआ उसके बारेमें कल मैं तुमसे कुछ कहूँ। वैसे यह ठीक है। लेकिन कल तुमने जो दृश्य उपस्थित किया उसे देखकर मैंने अपने विचारोंको लिख डालना तो सोचा ही था। वही मैं कर रहा हूँ।

उक्त दृश्य मेरे कथनकी पुष्टि करता है। सहजभावसे कही मेरी बातपर कोई भी व्यक्ति आत्महत्याकी नहीं सोच सकता था। यह सही है कि तुम, कभी-कभी मेरे साथ दौरोंमें रहना चाहती हो और अपना काम छोड़कर कमसे-कम चार महीनेमें एक बार आश्रम आना चाहती हो। अपनी इन इच्छाओंको तुम अपनी कमियाँ भी मानती हो। मैं यह सब समझ सकता हूँ किन्तु मैं जब यह कहता हूँ — इसे मैं सच भी समझता हूँ — कि ये इच्छाएँ खुद बीमारी तो नहीं हैं लेकिन इनसे ऐसी बीमारीके लक्षण जरूर प्रकट होते हैं जिसकी जड़ें गहरी हैं और जिनपर अभी कोई ध्यान नहीं दिया गया है, तो तुम परेशान क्यों हो जाती हो। अगर तुम ऐसी नहीं हो जैसा मैंने बताया है तो उक्त रोगकी तरफ मेरे द्वारा तुम्हारा ध्यान खींचे जानेपर तुम्हें प्रसन्नता होनी चाहिए और तुम्हें साहसके साथ उसे दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए। इसके बजाय तुम्हारे तो हाथ-पाँव बिलकुल ढीले ही पड़ गये। इसपर मुझे चिन्ता है, खेद है।

इस रोगको बुतपरस्ती कहते हैं। यदि ऐसा न हो तो मेरे साथ रहनेकी ऐसी बेचैनी क्यों। ऐसे पैरोंको छूने या चूमनेका क्या अर्थ है जो एक-न-एक दिन ठंडे हो जायेंगे? शरीरमें क्या धरा है? जिस सत्यका मैं प्रतिपादन करता हूँ वह तुम्हारे सामने है। वह तुम्हारे सामने अनुभव और प्रयत्न द्वारा ही खुलेगा। जैसा तुम चाहती हो, मेरे वैसे सम्पर्कसे कदापि नहीं। जब वह काम करते-करते तुम्हें प्राप्त होगा तब दूसरोंकी तरह तुम भी उससे लाभान्वित हो सकोगी — बल्कि अपनी श्रद्धाके कारण तुम्हें और भी अधिक मिलेगा। इतनी निरीह बनकर मेरे भरोसे क्यों रह रही हो? सब-कुछ मेरी प्रसन्नताके लिए ही क्यों करती हो? बिना मेरे सहारेके, यहाँ तक कि मेरे बावजूद कुछ क्यों नहीं हो सकता? मैंने केवल उन पाबन्दियोंको छोड़कर जिन्हें तुमने स्वयं स्वीकारा है, तुमपर कोई पाबन्दी नहीं लगाई। अगर तुम चाहो और तोड़ सको तो मूर्तिके टुकड़े-टुकड़े कर दो। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकती तो मैं तुम्हारे साथ कष्ट भोगनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन मुझे तुम्हें चेतानेका अधिकार तो देना ही चाहिए।

मेरा निदान गलत भी हो सकता है। अगर ऐसा हो तो अच्छा है। टूटनेके बजाय मेरे साथ प्रसन्न रहकर संघर्ष करो। तुम्हारे सिवाय अन्य सभी लोग मेरे वार सह लेते हैं और उनके तार ढीले नहीं पड़ते।

अगर अबतक तुम्हारा प्रयत्न सफल नहीं हुआ है तो इससे क्या होता है? तुमने अभीतक लक्षणोंका यन्त्रवत् उपचार किया है और उसमें तुम्हें उल्लेखनीय सफलता मिली है। यदि मैं यह कहता हूँ कि तुम अभीतक जड़तक नहीं पहुँच सकी हो तो इसमें रोनेकी क्या बात है। मुझे तुम्हारी असफलता होते रहनेसे चिन्ता नहीं होती। असफलताएँ तो सफलताकी सीढ़ियाँ हैं। पुनः न गिरनेके निश्चयके साथ तुम्हें ऊपर उठना है।

मेरी बात पूरी हुई। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३७८)से तथा (जी० एन० ९४३४)से भी।
सौजन्य : मीराबहन

७४. पत्र : छगनलाल जोशीको

मौनवार, [२४ जून, १९२९][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हारे पत्र मिल गये हैं।

मेरे सामने हिमालयके शिखर बर्फमें स्नान कर रहे हैं और सूर्यके प्रकाशमें जगमगा रहे हैं। नीचे छोटे पहाड़ोंकी हरी-भरी सुन्दर श्रेणियाँ हैं; मानो उन्होंने लाजमें अपने आपको हरियालीसे ढँक लिया हो। यहाँका एकान्त अनुपम है। यहाँ सात-आठ दिन रहना है। इतना वैभव किसी कामके बीचमें ही सहन किया जा सकता है। काम काकाने भेज दिया है और यह प्रबन्ध भी उसीका सुझाया हुआ है। उसने देवदास और प्रभुदासपर यह निर्णय लेनेका जोर दिया था और मैंने जितना बने उतना समय 'गीता'में लगानेका निश्चय करके इस वैभवको स्वीकार किया है। इसलिए इस सप्ताह कमसे-कम पत्र लिखूँगा और 'यंग इंडिया' के लिए भी जितना कम काम कर सकूँ उतना ही करूँगा। इसलिए सभी सामान्य पत्र तो बन्द ही रखूँगा।

तुम अवकाश लेना चाहते हो। वह मैं वहाँ आते ही दे दूँगा। तुम तैयार रहना। जो-कुछ मुझे पूछना हो उसके बारेमें लिखकर रखना। तुम्हारी गैरहाजिरीमें कौन तुम्हारा काम सँभालेगा यह देख लेना। रमणीकलाल सँभाले तो अच्छा है। आराम कहाँ जाकर करना है, इसका भी विचार कर लेना।

कट्टो वगैरा जैसा करते हैं वैसा तो बहुत-से लड़के करते हैं। अपने दोषोंके लिए गिरिराज तो जवाबदेह है ही। उसका पत्र इस मामलेपर नया प्रकाश डालता है।

१. लगता है कि यह पत्र कौसानी पहुँचनेके बाद आनेवाले मौनवारको लिखा गया होगा।

थानेकी जमीन बिके तो बेच डालें। धोलकाकी दूसरी शर्तें तो कबूल हो सकती हैं पर चमड़ा कमानेकी मनाहीवाली शर्त नहीं[1]। जो दुग्धालय चमड़ेका काम न करे उसके साथ सम्बन्ध रखना एक बात है और किसी गोशालाका मालिक होना दूसरी बात है। फेडिस्टके लिए 'धुनी'–'सनकी' शब्द ठीक है।

वायडो (हठी) – स्टूपिडली ओबस्टीनेट

चक्रम (पागल) – मेडकैप

अंग्रेजी 'शब्द' में दो 'डी' हैं क्या?

काका साहबका लेख देखकर वापस भेज रहा हूँ। मैंने तो एक सदस्यके नाते अपनी राय दी है। तुम सबको ठीक लगे तो यह नाम रख दें।

सुबैयाको जैसे वेतन देते थे वैसे भेजते रहना। उसे राजाजीको बगैर ब्याजके उधार दिया है।

स्वामीको दिये गये तारकी नकलमें हिज्जों वगैराकी भूलें हैं। तार तो ऐसा नहीं गया है न?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यहाँसे २को चलेंगे। ५ तारीखको दिल्ली। ६ तारीख सवेरे या शामको आश्रम। डाक तो सिर्फ अलमोड़ा ही भेजना।

गुजराती (जी० एन० ५४२६)की फोटो-नकलसे।

७५. पत्र : प्रभावतीको

मौनवार [२४ जून, १९२९][2]

चि० प्रभावती,

तुम्हारा पत्र मिला है। नियमोंका पालन करती हो यह तो अच्छा है। पिताजीसे सारी बात कर लेना। हम एक एकान्त स्थलमें हैं; और आठ दिन यहीं रहेंगे। 'गीता' को पूरा करना है, इसलिए ज्यादा नहीं लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३५०)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "तार स्वामीको", पृष्ठ ६४ भी।
२. गीताके उल्लेखसे। देखिए पिछला शीर्षक भी।

७६. तार : मुहम्मद अली अन्सारीको[1]

[२४ जून, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

डॉ० अन्सारी
दरियागंज
दिल्ली

आमन्त्रण हेतु महामहिम (हिज हाइनेस) को धन्यवाद दें। सितम्बरके पूर्व भोपाल आना सम्भव नहीं लगता। छः जुलाईको आश्रम पहुँचना अनिवार्य।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४०६)की फोटो-नकलसे।

७७. पत्र : प्रभावतीको

२५ जून, १९२९

चि० प्रभावती,

कल डाकमें पत्र[2] भेजनेके बाद तुम्हारा पत्र मिला। खाँसीको तो दूर करना ही चाहिए। उसके लिए सभी वैद्योंके पास मामूली-सी दवाएँ रहती हैं। डाक्टरोंके पास भी रहती हैं। किसीसे भी ले लेना। किसी डाक्टरको गला दिखा देना। क्या जयप्रकाश अमेरिकासे रवाना हो चुका है। यदि वह अभी न आ रहा हो या आनेके बाद सहमत हो तो तुम आश्रम आकर गीता और अंग्रेजीका अध्ययन पूरा कर सकती हो। इस बीच उसके हिन्दी अनुवादका हर शब्द अलग लेकर उसका अर्थ समझना। इस प्रकार उच्चारणकी कई भूलें सुधर जायेंगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यहाँसे दो तारीखको रवाना होंगे और ६ को आश्रम पहुँचेंगे।

गुजराती (जी० एन० ३३४९)की फोटो-नकलसे।

१. २४ जूनको अलमोड़ामें मिले। लाहौरसे २३ जूनको भेजे गये तारके उत्तरमें।
२. देखिए पृष्ठ ८०।

७८. तार: क्लोएट्जको[1]

[२६ जून, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

छः को आश्रम पहुँच रहा हूँ तबतक कहीं भी मिलना कठिन।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४०८)की माइक्रोफिल्मसे।

७९. अनूठा मानपत्र

आन्ध्रके दौरेके दिनों लिये गये नोट अब तक अनदेखे पड़े हैं, परन्तु उनमें से मुझे नल्लागाका की एस० एल० एन० फैक्टरीके मजदूरों द्वारा दिये गये एक अनूठे किन्तु शिक्षाप्रद मानपत्रके निम्नलिखित उद्धरणोंपर मेरी नजर पड़ी है:

> **हमने पहली बार १९१६ में भापकी शक्तिसे चलनेवाली विदेशी मशीनों द्वारा अपनी रुईकी ओटाई होते देखी थी। तबतक इन इलाकोंमें ओटाईका काम हाथकी मशीनोंसे किया जाता था। उन दिनों गर्मीके तीन महीने हमारे पास पर्याप्त काम रहता था, जिससे हम अपनी और अपने बच्चोंकी गुजर-बसर कर लेते थे। हमारी यह फैक्टरी अब बीस गाँवोंमें पैदा होनेवाली रुईकी ओटाई कर सकती है; और अब हम लोगोंमें से इने-गिने लोगोंको ही काम मिल पाता है।**
>
> **सन् १९२० के आसपास जब आप मुसीबतमें पड़े हारे-थके उत्तरी भारतमें हाथ-बुनाईके पुनरुद्धारका काम शुरू कर रहे थे, तब इस भागमें बसनेवाले किसानों और मजदूरोंमें चन्द ही ऐसे थे जो अपने दैनिक उपयोगके लिए कपड़ा खरीदनेमें समर्थ थे। आठ वर्ष बीत चुके हैं। मिलोंका बना सूत बाजारमें आ गया है। उसके इस सस्तेपन और एकसार सूतने हमें आकर्षित किया है। अपने-आपमें केवल बुननेका कोई महत्व नहीं रहा। अब हम लगभग स्थानीय बुनकरों द्वारा, मुख्यतः मिलके सूतसे बुने हुए, कपड़ोंको खरीदनेकी स्थितिमें आ गये हैं। ये बुनकर अधिकांशतः दलित वर्गोंके होते हैं। हम अब भी यह मानते हैं कि मिलका बना कपड़ा और विदेशी कपड़ा पहनना एक ऐसी फिजूलखर्ची है जिसे ब्राह्मण और वैश्य समाज बर्दाश्त कर सकते हैं। दैनिक प्रयोगके लिए विदेशी**

१. अहमदाबादसे २४ जूनको भेजे गये उनके तारके उत्तरमें जो अलमोड़ामें २६ जूनको प्राप्त हुआ था। तार इस प्रकार था: "कृपया आश्रमके पतेपर तार। इस सप्ताह कब और कहाँ मिल सकता हूँ।"

वस्त्रोंका प्रयोग करनेमें यही तबके सबसे आगे रहे हैं। हमारा आज भी यही विश्वास है कि खादीके वस्त्र ही उत्तम होते हैं; यदि खादी उचित मूल्यपर सुलभ हो तो हम उसे ही खरीदना अधिक पसन्द करेंगे।

इन इलाकोंमें हम लोग आम तौरपर आठ फलोंवाला चर्खा प्रयोगमें लाते हैं, जिसकी धुरी लोहेकी होती है और हर तरहसे लैस ऐसा चर्खा ६ रु०में पड़ता है। कपास ओटनेकी हाथकी मशीन डेढ़ रुपये, बिनौला-रहित २० तोला कपासकी लागत चार आने, तकलीकी कीमत ६ पाई, ५२ तोला रुईकी धुनाई ६ से ८ आने, २० तोला रुईकी कताई २ आने, ३०' × २७" नापके वस्त्रकी बुनाईके लिए सूत तैयार करनेकी मजदूरी ३ आने, ३०' × २७" नापके वस्त्रकी बुनाई १ रुपया, १०½' × ३०" का वजन लगभग ३० तोला और ३०' × ३०" की जनानी साड़ीका वजन लगभग १४० तोला होता है। धुनाई व्यावसायिक धुनियों द्वारा की जाती है। धुनकने और बुनाईकी मजदूरी अक्सर जिलेकी प्रमुख फसल चोलमके रूपमें चुकाई जाती है। खेतसे कपासकी चुनाई करनेवाले मजदूरोंको मजदूरीके रूपमें कपास ही दिया जाता है। सौभाग्यसे आप कताईके मौसममें ही इलाकेमें पधारे हैं। आप देखेंगे कि आधुनिक सभ्यतासे सर्वथा अपरिचित और अशिक्षित कुछ ग्रामवासी अब भी चर्खा चलाते हैं।

यद्यपि हमारी संख्या बहुत थोड़ी (केवल ५०) है, फिर भी हमारे बीच जिलेके सभी महत्वपूर्ण धर्मोंके अनुयायी मौजूद हैं। इसके अलावा हिन्दुओंकी सभी जातियों एवं उपजातियोंके लोग भी हमारे अन्दर हैं। भोजन और पेय-जलके मामलेमें हम छुआछूत मानते हैं। हिन्दुओंकी एक जातिके लोग दूसरी जातिके हिन्दुओंके हाथका पानी नहीं पीते। दलित वर्गमें चारसे अधिक उप-जातियाँ हैं। एक उपजातिके लोग दूसरी उपजातिके लोगोंको पीनेके पानीके कुएँपर नहीं चढ़ने देते। दलित वर्गोंके इन लोगोंको गाँवके बाहर रहना पड़ता है। इनके प्रमुख व्यवसाय हैं — सफाई करना, कताई, बुनाई और जूता बनाना।

इस इलाकेमें मुहर्रम (हम केवल गाँवोंकी बात कर रहे हैं) मुख्य रूपसे हिन्दुओंके पैसे और सहायतासे मनाया जाता है। इसी प्रकार मुसलमान भी त्यौहार मनानेमें हिन्दुओंकी सहायता करते हैं। जुलूसोंमें कुछ मुसलमान तो हिन्दू देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ अपने कन्धेपर रखकर चलते हैं। हिन्दू लोग मुसलमान सन्तोंकी पूजा करते हैं और उनमें कई लोगोंके मुसलमानी ढंगके नाम भी होते हैं। इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दू देवताओंकी पूजा करते हैं और हिन्दुओं जैसे नाम रखते हैं। इस प्रकार, अशिक्षित होते हुए भी हम लोग संस्कृतकी इस उक्तिका अनुसरण करते हैं:

"आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

दूधके लिए मुख्यतः भैंसें पाली जाती हैं। गो-पालन बहुत कम है। (खेती के लिए बैल उत्तरी क्षेत्रसे मँगाये जाते हैं।) हमारे पास काफी चरागाहें नहीं हैं। किसानों द्वारा गोपालन न करनेका शायद यही प्रमुख कारण है।

मजदूरों और किसानोंमें बड़े पैमाने पर शराबखोरीकी लत है। ईश्वरकी कृपासे हममेंसे कोई भी आदतन शराब नहीं पीता। वर्षमें कमसे कम तीन माह तक मलेरिया, मोतीझारा और हैजेका प्रकोप रहता है।

हड़तालें, अ० भा० चरखा संघ, कांग्रेस, स्वराज्य, हिन्दू-मुसलमानका सवाल, ये सभी शब्द या फिकरे, हम देहाती लोग आम तौरपर समझते ही नहीं। न तो कोई हमें समझानेका प्रयत्न करता है और न ही हम इतने साक्षर हैं कि इनके बारेमें कुछ जान सकें।

हम सब आज इसलिए एकत्र हुए हैं कि आप हमारी ओरसे थोड़ेसे पैसोंकी भेंट स्वीकार करें, जो आपके सार्वजनिक कार्यमें काम आ सकते हैं। इस इलाकेमें पैदा होनेवाली कपास और उससे बनी वस्तुओंके कुछ नमूने भी हम भेंट कर रहे हैं जिससे आप उसकी किस्मका अनुमान लगा सकें। हम आशा करते हैं कि आप प्रभुसे हमारे स्वास्थ्यके लिए प्रार्थना करेंगे ताकि हम ईमानदारीके साथ अपनी रोजी कमानेके लिए रोज-रोज मेहनत करते रहें।

मैंने इसकी भाषाको मूलकी अपेक्षा थोड़ी कुछ पठनीय बनानेकी कोशिश की है। इसकी सबसे बड़ी खूबी है—बिल्कुल सीधी बात कहना, थोड़ी विनोदप्रियताका पुट और प्रतिकूल परिस्थितियोंके बावजूद स्थितिकी सही-सच्ची पकड़। सचमुच यह बात आश्चर्यजनक है कि चरखेके सन्देशसे जिनके स्वार्थ टकराते हैं वे लोग भी सन्देशकी सचाई कैसे महसूस कर लेते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि देशके करोड़ों लोगोंके इस सहायक या अनुपूरक धन्धेको तबाह करनेकी और इस प्रकार उनको भुखमरीकी आगमें ढकेलनेकी जिम्मेदारी किस तरह तथाकथित उच्च वर्गोंपर ही आती है। अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धोंके बारेमें उनकी उक्तियाँ भी कम शिक्षाप्रद नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-६-१९२९

८०. अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले बिहार सरकारने अपने शिक्षा-विभागमें पाठशालाओंमें होनेवाले अप्राकृतिक व्यभिचारके सम्बन्धमें जाँच करवाई थी। जाँच-समितिने इस विकृतिको शिक्षकोंतक में पाया और देखा कि वे अपनी अस्वाभाविक वासनाकी तृप्तिके लिए विद्यार्थियोंके प्रति अपने पदका दुरुपयोग करते हैं। शिक्षा विभागके निर्देशकने एक गश्ती-पत्र द्वारा शिक्षकोंमें पाये जानेवाले इस दोषके प्रतिकारका आदेश भी निकाला था। उसका यदि कोई परिणाम हुआ हो तो अवश्य ही हम उसके बारेमें जाननेको उत्सुक हैं।

मेरे पास इस सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे पत्रादि भी आयें हैं, जिनमें ऐसी बुराइयोंकी तरफ मेरा ध्यान खींचा गया है और कहा गया है कि वह प्रायः भारत-भरमें तमाम सार्वजनिक और खानगी मदरसोंमें फैल गया है और बराबर बढ़ रहा है।

यह कुटेव यद्यपि अस्वाभाविक है तथापि यह अनन्तकालसे विरासतमें चली आ रही है। गुप्त रूपसे की जानेवाली सभी खराबियोंका इलाज ढूँढ़ निकालना एक बहुत ही कठिन काम है। और जब बालकोंके संरक्षक भी इसकी लपेटमें आ चुके हों तब यह और भी कठिन हो जाता है। प्रश्न उठता है कि "अगर रक्षक ही भक्षक हो जाये तो फिर प्राण कैसे बचें?" मेरी रायमें जो बुरे कृत्य सामने आ चुकते हैं, उनके सम्बन्धमें विभागकी ओरसे बाजाब्ता कार्रवाई करना ही इस बुराईके प्रतिकारके लिए काफी न होगा। इस सम्बन्धमें लोकमतको सुगठित और संस्कृत बनाना इसका एकमात्र उपाय है। लेकिन इस देशके कई मामलोंमें प्रभावशाली लोक-मत-जैसी कोई बात है ही नहीं। राजनैतिक जीवनमें असहायता या बेबसीकी जिस भावनाका एकछत्र राज्य है उसने देशमें जीवनकेसब क्षेत्रों पर अपना असर डाल रखा है। अतएव जो बुराई हमारी आँखोंके सामने होती रहती है, उसे भी हम देखी-अनदेखी कर देते हैं।

जिस शिक्षा प्रणालीका केवल साहित्यिक योग्यतापर ही जोर है, वह इस बुराईको रोकनेके लिए अनुपयोगी ही नहीं है, बल्कि उससे ऐसी बुराइयोंको उत्तेजना तक मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओंमें दाखिल होनेसे पहले निर्दोष थे, देखा गया है कि शालाके पाठ्यक्रमके समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण और निकम्मे हो जाते हैं। बिहार समितिने बालकोंके मनपर धार्मिकताके प्रति आदरभाव जगानेकी सिफारिश की है। लेकिन बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बाँधे? शिक्षक ही धर्मके प्रति आदर भावना पैदा कर सकते हैं। लेकिन वे स्वयं इससे शून्य हैं। अतएव प्रश्न शिक्षकोंके योग्य चुनावका प्रतीत होता है। मगर शिक्षकोंके योग्य चुनावका अर्थ होता है, या तो उनका वेतन अबसे कहीं बहुत अधिक निश्चित किया जाये या फिर शिक्षणके ध्येयका कायापलट किया जाये यानी शिक्षाको एक पवित्र कर्त्तव्य मानकर

शिक्षक उसके प्रति अपना जीवन अर्पण कर दें। रोमन कैथोलिकोंमें यह प्रथा आज भी विद्यमान है। स्पष्ट ही पहला उपाय तो हमारे जैसे गरीब देशके लिए असम्भव है। मेरे विचारमें हमारे लिए दूसरा मार्ग ही रह जाता है। लेकिन वह भी उस शासन-प्रणालीके अधीन रहकर सम्भव नहीं है जिसमें हर चीज खरीदी या बेची जाती है, और जो दुनिया-भरकी सबसे-ज्यादा महँगी प्रणाली है।

अपने बालकोंके नैतिक सुधारके प्रति माता-पिताओंकी लापरवाहीके कारण इस बुराईको रोकना और भी कठिन हो जाता है। वे तो बच्चोंको शालामें भेजकर अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री मान लेते हैं। इस तरह हमारे सामने जो परिस्थिति है वह बहुत ही निराशाजनक है। लेकिन यह सोचकर आशा भी बँधती है कि तमाम बुराइयोंका एक रामबाण उपाय है; और वह है — आत्मशुद्धि। बुराईकी प्रचण्डतासे घबरा जानेके बदले हममें से हरएकको पूरी-पूरी सावधानीके साथ अपने आसपासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिए और अपने-आपको ऐसे निरीक्षणका प्रथम और मुख्य केन्द्र बनाना चाहिए। हमें यह कहकर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि हममें दूसरोंकी-सी बुराई नहीं है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतन्त्र चीज नहीं है। वह तो एकमात्र रोगका भयंकर लक्षण-भर है। अगर हममें अपवित्रता भरी है, अगर हम वासना-दृष्टिके कारण पतित हैं तो पहले हमें आत्मसुधार करना चाहिए और तभी पड़ोसियोंके सुधारकी आशा रखनी चाहिए। आजकल तो हम दूसरोंके दोषोंके निरीक्षणमें बहुत पटु हो गये हैं और अपने-आपको अत्यन्त निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचारका प्रसार होता है। जो इस बातके सत्यको महसूस करते हैं, वे इससे छूटें तो उन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति आसान तो कभी नहीं होते तथापि वे बहुत कुछ सम्भाव्य हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-६-१९२९

८१. दुःखद मृत्यु

पिछले लगभग तीस बरसोंसे मेरा जीवन लाखोंकी भीड़-भाड़ और अनवरत कोलाहलके बीच बीता है। मगर मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी कोई गम्भीर आकस्मिक घटना हो गई हो, हाँ, वह होते-होते तो कई बार बची है। लेकिन गत ता० १८के दिन मैं अलमोड़ा पहुँचा और वहाँ एक विशाल सभा हुई; उसकी समाप्तिके बाद जब अपने मुकामपर लौट रहा था, पद्मसिंह नामका एक ग्रामवासी, अपने सहज ग्रामीण स्वभावके अनुसार मोटरके पास दर्शनके लिए आया और उसे ऐसी चोट लगी कि परिणाम घातक हुआ। वह ठीक समयपर गाड़ीसे दूर हटकर बचनेमें सफल नहीं हो पाया; और मोटर उसपर से गुजर गई।[1] जो दयालु लोग आसपास थे वे तत्काल ही उसे अस्पताल ले गये। वहाँ उसकी पूरी-पूरी शुश्रूषा की गई और

१. देखिए "भाषण: अलमोड़ामें", २०-६-१९२९।

आशा की जा रही थी कि वह बच जायेगा। वह बहादुर व्यक्ति था और उसका शरीर सुगठित था। वह दो दिन तक जिन्दा रहा, उसकी नाड़ी ठीक चल रही थी और उसमें ताकत आ रही थी। मगर ता० २० को ३। बजे एकाएक उसके हृदयकी धड़कन बन्द हो गई। पद्मसिंह १२ वर्षके एक अनाथ बालकको छोड़ गया है।

मौत या दूसरी आकस्मिक घटनाएँ मुझे आम तौर पर क्षणिक आघात ही पहुँचाती हैं, मगर ये पंक्तियाँ लिखते समय तक भी मैं अपने-आपको इस आघातसे सँभाल नहीं सका हूँ। मेरी रायमें इसका कारण यह है कि मैं अपने-आपको पद्मसिंहकी मौतका भागीदार समझता हूँ। मैंने देखा है कि प्रायः सबके-सब मोटर हाँकनेवाले तेज मिजाज, शीघ्र ही भड़क उठनेवाले, अधीर और पेट्रोलकी भाँति, जिसके साथ ये रात दिन रहते हैं, जल्दी ही लौ पकड़ लेनेवाले होते हैं। मेरी मोटरके शोफरको भी पर्याप्त मात्रामें इन गुणोंकी विरासत मिली थी। क्योंकि जिस भीड़में से मोटर अपना रास्ता चीरकर जा रही थी, वह उसपर बेतहाशा मोटर दौड़ा रहा था। मुझे चाहिए था कि मैं पैदल चलनेपर जोर देता या जबतक भीड़ न छँट जाती, मोटरको धीमी चलवाता। मगर लगातारकी मोटर-यात्राने मुझे ढीठ बना दिया था और गम्भीर घटनाओंके न होनेसे पैदल चलनेवालोंकी सही-सलामतीके प्रति एक तरहकी अनजान मगर अक्षम्य लापरवाही मनमें पैदा हो गई थी। अपराधकी यही अनुभूति शायद मेरे आघातका कारण है। पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्तने मुझे विश्वास दिलाया है कि पद्मसिंहके अनाथ बालकका भली-भाँति पालन-पोषण किया जायेगा। पद्मसिंहकी अस्पतालमें जो शुश्रूषा हुई थी, साधारणतया वह श्रीमन्तोंको भी अप्राप्य है और वह स्वयं तो निर्मोह और शान्त था ही। लेकिन उसकी मृत्यु मेरे लिए एक सबक बन गई है, और आशा है, मोटर चलानेवाले भी इससे शिक्षा ग्रहण करेंगे। लोग मेरे कथनको असंगत कहकर उसका उपहास भले ही करें, किन्तु मुझे यह बात यहाँ फिरसे कह देनी चाहिए कि मोटरकी सवारीके अनेक लाभ हैं; फिर भी वह एक अस्वाभाविक सवारी है। इसलिए मोटरका उपयोग करनेवालोंको चाहिए कि वे अपने ड्राइवरोंको संयमसे काम लेनेको कहें और स्वयं यह अनुभव करें कि वेग या गति ही जीवनका सार नहीं है और सम्भव है सुदूर भविष्यमें वह सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो। मैं इस बातपर कभी स्पष्ट रूपसे विचार नहीं कर पाया हूँ कि भारत-भरमें मेरी पागलोंकी-सी दौड़-धूप सर्वथा हितकारक हुई है या नहीं। कुछ भी क्यों न हो, पद्मसिंहकी मृत्युने मुझे प्रबल विचार करनेपर बाध्य कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-६-१९२९

८२. राष्ट्रीय संघ और आत्म-निर्भरता

बहिष्कार आन्दोलनके रचनात्मक और विनाशकारी दोनों ही पक्ष हैं। यदि रचनात्मक कार्यके साथ-साथ विनाशकार्य चले तो रचनात्मक कार्य प्रभावहीन हो जायेगा। जिस प्रकार किसी खेतकी गोड़ाई-निराई करनेके बाद, यदि उसमें फसल न बोई जाये तो घास-फूस और कँटीली झाड़ियाँ फिरसे उग आती हैं, उसी प्रकार यदि खादी सुलभ नहीं बनाई गई तो विदेशी वस्त्र जला देनेके बाद, निश्चय ही उनकी नई खेपें आ जायेंगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विदेशी वस्त्रोंकी होली या उनका त्याग आवश्यक है, क्योंकि जीवनदायिनी खादीका उत्पादन करना और उसके नए-नए उपयोग निकालना हमारे लिए अत्यावश्यक है। बंगालके राष्ट्रीय संघने रचनात्मक कार्य सँभाला है। संघके संस्थापक खादी-प्रतिष्ठानके सतीशबाबू वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओंके मामलेमें गाँवोंको आत्म-निर्भर बनानेकी ओर ही पूरा ध्यान दे रहे हैं। संघ अपने कार्य-क्षेत्रमें उत्कलके कुछ भागको भी शामिल कर रहा है। वे हाल ही में श्री गोपबन्धु चौधरीके अलकाश्रम गये थे और श्री चौधरी तथा अन्य मित्रोंके साथ उन्होंने आसपासके गाँवोंका सर्वेक्षण किया था। यात्रा सम्बन्धी उनकी टीपोंसे मैं यह रोचक अंश नीचे दे रहा हूँ:[1]

हमने आश्रमसे लगभग पाँच मील दूर, एक गाँव रानहाटको चुना है। इसके सभी निवासी किसान हैं। अन्य गाँवोंकी तरह यहाँ भी गरीबी है। गाँवके कुछ मर्द मजदूरीके लिए कलकत्ता जाते हैं। गाँवकी आवश्यकताका सारा कपड़ा स्वयं गाँव में ही तैयार किया जाये — इस सुझावका बड़े उत्साहसे स्वागत किया गया। दस स्वयंसेवकोंका एक दल तैयार किया गया है जिसे अलकाश्रममें प्रशिक्षण दिया जायेगा। इनका प्रशिक्षण समाप्त होनेके बाद श्री परिहारी इस कामको चलानेके लिए गाँवमें आकर रहेंगे। . . .

जगतसिंहपुरमें आश्रमके आसपास बुनकरोंके कुछ परिवार हैं। . . . रानहाट गाँवकी जरूरतके लायक कपड़ा फिलहाल जगतसिंहपुरमें बुना जा सकता है। इसमें कठिनाई नहीं पड़ेगी। बादमें तो रानहाट गाँव अपनी जरूरतके लायक कपड़ा खुद ही बुनने लगेगा। . . .

अलकाश्रम जानेवाले ३० मील लम्बे मार्गके दोनों ओर पेड़ोंकी कतारें तरतीबसे खड़ी हैं। . . . मैंने देखा कि महिलाओंका एक दल रास्ता बुहार रहा था और इस तरह जलानेके लिए सूखे पत्ते और टहनियाँ इकट्ठी करनेके लिए आसपासके मैदानोंकी भी सफाई कर रहा था। लगता था, एक-एक पत्ती

१. अंशतः उद्धृत।

चुनना भी वहाँ एक काम हो गया है। . . . मैं उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ जब ये महिलाएँ अपना-अपना चर्खा लेकर बैठ जायेंगी। . . .

सतीश बाबूने जो वर्णन किया है वह उत्कलके अधिकांश गाँवोंपर लागू होता है। सतीश बाबूने जिनका उल्लेख किया है, वे वहाँके सबसे गरीब गाँव नहीं हैं। लेकिन गाँव तो रोज-रोज गरीब होते ही चले जा रहे हैं। उनमें से किसे कम गरीब कहें, किसे ज्यादा? अगर राष्ट्रीय संघ अपने प्रयत्नोंमें सफल होता है तो वह विदेशी वस्त्र बहिष्कार आन्दोलनमें उल्लेखनीय योगदान करनेके साथ-ही-साथ उत्कलके ग्रामवासियोंके लिए सचमुच एक वरदान सिद्ध होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-६-१९२९

८३. पर्देकी कुप्रथा

कोई बात प्राचीन है इसलिए वह अच्छी है ऐसा मानना बहुत गलत है। यदि प्राचीन सब अच्छा ही होता तो पाप कम प्राचीन नहीं है। परन्तु चाहे जितना भी प्राचीन हो पाप त्याज्य ही रहेगा। अस्पृश्यता प्राचीन है परन्तु पाप है इसलिए वह सर्वथा त्याज्य है। शराबखोरी, जुआ इत्यादि प्राचीन हैं; परन्तु वे पाप हैं और इसलिए त्याज्य हैं। जिस वस्तुकी योग्यता आज हम बुद्धिसे सिद्ध कर सकते हैं और जो बुद्धिग्राह्य है, उसे यदि बुद्धि ग्रहण न करे तो वह तत्काल छोड़ देने योग्य है।

पर्दा कितना ही प्राचीन हो, आज बुद्धि उसको कुबूल नहीं कर सकती। पर्देसे होनेवाली हानि स्वयंसिद्ध है। जैसा कि बहुत-सी बातोंका किया जाता है, उस प्रकार पर्देका कोई आदर्श अर्थ करके उसका समर्थन नहीं करना चाहिए। आज पर्दा-प्रथा जिस हालतमें वर्तमान है, उसका समर्थन करना असम्भव है।

सच्ची बात तो यह है कि पर्दा कोई बाह्य वस्तु नहीं है; वह एक आन्तरिक वस्तु है। बाह्य पर्दा करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ निर्लज्ज पाई जाती हैं। जो बाह्य रूपसे पर्दा नहीं करती, परन्तु जिसने आन्तरिक लज्जा कभी नहीं छोड़ी है वह स्त्री पूजनीय है। और ऐसी स्त्रियाँ आज जगतमें मौजूद हैं।

प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसी भी बातें हम पाते हैं जिसका पहले बाह्य अर्थ किया जाता था और अब आन्तरिक अर्थ किया जाता है। ऐसा एक शब्द यज्ञ है। पशु-हिंसा सच्चा यज्ञ नहीं है; पाशविक वृत्तियोंको जलाना शुद्ध यज्ञ है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं। इसलिए जो लोग हिन्दू जातिका सुधार और रक्षा करना चाहते हैं उनको प्राचीन दृष्टान्तोंसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें प्राचीन सिद्धान्तों से बढ़कर नये सिद्धान्त मिलनेवाले नहीं हैं। परन्तु उन सिद्धान्तोंपर अमल करनेमें नित्य परिवर्तन होगा। परिवर्तन उन्नतिका एक लक्षण है। स्थिरता अवनतिका आरम्भ-काल है। जगत् नित्य गतिमान है; स्थिरता शवमें है; वह मृत्युका लक्षण है। योगीकी

स्थिरताकी बात अलग है। योगीकी स्थिरतामें तीव्रतम गति है। उस स्थिरतामें आत्माकी तीव्रतम जागृति है। हम यहाँ जिस स्थिरताकी बात कर रहे हैं उसे दूसरे शब्दोंमें जड़ता कहा जा सकता है। जड़ताके वशीभूत होकर हम सभी प्राचीन कुप्रथाओंका समर्थन करनेको तत्पर हो जाते हैं। हमारी यह जड़ता हमारी उन्नतिको रोकती है। यही जड़ता स्वराज्यकी दिशामें हमारी प्रगतिमें रुकावट डालती है।

अब पर्देसे होनेवाली हानियोंको देखें:

१. स्त्रियोंकी शिक्षामें पर्दा बाधा डालता है।

२. स्त्रियोंकी भीरुताको बढ़ाता है।

३. स्त्रियोंके स्वास्थ्यको बिगाड़ता है।

४. स्त्रियों और पुरुषोंके बीच हो सकनेवाले स्वच्छ सम्बन्धोंमें बाधक बनता है।

५. स्त्रियोंमें नीच वृत्तिका पोषण करता है।

६. पर्दा स्त्रियोंको बाह्य जगतसे दूर रखता है इसलिए उन्हें उसका योग्य अनुभव नहीं हो पाता।

७. पर्दा अर्धांगना-धर्म, सहचारी-धर्ममें बाधा डालता है।

८. पर्दानशीन स्त्रियाँ स्वराज्यमें हरगिज अपना पूरा हिस्सा नहीं दे सकतीं।

९. पर्देसे बाल-शिक्षामें रुकावट होती है।

इन सब हानियोंको देखते हुए सभी विचारशील हिन्दुओंका धर्म है कि वे पर्देको तोड़ दें।

क्या पर्दा तोड़नेका और क्या दूसरे सुधारोंका सबसे सरल इलाज उनको अपनेसे आरम्भ करना है। हमारे कार्यका अच्छा परिणाम देखकर दूसरे अपने-आप उसका अनुकरण करेंगे। एक बातका खयाल अत्यावश्यक है। सुधारक कभी विनयका और मर्यादाका त्याग नहीं करेगा। यदि पर्दा तोड़नेमें हेतु संयम है तो उसका तोड़ना कर्त्तव्य है और तभी वह टूट सकता है। पर्दा तोड़नेमें स्वच्छंदता भी हेतु हो सकती है। ऐसी अवस्थामें पर्दा टूट नहीं सकता, क्योंकि तब उससे जनतामें क्रोध पैदा होगा और क्रोधके वश होकर जनता बुद्धिका त्याग करके कुप्रथाका भी समर्थन करने लगेगी। जनताका हृदय पवित्र है। इस कारण अपवित्र हेतुका जनता कभी आदर नहीं करेगी।

हिन्दी नवजीवन, २७-६-१९२९

८४. "अनासक्तियोग"[1]

मैंने गीताका गुजराती अनुवाद कर चुकनेके दो वर्ष बाद अर्थात् २४-६-१९२९ को कोसानीमें उसकी प्रस्तावना लिखी और उसके बाद समयानुसार[2] पूरी पुस्तक प्रकाशित हुई। उसका हिन्दी, बंगला और मराठी अनुवाद भी हो गया है। उसके अंग्रेजी अनुवादकी भी लगातार माँग आती रही। मैंने प्रस्तावनाका अनुवाद यरवदा जेलमें कर लिया था। मेरे जेलसे छूटनेके[3] बाद वह अभीतक मित्रोंके पास पड़ा रहा और अब मैं उसे पाठकोंतक पहुँचा रहा हूँ। जिनको इस "जीवन-पुस्तक" में कोई दिलचस्पी नहीं है, वे उसका इन स्तम्भोंमें दिया जाना क्षमा करेंगे। जिन्हें इस गीता-काव्यमें दिलचस्पी है और जो उसे अपने जीवनकी प्रथ-प्रदर्शिका मानते हैं, उनके लिए सम्भव है, मेरा यह नम्र प्रयास सहायता पहुँचानेवाला बने।[4]

१

जिस प्रकार मैंने स्वामी आनन्द आदि मित्रोंके प्रेमके वश होकर सत्यके प्रयोगों तक मर्यादित आत्मकथा[5] लिखना आरम्भ किया था, उसी प्रकार इन मित्रोंके कहनेसे मैंने गीताजी का अनुवाद भी आरम्भ किया है। स्वामी आनन्दने असहयोग आन्दोलनके युगमें मुझसे कहा था: "आप गीताका जो अर्थ करते हैं वह हमारी समझमें तभी आ सकता है जब आप एक बार सम्पूर्ण गीताका अनुवाद कर जायें, उसपर कुछ टीका करनी हो तो करें और हम लोग एक बार उस अनुवादको आदिसे अन्ततक पढ़ जायें। आप अलग-अलग बिखरे हुए श्लोकोंमें से अहिंसा आदिका अर्थ निकालें, यह मुझे तो ठीक नहीं लगता।" मुझे उनकी इस दलीलमें तथ्य मालूम हुआ। मैंने उत्तर दिया: "मैं फुरसत मिलनेपर यह काम करूँगा।" इसके बाद मैं जेलमें गया। वहाँ मैं कुछ अधिक गहराईसे गीताका अध्ययन कर सका। लोकमान्य (तिलक)का ज्ञान-भण्डार[6] मैंने पढ़ा। उन्होंने इससे पहले मुझे (गीता-रहस्यके) मराठी, हिन्दी और

१. गांधीजीने प्रस्तावनामें सूचित किया है कि **गीता**का गुजराती अनुवाद प्रस्तावना समेत २४-६-१९२९ को समाप्त हो गया था; किन्तु उन्होंने महादेव देसाई और छगनलाल जोशीको लिखे अपने २८-६-१९२९ के पत्रोंमें यह कहा है कि मैंने कल ही **गीता**का अनुवाद समाप्त किया। इसलिए हमने इसकी तिथि २७-६-१९२९ मानकर खण्डमें इसका स्थान निश्चित किया है।

अंग्रेजी अनुवाद १६-१२-१९२९ को प्रारम्भ किया गया था और वह यरवदा जेलमें ८-१-१९३१ को समाप्त हुआ। पहले यह अनुवाद **यंग इंडिया**के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. १२ मार्च, १९३०, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादसे।

३. २६ जनवरी, १९३१ को।

४. यह पहला अनुच्छेद अंग्रेजी प्रस्तावनासे लिया गया है। शेष गुजराती प्रस्तावनासे लिया गया है।

५. देखिए खण्ड ३९।

६. गीता-रहस्य।

गुजराती अनुवाद प्रेमपूर्वक भेजे थे और ऐसी सिफारिश की थी कि मैं मराठी न पढ़ सकूँ तो गुजराती अनुवाद जरूर पढ़ जाऊँ। जेलके बाहर तो मैं नहीं पढ़ पाया, लेकिन जेलमें मैंने गुजराती अनुवाद पढ़ा। यह अनुवाद पढ़नेके बाद गीताके विषयमें अधिक साहित्य पढ़नेकी मेरी इच्छा हुई और मैंने गीतासे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ग्रन्थ पढ़े।

'गीता' का प्रथम परिचय मुझे एडविन आर्नोल्डके पद्यानुवादसे[1] सन् १८८८-८९ में हुआ था। उसके बाद गीताका गुजराती अनुवाद पढ़नेकी तीव्र इच्छा हुई और जितने अनुवाद हाथ लगे, उन सबको मैं पढ़ गया।

लेकिन इतना ही पठन-पाठन मुझे गीताका अपना अनुवाद जनताके सामने रखनेका अधिकार कदापि नहीं देता। इसके सिवा, मेरा संस्कृतका ज्ञान बहुत थोड़ा है; गुजरातीका ज्ञान भी गहरा नहीं कहा जा सकता। तब मैंने गीताका अनुवाद करनेकी धृष्टता क्यों की?

'गीता' को मैंने जिस रूपमें समझा है उसका उस रूपमें आचरण करनेका मेरा और मेरे कुछ साथियोंका सतत प्रयत्न रहा है। गीता हमारे लिए आध्यात्मिक निदानग्रन्थ है। 'गीता' के अनुसार आचरण करनेमें हमें रोज असफलता मिलती है; परन्तु वह असफलता हमें प्रयत्नोंके बावजूद मिलती है। उस असफलतामें हमें सफलताकी उदित हो रही किरणोंके दर्शन भी मिलते हैं। सहयोगियोंका हमारा छोटा-सा दल गीताके जिस अर्थको आचरणमें उतारनेका प्रयत्न करता है, वही अर्थ इस अनुवादमें दिया गया है।

इसके सिवा, इस अनुवादकी कल्पना उन स्त्रियों, वैश्यों और शूद्रों आदि व्यक्तियोंके लिए ही की गई है, जिनका अक्षर-ज्ञान बहुत कम है, जिनके पास मूल संस्कृतमें 'गीता' को समझनेका समय नहीं है, इच्छा भी नहीं है; परन्तु जिन्हें गीतारूपी सहारेकी आवश्यकता तो है।

मेरा गुजराती भाषाका ज्ञान थोड़ा है, फिर भी उस ज्ञानके द्वारा मेरे पास जो भी पूँजी है वह सब गुजरातियोंको दे जानेकी मेरे मनमें हमेशा बड़ी अभिलाषा रही है। मैं यह जरूर चाहूँगा कि आज जब गन्दे, अश्लील साहित्यका तेज प्रवाह बह रहा है, उस समय जो ग्रन्थ हिन्दू धर्मका अद्वितीय ग्रन्थ माना जाता है जनताको —उसका सरल अनुवाद गुजराती जनताको—मिले और वह उसे पढ़कर इस प्रवाहका विरोध करनेकी शक्ति प्राप्त करे।

इस अभिलाषामें गीताके दूसरे गुजराती अनुवादोंकी अवगणनाका हेतु नहीं है। उन सबका अपना स्थान हो सकता है; परन्तु उन अनुवादोंके पीछे अनुवादकोंका आचरण-रूपी अनुभवका दावा है या नहीं सो मैं नहीं जानता। इस अनुवादके पीछे गत ३८ वर्षोंके आचरणके प्रयत्नका मेरा दावा है। इस कारणसे मैं यह अवश्य चाहूँगा कि ऐसे सब गुजराती पुरुष और स्त्रियाँ, जो धर्मको आचरणमें उतारना चाहते हैं, इस अनुवादको पढ़ें, इसपर विचार करें और इसमें से शक्ति प्राप्त करें।

इस अनुवादमें मेरे साथियोंका श्रमपूर्ण सहयोग भी है। मेरा संस्कृतका ज्ञान बहुत अधूरा होनेसे शब्दार्थके बारेमें मुझे पूरा भरोसा नहीं हो सकता। अतः उस

१. सॉंग सेलेस्टियल।

दृष्टिसे इस अनुवादको विनोबा, काका कालेलकर, महादेव देसाई तथा किशोरलाल मशरूवाला देख गये हैं।

२

अब मैं गीताके अर्थ पर आता हूँ।

सन् १८८८-८९ में जब मुझे गीताका प्रथम दर्शन हुआ तभी मुझे यह लगा था कि गीता ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, परन्तु इसमें भौतिक युद्धके वर्णनको निमित्त बनाकर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें निरन्तर चलनेवाले द्वन्द्व-युद्धका ही वर्णन किया गया है। मानव योद्धाओंकी रचना हृदयके भीतरके युद्धको रसप्रद बनानेके लिए की गई कल्पना है। मनमें पैदा हुई यह प्राथमिक स्फुरणा धर्मका और 'गीता' का विशेष चिन्तन-मनन करनेके बाद पक्की हो गई। 'महाभारत' पढ़नेके बाद मेरा यह विचार और भी दृढ़ हो गया। महाभारत ग्रन्थको मैं आधुनिक अर्थमें इतिहास नहीं मानता। आदिपर्वमें ही इस बातके प्रबल प्रमाण हैं। पात्रोंकी अमानुषी और अतिमानुषी उत्पत्तिका वर्णन करके व्यास 'भगवानने' राजा और प्रजाके इतिहासका अस्तित्व समाप्त कर दिया है। महाभारतमें वर्णित पात्र मूलतः ऐतिहासिक भले हों, लेकिन महाभारतमें तो व्यास भगवानने उनका उपयोग केवल धर्मका दर्शन करानेके लिए ही किया है।

महाभारतकारने भौतिक युद्धकी आवश्यकता सिद्ध नहीं की है; परन्तु उसकी निरर्थकता सिद्ध की है। विजेताओंसे उन्होंने रुदन कराया है, पश्चात्ताप कराया है और उनके जीवनमें दुःखके सिवा और कुछ भी नहीं रहने दिया है।

इस महाग्रन्थ महाभारतमें गीता सर्वोच्च स्थानपर विराजती है। उसका दूसरा अध्याय भौतिक युद्धका व्यवहार सिखानेके बदले स्थितप्रज्ञके लक्षण सिखाता है। स्थितप्रज्ञका सांसारिक युद्धके साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, यह बात मुझे तो उसके लक्षणोंमें ही निहित दिखाई दी है। परिवारके मामूली झगड़ेके औचित्य या अनौचित्यका निर्णय करनेके लिए 'गीता' जैसी पुस्तक नहीं रची जा सकती।

'गीता' के कृष्ण मूर्तिमान शुद्ध-सम्पूर्ण ज्ञान हैं; परन्तु वे काल्पनिक हैं। यहाँ मेरा हेतु कृष्ण नामके अवतारी पुरुषका निषेध करना नहीं है। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि परिपूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं, सम्पूर्ण अवतारका आरोपण उनपर बादमें हुआ है।

अवतारका अर्थ है शरीरधारी विशिष्ट पुरुष। जीवमात्र ईश्वरके अवतार हैं, परन्तु लौकिक भाषामें हम सबको अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युगमें सबसे श्रेष्ठ धर्मवान पुरुष होता है, उसे भविष्यकी प्रजा अवतारके रूपमें पूजती है। इसमें मुझे कोई दोष नहीं मालूम होता। इससे न तो ईश्वरकी महत्ताको लांछन लगता है, और न इससे सत्यको ही आघात पहुँचता है। . . . 'आदम खुदा नहीं; लेकिन खुदाके नूरसे आदम जुदा नहीं।' जिस पुरुषमें अपने युगमें सबसे अधिक धर्म-जागृति होती है, वह विशेषावतार माना जाता है। इस विचारसरणीके अनुसार आज हिन्दू धर्ममें कृष्णरूपी परिपूर्ण अवतार चक्रवर्ती सम्राट है।

अवतारमें यह विश्वास मनुष्यकी अन्तिम उदात्त आध्यात्मिक अभिलाषाका सूचक है। ईश्वर-रूप हुए बिना मनुष्यको सुख नहीं मिलता। शान्तिका अनुभव नहीं होता।

ईश्वर-रूप बननेके लिए किये जानेवाले प्रयत्नका ही नाम सच्चा और एकमात्र पुरुषार्थ है और वही आत्मदर्शन है। यह आत्मदर्शन जिस प्रकार समस्त धर्मग्रन्थोंका विषय है, उसी प्रकार गीताका भी है। लेकिन गीताकारने गीताकी रचना इस विषयका प्रतिपादन करनेके लिए नहीं की है। गीताका उद्देश्य आत्मार्थीको आत्मदर्शन करनेका एक अद्वितीय उपाय बताना है। जो बात हिन्दू धर्म ग्रन्थोंमें यहाँ-वहाँ बिखरी हुई देखनेमें आती है, उसे गीताने अनेक रूपोंमें, अनेक शब्दोंमें, पुनरुक्तिका दोष मोल लेकर भी अच्छी तरह स्थापित किया है।

वह अद्वितीय उपाय है कर्मके फलका त्याग।

इसी केन्द्र-बिन्दुके आसपास गीताका सारा विषय गूँथा गया है। भक्ति, ज्ञान आदिने इस केन्द्र-बिन्दुके आसपास तारा-मण्डलके रूपमें अपना-अपना उचित स्थान ग्रहण कर लिया है। जहाँ देह है वहाँ कर्म तो है ही। कर्मसे कोई मनुष्य मुक्त नही है। फिर भी सारे धर्मोंने यह प्रतिपादन किया है कि देहको प्रभुका मन्दिर बनानेसे उसके द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है। परन्तु प्रत्येक कर्ममें कुछ-न-कुछ दोष तो होता ही है। और मुक्ति केवल निर्दोष मनुष्यको ही मिलती है। तब कर्मके बन्धनसे अर्थात् दोषके स्पर्शसे कैसे छूटा जा सकता है? इस प्रश्नका उत्तर गीताजीने निश्चयात्मक शब्दोंमें दिया है: "निष्काम कर्म करके; यज्ञार्थ कर्म करके; कर्मके फलका त्याग करके; सारे कर्म कृष्णार्पण करके — अर्थात् मन, वचन और कायाको ईश्वरमें होम कर।"

परन्तु निष्कामता, कर्मके फलका त्याग, केवल कह देनेसे ही सिद्ध नहीं हो जाता। वह केवल बुद्धिका प्रयोग नहीं है। वह हृदय-मन्थनसे ही उत्पन्न होता है। इस त्याग-शक्तिको उत्पन्न करनेके लिए ज्ञानका होना आवश्यक है। एक प्रकारका ज्ञान अनेक पण्डित प्राप्त कर तो लेते हैं, वेदादि उन्हें कण्ठाग्र होते हैं; परन्तु उनमें से बहुतेरे भोगादिमें रचे-पचे रहते हैं। ज्ञानकी अतिशयता शुष्क पाण्डित्यका रूप न ले ले, यह सोचकर गीताकारने ज्ञानके साथ भक्तिको मिला दिया; और उसे प्रथम स्थान दिया। भक्ति-रहित ज्ञान विकृत रूप ले सकता है। इसलिए उन्होंने कहा है कि 'भक्ति करो तो ज्ञानकी प्राप्ति होगी ही।' परन्तु भक्ति तो 'सिरका सौदा' है। अतः गीताकारने भक्तके लक्षण स्थितप्रज्ञके लक्षणों-जैसे बताये हैं।

इसलिए गीताकी भक्ति कोई बावलापन नहीं है, अन्धश्रद्धा भी नहीं है। गीतामें बताई गई भक्तिका बाहरी चेष्टाओं या क्रियाओंके साथ बहुत ही कम सम्बन्ध है। माला, तिलक, अर्घ्य आदि साधनोंका भक्त प्रयोग भले ही करे, परन्तु ये भक्तिके लक्षण नहीं हैं। जो किसीसे द्वेष नहीं करता, जो करुणाका भण्डार है, जो अहंता और ममतासे मुक्त है, जिसके लिए सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी समान हैं, जो क्षमावान् है, जो सदा सन्तुष्ट रहता है, जिसके निश्चय कभी बदलते नहीं हैं, जिसने अपना मन और बुद्धि ईश्वरको अर्पण कर दिये हैं, जिससे लोग त्रस्त नहीं होते, जो लोगोंसे डरता नहीं, जो हर्ष-शोक-भय आदिसे मुक्त है, जो पवित्र है, जो कार्यदक्ष होते हुए भी तटस्थ है, जो शुभाशुभका त्याग करनेवाला है, जो शत्रु और मित्र दोनोंके प्रति समानभाव रखता है, जिसकी दृष्टिमें मान और अपमान समान हैं, जो प्रशंसासे फूलता

नहीं और निन्दासे खिन्न नहीं होता, जो मौन धारण किये है, जिसे एकान्त प्रिय है और जिसकी बुद्धि स्थिर है, वह भक्त है।

ऐसी भक्ति आसक्त स्त्री-पुरुषोंमें सम्भव नहीं है।

इसपर से हम देखते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना, भक्त होना ही आत्म-दर्शन है। आत्मदर्शन इससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। जिस प्रकार रुपया देकर जहर भी खरीदा जा सकता है और अमृतके समान लाभकारी वस्तु भी उसी प्रकार ज्ञान अथवा भक्तिके बदलेमें बन्धन भी प्राप्त किया जा सके और मोक्ष भी प्राप्त किया जा सके ऐसी बात नहीं है। यहाँ साधन और साध्य यदि पूर्णतया एक नहीं तो लगभग एक ही हैं। साधनकी पराकाष्ठा ही मोक्ष है। और गीताके मोक्षका अर्थ है परम-शान्ति।

परन्तु ऐसे ज्ञान और ऐसी भक्तिको कर्मफलके त्यागकी कसौटीपर चढ़ना होगा। साधारण लोगोंकी कल्पनामें शुष्क पण्डित भी ज्ञानी माना जाता है। उसके लिए कोई काम करना जरूरी नहीं। लोटे जैसी चीजको उठाना भी उसके लिए कर्म-बन्धनका कारण हो जाता है! यज्ञशून्य मनुष्य जहाँ ज्ञानी माना जाये वहाँ लोटा उठाने जैसी तुच्छ लौकिक क्रियाका स्थान ही कैसे हो सकता है?

साधारण लोगोंकी कल्पनामें भक्त वह है, जो भगवानकी भक्तिमें बावला हो जाता है, माला हाथमें लेकर भगवानका नाम जपता है, सेवाका काम करनेसे भी जिसके माला फेरनेमें बाधा पड़ती है, इसलिए जो खान-पान वगैरा भोग भोगनेके समय ही मालाको हाथसे छोड़ता है,—चक्की चलानेके लिए या बीमारकी सेवा-चाकरी करनेके लिए कभी नहीं छोड़ता।

ऐसे ज्ञानियों और ऐसे भक्तोंको गीताने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है: "कर्मके बिना किसीको सिद्धि प्राप्त नहीं हुई। जनक आदि भी कर्मके द्वारा ज्ञानी बने। यदि मैं भी आलस्य-रहित होकर कर्म न किया करूँ तो इन सारे लोकोंका नाश हो जाये।" तब फिर सामान्य लोगोंके बारेमें तो पूछना ही क्या?

परन्तु एक ओर यह निर्विवाद है कि कर्ममात्र बन्धन-रूप है। दूसरी ओर देह-धारी मानव इच्छा या अनिच्छासे भी कर्म किया करता है। शरीर या मनकी प्रत्येक चेष्टा कर्म है। तब कर्म करते हुए भी मनुष्य बन्धनसे मुक्त कैसे रह सकता है? जहाँतक मैं जानता हूँ, इस समस्याका निराकरण जैसा गीताजीने किया है वैसा अन्य किसी भी धर्मग्रन्थने नहीं किया है। गीता कहती है: 'फलकी आसक्ति छोड़कर कर्म करो,' 'आशा-रहित होकर कर्म करो,' 'निष्काम बनकर कर्म करो।' यह गीताकी ऐसी ध्वनि है, जो भूली नहीं जा सकती। जो मनुष्य कर्मको छोड़ता है वह गिरता है। कर्म करते हुए भी जो उसके फलको छोड़ता है वह ऊँचा उठता है।

फलत्यागका अर्थ कर्मके परिणामके विषयमें लापरवाह रहना नहीं है। परिणाम का और साधनका विचार करना तथा दोनोंका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इतना करनेके बाद जो मनुष्य परिणामकी इच्छा किये बिना साधनमें तन्मय रहता है, वह फलत्यागी कहा जाता है।

Translation of the preface
to anasakti yoga

I

(1) Even as acted upon by the affection of co-workers like Swami Anand & others I wrote my Experiments with Truth so has it been regarding my rendering of the Gita. "We can appreciate your meaning of the message of the Gita only when you have translated the whole text with such notes as you may deem necessary & when we have gone through it all. I don't think it is just on your part to deduce ahimsa &c from stray verses" Thus spake Swami Anand to me during the non-cooperation days. I felt the force of his remark. I therefore told him that I would adopt his suggestion when I got the time. Then I was imprisoned. There I was able

अनासक्तियोगकी प्रस्तावना : प्रथम अंश

...nt capable of being understood
...y the heart. Therefore it is not
...r those who have no faith. The
...vatar himself has said
"Do not entrust this treasure
to him who ~~has not sacrificed~~
~~who has~~ is without sacrifice
without devotion, ~~who~~ without
the desire for it and who denies
me. ~~Bu~~ On the other hand those
who will give this precious treasure
to ~~those~~ my devotees will by the
fact of this service of me will
assuredly reach me. And those
who being free from malice will
with faith absorb this teaching
will having attained freedom live
where people of true merit abide
live after death."

Kosani Himalayas
24. 6. '29

8. 1. '31

अनासक्तियोगकी प्रस्तावना : अंतिम अंश

परन्तु यहाँ फलत्यागका कोई ऐसा भी अर्थ न करे कि त्यागीको कर्मका फल नहीं मिलता। गीतामें ऐसे अर्थके लिए कहीं भी अवकाश नहीं है। फलत्यागका अर्थ है फलके विषयमें आसक्तिका अभाव। वास्तवमें फलका त्याग करनेवालेको हजार गुना फल मिलता है। गीताके फलत्यागमें तो मनुष्यकी अनन्त श्रद्धाकी परीक्षा है। जो मनुष्य परिणामका ध्यान किया करता है, वह अधिकतर कर्म-कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो जाता है। वह अधीर बन जाता है, इसलिए क्रोधके वश हो जाता है, और बादमें वह न करने योग्य काम करने लगता है। एक कर्मसे वह दूसरे कर्ममें और दूसरेसे तीसरे कर्ममें उलझता रहता है। कर्मके परिणामका चिन्तन करनेवाले मनुष्यकी स्थिति विषयसे अन्धे हुए मनुष्यके समान हो जाती है; और अन्तमें वह विषयी मनुष्यकी तरह भले-बुरेका, नीति-अनीतिका विवेक छोड़ देता है तथा फल पानेके लिए चाहे जैसे साधनोंका उपयोग करता है और उसे धर्म मानता है।

फलासक्तिके ऐसे कड़वे परिणामोंसे गीताकारने अनासक्तिका अर्थात् कर्मफलके त्यागका सिद्धान्त निकाला है और उसे दुनियाके सामने अत्यन्त आकर्षक भाषामें रखा है।

सामान्यतः यह माना जाता है कि धर्म और अर्थ परस्पर-विरोधी हैं। "व्यापार आदि सांसारिक व्यवहारोंमें धर्मका पालन नहीं हो सकता, धर्मके लिए स्थान नहीं हो सकता; धर्मका उपयोग केवल मोक्षके लिए ही किया जा सकता है। धर्मके स्थान पर धर्म शोभा देता है; अर्थके स्थानपर अर्थ शोभा देता है।" मैं मानता हूँ कि गीताकारने इस भ्रमको दूर कर दिया है। उन्होंने मोक्ष और सांसारिक व्यवहारके बीच ऐसा कोई भेद नहीं रखा है; परन्तु धर्मको व्यवहारमें उतारा है। जो धर्म व्यवहारमें नहीं उतारा जा सकता वह धर्म ही नहीं है—यह बात गीतामें कही गई है, ऐसा मुझे लगा है। अतः गीताके मतके अनुसार जो कर्म आसक्तिके बिना हो ही न सकें वे सब त्याज्य हैं—छोड़ देने योग्य हैं। यह स्वर्ण-नियम मनुष्यको अनेक धर्म-संकटोंसे बचाता है। इस मतके अनुसार हत्या, झूठ, व्यभिचार आदि कर्म स्वभावसे ही त्याज्य हो जाते हैं। इससे मनुष्य-जीवन सरल बन जाता है और सरलतामें से शान्तिका जन्म होता है।

इस विचारसरणीका अनुसरण करते हुए मुझे ऐसा लगा है कि गीताजीकी शिक्षाका आचरण करनेवाले मनुष्यको स्वभावसे ही सत्य और अहिंसाका पालन करना पड़ता है। फलासक्तिके अभावमें न तो मनुष्यको झूठ बोलनेका लालच होता है और न हिंसा करनेका लालच होता है। हिंसा या असत्यके किसी भी कार्यका हम विचार करें, तो पता चलेगा कि उसके पीछे परिणामकी इच्छा रहती ही है।

लेकिन अहिंसाका प्रतिपादन करना गीताका विषय नहीं है, क्योंकि गीताके समयसे पहले भी अहिंसा परमधर्म मानी जाती थी। गीताको तो अनासक्तिका सिद्धान्त प्रतिपादित करना है। गीताके दूसरे अध्यायमें ही यह बात स्पष्ट हो जाती है।

परन्तु यदि गीताको अहिंसा स्वीकार्य थी अथवा अनासक्तिमें अहिंसा सहज रूपसे आ ही जाती हो, तो गीताकारने भौतिक युद्धको उदाहरणके रूपमें भी क्यों लिया?

इसका उत्तर यह है कि गीता-युगमें अहिंसा धर्म मानी जाती थी, फिर भी उस कालमें भौतिक युद्ध सर्व-सामान्य वस्तु था; इसलिए गीताकारको ऐसे युद्धका उदाहरण लेनेमें कोई संकोच नहीं हुआ, न ही हो सकता था।

परन्तु फलत्यागके महत्त्वका अन्दाज लगाते समय गीताकारके मनमें क्या विचार थे, उसने अहिंसाकी मर्यादा कहाँ बाँधी थी, इसका विचार करनेकी हमें जरूरत नहीं रह जाती। कवि महत्वपूर्ण सिद्धान्त दुनियाके सामने रखता है, इसलिए वह अपने दिये हुए सिद्धान्तोंका महत्व सदा पूरी तरह जानता ही है, अथवा जाननेके बाद उसे पूर्णतया भाषामें प्रकट कर सकता है, ऐसा नहीं होता। इसीमें काव्यकी और कविकी महिमा है। कविके अर्थका तो कोई अन्त ही नहीं है।

जिस प्रकार मनुष्यका विकास होता रहता है, उसी प्रकार महावाक्योंके अर्थका भी विकास होता ही रहता है। भाषाओंके इतिहासकी जाँच करें तो हम देखते हैं कि अनेक महान् शब्दोंके अर्थ सदा बदलते या विस्तृत होते रहे हैं। यही बात गीताके अर्थके विषयमें भी सच है। गीताकारने स्वयं महान् रूढ़ शब्दोंके अर्थोंका विस्तार किया है। गीताकी ऊपर-ऊपरसे जाँच करनेपर भी हम यह देख सकते हैं।

गीता-युगसे पहले यज्ञमें पशुओंकी हिंसा शायद मान्य समझी जाती होगी। परन्तु गीताके यज्ञमें उसकी गन्धतक नहीं आती। गीतामें तो जपयज्ञको सब यज्ञोंका राजा कहा गया है। गीताका तीसरा अध्याय कहता है कि यज्ञका अर्थ है मुख्यतः परोपकारके लिए शरीरका उपयोग। तीसरे और चौथे अध्यायको एक-साथ पढ़नेसे यज्ञकी दूसरी व्याख्याएँ भी निकाली जा सकती हैं। परन्तु पशु हिंसाका अर्थ कभी नहीं निकाला जा सकता।

गीताके संन्यास शब्दके अर्थके विषयमें भी यही बात है। कर्ममात्रका त्याग गीताके संन्यासको सह्य ही नहीं है। गीताका संन्यासी अतिकर्मी है, और फिर भी अति-अकर्मी है। इस प्रकार गीताकारने महान शब्दोंके व्यापक अर्थ करके स्वयं उनकी अपनी भाषाका भी व्यापक अर्थ करनेकी बात हमें सिखाई है। कर्मके फलका सम्पूर्ण त्याग करनेवाले मनुष्यके द्वारा भौतिक युद्ध हो सकता है, ऐसा अर्थ गीताकारकी भाषाके अक्षरों — शब्दोंसे भले ही निकलता हो; परन्तु गीताकी शिक्षाको पूर्ण रूपसे व्यवहारमें लानेका लगभग ४० वर्षतक सतत प्रयत्न करते-करते मुझे तो नम्र भावसे ऐसा लगा है कि सत्य और अहिंसाके सम्पूर्ण पालनके बिना कर्मके फलका सम्पूर्ण त्याग मनुष्यके लिए असम्भव है।

गीता कोई सूत्र-ग्रन्थ नहीं है। गीता एक महान धर्मकाव्य है। हम उसमें जितने गहरे उतरेंगे उतने ही उसमें से नये और सुन्दर अर्थ हमें मिलेंगे। गीता जन-समाजके लिए है, इसलिए उसमें एक ही बातको अनेक प्रकारसे कहा गया है। गीतामें आये हुए महान शब्दोंके अर्थ प्रत्येक युगमें बदलेंगे और व्यापक बनेंगे। परन्तु गीताका मूल-मन्त्र कभी नहीं बदलेगा। यह मन्त्र जिस रीतिसे जीवनमें साधा जा सके उस रीतिको दृष्टिमें रखकर जिज्ञासु गीताके महाशब्दोंका मनचाहा अर्थ कर सकता है।

गीता विधि-निषेध (करने योग्य और न करने योग्य कर्म) बतानेवाला संग्रह-ग्रन्थ भी नहीं है। एक मनुष्यके लिए जो कर्म विहित (करने योग्य) हो, वह दूसरेके

लिए निषिद्ध (न करने योग्य) हो सकता है। एक काल या एक देशमें जो कर्म विहित हो, वह दूसरे काल या दूसरे देशमें निषिद्ध हो सकता है। अतः निषिद्ध केवल फलासक्ति है; और विहित अनासक्ति है।

गीतामें ज्ञानकी महिमा गाई गई है। फिर भी गीता बुद्धिगम्य नहीं है, वह हृदयगम्य है। इसलिए वह अश्रद्धालु मनुष्यके लिए नही है। गीताकारने स्वयं ही कहा है:

"जो मनुष्य तपस्वी नहीं है, जो भक्त नहीं है, जो सुननेकी इच्छा नहीं रखता और जो मुझसे द्वेष करता है, उसे तू यह (ज्ञान) कभी न कहना। परन्तु जो मनुष्य यह परमगुह्य ज्ञान मेरे भक्तोंको देगा, वह मेरी परम भक्ति करनेके कारण बिना किसी सन्देहके मुझे प्राप्त करेगा। इसके सिवा, जो मनुष्य द्वेषरहित होकर श्रद्धाके साथ इस ज्ञानको केवल सुनेगा, वह भी मुक्त होकर जहाँ पुण्यवान लोग बसते हैं उस शुभलोकको प्राप्त करेगा।" (अध्याय १८ : श्लोक ६७, ६८, ७१)

कौसानी (हिमालय)
सोमवार, ज्येष्ठ वदी २, १९८५
(ता० २४-६-१९२९)

अध्याय १

अर्जुन-विषाद-योग

जिज्ञासाके बिना ज्ञान नहीं। दुःखके बिना सुख नहीं। सभी जिज्ञासुओंको एक बार धर्म-वेदना, धर्म-संकट, हृदय-मन्थन होता ही है।

धृतराष्ट्र बोले :

हे संजय! मुझसे कहो कि धर्मक्षेत्र-रूपी कुरुक्षेत्रमें युद्ध करनेकी इच्छासे एकत्र हुए मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया? १

टिप्पणी : यह शरीर रूपी क्षेत्र धर्मक्षेत्र है क्योंकि वह मोक्षका द्वार बन सकता है। फिर भी इसकी उत्पत्ति पापसे है और वह पापका भाजन बनकर रहता है। इसलिए वह कुरुक्षेत्र है।

कौरव अर्थात् आसुरी वृत्तियाँ। पाण्डुपुत्र अर्थात् दैवी वृत्तियाँ। प्रत्येक शरीरमें भली और बुरी वृत्तियोंके बीच युद्ध चलता ही रहता है, यह कौन मनुष्य अनुभव नहीं करता?

संजय बोले :

उस समय पाण्डवोंकी सेनाको व्यूहबद्ध देखकर राजा दुर्योधन आचार्य द्रोणके पास जाकर बोले : २

दुर्योधन बोले :

हे आचार्य! आपके बुद्धिमान शिष्य द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूहबद्ध की हुई पाण्डवोंकी इस विशाल सेनाको देखिए। ३

यहाँ भीम और अर्जुनके समान लड़नेमें शूरवीर महाधनुर्धारी, युयुधान (सात्यकि), विराट्, महारथी द्रुपद राजा, धृष्टकेतु, चेकितान, तेजस्वी काशिराज, पुरुजित् कुन्तिभोज और मानवोंमें श्रेष्ठ शैव्य तथा पराक्रमी युधामन्यु, बलवान उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र (अभिमन्यु) और द्रौपदीके पुत्र (दिखाई देते) हैं। वे सभी महारथी हैं।
४–५–६.

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! अब हमारे जो मुख्य योद्धा है उन्हें आप जान लें। आपके ध्यानमें आ जायें इसलिए अपनी सेनाके नायकोंके नाम आपको बता देता हूँ। ७

एक तो आप हैं। फिर भीष्म, कर्ण, युद्धमें जय प्राप्त करनेवाले कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवा हैं। इनके अतिरिक्त, दूसरे भी अनेक शूरवीर योद्धा मेरे लिए प्राण अर्पण करनेकी तैयारीसे खड़े हैं। वे सब विविध प्रकारके शस्त्र चलानेवाले और युद्धकी कलामें कुशल हैं। ८–९

फिर भी भीष्म द्वारा रक्षित हमारी सेनाका बल अपूर्ण है, जब कि भीमसे रक्षित पाण्डवोंकी सेना पूर्ण है। १०

इसलिए आप सब अपने-अपने स्थानसे सब मार्गों पर भीष्म पितामहकी ही रक्षा भली-भाँति करें। ११

इस प्रकार दुर्योधनने कहा, परन्तु द्रोणाचार्यने उत्तरमें कुछ भी नहीं कहा।

संजय कहते हैं :

इतनेमें दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिए कुरुओंके वृद्ध पुरुष प्रतापी भीष्म पितामहने ऊँचे स्वरसे सिंहनाद करके अपना शंख बजाया। १२

उसके बाद शंख, नगाड़े, ढोल, मृदंग और रणसिंगे सब एक-साथ ही बज उठे। घनघोर नाद हुआ। १३

ऐसे समय सफेद घोड़ोंवाले बड़े रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी अपने दिव्य शंख बजाये। १४

श्रीकृष्णने पाँचजन्य शंख बजाया। धनंजय अर्थात् अर्जुनने देवदत्त शंख बजाया। भयानक कर्म करनेवाले भीमने पौण्ड्र नामक महाशंख बजाया। १५

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपना अनन्तविजय नामक शंख बजाया और नकुलने सुघोष तथा सहदेवने मणिपुष्पक नामक शंख बजाये। १६

हे राजन्, इसी प्रकार बड़े धनुषवाले काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, राजा विराट्, अपराजित सात्यकि, द्रुपद-राज, द्रौपदीके पुत्र, सुभद्रा-पुत्र महाबाहु अभिमन्यु — इन सबने अपने अलग-अलग शंख बजाये। १७–१८

पृथ्वी और आकाशको गूँजा देनेवाले इस भयंकर नादने कौरवोंके हृदय चीर दिये। १९

अब हे राजन्! जिसकी ध्वजापर हनुमान हैं ऐसे अर्जुनने कौरवोंको व्यूहबद्ध देखकर, हथियार चलनेकी तैयारीके समय अपना धनुष चढ़ाकर हृषीकेशसे ये वचन कहे : २०

अर्जुन बोले :

हे अच्युत! मेरे रथको दोनों सेनाओंके बीचमें ले जाकर खड़ा कर दीजिए; जिससे युद्धकी कामनासे खड़े हुए लोगोंको मैं देखूँ और जानूँ कि इस रण-संग्राममें मुझे किसके साथ लड़ना है। दुष्ट बुद्धिवाले दुर्योधनका युद्धमें प्रिय कार्य करनेकी इच्छावाले जो योद्धा यहाँ एकत्र हुए हैं, उन्हें मैं देखूं तो सही। २१–२२–२३,

संजय बोले :

हे राजन्! जब अर्जुनने श्रीकृष्णसे ऐसा कहा तब उन्होंने दोनों सेनाओंके बीच, सारे राजाओं तथा भीष्म और द्रोणके सामने वह उत्तम रथ खड़ा करके कहा :

'हे पार्थ! एकत्र हुए इन कौरवोंको तू देख।' २४–२५

वहाँ दोनों सेनाओंमें स्थित गुरुजनों, पितामहों, आचार्यों, मामाओं, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, श्वसुरों तथा स्नेहीजनों आदिको अर्जुनने देखा। उन सब बन्धु-बान्धवोंको इस प्रकार आमने-सामने खड़े देखकर खेद उत्पन्न होनेके कारण दीन बने हुए कुन्ती-पुत्र अर्जुन इस प्रकार बोले : २६–२७–२८

अर्जुन बोले :

हे कृष्ण! लड़नेके लिए उत्सुक और एकत्र इन सगे-सम्बन्धियोंको देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं। मेरा मुँह सूख रहा है, शरीरमें कँपकपी छूट रही है और मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं। मेरे हाथसे गाण्डीव फिसल रहा है। त्वचा जली जा रही है। मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता, क्योंकि मेरा मस्तिष्क घूमता-सा लग रहा है। २८–२९–३०

इसके अतिरिक्त, हे केशव! मैं यहाँ विपरीत और अशुभ चिह्न देखता हूँ। युद्धमें इन स्वजनोंको मारनेमें कोई कल्याण नहीं देखता। ३१

हे कृष्ण! उन्हें मारकर न तो मैं विजय चाहता हूँ, और न राज्य अथवा विविध प्रकारके सुख; हे गोविन्द! हमारे लिए राज्यका, भोगों या जीवनका भी क्या उपयोग है? ३२

जिनके लिए हमने राज्य, भोग और सुखकी इच्छा की, वे आचार्य, गुरुजन, पुत्र, पौत्र, दादा, मामा, ससुर, साले और दूसरे सम्बन्धी-जन तो प्राणोंकी और धनकी परवाह न करके लड़नेके लिए खड़े हैं। ३३–३४

भले ही वे मुझे मार डालें, परन्तु तीनों लोकोंके राज्यके लिए भी, हे मधुसूदन! मैं उनकी हत्या नहीं करना चाहता; तब इस भूमिके लिए तो मैं उनकी हत्या कर ही कैसे सकता हूँ? ३५

हे जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमें क्या आनन्द मिलेगा? इन आततायियोंको भी मारनेसे हमें पाप ही लगेगा। ३६

इसलिए, हे माधव! हमारे अपने ही बान्धव इन धृतराष्ट्रके पुत्रोंको हम मारें, यह उचित नहीं है। अपने स्वजनोंको मारकर हम कैसे सुखी होंगे? ३७

लोभसे चित्तके मलिन हो जानेके कारण वे कुल-नाशसे होनेवाले दोषको और मित्रद्रोहके पापको भले न देख सकें, परन्तु हे जनार्दन! कुलनाशसे होनेवाले दोषको समझनेवाले हम लोगोंको इस पापसे बचनेकी बात कैसे न सूझे? ३८–३९

कुलका नाश हुआ कि परम्परासे चलते आ रहे कुलधर्मोंका नाश हो जाता है; और धर्मका नाश हुआ कि अधर्म सारे कुलको डुबा देता है। ४०

हे कृष्ण! अधर्मकी वृद्धि होनेसे कुल-स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं। और उनके दूषित होनेसे वर्णोंका संकर हो जाता है। ४१

ऐसा संकर कुल-घातकीको तथा उसके कुलको नरकमें पहुँचा देता है और पिण्डोदककी क्रियासे वंचित रहनेके कारण उसके पितरोंकी भी अधोगति हो जाती है। ४२

कुल-घातक लोगोंके इन वर्ण-संकरको उत्पन्न करनेवाले दोषोंसे सनातन कुलधर्मोंका तथा जाति-धर्मोंका नाश होता है। ४३

हे जनार्दन! जिनके कुलधर्मोंका जड़मूलसे नाश हो गया है, ऐसे मनुष्योंका वास नरकमें अवश्य ही होता है — यह हम सुनते आये हैं। ४४

हाय, हम कैसा महापाप करनेको उद्यत हो गये हैं कि राज्यके सुखके लोभसे हम स्वजनोंको मारनेके लिए तत्पर हैं! ४५

शस्त्रोंसे हीन तथा प्रतिकार न करनेवाले मुझे यदि धृतराष्ट्रके शस्त्रधारी पुत्र रणमें मार डालें तो वह मेरे लिए अधिक कल्याणकारी होगा। ४६

संजय बोले:

शोकसे व्याकुल-चित्त बने हुए अर्जुन रणक्षेत्रमें ऐसा कहकर तथा धनुष-बाणको त्यागकर रथकी बैठक पर बैठ गये। ४७

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है, श्री भगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके संवादका 'अर्जुन-विषाद-योग' नामक पहला अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय २

सांख्य योग

मनुष्य मोहके वश होकर अधर्मको धर्म मानता है। अर्जुनने मोहके कारण अपनों और परायोंका भेद किया। यह भेद झूठा है, ऐसा समझाते हुए श्रीकृष्ण पहले देह और आत्माकी भिन्नता बताते हैं; देहकी अनित्यता तथा पृथकता बताते है और आत्माकी नित्यता तथा उसकी एकता बताते हैं। मनुष्य केवल पुरुषार्थका, प्रयत्नका अधिकारी है, परिणामोंका नहीं। इसलिए उसे अपने कर्त्तव्यका निश्चय करके निश्चिन्त रहना चाहिए और कर्त्तव्य-परायण बनना चाहिए। ऐसी परायणतासे वह मोक्ष सिद्ध कर सकता है।

संजय बोले:

इस प्रकार करुणासे घिरे हुए तथा आँसुओंसे भरे व्याकुल नेत्रवाले दुखी अर्जुनसे मधुसूदनने ये वचन कहे: १

श्रीभगवान बोले:

हे अर्जुन! श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए अनुचित, स्वर्गसे विमुख रखनेवाला और अपयशको देनेवाला यह मोह ऐसे विषम क्षणमें तुझे कहाँसे हो आया? २

हे पार्थ! तू कायर मत बन। यह तुझे शोभा नहीं देता। हृदयकी इस तुच्छ निर्बलताका त्याग करके, हे परंतप! तू उठ। ३

अर्जुन बोले:

हे मधुसूदन! रणभूमिमें भीष्म तथा द्रोणके विरुद्ध मैं बाणोंसे कैसे लड़ूँ? हे अरिसूदन! वे तो मेरे लिए पूजनीय हैं। ४

महानुभाव गुरुजनोंको न मारनेके कारण यदि इस लोकमें मुझे भिक्षा माँग कर अपना निर्वाह करना पड़े, तो वह भी अधिक अच्छा होगा; क्योंकि गुरुजनोंको मारकर तो मुझे उनके रक्तसे दूषित बने हुए अर्थ और कामरूपी भोग ही भोगने होंगे। ५

मैं नहीं जानता कि युद्धमें उन्हें हम जीतें अथवा हमें वे जीतें, इन दो बातोंमें से कौन-सी बात अच्छी मानी जायेगी। जिन्हें मारकर हम जीना भी नहीं चाहेंगे, वे ही धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे सामने खड़े हैं। ६

दीनताके कारण मेरा मूल स्वभाव नष्ट हो गया है। कर्त्तव्यके विषयमें मैं उलझनमें पड़ गया हूँ। इसलिए जिसमें मेरा हित हो वही बात मुझे निश्चयपूर्वक बतानेकी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे मार्ग बताइए। ७

इस लोकमें धन-धान्यसे सम्पन्न निष्कंटक राज्य मिले और देवलोकमें इन्द्रासन भी मिल जाये, तो भी इन्द्रियोंको चूस लेनेवाले मेरे इस शोकको मिटा सकनेवाली कोई वस्तु मुझे दिखाई नहीं देती। ८

संजय बोले :

हे राजन्! हृषीकेश गोविन्दसे इस प्रकार कहकर, शत्रुओंको सन्तप्त करनेवाले के रूपमें विख्यात गुडाकेश अर्जुन 'मैं नहीं लड़ूँगा' बोलकर चुप हो गये। ९

हे भारत! दोनों सेनाओंके बीच इस प्रकार उदास होकर बैठ जानेवाले अर्जुनसे मानो विनोद करते हुए हृषीकेशने ये वचन कहे : १०

श्रीभगवान बोले :

शोक न करने योग्यका तू शोक करता है और बातें पण्डितों-जैसी करता है; परन्तु पण्डित तो मृत और जीवित लोगोंके विषयमें शोक नहीं करते। ११

क्योंकि वास्तवमें मैं, तू अथवा ये राजा-महाराजा किसी समय नहीं थे या आगे नहीं रहेंगे, ऐसी बात है ही नहीं। १२

देहधारीको जैसे इस देहमें कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थाकी प्राप्ति होती है, वैसे ही दूसरी देहकी प्राप्ति भी होती है। इन सबके विषयमें बुद्धिमान पुरुष व्याकुल नहीं होता। १३

हे कौन्तेय! इन्द्रियोंके विषयोंके साथ होनेवाले स्पर्श, सर्दी, गर्मी, सुख और दु:ख देनेवाले होते हैं। वे अनित्य हैं, इसलिए आते हैं और चले जाते हैं। हे भारत! इन सबको तू सहन कर। १४

हे पुरुषश्रेष्ठ! सुख और दु:खमें समान रहनेवाले जिस बुद्धिमान पुरुषको ये विषय व्याकुल नहीं करते, वह मोक्षके योग्य बनता है। १५

असत्का अस्तित्व नहीं होता और सत्का नाश नहीं होता। इन दोनोंको ज्ञानियोंने निर्णयपूर्वक जान लिया है। १६

जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, उसे तू अविनाशी जान। इस अव्यय, शाश्वत तत्त्वका नाश करनेमें कोई समर्थ नहीं है। १७

नित्य रहनेवाले तथा मन और इन्द्रियोंकी समझमें न आनेवाले इस अविनाशी देही (आत्मा)के ये शरीर नाशवान कहे गये हैं। इसलिए हे भारत, तू युद्ध कर। १८

जो इसे (आत्माको) मारनेवाली मानते हैं तथा जो इसे मारी हुई मानते हैं, वे दोनों कुछ भी नहीं जानते। यह (आत्मा) न तो किसीको मारती है, न किसीसे मारी जाती है। १९

यह कभी जन्म नहीं लेती, अथवा कभी मरती नहीं। यह पहले थी और अब आगे नहीं होनेवाली है, ऐसी बात भी नहीं है। इसलिए यह आत्मा अज है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है। शरीरके मारे जानेसे यह नहीं मारी जाती। २०

हे पार्थ! जो पुरुष आत्माको अविनाशी, नित्य, अज और अव्यय मानता है, वह कैसे किसीको मरवा सकता है अथवा किसीको मार सकता है? २१

मनुष्य जिस प्रकार पुराने वस्त्रोंको छोड़कर नये धारण करता है, उसी प्रकार देहधारी जीव जीर्ण हो चुके शरीरको छोड़कर दूसरा नया शरीर प्राप्त करता है। २२

इस (आत्मा) को शस्त्र छेदते नहीं, आग जलाती नहीं, पानी भिगोता नहीं और वायु सुखाती नहीं। २३

इस आत्माको छेदा नहीं जा सकता, जलाया नहीं जा सकता, भिगोया नहीं जा सकता; न यह सुखाया जा सकता है। यह नित्य है, सर्वगत है, स्थिर है, अचल है और सनातन है। २४

इसके सिवा, यह इन्द्रियों और मनके लिए अगम्य है; यह विकाररहित कही गई है; अतः इस आत्माको ऐसी जानकर तुझे इसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। २५

अथवा यदि तू इसे नित्य जन्म लेनेवाली और नित्य मरनेवाली माने, तो भी हे महाबाहो! तेरा इसके विषयमें शोक करना उचित नहीं है। २६

जन्मे हुए के लिए मृत्यु और मरे हुए के लिए जन्म अनिवार्य है। इसलिए जो अनिवार्य है उसके लिए शोक करना उचित नहीं है। २७

हे भारत! भूतमात्रकी जन्मसे पहलेकी और मृत्युके बादकी स्थिति देखी नहीं जा सकती। वह अव्यक्त है; केवल बीचकी स्थिति ही व्यक्त होती है। इसमें चिन्ताके लिए अवकाश ही कहाँ है? २८

टिप्पणी: भूतका अर्थ है स्थावर-जंगम सृष्टि।

कोई इसे (आत्माको) आश्चर्य रूपमें देखते हैं, दूसरे आश्चर्य रूपमें इसका वर्णन करते हैं, और तीसरे आश्चर्य रूपमें इसे वर्णित सुनते हैं, और सुननेपर भी कोई इसे नहीं जानते। २९

हे भारत! सबके शरीरमें बसी हुई यह शरीरधारी आत्मा नित्य है और अवध्य है; इसलिए भूतमात्रके विषयमें शोक करना तेरे लिए उचित नहीं है। ३०

टिप्पणी: यहाँतक श्रीकृष्णने बुद्धि-प्रयोगसे आत्माका नित्यत्व और देहका अनित्यत्व दिखाकर यह सूचित किया कि यदि किसी स्थितिमें देहका नाश करना उचित माना जाये, तो स्वजन और परजनका भेद करके, कौरव हमारे स्वजन हैं इसलिए उन्हें कैसे मारा जाये, यह विचार मोहजन्य है।

अब श्रीकृष्ण अर्जुनको क्षत्रिय धर्म क्या है, सो बताते हैं।

स्वधर्मके विचारसे भी तेरा हिचकिचाना उचित नहीं; क्योंकि क्षत्रियके लिए धर्म-युद्धसे अधिक श्रेयस्कर दूसरा कुछ नहीं हो सकता। ३१

हे पार्थ! इस प्रकार अपने-आप प्राप्त हुआ और मानो स्वर्गका द्वार ही खोल देनेवाला ऐसा युद्ध तो भाग्यशाली क्षत्रियोंको ही प्राप्त होता है। ३२

यदि तू धर्म-प्राप्त यह संग्राम नहीं करेगा, तो स्वधर्म और कीर्ति दोनोंको खोकर पापको प्राप्त होगा। ३३

सब लोग निरन्तर तेरी निन्दा किया करेंगे। और प्रतिष्ठित मनुष्यके लिए अपकीर्ति तो मृत्युसे भी बुरी है। ३४

जिन महारथियोंमें तूने सम्मान प्राप्त किया है, वे तुझे भयके कारण रणसे भागा हुआ मानेंगे और उनके बीच तेरी प्रतिष्ठा घट जायेगी। ३५

और तेरे शत्रु तेरे बलकी निन्दा करते-करते न बोलने योग्य अनेक वचन बोलेंगे; इससे अधिक कष्टकर और क्या हो सकता है? ३६

यदि तू युद्धमें मारा गया, तो तुझे स्वर्ग प्राप्त होगा। यदि तू जीत गया, तो पृथ्वीका उपभोग करेगा। इसलिए हे कौन्तेय! तू लड़नेका निश्चय करके खड़ा हो। ३७

टिप्पणी : भगवानने पहले आत्माका नित्यत्व और देहका अनित्यत्व अर्जुनको समझाया। उसके बाद यह भी बताया कि सहज प्राप्त युद्ध करनेमें क्षत्रियके लिए धर्मकी कोई बाधा नहीं हो सकती। इसलिए ३१वें श्लोकसे भगवान श्रीकृष्णने परमार्थके साथ उपयोगिताका [लाभ-हानिकी व्यावहारिक दृष्टिका] मेल बैठाया है।

अब भगवान गीताके मुख्य बोधकी झाँकी एक श्लोकमें कराते हैं।

सुख और दुःख, लाभ और हानि, जय और पराजयको समान समझकर तू लड़नेके लिए तैयार हो जा। ऐसा करनेसे तुझे पाप नहीं लगेगा। ३८

मैंने सांख्य-सिद्धान्त (ज्ञाननिष्ठा)के अनुसार तुझे तेरा यह कर्त्तव्य समझाया। अब योगवादके अनुसार समझाता हूँ। उसे सुन। इसका आश्रय लेनेसे तू कर्म-बन्धन तोड़ सकेगा। ३९

इस निष्ठासे आरम्भ (कार्य)का नाश नहीं होता, इसमें विपरीत परिणाम भी नहीं आता। इस धर्मका अल्प-सा पालन भी महाभयसे उबार लेता है। ४०

हे कुरुनन्दन! (योगवादीकी) निश्चयात्मक बुद्धि एकरूप होती है, जबकि अनिश्चयवाले मनुष्यकी बुद्धियाँ अर्थात् वासनाएँ अनेक शाखाओंवाली और अनन्त होती हैं। ४१

टिप्पणी : बुद्धि जब एक न रहकर अनेक (बुद्धियाँ) हो जाती हैं तब वह बुद्धि न रहकर वासना-का रूप ले लेती है। इसलिए बुद्धियाँ अर्थात् वासनाएँ।

वेदोंकी शाब्दिक चर्चामें रत रहनेवाले अज्ञानी, 'इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है' ऐसा कहनेवाले, कामनावाले तथा स्वर्गको ही श्रेष्ठ माननेवाले लोग जन्म-मरण-रूपी कर्मके फल देनेवाली तथा भोग और ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए किये जाने-वाले (विविध) कर्मोंके वर्णनसे भरी हुई वाणी बढ़ा-चढ़ाकर बोलते हैं; भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त ऐसे लोगोंकी यह बुद्धि नष्ट हो जाती है। उनकी बुद्धि न तो निश्चयवाली होती और न समाधिके विषयमें स्थिर हो सकती। ४२–४३–४४

टिप्पणी : ऊपरके तीन श्लोकोंमें योगवादकी तुलनामें कर्मकाण्डका अर्थात् वेदवादका वर्णन किया गया है। कर्मकाण्ड अथवा वेदवादका अर्थ है फल उत्पन्न करनेके लिए प्रयत्न करनेवाली असंख्य क्रियाएँ। ये क्रियाएँ वेदान्तसे अर्थात् वेदके रहस्यसे अलग और अल्प परिणामवाली होनेके कारण निरर्थक होती हैं।

हे अर्जुन! तू तीन गुणोंसे जो वेदके विषय हैं, अलिप्त रह। तू सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त हो जा। नित्य सत्य वस्तुमें स्थित रह। तू कोई भी वस्तु प्राप्त करने और उसकी रक्षा करनेकी झंझटसे मुक्त रह और आत्म-परायण बन। ४५

जो हेतु कुएँसे पूरा होता है वही सरोवरसे भी हर प्रकार पूरा होता है; इसी तरह जो-कुछ समस्त वेदोंमें है, वही ज्ञानवान ब्रह्म-परायण मनुष्यको आत्मानुभवसे प्राप्त हो जाता है। ४६

तेरा अधिकार कर्मपर ही है, उससे उत्पन्न होनेवाले अनेक फलोंपर कभी नहीं। कर्मका फल तेरा हेतु नहीं बनना चाहिए। कर्म न करनेके विषयमें भी तेरा आग्रह नहीं रहना चाहिए। ४७

हे धनंजय! तू आसक्तिको छोड़कर और योगस्थ रहकर अर्थात् सफलता और निष्फलताके विषयमें समान भाव रखकर कर्म कर। समताको ही योग कहा जाता है। ४८

हे धनंजय! समत्व-बुद्धिके साथ तुलना की जाये, तो निरा कर्म एक अत्यन्त तुच्छ वस्तु है। तू समत्व-बुद्धिका आश्रय ले। फलकी लालसा रखनेवाले पामर मनुष्य दयाके पात्र हैं। ४९

बुद्धियुक्त अर्थात् समत्ववान पुरुष इसी लोकमें पाप-पुण्यका स्पर्श नहीं होने देता। इसलिए तू समत्व साधनेका प्रयत्न कर। समता ही कार्यमें कुशलता है। ५०

क्योंकि समत्व-बुद्धिवाले मुनिजन कर्मसे उत्पन्न होनेवाले फलका त्याग करके जन्मके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं और निष्कलंक मोक्षपदको प्राप्त करते हैं। ५१

जब तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदलको पार कर लेगी तब तुझे सुने हुएके विषयमें और सुननेके लिए जो शेष रह जायेगा उसके विषयमें उदासीनता प्राप्त हो जायेगी। ५२

अनेक प्रकारके सिद्धान्तोंको सुनकर व्यग्रताको प्राप्त तेरी बुद्धि जब समाधिमें स्थिर होगी तभी तू समत्व अर्थात् योगको प्राप्त करेगा। ५३

अर्जुन बोले :

हे केशव! स्थितप्रज्ञ अर्थात् समाधिस्थ पुरुषके क्या लक्षण होते हैं? स्थितप्रज्ञ किस प्रकार बोलता, बैठता और चलता-फिरता है? ५४

श्रीभगवान बोले :

हे पार्थ! जब मनुष्य मनमें उठनेवाली समस्त कामनाओंका त्याग कर देता है और आत्मामें आत्मा द्वारा ही सन्तुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। ५५

टिप्पणी : आत्मामें आत्मा द्वारा ही सन्तुष्ट रहनेका अर्थ है आत्माका आनन्द भीतरसे खोजना, सुख-दुःख देनेवाली बाहरकी वस्तुओंपर आनन्दका आधार न रखना।

यह ध्यानमें रखना चाहिए कि आनन्द सुखसे भिन्न वस्तु है। मुझे धन मिले और मैं उसमें सुख मानूँ, तो यह मेरा मोह है। मैं दरिद्र हो जाऊँ, मुझे भूख पीड़ित किये हो और फिर भी यदि मैं चोरी या दूसरे किसी प्रलोभनमें न पड़ूँ, तो यह बात मुझे आनन्द देती है; इसे आत्म-सन्तोष कहा जा सकता है।

दुःखोंसे जो दुःखी न हो, सुखोंकी जो इच्छा न रखे तथा जो राग, भय और क्रोधसे रहित हो, वह मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है। ५६

जो सर्वत्र राग-रहित है और शुभके प्राप्त होनेपर उसका स्वागत नहीं करता अथवा अशुभके प्राप्त होनेपर अकुलाता नहीं, उसकी बुद्धि स्थिर है। ५७

जिस प्रकार कछुआ सब ओरसे अपने अंगोंको समेट लेता है, उसी प्रकार जब यह पुरुष इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे समेट लेता है, तब कहा जाता है कि उसकी बुद्धि स्थिर हो गई है। ५८

देहधारी मनुष्य जब निराहार रहता है तब उसके विषय मन्द हो जाते हैं, परन्तु [विषयोंके प्रति रहनेवाला] उसका रस नहीं मिटता; वह रस तो परब्रह्मके दर्शनसे, परमात्माका साक्षात्कार होनेसे ही शान्त होता है। ५९

टिप्पणी: यह श्लोक उपवासादिका निषेध नहीं करता, परन्तु उनकी मर्यादा सूचित करता है। विषयोंको शान्त करनेके लिए उपवासादि आवश्यक हैं, परन्तु विषयोंका मूल अर्थात् उनके प्रति रहनेवाला रस तो केवल ईश्वरकी झाँकी होनेपर ही जाता है। जिसे ईश्वरके साक्षात्कारका रस लग गया है, वह दूसरे रसोंको भूल ही जाता है।

हे कौन्तेय! सयाना और बुद्धिमान पुरुष प्रयत्न करता हो तो भी इन्द्रियाँ ऐसी मन्थनप्रवीण हैं कि वे उसके मनको बलपूर्वक हर लेती हैं। ६०

इन समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखकर योगीको मुझमें तन्मय होकर रहना चाहिए; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ अपने वशमें हैं उसीकी बुद्धि स्थिर रहती है। ६१

टिप्पणी: अभिप्राय यह है कि भक्तिके बिना—ईश्वरकी सहायताके बिना पुरुषका प्रयत्न व्यर्थ है।

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषके मनमें उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है और कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है। ६२

टिप्पणी: कामनावाले पुरुषमें क्रोधका होना अनिवार्य है, क्योंकि काम कभी तृप्त होता ही नहीं।

क्रोधसे मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़तासे स्मृति नष्ट हो जाती है और स्मृतिके नष्ट हो जानेसे ज्ञानका नाश होता है। और जिस पुरुषके ज्ञानका नाश हो जाता है, वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है। (उसकी सब प्रकारसे अधोगति होती है।) ६३

परन्तु जिसका मन अपने वशमें है जो राग-द्वेषरहित तथा वशमें रहनेवाली अपनी इन्द्रियोंके द्वारा (उचित) विषयोंको ग्रहण करता है, वह पुरुष चित्तकी प्रसन्नता प्राप्त करता है। ६४

चित्तकी प्रसन्नतासे उसके सारे दुःख टल जाते हैं और प्रसन्नता प्राप्त किये हुए पुरुषकी बुद्धि तुरन्त ही स्थिर हो जाती है। ६५

जिसमें समत्व नहीं है, उसमें विवेक नहीं होता, भक्ति नहीं होती। और जिसमें भक्ति नहीं होती, उसे शान्ति नहीं मिलती। अब जहाँ शान्ति नहीं है, वहाँ सुख तो हो ही कैसे सकता है? ६६

विषयोंमें भटकनेवाली इन्द्रियोंके पीछे जिसका मन दौड़ता है, उसका मन—वायु जिस प्रकार नावको पानीमें कहीं भी खींचकर ले जाती है उसी प्रकार—उसकी बुद्धिको चाहे जहाँ खींचकर ले जाता है। ६७

इसलिए हे महाबाहो! जिसकी इन्द्रियाँ सब ओरके विषयोंसे मुक्त होकर उसके वशमें हो जाती हैं, उस पुरुषकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। ६८

जिस समय सब प्राणी सोये होते हैं, उस समय संयमी पुरुष जागता है। और जिस समय सब लोग जागते हैं, उस समय ज्ञानवान मुनि सोता है। ६९

टिप्पणी: भोगी मनुष्य रातके बारह-एक बजे तक नाच-गान, राग-रंग, खानपान आदि में अपना समय बिताते हैं और फिर सवेरे सात-आठ बजेतक सोते रहते हैं। संयमी मनुष्य रातमें सात-आठ बजे सो जाते हैं और मध्यरात्रिमें उठकर ईश्वरका ध्यान करते हैं।

इसके सिवा, भोगी मनुष्य संसारका प्रपंच बढ़ाता है और ईश्वरको भूल जाता है, जबकि संयमी मनुष्य संसारके प्रपंचसे अनजान रहता है और ईश्वरका साक्षात्कार करता है। इस तरह इन दोनोंके पंथ अलग-अलग हैं, ऐसा भगवानने इस श्लोकमें सूचित किया है।

सब ओरसे निरन्तर पानी भरते रहनेपर भी जिसकी मर्यादा अचल रहती है, ऐसे समुद्रमें जिस प्रकार सारा पानी आकर समा जाता है, उसी प्रकार जिस मनुष्यमें सांसारिक भोग शान्त हो जाते हैं वही शान्ति प्राप्त करता है, कामनावाला मनुष्य नहीं। ७०

सारी कामनाओंका त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता और अहंकारसे रहित होकर इस संसारमें रहता है, वही शान्ति प्राप्त करता है। ७१

हे पार्थ! ईश्वरको पहचाननेवाले पुरुषकी ऐसी स्थिति होती है। इस स्थितिको प्राप्त करनेके बाद मोहके वश नहीं होता; और मृत्युके समय भी ऐसी ही स्थिति बनी रहे, तो वह ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त करता है। ७२

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है, श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके संवादका 'सांख्ययोग' नामक दूसरा अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ३

कर्मयोग

इस अध्यायको गीताका स्वरूप जाननेकी कुंजी कहा जा सकता है। इसमें यह बात स्पष्ट की गई है कि कर्म कैसे किया जाये, कौन-सा कर्म किया जाये तथा सच्चा कर्म किसे कहा जाये। इसमें यह भी बताया गया है कि सच्चे ज्ञानको पारमार्थिक कर्मोंके रूपमें फलित होना ही चाहिए।

अर्जुन बोले :

हे जनार्दन! यदि आप कर्मसे बुद्धिका स्थान अधिक ऊँचा मानते हैं, तो हे केशव! आप मुझे घोर कर्म करनेकी प्रेरणा क्यों देते हैं? १

टिप्पणी : बुद्धिका अर्थ समत्व-बुद्धि।

अपने मिश्र वचनसे आप मेरी बुद्धिको मानों शंकाशील बना रहे हैं। इसलिए आप मुझे एक ही बात निश्चयपूर्वक कहिए, जिससे मेरा कल्याण हो। २

टिप्पणी : अर्जुन उलझनमें पड़ जाते हैं; क्योंकि एक ओर भगवान शिथिल हो जानेके लिए उन्हें उलाहना देते हैं और दूसरी ओर दूसरे अध्यायके ४९-५० श्लोकोंमें कर्मत्यागके उपदेशका आभास होता है।

गहराईसे सोचें तो यह बात नहीं है, ऐसा भगवान आगे बतायेंगे।

श्रीभगवान बोले :

हे पापरहित अर्जुन! मैं पहले कह चुका हूँ कि इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा होती है : एक, ज्ञानयोग द्वारा सांख्योंकी; दूसरी, कर्मयोग द्वारा योगियोंकी। ३

कर्मका आरम्भ न करनेसे ही मनुष्य नैष्कर्म्यका अनुभव नहीं करता और कर्मके केवल बाह्य त्यागसे वह सिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं करता। ४

टिप्पणी : नैष्कर्म्यका अर्थ है मनसे, वाणीसे और शरीरसे कर्म न करनेका भाव। परन्तु ऐसी निष्कर्मताका अनुभव कोई पुरुष कर्म न करके प्राप्त नहीं कर सकता। तब निष्कर्मताका अनुभव कैसे प्राप्त हो सकता है, इसका विचार अब करना है।

वस्तुतः कोई मनुष्य कर्म किये बिना एक क्षणके लिए भी नहीं रह सकता। प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुण ही विवश स्थितिवाले प्रत्येक मनुष्यसे कर्म कराते हैं। ५

जो मनुष्य कर्म करनेवाली इन्द्रियोंको रोकता है, परन्तु उन इन्द्रियोंके विषयोंका मनसे चिन्तन करता है, वह मूढ़ात्मा मिथ्याचारी कहलाता है। ६

टिप्पणी : उदाहरणके लिए, जो मनुष्य वाणीको रोकता है, परन्तु मनमें किसीका बुरा चेतता है, वह निष्कर्म है; मिथ्याचारी है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि जबतक मनको न रोका जा सके तबतक शरीरको रोकना निरर्थक है। शरीरको रोके बिना मनपर अंकुश प्राप्त होता ही नहीं। परन्तु शरीरके अंकुशके साथ मनपर अंकुश रखनेका प्रयत्न होना ही चाहिए।

जो मनुष्य भय, लज्जा अथवा ऐसे ही दूसरे बाहरी कारणोंसे शरीरको रोकते हैं, परन्तु मनको नहीं मोड़ते— इतना ही नही, मनसे तो विषयोंका भोग करते हैं और मौका मिल जानेपर शरीरसे भी विषयोंका भोग करते हैं, यहाँ ऐसे मिथ्याचारियोंकी निन्दा की गई है।

इसके आगेका श्लोक इससे उलटा भाव बताता है।

परन्तु हे अर्जुन। जो मनुष्य मनसे इन्द्रियोंको नियमनमें रखता है तथा संग-रहित होकर कर्म करनेवाली इन्द्रियों द्वारा कर्मयोगका आरम्भ करता है वह श्रेष्ठ पुरुष है। ७

टिप्पणी: इसमें बाहर और भीतरका मेल साधा गया है। मनको अंकुशमें रखते हुए भी मनुष्य शरीरके द्वारा अर्थात् कर्मेन्द्रियोंके द्वारा कोई-न-कोई काम तो करेगा ही। परन्तु जिसका मन अंकुशमें है उसके कान दूषित बातें सुननेके बजाय ईश्वरका भजन सुनेंगे, सत्पुरुषोंके गुणोंकी प्रशंसा सुनेंगे। जिसका मन अपने वशमें है वह मनुष्य जिन्हें हम विषयोंके नामसे पहचानते हैं उनमें रस नहीं लेगा। ऐसा मनुष्य आत्माको शोभा देनेवाले कर्म ही करेगा। ऐसे कर्म करना कर्ममार्ग है। जिसके द्वारा शरीरके बन्धनसे आत्माके छूटनेका योग सधे वह कर्मयोग है। इसमें विषयासक्तिको कोई स्थान हो ही नहीं सकता।

इसलिए तू अपना नियत कर्म कर। कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना अधिक अच्छा है। कर्मके बिना तेरे शरीरका व्यापार भी नहीं चल सकता। ८

टिप्पणी: मूल श्लोकमें 'नियत' शब्द आया है। उसका सम्बन्ध अगले श्लोकके साथ है। उसमें मनके द्वारा इन्द्रियोंको नियमनमें रखते हुए संग-रहित होकर कर्म करनेवाले मनुष्यकी स्तुति की गई है। इसलिए यहाँ नियत कर्मकी अर्थात् इन्द्रियोंको नियमनमें रखकर किये जानेवाले कर्मका उपदेश दिया गया है।

यज्ञार्थ किये जानेवाले कर्मोंके सिवा अन्य कर्मोंसे इस लोकमें बन्धन उत्पन्न होता है। इसलिए हे कौन्तेय! तू राग-रहित होकर यज्ञार्थ कर्म कर। ९

टिप्पणी: यज्ञसे अभिप्राय है परोपकारार्थ ईश्वरार्थ किये गये कर्म।

प्रजाको यज्ञ-सहित उत्पन्न करके प्रजापति ब्रह्मा बोले: "इस यज्ञके द्वारा तुम वृद्धिको प्राप्त करो। यह तुम्हें इच्छित फल दे। तुम यज्ञके द्वारा देवोंका पोषण करो और वे देव तुम्हारा पोषण करें। इस प्रकार एक-दूसरेका पोषण करके तुम परम कल्याणको प्राप्त करो। यज्ञ द्वारा सन्तुष्ट हुए देव तुम्हें इच्छित भोग देंगे। जो मनुष्य उनके दिये हुए भोगोंका उपभोग बदला चुकाये बिना करता है वह निश्चित रूपसे चोर है।" १०-११-१२

टिप्पणी: यहाँ देवका अर्थ है भूतमात्र, ईश्वरकी सृष्टि। भूतमात्रकी सेवा देव-सेवा है और वही यज्ञ है।

जो मनुष्य यज्ञका बचा हुआ भाग खाते हैं, वे सारे पापोंसे मुक्त होते हैं। जो मनुष्य केवल अपने ही लिए भोजन बनाते हैं वे पाप खाते हैं। १३

अन्नसे भूतमात्र उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है। वर्षा यज्ञसे होती है। और यज्ञ कर्मसे होता है। तू यह जान कि कर्म प्रकृतिसे उत्पन्न होता है, प्रकृति अक्षर-ब्रह्मसे उत्पन्न होती और इसलिए सर्वव्यापक ब्रह्म सदा यज्ञमें प्रतिष्ठित रहता है। १४-१५

इस प्रकार चलाये हुए चक्रका जो मनुष्य अनुसरण नहीं करता, वह अपने जीवनको पापपूर्ण बनाता है, इन्द्रिय-सुखोंमें डूबा रहता है और हे पार्थ! वह व्यर्थ ही जीता है। १६

परन्तु जो मनुष्य आत्मामें मग्न रहनेवाला है, जो आत्मासे ही तृप्त रहता है और आत्मामें ही सन्तोष मानता है, उसके लिए कुछ करना जरूरी नहीं रहता। १७

कर्म करने या न करनेमें उसका कोई भी स्वार्थ नहीं होता। भूतमात्रके विषयमें उसका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता। १८

इसलिए तू तो संग-रहित होकर निरन्तर करने योग्य कर्म करता रह। संग-रहित होकर कर्म करनेवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त करता है। १९

जनक-जैसे अनेक लोग कर्मके द्वारा ही परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं।

लोक-संग्रहका विचार करके भी तुझे कर्म करना चाहिए। २०

(क्योंकि) उत्तम पुरुष जो-जो आचरण करते हैं, उसका अनुकरण सामान्य लोग करते हैं। जिस (आदर्श)को उत्तम पुरुष प्रमाण बनाते हैं, उसका सामान्य लोग अनुसरण करते हैं। २१

हे पार्थ! मेरे लिए तीनों लोकोंमें कुछ भी करने जैसा नहीं है। ऐसा भी नहीं कि प्राप्त करने योग्य कोई वस्तु मुझे नहीं मिली है; तो भी मैं सदा कर्ममें ही लगा रहता हूँ। २२

टिप्पणी: सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदिकी निरन्तर तथा अचूक गति ईश्वरके कर्म सूचित करती है। ये कर्म मानसिक नहीं किन्तु शारीरिक माने जायेंगे।

यहाँ ऐसी शंकाके लिए गुंजाइश नहीं है कि: "ईश्वर निराकार होते हुए भी शारीरिक कर्म करता है, यह कैसे कहा जा सकता है?" क्योंकि वह अशरीरी होते हुए भी शरीरीके समान व्यवहार करता दिखाई देता है। इसीलिए वह कर्म करते हुए भी 'अकर्मकृत' और अलिप्त है।

मनुष्यको समझना तो यह है कि जिस प्रकार ईश्वरकी प्रत्येक कृति यन्त्रवत् काम करती है, उसी प्रकार मनुष्यको भी बुद्धिपूर्वक किन्तु यन्त्रके समान ही नियमित कार्य करने चाहिए। मनुष्यकी विशेषता यन्त्रगतिका अनादर करके स्वच्छन्द बननेमें नहीं, परन्तु ज्ञानपूर्वक उस गतिका अनुकरण करनेमें है।

मनुष्य अलिप्त रहकर, संग-रहित होकर, यन्त्रवत् कार्य करे, तो इससे उसका शरीर कभी क्षीण नहीं होता। वह मृत्यु-पर्यन्त ताजा और स्फूर्तिवाला बना रहता है। शरीरके नियमोंका अनुसरण करके तथा अपना समय पूरा हो जानेपर शरीर नष्ट हो जाता है, परन्तु उसमें बसी हुई आत्मा जैसी थी वैसी ही बनी रहती है।

यदि मैं कभी अँगड़ाई लेनेके लिए भी रुके बिना निरन्तर कर्ममें प्रवृत्त न रहूँ, तो हे पार्थ! लोग हर तरहसे मेरे इस उदाहरणका अनुसरण करेंगे। यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब लोक नष्ट हो जायें, मैं अव्यवस्थाका कर्त्ता बनूँ और समग्र मानव-जातिका नाश कर डालूँ। २३–२४

हे भारत! जिस प्रकार अज्ञानी लोग आसक्त होकर कर्म करते है, उसी प्रकार ज्ञानीको आसक्तिरहित होकर लोक-कल्याणकी इच्छासे कर्म करना चाहिए। २५

कर्ममें आसक्त रहनेवाले अज्ञानी मनुष्योंकी बुद्धिको ज्ञानी पुरुष डाँवाडोल—अस्थिर न करे, परन्तु समत्व कायम रखते हुए भली-भाँति कर्म करके ऐसे मनुष्योंको सब कर्म करनेकी प्रेरणा दे। २६

सब कर्म प्रकृतिके गुणों द्वारा ही किये जाते हैं। परन्तु अहंकारसे मूढ़ बना हुआ मनुष्य 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा मान लेता है। इसके विपरीत, हे महाबाहो! गुण और कर्मके विभागके रहस्यको जाननेवाला पुरुष 'गुण गुणोंमें बर्त रहे हैं' इसे ध्यानमें रखकर उनमें आसक्त नहीं होता। २७-२८

टिप्पणी: जिस प्रकार श्वासोच्छ्वास आदि क्रियाएँ अपने-आप होती हैं, उनमें मनुष्य आसक्त नहीं होता, और जब इन क्रियाओंसे सम्बन्धित किसी व्याधिसे ग्रस्त हो जाते हैं, तभी मनुष्यको उनकी चिन्ता करनी पड़ती है अथवा तभी उसे अपने इन अवयवोंके अस्तित्वका भान होता है; उसी प्रकार स्वाभाविक कर्म अपने-आप हों तो उनके विषयमें आसक्ति नहीं होती। जिसका स्वभाव उदार है, वह स्वयं जानता भी नहीं कि मैं उदार हूँ। वह दान किये बिना रह ही नहीं सकता। ऐसी अनासक्ति मनुष्यमें अभ्याससे और ईश्वर-कृपासे ही आती है।

प्रकृतिके गुणोंसे मोहमें पड़े हुए मनुष्य गुणोंके कार्योंमें आसक्त रहते हैं। ज्ञानी पुरुषोंको चाहिए कि वे इन अज्ञानी मन्दबुद्धि लोगोंको अस्थिर न बनायें। २९

अध्यात्म-वृत्ति रखकर, सारे कर्म मुझे अर्पण करके, आसक्ति और ममत्व छोड़ कर तथा राग-रहित होकर तू युद्ध कर। ३०

टिप्पणी: जो मनुष्य देहमें निवास करनेवाली आत्माको पहचानता है और वह आत्मा परमात्माका ही अंश है ऐसा जानता है, वह मनुष्य सब-कुछ परमात्माको ही अर्पण करेगा—जिस प्रकार सेवक स्वामीके आश्रयमें निभता है और सब-कुछ उसीको अर्पण करता है।

जो मनुष्य श्रद्धा रखकर और द्वेषको छोड़कर मेरे इस मतके अनुसार सदा आचरण करते हैं, वे भी कर्मके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। ३१

परन्तु जो मेरे इस अभिप्रायमें दोष निकालकर इसका अनुसरण नहीं करते, वे ज्ञानहीन मूर्ख हैं। उनका नाश हो गया है, ऐसा ही तू समझ। ३२

ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वभावके अनुसार ही चलते हैं; प्राणिमात्र अपने स्वभावका अनुसरण करते हैं। इसमें बलात्कार क्या कर सकता है? ३३

टिप्पणी: यह श्लोक दूसरे अध्यायके ६१ से ६८ तकके श्लोकोंका विरोधी नहीं है। इन्द्रियोंका निग्रह करते-करते मनुष्यको मर मिटना है; परन्तु ऐसा करते हुए भी

सफलता न मिले, तो निग्रह अर्थात् बलात्कार व्यर्थ है। इसमें निग्रहकी निन्दा सूचित नहीं की गई है; स्वभावका साम्राज्य बताया गया है। 'यह तो मेरा स्वभाव है' ऐसा कहकर कोई गलत रास्ते जाये, तो मानना चाहिए कि वह इस श्लोकका अर्थ नहीं समझता।

अपने स्वभावका हमें पता नहीं चलता। हर आदत स्वभाव नहीं है। और आत्माका स्वभाव ऊर्ध्वगमन है। इसलिए आत्मा जब नीचे उतरे तब उसके विरोधमें खड़ा होना मनुष्यका कर्त्तव्य है। नीचेका श्लोक इसी बातको स्पष्ट करता है।

अपने-अपने विषयोंके प्रति इन्द्रियोंके राग-द्वेष तो पड़े ही हैं [यह बात ध्यानमें रखकर] मनुष्यको उन राग-द्वेषोंके वश नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे दोनों मनुष्यके मार्गमें शत्रु हैं। ३४

टिप्पणी: कानका विषय है सुनना। जो अच्छा लगे उसीको सुनना कान पसन्द करता है — यह राग है; जिसे वह बुरा मानता है ऐसी बात सुनना उसे पसन्द नहीं आता — यह द्वेष है।

'यह तो स्वभाव है' ऐसा कहकर राग-द्वेषके वश होनेके बजाय मनुष्यको उनका विरोध करना चाहिए।

आत्माका स्वभाव सुख-दु:खसे अछूत रहनेका है। उस स्वभावतक मनुष्यको पहुँचना है।

दूसरेका धर्म सुलभ हो, तो भी उससे कुछ कम दर्जेका अपना धर्म अधिक अच्छा है। स्वधर्ममें मृत्यु भी अच्छी है; परधर्म भयानक है। ३५

टिप्पणी: समाजमें एक मनुष्यका धर्म झाड़ू लगानेका हो सकता है और दूसरे मनुष्यका धर्म हिसाब रखनेका हो सकता है। हिसाब रखनेवाला भले ही उत्तम माना जाता हो, लेकिन झाड़ू लगानेवाला यदि अपना धर्म छोड़ दे, तो वह भ्रष्ट हो जायेगा और समाजको हानि पहुँचेगी।

ईश्वरके दरबारमें इन दोनोंकी सेवाका मूल्य उनकी निष्ठाके अनुसार आँका जायेगा। किसी भी धन्धेकी कीमत उसके दरबारमें तो एक ही होती है। दोनों मनुष्य यदि ईश्वरार्पण बुद्धिसे अपना कर्त्तव्य करें, तो दोनों समान रूपसे मोक्षके अधिकारी बनते हैं।

अर्जुन बोले:

हे वार्ष्णेय! मनुष्य न चाहनेपर भी मानो बलपूर्वक नियोजित व्यक्तिकी भाँति किसकी प्रेरणासे पाप करता है? ३६

श्रीभगवान बोले:

यह (प्रेरक) काम है, क्रोध है, जो रजोगुणसे उत्पन्न हुआ है; उसका पेट कभी भरता ही नहीं, वह महापापी है। उसे इस लोकमें तू अपना शत्रु समझ। ३७

टिप्पणी: हमारा सच्चा शत्रु अन्तरमें रहनेवाला काम या क्रोध ही है।

जिस प्रकार धुएँसे आग अथवा मैलसे दर्पण अथवा झिल्लीसे गर्भ ढका रहता है, उसी प्रकार काम-क्रोध-रूपी शत्रुसे यह ज्ञान ढका रहता है। ३८

हे कौन्तेय! तृप्त न की जा सके ऐसी यह कामरूपी अग्नि हमारी सदाकी शत्रु है; उससे ज्ञानीका ज्ञान ढका हुआ है। ३९

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इस शत्रुके निवास-स्थान हैं। इन तीनोंके द्वारा ज्ञानको ढककर यह शत्रु देहीको मोहमें डाल देता है। ४०

टिप्पणी : इन्द्रियोंमें काम व्याप्त होता है, इस कारणसे मन मलिन होता है, मनके मलिन होनेसे विवेक-शक्ति मन्द पड़ जाती है और विवेक-शक्तिके मन्द पड़नेसे ज्ञानका नाश होता है। देखिए, अध्याय २, श्लोक ६२-६४।

इसलिए हे भरतर्षभ! तू पहले इन्द्रियोंको वशमें रखकर ज्ञान तथा अनुभवका नाश करनेवाले इस पापीका अवश्य त्याग कर। ४१

इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं, इन्द्रियोंसे अधिक सूक्ष्म मन है और मनसे अधिक सूक्ष्म बुद्धि है। जो बुद्धिसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है वह आत्मा है। ४२

टिप्पणी : इसलिए यदि इन्द्रियाँ वशमें रहें तो सूक्ष्म कामको जीतना सरल हो जाये।

इस प्रकार बुद्धिसे अधिक सूक्ष्म आत्माको पहचानकर और आत्माके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो, कामरूप दुर्जय शत्रुका तू संहार कर। ४३

टिप्पणी : मनुष्य यदि देहमें रहनेवाली आत्माको जान ले, तो मन उसके वशमें रहने लगे, इन्द्रियोंके वशमें नहीं। और यदि मनको जीत लिया जाये, तो फिर काम भला क्या कर सकता है?

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके संवादका 'कर्मयोग' नामक तीसरा अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ४

ज्ञान-कर्म-संन्यास-योग

इस अध्यायमें तीसरे अध्यायका अधिक विवेचन किया गया है और अलग-अलग प्रकारके कुछ यज्ञोंका वर्णन दिया गया है।

श्रीभगवान बोले :

यह अविनाशी योग मैंने विवस्वान्से (सूर्यसे) कहा। सूर्यने इसे मनुसे कहा और मनुने इक्ष्वाकुसे कहा। १

इस प्रकार परम्परासे प्राप्त हुए इस योगको राजर्षिगण जानते थे। परन्तु हे परंतप! बादमें लम्बा समय बीत जानेके कारण वह लुप्त हो गया। २

वही पुरातन योग, उत्तम मर्मका — रहस्यका — विषय होनेके कारण, मैंने आज तुझसे कहा है, क्योंकि तू मेरा भक्त भी है और मित्र भी है। ३

अर्जुन बोले :

आपका जन्म तो अभीका है और विवस्वानका जन्म बहुत पहले हो चुका था। तब मैं यह कैसे जानूँ कि आपने वह (योग) सबसे पहले कहा था? ४

श्रीभगवान बोले :

हे अर्जुन! मेरे और तेरे भी अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं उन सबको जानता हूँ, परन्तु हे परंतप, तू उन्हें नहीं जानता। ५

मैं अजन्मा, अविनाशी और साथ ही भूतमात्रका ईश्वर हूँ; फिर भी अपने स्वभावपर आरूढ़ होकर अपनी मायाके बलसे मैं जन्म धारण करता हूँ। ६

हे भारत! जब-जब धर्म मन्द पड़ता है और अधर्मका बल बढ़ता है, तब-तब मैं जन्म धारण करता हूँ। ७

साधुओंकी रक्षाके लिए और दुष्टोंके नाशके लिए तथा धर्मका पुनरुद्धार करनेके लिए मैं युग-युगमें जन्म लेता हूँ। ८

टिप्पणी : यहाँ अश्रद्धालुके लिए आश्वासन है; और सत्यके — धर्मके — कभी विचलित न होनेकी प्रतिज्ञा है। इस जगतमें उतार-चढ़ाव तो आया ही करते हैं। परन्तु अन्तमें धर्मकी ही जय होती है। सन्तोंका नाश नहीं होता, क्योंकि सत्यका नाश नहीं होता। दुष्टोंका नाश निश्चित होता है, क्योंकि असत्यका कोई अस्तित्व नहीं है। यह जानकर मनुष्य स्वयं कर्तृत्वके अभिमानसे हिंसा न करे, दुराचार न करे। ईश्वरकी अगम्य माया अपना काम करती ही रहती है। यही है अवतार अथवा ईश्वरका जन्म। वस्तुतः ईश्वरके लिए जन्म हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार जो मनुष्य मेरे दिव्य जन्म और कर्मके रहस्यको जानता है, वह हे अर्जुन! देहका त्याग करके पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता, परन्तु मुझे प्राप्त करता है। ९

टिप्पणी : क्योंकि जब मनुष्यको ऐसा दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ईश्वर सत्यकी ही जय कराता है, तब वह सत्यको छोड़ता नहीं, धैर्य धारण करता है, दुःख सहन करता है और ममता-रहित होनेके कारण जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त हो जाता है तथा ईश्वरका ही ध्यान धरकर उसमें लीन हो जाता है।

राग, भय और क्रोध-रहित बने हुए, मेरा ही ध्यान धरनेवाले, मेरा ही आश्रय लेनेवाले तथा ज्ञानरूपी तपसे पवित्र बने हुए अनेक पुरुष मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं। १०

जो मनुष्य जिस प्रकार मेरा आश्रय लेते हैं, उन्हें मैं उसी प्रकार फल देता हूँ। प्रकार कोई भी हो, परन्तु हे पार्थ! मनुष्य मेरे मार्गका अनुसरण करते हैं — मेरे शासनके नीचे रहते हैं। ११

टिप्पणी : अर्थात् कोई भी मनुष्य ईश्वरीय नियमका उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसा बोता है वैसा काटता है; जैसा करता है वैसा भरता है। ईश्वरके नियमका — कर्मके नियमका कोई अपवाद नहीं होता। सबको समान अर्थात् अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार न्याय मिलता है।

कर्मोंकी सिद्धि चाहनेवाले लोग इस जगत्में देवताओंकी पूजा करते हैं। उससे उन्हें कर्म-जन्य फल इस मनुष्य-लोकमें ही मिल जाता है। १२

टिप्पणी : देवताओंका अर्थ स्वर्गमें बसनेवाले इन्द्र, वरुणादि देवता नहीं हैं। देवताका अर्थ है ईश्वरकी अंशरूप शक्ति। इस अर्थमें मनुष्य भी देवता है। भाप, बिजली आदि महान शक्तियाँ देवता हैं। हम यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि उनकी आराधना करनेका फल तुरन्त और इसी लोकमें मिलता है। वह फल क्षणिक है। वह फल जब आत्माको सन्तोषतक नहीं देता, तब मोक्ष तो दे ही कैसे सकता है?

गुण और कर्मके विभागोंके अनुसार मैंने चार वर्ण उत्पन्न किये हैं। उनका कर्त्ता होते हुए भी तू मुझे अविनाशी अकर्त्ता समझ। १३

कर्म मुझे स्पर्श नहीं करते। उनके फलके बारेमें मुझे कोई लालसा नहीं है। इस प्रकार जो मनुष्य मुझे भली-भाँति जानते हैं, वे कर्मोंके बन्धनमें नहीं बँधते। १४

टिप्पणी : क्योंकि मनुष्यके सामने कर्म करते हुए भी अकर्मी रहनेका सर्वोत्तम उदाहरण है। और सब कर्मोंका कर्त्ता ईश्वर ही है, हम तो निमित्त-मात्र हैं; तब फिर कर्त्तापनका अभिमान हमें क्यों होना चाहिए?

ऐसा जानकर प्राचीन कालके मुमुक्षुओंने कर्म किये हैं। इसलिए तू भी जिस प्रकार पूर्वज-गण सदा कर्म करते आये हैं उस प्रकार कर्म ही करता रह। १५

कर्म क्या है और अकर्म क्या है, इस विषयमें बुद्धिशाली लोग भी मोहमें पड़ जाते हैं। इसलिए कर्मके विषयमें मैं तुझे अच्छी तरह समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभसे बच सकेगा। १६

कर्मका, विकर्म (अर्थात् निषिद्ध कर्म)का और अकर्मका भेद जानना चाहिए। कर्मकी गति गूढ़ है। १७

जो मनुष्य कर्ममें अकर्मको देखता है और अकर्ममें कर्मको देखता है, वह मनुष्योंमें बुद्धिमान माना जाता है। वह योगी है और वह सम्पूर्ण रूपसे कर्म करनेवाला है। १८

टिप्पणी : जो कर्म करते हुए भी कर्त्तापनका अभिमान नहीं रखता उसका कर्म अकर्म है। और जो बाहरसे कर्मका त्याग करके भी मनसूबे बाँधा करता है उसका वह अकर्म भी कर्म है।

जिसे लकवा मार गया है उसका अपंग अवयव तभी हिलता है जब वह व्यक्ति उसे जान-बूझ — अभिमानपूर्वक — हिलाता है।

यह बीमार अपना अंग हिलानेकी क्रियाका कर्त्ता बनता है। अकर्त्तापन आत्माका गुण है। जो आत्मा मोहग्रस्त होकर अपनेको कर्त्ता मानती है, उस आत्माको मानो लकवा मार गया है और वह अभिमानी होकर कर्म करती है।

इस प्रकार जो कर्मकी गतिको जानता है, वही बुद्धिमान योगी कर्त्तव्य-परायण माना जायेगा। 'मैं करता हूँ' ऐसा माननेवाला पुरुष कर्म और विकर्मका भेद भूल जाता है और साधनके सारासारका विचार नहीं करता। आत्माकी स्वाभाविक गति ऊर्ध्व है; इसलिए जब मनुष्य नीतिका मार्ग छोड़ता है तब ऐसा कहा जा सकता है कि उसमें निश्चित रूपसे मैं-पन है। अभिमानरहित पुरुषके समस्त कर्म स्वभावसे ही सात्विक होते हैं।

जिसके सारे आरम्भ कामना और संकल्प-रहित होते हैं और जिसके कर्म ज्ञान-रूपी अग्नि द्वारा भस्म हो गये हैं, ऐसे पुरुषको ज्ञानीजन पण्डित कहते हैं। १९

कर्मफलकी आसक्ति छोड़कर जो सदा ही सन्तुष्ट रहता है और जिसे किसी तरहके आश्रयकी लालसा नहीं है, वह कर्ममें अच्छी तरह लीन होनेपर भी कुछ नहीं करता ऐसा कहा जायेगा।

टिप्पणी: कहनेका आशय यह कि उसे कर्मका बन्धन नहीं भोगना पड़ता।

जो आशा-रहित है, जिसका मन अपने वशमें है, जिसने सब प्रकारका संग्रह छोड़ दिया है और जिसका केवल शरीर ही कर्म करता है, वह कर्म करते हुए भी दूषित नहीं होता। २१

टिप्पणी: अभिमानसे किया गया कोई भी कर्म चाहे जितना सात्विक होनेपर भी बन्धनकारक होता है। कर्म जब ईश्वरार्पण बुद्धिसे अभिमानकी भावना न रखकर किया जाता है, तभी वह बन्धन-रहित बनता है। जिस मनुष्यका 'मैं' शून्यताको प्राप्त हो गया है, उसका केवल शरीर ही कर्म करता है। सोते मनुष्यका केवल शरीर ही काम करता है, ऐसा कहा जा सकता है। जो कैदी शक्तिके आगे झुककर अनिच्छासे हल चलाता है, उसका केवल शरीर ही काम करता है। जो मनुष्य अपनी इच्छासे ईश्वरका कैदी बन गया है, उसका भी केवल शरीर ही काम करता है; क्योंकि वह स्वयं शून्य बन गया है; प्रेरक ईश्वर है।

जो मनुष्य अनायास मिले हुए लाभसे सन्तुष्ट रहता है, जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्वसे मुक्त हो गया है, जो द्वेष-रहित हो गया है और जो सफलता-निष्फलताके विषयमें तटस्थ है, वह कर्म करते हुए भी उसके बन्धनमें नहीं बँधता। २२

जो मनुष्य आसक्तिसे रहित है, जिसका चित्त ज्ञानमें स्थिर है, जो मुक्त है, वह केवल यज्ञकी भावनासे ही कर्म करनेवाला है, इसलिए उसके समस्त कर्मोंका लय हो जाता है। २३

(यज्ञमें) अर्पण [की क्रिया] ब्रह्म है, हवि अर्थात् हवनकी वस्तु ब्रह्म है और ब्रह्मरूपी अग्निमें हवन करनेवाला भी ब्रह्म है; इस प्रकार कर्मके साथ जिसने ब्रह्मका मेल साधा है, वह ब्रह्मको ही प्राप्त करता है। २४

इसके अतिरिक्त, कुछ योगी देवताओंका पूजन-रूप यज्ञ करते हैं और दूसरे ब्रह्मरूपी अग्निमें यज्ञके द्वारा यज्ञको ही होमते हैं। फिर, कुछ योगीजन श्रवणादि इन्द्रियोंका संयम-रूप यज्ञ करते हैं और दूसरे कुछ शब्दादि विषयोंको इन्द्रिय-रूपी अग्निमें होमते हैं। २५-२६

टिप्पणी : सुननेकी क्रिया आदिका संयम करना एक बात है; और इन्द्रियोंका उपयोग करते हुए भी उनके विषयोंको प्रभु-प्रीत्यर्थ काममें लेना — उदाहरणके लिए भजनादि सुनना — दूसरी बात है; वस्तुतः ये दोनों बातें एक ही हैं।

और दूसरे योगीजन इन्द्रियोंके समस्त कर्मोंको तथा प्राणके समस्त कर्मोंको ज्ञानरूपी दीपकसे प्रज्ज्वलित आत्म-संयम-रूप योगाग्निमें होमते हैं। २७

टिप्पणी : अर्थात् परमात्मामें तन्मय हो जाते हैं।

इस प्रकार कोई यज्ञार्थ द्रव्य देनेवाले होते हैं; कोई तप करनेवाले होते हैं। कुछ अष्टांग-योग साधनेवाले होते हैं; जब कि कुछ स्वाध्याय तथा ज्ञानयज्ञ करते हैं। ये सब तीक्ष्ण व्रतधारी प्रयत्नशील याज्ञिक हैं। २८

दूसरे प्राणायाममें तत्पर रहनेवाले योगी अपान-वायुको प्राणवायुमें होमते हैं, प्राणवायुको अपान-वायुमें होमते हैं, अथवा प्राणवायु और अपान-वायु दोनोंको रोकते हैं। २९

टिप्पणी : ये तीन प्रकारके प्राणायाम हैं — रेचक, पूरक और कुम्भक।

संस्कृतमें प्राणवायुका अर्थ सामान्यतः समझे जानेवाले अर्थसे उलटा है। यह प्राणवायु भीतरसे बाहर निकलनेवाली है। हम जिसे बाहरसे भीतर लेते हैं, उसे प्राणवायु — आक्सिजन — के नामसे पहचानते हैं।

और, दूसरे लोग आहारका संयम करके प्राणोंको प्राणोंमें ही होमते हैं। जिन्होंने यज्ञोंके द्वारा अपने पापोंको क्षीण कर दिया है, ऐसे ये सब लोग यज्ञको जानते हैं। ३०

हे कुरुसत्तम! यज्ञसे बचा हुआ अमृत खानेवाले लोग सनातन ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य यज्ञ नहीं करता उसके लिए जब यह लोक भी नहीं, तो परलोक तो हो ही कैसे सकता है? ३१

इस तरह वेदोंमें अनेक प्रकारके यज्ञोंका वर्णन किया गया है। इन सब यज्ञोंको तू कर्मसे उत्पन्न हुआ जान। इस प्रकार जानकर तू मोक्षको प्राप्त करेगा। ३२

टिप्पणी : यहाँ कर्मका व्यापक अर्थ है — अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। ऐसे कर्मके बिना यज्ञ नहीं हो सकता। यज्ञके बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। इस प्रकार जाननेका और इस ज्ञानके अनुसार आचरण करनेका अर्थ है यज्ञको जानना।

तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य अपने शरीर, बुद्धि और आत्माकी शक्तिका उपयोग प्रभु-प्रीत्यर्थ — लोकसेवाके लिए — न करे, तो चोर सिद्ध होता है। वह मोक्षके योग्य नहीं बन सकता। जो मनुष्य केवल अपनी बुद्धिशक्तिका ही उपयोग करता है और शरीर तथा आत्माकी शक्तिका उपयोग नहीं करता, वह पूरा याज्ञिक नहीं है। इन [तीनों] शक्तियोंको साधे बिना इनका परोपकारके लिए उपयोग नहीं हो सकता। इसलिए आत्मशुद्धिके बिना शुद्ध लोकसेवा असम्भव है। सेवकको अपनी शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक तीनों शक्तियोंका एक-सा विकास करना ही चाहिए।

हे परंतप! द्रव्ययज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अधिक अच्छा है, क्योंकि हे पार्थ! सारे कर्म ज्ञानमें ही पराकाष्ठाको पहुँचते हैं। ३३

टिप्पणी: परोपकारकी वृत्तिसे दिया हुआ द्रव्य भी यदि ज्ञानपूर्वक न दिया गया हो, तो कई बार हानिकारक सिद्ध होता है; यह किस मनुष्यका अनुभव नहीं है? शुभ वृत्तिसे किये हुए समस्त कर्म तभी शोभा पाते हैं, जब उनके साथ ज्ञानका मेल हो। इसलिए समस्त कर्मोंकी पूर्णाहुति तो ज्ञानमें ही होती है।

तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजनोंकी सेवा करके तथा नम्रतापूर्वक और विवेकके साथ बार-बार उनसे प्रश्न करके तू इस ज्ञानको जानना। वे तेरी जिज्ञासाको तृप्त करेंगे। ३४

टिप्पणी: ज्ञान प्राप्त करनेकी तीन शर्तें — प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा — इस युगमें बहुत ही ध्यानमें रखने योग्य हैं। प्रणिपातका अर्थ है नम्रता, विवेक; परिप्रश्नका अर्थ है बार-बार पूछना; सेवा-रहित नम्रता, खुशामद गिनी जा सकती है। इसके अतिरिक्त, शोध और जाँच-पड़तालके बिना ज्ञानकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिए समझमें न आये तबतक शिष्यको नम्रतापूर्वक गुरुसे प्रश्न पूछते रहना चाहिए। यह जिज्ञासाका लक्षण है। इसमें श्रद्धाकी आवश्यकता होती है। जिस गुरुके प्रति हमारी श्रद्धा नहीं होती, उसके प्रति हार्दिक नम्रता नहीं हो सकती; तब फिर उसकी सेवा तो हमसे हो ही कैसे सकती है?

हे पाण्डव! वह ज्ञान प्राप्त करनेके बाद तुझे फिरसे ऐसा मोह नहीं होगा; उस ज्ञानके द्वारा तू सारे भूतोंको अपनेमें और मुझमें देखेगा। ३५

टिप्पणी: 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का यही अर्थ है। जिसे आत्मदर्शन हुआ है, वह अपनी आत्मा और दूसरेके बीच भेद नहीं देखता।

सारे पापियोंमें तू बड़ेसे-बड़ा पापी हो, तो भी ज्ञानरूपी नौकाकी मददसे तू समस्त पापोंको पार कर जायेगा। ३६

हे अर्जुन! जिस प्रकार प्रकट की गई अग्नि ईंधनको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मोको जलाकर भस्म कर देती है। ३७

इस संसारमें ज्ञान जैसी पवित्र अर्थात् शुद्ध करनेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। योगमें — समत्वमें पूर्णताको पहुँचा हुआ मनुष्य उस ज्ञानको समय पाकर स्वयं ही अपने भीतर प्राप्त कर लेता है। ३८

श्रद्धावान, ईश्वरपरायण और जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको प्राप्त करता है और ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् तुरन्त ही परम शान्तिको प्राप्त करता है। ३९

जो मनुष्य अज्ञान और श्रद्धा-रहित होनेके कारण संशयवान है, उसका नाश होता है। संशयवान मनुष्यके लिए न तो यह लोक है और न परलोक; उसे कहीं भी सुख नहीं मिलता। ४०

जिसने समत्व-रूपी योग द्वारा कर्मोंका अर्थात् कर्मके फलका त्याग किया है और ज्ञानके द्वारा संशयोंका नाश कर दिया है, उस आत्मदर्शीके लिए हे धनंजय! कर्म बन्धनकारक नहीं होते। ४१

इसलिए हे भारत! हृदयमें अज्ञानके कारण उत्पन्न हुए संशयका आत्मज्ञान-रूपी तलवारसे नाश करके तू योगका समत्व धारण करके खड़ा हो। ४२

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके संवादका 'ज्ञान-कर्म-संन्यास-योग' नामक चौथा अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ५

कर्म-संन्यास-योग

इस अध्यायमें यह बताया गया है कि कर्मयोगके बिना कर्म-संन्यास हो ही नहीं सकता और वास्तवमें दोनों एक ही हैं।

अर्जुन बोले :

हे कृष्ण! आप कर्मोंके त्यागकी और साथ ही कर्मोंके योगकी भी स्तुति करते हैं। आप मुझे निश्चयपूर्वक कहिए कि इन दोनोंसे श्रेयस्कर क्या है? १

श्रीभगवान बोले :

कर्मोंका संन्यास और योग दोनों मोक्ष देनेवाले हैं। परन्तु इन दोनोंमें कर्मयोग कर्म-संन्याससे श्रेष्ठ है। २

जो मनुष्य किसीसे द्वेष नहीं करता और किसी बातकी इच्छा नहीं करता, उसे सदा संन्यासी ही मानना चाहिए। क्योंकि हे महाबाहो! जो मनुष्य सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त है, वह सरलतापूर्वक बन्धनसे छूट जाता है। ३

टिप्पणी : अभिप्राय यह है कि कर्मका त्याग संन्यासका मुख्य लक्षण नहीं है; बल्कि द्वन्द्वातीत होना ही मुख्य लक्षण है। एक मनुष्य कर्म करते हुए भी संन्यासी हो सकता है। दूसरा मनुष्य कर्म न करते हुए भी मिथ्याचारी हो सकता है। देखिए अध्याय ३, श्लोक ६।

सांख्य और योग — ज्ञान और कर्म — ये दो भिन्न हैं, ऐसा अज्ञानी मनुष्य कहते हैं, पण्डित नहीं। इनमें से किसी एकमें भी अच्छी तरह स्थिर रहनेवाला मनुष्य दोनोंका फल प्राप्त करता है। ४

टिप्पणी : लोक-संग्रह-रूपी कर्मयोगका जो विशेष फल है, उसे ज्ञानयोगी केवल संकल्पसे ही प्राप्त कर लेता है; जब कि कर्मयोगी अपनी अनासक्तिके कारण बाहरी कर्म करते हुए भी ज्ञानयोगीकी शान्तिका सहज ही उपभोग करता है।

सांख्यमार्गी जो स्थान प्राप्त करता है, वही स्थान योगी भी प्राप्त करता है। जो मनुष्य सांख्य और योगको एक-रूप देखता है, वही सच्चे अर्थमें देखता है। ५

हे महाबाहो! कर्मयोगके बिना कर्म-संन्यास कठिनाईसे सिद्ध होता है, परन्तु समत्ववान मुनि शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है। ६

जिसने योग सिद्ध कर लिया है, जिसने अपने हृदयको विशुद्ध बना लिया है, जिसने मन और इन्द्रियोंको जीत लिया है और जो सारे भूतोंको अपने समान ही समझता है, वह मनुष्य कर्म करते हुए भी उससे अलिप्त रहता है। ७

सत्वको जाननेवाला योगी देखते हुए, स्पर्श करते हुए, सूंघते हुए, खाते हुए, चलते हुए, सोते हुए, श्वास लेते हुए, बोलते हुए, कुछ छोड़ते हुए या लेते हुए तथा आँख खोलते और मींचते हुए भी केवल इन्द्रियाँ ही अपने-अपने कार्य करती हैं ऐसी भावना रखे और यह समझे कि 'मैं कुछ भी नहीं करता।' ८–९

टिप्पणी: जबतक मनुष्यमें वासना और देहाभिमान होता है तबतक ऐसी अलिप्त स्थिति प्राप्त नहीं होती। इसलिए विषयासक्त मनुष्य यह कहकर छूट नहीं सकता कि 'विषयोंका भोग मैं नहीं करता, इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं।' ऐसा अनर्थ करनेवाला मनुष्य न तो गीताको समझता है और न धर्मको समझता है। नीचेका श्लोक इस बातको स्पष्ट करता है।

जो मनुष्य कर्मोंको ब्रह्मार्पण कर देता है तथा आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे उसी तरह अलिप्त रहता है जिस तरह पानीमें रहनेवाला कमल पानीसे अलिप्त रहता है। १०

योगीजन शरीरसे, मनसे, बुद्धिसे अथवा केवल इन्द्रियोंसे भी आसक्ति-रहित होकर आत्मशुद्धिके लिए कर्म करते हैं। ११

समतावान योगी कर्मफलका त्याग करके परम शान्तिको प्राप्त करता है; जब कि राग-द्वेषवाला मनुष्य कामनासे प्रेरित होनेके कारण कर्मफलमें आसक्त होकर बन्धनमें फँसता है। १२

संयमी पुरुष मनसे सारे कर्मोंका त्याग करके नौ द्वारोंवाले नगर-रूपी शरीरमें रहते हुए भी, न कुछ करता है न कुछ कराता हुआ, सुखसे रहता है। १३

टिप्पणी: दो नथुने, दो कान, दो आँख, मलत्यागके दो स्थान और मुँह — इस प्रकार शरीरके नौ मुख्य द्वार हैं। वैसे तो चमड़ीके असंख्य छेद भी शरीरके द्वार ही हैं।

इन द्वारोंका चौकीदार यदि इनमें आवागमन करनेवाले अधिकारियोंको ही आने और जाने देकर अपने धर्मका पालन करे, तो उसके विषयमें यह कहा जा सकता है कि यह आवागमन होते रहनेपर भी चौकीदार उसमें भाग नहीं लेता, वह केवल उसका साक्षी है। इसलिए वह न तो कुछ करता है और न कुछ कराता है।

जगतका प्रभु न तो कर्त्तापनकी रचना करता है, न कर्मकी और न वह कर्म तथा फलका मेल साधता है। प्रकृति ही सब-कुछ करती है। १४

टिप्पणी: ईश्वर कर्त्ता नहीं है। कर्मका नियम अचल और अनिवार्य है। और जो मनुष्य जैसा करता है वैसा उसे भरना ही पड़ता है। इसीमें ईश्वरकी महादया, उसका न्याय समाहित है। शुद्ध न्यायमें शुद्ध दया है। शुद्ध न्यायकी विरोधिनी दया सच्ची

दया नहीं है, बल्कि क्रूरता है। परन्तु मनुष्य त्रिकालदर्शी नहीं है। इसलिए दया—क्षमा—ही उसके लिए न्याय है। वह स्वयं निरन्तर न्यायका पात्र होनेके कारण क्षमाका याचक है। वह क्षमा करके ही दूसरोंके साथ न्याय कर सकता है। अपने भीतर वह क्षमाके गुणका विकास करे, तभी अन्तमें अकर्त्ता, योगी, समतावान और कर्ममें कुशल बन सकता है।

ईश्वर किसीके पाप या पुण्यको अपने सिर नहीं लेता। अज्ञानसे ज्ञान ढँक जाता है; और इसलिए प्राणी मोहमें फँस जाते हैं। १५

टिप्पणी: मनुष्य अज्ञानसे, अर्थात् 'मैं करता हूँ' इस वृत्तिसे, कर्मके बन्धनमें बँधता है, फिर भी अच्छे-बुरे फलोंका आरोपण वह ईश्वरपर करता है। यह मोहजाल है।

परन्तु आत्मज्ञानके द्वारा जिन मनुष्योंके अज्ञानका नाश हुआ है, उनका वह सूर्यके समान, प्रकाशमय ज्ञान उन्हें परम तत्त्वका दर्शन कराता है। १६

ज्ञानके द्वारा जिनके सब पाप धुल गये हैं ऐसे, ईश्वरका ध्यान धरनेवाले, ईश्वरमय बने हुए, उसमें स्थिर रहनेवाले तथा उसीको सर्वस्व माननेवाले लोग मोक्ष प्राप्त करते हैं। १७

विद्वान और विनयशील ब्राह्मणके विषयमें, या गायके विषयमें, बड़े हाथीके विषयमें, कुत्तेके विषयमें तथा कुत्तेको खानेवाले [किसी] चांडालके विषयमें ज्ञानीजन सम-दृष्टि रखते हैं। १८

टिप्पणी: अर्थात् वे किसी प्रकारका भेदभाव रखे बिना आवश्यकताके अनुसार सबकी सेवा करते हैं। ब्राह्मण और चाण्डालके प्रति समभाव रखनेका अर्थ यह है कि ब्राह्मण को साँपके काटनेपर जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष उसके विषको प्रेमसे चूसकर उसे विष-मुक्त करनेका प्रयत्न करेगा, उसी प्रकार चाण्डालको साँपके काटनेपर भी वह वैसा ही व्यवहार करेगा।

जिन लोगोंका मन समत्वमें स्थिर हो गया है, उन्होंने इस देहमें रहते हुए ही जन्म-मरणके चक्रको जीत लिया है। ब्रह्म निष्कलंक है और समदृष्टिवाला है, इसलिए वे लोग ब्रह्ममें ही स्थिर होते हैं। १९

टिप्पणी: मनुष्य जैसा और जिसका चिन्तन करता है वैसा वह बन जाता है। इसलिए समत्वका चिन्तन करके निर्दोष बनकर वह समत्वकी मूर्तिके समान निर्दोष ब्रह्मको प्राप्त करता है।

जिस मनुष्यकी बुद्धि स्थिर हो गई है, जिसका मोह नष्ट हो गया है, जो ब्रह्मको जानता है और ब्रह्ममें स्थिर होकर रहता है, वह प्रियको प्राप्त करके सुखी नहीं होता और अप्रियको प्राप्त करके दुखी नहीं होता। २०

बाह्य विषयोंमें आसक्ति न रखनेवाला पुरुष अन्तरमें जो आनन्द भोगता है, वही अक्षय आनन्द उपर्युक्त ब्रह्म-परायण पुरुष अनुभव करता है। २१

टिप्पणी: जो मनुष्य अन्तर्मुख हो गया है, वही ईश्वरका साक्षात्कार कर सकता है और वही परम आनन्द प्राप्त कर सकता है। विषयोंसे निवृत्त रहकर कर्म करना

और ब्रह्म-समाधिमें लीन होना, ये दो भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं, परन्तु एक ही वस्तुको देखनेकी दो दृष्टियाँ हैं — एक ही सिक्केके दो पहलू हैं।

विषयोंसे उत्पन्न होनेवाले भोग अवश्य ही दुःखका कारण हैं। हे कौन्तेय! वे आरम्भ और अन्तवाले होते हैं। समझदार मनुष्य उनमें आनन्द नहीं मानता। २२

शरीर छूटनेके पूर्व जो मनुष्य काम और क्रोधके वेगको इस देहमें — इस जन्ममें ही पचानेकी शक्ति प्राप्त करता है, उसीने समत्व सिद्ध किया है, वही सुखी है। २३

टिप्पणी: मृत शरीरके लिए जैसे इच्छा या द्वेष नहीं होता, सुख-दुःख नहीं होते, वैसे ही जो मनुष्य जीवित होते हुए भी मृतके समान, जड़भरतके समान देहातीत रह सकता है, उसने इस जगत्‌में विजय प्राप्त की है और वही सच्चे आत्मसुखका अनुभव करता है।

जो अन्तरका आनन्द अनुभव करता है, जिसके अन्तरमें शान्ति है, जिसे अन्तर्ज्ञान सिद्ध हो चुका है, वह योगी ब्रह्मरूप बनकर ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त करता है। २४

जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, जिनकी शंकाएँ और दुविधाएँ मिट गई हैं, जिन्होंने मनको वशमें कर लिया है, और जो प्राणिमात्रके हितमें ही संलग्न रहते हैं, ऐसे ऋषि ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त करते हैं। २५

जो अपने-आपको पहचानते हैं, जिन्होंने काम और क्रोधको जीत लिया है, जिन्होंने मनको वशमें कर लिया है, ऐसे यतियोंके लिए सर्वत्र ब्रह्म-निर्वाण ही है। २६

बाहरके विषय-भोगोंका बहिष्कार करके, दृष्टिको भृकुटीके बीच स्थिर करके, नासिकाके मार्गसे जाने-आनेवाली प्राणवायु और अपान-वायुकी गतिको एक-सी रखकर, इन्द्रियों, मन तथा बुद्धिको वशमें रखकर तथा इच्छा, भय और क्रोधसे रहित होकर जो मुनि मोक्षमें परायण रहता है, वह सदा मुक्त ही है। २७–२८

टिप्पणी: प्राणवायु भीतरसे बाहर निकलनेवाली और अपान-वायु बाहरसे भीतर जाने वाली वायु है। इन श्लोकोंमें प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओंका समर्थन किया गया है। प्राणायाम आदि बाह्य क्रियाएँ हैं, और उनका असर शरीरको स्वस्थ रखने तथा उसे परमात्माके रहने योग्य मन्दिर बनानेतक ही सीमित है। भोगीके लिए सामान्य व्यायामादि जो कार्य करते हैं, वही कार्य योगीके लिए प्राणायाम आदि क्रियाएँ करती हैं। भोगीके व्यायामादि उसकी इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेमें सहायक होते हैं। शरीरको निरोग और कठिन बनाते हुए भी प्राणायामादि क्रियाएँ इन्द्रियोंको शान्त रखनेमें योगीकी सहायता करती हैं। आजके जमानेमें प्राणायामादि विधियाँ कुछ लोगोंको ही आती हैं और जिन्हें आती हैं उनमें से भी बहुत थोड़े लोग उनका सदुपयोग करते हैं। जिन लोगोंने इन्द्रियों, मन और बुद्धिपर कमसे-कम प्राथमिक विजय प्राप्त कर ली है, जिन्हें मोक्षकी तीव्र लगन है और जिन्होंने राग-द्वेषादिको जीतकर भयको त्याग दिया है, उनके लिए प्राणायामादि क्रियाएँ अवश्य ही उपयोगी और सहायक सिद्ध होती हैं।

आन्तरिक शुद्धिके अभावमें प्राणायामादि क्रियाएँ बन्धनका एक साधन बनकर मनुष्यको मोहकूपमें अधिक गहरा ले जा सकती हैं — ले जाती हैं। अनेक लोगोंका

ऐसा अनुभव है। इसलिए योगीन्द्र पतंजलिने यम-नियमोंको प्रथम स्थान दिया है तथा उन्हें सिद्ध करनेवालेके लिए ही प्राणायामादि क्रियाओंको मोक्ष मार्गमें सहायक माना है।

यम पाँच हैं: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

नियम पाँच हैं: शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

मुझे यज्ञ और तपका भोक्ता, समस्त लोकोंका महेश्वर तथा भूतमात्रका हित करनेवाला जानकर (उक्त मुनि) शान्ति प्राप्त करता है। २९

टिप्पणी: कोई यह न समझे कि यह श्लोक इस अध्यायके १४वें तथा १५वें श्लोकों और ऐसे ही दूसरे श्लोकोंका विरोधी है। ईश्वर सर्व-शक्तिमान है, इसलिए वह कर्त्ता-अकर्त्ता, भोक्ता-अभोक्ता जो कहो सो है और नहीं भी है। वह अवर्णनीय है। वह मनुष्यकी भाषासे परे है। इसलिए उसमें परस्पर-विरोधी गुणों और शक्तियोंका भी आरोपण करके मनुष्य उसकी झाँकी करनेकी आशा रखता है।

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके संवादका 'कर्म-संन्यास-योग' नामक पाँचवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ६

ध्यानयोग

इस अध्यायमें योग साधनेके अर्थात् समत्व सिद्ध करनेके कुछ साधन बताये गये हैं।

श्रीभगवान बोले:

जो मनुष्य कर्मफलका आश्रय लिये बिना विहित कर्म करता है; वह संन्यासी भी है और योगी भी है। जो अग्निका अर्थात् अग्निहोत्रका और दूसरी सारी क्रियाओंका त्याग कर देता है वह मनुष्य नहीं। १

टिप्पणी: यहाँ विहितका अर्थ है कर्त्तव्यके रूपमें प्राप्त हुआ (सत्कर्म)। अग्निका अर्थ है साधन-मात्र। जब अग्निके द्वारा होम होता था तब अग्निकी आवश्यकता रहती थी। संन्यासी होम नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें निरग्नि कहा जाता था।

मान लीजिए कि आजके युगमें चरखा सेवाका साधन है, तो चरखेका त्याग करके कोई संन्यासी नहीं हो सकता।

हे पाण्डव! जिसे संन्यास कहा जाता है, उसे तू योग समझ। जिसने मनके संकल्पोंका त्याग नहीं किया है, वह कभी योगी नहीं हो सकता। २

योग साधनेवाले मनुष्यके लिए कर्म साधन है; जिसने योग सिद्ध कर लिया है, उसके लिए उपशम अर्थात् विरति, शान्ति ही साधन होती है। ३

टिप्पणी : जिस मनुष्यकी आत्मशुद्धि हो गई है, जिसने समत्व सिद्ध कर लिया है, उसके लिए आत्मदर्शन सरल होता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि योगारूढ़ पुरुषको लोक-संग्रहके लिए भी कर्म करना जरूरी नहीं रहता। लोक-संग्रहके बिना वह जीवित ही नहीं रह सकता। इसलिए सेवाके कर्म करना भी उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है। वह दिखावेके लिए कुछ नहीं करता। इसके साथ अध्याय ३ के श्लोक ४ और अध्याय ५ के श्लोक ४ की तुलना कीजिए।

जब मनुष्य इन्द्रियोंके विषयों या कर्मोंमें आसक्त नहीं होता और समस्त संकल्पों का त्याग कर देता है तब वह योगारूढ़ कहलाता है। ४

आत्माके द्वारा मनुष्य आत्माका उद्धार करे; उसकी अधोगति न करे। आत्मा ही आत्माका मित्र है, और आत्मा ही आत्माका शत्रु है। ५

जिस मनुष्यने अपने बलसे अपने-आपको जीत लिया है, उसीकी आत्मा उसकी मित्र है; जिसने अपने-आपको जीता नहीं है, वह अपने प्रति शत्रु-जैसा व्यवहार करता है। ६

जिसने अपने मनको जीत लिया है और जो पूर्ण रूपसे शान्त हो गया है, उसकी आत्मा सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख तथा मान-अपमानमें समान रहती है। ७

जो ज्ञान और अनुभवसे तृप्त हो गया है, जो अविचल है, जिसने इन्द्रियोंको जीत लिया है तथा जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सोना समान हैं, ऐसा ईश्वर-परायण मनुष्य योगी कहा जाता है। ८

हितेच्छु, मित्र, शत्रु, तटस्थ,[1] मध्यस्थ,[2] अप्रिय या प्रिय — इन सबके प्रति तथा साधु और पापी दोनोंके प्रति जो समानभाव रखता है वह श्रेष्ठ योगी है। ९

योगी चित्तको स्थिर करके, वासना और संग्रहका त्याग करके तथा एकान्तमें एकाकी रहकर अपनी आत्माको निरन्तर परमात्माके साथ जोड़े। १०

पवित्र स्थानमें, न तो बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा तथा जिसपर कुशा, मृगचर्म और वस्त्र एकपर-एक बिछे हुए हों ऐसा स्थिर आसन अपने लिए स्थापित करके और उसपर एकाग्र मनसे बैठकर चित्त तथा इन्द्रियोंको वशमें करके वह योगी आत्मशुद्धिके लिए योगकी साधना करे। ११-१२

स्थिर भावसे काया, गरदन तथा मस्तकको सीधी रेखामें अचल रखकर, इधर-उधर न देखते हुए अपने नासिकाग्रपर दृष्टिको टिकाकर, पूर्ण शान्तिसे, भयरहित होकर, ब्रह्मचर्यमें दृढ़ रहकर तथा मनको वशमें करके मुझमें परायण हुआ योगी मेरा ध्यान करता हुआ बैठे। १३-१४

टिप्पणी : नासिकाग्रका अर्थ है भृकुटीके बीचका भाग (देखिए अ० ५, श्लोक २७)। ब्रह्मचारी-व्रतका अर्थ केवल वीर्य-संग्रह ही नहीं है, परन्तु ब्रह्मको प्राप्त करनेके लिए आवश्यक अहिंसादि समस्त व्रत है।

१. दोनों पक्षोंके लिए एक समान उदासीन या बेपरवाह मनुष्य तटस्थ कहा जायेगा।

२. एक-दूसरेके खिलाफ लड़नेवाले दोनों पक्षोंका हित चाहनेवाला मध्यस्थ कहा जायेगा।

इस प्रकार जिसका मन नियन्त्रणमें है ऐसा योगी अपनी आत्माको परमात्माके साथ जोड़ता है और मुझे प्राप्त करनेमें निहित मोक्षरूपी परमशान्तिको प्राप्त करता है। १५

हे अर्जुन। यह समत्व-रूपी योग न तो बहुत खानेवालेको प्राप्त होता है और न बिलकुल उपवास करनेवालेको; इसी प्रकार यह योग न तो अतिशय सोनेवालेको प्राप्त होता है और न अतिशय जागनेवालेको। १६

जो मनुष्य आहार-विहारमें, सोने-जागनेमें तथा दूसरे सब कार्योंमें उचित अनुपात बनाये रखता है, उसके लिए यह योग दुःखोंका नाश करनेवाला सिद्ध होता है। १७

भली-भाँति नियन्त्रित किया हुआ चित जब आत्मामें स्थिर हो जाता है और मनुष्य समस्त कामनाओंके विषयमें निःस्पृह बन जाता है तब वह योगी कहा जाता है। १८

आत्माको परमात्माके साथ जोड़नेका प्रयत्न करनेवाले स्थिरचित्त योगीकी स्थिति वायुरहित स्थानमें निष्कम्प रहनेवाले दीपक-जैसी कही गई है। १९

योगके सेवनसे अंकुशमें आया हुआ मन जिस स्थितिमें शान्ति प्राप्त करता है, जिसमें आत्माके द्वारा ही आत्माको पहचानकर आत्मामें मनुष्य सन्तोष प्राप्त करता है; जिसमें इन्द्रियोंसे परे तथा बुद्धिसे ग्रहण करने योग्य अनन्त सुखका अनुभव होता है; जिसमें स्थित हुआ मनुष्य मूल वस्तुसे विचलित नहीं होता; इसके अतिरिक्त जिसे प्राप्त करनेके बाद दूसरे किसी लाभको वह अधिक नहीं मानता; तथा जिसमें स्थिर हुआ मनुष्य महा दुःखसे भी डिगता नहीं, दुःखके प्रसंगोंसे रहित उस स्थितिको योगकी स्थिति समझना चाहिए। इस योगकी अकुलाये और उकताये बिना दृढ़तासे साधना करनी चाहिए। २०-२१-२२-२३

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली समस्त कामनाओंको सम्पूर्णतया छोड़कर, मनके द्वारा ही इन्द्रियोंके समूहको समस्त दिशाओंसे भली-भाँति नियन्त्रणमें लाकर, योगीको अविच-लित बुद्धिसे धीरे-धीरे शान्त होना चाहिए और मनको आत्मामें स्थिर करके अन्य किसी वस्तुका विचार नहीं करना चाहिए। २४-२५

चंचल और अस्थिर मन जहाँ-जहाँ भटकने जाये, वहाँ-वहाँसे उसे नियममें लाकर (योगी) अपने वशमें करे। २६

जिसका मन भली-भाँति शान्त हो गया है, जिसके विकारोंका शमन हो गया है, ऐसा ब्रह्ममय बना हुआ निष्पाप योगी अवश्य ही उत्तम सुख प्राप्त करता है। २७

इस प्रकार पाप-रहित बना हुआ योगी आत्माके साथ निरन्तर अनुसन्धान करते हुए सरलतासे ब्रह्म-प्राप्ति रूपी अनन्त और अपार सुखका अनुभव करता है। २८

सर्वत्र समभाव रखनेवाला योगी अपनेको सारे भूतोंमें देखता है और सारे भूतोंको अपनेमें देखता है। २९

जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, वह मेरी दृष्टिसे कभी दूर नहीं हटता और मैं उसकी दृष्टिसे कभी दूर नहीं हटता। ३०

इस प्रकार मुझमें लीन हुआ जो योगी भूतमात्रमें बसे हुए मुझे भजता है, वह सब प्रकारसे (कर्मोंमें) लगा रहकर भी मुझमें ही रहता है। ३१

टिप्पणी : जबतक "मैं" का भाव है तबतक तो परमात्मा "पर" ही रहता है। जब मनुष्यका "मैं" का भाव मिट जाता है – जब वह शून्य बन जाता है, तभी एक परमात्माको सर्वत्र देखता है।

आगे अध्याय १३के श्लोक २३की टिप्पणी देखिए।

हे अर्जुन! जो मनुष्य सबको अपने-जैसा ही मानता है और सुख हो अथवा दुःख दोनोंको समान समझता है, वह श्रेष्ठ योगी[1] माना जाता है। ३२

अर्जुन बोले :

हे मधुसूदन! आपने यह जो समत्व-रूपी योग मुझे समझाया, मैं उसकी स्थिरता को अपने मनकी चंचलताके कारण समझ नहीं पाता। ३३

क्योंकि हे कृष्ण! मन चंचल है ही; बहुत बलवान होनेके कारण वह मनुष्य को मथ डालता है। जिस प्रकार वायुको दबाना अथवा रोकना बहुत कठिन है, उसी प्रकार मनको वशमें करना भी मैं बहुत कठिन मानता हूँ। ३४

श्रीभगवान बोले :

हे महाबाहो! इसमें शंका ही नहीं कि मनके चंचल होनेके कारण उसे वशमें करना कठिन है। फिर भी हे कौन्तेय! अभ्यास तथा वैराग्यसे उसे वशमें किया जा सकता है। ३५

मेरा यह मत है कि जिसका मन अपने वशमें नहीं है, उसके लिए योगकी साधना बहुत कठिन है; परन्तु जिसका मन अपने वशमें है और जो प्रयत्नशील है, वह उपायों द्वारा योगको सिद्ध कर सकता है। ३६

अर्जुन बोले :

हे कृष्ण! जो श्रद्धावान तो है परन्तु प्रयत्नमें शिथिल होनेसे योगभ्रष्ट हो जाता है, वह सफलता न मिलनेके कारण कौन-सी गति प्राप्त करता है? ३७

हे महाबाहो! योगसे भ्रष्ट हुआ तथा ब्रह्ममार्गमें भटका हुआ ऐसा मनुष्य, बिखरे हुए बादलकी तरह, दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर कहीं नष्ट तो नहीं हो जाता? ३८

हे कृष्ण। मेरा यह सन्देह आपको ही जड़-मूलसे दूर करना चाहिए। मेरा यह सन्देह मिटानेवाला आपके सिवा दूसरा कोई मिल नहीं सकता। ३९

श्रीभगवान बोले :

हे पार्थ! ऐसे मनुष्यका नाश न तो इस लोकमें होता है और न परलोकमें। हे तात। कल्याण-मार्गपर चलनेवाले मनुष्यकी कभी दुर्गति होती ही नहीं। ४०।

पुण्यशाली लोग जो स्थान प्राप्त करते हैं उस स्थानको प्राप्त करके वहाँ दीर्घ-कालतक रहनेके बाद योगभ्रष्ट मनुष्य पवित्र और साधन-सम्पन्न पुरुषके घर जन्म लेता है। ४१

१. श्री शंकराचार्य कहते हैं कि किसीके साथ प्रतिकूल आचरण न करनेवाला यह अहिंसक, समग्र-दर्शननिष्ठ योगी, समस्त योगियोंमें श्रेष्ठ है।

अथवा वह ज्ञानवान योगियोंके परिवारमें ही जन्म लेता है; जगत्‌में ऐसा जन्म अवश्य ही अति दुर्लभ है। ४२

हे कुरुनन्दन। वहाँ उसे पूर्वजन्मके बुद्धि-संस्कार प्राप्त होते हैं और वहाँसे वह मोक्षके लिए आगे प्रगति करता है। ४३

पहलेके उसी अभ्यासके कारण वह योगके प्रति अवश्य आकर्षित होता है। योगकी केवल जिज्ञासा रखनेवाला पुरुष भी सकाम वैदिक कर्म करनेवाले लोगोंकी स्थितिको पार कर जाता है। ४४

इसके अतिरिक्त लगन और निष्ठापूर्वक प्रयत्न करते हुए योगी पापोंसे मुक्त होकर अनेक जन्मोंके अन्तर्गत विशुद्ध होता हुआ परम गतिको प्राप्त करता है। ४५

तपस्वीकी अपेक्षा योगी अधिक ऊँचा है; ज्ञानीसे भी वह अधिक ऊँचा माना जाता है। उसी प्रकार कर्मकाण्डीसे भी वह अधिक ऊँचा है। इसलिए हे अर्जुन! तू योगी बन। ४६

टिप्पणी: यहाँ तपस्वीकी तपस्या फलेच्छायुक्त है; और ज्ञानीका अर्थ अनुभव-ज्ञानी नहीं है।

समस्त योगियोंमें भी जो मुझमें मनको लीन करके श्रद्धापूर्वक मुझे भजता है, उसे मैं सर्वश्रेष्ठ योगी मानता हूँ। ४७

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये ऐसे इस उपनिषद्‌में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'ध्यानयोग' नामक छठा अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ७

ज्ञान-विज्ञान-योग

इस अध्यायमें ईश्वर-तत्त्व और ईश्वर भक्ति क्या है, इसका विवेचन आरम्भ होता है।

श्रीभगवान बोले:

हे पार्थ! मुझमें मनको पिरोकर तथा मेरा आश्रय लेकर योगकी साधना करते हुए तू मुझे निश्चयपूर्वक और सम्पूर्ण रूपमें कैसे पहचान सकता है, यह तू सुन। १

यह अनुभव-युक्त ज्ञानमैं तुझसे सम्पूर्ण रूपमें कहूँगा। इसे जान लेनेके बाद इस जगतमें दूसरा कुछ जाननेको बाकी नहीं रहता। २

हजारों मनुष्योंमें से कोई बिरला ही मनुष्य सिद्धिके लिए प्रयत्न करता है। और, प्रयत्न करनेवाले सिद्धोंमें से भी कोई बिरला ही मुझे यथार्थ रूपमें पहचानता है। ३

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंभाव—इस तरह मेरी प्रकृति आठ प्रकारकी है। ४

टिप्पणी : यह आठ तत्त्वोंवाला स्वरूप क्षेत्र अथवा क्षर पुरुष है। देखिए अध्याय १३का श्लोक ५; और अध्याय १५का श्लोक १६।

यह जो मैंने बताई वह अपरा प्रकृति है। इससे भी ऊँची जीवरूप परा प्रकृति है। हे महाबाहो! यह जगत उसीके आधारपर टिका हुआ है। ५

इन दोनों प्रकृतियोंको तू भूतमात्रकी उत्पत्तिका कारण समझ। समस्त जगतकी उत्पत्ति और लयका कारण मैं हूँ। ६

हे धनंजय! मुझसे उच्चतर दूसरा कुछ नहीं है। जिस प्रकार धागेमें मनके पिरोये हुए रहते हैं, उसी प्रकार यह सारा (विश्व) मुझमें पिरोया हुआ है। ७

हे कौन्तेय। जलमें मैं रस हूँ, सूर्य और चन्द्रमें मैं कान्ति हूँ; सब वेदोंमें मैं ॐकार हूँ, आकाशमें मैं शब्द हूँ तथा पुरुषोंका पराक्रम मैं हूँ। ८

पृथ्वीमें सुगन्ध मैं हूँ, अग्निमें तेज मैं हूँ; प्राणीमात्रका जीवन मैं हूँ और तपस्वीका तप मैं हूँ। ९

हे पार्थ! तू मुझे सब जीवोंका सनातन बीज जान; बुद्धिमानोंकी बुद्धि मैं हूँ, तेजस्वियोंका तेज भी मैं ही हूँ। १०

बलवानोंका काम और राग-रहित बल मैं हूँ, और हे भरतर्षभ! प्राणियोंमें धर्मका अविरोधी काम मैं हूँ। ११

जो-जो सात्विक, राजस और तामस-भाव अर्थात् पदार्थ हैं, उन सबको तू मुझसे उत्पन्न हुआ जान। परन्तु मैं उनमें हूँ ऐसा नहीं, वे मुझमें हैं। १२

टिप्पणी : परमात्मा इन भावोंपर निर्भर नहीं है, परन्तु ये भाव परमात्मापर निर्भर हैं। ये भाव परमात्माके आधारपर रहते हैं और उसके वशमें हैं।

इन तीन गुणोंवाले भावोंसे सारा जगत मोहित है, इस कारण उनसे श्रेष्ठ तथा भिन्न मुझ अविनाशीको वह नहीं पहचानता। १३

मेरी तीन गुणोंवाली इस दैवी अर्थात् अद्‌भुत मायाको पार करना कठिन है। परन्तु जो मनुष्य मेरी ही शरण लेते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं। १४

दुराचारी, मूढ़ और अधम मनुष्य मेरी शरणमें नहीं आते। वे आसुरी भाववाले होते हैं और माया द्वारा उनका ज्ञान हर लिया गया होता है। १५

हे अर्जुन! चार प्रकारके सदाचारी मनुष्य मुझे भजते हैं: दुःखी, जिज्ञासु, कुछ पानेकी इच्छा रखनेवाले हितार्थी और ज्ञानी। १६

उनमें भी जो नित्य 'सम-भावी,[1]' है और मुझ एकको ही भजनेवाला है, वह ज्ञानी श्रेष्ठ है। मैं ज्ञानीको अत्यन्त प्रिय हूँ और ज्ञानी मुझे प्रिय है। १७

ये सभी भक्त अच्छे हैं। उनमें भी ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है, ऐसा मेरा मत है; क्योंकि मुझे पानेसे अधिक अच्छी दूसरी कोई गति है ही नहीं, ऐसा जाननेवाला वह योगी मेरा ही आश्रय लेता है। १८

यह सारा (विश्व) वासुदेव ही है, ऐसा अनेक जन्मोंके अन्तमें समझकर ज्ञानी पुरुष मेरी शरण लेता है।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

ऐसा महात्मा बिरला ही होता है। १९

भिन्न-भिन्न कामनाओं द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है वे लोग अपनी प्रकृतिके वश होकर अलग-अलग विधियोंका आश्रय लेते हैं और दूसरे देवताओंकी शरणमें जाते हैं। २०

जो-जो मनुष्य जिस-जिस स्वरूपको श्रद्धासे भजता है उस-उस स्वरूपमें मैं उसकी श्रद्धा दृढ़ करता हूँ। २१

ऐसी श्रद्धाके बलपर वह मनुष्य उस-उस स्वरूपकी आराधना करता है और उसकी सहायतासे मेरे द्वारा निर्मित तथा अपनी इच्छित कामनाएँ वह पूरी करता है। २२

परन्तु उन अल्पबुद्धिवाले लोगोंको जो फल मिलते हैं वे नाशवान होते हैं। देवोंको भजनेवाले मनुष्य देवोंको प्राप्त करते हैं; और मुझे भजनेवाले मुझे प्राप्त करते हैं। २३

मेरे परम, अविनाशी और अनुपम स्वरूपको न जाननेवाले बुद्धिहीन लोग मुझे इन्द्रियातीतको इन्द्रियगम्य हुआ मानते हैं। २४

अपनी योगमायासे ढका हुआ मैं सबको प्रकट रूपमें दिखाई नहीं देता। यह मूढ़ जगत मुझ अजन्मे और अव्ययको भली-भाँति नहीं पहचानता। २५

टिप्पणी : इस दृश्य जगतको उत्पन्न करनेकी शक्ति रखते हुए भी अलिप्त होनेके कारण परमात्माका अदृश्य रहनेका भाव उसकी योगमाया है।

हे अर्जुन! जो प्राणी अतीतमें हो चुके हैं, जो वर्तमानमें हैं तथा जो भविष्यमें होनेवाले हैं, उन सब प्राणियोंको मैं जानता हूँ। परन्तु मुझे कोई नहीं जानता। २६

हे परंतप भारत! इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंके मोहके कारण सारे प्राणी इस जगतमें भुलावेमें पड़े रहते हैं। २७

परन्तु सदाचारी होनेके कारण जिन लोगोंके पाप नष्ट हो गये हैं और जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंके मोहसे छूट गये हैं, वे अचल व्रतवाले लोग मुझे भजते हैं। २८

जो लोग मेरा आश्रय लेकर बुढ़ापे और मृत्युसे मुक्त होनेका प्रयत्न करते हैं, वे पूर्ण ब्रह्मको, अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको जानते हैं। २९

जिन लोगोंने अधिभूत, अधिदैव तथा अधियज्ञ-युक्त मुझे पहचान लिया है, वे समत्वको प्राप्त किये हुए लोग मृत्युके समय भी मुझे पहचानते हैं। ३०

टिप्पणी : अधिभूत, अधिदैव आदि शब्दोंका अर्थ आठवें अध्यायमें दिया गया है।

इस श्लोकका आशय यह है कि इस जगतमें ईश्वरके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है और सारे कर्मोंका कर्त्ता और भोक्ता वही है, ऐसा समझकर जो लोग मृत्युके समय शान्त रहते हैं, ईश्वरमें ही तन्मय रहते हैं तथा जिनके मनमें उस समय कोई वासना नहीं होती, उन्होंने ईश्वरको पहचाना है और वे मोक्षको प्राप्त करते हैं।

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'ज्ञान-विज्ञान-योग' नामक सातवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ८

अक्षर-ब्रह्मयोग

इस अध्यायमें ईश्वर-तत्त्वको और अधिक समझाया गया है।

अर्जुन बोले:

हे पुरुषोत्तम! उस ब्रह्मका स्वरूप क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत किसे कहते हैं और अधिदैव किसे कहा जाता है? १

हे मधुसूदन! इस देहमें अधियज्ञ क्या है और किस प्रकार है? और संयमी मनुष्य आपको मृत्युके समय कैसे जान सकता है? २

श्रीभगवान बोले:

जो सर्वोत्तम अविनाशी है वह ब्रह्म है; प्राणिमात्रमें जो अपनी सत्तासे रहता है वह अध्यात्म है; और प्राणिमात्रको उत्पन्न करनेवाला सृष्टि-व्यापार कर्म कहलाता है। ३

अधिभूत मेरा नाशवान स्वरूप है। अधिदैव उसमें स्थिर मेरा जीव-स्वरूप है। और हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ! अधियज्ञ इस देहमें स्थित, किन्तु यज्ञ द्वारा शुद्ध बना हुआ, जीव-स्वरूप है। ४

टिप्पणी: इसका अर्थ यह है कि अव्यक्त ब्रह्मसे लेकर नाशवान दृश्य पदार्थ-मात्र परमात्मा ही है और सब-कुछ उसीकी कृति है।

ऐसी स्थितिमें मनुष्य-प्राणी कर्त्तापनका अभिमान रखनेके बदले परमात्माका दास बनकर सब-कुछ उसीको समर्पण क्यों न कर दे?

जो मनुष्य अन्त समयमें मेरा ही स्मरण करते-करते देह छोड़ता है, वह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है इसमें कोई सन्देह नहीं। ५

अथवा, हे कौन्तेय! मनुष्य जिस-जिस स्वरूपका ध्यान धरता है उस-उस स्वरूप का अन्त समयमें भी स्मरण करता हुआ वह देह छोड़ता है और उस भावसे सदा भावित अर्थात् पुष्ट होनेके कारण उसी स्वरूपको प्राप्त करता है। ६

अतः तू सदा मेरा स्मरण कर और (कर्मक्षेत्रमें) जूझता रह; इस प्रकार मन और बुद्धिको मुझमें लगाये रखनेसे तू अवश्य ही मुझे प्राप्त करेगा। ७

हे पार्थ! जो मनुष्य अभ्यासके द्वारा चित्तको स्थिर करके अन्यत्र कहीं दौड़ने नहीं देता और ध्यानमें एकाग्र होता है, वह दिव्य परम पुरुषको प्राप्त करता है। ८

जो पुरुष मरनेके समय स्थिर मनसे, भक्तियुक्त होकर तथा योगबलसे प्राणको भृकुटीके बीच अच्छी तरह स्थापित करके सर्वज्ञ, पुरातन, नियन्ता, सूक्ष्मतम, सबका पालन करनेवाले, अचिन्त्य, सूर्यके समान तेजस्वी तथा अज्ञान-रूपी अन्धकारसे परे रहनेवाले स्वरूपका भली-भाँति स्मरण करता है, वह दिव्य परम पुरुषको प्राप्त करता है। ९–१०

वेदोंको जाननेवाले जिसका अक्षर नामसे वर्णन करते हैं, वीतराग मुनि जिसमें प्रवेश करते हैं और जिसे प्राप्त करनेकी इच्छासे लोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदका अब मैं तेरे लिए संक्षेपमें वर्णन करूँगा। ११

जो मनुष्य इन्द्रियोंके समस्त द्वारोंको बंद करके, मनको हृदयमें स्थिर करके, प्राणको मस्तकमें धारण करके तथा समाधिस्थ होकर एकाक्षरी ब्रह्म ॐका उच्चारण करते हुए और मेरा चिन्तन करते हुए देह छोड़ता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। १२-१३

हे पार्थ! जो अन्यत्र कहीं चित्तको लगाये बिना नित्य तथा निरन्तर मेरा ही स्मरण करता है, वह नित्य-युक्त योगी मुझे सहज ही प्राप्त करता है। १४

मुझे प्राप्त करके परम गतिको पहुँचे हुए महात्मा दुःखके आलयके समान अशाश्वत पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं करते। १५

हे कौन्तेय! ब्रह्मलोकसे लेकर समस्त लोक बार-बार जन्म लेनेवाले हैं। परन्तु मुझे प्राप्त कर लेनेके पश्चात् मनुष्यको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। १६

जो लोग ब्रह्माके हजार युगोंवाले एक दिनको और ब्रह्माकी हजार युगोंवाली एक रात्रिको जानते हैं, वे ही रात और दिनके जाननेवाले हैं। १७

टिप्पणी: इसका मतलब यह है कि हमारे चौबीस घंटोंके रात-दिन इस काल-चक्रके भीतर एक क्षणसे भी सूक्ष्म हैं। उनकी कोई कीमत ही नहीं है। अतः उतने समयमें मिलनेवाले भोग आकाश-पुष्प जैसे हैं, यह समझकर हम उनके बारेमें उदासीन रहें; और हमारे पासके इस किंचित् कालको ही भगवानकी भक्तिमें, सेवामें बिताकर सार्थक बनायें तथा यदि आत्माका दर्शन आजके आज ही न हो तो हम धीरज रखें।

(ब्रह्माका) दिन उगनेपर सब प्राणी अव्यक्तमें से व्यक्त होते हैं और रात पड़नेपर उनका प्रलय होता है अर्थात् अव्यक्तमें उनका लय हो जाता है। १८

टिप्पणी: इतना जान लेनेपर भी मनुष्यको यह समझना चाहिए कि उसके हाथमें बहुत कम सत्ता है। उत्पत्ति और नाशकी जोड़ी साथ-साथ चलती ही रहती है।

हे पार्थ! इन प्राणियोंका समुदाय इस प्रकार उत्पन्न हो-होकर रात पड़नेपर विवशतासे लयको प्राप्त होता है और दिन उगने पर विवशतासे उत्पन्न होता है। १९

इस अव्यक्तसे परे दूसरा सनातन अव्यक्त-भाव है। सारे प्राणियों (भूतों)का नाश हो जाने पर भी इस सनातन अव्यक्त-भावका नाश नहीं होता। २०

जो अव्यक्त और अक्षर (अविनाशी) कहलाता है, उसीको परम गति भी कहते हैं। वह मेरा ऐसा परम-धाम है, जिसे प्राप्त करनेके बाद मनुष्योंका पुनर्जन्म नहीं होता। २१

हे पार्थ! जिसके भीतर सारे भूत स्थित हैं और जिससे यह सारा (जगत) व्याप्त है, उस उत्तम पुरुषके दर्शन अनन्य भक्तिसे होते हैं। २२

जिस कालमें मृत्यु पाकर योगीजन मोक्षको प्राप्त करते हैं और जिस कालमें मृत्यु पाकर उनका पुनर्जन्म होता है, हे भरतर्षभ! मैं वे (दोनों) काल तुझे बताऊँगा। २३

उत्तरायणके छः महीनोंमें, शुक्लपक्षमें, दिनमें जिस समय अग्निकी ज्वालाएँ उठ रही हों उस समय, जिनकी मृत्यु होती है, वे ब्रह्मको जाननेवाले मनुष्य ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। २४

दक्षिणायनके छः महीनोंमें, कृष्णपक्षमें, रातमें, जब धुआँ फैला हुआ हो उस समय मरनेवाले मनुष्य चन्द्रलोकको प्राप्त करके पुनर्जन्म पाते हैं। २५

टिप्पणी : ऊपरके दो श्लोकोंके शब्दार्थका गीताकी शिक्षाके साथ मेल नहीं बैठता। उस शिक्षाके अनुसार तो जो भक्तिभावसे परिपूर्ण है, जो सेवा-मार्गका अनुसरण करता है और जिसे ज्ञान हो गया है, वह किसी भी समय क्यों न मरे उसे मोक्ष ही प्राप्त होता है। इन दो श्लोकोंका शब्दार्थ गीताकी इस शिक्षाके विरुद्ध है।

इन श्लोकोंका भावार्थ यह जरूर निकल सकता है कि जो लोग यज्ञ करते हैं अर्थात् जो परोपकारमें ही जीवन बिताते हैं, जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया हैं, जो ब्रह्म-विद् अर्थात् ज्ञानी हैं, उनकी मृत्युके समय भी यदि ऐसी स्थिति रहे तो वे मोक्षको प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत, जो यज्ञ नहीं करते, जिन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, जो भक्तिको नहीं जानते, वे चन्द्रलोकको अर्थात् क्षणिक लोकको प्राप्त करके पुनः संसारके चक्रमें लौट आते हैं। चन्द्रके पास उसका अपना प्रकाश नहीं होता।

जगतमें प्रकाशका और अन्धकारका, अर्थात् ज्ञानका और अज्ञानका मार्ग — ये दो अत्यन्त प्राचीन कालसे चलते आये शाश्वत मार्ग माने गये हैं। इनमें से एक मार्गसे अर्थात् ज्ञानके मार्गसे मनुष्य मोक्षको प्राप्त करता है; और दूसरे मार्गसे अर्थात् अज्ञानके मार्गसे वह बार-बार पुनर्जन्म प्राप्त करता है। २६

हे पार्थ! इन दोनों मार्गोंको जाननेवाला कोई भी योगी मोहमें नहीं पड़ता। इसलिए हे अर्जुन! तू सदा योगयुक्त रहना। २७

टिप्पणी : यहाँ मोहमें न पड़नेका अर्थ यह है कि दोनों मार्गोंको जाननेवाला और समभाव रखनेवाला योगी अन्धकारका — अज्ञानका मार्ग नहीं लेगा।

यह वस्तु जान लेनेके बाद योगी पुरुष वेदोंमें, यज्ञमें, तपमें तथा दानमें जो पुण्यफल कहा गया है, उस सबको पार करके उत्तम आदिस्थानको प्राप्त करता है। २८

टिप्पणी : इसलिए जिसने ज्ञान, भक्ति और सेवा-कार्यसे समभाव प्राप्त कर लिया है, उसे सारे पुण्योंका फल मिल जाता है; इतना ही नहीं, परन्तु उसे परम मोक्षपद प्राप्त होता है।

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके संवादका 'अक्षर-ब्रह्मयोग' नामक आठवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ९

राजविद्या-राजगुह्य-योग

इस अध्यायमें भक्तिकी महिमा गाई गई है।

श्रीभगवान बोले :

तू द्वेष-रहित है, इसलिए मैं तुझे गूढ़से-गूढ़ अनुभववाला ज्ञान दूँगा, जिसे जान कर तू अकल्याणसे बच जायेगा। १

यह ज्ञान समस्त विद्याओंका राजा है; गूढ़ वस्तुओंमें भी श्रेष्ठ है। यह विद्या पवित्र है, उत्तम है, प्रत्यक्ष अनुभवमें आने योग्य है और धर्मके अनुकूल है। साथ ही, इस विद्याको आचरणमें उतारना सरल है और यह अविनाशी है। २

हे परंतप! इस धर्ममें जिनकी श्रद्धा नहीं है, वे लोग मुझे न पाकर मृत्युमय संसार-मार्गमें बार-बार लौटते रहते हैं। ३

मैंने ही अपने अव्यक्त स्वरूपसे इस सम्पूर्ण जगतको व्याप्त कर लिया है। सारे प्राणी मुझमें — मेरे आधारपर — हैं; मैं उनके आधारपर नहीं हूँ। ४

फिर भी प्राणी मुझमें नहीं हैं, ऐसा भी कहा जा सकता है। मेरे इस योगबल को तू देख। मैं समस्त जीवोंका भरण-पोषण करनेवाला हूँ, फिर भी मैं उनमें नहीं हूँ। परन्तु मैं उनका उत्पत्ति-कारण हूँ। ५

टिप्पणी : मुझमें सब जीव हैं और नहीं हैं। मैं उनमें हूँ और नहीं हूँ। यह है ईश्वर का योगबल, उसकी माया, उसका चमत्कार। ईश्वरका वर्णन भगवान श्रीकृष्णको भी मनुष्यकी भाषामें ही करना पड़ता है, अतः वे अनेक प्रकारके भाषा-प्रयोग करके मनुष्यको सन्तुष्ट करते हैं। सब-कुछ ईश्वरमय है, इसलिए सब-कुछ ईश्वरमें है। ईश्वर अलिप्त है, प्राकृत कर्त्ता नहीं है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि जीव उसमें नहीं हैं। परन्तु जो मनुष्य ईश्वरके भक्त हैं, उनमें तो वह है ही। जो लोग नास्तिक हैं, उनमें उनकी दृष्टिसे ईश्वर नहीं है। यह सब यदि ईश्वरका चमत्कार ही नहीं है, तो इसे और क्या कहेंगे?

जिस प्रकार सब जगह विचरनेवाली महान वायु नित्य आकाशमें विद्यमान ही रहती है, उसी प्रकार समस्त प्राणी मुझमें हैं ऐसा तू जान। ६

हे कौन्तेय! कल्पके अन्तमें सारे प्राणियोंका मेरी प्रकृतिमें लय हो जाता है; कल्पका पुनः आरम्भ होनेपर मैं पुनः उनका सर्जन करता हूँ। ७

प्रकृतिके आधीन होनेके कारण परवश बने हुए प्राणियोंके इस सम्पूर्ण समुदायको, अपनी ही माया — प्रकृतिको हाथमें लेकर, मैं बार-बार उत्पन्न करता हूँ। ८

हे धनंजय! ये कर्म मुझे बन्धनमें नहीं बाँधते, क्योंकि मैं उनके प्रति उदासीन-सा रहकर अनासक्त होकर बरतता हूँ। ९

मेरी देख-रेखमें प्रकृति स्थावर और जंगम जगतको उत्पन्न करती है और इस कारणसे, हे कौन्तेय! जगत (रहटकी घटमालाकी तरह) घूमता रहता है। १०

प्राणियों आदि भूतमात्रके महेश्वर-रूप मेरे श्रेष्ठ भावको न जाननेके कारण मूर्ख लोग मनुष्यका रूप धारण किये होनेसे मेरी अवगणना करते हैं। ११

टिप्पणी : क्योंकि जो मनुष्य ईश्वरकी सत्ताको नहीं मानते, वे देहमें स्थित अन्तर्यामीको पहचानते नहीं और उसके अस्तित्वसे इनकार करके जड़वादी बने रहते हैं।

मोह उत्पन्न करनेवाली ऐसी राक्षसी अथवा आसुरी प्रकृतिका आसरा लिये हुए इन उलटी बुद्धिके लोगोंकी आशाएँ, इनके कर्म और इनका ज्ञान सब व्यर्थ सिद्ध होता है। १२

इसके विपरीत, हे पार्थ! भूतमात्रके आदि-कारण और अविनाशी मुझे जानकर महात्मा लोग दैवी प्रकृतिका आश्रय लेते हैं और एकनिष्ठासे मुझे भजते हैं। १३

दृढ़ निश्चयके साथ प्रयत्न करनेवाले ये महात्मा निरन्तर मेरा कीर्तन करते हैं, भक्तिपूर्वक मुझे प्रणाम करते हैं और नित्य ध्यान धरकर मेरी उपासना करते हैं। १४

और दूसरे लोग अद्वैत-रूपमें, द्वैत-रूपमें अथवा अनेक-रूपमें सर्वत्र विद्यमान मुझे ज्ञानयज्ञके द्वारा पूजते हैं। १५

यज्ञका संकल्प मैं हूँ, वह यज्ञ मैं हूँ, यज्ञके द्वारा पितरोंका आधार मैं हूँ, यज्ञकी वनस्पति मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घीकी आहुति मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवन-द्रव्य भी मैं हूँ। १६

इस जगतका पिता मैं हूँ, माता मैं हूँ, धारण करनेवाला मैं हूँ, पितामह मैं हूँ, जानने-योग्य पवित्र ॐकार मैं हूँ तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। १७

(सबका) अन्तिम स्थान मैं हूँ, पोषक मैं हूँ, स्वामी मैं हूँ, साक्षी मैं हूँ, निवास मैं हूँ, आश्रय मैं हूँ, हित चाहनेवाला मैं हूँ, उत्पत्ति मैं हूँ, स्थिति मैं हूँ, नाश मैं हूँ, भण्डार मैं हूँ और अव्यय बीज भी मैं हूँ। १८

धूप मैं देता हूँ, वर्षाको मैं ही रोककर रखता हूँ अथवा बरसने देता हूँ। अमरता मैं हूँ, मृत्यु मैं हूँ और हे अर्जुन! सत् और असत् भी मैं ही हूँ। १९

तीन वेदोंके कर्म करके, सोमरसका पान करके, पाप-रहित हुए जन यज्ञके द्वारा मुझे पूजकर स्वर्गलोककी याचना करते हैं और पुण्यसे मिलनेवाले इन्द्रलोकको प्राप्त करके वे स्वर्गमें दिव्य भोग भोगते हैं। २०

टिप्पणी : यहाँ इस बातका उल्लेख है कि समस्त वैदिक क्रियाएँ फलप्राप्तिके लिए होती थीं और उनमें से कुछ क्रियाओंमें सोमरसका पान किया जाता था। वे क्रियाएँ क्या थीं, सोमरस क्या था, यह आज वस्तुतः कोई नहीं कह सकता।

उस विशाल स्वर्गलोकका उपभोग करनेके बाद पुण्य क्षीण होनेपर वे जन पुनः मृत्युलोकमें प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तीन वेदोंके कर्म करनेवाले, फलके लोभियोंको जन्म-मरणके फेरे फिरने पड़ते हैं। २१

जो लोग अनन्य भावसे मेरा चिन्तन करते हुए मुझे भजते हैं, ऐसे नित्य मुझमें ही रत रहनेवाले जनोंके योग-क्षेमका भार मैं उठाता हूँ। २२

टिप्पणी : इस प्रकार योगीको पहचाननेके तीन सुन्दर लक्षण हैं—समत्व, कर्ममें कुशलता और अनन्य भक्ति। ये तीनों गुण एक-दूसरेमें ओतप्रोत होने चाहिए। भक्तिके बिना समत्व प्राप्त नहीं होता, समत्वके बिना भक्ति प्राप्त नहीं होती और कर्म-कुशलताके बिना भक्ति और समत्वका आभास-मात्र होनेका भय रहता है।

योग-क्षेम शब्दमें योगका अर्थ है प्राप्त न हुई वस्तुको प्राप्त करना और क्षेमका अर्थ है प्राप्त हुई वस्तुको सँभालकर रखना।

इसके सिवा, हे कौन्तेय! जो लोग श्रद्धापूर्वक दूसरे देवोंको भजते हैं वे भी, भले ही विधिके बिना क्यों न हो, मुझे ही भजते हैं। २३

टिप्पणी : 'विधिके बिना' का अर्थ है अज्ञानवश, मुझे निरंजन निराकार न जानकर।

मैं ही समस्त यज्ञोंका उपभोग करनेवाला स्वामी हूँ। परन्तु इस प्रकार वे मुझे अपने सच्चे स्वरूपमें नहीं जानते, इसलिए नीचे गिरते हैं। २४

देवताओंका पूजन करनेवाले लोग देवलोकोंको प्राप्त करते हैं, पितरोंका पूजन करनेवाले पितृलोकको प्राप्त करते हैं, भूतप्रेत आदिका पूजन करनेवाले भूतगणोंके लोकोंको प्राप्त करते हैं और मुझे भजनेवाले लोग मुझे प्राप्त करते हैं। २५

जो मुझे भक्तिभावसे पत्र, पुष्प, फल या जल अर्पण करता है, उस शुद्ध-हृदय मनुष्यकी भक्तिभावसे अर्पण की हुई वस्तुका मैं सेवन करता हूँ। २६

टिप्पणी : अर्थात् जो-कुछ ईश्वर-प्रीत्यर्थ सेवाभावसे प्राणियोंको दिया जाता है, उसे उन प्राणियोंमें निवास करनेवाले अन्तर्यामीके रूपमें भगवान ही स्वीकार करता है।

इसलिए हे कौन्तेय! तू जो करे, जो खाये, जो हवनमें होमे, जो दानमें दे अथवा जो तप करे, वह सब तू मुझे अर्पण कर। २७

इससे तू शुभ-अशुभ फल देनेवाले कर्मके बन्धनसे छुट जायेगा और फल-त्याग-रूपी समत्वको प्राप्त करके, जन्म-मरणसे मुक्त होकर मुझे प्राप्त करेगा। २८

सब प्राणियोंमें मैं समभावसे रहता हूँ। मुझे कोई प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है। फिर भी जो लोग मुझे भक्तिभावसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूँ। २९

अत्यन्त दुराचारी मनुष्य भी यदि अनन्य भावसे मुझे भजे, तो उसे साधु बना हुआ ही मानना चाहिए; क्योंकि अब उसका संकल्प शुभ है। ३०

टिप्पणी : कारण, अनन्य भक्ति दुराचारको मिटा देती है।

वह तुरन्त धर्मात्मा बन जाता है और निरन्तर शान्ति प्राप्त करता है। हे कौन्तेय! तू यह निश्चयपूर्वक जानना कि मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता। ३१

हे पार्थ! जो लोग मेरा आश्रय लेते हैं, वे पापयोनि हों अथवा स्त्रियाँ, वैश्य हों या शूद्र, परम गतिको प्राप्त करते हैं। तब फिर पुण्यवान और भक्त ब्राह्मणों तथा राजर्षियोंके विषयमें तो कहना ही क्या?

इसलिए इस अनित्य और सुख-रहित लोकमें जन्म लेकर तू मुझे भज। तू मुझमें मनको लगा, मेरा भक्त बन, मेरे निमित्तसे यज्ञ कर, मुझे नमस्कार कर। इससे

तू अपने-आपको मेरे साथ जोड़कर, मुझमें परायण होकर, मुझे ही श्रेष्ठ स्थान मानकर मुझे प्राप्त करेगा। ३२–३३–३४

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्‌में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'राजविद्या-राजगुह्य-योग' नामक नवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय १०

विभूति-योग

सातवें, आठवें और नवें अध्यायमें भक्ति आदिका निरूपण करनेके बाद इस अध्यायमें भगवान भक्तोंके हितार्थ अपनी अनन्त विभूतियोंका थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराते हैं।

श्रीभगवान बोले :

हे महाबाहो! फिर एक बार तू मेरा परम वचन सुन। यह वचन मैं तुझ प्रिय-जनको तेरे हितके लिए कहूँगा। १

देव और महर्षि मेरी उत्पत्तिको अथवा प्रभावको नहीं जानते, क्योंकि मैं ही देवोंका और महर्षियोंका सब प्रकारसे आदि-कारण हूँ। २

अजन्मा और अनादि मैं ही सब लोगोंका महेश्वर हूँ — ऐसा जो जानते हैं वे मनुष्योंके बीच मोह-रहित होकर सारे पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। ३

बुद्धि, ज्ञान, अमूढ़ता, क्षमा, सत्य, इन्द्रिय-निग्रह, शान्ति, सुख-दुःख, उत्पत्ति और नाश, भय और अभय, अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, यश-अपयश — इस प्रकार प्राणियोंके अलग-अलग भाव[1] मुझसे उत्पन्न होते हैं। ४–५

सप्तर्षि, उनके पूर्वके चार सनकादि और (चौदह) मनु मेरे संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं और उनसे सब प्राणी इस जगतमें उत्पन्न हुए हैं। ६

जो मेरी इस विभूतिको और सामर्थ्यको यथार्थ रूपमें जानता है, वह अविचल समताको प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं। ७

मैं सबकी उत्पत्तिका कारण हूँ और सब-कुछ मेरे द्वारा ही चलता है, ऐसा जानकर सयाने लोग भक्तिभावसे मुझे भजते हैं। ८

मुझमें चित्तको एकाग्र करनेवाले, मुझे प्राण अर्पण करनेवाले लोग एक-दूसरेको बोध देते हुए, नित्य मेरा ही कीर्तन करते हुए सन्तोष और आनन्दमें रहते हैं। ९

इस प्रकार मुझमें तन्मय रहनेवाले और प्रेमके साथ मुझे भजनेवाले लोगोंको मैं बुद्धिशक्ति और ज्ञान देता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त करते हैं। १०

१. भावका अर्थ है पदार्थ, वृत्ति या अवस्था।

उनपर अनुग्रह करके, उनके हृदयमें बसा हुआ मैं ज्ञानरूपी प्रकाशमय दीपकसे उनके अज्ञान-रूपी अन्धकारका नाश करता हूँ। ११

अर्जुन बोले :

हे प्रभो! आप परम-ब्रह्म हैं, परम-धाम हैं, परम-पवित्र हैं। समस्त ऋषिगण, देवर्षि नारद, असित, देवल और व्यास आपको अविनाशी, दिव्य-पुरुष, आदि-देव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं और आप स्वयं भी ऐसा ही कहते हैं। १२–१३

हे केशव! आप मुझसे जो कहते हैं उसे मैं स्वीकार करता हूँ। हे प्रभो! आपके स्वरूपको न तो देवता जानते हैं और न दानव। १४

हे पुरुषोत्तम! हे जीवोंके पिता! हे जीवेश्वर! हे देवोंके देव! हे जगतके स्वामी! आप स्वयं ही अपने द्वारा अपनेको जानते हैं। १५

जिन विभूतियोंके द्वारा आप इन लोकोंमें व्याप्त हैं, उन अपनी दिव्य विभूतियोंको कृपा करके मुझे पूरी तरह बताइए। १६

हे योगिन्! आपका नित्य चिन्तन करते हुए मैं आपको किस तरह पहचान सकता हूँ? हे भगवान! किस-किस रूपमें मुझे आपका चिन्तन करना चाहिए? १७

हे जनार्दन! आप अपनी शक्तियों और विभूतियोंका वर्णन मेरे सामने फिरसे विस्तारके साथ कीजिए। आपकी अमृतमयी वाणी सुनते-सुनते मुझे तृप्ति ही नहीं होती। १८

श्रीभगवान बोले :

अच्छा, तो मैं अपनी मुख्य-मुख्य विभूतियाँ तुझे बताऊँगा। परन्तु हे कुरुश्रेष्ठ! मेरे विस्तारका अन्त तो है ही नहीं। १९

हे गुडाकेश! मैं सब प्राणियोंके हृदयमें बसी हुई आत्मा हूँ। मैं ही सारे भूतों का आदि, मध्य और अन्त हूँ। २०

आदित्योंमें मैं विष्णु हूँ, ज्योतियोंमें मैं जगमगाता सूर्य हूँ, वायुओंमें मैं मरीचि हूँ, नक्षत्रोंके बीच मैं चन्द्र हूँ। २१

वेदोंमें सामवेद मैं हूँ, देवोंमें इन्द्र मैं हूँ, इन्द्रियोंमें मन मैं हूँ और प्राणियोंका चेतन भी मैं हूँ। २२

रुद्रोंमें मैं शंकर हूँ, यक्षों और राक्षसोंमें मैं कुबेर हूँ, वसुओंमें मैं अग्नि हूँ, पर्वतोंमें मैं मेरु पर्वत हूँ। २३

हे पार्थ! पुरोहितोंमें मुख्य मुझे तू बृहस्पति जान। सेनापतियोंमें मैं कार्त्तिक-स्वामी हूँ और जलाशयोंमें मैं सागर हूँ। २४

महर्षियोंमें मैं भृगु हूँ, वाणीमें मैं एकाक्षरी ॐ हूँ, यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ और स्थावरोंमें मैं हिमालय हूँ। २५

सारे वृक्षोंमें अश्वत्थ (पीपल) मैं हूँ, देवर्षियोंमें नारद मैं हूँ, गन्धर्वोंमें चित्र-रथ मैं हूँ और सिद्धोंमें कपिल मुनि मैं हूँ। २६

अश्वोंमें तू मुझे अमृत-मन्थनके समय उत्पन्न हुआ उच्चैःश्रवा जान। हाथियोंमें मैं ऐरावत हूँ और मनुष्योंमें मैं राजा हूँ। २७

आयुधोंमें वज्र मैं हूँ, गायोंमें मैं कामधेनु हूँ, सन्तानकी उत्पत्तिका कारण कामदेव मैं हूँ तथा साँपोंमें वासुकि मैं हूँ। २८

नागोंमें शेषनाग मैं हूँ, जलचरोंमें वरुण मैं हूँ, पितरोंमें अर्यमा मैं हूँ और नियमनमें रखनेवालोंमें यम मैं हूँ। २९

दैत्योंमें प्रह्लाद मैं हूँ, गिननेवालोंमें काल मैं हूँ, पशुओंमें सिंह मैं हूँ और पक्षियोंमें गरुड़ मैं हूँ। ३०

पावन करनेवालोंमें पवन मैं हूँ, शस्त्रधारियोंमें (परशु) राम मैं हूँ, मछलियोंमें मगरमच्छ मैं हूँ और नदियोंमें गंगा मैं हूँ। ३१

हे अर्जुन! सृष्टियोंका आरम्भ, अन्त और मध्य मैं हूँ, विद्याओंमें अध्यात्म-विद्या मैं हूँ और विवाद करनेवालोंका वाद मैं हूँ। ३२

अक्षरोंमें अकार मैं हूँ, समासोंमें द्वन्द्व समास मैं हूँ, अनश्वर काल मैं हूँ और सब ओर अभिमुख रहनेवाला विधाता भी मैं हूँ। ३३

सबका हरण करनेवाली मृत्यु मैं हूँ, भविष्यमें उत्पन्न होनेवालोंका उत्पत्ति-कारण मैं हूँ और स्त्री-जातिके नामोंमें कीर्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, मेधा (बुद्धि), धृति (धीरज) तथा क्षमा मैं हूँ। ३४

सामोंमें बृहत् सामस्तोत्र मैं हूँ, छन्दोंमें गायत्री छन्द मैं हूँ, मासोंमें मार्गशीर्ष मास मैं हूँ और ऋतुओंमें वसन्त ऋतु मैं हूँ। ३५

छल करनेवालोंका द्यूत (जुआ) मैं हूँ, प्रतापी पुरुषका प्रभाव मैं हूँ, विजय मैं हूँ, निश्चय मैं हूँ तथा सात्विक भाववालेका सत्त्व मैं हूँ। ३६

टिप्पणी: 'छल करनेवालोंका द्यूत मैं हूँ'—इस वचनसे चौंकनेकी जरूरत नहीं है। यहाँ सार-असारका निर्णय नहीं है, परन्तु कहनेका तात्पर्य यह है कि जो-कुछ होता है वह ईश्वरकी सम्मतिके बिना नहीं होता।

और, छल करनेवाला मनुष्य भी यह जानकर अपना अभिमान छोड़ दे और छल-कपटको त्याग दे कि सब-कुछ उस ईश्वरके वशमें है।

यादव-कुलमें वासुदेव मैं हूँ, पाण्डवोंमें धनंजय (अर्जुन) मैं हूँ, मुनियोंमें व्यास मैं हूँ और क्रान्तदर्शी कवियोंमें उशना (शुक्राचार्य) मैं हूँ। ३७

राज्य करनेवालोंका दण्ड मैं हूँ, जय चाहनेवालोंकी नीति मैं हूँ, गोपनीयतामें मौन मैं हूँ और ज्ञानवान लोगोंका ज्ञान मैं हूँ। ३८

हे अर्जुन! सारे प्राणियोंकी उत्पत्तिका जो बीज है वह मैं हूँ। जो भी स्थावर या जंगम है, वह मुझसे रहित नहीं है। ३९

हे परंतप! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है। अपनी विभूतियोंका इतना विस्तार तो मैंने केवल उदाहरणके रूपमें ही तुझसे कहा है। ४०

जो-कुछ भी विभूति-युक्त, लक्ष्मीवान अथवा प्रभावशाली है, उसे तू मेरे तेजके अंशसे ही उत्पन्न हुआ जान। ४१

अथवा हे अर्जुन! यह सब विस्तारसे जानकर तू क्या करेगा? अपने एक ही अंशसे इस सम्पूर्ण जगतको मैं धारण किये हुए हूँ। ४२

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्‌में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'विभूति-योग' नामक दसवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय ११

विश्वरूप-दर्शनयोग

इस अध्यायमें भगवान अपना विराट् स्वरूप अर्जुनको बताते हैं। भक्तोंको यह अध्याय अत्यन्त प्रिय है। इसमें तर्क नहीं है; यह केवल काव्य है। इस अध्यायका पाठ करते हुए भक्त कभी थकता ही नहीं।

अर्जुन बोले:

आपने मुझपर कृपा करके यह आध्यात्मिक परम रहस्य मुझे बताया है। आपने जो वचन मुझसे कहे हैं, उनसे मेरा यह मोह दूर हो गया है। १

मैंने समस्त भूतोंकी उत्पत्ति और नाशके बारेमें आपके मुखसे विस्तारपूर्वक सुना तथा हे कमलपत्राक्ष! आपका अविनाशी माहात्म्य भी मैंने सुना। २

हे परमेश्वर! हे पुरुषोत्तम! आप जिस रूपमें अपना परिचय कराते हैं, आपके उसी ईश्वरीय रूपके दर्शन करनेकी मेरी इच्छा होती है। ३

हे प्रभो! मेरे लिए यदि आप उस रूपका दर्शन करना सम्भव मानते हों, तो हे योगेश्वर! मुझे आप अपने उस अव्यय — अविनाशी — रूपका दर्शन कराइए। ४

श्रीभगवान बोले:

हे पार्थ! मेरे अनेक प्रकारके, दिव्य तथा विभिन्न रंगों और आकारोंवाले सैकड़ों-हजारों रूपोंको तू देख।

हे भारत! तू आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, दोनों अश्विनी-कुमारों तथा मरुतोंको देख। पहले नहीं देखे गये बहुतेरे आश्चर्योंको तू देख। ६

हे गुडाकेश! यहाँ मेरे शरीरमें एकरूपमें स्थित समस्त स्थावर और जंगम जगत तथा दूसरा जो भी तू देखना चाहे वह सब आज तू देख। ७

परन्तु तू अपने इन चर्म-चक्षुओंसे मुझे नहीं देख सकेगा। इसलिए मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ। उन चक्षुओंकी सहायतासे तू मेरा ईश्वरीय योग-सामर्थ्य देख। ८

संजय बोले :

हे राजन्! ऐसा कहकर महायोगेश्वर कृष्णने अर्जुनको अपना परम ईश्वरीय रूप दिखाया। ९

वह अनेक मुखों और आँखोंवाला, अनेक अद्भुत दर्शनोंवाला, अनेक दिव्य आभूषणोंवाला तथा अनेक दिव्य शस्त्रोंसे सज्जित रूप था। १०

उन्होंने अनेक दिव्य मालाएँ और वस्त्र धारण किये थे और अनेक दिव्य सुगन्धित लेप लगाये थे। ऐसे वे सब प्रकारसे आश्चर्यपूर्ण, अनन्त और सर्वव्यापी देव थे। ११

आकाशमें एक हजार सूर्योंका तेज यदि एक-साथ चमक उठे, तो वह तेज शायद उन महात्माके तेज-जैसा हो। १२

पाण्डवने उन देवोंके भी देवके शरीरमें अनेक प्रकारसे बँटे हुए समस्त जगतको एकरूपमें स्थित देखा। १३

उसके बाद, आश्चर्यसे चकित तथा रोमाँचित धनंजय माथा नवाकर और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले। १४

अर्जुन बोले :

हे देव, आपके शरीरमें मैं समस्त देवोंको, विभिन्न प्रकारके सब प्राणियोंके समुदायोंको, कमलके आसन पर विराजे हुए ईश ब्रह्माको, सारे ऋषियोंको तथा दिव्य सर्पोंको देखता हूँ। १५

आपको मैं अनेक हाथ, पेट, मुँह और आँखोंवाला तथा सब ओर अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ। हे विश्वेश्वर! हे विश्वरूप! मैं न तो आपका अन्त देखता हूँ, न आपका मध्य और न ही आपका आरम्भ। १६

मैं आपको मुकुटधारी, गदाधारी, चक्रधारी, तेजका पुंज, सब दिशाओंमें जगमगाती ज्योतिवाला, कठिनाईसे देखे जाने योग्य, अमर्यादित तथा प्रज्वलित अग्नि अथवा सूर्यके समान सब दिशाओंमें प्रकाशमान देखता हूँ। १७

मेरा यह विश्वास है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षर और अविनाशी हैं। आप ही इस जगतके अन्तिम आधार हैं, धर्मके अविनाशी रक्षक हैं और आप ही सनातन पुरुष हैं। १८

जिनका आदि, मध्य या अन्त नहीं है, जिनकी शक्ति अनन्त है, जिनकी अनन्त भुजाएँ हैं, जिनकी सूर्य-चन्द्र-रूपी आँखें हैं, जिनका मुख प्रज्वलित अग्निके समान है और जो अपने तेजसे इस जगतको तपाते हैं — ऐसे आपको मैं देखता हूँ। १९

आकाश और पृथ्वीके बीचके इस अन्तरको तथा सारी दिशाओंको आपने अकेले ही व्याप्त कर लिया है। हे महात्मन्! आपके इस अद्भुत उग्र रूपको देखकर तीनों लोक थरथर काँपते हैं। २०

और देखिए, यह देवोंका संघ आपमें प्रवेश कर रहा है। भयभीत बने हुए कुछ देव तो हाथ जोड़कर आपका स्तवन कर रहे हैं। महर्षियों और सिद्धोंके समूह '(जगत्का) कल्याण हो' कहते हुए अनेक प्रकारसे आपका यशोगान करते हैं। २१

रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, विश्वदेव, अश्विनीकुमार, मरुत्गण, उष्ण ही पीनेवाले पितर[1] तथा गन्धर्वों, यक्षों, असुरों और सिद्धोंके संघ — ये सभी आश्चर्यसे चकित होकर आपको देख रहे हैं। २२

हे महाबाहो! अनेक मुखों और आँखोंवाला, अनेक हाथों, जाँघों और पैरोंवाला, अनेक पेटोंवाला तथा अनेक दाढ़ोंके कारण विकराल दिखाई देनेवाला आपका यह विराट रूप देखकर सारे लोक व्याकुल हो गये हैं। और मैं भी व्याकुल हो गया हूँ। २३

आकाशको छूनेवाले, जगमगाते, अनेक रंगोंवाले, खुले मुखोंवाले तथा विशाल तेजस्वी आँखोंवाले आपको देखकर, हे विष्णु! मेरा हृदय व्याकुल हो गया है और मैं धीरज या शान्ति नहीं रख पाता। २४

प्रलय-कालकी अग्निके समान प्रज्वलित और विकराल दाढ़ोंवाले आपके ये मुँह देखकर मुझे न तो दिशाएँ दिखाई पड़तीं और न शान्ति प्राप्त होती। इसलिए हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होइए। २५

सारे राजाओंके समूह-सहित धृतराष्ट्रके ये पुत्र, भीष्म, द्रोणाचार्य, यह सारथि-पुत्र कर्ण और हमारे प्रमुख योद्धागण — सभी विकराल दाढ़ोंवाले आपके भयानक मुखोंमें तेज गतिसे प्रवेश कर रहे हैं। कुछ लोगोंके सिर चूर-चूर होकर आपके दाँतोंके बीच चिपके हुए दिखाई देते हैं। २६–२७

जिस प्रकार नदियोंके अनेक बड़े प्रवाह समुद्रकी ओर तेज गतिसे दौड़ते हैं, उसी प्रकार ये लोक-नायक आपके धधकते हुअे मुखोंमें तेज गतिसे प्रवेश करते हैं। २८

जिस प्रकार पतंगे अपने नाशके लिए, बढ़ते हुए वेगसे, धधकती ज्वालामें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार ये सब लोग बढ़ते हुए वेगसे अपने नाशके लिए आपके मुखोंमें प्रवेश करते हैं। २९

समस्त लोगोंको चारों ओरसे निगलकर आप अपने धधकते हुए मुखोंसे उन्हें चाट रहे हैं। हे सर्वव्यापी विष्णु! आपका प्रचण्ड प्रकाश सम्पूर्ण जगतको अपने तेजसे भरकर तपा रहा है। ३०

आप मुझसे कहिए कि उग्र रूपवाले आप कौन हैं? हे देववर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप प्रसन्न हो जाइए। आदि-कारण-रूप आपको मैं जानना चाहता हूँ। आपकी प्रवृत्तिको मैं समझ नहीं पाता। ३१

श्रीभगवान बोले:

मैं लोकोंका नाश करनेवाला, वृद्धिको प्राप्त हुआ काल हूँ। मैं मनुष्य-जातिका नाश करनेके लिए ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। तू लड़नेसे इनकार करेगा तो भी विरोधी सेनाओंमें ये जो योद्धागण खड़े हैं उनमें से एक भी जीवित रहनेवाला नहीं है। ३२

१. शरीरकी उष्णता बनी रहे तभीतक शरीरमें प्राण टिक सकते हैं। यह उष्णता हम अन्नसे प्राप्त करते हैं। उस समय ऐसी मान्यता रही होगी कि सूक्ष्म शरीरवाले पितर प्रत्यक्ष अन्न न लेकर सीधे उसकी उष्णता ही पी लेते हैं; इसलिए यहाँ पितरोंको उष्मपा कहा गया है।

इसलिए तू उठ, कीर्तिको प्राप्त कर और शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे समृद्ध राज्यका उपभोग कर। इन सबको मैंने पहलेसे ही मार डाला है। हे सव्यसाची! तू केवल निमित्त-मात्र बन जा।

मेरे हाथों मरे हुए द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा दूसरे योद्धाओंको तू (केवल नामके लिए ही) मार। तू घबरा मत; युद्धमें लड़। रणमें तू शत्रुओंको निश्चित रूपसे जीतनेवाला है। ३४

संजय बोले :

केशवके ये वचन सुनकर मुकुटधारी अर्जुनने काँपते हुए, हाथ जोड़कर, बार-बार नमस्कार करते हुए, पुनः डरते-डरते, प्रणाम करके गद्गद कण्ठसे कृष्णसे इस प्रकार कहा। ३५

अर्जुन बोले :

हे हृषीकेश! आपका कीर्तन करके जगतको हर्ष होता है तथा आपके विषयमें उसे अनुराग पैदा होता है, यह ठीक ही है। डरे हुए राक्षस इधर-उधर भागते हैं और सिद्धोंका सारा समूह आपको नमस्कार करता है। (यह भी ठीक ही है।) ३६

हे महात्मन्! आपको वे नमस्कार क्यों न करें? आप ब्रह्मसे भी बड़े आदि-कर्त्ता हैं। हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! आप अक्षर-अविनाशी हैं, सत् हैं, असत् हैं और इनसे जो-कुछ परे है वह भी आप ही हैं? ३७

आप आदिदेव हैं। आप पुराण-पुरुष हैं। आप इस विश्वके परम आश्रय-स्थान हैं। आप वेत्ता — जाननेवाले भी हैं, और वेद्य — जानने योग्य भी हैं। आप परमधाम हैं। हे अनन्तरूप! इस जगत्में आप सर्वत्र व्याप्त हैं। ३८

आप ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्र, प्रजापति और प्रपितामह हैं। आपको मेरे हजारों बार नमस्कार हैं। फिर एक बार और भी आपको मेरे नमस्कार हैं। ३९

हे सर्व! आपका आगेसे, पीछेसे, सब ओरसे मेरा नमस्कार है। आपका वीर्य, आपकी शक्ति अनन्त है। आपका पराक्रम अपार है। आप ही सबको व्याप्त किये हुए हैं। इसलिए आप सर्व हैं। ४०

आपकी यह महिमा न जाननेके कारण मित्र मानकर 'हे कृष्ण! हे यादव! हे सखा!' इस प्रकार आपको पुकारनेमें मुझसे भूलेमें या प्रेममें भी जो अविवेक हुआ हो और विनोदार्थ भी खेलते, सोते, बैठते या खाते हुए अकेले में अथवा बहुत लोगोंके बीच मुझसे आपका जो भी अपमान हुआ हो, उसे क्षमा करनेकी, हे अगम्य-रूप! आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ। ४१-४२

आप स्थावर और जंगम जगतके पिता हैं। आप उसके पूज्य और श्रेष्ठ गुरु हैं। हे अनुपम प्रभाववाले! आपके समान भी जब कोई नहीं है, तब आपसे अधिक तो कोई हो ही कैसे सकता है? ४३

इसलिए साष्टांग प्रणाम करके आप पूज्य ईश्वरसे मैं प्रसन्न होनेकी प्रार्थना करता हूँ। जैसे पिता अपने पुत्रको, मित्र अपने मित्रको सहन करता है, उसी प्रकार आप मेरे प्रिय होनेके कारण मेरे कल्याणके लिए कृपया मुझे सहन करें। ४४

पहले न देखा हुआ आपका यह रूप देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं और भयके कारण मेरा मन व्याकुल हो गया है। इसलिए हे देव! आप इससे पहलेका अपना रूप मुझे दिखाइए। हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होइए। ४५

मैं इससे पहलेके आपके मुकुट-गदा-चक्रधारी रूपके दर्शन करना चाहता हूँ। हे सहस्रबाहो! हे विश्वमूर्ति! आप अपना वही पहला चतुर्भुज रूप धारण कीजिए। ४६

श्रीभगवान बोले :

हे अर्जुन! तुझपर प्रसन्न होकर मैंने अपनी योगशक्तिके द्वारा तुझे मेरा तेजोमय, विश्वव्यापी, अनन्त, परम, आदि रूप दिखाया है; तेरे सिवा दूसरे किसीने भी पहले मेरा यह रूप नहीं देखा है। ४७

हे कुरुप्रवीर! वेदाभ्याससे, यज्ञसे, दूसरे शास्त्रोंके अभ्याससे, दानसे, क्रियाओंसे अथवा कठोर तपोंसे भी तेरे सिवा दूसरा कोई मेरा यह रूप देख नहीं सकता। ४८

मेरा यह विकराल और भयंकर रूप देखकर तू घबरा मत, परेशान मत हो। भय छोड़कर तू शान्त-चित्त हो जा और फिरसे मेरा यह परिचित रूप देख। ४९

संजय बोले :

ऐसा कहकर फिर वासुदेवने अपना परिचित रूप अर्जुनको फिर दिखाया। और फिरसे शान्त मूर्ति धारण करके उन महात्माने डरे हुए अर्जुनको ढाढ़स बँधाया। ५०

अर्जुन बोले :

हे जनार्दन! आपका यह सौम्य मानव-रूप देखकर अब मैं शान्त तथा प्रसन्न-चित्त हो गया हूँ और स्वाभाविक स्थितिमें आ गया हूँ। ५१

श्रीभगवान बोले :

तूने मेरा जो रूप देखा उसका दर्शन बड़ा दुर्लभ है। देवता भी उस रूपको देखनेके लिए लालायित रहते हैं। ५२

तूने मेरा जो दर्शन किया वह दर्शन न तो वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही हो सकता है। ५३

परन्तु, हे अर्जुन! हे परंतप! मेरे बारेमें ऐसा ज्ञान, मेरा ऐसा दर्शन और मुझमें सच्चा प्रवेश केवल अनन्य भक्तिसे ही सम्भव होता है। ५४

हे पाण्डव! जो मनुष्य अपने सारे कर्म मुझे अर्पण करता है, मुझमें परायण–लीन–रहता है, मेरा भक्त बनता है, आसक्तिको छोड़ता है और प्राणिमात्रके प्रति द्वेष-रहित होकर रहता है, वह मुझे प्राप्त करता है। ५५

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'विश्वरूप-दर्शन-योग' नामक ग्यारहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय १२

भक्तियोग

पुरुषोत्तमके दर्शन अनन्य भक्तिसे ही हो सकते हैं; ऐसी स्थिति होनेसे भगवान के दर्शनोंके बाद तो भक्तिका स्वरूप ही चित्रित किया जा सकता है।

यह बारहवाँ अध्याय सबको कण्ठाग्र कर लेना चाहिए। यह गीताके छोटेसे छोटे अध्यायोंमें से एक है। इसमें भक्तके जो लक्षण बताये गये हैं, उनका सबको नित्य मनन करना चाहिए।

अर्जुन बोले :

इस प्रकार जो भक्त निरन्तर आपका ध्यान धरते हुए आपकी उपासना करते हैं तथा जो आपके अविनाशी अव्यक्त स्वरूपका ध्यान धरते हैं, उनमें से कौन-से योगी श्रेष्ठ माने जायेंगे? १

श्रीभगवान बोले :

जो मनुष्य नित्य मेरा ध्यान धरते हुए, मनको मुझमें लीन करके परम श्रद्धासे मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मैं श्रेष्ठ योगी मानता हूँ। २

जो मनुष्य सारी इन्द्रियोंको वशमें रखकर, सर्वत्र समभाव धारण करके मेरे अचिन्त्य, दृढ़, अचल, धीर, सर्वव्यापक, अव्यक्त, अवर्णनीय तथा अविनाशी स्वरूपकी उपासना करते हैं, वे सब प्राणियोंके हितमें ओतप्रोत होकर मुझे ही प्राप्त करते हैं। ३-४

जिन मनुष्योंका चित्त अव्यक्तमें लगा हुआ है, उन्हें अधिक कष्ट होता है। अव्यक्त गतिको देहधारी मनुष्य अनेक कष्ट उठाकर ही प्राप्त कर सकता है। ५

टिप्पणी : देहधारी मनुष्य अमूर्त स्वरूपकी केवल कल्पना ही कर सकता है। परन्तु उसके पास अमूर्त स्वरूपके लिए एक भी निश्चित शब्द नहीं है, इसलिए उसे निषेधात्मक शब्द 'नेति' से सन्तोष करना पड़ता है। अतएव मूर्तिपूजाका निषेध करनेवाले लोग भी सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाये तो मूर्ति-पूजक ही होते हैं। पुस्तककी पूजा करना, गिरजाघरमें जाकर पूजा करना, एक ही दिशामें मुँह रखकर पूजा करना — ये सब साकार पूजाके ही लक्षण हैं। ऐसा होते हुए भी साकारके उस पार निराकार अचिन्त्य स्वरूप है, यह तो सबको समझना ही होगा। भक्तिकी पराकाष्ठा इसीमें हैं कि भक्त भगवानमें विलीन हो जाये और अन्तमें केवल एक अद्वितीय, निराकार भगवान ही रह जाये। लेकिन यह स्थिति साकारकी सहायतासे आसानीसे प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए निराकारतक सीधे पहुँचनेका मार्ग कष्टसाध्य कहा गया है।

परन्तु, हे पार्थ! जो मुझमें परायण रहकर, सारे कर्म मुझे अर्पण करके, एकनिष्ठासे मेरा ध्यान धरते हुए मेरी उपासना करते हैं और जिनका चित्त मुझमें पिरोया हुआ रहता है, ऐसे मनुष्योंका मैं मरणधर्मी संसार-सागरसे तुरन्त उद्धार कर देता हूँ। ६-७

अपना मन तू मुझमें लगाये रख, अपनी बुद्धिको मुझमें पिरो दे। ऐसा करनेसे इस जन्मके बाद तू निश्चित रूपसे मुझे ही प्राप्त करेगा। ८

अब यदि तू मुझमें अपना मन स्थिर करनेमें असमर्थ हो, तो हे धनंजय! तू अभ्यास-योगके द्वारा मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा रख। ९

ऐसा अभ्यास रखनेमें भी यदि तू असमर्थ हो, तो अपने समस्त कर्म तू मुझे अर्पण कर दे। इस तरह मेरे निमित्त कर्म करते-करते भी तू मोक्षको प्राप्त करेगा। १०

और यदि मेरे निमित्तसे कर्म करने जितनी शक्ति भी तुझमें न हो, तो तू प्रयत्नपूर्वक समस्त कर्मोंके फलका त्याग कर। ११

अभ्यास-मार्गकी अपेक्षा ज्ञानमार्ग अधिक अच्छा है। ज्ञानमार्गकी अपेक्षा ध्यान-मार्ग अधिक अच्छा है। और ध्यानमार्गकी अपेक्षा कर्मफलका त्याग अधिक अच्छा है, क्योंकि इस त्यागके अन्तमें तुरन्त शान्ति[1] ही प्राप्त होती है। १२

टिप्पणी: अभ्यासका अर्थ है चित्तकी वृत्तियोंके निरोधकी साधना; ज्ञानका अर्थ है श्रवण-मनन आदि; ध्यानका अर्थ है उपासना। इनके फलस्वरूप यदि कर्मफलका त्याग देखनेमें न आये, तो ऐसा अभ्यास अभ्यास नहीं है, ज्ञान ज्ञान नहीं है और ध्यान ध्यान नहीं है।

जो प्राणिमात्रके प्रति द्वेष-रहित है, सबका मित्र है, दयावान और क्षमावान है, अहंता तथा ममतासे रहित है, सुख-दुःखको समान मानता है, सदा सन्तुष्ट रहता है, योगयुक्त है, इन्द्रियोंका निग्रह करनेवाला है और दृढ़ निश्चयवाला है तथा जिसने अपनी बुद्धि और मनको मुझे अर्पण कर दिया है, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है। १३-१४

जिससे लोग उद्विग्न नहीं होते, जो लोगोंसे उद्विग्न नहीं होता, जो हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, भय और उद्वेगसे मुक्त है, वह भक्त मुझे प्रिय है। १५

जो इच्छा-रहित है, पवित्र है, दक्ष अर्थात् सावधान है, फलकी प्राप्तिके विषयमें तटस्थ है, भय या चिन्तासे रहित है, जिसने समस्त संकल्पोंका त्याग किया है, वह मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। १६

जो हर्षित नहीं होता, जो द्वेष नहीं करता, जो चिन्ता नहीं करता, जो आशाएँ नहीं बाँधता, जो शुभ और अशुभका त्याग करता है, वह भक्ति-परायण मनुष्य मुझे प्रिय है। १७

शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख — इन सबके विषयमें जो समता धारण करता है, जिसने आसक्ति छोड़ दी है, जो निन्दा और स्तुतिमें एक-सा रहता है और मौन धारण करता है, जो कुछ मिल जाये उसीमें जिसे सन्तोष है, जिसके पास अपना कोई आश्रय-स्थान नहीं है और जो स्थिर चित्तवाला है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है। १८-१९

जो लोग मुझमें परायण रहकर श्रद्धाके साथ इस पवित्र अमृत-रूपी ज्ञानका सेवन करते हैं, वे मेरे अत्यन्त प्रिय भक्त हैं। २०

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'भक्तियोग' नामक बारहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

१. चित्त अशान्त हो तो ध्यान नहीं हो सकता और अशान्तिका कारण तो अनेक प्रकारकी फल-वासना ही है; इसलिए फलका त्याग पहले करना चाहिए। इस त्यागके बाद ध्यानके लिए आवश्यक शान्ति तुरन्त प्राप्त हो सकती है।

अध्याय १३

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग-योग

इस अध्यायमें शरीर और शरीरी (आत्मा)का भेद बताया गया है।

श्रीभगवान बोले:

हे कौन्तेय! यह शरीर क्षेत्र कहा जाता है और इसे जो जानता है उसे तत्वज्ञानी लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं। १

और हे भारत! सारे क्षेत्रों – शरीरों – में रहनेवाले मुझे तू क्षेत्रज्ञ जान। मेरा ऐसा मत है कि क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञके भेदका ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। २

यह क्षेत्र क्या है, कैसा है, कैसे विकारोंवाला है, कहाँसे आया है तथा क्षेत्रज्ञ कौन है और उसकी शक्ति क्या है, यह सब तू मुझसे संक्षेपमें सुन। ३

विविध प्रकारके छन्दोंमें अलग-अलग रीतियोंसे ऋषियोंने इस विषयको विस्तारसे गाया है और उदाहरणों तथा तर्कों द्वारा निश्चयपूर्ण ब्रह्मसूचक वाक्योंमें भी इस विषयका निरूपण किया है। ४

महाभूत, अहंता, बुद्धि, प्रकृति, दस इन्द्रियाँ, एक मन, पाँच विषय; तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात, चेतन-शक्ति, धृति – इन सबको उनके विकारोंके साथ संक्षेपमें क्षेत्र कहा गया है। ५-६

टिप्पणी: महाभूत पाँच हैं: पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। अहंकारका अर्थ है शरीरके विषयमें रहनेवाली अहंता, अहं-प्रत्यय, अहंभाव। अव्यक्तका अर्थ है अदृश्य रहनेवाली माया, प्रकृति। दस इन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं: नाक, कान, आँख, जीभ और त्वचा; तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं: हाथ, पाँव, मुँह और दो गुह्य इन्द्रियाँ। पाँच गोचर अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विषय – सूँघना, सुनना, देखना, चखना और छूना। संघातका अर्थ है शरीरके तत्वोंकी एक-दूसरेके साथ सहयोग करनेकी शक्ति। धृतिका अर्थ यहाँ धैर्यरूपी निडरताका नैतिक गुण नहीं, परन्तु इस शरीरके परमाणुओंका एक-दूसरेके साथ सम्बद्ध रहनेका गुण। यह गुण अहंभावके कारण ही सम्भव होता है और यह अहंता अव्यक्त प्रकृतिमें रहती है। अमूर्च्छ – जाग्रत – मनुष्य इस अहंताका ज्ञानपूर्वक त्याग करता है। इसलिए मृत्युके समय या दूसरे आघातोंके समय वह दुःखी नहीं होता। ज्ञानी-अज्ञानी सबको अन्तमें तो इस विकारी क्षेत्रका त्याग करना ही पड़ता है; इसके सिवा और कोई चारा नहीं है।

अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्यकी सेवा, शुद्धता, स्थिरता, आत्म-संयम, इन्द्रियोंके विषयोंके बारेमें वैराग्य, अहंकारका अभाव, जन्म-मरण-जरा-व्याधि सम्बन्धी दुःखों तथा दोषोंका निरन्तर भान, पुत्र-स्त्री-घर आदिमें मोह-ममताका अभाव, प्रिय अथवा अप्रिय जो भी आ पड़े उसके विषयमें नित्य समभाव, मेरे विषयमें अनन्य ध्यानके साथ एकनिष्ठ भक्ति, एकान्त स्थानका सेवन, जन-समूहमें घुलने-मिलनेकी अरुचि, आध्यात्मिक ज्ञानके बारेमें स्थिर निष्ठा तथा आत्मदर्शन – यह सब ज्ञान कहा जाता है। इससे उलटा अज्ञान है। ७-८-९-१०-११

जिसे जानकर मनुष्य मोक्षको प्राप्त करता है, वह ज्ञेय क्या है—यह मैं अब तुझसे कहूँगा। वह अनादि परब्रह्म हैं; उसे न तो सत् कहा जा सकता, न असत् कहा जा सकता। १२

टिप्पणी: परमेश्वरको सत् अथवा असत्में से एक भी नहीं कहा जा सकता। वह ऐसा गुणातीत स्वरूप है, जिसकी किसी एक शब्द द्वारा व्याख्या या परिचय नहीं हो सकता।

उसके हाथ, पैर, आँख, सिर, मुँह और कान सर्वत्र विद्यमान हैं। इस लोकमें वह सबको व्याप्त करके स्थित है। १३

सारी इन्द्रियोंके गुणोंका आभास उसमें होता है, फिर भी वह स्वरूप इन्द्रियों से रहित है तथा सबसे अलिप्त है और ऐसा होते हुए भी सबको धारण करनेवाला है। वह गुणरहित है, फिर भी गुणोंका भोक्ता है। १४

वह भूतोंके बाहर भी है और भीतर भी है। वह गतिमान भी है और स्थिर भी है। वह सूक्ष्म होनेके कारण जाना नहीं जा सकता। वह दूर भी है और समीप भी है। १५

टिप्पणी: जो मनुष्य उसे पहचानता है, वह उसके भीतर है। गति और स्थिरता, शान्ति और अशान्ति दोनोंका हम अनुभव करते हैं; और ये सब भाव उसीमेंसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए वह गतिमान और स्थिर दोनों है।

वह अविभक्त होते हुए भी भूतोंमें विभक्त-जैसा रहता है। वह जानने योग्य (ब्रह्म) प्राणियोंका पालन करनेवाला, नाश करनेवाला और पुनः उन्हें उत्पन्न करने वाला है। १६

वह ज्योतियोंकी भी ज्योति है; अन्धकारसे वह परे कहा जाता है। ज्ञान वही है, जानने योग्य वही है और ज्ञानसे जो प्राप्त किया जाता है वह भी वही है। वह सबके हृदयोंमें बसा हुआ है। १७

इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेयके विषयमें मैंने संक्षेपमें तुझे बताया। मेरा भक्त यह जानकर मेरे स्वरुप तक पहुँचने योग्य बनता है। १८

प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं; और तू यह भी जान कि समस्त विकार और गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं। १९

कार्य-कारण-सम्बन्धकी उत्पत्ति प्रकृतिके कारण मानी जाती है; जब कि सुख-दुःखका अनुभव पुरुषके कारण माना जाता है। २०

प्रकृतिमें स्थित पुरुष प्रकृतिके उत्पन्न होनेवाले गुणोंको भोगता है और गुणोंका यह संग ही अच्छी-बुरी योनिमें उसके जन्मका कारण बनता है। २१

टिप्पणी: प्रकृतिको हम लौकिक भाषामें मायाके नामसे पहचानते हैं। पुरुष जीव है। मायाके वश अर्थात् मूल स्वभावके वश होकर जीव सत्व, रजस और तमससे होने वाले कार्योंके फल भोगता है और इसलिए कर्मोंके अनुसार पुनर्जन्म प्राप्त करता है।

इस देहमें स्थित वह परम-पुरुष सबका साक्षी, अनुमन्ता (अनुमति देनेवाला), भर्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा भी कहा जाता है। २२

जो मनुष्य इस प्रकार पुरुषको और गुणमयी प्रकृतिको जानता है, वह सब प्रकारसे कार्य करते हुए भी फिरसे जन्म नहीं पाता। २३

टिप्पणी: दूसरे, नवें, बारहवें और अन्य अध्यायोंकी सहायतासे हम जान सकते हैं कि यह श्लोक स्वेच्छाचारका समर्थन नहीं करता, बल्कि भक्तिकी महिमा बताता है। कर्ममात्र जीवके लिए बन्धन-कारक होते हैं; परन्तु यदि मनुष्य अपने समस्त कर्म परमात्माको अर्पण कर दे, तो वह बन्धन-मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जिस मनुष्यके भीतरसे कर्त्तापनका अहंभाव मिट गया है और जो चौबीसों घंटे अन्तर्यामी प्रभुको साक्षी रखकर कर्म करता है, वह कोई पापकर्म कर ही नहीं सकता। अभिमान ही पापका मूल है। जहाँ 'मैं' मिट गया वहाँ पापकी सम्भावना रहती ही नहीं।

यह श्लोक पापकर्म न करनेकी युक्ति बताता है।

कुछ मनुष्य ध्यानमार्गसे आत्माके द्वारा आत्माको अपनेमें देखते हैं; कुछ ज्ञान-मार्गसे; जबकि दूसरे कुछ मनुष्य कर्ममार्गसे ऐसा करते हैं। २४

दूसरे कुछ लोग इन मार्गोंको नहीं जानते, इसलिए अन्य लोगोंसे परमात्माके विषयमें सुनकर, सुनी हुई बातोंपर श्रद्धा रखकर और उनमें लीन रहकर परमात्माकी उपासना करते हैं और वे भी मृत्युयुक्त संसारको पार कर जाते हैं। २५

जो भी चर अथवा अचर वस्तु उत्पन्न होती है, हे भरतर्षभ! वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके अर्थात् प्रकृति और पुरुषके संयोगसे उत्पन्न होती है, ऐसा तू जान। २६

जो मनुष्य अविनाशी परमेश्वरको सारे नाशवान प्राणियोंमें समभावसे बसा हुआ जानता है, वही उसे पहचानता है। २७

जो मनुष्य ईश्वरको सर्वत्र समभावसे स्थित देखता है, वह स्वयं अपनाघात — नाश — नहीं करता और इस कारण परम गतिको प्राप्त करता है। २८

टिप्पणी: ईश्वरको समभावसे सर्वत्र स्थित देखनेवाला मनुष्य स्वयं उसमें विलीन हो जाता है और दूसरा कुछ नहीं देखता। इस कारणसे वह विकारवश नहीं होता; इसके फलस्वरूप वह मोक्ष प्राप्त करता है तथा अपना शत्रु नहीं बनता।

सर्वत्र प्रकृति ही कर्म करती है, ऐसा जो समझता है और इसलिए आत्माको अकर्त्ता जानता है, वही सच्चा जानकार है। २९

टिप्पणी: उसी प्रकार जैसे सोते हुए मनुष्यका आत्मा निद्राका कर्त्ता नहीं है; निद्राका कर्म प्रकृति करती है।

निर्विकार पुरुषकी आँख कोई मैली चीज नहीं देखती। प्रकृति स्वयं व्यभिचारिणी नहीं है। अभिमानी पुरुष जब उसका स्वामी बनता है तब उस मिलापसे विषय-विकार उत्पन्न होता है।

जब वह (जानकर) जीवोंके अस्तित्वको अलग होते हुए भी एकमें ही स्थित देखता है और सम्पूर्ण विस्तार उस (एक)में से ही हुआ है ऐसा समझता है, तब वह ब्रह्मको प्राप्त करता है। ३०

टिप्पणी: अनुभवसे सबको ब्रह्ममें देखना ही ब्रह्मको प्राप्त करना है। ऐसी स्थितिमें जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं रहता।

हे कौन्तेय! यह अविनाशी परमात्मा अनादि और निर्गुण होनेके कारण शरीरमें रहते हुए भी न तो कुछ करता है न किसीसे लिप्त होता है। ३१

जिस प्रकार सर्वत्र फैला हुआ आकाश सूक्ष्म होनेके कारण किसीसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सारे शरीरमें व्याप्त आत्मा भी लिप्त नहीं होती। ३२

जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण जगतको प्रकाश देता है, उसी प्रकार हे भारत! क्षेत्री सारे क्षेत्रको प्रकाशित करता है! ३३

इस प्रकार जो मनुष्य ज्ञानचक्षुके द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके बीचका भेद जानते हैं तथा प्रकृतिके बन्धनसे प्राणियोंकी मुक्ति कैसे होती है यह जानते हैं, वे ब्रह्मको प्राप्त करते हैं।

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्‌में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग-योग' नामक तेरहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय १४

गुणत्रय-विभाग-योग

गुणमयी प्रकृतिका थोड़ा परिचय करानेके बाद स्वभावतया उसके तीन गुणोंका वर्णन इस अध्यायमें आता है। और तीन गुणोंका वर्णन करते हुए भगवान गुणातीत मनुष्यके लक्षण भी इसमें गिनाते हैं।

दूसरे अध्यायमें स्थितप्रज्ञके जो लक्षण बताये गये हैं और बारहवें अध्यायमें भक्तके जो लक्षण बताये गये हैं, वैसे ही लक्षण इस अध्यायमें गुणातीत मनुष्यके बताये गये हैं।

श्रीभगवान बोले :

सब ज्ञानोंमें जो उत्तम ज्ञान है और जिसका अनुभव करके सारे मुनिगण इस देहका बन्धन छूटनेके बाद परम गतिको प्राप्त हुए, वह ज्ञान मैं फिरसे तुझे कहूँगा। १

इस ज्ञानका आश्रय लेकर जो मनुष्य मेरे साथ एकरूप हो गये हैं, उन्हें उत्पत्तिके समय जन्म नहीं लेना पड़ता और प्रलयके समय व्यथा नहीं भोगनी पड़ती। २

हे भारत! महद्-ब्रह्म अर्थात् प्रकृति मेरी योनि है। उसमें मैं गर्भकी स्थापना करता हूँ और उस गर्भमें से सारे प्राणी उत्पन्न होते हैं। ३

हे कौन्तेय! समस्त योनियोंमें जिन-जिन जीवोंकी उत्पत्ति होती है, उन सब की उत्पत्तिका स्थान महद्-ब्रह्म अर्थात् मेरी प्रकृति है और उसमें बीजारोपण करने वाला पिता—पुरुष—मैं हूँ। ४

हे महाबाहो! प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले सत्व, रजस् और तमस् गुण अविनाशी देहधारी जीवको देहमें बाँध देते हैं। ५

इन गुणोंमें सत्वगुण निर्मल होनेके कारण प्रकाशित करनेवाला तथा स्वास्थ्यप्रद है, और हे अनघ! वह देहीकी सुखमें और ज्ञानमें आसक्ति पैदा करके उसे बाँधता है। ६

हे कौन्तेय! रजोगुण अनुराग-रूप होनेके कारण तृष्णा और आसक्तिकी जड़ है; वह देहधारीको कर्मपाशमें बाँधता है। ७

हे भारत! तमोगुण अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला है, इसलिए वह समस्त देहधारियोंको मोहमें डालता है और देहीको असावधानता (प्रमाद), आलस्य तथा निद्राके पाशमें बाँधता है। ८

हे भारत! सत्वगुण आत्माका शान्तिसुखके साथ संयोग कराता है, रजोगुण कर्मके साथ आत्माका संयोग कराता है और तमोगुण ज्ञानको ढँककर प्रमादके साथ आत्माका संयोग कराता है। ९

हे भारत! जब रजस् और तमस् दब जाते हैं तब सत्वगुण ऊपर आता है। सत्व और तमस् दबनेपर रजस् और सत्व और रजस्के दबनेपर तमस् ऊपर आता है। १०

जब समस्त इन्द्रियों द्वारा इस देहमें प्रकाश और ज्ञानका उद्भव होता है तब यह समझना चाहिए कि सत्वगुणकी वृद्धि हुई है। ११

हे भरतर्षभ! जब रजोगुणकी वृद्धि होती है तब लोभ, प्रवृत्ति, कर्मोंके आरम्भ, अशान्ति (अतृप्ति) तथा इच्छाका उदय होता है। १२

हे कुरुनन्दन! जब तमोगुणकी वृद्धि होती है तब अज्ञान, मन्दता, असावधानी तथा मूढ़ता उत्पन्न होती है। १३

जब देहधारी अपने भीतर सत्वगुणकी वृद्धि होने पर मृत्युको प्राप्त होता है, तो वह उत्तम ज्ञानियोंके निर्मल लोकोंको प्राप्त करता है। १४

रजोगुणकी वृद्धि होने पर मृत्यु हो तो देहधारी कर्मसंगियोंके—कर्ममें आसक्त रहनेवाले मनुष्योंके—लोकमें जन्म लेता है; और तमोगुणकी वृद्धि होनेपर मृत्यु पानेवाले देहधारी मूढ़योनिमें जन्म लेता है। १५

टिप्पणी : कर्मसंगियोंका लोक अर्थात् मनुष्य-लोक; और मूढ़योनि अर्थात् पशु इत्यादि लोक।

सत्कर्मका फल सात्विक और निर्मल होता है, राजसी कर्मका फल दुःख होता है और तामसी कर्मका फल अज्ञान होता है। १६

टिप्पणी : हम साधारण व्यवहारमें जिसे सुख और दुःख मानते हैं, उस सुख-दुःखका उल्लेख यहाँ नहीं समझना चाहिए। यहाँ सुखका अर्थ है आत्मानन्द, आत्मप्रकाश। इससे जो उलटा हो वह दुःख है। १७वें श्लोकमें यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सत्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुणसे लोभ उत्पन्न होता है और तमोगुणसे असावधानी, मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं। १७

सात्विक मनुष्य ऊँचे चढ़ते हैं, राजसी मनुष्य मध्यमें रहते हैं और अन्तिम गुणवाले तामसी लोग अधोगतिको प्राप्त करते हैं। १८

तत्त्वदर्शी ज्ञानी जब देखता है कि गुणोंके सिवा दूसरा कोई कर्त्ता है ही नहीं और जब वह गुणोंसे जो परे है उस ईश्वरको जानता है तब वह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है। १९

टिप्पणी: गुणोंको ही कर्त्ताके रूपमें देखने-समझनेवालेके मनमें अहंभाव कभी पैदा नहीं होता। इसलिए उसके सारे कार्य स्वाभाविक होते हैं और शरीर-यात्रा चलानेके लिए ही होते हैं। और उसकी शरीर-यात्रा परमार्थ करनेके लिए ही होती है, इस कारणसे उसके प्रत्येक कार्यमें सदा त्याग और वैराग्यकी ही भावना रहती है। ऐसा ज्ञानी आसानीसे गुणोंसे परे रहनेवाले निर्गुण ईश्वरकी कल्पना करता है, उसे पहचानता है और भजता है।

देहके संगसे उत्पन्न होनेवाले इन तीन गुणोंको पार करके देहधारी (मनुष्य) जन्म, मृत्यु और बुढ़ापेके दुःखसे छूटता है और मोक्षको प्राप्त करता है। २०

अर्जुन बोले:

हे प्रभो, इन तीन गुणोंको पार करनेवाला मनुष्य किन चिह्नोंसे पहचाना जाता है? उसके आचरण कैसे होते हैं? और इन गुणोंको वह कैसे पार करता है? २१

श्रीभगवान बोले:

हे पाण्डव! प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहके प्राप्त होनेपर जो दुःख नहीं मानता और उनके प्राप्त न होनेपर जो उनकी इच्छा नहीं करता, जो उदासीनकी तरह स्थिर रहता है, जिसे गुण हिलाते या विचलित नहीं करते, 'गुण ही अपना कार्य करते हैं' ऐसा मानकर जो स्थिर रहता है—विचलित नहीं होता, जो सुख-दुःखमें समता बनाये रखता है, स्वस्थ रहता है, मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको जो समान मानता है, प्रिय अथवा अप्रिय वस्तु प्राप्त होनेपर जो एक-सा रहता है, अपनी निन्दा या स्तुतिको जो समान मानता है, जिसकी दृष्टिमें मान और अपमान दोनों समान हैं, जो मित्रपक्ष और शत्रुपक्षके बारेमें समभाव रखता है और जिसने सब आरम्भोंका त्याग कर दिया है, ऐसा बुद्धिमान पुरुष गुणातीत कहलाता है। २२-२५

टिप्पणी: यहाँ २२ से २५ तकके श्लोकोंपर एक-साथ विचार करना चाहिए। प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह पिछले श्लोकोंमें बताये अनुसार क्रमसे सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणके परिणाम अथवा चिह्न हैं। इसलिए यहाँ कहनेका आशय यह है कि जो मनुष्य गुणोंको पार कर गया है, उसपर इन परिणामोंका कोई असर नहीं होता। पत्थर प्रकाशकी इच्छा नहीं करता, न वह प्रवृत्ति या जड़तासे द्वेष करता है। उसे न चाहने पर भी शान्ति है; कोई उसे गति देता है तो वह गति देनेवालेसे द्वेष नहीं करता। गति देनेके बाद कोई उसे स्थिर कर देता है तब ऐसा करनेसे उसकी प्रवृत्ति (गति) बन्द हो गई, मोह या जड़ता आ गई, ऐसा मानकर वह दुःखी नहीं होता; परन्तु तीनों स्थितियोंमें समान रहता है।

पत्थर और गुणातीत मनुष्यमें यह भेद है कि गुणातीत चेतनमय है और उसने ज्ञानपूर्वक गुणोंके परिणामोंका, उनके स्पर्शका त्याग किया है और एक प्रकारसे वह

पत्थर-जैसा जड़ बन गया है। पत्थर गुणोंके अर्थात् प्रकृतिके कार्योंका साक्षी तो है, परन्तु उनका कर्त्ता नहीं है; इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष इन कार्योंका साक्षी रहता है, परन्तु कर्त्ता नहीं रहता। ऐसे ज्ञानीके विषयमें यह कल्पना की जा सकती है कि वह २३वें श्लोकमें बताये अनुसार 'गुण अपना कार्य करते हैं' ऐसा समझनेके कारण हिलता नहीं और अचल रहता है; वह उदासीनकी तरह बैठता है यानी अडिग रहता है।

गुणोंमें तन्मय बने हुए हम लोग इस स्थितिकी केवल कल्पना करके धैर्यके साथ उसे समझ सकते हैं, परन्तु उसका अनुभव नहीं कर सकते। लेकिन इस स्थितिकी कल्पनाको दृष्टिके सामने रखकर 'मैं' पनको हम दिनोंदिन घटाते जायें, तो अन्तमें हम गुणातीत मनुष्यकी स्थितिके समीप पहुँच सकते हैं और उसकी झाँकी प्राप्त कर सकते हैं। गुणातीत मनुष्य अपनी स्थितिका अनुभव करता है, उसका वर्णन नहीं कर सकता। जो मनुष्य उसका वर्णन कर सकता है वह गुणातीत नहीं है, क्योंकि उसमें अहंभाव विद्यमान है। सब लोग जिसका आसानीसे अनुभव कर सकते हैं, वह शान्ति, प्रकाश, हलचल — प्रवृत्ति या जड़ता — मोह है। गीतामें अनेक स्थानोंपर यह स्पष्ट किया गया है कि सात्विकता गुणातीतके समीपसे — समीपकी स्थिति है।

इसलिए प्रत्येक मनुष्यका प्रयत्न सत्वगुणका विकास करनेकी दिशामें होना चाहिए। इसके फलस्वरूप अन्तमें उसे गुणातीत अवस्था प्राप्त होती है, ऐसा विश्वास उसे रखना चाहिए।

जो मनुष्य एकनिष्ठ होकर भक्तियोगके द्वारा मेरी सेवा — उपासना करता है, वह इन तीनों गुणोंको पार करके ब्रह्मरूप बनने योग्य हो जाता है। २६

यह ब्रह्मकी स्थिति मैं ही हूँ, शाश्वत् मोक्षकी स्थिति मैं ही हूँ; इसी प्रकार सनातन धर्मकी तथा उत्तम सुखकी स्थिति भी मैं ही हूँ। २७

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'गुणत्रय-विभाग-योग' नामक चौदहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय १५

पुरुषोत्तम-योग

इस अध्यायमें क्षर और अक्षरसे परे रहनेवाला अपना उत्तम स्वरूप भगवानने समझाया है।

श्रीभगवान बोले :

जिसका मूल ऊपर है, जिसकी शाखाएँ नीचे हैं और वेद जिसके पर्ण हैं, ऐसा जो अविनाशी अश्वत्थ संसार-वृक्ष कहा जाता है, उसे जो मनुष्य जानता है वह वेदोंका जाननेवाला ज्ञानी है। १

टिप्पणी: 'श्वः' का अर्थ है आगामी कल। इसलिए अ-श्व-त्थका अर्थ हुआ आगामी कल तक न टिकनेवाला क्षणिक संसार। संसारका प्रतिक्षण रूपान्तर होता रहता है, अतः वह अश्वत्थ है। परन्तु ऐसी स्थितिमें वह सदा ही रहनेवाला है इसलिए और उसका मूल ऊर्ध्व अर्थात् ईश्वर है इसलिए वह शाश्वत अविनाशी है। उसमें वेदोंके अर्थात् धर्मके शुद्ध ज्ञान-रूपी पर्ण न हों, तो वह शोभा नहीं दे सकता। इस प्रकार जिसे संसारका सच्चा ज्ञान है और जो धर्मको जाननेवाला है वह ज्ञानी है।

गुणोंके स्पर्शसे बढ़ी हुई और विषय-रूपी कोपलोंवाली इस अश्वत्थकी शाखाएँ नीचे-ऊपर फैली हुई हैं; कर्मोंके बन्धन उत्पन्न करनेवाली उसकी जड़ें मनुष्य-लोकमें नीचे फैली हुई हैं। २

टिप्पणी: यह अज्ञानी मनुष्यकी दृष्टिसे संसार-वृक्षका वर्णन है। वह इस वृक्षके ऊपर ईश्वरमें स्थित मूलको नहीं देखता, लेकिन विषयोंकी रमणीयतामें मुग्ध रहकर तीनों गुणों द्वारा इस वृक्षका पोषण करता है और मनुष्य-लोकमें कर्मके पाशमें बँधा रहता है।

इस वृक्षका सच्चा स्वरूप देखनेमें नहीं आता। न तो इसका अन्त है, न आदि है और न आधार है; अत्यन्त गहरी पहुँची हुई जड़ोंवाले इस अश्वत्थ वृक्षको असंग-रूपी बलवान शस्त्रसे काटकर मनुष्य यह प्रार्थना करे: "जिसमें से यह सनातन प्रवृत्ति — माया प्रसरित हुई है, उस आदि-पुरुषकी शरणमें मैं जाता हूँ।" और उस पदको खोजे जिसे प्राप्त करनेवालेको फिरसे जन्म और मरणके चक्रमें फँसना नहीं पड़ता। ३–४

टिप्पणी: असंगका अर्थ है असहयोग, वैराग्य। जबतक मनुष्य विषयोंके साथ असहयोग नहीं करता, उनके प्रलोभनोंसे दूर नहीं रहता, तब तक वह उनमें फँसता ही रहेगा।

ये दो श्लोक यही बताते हैं कि विषयोंके साथ खेल खेलना और उनसे अछूता रहना असम्भव है।

जिन्होंने मान और मोहका त्याग किया है, जिन्होंने आसक्तिसे पैदा होनेवाले दोषोंको दूर कर दिया है, जो नित्य आत्मामें निमग्न रहते हैं, जिनके विषय शान्त हो गये हैं, जो सुख-दुःख-रूपी द्वन्द्वोंसे मुक्त हैं, वे ज्ञानीजन अविनाशी पदको प्राप्त करते हैं। ५

वहाँ सूर्यको, चन्द्रको या अग्निको प्रकाश नहीं पहुँचाना पड़ता। जहाँ जानेवाले मनुष्यको फिरसे जन्म नहीं लेना पड़ता, वही मेरा परम धाम है। ६

मेरा ही सनातन अंश जीवलोकमें जीव बनकर प्रकृतिमें रहनेवाली पाँच इन्द्रियों को और मनको आकर्षित करता है। ७

शरीरका स्वामी अर्थात् जीव जब शरीर छोड़ता अथवा शरीर धारण करता है तब जिस प्रकार वायु पुष्पादिके स्थानसे गन्धको ले जाती है, उसी प्रकार जीव इन्द्रियों-सहित मनको अपने साथ ले जाता है। ८

और कान, आँख, त्वचा, जीभ, नाक तथा मनका आश्रय लेकर वह विषयोंका सेवन करता है। ९

टिप्पणी: यहाँ विषय शब्दका अर्थ वीभत्स विलास नहीं, परन्तु उन-उन इन्द्रियोंकी स्वाभाविक क्रियाएँ हैं। उदाहरणके लिए आँखका विषय है देखना, कानका विषय है सुनना, जीभका विषय है चखना या स्वाद लेना। ये क्रियाएँ जब विकारवाली, अहंभाववाली होती हैं तब दूषित — वीभत्स — मानी जाती हैं। जब ये क्रियाएँ विकारोंसे रहित होती हैं तब निर्दोष होती हैं। बालक आँखसे देखते हुए या हाथसे किसी पदार्थको छूते हुए विकारी नहीं बनता। इसलिए नीचेके श्लोकमें कहा गया है:

(शरीरका) त्याग करनेवाले अथवा उसमें रहनेवाले तथा गुणोंका आश्रय लेकर भोग भोगनेवाले (इस अंशरूपी) ईश्वरको मूर्खजन नहीं देखते; केवल दिव्य चक्षुवाले ज्ञानीजन ही देखते हैं। १०

यत्नवान योगीजन अपने भीतर बसे हुए इस ईश्वरको देखते हैं। परन्तु जिन्होंने अपने-आपको प्रशिक्षित नहीं किया है, आत्मशुद्धि नहीं की है, ऐसे मूढ़जन यत्न करने पर भी इस ईश्वरको नहीं पहचानते। ११

टिप्पणी: इसमें और नवें अध्यायमें भगवानने दुराचारी मनुष्यको जो वचन दिया है उसमें, कोई विरोध नहीं है। अकृतात्माका अर्थ है भक्तिहीन; स्वेच्छाचारी, दुराचारी।

जो मनुष्य नम्रतासे श्रद्धापूर्वक ईश्वरको भजते हैं, वे क्रम-क्रमसे आत्मशुद्ध होते हैं और ईश्वरको पहचानते हैं। जो मनुष्य यम-नियमादिके पालनकी परवाह न करके केवल बुद्धिके प्रयोगसे ईश्वरको पहचानना चाहते हैं, वे अचेता — चित्तसे रहित, रामसे हीन, रामको पहचान ही कैसे सकते हैं?

सूर्यमें स्थित जो तेज सारे जगतको प्रकाशित करता है और जो तेज चन्द्रमा और अग्निमें रहता है, वह मेरा ही है ऐसा तू समझ। १२

पृथ्वीमें प्रवेश करके मैं अपनी शक्तिसे प्राणियोंको धारण करता हूँ और रसोंको उत्पन्न करनेवाला चन्द्र बनकर समस्त वनस्पतियोंका पोषण करता हूँ। १३

जठराग्निके रूपमें प्राणियोंके शरीरका आश्रय लेकर मैं प्राण और अपान-वायुके द्वारा चारों प्रकारका अन्न[1] पचाता हूँ। १४

मैं सबके हृदयमें विद्यमान हूँ; मुझसे स्मृति, ज्ञान और उनका अभाव होता है। समस्त वेदों द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ, वेदोंको जाननेवाला मैं हूँ और वेदान्तको प्रकट करनेवाला भी मैं ही हूँ। १५

इस श्लोकमें क्षर अर्थात् नाशवान और अक्षर अर्थात् अविनाशी ऐसे दो पुरुष हैं। समस्त भूत 'क्षर' हैं और उनमें स्थिर रहनेवाला अन्तर्यामी 'अक्षर' कहा जाता है। १६

इनके अतिरिक्त एक दूसरा उत्तम पुरुष है। वह परमात्मा कहा जाता है। वह अव्यय ईश्वर तीनों लोकोंमें प्रवेश करके उनका पोषण करता है। १७

क्योंकि मैं क्षरसे परे हूँ और अक्षरसे भी उत्तम हूँ, इसलिए मैं वेदोंमें और जगतमें पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हूँ। १८

१. अन्न चार प्रकारका है: (१) चर्व्य, चबाकर खाया जानेवाला, (२) पेय, पिया जानेवाला, (३) चोष्य, चूसा जानेवाला, और (४) लेह्य चाटा जानेवाला।

हे भारत! जो मनुष्य मोह-रहित होकर मुझ पुरुषोत्तमको इस प्रकार जानता है, वह सब-कुछ जानता है और मुझे पूर्ण भावसे भजता है। १९

हे अनघ! यह गुह्यसे-गुह्य शास्त्र मैंने तुझसे कहा है। हे भारत! इसे जान कर मनुष्यको बुद्धिमान बनना चाहिए और अपना जीवन सफल करना चाहिए। २०

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है, श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'पुरुषोत्तम-योग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय १६

दैवासुर-सम्पद्-विभाग-योग

इस अध्यायमें दैवी और आसुरी सम्पत्तिका वर्णन किया गया है।

दैवी सम्पत्तिका अर्थ है धर्म-वृत्ति; आसुरी सम्पत्तिका अर्थ है अधर्म-वृत्ति।

श्रीभगवान बोले :

हे भारत! अभय, अन्तःकरणकी शुद्धि, ज्ञान और योगमें निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुन, भूतदया, अलोलुपता, मृदुता, मर्यादा, अचंचलता, तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह, निरभिमान — इतने गुण उस मनुष्यमें होते हैं, जो दैवी सम्पत्ति लेकर उत्पन्न हुआ है। १–२–३

टिप्पणी : दमका अर्थ है इन्द्रियोंका निग्रह। अपैशुनका अर्थ है किसीकी चुगली न खाना। अलोलुपताका अर्थ है लालसा न रखना, लम्पट न होना। तेजका अर्थ है हर प्रकारकी हीन वृत्तिका विरोध करनेका उत्साह। अद्रोहका अर्थ है किसीका बुरा न चाहना अथवा बुरा न करना।

हे पार्थ! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान ये आसुरी सम्पत्ति लेकर उत्पन्न होनेवालोंमें रहते हैं। ४

टिप्पणी : जो चीज अपने भीतर न हो उसे दिखाना दम्भ, ढोंग, पाखण्ड है। दर्पका अर्थ है घमण्ड।

दैवी सम्पत्ति मोक्ष देनेवाली और आसुरी सम्पत्ति बन्धनमें डालनेवाली है। हे पाण्डव! तू शोक मत कर। तू तो दैवी सम्पत्ति लेकर उत्पन्न हुआ है। ५

इस लोकमें दो प्रकारकी सृष्टि है : दैवी और आसुरी। हे पार्थ! दैवी सृष्टिका मैंने विस्तारसे वर्णन किया है। अब तू आसुरी सृष्टिका वर्णन मुझसे सुन। ६

आसुर प्रवृत्ति क्या है और निवृत्ति क्या है, लोग यह नहीं जानते। न वे यह जानते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार उन्हें शुद्धिका या आचरणका भान नहीं होता और न उनमें सत्य होता है। ७

वे कहते हैं: जगत असत्य, (धर्मके) आधारसे रहित और ईश्वर-विहीन है; वह केवल नर-नारीके सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ है। उसमें विषय-भोगके सिवा दूसरा क्या हेतु हो सकता है? ८

ऐसी मान्यताको पकड़े रखकर भयंकर कार्य करनेवाले, मन्दबुद्धि, दुष्ट लोग जगतके शत्रु बनकर उसका नाश करनेके लिए उत्पन्न होते है। ९

तृप्त न हो सकें ऐसी कामनाओंका आश्रय लेकर ये दम्भी, मानी, मदान्ध तथा अशुभ निश्चयोंवाले लोग मोहके कारण दुष्ट इच्छाओंको ग्रहण करके चलते हैं। १०

प्रलय होनेतक जिसका अन्त ही न आये ऐसी अपार चिन्ताका आश्रय लेकर, विषय-भोगके पीछे पड़े हुए, 'भोग ही सब-कुछ है' ऐसा निश्चय करनेवाले, सैकड़ों आशाओंके जालमें फँसे हुए, कामी और क्रोधी लोग विषय-भोगके लिए अन्यायसे द्रव्यका संचय करना चाहते हैं। ११-१२

आज मैंने यह प्राप्त किया है, अब यह मनोरथ मैं पूरा करूँगा; आज इतना धन मेरे पास है और कल दूसरा इतना धन और मेरा हो जायेगा; इस शत्रुको तो मैंने मार डाला, अब दूसरोंको भी मारूँगा; मैं सर्व-सम्पन्न हूँ, भोगी हूँ, सिद्ध हूँ, बलवान हूँ और सुखी हूँ; मैं श्रीमान हूँ, कुलीन हूँ, मेरे-जैसा दूसरा इस जगतमें कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, आनन्द भोगूँगा — इस प्रकार अज्ञानसे मूढ़ बने हुए लोग खुश होते हैं और अनेक भ्रमोंमें पड़कर, मोह-जालमें फँसकर तथा विषय-भोगमें लीन रहकर अशुभ नरकमें गिरते हैं। १३-१४-१५-१६

स्वयं ही अपनेको बड़ा माननेवाले, हठी तथा धन और मानके मदमें चूर ये लोग विधिका विचार किये बिना दम्भसे केवल नामके ही यज्ञ करते हैं। १७

वे अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोधका आश्रय लेनेवाले, निन्दा करनेवाले तथा अपनेमें और दूसरोंमें बसे हुए मुझसे द्वेष करनेवाले होते हैं। १८

उन नीच, द्वेषी, क्रूर और अमंगल नराधमोंको मैं इस संसारकी आसुरी योनिमें ही बार-बार डालता हूँ। १९

हे कौन्तेय! हर जन्ममें आसुरी योनि पाकर और मुझे न पानेके कारण वे मूढ़ लोग इससे भी अधिक अधम गतिको प्राप्त करते हैं। २०

आत्माका नाश करनेवाला नरकका यह तिहरा द्वार है: काम, क्रोध और लोभ। इसलिए मनुष्यको इन तीनोंका त्याग करना चाहिए। २१

हे कौन्तेय! इस तिहरे नरक-द्वारसे दूर रहनेवाला मनुष्य आत्माका कल्याण करता है और इसलिए परम गतिको प्राप्त करता है। २२

जो मनुष्य शास्त्रविधिको छोड़कर स्वच्छन्दतासे भोगोंमें रचा-पचा रहता है, वह न तो सिद्धि प्राप्त करता है और न सुख; परम गति भी उसे प्राप्त नहीं होती। २३

टिप्पणी: यहाँ शास्त्रविधिका अर्थ धर्मशास्त्रोंके नामसे पहचाने जानेवाले ग्रन्थोंमें बताई हुई अनेक क्रियाएँ नहीं, परन्तु अनुभव-ज्ञानवाले सत्पुरुषों द्वारा बताया हुआ संयम-मार्ग है।

इसलिए कार्य और अकार्यका निर्णय करनेमें तुझे शास्त्रको प्रमाण मानना चाहिए। शास्त्र-विधि क्या है, यह जानकर तुझे यहाँ कर्म करना चाहिए। २४

टिप्पणी: ऊपर शास्त्रका जो अर्थ बताया गया वही यहाँ भी समझा जाये।

इस श्लोकका आशय यह है कि सब लोग अपना-अपना कानून बनाकर स्वेच्छाचारी न बनें, परन्तु धर्मके अनुभवी पुरुषोंके वचनोंको प्रमाण मानें।

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्‌में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'दैवासुर-सम्पद्-विभाग-योग' नामक सोलहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय १७

श्रद्धात्रय-विभाग-योग

शास्त्र अर्थात् शिष्टाचारको प्रमाण मानना चाहिए, ऐसा सुनकर अर्जुनको शंका हुई कि जो मनुष्य शिष्टाचारको स्वीकार न कर सके परन्तु श्रद्धासे आचरण करे, उसकी गति कैसी होती है। इस शंकाका उत्तर देनेका प्रयत्न इस अध्यायमें किया गया है। लेकिन शिष्टाचार-रूपी दीपस्तम्भको छोड़ देनेके बाद जो श्रद्धा रहती हैं उसमें अनेक भय हैं, यह बताकर भगवानने सन्तोष मान लिया है। और इसलिए श्रद्धाके तथा उसके आश्रयमें होनेवाले यज्ञ, तप, दान आदिके उन्होंने गुणोंके अनुसार तीन विभाग कर दिये हैं और अन्तमें ॐ तत्सत्‌की महिमा गाई है।

अर्जुन बोले:

हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रविधि यानी शिष्टाचारको छोड़कर केवल श्रद्धासे ही पूजा, उपासना, आदि करते हैं, उनकी वृत्ति कैसी मानी जायेगी? सात्विक, राजसी अथवा तामसी? १

श्रीभगवान बोले:

मनुष्योंकी उनके स्वभावके अनुसार तीन प्रकारकी श्रद्धा होती है: सात्विकी, राजसी और तामसी। उसे तू सुन। २

हे भारत! सब मनुष्योंकी श्रद्धा उनकी अपनी प्रकृति—स्वभाव—का अनुसरण करती है। मनुष्यमें किसी न किसी प्रकारकी श्रद्धा—तो—होती ही है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बनता है। ३

सात्विक मनुष्य देवोंको भजते हैं, राजस मनुष्य यक्षों और राक्षसोंको भजते हैं और बाकी बचे हुए तामस मनुष्य भूत-प्रेत आदिको भजते हैं। ४

दम्भ और अहंकारवाले तथा काम और रागके बलसे प्रेरित जो मनुष्य शास्त्रीय विधिसे रहित घोर तप करते हैं, वे मूढ़ जन शरीरमें विद्यमान पंच महाभूतोंको तथा

अन्तःकरणमें स्थित मुझे भी कष्ट पहुँचाते हैं। ऐसे मनुष्योंको तू आसुरी निष्ठावाला समझ। ५–६

आहार भी मनुष्यको तीन प्रकारका प्रिय होता है। इसी तरह यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकारके प्रिय होते हैं। उनका यह भेद तू सुन। ७

आयु, सात्विकता, बल, स्वास्थ्य, सुख तथा रुचिको बढ़ानेवाले, रसपूर्ण, चिकने, पोषक और चित्तको सन्तोष देनेवाले आहार सात्विक लोगोंको प्रिय होते हैं। ८

तीखे, खट्टे, खारे, बहुत गरम, बहुत चरपरे, रूखे और दाहकारक आहार राजस लोगोंको प्रिय होते हैं, [यद्यपि] वे दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। ९

पहर-भरसे पड़ा हुआ, बिगड़ा हुआ, दुर्गन्ध-युक्त, रात-भर बासी, जूठा और अपवित्र भोजन तामस लोगोंको प्रिय होता है। १०

जिसमें फलकी आशा नहीं होती, जो विधिपूर्वक, कर्त्तव्य समझकर और एकाग्र तथा स्थिर मनसे किया जाता है, वह यज्ञ सात्विक है। ११

हे भरतश्रेष्ठ! जो यज्ञ फलके उद्देश्यसे और दम्भसे किया जाता है, उसे तू राजसी यज्ञ जान। १२

जिस यज्ञमें विधि नहीं होती, अन्नकी उत्पत्ति और तृप्ति नहीं होती, मन्त्र नहीं होता, त्याग नहीं होता और श्रद्धा नहीं होती, वह तामस यज्ञ कहा जाता है। १३

देव, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीकी पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा — यह शारीरिक तप कहा जाता है। १४

किसीको दुःख न दे ऐसा, सत्य, प्रिय तथा हितकारी वचन और धर्मग्रन्थोंका अध्ययन — यह वाचिक तप कहा जाता है। १५

मनकी प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम और भावनाकी शुद्धि — यह मानसिक तप कहा जाता है। १६

समभावी पुरुष जब फलकी इच्छाका त्याग करके परम श्रद्धाके साथ यह तीन प्रकारका तप करते हैं, तब उसे बुद्धिमान लोग सात्विक तप कहते हैं। १७

जो तप सत्कार, मान और पूजाके लिए दम्भसे किया जाता है, वह अस्थिर और अनिश्चित तप राजस कहा जाता है। १८

जो तप पीड़ा भोगकर, दुराग्रहसे या दूसरोंका नाश करनेके लिए किया जाता है, वह तामस तप कहा जाता है। १९

दान देना उचित है ऐसी समझके साथ तथा बदला मिलनेकी आशा रखे बिना देश, काल और पात्रको देखकर जो दान दिया जाता है, वह सात्विक दान कहा जाता है। २०

जो दान बदला पानेके लिए अथवा फलकी आशा रखकर और दुःखके साथ दिया जाता हैं, वह राजसी दान कहा जाता है। २१

जो दान गलत स्थानपर, कुसमयमें और अपात्रको दिया जाता है अथवा सम्मानके बिना, तिरस्कारपूर्वक दिया जाता है, वह दान तामसी कहा जाता है। २२

ब्रह्मका वर्णन 'ॐ तत् सत्' इस तरह तीन प्रकारसे हुआ है और उसके द्वारा सृष्टिके आरम्भमें ब्राह्मण, वेद और यज्ञ रचे गये थे। २३

इसी कारणसे ब्रह्मवादियोंकी यज्ञ, दान और तपरूपी क्रियाएँ सदा 'ॐ' का उच्चारण करके विधिवत् होती हैं। २४

इसके अतिरिक्त, मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्य 'तत्' का उच्चारण करके फलकी आशा रखे बिना यज्ञ, तप तथा दानरूपी विविध प्रकारकी क्रियाएँ करते हैं। २५

सत्य तथा कल्याणके अर्थमें 'सत्' शब्दका प्रयोग होता है। और, हे पार्थ! शुभ कर्मोंमें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। २६

यज्ञ, तप और दानके विषयमें रहनेवाली दृढ़ताको भी सत् कहा जाता है। कर्म इन्हींके लिए है, ऐसा संकल्प भी सत् कहा जाता है। २७

टिप्पणी: ऊपरके तीन श्लोकोंका भावार्थ यह हुआ कि प्रत्येक कर्म ईश्वरको अर्पण करके ही किया जाये, क्योंकि ॐ ही सत् है, सत्य है। उसे अर्पण किया हुआ कर्म ही फल देता है।

हे पार्थ! जो यज्ञ, दान, तप अथवा अन्य कार्य श्रद्धाके बिना होता है, वह असत् कहा जाता है। उससे न तो इस लोकमें लाभ होता है और न परलोकमें। २८

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्र भी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'श्रद्धात्रय-विभाग-योग' नामक सत्रहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

अध्याय १८

संन्यास-योग

यह अध्याय उपसंहारके रूपमें माना जायेगा। इसका तथा सम्पूर्ण गीताका प्रेरक मन्त्र यह कहा जायेगा: 'सारे धर्मोंका त्याग करके तू मेरी शरण ले।' यही सच्चा संन्यास है। परन्तु सारे धर्मोंके त्यागका अर्थ सारे कर्मोंका त्याग नहीं है। परोपकारके कर्म भी ईश्वरको अर्पण करने चाहिए और फलकी इच्छा छोड़ देनी चाहिए। यही सबसे श्रेष्ठ कर्म है; यही सर्व-धर्म-त्याग अथवा संन्यास है।

अर्जुन बोले:

हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन! मैं संन्यास और त्यागका अलग-अलग रहस्य जानना चाहता हूँ।

श्रीभगवान बोले:

कामनासे उत्पन्न होनेवाले (काम्य) कर्मोंके त्यागको ज्ञानीजन संन्यासके नामसे जानते हैं। समस्त कर्मोंके फलके त्यागको बुद्धिमान लोग त्याग कहते हैं। २

कुछ विचारवान पुरुष कहते हैं: सारे कर्म दोषमय होनेके कारण त्याग करने योग्य हैं; दूसरे कहते हैं: यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं। ३

हे भरतसत्तम? इस त्यागके विषयमें मेरा निर्णय तू सुन। हे पुरुषव्याघ्र! त्याग तीन प्रकारका कहा गया है। ४

यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म त्यागने योग्य नहीं परन्तु करने योग्य हैं। यज्ञ, दान और तप विवेकी मनुष्यको पावन करनेवाले हैं। ५

हे पार्थ! ये कर्म भी आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके किये जाने चाहिए, ऐसा मेरा निश्चित और उत्तम मत है। ६

नियत कर्मका त्याग उचित नहीं है। मोहके वश होकर यदि उसका त्याग किया जाये, तो वह त्याग तामस माना जाता है। ७

जो मनुष्य किसी कर्मका त्याग उसे दुःखकारक मानकर तथा उसमें होनेवाले शारीरिक कष्टके भयसे करता है, उसका वह त्याग राजस है और इसलिए उसे कर्मके त्यागका फल नहीं मिलता। ८

हे अर्जुन! करना ही चाहिए ऐसा समझ कर जब नियत कर्म आसक्ति और फलके त्यागके साथ किया जाता है, तब वह त्याग सात्विक माना जाता है। ९

संशय-रहित बना हुआ, शुद्ध भावनावाला, त्यागी और बुद्धिमान पुरुष असुविधा-पूर्ण कर्मोंसे द्वेष नहीं करता और सुविधापूर्ण कर्मोंसे प्रसन्न नहीं होता। १०

समस्त कर्मोंका सर्वथा त्याग करना देहधारीके लिए सम्भव नहीं है। परन्तु जो मनुष्य कर्मके फलका त्याग करता है, वह त्यागी कहलाता है। ११

त्याग नहीं करनेवाले मनुष्यके लिए कर्मका फल, मृत्युके बाद, तीन प्रकारका होता है; अशुभ, शुभ और शुभ-अशुभ। जो मनुष्य त्यागी (संन्यासी) है, उसके विषयमें ऐसा कभी नहीं होता। १२

हे महाबाहो! प्रत्येक कर्मकी सिद्धिके विषयमें सांख्यशास्त्रमें ये पाँच कारण बताये गये हैं। इन्हें तू मुझसे जान ले। १३

ये पाँच कारण हैं: क्षेत्र, कर्त्ता, अलग-अलग साधन, अलग-अलग क्रियाएँ और पाँचवाँ दैव। १४

शरीर, वाणी अथवा मनसे मनुष्य जो भी कर्म नीतिके अनुसार अथवा नीतिके विरुद्ध करता है, उसके ये पाँच कारण होते ही हैं। १५

ऐसा होते हुए भी असंस्कारी बुद्धिके कारण जो मनुष्य केवल अपनेको ही कर्त्ता मानता है, वह मूढ़ बुद्धिवाला कुछ नहीं समझता। १६

जिस मनुष्यमें (मैं करता हूँ ऐसा) अहंकारका भाव नहीं होता, जिसकी बुद्धि (आसक्तिसे) मलिन नहीं हुई है, वह इस जगतको मारते हुए भी नहीं मारता और न बन्धनमें बँधता है। १७

टिप्पणी: ऊपर-ऊपरसे पढ़ें तो यह श्लोक मनुष्यको भुलावेमें डालनेवाला मालूम होता है। गीताके अनेक श्लोकोंमें काल्पनिक आदर्शका अवलम्बन किया गया है, उस आदर्शका प्रत्यक्ष उदाहरण जगतमें नहीं मिल सकता। परन्तु उपयोगके लिए भी जिस प्रकार भूमितिमें काल्पनिक आदर्श-आकृतियोंकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्मके आचरणके सम्बन्धमें भी काल्पनिक आदर्शकी आवश्यकता रहती है। इसलिए इस श्लोकका अर्थ इसी तरह किया जा सकता है:

जिस मनुष्यने अहंता—अहंभाव—को जलाकर भस्मीभूत कर दिया है और जिसकी बुद्धिमें थोड़ी भी मलिनता नहीं है, वह चाहे तो भले सारे जगतको मार डाले। परन्तु जिसमें अहंता नहीं है, उसका शरीर ही नहीं है। जिसकी बुद्धि विशुद्ध है, वह मनुष्य त्रिकालदर्शी है और ऐसा पुरुष तो केवल भगवान ही है। वह कर्म करते हुए भी अकर्त्ता है? वध करते हुए भी अहिंसक है। इसलिए मनुष्यके सामने तो किसीको न मारनेका और शिष्टाचार—शास्त्र—का पालन करनेका ही एकमात्र मार्ग रहता है।

कर्मकी प्रेरणामें तीन तत्व समाये रहते हैं: ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता। इसी प्रकार कर्मके अंग भी तीन प्रकारके होते हैं: इन्द्रियाँ, क्रिया और कर्त्ता। १८

टिप्पणी: इसमें विचार और आचारका समीकरण है। पहले मनुष्यको करना क्या है (ज्ञेय) फिर उसकी रीति (ज्ञान)को जानता है—परिज्ञाता बनता है। इस प्रकार कर्मकी प्रेरणा होनेके बाद वह इन्द्रियों (करण) द्वारा क्रियाका करनेवाला बनता है। यह कर्म-संग्रह है।

गुणोंके भेदके अनुसार ज्ञान, कर्म और कर्त्ता तीन प्रकारके होते हैं। गुण-गणनामें इनका जैसा वर्णन किया गया है उसे तू सुन। १९

जिस ज्ञानसे मनुष्य समस्त भूतोंमें एक ही अविनाशी भावके तथा विविधतामें एकताके दर्शन करता है, उसे तू सात्विक ज्ञान समझ। २०

जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य अलग-अलग (दिखाई देनेवाले) होनेके कारण सारे प्राणियोंमें अलग-अलग विभाजित भावोंको देखता है, उस ज्ञानको तू राजस जान। २१

जिस ज्ञानके द्वारा, बिना किसी कारणके, एक ही वस्तुमें सब-कुछ समाया हुआ मानकर मनुष्य आसक्त रहता है और जो ज्ञान रहस्य-हीन तथा तुच्छ है, वह ज्ञान तामस कहा जाता है। २२

फलकी इच्छासे रहित पुरुषके द्वारा आसक्ति तथा राग-द्वेषसे मुक्त रहकर किया गया नियत कर्म सात्विक कहलाता है। २३

टिप्पणी: नियत कर्मका अर्थ है मनके द्वारा इन्द्रियोंको अंकुशमें रखकर किया गया कर्म। देखिए टिप्पणी अध्याय ३, श्लोक ८।

भोगकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य 'मैं करता हूँ' की भावनासे भाग-दौड़, शक्तिका बहुत अपव्यय करके जो कर्म करता है, वह राजस कर्म कहलाता है। २४

परिणामोंका, हानिका, हिंसाका या अपनी शक्तिका विचार किये बिना मोहके वश होकर मनुष्य जो कर्म आरम्भ करता है, वह तामस कर्म कहा जाता है। २५

जो आसक्ति और अहंकारसे रहित है, जिसमें दृढ़ता और उत्साह है और जो सफलता तथा असफलतामें हर्ष या शोक नहीं करता, वह सात्विक कर्त्ता कहलाता है। २६

जो रागी है, कर्मके फलकी इच्छा रखनेवाला है, लोभी है, हिंसा करनेवाला है, मलिन मनवाला है तथा हर्ष और शोक करनेवाला है, वह राजस कर्त्ता कहा जाता है। २७

जो अव्यवस्थित, असंस्कारी, घमण्डी, धूर्त, दुष्ट, क्रूर, आलसी, शोकयुक्त और दीर्घसूत्री है, वह तामस कर्त्ता कहा जाता है। २८

हे धनंजय! अब मैं गुणोंके अनुसार बुद्धि तथा धृतिके, विस्तारसे और अलग-अलग, तीन प्रकार बताता हूँ। उन्हें तू सुन। २९

जो बुद्धि समुचित रूपमें प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य और अकार्य, भय और अभय तथा बन्धन और मोक्षका भेद जानती है, वह सात्विकी बुद्धि है। ३०

जो बुद्धि धर्म तथा अधर्मका और कार्य तथा अकार्यका विवेक अशुद्ध — गलत — रीतिसे करती है, वह बुद्धि हे पार्थ! राजसी है। ३१

हे पार्थ! जो बुद्धि अन्धकारसे घिरी हुई होनेके कारण अधर्मको ही धर्म मानती है और सारी बातोंको उलटी ही दृष्टिसे देखती है, वह बुद्धि तामसी है। ३२

जिस एकनिष्ठ धृतिसे मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको साम्यबुद्धिसे धारण करता है, वह धृति हे पार्थ! सात्विकी है। ३३

हे पार्थ! जिस धृतिके द्वारा मनुष्य फलाकांक्षी होकर धर्म, अर्थ और कामको आसक्तिपूर्वक धारण करता है, वह धृति राजसी है। ३४

जिस धृतिसे दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य निद्रा, भय, शोक, खेद और मदको छोड़ नहीं सकता, हे पार्थ! वह तामसी धृति है। ३५

हे भरतर्षभ! अब तू मुझसे तीन प्रकारके सुखका वर्णन सुन।

अभ्याससे जिसमें मनुष्य आनन्दित होता है, जिससे उसके दुःखका अन्त होता है, जो आरम्भमें विष-तुल्य लगता है और परिणाममें अमृत जैसा सिद्ध होता है तथा जो आत्मज्ञानकी प्रसन्नतासे उत्पन्न होता है, वह सुख सात्विक कहलाता है। ३६–३७

विषयों और इन्द्रियोंके संयोगसे जो सुख आरम्भमें अमृत-जैसा लगता है, परन्तु परिणाममें जहर जैसा सिद्ध होता है, वह सुख राजस कहलाता है। ३८

जो सुख आरम्भमें और परिणाममें आत्माको मोहमें डालनेवाला है और निद्रा, आलस्य तथा प्रमादसे उत्पन्न हुआ है, वह तामस सुख कहलाता है। ३९

पृथ्वीपर अथवा स्वर्गमें देवोंके बीच ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुए इन तीन गुणोंसे मुक्त हो। ४०

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके कर्मोंके भी उनके स्वभाव-जन्य गुणोंके कारण विभाग किये गये हैं। ४१

शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, अनुभवसे उत्पन्न विज्ञान और आस्तिकता — ये ब्राह्मणके स्वभावजन्य कर्म हैं। ४२

शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्धमें पीछे न हटना, दान और प्रभुत्व-शक्ति — ये सब क्षत्रियके स्वभावजन्य कर्म हैं। ४३

खेती, गोरक्षा और व्यापार ये वैश्यके स्वभावजन्य कर्म हैं। और शूद्रका स्वभाव-जन्य कर्म सेवा-चाकरी है। ४४

अपने-अपने कर्ममें रत रहकर मनुष्य मोक्षको प्राप्त करता है। अपने कर्ममें रत रहनेवाले मनुष्यको मोक्ष कैसे मिलता है, अब तू यह सुन। ४५

जिसके द्वारा प्राणियोंकी प्रवृत्ति चलती है, जिसके द्वारा यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमात्माको जो मनुष्य अपने कर्मके द्वारा भजता है वह मोक्ष पाता है। ४६

परधर्म सरल हो तो भी गुण-रहित स्वधर्म उससे अधिक अच्छा है। स्वभावके अनुसार निश्चित किया हुआ कर्म करनेसे मनुष्यको पाप नहीं लगता। ४७

टिप्पणी : स्वधर्मका अर्थ है अपना कर्त्तव्य। गीताकी शिक्षाका मध्यबिन्दु है कर्मफलका त्याग। और स्वधर्मकी अपेक्षा दूसरा उत्तम कर्त्तव्य खोजने पर फल-त्यागके लिए अव-काश नहीं रहता; इसलिए स्वधर्मको श्रेष्ठ कहा गया है। समस्त धर्मका फल उसके पालनमें आ जाता है।

हे कौन्तेय! सहज प्राप्त हुआ कर्म दोषवाला हो तो भी उसे नहीं छोड़ना चाहिए। जिस प्रकार आगके साथ धुआँ रहता ही है उसी प्रकार सब कर्मोंके साथ दोष लगा ही रहता है। ४८

जिसने सब ओरसे अपनी आसक्तिको खींच लिया है, जिसने कामनाओंका त्याग कर दिया है, जिसने अपने-आपको जीत लिया है, वह मनुष्य संन्यासके द्वारा नैष्कर्म्य-रूपी परम सिद्धिको प्राप्त करता है। ४९

हे कौन्तेय! यह सिद्धि प्राप्त करनेके बाद मनुष्य ब्रह्मको कैसे प्राप्त करता है, यह तू संक्षेपमें मुझसे सुन। यही ज्ञानकी चरम सीमा है। ५०

जिसकी बुद्धि शुद्ध हो गई है ऐसा योगी दृढ़तापूर्वक अपने-आपको वशमें करके, शब्द-रूप-रस आदि विषयोंका त्याग करके, राग-द्वेषको जीत कर, एकान्तका सेवन करके, आहारको अल्प करके, वाणी-शरीर-मनको अंकुशमें रखकर, ध्यानयोगमें नित्य परायण रहकर, वैराग्यका आश्रय लेकर, अहंकार-बल-दर्प-काम-क्रोध और परिग्रहका त्याग करके तथा ममता-रहित और शान्त होकर ब्रह्मभावको प्राप्त करने योग्य बनता है। ५१–५२–५३

इस प्रकार ब्रह्मभावको प्राप्त हुआ प्रसन्न-चित्त मनुष्य न तो शोक करता है, न किसी बातकी इच्छा करता है। वह भूतमात्रके प्रति समभाव रखकर मेरी परम भक्तिको प्राप्त करता है। ५४

मैं कैसा हूँ और कौन हूँ, यह बात भक्तिके द्वारा वह यथार्थ रूपमें जानता है और इस तरह मुझे यथार्थ रूपमें जाननेके बाद वह मुझमें प्रवेश करता है। ५५

मेरा आश्रय लेनेवाला मनुष्य सदा सारे कर्म करते हुए भी मेरी कृपासे शाश्वत, अव्यय पदको प्राप्त करता है। ५६

तू मनसे समस्त कर्मोंको मुझमें अर्पण करके, मुझमें लीन होकर, विवेक-बुद्धिका आश्रय लेकर सदा मुझमें अपने चित्तको लगाये रख। ५७

मुझमें चित्तको लीन करनेसे तू कठिनाइयों रूपी सारे पर्वतोंको मेरी कृपासे लाँघ जायेगा। लेकिन यदि तू अहंकारके वश होकर मेरी बात नहीं सुनेगा, तो नाश को प्राप्त होगा। ५८

तू अहंकारके वश होकर यदि यह माने कि 'मैं नहीं लड़ूँगा' तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है। तेरा स्वभाव ही तुझे युद्धकी ओर बलपूर्वक घसीट कर ले जायेगा। ५९

हे कौन्तेय! अपने स्वभाव-जन्य कर्मसे बँधा हुआ तू मोहके वश होकर जो कार्य नहीं करना चाहता, उसे तू विवश होकर करेगा। ६०

हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें वास करता है; और अपनी मायाके प्रतापसे उन्हें कुम्हारके चक्र पर चढ़े हुए घड़ेकी तरह गोल-गोल घुमाता है। ६१

हे भारत! तू सच्ची भावनासे उसीकी शरण ले। उसकी कृपासे तू परम शान्तिमय अमर-पदको प्राप्त करेगा। ६२

इस प्रकार मैंने तुझसे यह गुह्यसे गुह्य ज्ञान कहा है। इस सबपर अच्छी तरह विचार करके तुझे जैसा उचित लगे वैसा कर। ६३

इसके अतिरिक्त, तू सबसे अधिक रहस्यमय मेरा परम वचन सुन। तू मुझे अत्यन्त प्रिय है, इसलिए मैं तेरे हितकी बात तुझसे कहूँगा। ६४

तू मुझसे लौ लगा, मेरा भक्त बन, मेरे लिए यज्ञ कर, मुझे प्रणाम कर। तू मुझे ही प्राप्त करेगा, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। तू मुझे प्रिय है। ६५

सब धर्मोंका त्याग करके तू केवल मेरी ही शरण ले। मैं तुझे सारे पापोंसे मुक्त करूँगा। तू शोक मत कर। ६६

जो मनुष्य तपस्वी नहीं है, जो भक्त नहीं है, जो सुनना नहीं चाहता और जो मुझसे द्वेष या ईर्ष्या करता है, उससे तू यह (ज्ञान) कभी मत कहना। ६७

परन्तु जो मनुष्य यह परम गुह्य ज्ञान मेरे भक्तोंको देगा, वह मेरी परम भक्ति करनेके कारण निश्चित रूपसे मुझे ही प्राप्त करेगा। ६८

मनुष्योंमें उसकी अपेक्षा मेरा कोई अधिक प्रिय सेवक नहीं है और इस पृथ्वी पर उससे अधिक प्रिय कोई मेरा होनेवाला भी नही है। ६९

टिप्पणी: यहाँ कहनेका आशय यह है कि इस ज्ञानका जिसने अनुभव किया है, वही मनुष्य इसे दूसरोंको दे सकता है। जो मनुष्य केवल शुद्ध उच्चारण करके दूसरोंको यह ज्ञान अर्थ-सहित सुना भर दे, ऊपरके दो श्लोक उसके लिए नहीं हैं।

हमारे बीचके इस धार्मिक और पवित्र संवादका जो मनुष्य अध्ययन करेगा, वह मुझे ज्ञान-यज्ञके द्वारा भजेगा, ऐसा मेरा मत है। ७०

इसके अतिरिक्त, जो मनुष्य द्वेष-रहित होकर श्रद्धासे इस संवादको केवल सुनेगा, वह भी पापमुक्त होकर उस शुभ लोकको प्राप्त करेगा जहाँ पुण्यवान रहते हैं। ७१

हे पार्थ! क्या तूने यह सब एकाग्र चित्तसे सुना है? हे धनंजय! अज्ञानके कारण तुझे जो मोह हो गया था, वह क्या नष्ट हुआ? ७२

अर्जुन बोले :

हे अच्युत! आपकी कृपासे, मेरा मोह नष्ट हो गया है। मुझमें स्मृति लौट आई है; शंकाका समाधान हो जानेसे मैं स्वस्थ हो गया हूँ। मैं आपके कहे अनुसार ही करूँगा। ७३

संजय बोले :

इस प्रकार मैंने वासुदेव और महात्मा अर्जुनके बीच हुआ यह रोमांचित करने वाला अद्‌भुत संवाद सुना। ७४

व्यासजीकी कृपासे योगेश्वर कृष्णके मुखसे मैंने यह रहस्यमय परमयोग सुना। ७५

हे राजन्! केशव और अर्जुनके बीच हुए इस अद्‌भुत और पवित्र संवादको याद कर-करके मैं बार-बार हर्षित होता हूँ। ७६

तथा हे राजन्! हरिके उस अद्‌भुत रूपको याद करते-करते मैं महान आश्चर्यमें डूब जाता हूँ और बार-बार हर्षसे भर जाता हूँ। ७७

मेरा यह स्पष्ट मत है कि जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहाँ श्री है, विजय है, वैभव है और अविचल नीति भी है। ७८

टिप्पणी : योगेश्वर कृष्ण अर्थात् अनुभव-सिद्ध शुद्ध ज्ञान और धनुर्धारी अर्जुन अर्थात् उस ज्ञानके अनुसार होनेवाली क्रिया — इन दोनोंका संगम जहाँ होता है वहाँ संजयने जो बताया उसके सिवा दूसरा क्या परिणाम हो सकता है?

ॐ तत्सत्

जो ब्रह्मविद्या भी है और योगशास्त्रभी है श्रीभगवान द्वारा गाये गये ऐसे इस उपनिषद्‌में आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादका 'संन्यास-योग' नामक अठारहवाँ अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

'अनासक्तियोग' भी यहाँ समाप्त होता है।

ॐ शान्तिः

८५. पत्र : महादेव देसाईको

कौसानी
२८ जून, १९२९

चि० महादेव,

गीताका काम कल पूरा कर दिया इससे मुझे परम आनन्दका अनुभव हुआ। ध्यानपूर्वक साराका सारा मैंने देख लिया ही है। काकाकी टिप्पणियोंमेंसे जितना कुछ ठीक जान पड़ा उतना रख लिया है। प्रस्तावना पूरी कर दी है।

मैं आश्रम पहुँचूंगा तभी लगभग तुम भी पहुँचोगे यह तुम्हारे पत्रसे मालूम होता है।

पद्मसिंहकी[1] मृत्युका आघात रसिककी मृत्युसे[2] ज्यादा लगा है; किन्तु यह आघात मृत्युका नहीं मेरी अपनी मन्दताका था। किन्तु मैंने जानबूझकर उपवास नहीं किया। यदि हमें मृत्युका स्वागत करना चाहिए तो उसके लिए उपवास कैसा? इस भयंकर मृत्युके समय भी इसी तरह विचार करता रहा और उस दिन खानेका समय नहीं रहा तो भी मैंने शामको खाना खा लिया। सुबह तो खाया ही था और उसकी मृत्यु बादमें ही हुई थी। पद्मसिंहने मृत्युसे एक दिन पहले स्वस्थ चित्तसे मुझसे अपनी मृत्युकी बात की थी और कहा था "मैं जीवित न रहा तो मेरे लड़केको आशीर्वाद दीजिएगा।" मैंने कहा कि मैं उसे आश्रम ले जाऊँगा। और यदि चाहो तो उसका बन्दोबस्त भी उसके घरमें ही कर दूं। उसने जवाब दिया: "मेरी यह माँग नहीं है, इसकी जरूरत भी नहीं है। सिर्फ आपके स्नेहपूर्ण आशीर्वादकी जरूरत है।" मैंने उसे आश्वासन दिया। उसकी मृत्युके बाद मोहन जोशी उसके सम्बन्धियोंसे पूछ आया। गोविन्द वल्लभ पन्तने चन्दा शुरू कर दिया था। किन्तु उसके सम्बन्धियोंने एक पाई लेनेसे भी इनकार कर दिया। "हमें सिर्फ महात्माजीका आशीर्वाद चाहिए और कुछ नहीं," इस करुणारसमें वीररस भी कितना भरा है। यह पूरा कुटुम्ब ही बहादुर जान पड़ता है। या हो सकता है कि इस प्रान्तके सभी निवासी ऐसे हों। वे दूधका धन्धा करते हैं। जमीन तो सभीके पास थोड़ी-थोड़ी है ही। लोग गरीब हैं; पर असहाय नहीं हैं। गरीब होकर भी उदार हैं। इस निर्जनसे जंगलमें भी रोज ये पहाड़ी लोग आ जाते हैं और कुछ दे जाते हैं। अब तुम्हें यह चैक वापस ही भेज रहा हूँ। देनेवाला वापस लेना चाहे तो दे देना, न लेना चाहे तो आश्रम भेज देना। यह रुपया यहींके प्रेम विद्यालयके लिए इस्तेमाल करेंगे। इसका जवाब तो अब आश्रम में ही मिलेगा। यह पत्र कलकी डाकमें ही जायेगा। तुम्हें तो मंगलवारको मिलेगा।

१. देखिए "दुःखद मृत्यु" २७-६-१९२९।

२. गांधीजीके ज्येष्ठपुत्र हरिलाल गांधीका पुत्र; देखिए खण्ड-४०, पृष्ठ १५-१६ और ३०-३२।

मंगलवारको मुझे यहाँसे रवाना होना है। ५ तारीखका पूरा दिन दिल्लीमें लगेगा। कार्यसमितिकी बैठक है। ५ तारीखकी रातको आश्रमके लिए कूच करेंगे।

वल्लभभाई अधीरतामें शिमला छोड़कर न आयें, यह अत्यन्त आवश्यक है। बारडोलीके विषयमें लेख भेज दिया गया है फिर भी देखा तो जाना चाहिए। कोटमल की यात्रा करनेका विचार करके अच्छा किया है। इतनी यात्रा कर लेना भी अच्छा है। स्टोक्ससे कहना कि मैं उसे हर घड़ी याद करता हूँ। बवासीर बिल्कुल चली जाये यही चाहता हूँ। विट्ठलभाईके स्वास्थ्यके बारेमें तुम कुछ नहीं लिखते, ऐसा क्यों कर?

ग्रेगके विवाहके बारेमें पत्र तो इसी सप्ताह मिला है। किन्तु विवाहकी खबर तो एन्ड्रयूजके पत्रसे पहले ही मिल गई थी।

सर टी० विजयराघवाचार्यके लिए पण्डितजीने एक दवाई बताई थी। मैं आश्रमसे भेजनेके लिए कह आया था। वह उन्हें मिली है कि नहीं? और दवा लेनेकी विधिके बारेमें प्यारेलालसे पत्र लिखवाया था। वह भी उन्हें मिला है कि नहीं?

दशक्रोईके विषयमें तुम्हारा लेख देख लूँगा। जो लिखने लायक होगा सो लिखूँगा। शिमलाका डाक विभाग बहुत जागृत है ऐसा मैंने मान लिया था और यह भी मान लिया था कि स्पीकरका घर तो डाक विभागके सभी कर्मचारी जानते ही होंगे।

बागेश्वरसे आते हुए दो घंटे बरसातमें भीगे और वह भी डोलीमें बैठे-बैठे। चलनेकी शक्ति नहीं थी। भीगे कपड़ोंसे मोटरमें बैठकर दूसरी मंजिल पर जाना पड़ा और तीन हजार फुटकी ऊँचाई पर जाना पड़ा। परिणाम यह हुआ था कि बुखारने दो दिन खबर ली। आज पारी थी, पर नहीं आई। कल और आजके दिनमें कुल मिलाकर ६ ग्रेन कुनैन ली है। खुराकका प्रयोग चल रहा है। निष्फल तो नहीं गया। पर सफल हुआ, यह भी नहीं कह सकते। ऐसी खुराक पच सकती है, इस सम्बन्धमें कोई सन्देह तो नहीं रह गया है। पकाये हुए खानेसे यह किस हदतक अच्छा है, यह देखना बाकी है। तुम इस सम्बन्धमें चिन्ता न करना। मुझे इस प्रयोगमें आनन्द आ रहा है, यह बाकी सभी साथियोंके लिए पर्याप्त होना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (एस० एन० ११४५४)की फोटो-नकलसे।

८६. पत्र : छगनलाल जोशीको

कौसानी
२८ जून, १९२९

चि० छगनलाल,

मैंने जितने समयकी बात सोची थी, गीताका काम उससे पहले अर्थात् कल रातको समाप्त हो गया। इसलिए अब यह पत्र लिख पा रहा हूँ।

तुमने गीता सम्बन्धी मेरे कथनको बिल्कुल उलटा समझा है। अब आश्रममें आने पर मुझे सिर नीचे झुकाना पड़ेगा न? क्योंकि मैंने यहाँ एक भी श्लोक कंठस्थ नहीं किया है; करनेका इरादा भी नहीं था। मैंने मान लिया था कि मुझे गीताके अपने अनुवादको फिरसे देखना है, यह बात तुम जानते हो। बादके पत्रसे तो स्पष्ट हो ही गया होगा।

तुम मेरी गैरहाजिरीमें आश्रमसे चले जाओगे, कुसुमने ऐसा सोचा; उससे प्रकट होता है कि तुम्हारे बारेमें उसकी धारणा कितनी न्यून है। मुझे आश्चर्य है कि तुम्हारे जीवनकी किस बातसे उसके मनमें यह धारणा बनी। मैंने तो स्वप्नमें भी ऐसा नहीं माना कि तुम मेरी गैरहाजिरीमें अथवा मुझसे पूछे बिना एक क्षणके लिए भी अपने कामसे आश्रमके बाहर जा सकते हो।

तुम्हारे लिए अपने सभी बच्चोंकी विशेष देखभाल करनेकी जरूरत तो है ही। तुम दोनोंको उनकी ज्यादा देखभाल करनी है और उन्हें सही रास्ते पर लाना है। रमाबहनकी बाहर जानेकी तीव्र इच्छा मैं समझ सकता हूँ। उसे प्रोत्साहन देना चाहिए। उसे जल्दी भेजा जा सके तो ऐसा करना भी ठीक होगा।

गिरिराज अभी चर्मालयको नहीं सँभाल सकता, यह बात सुरेन्द्रको समझाना! चर्मालयकी रिपोर्ट बनानेका काम सुरेन्द्रका है। वह न करे या न कर सके तो उसे वालजी करें। इस बोझको तुम्हें अपने सिर नहीं लेना है।

आखिरकार भणसालीने उपवास किया ही। किशोरलालका भाषण मैंने नहीं देखा। मैं वहाँ आऊँगा, तो मुझे दिखाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४२३)की फोटो-नकलसे।

८७. पत्र : जेठालाल जोशीको

कौसानी
२८ जून, १९२९

भाई जेठालाल,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। हाथकते सूतका चन्दा कम करना मेरे बसकी बात नहीं है। महीनेमें एक हजार भेजना तो तुम्हारे लिए बहुत आसान काम होना चाहिए। दूधके लिए तुम प्रयत्नशील रहो, यह गोसेवा संघके संविधानके[1] लिए काफी है। इतना मुझे याद है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १३४८)की फोटो-नकलसे।

८८. पत्र : फूलचन्द शाहको

कौसानी
२८ जून, १९२९

भाईश्री फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। जिस कामके बारेमें प्रतिज्ञा की थी वह पूरा हो गया है इसलिए यह पत्र लिख पा रहा हूँ।

भक्ति बहन जैसी योग्य बहन अवश्य संघर्षमें भाग ले सकती हैं। दरबार साहबके बारेमें तो वल्लभभाई ही अनुमति दे सकते हैं। पण्डित सुन्दरलालकी पुस्तकके लिए रियासतोंमें सत्याग्रह नहीं किया जा सकता। चरखा सम्बन्धी इनामकी घोषणा मेरी अनुपस्थितिके कारण नहीं की जा सकी। देवचन्द भाईके सुधार चूँकि ज्यादा बुनियादी हैं, इस कारण जो समिति सुधारोंके बारेमें नियुक्त की गई थी, उन्हें उसके पास भेज दिया जाना चाहिए। . . .[2]। मणिलालके विषयमें समझ गया हूँ। जो तुम लिखते हो वह सही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२९७)से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

१. देखिए परिशिष्ट–१।
२. मूल पत्र फटा-फटा होनेके कारण यहाँ कुछ वाक्य छोड़ दिये गये हैं।

८९. तार: नागेश्वर रावको[1]

[२९ जून, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

नागेश्वर राव
अमृतांजन
मद्रास

क्या छः महीनेमें सात हजार रुपये लौटानेका आश्वासन दे सकते हैं। उत्तर काशीपुर भेजें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४१०)की माइक्रोफिल्मसे।

९०. धर्मसंकट

एक नौजवानने अपने धर्मसंकटके बारेमें लम्बा पत्र लिखा है। पत्रका सार यों है:

> मैं २४ वर्षका हूँ। सन् १९२३ में मैंने मैट्रिक पास की थी। तबसे अबतक मैं नौकरी करता आ रहा हूँ। सन् १९२१से मैं शुद्ध खादी पहनता हूँ। १९२४ में मेरा विवाह हुआ था। हम चार भाई और चार बहन हैं। मेरे माता-पिता जीवित हैं।
>
> १९२०-२१के जमानेसे ही मैं देश और स्वदेशीको समझने लगा था, और तभीसे धर्म समझ कर खादी पहनता रहा हूँ। लेकिन इतने ही से मुझे सन्तोष नहीं होता; स्वराज्यकी लड़ाईमें शामिल होनेको दिल बहुत ही व्यग्र रहता है। मगर विचारोंकी अपरिपक्वता और माता-पिता तथा देशके प्रतिके कर्त्तव्य के बीच मनके अनिश्चयके कारण अबतक इसी तरह निभा रहा हूँ।
>
> हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, उलटे हम कर्जदार हैं। मगर सामाजिक कार्योंमें होते रहनेवाले व्ययको देखते हुए कर्ज चुकाना आसान नहीं मालूम पड़ता।
>
> उक्त बातें कहनेका कारण यही है कि सन् १९२१से मैं यही सोचा करता था कि पिताजीकी आर्थिक स्थिति सुधर जाने, खाने-पीनेका खर्च आसानी

१. मद्राससे २८-६-१९२९ को भेजे नागेश्वर राव और गणेशनके तारके उत्तरमें, जो २९-६-१९२९ को अलमोड़ामें मिला था। तार इस प्रकार था: "कृपया तार व पत्रपर शीघ्र ध्यान दें। परिस्थिति जटिल।" (एस० एन० १५४१०)

से पूरा पड़ने लगने और कर्जदारीसे बेबाक हो जाने पर मैं स्वराज्यकी लड़ाईमें शामिल होऊँगा और उसीमे खप जाऊँगा।

विदेशी राज्यकी लूटनीतिने उड़ीसा, मद्रास और देशके दूसरे अंचलोंकी जो हालत कर रखी है, यदि यही लूटनीति कायम रही तो वही हालत हमारी और एक-एक कुटुम्बकी हो जायेगी। क्योंकि हर साल करोड़ों रुपयोंके साथ-साथ देश अमूल्य मनुष्यत्वसे भी हाथ धोता जा रहा है। देशकी इस हालतमें और किसी वजहसे न सही तो भी अपने कुटुम्बके भलेकी दृष्टिसे ही प्रत्येक आदमी को स्वराज्य-संग्राममें शामिल होना चाहिए।

जब ये विचार माताजी एवं पिताजीके सामने रखकर उनसे आज्ञा चाहता हूँ तब उन्हें बहुत ही दुःख होता है, और वे समझते हैं कि मैं उनके प्रति अपने ऋणसे उऋण नहीं होना चाहता। वे दलील देकर कहते हैं कि घर जलाकर तीर्थयात्रा हो नहीं सकती; पहले घर-सेवा और बादमें देश-सेवा हो सकती है; कुटुम्बकी आर्थिक सहायता और समाजकी रूढ़ कुप्रथाओंका पोषण करते हुए उन्हें मेरा उनकी आँखोंके सामने रहना ही अच्छा लगता है।

मुझे अपने कुटुम्ब पर बहुत कुछ अभिमान है। वे मुझे हर तरह सुखी और प्रसन्न देखना चाहते हैं। लेकिन मेरे विचार उन्हें पसन्द नहीं आते; फलस्वरूप हम सब उदास रहते हैं।

करीब एक हफ्तेसे मैंने कातना शुरू किया है, और अब जिन्दगी-भर कातता रहूँगा, क्योंकि चरखेमें मेरी अटल श्रद्धा है। पिछले सात वर्षोंसे अन्तर-विग्रह चल रहा है; इस कारण भली-भाँति संयमसे रह सका हूँ।

मेरी पत्नीने दो साल हुए विदेशी वस्त्र खरीदना बन्द कर दिया है और नये वस्त्र शुद्ध खादीके ही खरीदती है।

घरके और सब लोग विदेशी वस्त्र पहनते और खरीदते हैं। पिछले पन्द्रह दिनसे वे खादी पहननेका वचन दे रहे हैं, बशर्ते कि मैं रुक जाऊँ, लेकिन सम्भवतः यह तो मुझे रोकनेका एक ढंग मात्र होगा।

देशके लिए चाहे जो त्याग करनेको मैं तैयार हूँ।

ऐसे धर्मसंकटका सामना कई युवकोंको करना पड़ता है: इस सन्धिकालमें कुटुम्ब-वा और देश-सेवाके बीच विरोध चलता ही रहेगा। माँ-बाप एक बात चाहेंगे, शकी स्थितिके जानकार युवक दूसरी बात चाहेंगे। ऐसे समय हरएक मामलेमें एक ो मार्ग हो नहीं सकता; और कोई दूसरा रहनुमाई कर नहीं सकता। जो बात अन्तः फ़ूर्तिसे सच मालूम पड़े, वही सच मानी जाये। प्रह्लादने किसी दूसरेके कहनेसे अपने ताकी आज्ञाका अनादर नहीं किया था। मगर अन्तःस्फूर्ति हरएकको नहीं होती। यमके कारण जिसका हृदय निर्मल हो गया है, उसीको अन्तःस्फूर्ति — अन्तर्नाद होता । शराबीको कहीं अन्तर्नाद हो सकता है? और क्या व्यभिचारी अन्तर्नादके वशीभूत ोकर व्यभिचार करे?

पिताकी आज्ञा या इच्छाका अनादर सहज ही नहीं किया जा सकता। जिसने हमारा भरण-पोषण करके हमें बड़ा किया है, उसे आज्ञा देनेका अधिकार है, उसके प्रति हमारे कतिपय कर्त्तव्य भी हैं। मगर आजकलके माता-पिता स्वार्थवश काम करते पाये जाते हैं। बहुतेरे देश-धर्मको जानते ही नहीं, कई भीरु होते हैं और कुछ धर्मान्ध भी। अब यह विचारणीय है कि ऐसे माता-पिताकी आज्ञाका पालन कहाँ तक कर्तव्य है।

इन सब बातों पर विचार करते हुए प्रस्तुत मामले जैसे मामलोंमें निश्चयपूर्वक सलाह देना मुश्किल हैं। हाँ, कतिपय सामान्य नियम बताये जा सकते हैं:

१. माता-पिता स्वार्थवश होकर सलाह दें, तो उसका विनयपूर्वक अनादर किया जा सकता है।

२. माता-पिता अपनी सेवा कराना चाहते हों और वह किसी दूसरे प्रकारसे न हो सकती हो, तो पुत्रका धर्म है कि वह उनकी सेवा करे।

३. लेकिन यदि पुत्रने देश-सेवाके लिए अपने सर्वस्वको त्याग दिया हो, तो जैसे संन्यस्त पुत्र माता-पिताके संकट-समयमें भी उनके निकट नहीं जा सकता, वैसे ही यह पुत्र भी देश-सेवा छोड़ कर उनकी मददके लिए नहीं जा सकता।

४. अपनी अनिवार्य जरूरतोंके सिवा अगर माता-पिता पुत्रसे विशेष आशा रखें तो पुत्रका धर्म हो सकता है कि वह उसका विरोध करे। मसलन, अगर माता-पिता विवाहमें अनुचित खर्च करना चाहते हों तो उनकी इस इच्छाको पूरी करना पुत्रका धर्म नहीं है।

५. अगर माता-पिता पुत्रसे अधर्माचरण कराना चाहें, तो उसे कदापि न करना ही धर्म है।

६. शुद्ध देश-सेवा और शुद्ध कुटुम्ब-सेवाके बीच कोई विरोध नहीं है। विरोध तो तथाकथित कुटुम्ब-सेवाके बीच ही होता है।

और अधिक नियम बढ़ाने या अधिक सूक्ष्म नियम बतानेकी जरूरत नहीं है। जहाँ सतत धर्मका अवलोकन-चिन्तन होता रहता है, वहाँ अपने आप ही पता चल जाता है कि किसी खास अवसर पर क्या धर्म्य होगा, क्या अधर्म्य। प्रत्येक पाठक उक्त नियमोंको केवल मार्गदर्शक ही समझे। जहाँ विवेक और विचार है, वहाँ धर्म भी सुलभ है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-६-१९२९

९१. चेचक और हैजा

एक पाठक लिखते हैं:

> **यहाँ इन दो-तीन महीनोंसे चेचक और हैजे वगैराका प्रकोप खूब बढ़ा है। चेचकके बारेमें अनेक मान्यताएँ और भ्रम प्रचलित हैं। इस सम्बन्धमें 'नवजीवन' द्वारा कुछ प्रकाश डालनेकी कृपा करें। अपनी आरोग्य विषयक पुस्तकमें आप जो मत प्रकट कर चुके हैं, क्या इस बीच उनमें कुछ परिवर्तन हुआ है?**

जबतक हम स्वयं ज्ञान-सम्पादन नहीं करते और जबतक स्त्रियोंसे हमारा व्यवहार ठीक नहीं होता तबतक अन्धविश्वासोंका साम्राज्य बना ही रहेगा। अन्धविश्वासका समूल नाश तो किसी भी समय नहीं हो सकेगा। किताबी-ज्ञान-सम्पन्न यूरोप और अमेरिकादि देशोंमें भी तो भ्रम फैले हुए हैं। जबतक मनुष्यको जीवन आदिका लोभ रहेगा तबतक ये अन्धविश्वास भी कम या ज्यादा तादादमें बने ही रहेंगे; मगर जैसे-जैसे हम अपने लोभको सीमित बनाते जायेंगे, वैसे-वैसे वहम कम होते जायेंगे।

फिर भी जहाँ भ्रम या अन्धविश्वासका ठीक-ठीक पता लग सके, वहाँ तो उसे हटानेका प्रयत्न करना जरूरी है। रोगोंको लेकर जब आदमी ओझों, सयानों, पण्डों वगैराको घुमाता है, छू-छा कराता है, तब वह पैसोंकी फिजूलखर्चीके साथही-साथ बिना मौत मरता भी है। चेचक जैसे रोगोंमें, जिनमें आम तौर पर औषधिचिकित्सा नहीं की जाती, वहमका राज्य अधिक जोरदार होता है। इस प्रकार शीतला माता (चेचक) भी खासी भेंट ले लेती है। इस भावनाके मूलमें धर्म नहीं, जीवनके लिए मोह है, लालच है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि शीतलाके कोपको ठंडा करनेके लिए जो मन्नतें आदि की जाती हैं वे वहमकी वजहसे हैं, अतएव त्याज्य हैं।

अधिकांशमें यह साबित हो चुका है कि शीतला या चेचकका मूल गन्दगी है। जिसका खून कमजोर पड़ जाता है, उसे छूत भी लग जाती है। यह रोग, जितना माना जाता है, उतना भयंकर नहीं है। आरोग्य सम्बन्धी पुस्तकमें मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें परिवर्तन करनेकी कोई वजह मुझे मालूम नहीं पड़ी है। कई मामलोंमें निजी तजुर्बेसे मुझे पता चला है कि योग्य शुश्रूषासे यह रोग मिट जाता है। मरीजको हवा और उजाला मिलना ही चाहिए। उसके कपड़े हररोज बदले जाने चाहिए। अनेक चिकित्सोंका अनुभव है के जल-चिकित्सासे लाभ होता है। आजकल तो किरण-चिकित्साका भी प्रयोग किया जाता है। यहाँ मेरा हेतु चेचकके उपचार बतानेका नहीं हैं; प्रचलित अन्धविश्वासोंकी बुराई बताना, उनके प्रति डर कम करना और इस तरह उन्हें समाप्त करना ही है। इलाज तो किसी जानकार परोपकारी वैद्य या डाक्टरका कराना चाहिए; अथवा जल-चिकित्सा वगैराका ज्ञान प्राप्त करके स्वयं इलाजकी विधि समझ लेनी चाहिए।

चेचकको रोकनेके लिए टीकेका इलाज प्रचलित है, और आम तौर पर डाक्टर लोग उसे मानते भी बहुत हैं। कई स्थानोंमें वह अनिवार्य भी कर दिया गया है। मैं स्वयं इस बातमें विश्वास नहीं रखता। चेचकको रोकनेमें वह बहुत कम मददगार होता है। जहाँ रोग रुकता है वहाँ उसमेंसे दूसरे रोग पैदा हो जाते हैं। मेरा ज्यादातर विरोध धार्मिक है। टीकेका रसीला पदार्थ असंख्य पशुओंको त्रास देकर प्राप्त किया जाता है। जो निरामिषाहारी हैं, वे ऐसे रसका स्पर्श ही कैसे कर सकते हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। मगर जो टीका न लगवायें वे सफाईके नियम जान लें और उनका पालन करें; ऐसे मामलोंमें मेरे-जैसोंका अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। अविचारपूर्वक समाजके नियमका भंग नहीं किया जाना चाहिए। अगर भंग करना कर्त्तव्य ही जान पड़े तो, वैसा करनेसे होनेवाली कठिनाई भी सहनी चाहिए। अपने हठसे समाजको जोखिममें डालनेका किसीको अधिकार नहीं है। अतएव जो समाज टीकेमें विश्वास रखता है, उसमें चेचकको फैलने पर टीके पर विश्वास न करनेवालेको सफाई वगैराके नियमोंका पालन करते हुए भी स्वयं समाजसे अलग ही हो जाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-६-१९२९

९२. 'हिन्दू युवक' की विडम्बना

'एक हिन्दू युवक' नीचे लिखे अनुसार लिखते हैं:[1]

ये युवक महोदय डरपोक हैं; इसीसे नाम छिपाते हैं। नाम छिपानेवालेके पत्र पर ध्यान न देना अच्छा नियम है। मुझे नाम लिख भेजनेमें लजानेकी कोई बात न थी। बिना उनकी इच्छाके नाम प्रकट कर दिये जानेका कोई डर नहीं था। मगर कविका यह कथन सच है कि 'कायर बहुत बार बिना मौत ही मरते हैं।' रोगके भयसे जितने आदमी मरते हैं, खुद रोगसे उतने नहीं मरते। इस पत्रमें शर्मकी कोई बात न थी। शर्म बुरा काम करनेमें होती है, करके जाहिर करनेमें नहीं। इस सुवर्ण नियमको न समझनेके कारण ही हम घोर पाप करते हैं और पाखण्डको अपना लेते हैं। अतएव 'एक हिन्दू युवक'-जैसे लोगोंको डरसे ऊपर उठना चाहिए।

प्रस्तुत पत्र-जैसे पत्रमैं कभी-कभी छापता हूँ। क्योंकि गुमनाम होनेपर भी ऐसे पत्रकी बातें बहुतों पर लागू होती हैं। जो हालत इस युवककी है, वही अनेक हिन्दू युवकोंकी होती है। इसका मूल कारण जातिकी वर्तमान संकुचितता है, और है हिन्दू

१. पत्रका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने बताया था कि कम आमदनीमें उसे बड़े कुटुम्बका पालन करना पड़ता है। जातिमें विवाह योग्य कन्याओंकी कमी है। कन्या पानेके लिए पाँच-पाँच हजार रुपये तक देने पड़ते हैं; इसलिए उसे अपने विवाहकी आशा नहीं है। मनोवृत्तिके निराशापूर्ण हो जानेसे हृदयमें तरह-तरहके विचार उठते हैं। अपने कर्तव्यके विषयमें उसने गांधीजीसे सलाह माँगी थी।

समाजकी रूढ़िका गुलाम बना रहना। जहाँ रूढ़िको धर्मानुसारी होना चाहिए था, तहाँ धर्म रूढ़िका अनुसरण करने लगा है। जातिकी रूढ़िके खिलाफ किया गया काम अधर्म माना जाता है। मगर माना यह जाता है कि जातिमें चाहे जितने अधर्म होते रहें, तो भी चूँकि वह सर्वपावनी गंगा है, निर्दोष ही बनी रहती है और अधर्मको धर्मका रूप दे देनेकी उसमें शक्ति होती है। तिलक लगानेकी रूढ़ि वंश-परम्परासे चली आई है, अतएव वह धर्म है। जो तिलकको दम्भका निशान समझकर, पूर्ण विश्वासके साथ तिलक नहीं लगाता है, वह भ्रष्ट माना जाता है। इस तरह रूढ़िके गुलाम बननेसे हम कायर बन गये और आखिर देशसे भी हाथ धो डाले। एक क्षेत्रमें उत्पन्न गुलामी सर्वव्यापी बन गई।

आज जातिकी इन रूढ़ियोंको तोड़ना नवयुवकोंका कर्त्तव्य हो पड़ा है। मगर बहुतेरे नवयुवक कर्त्तव्य-पालनकी तरह नहीं, अपनी कमजोरीकी वजहसे जाति-बन्धनोंको मनसे या मौका मिलने पर गुपचुप तोड़ते हैं, और ऊपर-ऊपर ऐसा स्वाँग रचते हैं, मानों उनसे बँधे हुए हों। शास्त्र ऐसे व्यवहारको मिथ्याचार कहता है।

अतएव 'एक हिन्दू युवक' पर जो संकट आ पड़ा है, ऐसे संकटोंके समय वीरता दिखला कर रूढ़ि-रूपी वृक्षको काट डालनेकी जरूरत है। यह दृढ़ विश्वास हो जानेके कारण कि जाति की काल्पनिक या कृत्रिम शृंखलाएँ तोड़ी ही नहीं जा सकतीं, इन नवयुवकने विपरीत विचार किया है। उन्हें अपने इन्द्रिय-विषयोंके पोषणके लिए विवाह करना है। पैसा हो तो पैसा देकर भी वे कन्या खरीदनेको तैयार हैं, और साथ ही उसे विवाहका जामा पहना कर व्यभिचारकी पंक्तिमेंसे निकाल डालनेका आडम्बर रचनेको भी वे तैयार हैं। ऐसे रूढ़िग्राह्य व्यभिचारके न हो सकने पर, और दूसरे किसी आडम्बरके अशक्य होनेकी वजहसे उनका मन खुल्लमखुल्ला व्यभिचार करनेकी ओर दौड़ता है। उसपर जो थोड़ा अंकुश है भी, सो उसके इस भयके कारण कि उसकी बाहरी दिखावट झूठी न साबित हो जाये। अगर इनमेंसे कोई एक भी उपाय नहीं चल सके तो आखिर धर्मको भी छोड़ देनेका विचार उनके दिलमें आ सकता है। कायरताकी यह हद हो गई। जिसे धर्मका थोड़ा भी भान है, वह धर्मको छोड़ ही नहीं सकता। धर्म वस्त्रके समान पहना या उतारा नहीं जा सकता। धर्म देहसे भी ज्यादा बेशकीमती है। देह आवागमनसे बद्ध है; धर्म आत्माके साथ जुड़ी हुई वस्तु है; धर्म साफ-साफ यह सिखाता है कि वह कभी बदला जा नहीं सकता। धर्ममें जो गन्दगी, जो सड़न पैदा हो गई हो, वह दूर हो सकती है; पर धर्मका उच्छेद नहीं हो सकता। जिस धर्ममें वेद, उपनिषद्, पुराण इत्यादि लिखे गये हैं, जिसमें असंख्य मनुष्योंने मरणान्त तपश्चर्या की है, जिस धर्मके मनुष्योंकी हड्डियोंसे हिमाचल उज्ज्वल बना है, जिनके खूनकी खादसे हिमालयके वृक्ष और पुष्प फूले हैं, उस धर्मका त्याग क्योंकर हो सकता है? इस धर्मके सुधारकोंने ही रूढ़ि-रूपी वृक्षका नाश करके धर्मको तेजोमय बना रखा है। बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज, कबीर, नानक, चैतन्य, राममोहन, रामकृष्ण, दयानन्द, विवेकानन्द वगैराने रूढ़िका विरोध कर हमें रास्ता बताया है। इन सबने धर्मको छोड़ा नहीं था, उलटे धर्मको सुगंधित रखकर बुरी रूढ़ियोंको तोड़ा और धर्मकी रक्षा की थी।

ये लोग बड़े थे, इसलिए सुधारकके नाते प्रसिद्ध हो सके। हमें सुधारककी हैसियतसे नाम नहीं पाना है, बल्कि अपने नन्हें-से क्षेत्रमें, जहाँ अधर्म रूढ़िकी जगह हथिया कर राज्य कर रहा हो, अधर्मको पदभ्रष्ट करके अपनी धर्म-रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।

तो अब 'एक हिन्दू युवक' समझ लें कि :

१. विवाह व्यभिचारके पोषणके लिए नहीं है। विवाह स्त्री-पुरुषके बीच पवित्र प्रेमके पोषणका और वंशवृद्धिका साधन है। धर्ममें विवाहितोंके कामसे उत्तेजित होने पर मर्यादामें रहकर उसकी तृप्ति करनेकी रियायत है। इस रियायतका जितना कम उपयोग किया जाये, उतना ही अच्छा माना गया है। विवाहसे बाहर रहकर किया हुआ संग अथवा केवल कामतृप्तिके लिए दम्पतीका मनमाने तौर पर किया गया संग भी व्यभिचार ही है।

२. ऊपर कहे अनुसार विवाहके हेतुको संस्कृत बनाकर 'युवक' को स्त्रीकी खोज करनी चाहिए।

३. ऐसी खोज करते समय उसे प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि वह किसीको लोभ देनेके विचारसे एक कौड़ी भी खर्च नहीं करेगा।

४. ऐसी कन्या खोज देनेके लिए वह जातिसे प्रार्थना करे।

५. न मिलने पर जातिको सूचित करके वह अपनी जातिके वर्णमें कन्याकी खोज करे, और विश्वास रखे कि अगर उसमें योग्यता होगी तो उसे योग्य कन्या मिलेगी ही। अगर योग्यता नहीं है तो योग्य बननेकी कोशिश करे। ऐसा करनेसे उसकी कामवासना घटेगी और उसके लिए कन्याकी प्राप्तिमें धैर्यसे काम लेना आसान हो जायेगा।

६. उसी वर्णकी कन्या न मिले, तो इस जमानेमें जब कि वर्णधर्म शिथिल होकर नाममात्र रह गया है, किसी दूसरे मनचाहे वर्णकी कन्या प्राप्त करे।

७. अगर कुमारिका न मिले तो विधवासे सम्बन्ध करे।

८. अगर स्वयं जाति-सुधारकी हिम्मत रखता हो तो जातिकी कन्याके मिलने पर भी उपजातिके बन्धनोंको तोड़नेकी गरजसे अपने वर्णकी दूसरी जातिमेंसे ही कन्याको खोजनेका आग्रह रखे।

९. अगर विधवा-विवाह विषयक सुधार करनेकी उसकी हिम्मत हो, वह अपनेमें इतनी योग्यता रखता हो तो अपने वर्णकी या किसी दूसरे वर्णकी विधवाके साथ ही विवाह करनेका आग्रह रखे।

१०. आखिरकार यह निश्चय करे कि उक्त नौ प्रकारोंकी सभी शर्तोंको निभाते और रियायतोंसे लाभ उठाते हुए भी अगर कन्या न मिले तो उस हालतमें भी वह अपना धर्म नहीं छोड़ेगा, व्यभिचार नहीं करेगा।

इन नौ नियमोंकी मर्यादामें रहकर २२ करोड़ हिन्दुओंमेंसे कन्याका न मिलना असम्भव है। फिर भी अगर असम्भव सम्भव हो जाये तो धर्म न छोड़ने या व्यभिचारादि पाप न करनेकी हिम्मत और शक्ति तो प्रत्येक मनुष्यमें होनी ही चाहिए। जिसमें इतना भी नहीं है, कह सकते है कि वह मनुष्य नहीं है।

सम्भव है कि इन नौ प्रकारकी रियायतोंसे लाभ उठाते समय समाज बहिष्कार करे, माता-पिता नाराज हों, या विरासतका हक न दें या और अनेक तरहकी आपत्तियोंका सामना करना पड़े। जिसमें इन और ऐसी आफतोंके सहनेकी शक्ति नहीं है, उनके लिए यह लेख भी नहीं है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३०-६-१९२९

९३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

कौसानी
३० जून, १९२९

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। इस समय मैं हिमालय पहाड़ोंके एक एकान्त स्थलमें बर्फसे नहा रहे शिखरोंकी मालाके सामने बैठा हूँ। सारा समय बरामदेमें बिताता हूँ। यहाँ पर ही गीताके अनुवादको दुबारा देखनेका काम पूरा किया है। अब मित्र चाहेंगे तो वह छपेगा। न छपा तो उसकी नकल तुम्हें भेजूँगा या इस बीच यहाँ आओगे तो उसे देख पाओगे।

अब सीता नाम तुम्हारे मनको भाया है या नहीं? न पसन्द आया हो उसे छोड़ दिया जा सकता है। यदि ऐसा करो तो मुझे जरा भी दुःख न होगा। नाम रखनेका अधिकार तो तुम्हें ही है। बड़ोंकी सलाह पूछो, किन्तु करो अपने मनकी यही मैं चाहता हूँ। यदि तुम बालक होते तो बात दूसरी थी। यह बात फिरसे इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि नानाभाईने लिखा है सीता नामसे सुशीलाको दुःख होता है। दुःख करनेका तो तनिक भी कारण नहीं है। जहाँ मेरा आग्रह नहीं, वहाँ दुख किसलिए?

अब मारवाड़ी सम्बन्धके बारेमें मुझे याद नहीं कि मैंने मणिलालको बताया था कि नहीं; किन्तु यदि सुशीलाका नाता हमारे पास न आया होता तो मेरी सलाह एक सुशिक्षित बंगाली कन्याके साथ उसका सम्बन्ध करनेकी थी। तुम्हारे सम्बन्धमें ईश्वरका हाथ है। क्योंकि जिस तरह तुम दोनों एक-दूसरेसे घुल-मिल गये हो उस तरह उस बंगाली कन्याके साथ सम्भव होता या नहीं यह कौन जाने? किन्तु रामदासका विवाह करनेसे पहले ही मेरा विचार गुजरातसे बाहर जानेका था। हमारे लिए ऐसा करना जरूरी है। वैश्य जातिके अन्दर ही ऐसा करनेकी इच्छा जरूर थी। जो कृत्रिम प्रतिबन्ध आज हैं उनसे बहुत नुकसान हुआ है और अब भी हो रहा है। जो सम्बन्ध अभी किया है वह तुम्हारी तरह ही सफल होगा, ऐसी आशा है। इस सम्बन्धमें भी जमनालालजीका ज्यादा हाथ है। वर उन्होंने ही तलाश किया। उनके दूरके सम्बन्धियोंमेंसे है। नम्र है, शिक्षित है। रुखीसे मिल चुका है। रुखी और सन्तोककी

इच्छासे ही यह सम्बन्ध तय हुआ है। यह भी हिन्दुस्तानको एकताके सूत्रमें बाँधनेका एक रास्ता है। अब समझमें आया? गले उतरा?

सुशीला यहाँ आनेके लिए अधीर न हो। उसकी अपने कुटुम्बसे मिलनेकी इच्छा पूरी तरह समझमें आती है। किन्तु वहाँके कामके लिए रहना जरूरी लगे तो रह जाना उसका कर्त्तव्य है। मेरी सलाह तो यह है। किन्तु जैसे तुम दोनोंको ठीक लगे वैसे करना।

हाँ, यदि कौमको 'इंडियन ओपिनियन' की जरूरत न हो या घाटा पड़े तो चाहे जितनी जरूरत हो उसे बन्द कर देना चाहिए। किन्तु कौमको जरूरत नहीं, यह सिद्ध हो जाना चाहिए। घाटा पड़नेका कारण हमारी शिथिलता या मन्दता नहीं होना चाहिए। लेखोंमें कच्चापन नहीं होना चाहिए। शास्त्रीजीका आग्रह तो यही है कि अखबार बन्द नहीं होना चाहिए। जो कुछ भी करो, धीरजके साथ करो। टिकाये रखनेके लिए आवश्यक प्रयत्न करनेके बाद मित्रोंकी सलाह लेकर करो।

मेरे साथ देवदास, प्रभुदास, पुरुषोत्तम, कुसुमबहन बड़ी, जमनाबहन, खुर्शेदबहन और प्यारेलाल हैं। बा तो साथमें है ही। इस बार अच्छा साथ है। ब्रजकृष्णको तो भूल ही रहा हूँ।

अब शीतलाके बारेमें। मैं गोशीतला [चेचकके टीके]को ठीक नहीं मानता। वह गन्दी वस्तु है। गायके थनको सड़ा कर उसमेंसे रस निकालते हैं और हमारे शरीरमें डालते हैं। यह तो गोमांस खानेके बराबर है। वहाँ जेलमें यह प्रश्न उठा था। यहाँकी जेलमें भी उठा था। किन्तु अन्तमें किसीने मेरा साथ नहीं छोड़ा। इससे लाभ ही होता है, ऐसा भी नहीं है। गोशीतलाके विरोधियोंका मण्डल बढ़ता जा रहा है।

यदि तुमने करा लिया हो तो ठीक है। ऊपरके तो मेरे अपने विचार हैं। सामान्य रीतिसे तो सभी करा लेते हैं। तुम दोनों और गम्भीरतासे सोचो, ऐसी बातोंमें दिलचस्पी लो और उनका अध्ययन करके स्वतन्त्र मत बनाओ तब जो ठीक लगे वही करो।

अनरँधे अनाजके विषयमें मेरे प्रयोगोंके बारेमें तुमने 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया'[1] देखा होगा। अभी ठीक चल रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७५६)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "दीवाना", १३-६-१९२९।

९४. पत्र : नानाभाई मशरूवालाको

दुबारा नहीं पढ़ा

कौसानी

३० जून, १९२९

भाईश्री नानालाल,

तुम्हारा लिखा पत्र विजयालक्ष्मी और ताराने सुधार करनेके बहाने लेकर रोक लिया। इसके लिए माँ-बेटीको अनेकानेक धन्यवाद देना। मालवीयजीसे मुलाकात करनेका अवसर मिला था और जिस तरीकेसे मुलाकात हुई, उससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। खादीकी प्रगति हो तो अवश्य रही है किन्तु डर है, चीटीकी चालसे ।

सुशीला मणिलालको छोड़कर न आना चाहे तो उसे वहीं रहने देना ठीक लगता है। दोनों दूध-चीनीकी तरह एक दूसरेमें ओत-प्रोत हो गये हैं और प्रसन्न हैं, हमारे लिए तो इतना ही काफी होना चाहिए। मणिलाल अपने कर्त्तव्यका त्याग करके यहाँ भागता चला आये यह तो तनिक भी इष्ट नहीं है। और मैं तो मानता हूँ कि दूर देशोंमें गये हुए बच्चोंसे मिलनेका लोभ छोड़ देनेमें ही उनकी भलाई है। वे अपनी इच्छा और सुविधासे आयें, यह अलग बात है।

तारा नियमपूर्वक खादीकी फेरी करती है, यह मुझे तुम्हारा पत्र मिलनेसे पहले ही मालूम हो गया था।

सीता नाम पसन्द न हो तो जो पसन्द हो वही नाम रखनेके लिए मैंने दोनोंको लिखा था। अपने बच्चोंका नाम रखनेका अधिकार तो माँ-बापको ही होना चाहिए। बड़ोंसे पूछें तो वे सलाह दे दें।

रुखीकी सगाई मारवाड़ीसे करनेके बारेमें भी स्पष्टीकरण किया है। मुझे लगता है कि मर्यादामें रहते हुए हमें ऐसी छूट तो लेनी चाहिए। तुम्हें मैंने शायद बताया था कि नहीं, यदि सुशीलाकी बात न हुई होती तो मणिलालकी सगाई मैंने एक बंगाली कन्यासे करनेका निश्चय कर लिया था। इस प्रकार हमें जान-बूझकर गुजरातसे बाहर निकलना चाहिए, मुझे कई वर्षोंसे ऐसा लग रहा है।

प्रभुदास मेरे साथ आश्रम आयेगा। काका साहब उसे विद्यापीठमें लाना चाहते हैं, प्रभुदास उनका प्रिय शिष्य है।

हम ५ तारीख दिल्ली पहुँचेंगे और ६ को आश्रम।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ७५१८)की फोटो-नकलसे।

९५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

३० जून, १९२९

दुबारा पढ़ नहिं सका हुं।

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपके तीन पत्र मेरे सामने हैं। इस सृष्टिसौंदर्यसे भरे हुए प्रदेशमें एकान्त स्थलमें, बरफसे ढके हुए पहाड़ोंके सानिध्यमें रहनेका मुझे कोई अधिकार न था यदि मुझको कोई खास काम न रहता तो। खास काम था गीताके अनुवादकी सुधारणा जो वर्धेमें अधूरी रही थीं। मैं उसे एकांतमें ही पूरी कर सकता था। इस निमितको लेकर मैं यहाँ बैठ गया। इसलीये जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय दूसरा कार्य जितना मुलत्वी रख सकता था मुलत्वी कर दीया। इसलीये आपको उत्तर इसके पहले न दे सका। गीताका काम समाप्त हो गया है।

अब केशुके बारेमें। उसके पिताकी और मेरी आशा तो यह है कि केशु अंतमें आश्रमजीवन ही पसंद करेगा और खादीकार्यको अपना जीवन अर्पित करेगा। परन्तु उसपर किसी प्रकारका दबाव डालना मैं नहिं चाहता हुँ। अब तो उसको आपके सिपुर्द कर दीया है। जिससे उसका भला हो और जिसमें वह सम्मत होवे ऐसे सब काम उसके पाससे आप लें और उसको तैयार करें। आपका ही लड़का है ऐसा समझ कर उसको तैयार करें।

आपने बहोत नवयूवकोंको तैयार कीये हैं और बिरला पेढीके बहोतसे कामोंकी बुनियाद आप ही के हाथसे हुई है ऐसा मैंने सुना और मैंने माना है।

खादीके बारेमें मैं क्या कहुं? जब खादी बिक्रीमें आपकी बुद्धिका उपयोग करनेका मौका मीला तो खादी ही बिक गई। फिर भी भरावा तो होनेवाला है ही। तब आपकी शक्तिका उपयोग कर लुंगा। आज तो दूकान चले ऐसी चलने दो। 'बेमागी' खादीका यह तो अर्थ नहिं है ना कि मैंने बेइजाजत भेजी? अब प्रश्न पैदाइशका है। यह सच्च है और इसमें मुझको आपका उपयोग बहोत नहिं मील सकता है। उसकी कोशीश हर तरह हो रही है।

दुग्धालयका क्या हुआ?

मैंने उपवास नहिं कीया है। मृत्युको जबसे मैं परम मित्र समझने लगा हुं तबसे मैंने मृत्युके कारण उपवास बंध कर दीये हैं। मगनलाल और रसिकके मृत्युके समय भी उपवास नहिं कीया था। मृत्युकी अब चोट लगती ही नहीं है या कहो बहोत कम।

कच्चा खानेका प्रयोग चल रहा है।

[फैडिस्ट][1] का अर्थ गूजरातीमें धूनी हो सकता है। सनकी शब्दसे मैं अपरिचित हुं। चक्रम तो हरगीज़ नहिं चल सकता है।

'हिंदी नवजीवन'में आजकल मैं प्रति सप्ताह कुछ लीखनेका प्रयत्न करता हुं। यदि देखते नहि हैं तो देखीयो और वस्तु और भाषाके बारेमें कुछ सूचना देने जैसा लगे तो दीजिये।

आपका,
मोहनदास

[पुनश्चः]
में ५ जुलाईको दिल्ही पहोंचुंगा ६ट्ठीको आश्रम।

सी० डब्ल्यू० ६१७४ से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

९६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

कौसानी (हिमालय)
१, जुलाई १९२९

भाई कृष्णचन्द्र,

आपका पत्र मीला है।

स्वप्नदोषसे गभराहटका कुछ कारण नहिं है। जल चिकित्सा, व्यायाम, साफ हवा और निर्दोष खोराकसे और रामनामसे बंध हो जायेगा।

खानेमें दूध भारी लगे तो उस वखतके लीये छोड़ देना।

मसाला बिल्कुल नहिं खाना चाहीये। प्यास लगे तब पानी पीना, भूख लगे तब खाना। रोज कमसे कम दो घंटे घूमना आवश्यक है। भोजनके पहले अच्छा है। रात्री भोजन न करना अच्छा है। आरोग्यका मेरा पुस्तक पढ़नेसे मार्गदर्शक होगा। तेल छोड़ो। घी थोड़ा खाओ।

आपका
मोहनदास गांधी

जी० एन० ४२६० की फोटो-नकल से।

१. मूलमें यह शब्द अस्पष्ट है तथापि २४-६-१९२९ को छगनलाल जोशीको लिखे पत्रके आधारपर दिया गया है।

९७. पत्र : लीलावतीको

१ जुलाई, १९२९

चि० लीलावती,

तुम्हारा पत्र मिला है। जमनाबहनको पढ़ा दिया है। वह तो अब थोड़े दिनोंमें वहाँ आने ही वाली है। उसे मिलते रहना। पेरीनसे मिलती रहती हो और उसके काममें मदद करती हो, यह तो बहुत अच्छा है। हम जहाँ भी हों वहीं आश्रमके नियमोंका पालन कर सकते हैं। एक क्षण भी खाली न बैठें, मन और शरीरको निरन्तर अच्छे कामों और विचारोंमें लगाये रखें, तो विकार नहीं पैदा होते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ९३१५) की फोटो-नकलसे।

९८. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

१ जुलाई, १९२९

भाईश्री विट्ठलदास,

कृष्णदासके पत्रमें तुम्हारे बारेमें उसने जो लिखा था उसकी नकल इसके साथ भेज रहा हूँ। इसे भेजनेका अर्थ है कि तुम खादी बेचनेके शास्त्र पर वैसी एक पुस्तिका लिखो जैसी मगनलालने बुनाईके बारेमें लिखी थी।

मगनलाल स्मारकके बारेमें तुम्हारा पत्र मिल गया था। वह मेरे ध्यानमें है, किन्तु एकके बाद एक दूसरा काम आता रहा इसलिए उसके विषयमें मैं मौन रहा हूँ। घर-घर जाकर इसके लिए चन्दा इकट्ठा करनेकी इच्छा नहीं होती।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९७६८) की फोटो-नकलसे।

९९. पत्र : छगनलाल जोशीको

मौनवार [१ जुलाई, १९२९][१]

चि० छगनलाल,

तुम्हारे पत्र मिल गये हैं। यह पत्र शायद तुम्हें गुरुवारको मिलेगा। मैं शनिवारकी रातको पहुँचूँगा। इसलिए लिखनेके लिए है ही क्या।

आज भी मेरे सामने नंदा देवीका उजला शिखर और दूसरे छोटे पर्वत धूपमें जगमगा रहे हैं। यह दृश्य दिखानेके लिए तुम सबको यहाँ बुलानेकी इच्छा होती है। क्षण-भरके लिए विनोबाकी कल्पना-शक्ति उधार लेकर वहाँ बैठे-बैठे मेरे जैसा आनन्द लूट लो।

अपनी कमजोरीका ध्यान न करना। "मैं आत्मा हूँ। आत्मा कभी दुर्बल नहीं होती। मैं दुर्बल नहीं हो सकता।" मनमें ऐसा निश्चय करना। बीमारीका चिन्तन करनेवाला चारपाईसे नहीं उठता। छुट्टीकी तैयारी कर रखना।

गलियाराके उस पैसेका जिसे कठोरके आसपास खर्च करना है, क्या किया है? अपनी टिप्पणियोंमें इस विषयमें भी लिखकर भेजना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

सुरेन्द्र तो मेरे आनेसे पहले ही वहाँ परिचित हो चुकेगा। आज और पत्र नहीं लिख रहा हूँ। डाकका वक्त हो रहा है।

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो: श्री छगनालाल जोशीने पृष्ठ १२१

१००. पत्र : छगनलाल जोशीने

१ जुलाई, १९२९

चि० छगनलाल,

आजकी डाक जानेके बाद तुम्हारा पत्र मिला। अंजनीके बारेमें कुछ याद नहीं है। वहाँ और दूसरे स्थानों पर हो आओ और इस तरह थोड़ी भी थकावट कम हो जाये तो मुझे अच्छा लगेगा। तुम्हें थोड़ा-बहुत बाहर घूमना ही चाहिए।

गलियारासे आये २०००) रुपये काकाको सौंप देना। उन्होंने इस रुपयेको विद्यापीठकी मार्फत शिक्षा-कार्यमें लगानेका विचार किया है। उसमें महादेव और दूसरोंके भी रुपये डालनेको कहा था। बाकी सब बातें तो मुझे याद नहीं हैं।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

सुबैयासे पैसे लेने हैं, इसकी मुझे खबर नहीं थी। उसके वेतनमें से काट लेना चाहिए। उसे फौरन लिखकर पूछ लेना।

बहुत-से पत्र एक लिफाफेमें रखने हों तो उन्हें सिलसिलेसे धागेसे बाँध देना अच्छा होगा। धागा भी अच्छी तरह बाँधना चाहिए। पत्र काफी हों तो उन्हें किसी एक लिफाफेमें रखनेके बजाय कोरे कागज या अखबारमें लपेट कर, ऊपर कोरा कागज चिपका देना ज्यादा आसान और सस्ता है। लिफाफेमें ही भेजना जरूरी नहीं है। ठीक तरहसे बन्द करके वजनके हिसाबसे टिकट लगा देना-भर जरूरी है। तुम्हें सुझाव देनेके बाद मैं तो इसपर अमल करना शुरू कर ही दूंगा।

मुझे बहुत दिन पहले यह सूझा था; पर मैंने अमल नहीं किया।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४२४) की फोटो-नकलसे।

१०१. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

[१ जुलाई, १९२९ के बाद][1]

प्रिय जवाहरलाल,

हालका 'कांग्रेस बुलेटिन' पढ़ा। जिस मुख-पत्रके प्रकाशनका उद्देश्य कांग्रेसकी गतिविधियोंका विवरण देना-भर हो, मेरी समझमें उसमें यह वक्तव्य पूराका पूरा उद्धृत करना अस्थानीय हुआ। क्या यह किसी सरकारी गजटकी तरहकी चीज ही नहीं है? औचित्यकी दृष्टिसे भी मुझे मालूम हुआ है कि वह उनके वकीलों द्वारा तैयार किया हुआ वक्तव्य है। मैंने या तुमने जैसा सोचा था, यह उस तरहका उन लोगोंके हृदयसे निकला सीधा सच्चा उद्‌गार नहीं है।

और वे जो उपवास[2] कर रहे हैं, उसकी तुमने जो पैरवी और ताईद की है वह भी मुझे पसन्द नहीं आई। मेरी रायमें तो वह असंगत कार्य है; यदि उसमें कोई संगति है भी तो वह इस प्रकारकी ही है जैसे मक्खी मारनेके लिए किसी भारी हथौड़ेका इस्तेमाल करना। वैसे, यह तुम्हारे सोचने-विचारनेकी बात है।

मैं चाहता हूँ कि अध्यक्ष-पदके बारेमें तुम जल्द ही कोई एक निर्णय कर लो। यह संकोच क्यों? मेरा ख्याल था कि अलमोड़ामें तय हो चुका था कि यह ताज तुम ही पहनोगे। इस सिलसिलेमें संलग्न कागजात पढ़ लेना और फिर पिताजीको दे देना।

१. कांग्रेस बुलेटिनके दिनांक १ जुलाई, १९२९ के अंकमें प्रकाशित उस वक्तव्यके उल्लेखसे जो भगतसिंह और दत्तने असेम्बली बम केसके दौरान कचहरीमें दिया था।

२. भगतसिंह, दत्त और कुछ अन्य बन्दियों द्वारा जेलमें दुर्व्यवहारके विरोधमें किया गया उपवास।

आशा है कि कमला अच्छी होगी।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू कागजात, १९३०
सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय।

१०२. केलॉग समझौता

महिलाओंके अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं स्वतन्त्रता संघने हाल ही में आयोजित अपने सम्मेलनमें जो अपील जारी की थी वह २१ मार्चके 'यंग इंडिया' में छपी है। नीचे दिया जा रहा अनुच्छेद[1] उसीमें से है:

'युद्ध-परित्याग' समझौतेपर बहुतसे राज्योंने हस्ताक्षर कर दिये हैं। युद्ध-परित्यागकी घोषणाका तर्क-सम्मत निष्कर्ष केवल निःशस्त्रीकरण हो सकता है। भविष्यमें युद्धोंसे बचनेका एकमात्र उपाय यही है. . . .। 'यंग इंडिया' के कुछ पाठक इस केलॉग समझौतेकी प्रारम्भिक स्थितियोंसे अपरिचित हो सकते हैं। समझौते पर २७ अगस्त, १९२८ को पन्द्रह राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंने हस्ताक्षर किये थे और पाँच-छः महीने बाद संसार-भरके लगभग सभी राष्ट्रोंने इस समझौते पर अमल करनेके अपने इरादेकी घोषणा कर दी थी।

इसकी केवल दो अत्यन्त संक्षिप्त और सरल धाराएँ हैं। पहली धारामें हस्ताक्षर करनेवाले प्रतिनिधि अपने देशवासियोंकी ओरसे राष्ट्रीय नीतिके रूपमें युद्धका साधनके रूपमें परित्याग करनेकी घोषणा करते हैं। और दूसरी धाराके अधीन इन प्रतिनिधियोंने यह स्वीकार किया है कि वे अपनी किसी भी समस्याको, फिर वह किसी भी प्रकारकी क्यों न हो और उसके पैदा होनेका कारण कुछ भी क्यों न हो, शान्तिपूर्ण तरीकोंके अतिरिक्त अन्य किसी भी ढंगसे हल न करनेपर सहमत होते हैं। इस प्रकार यह समझौता बिना शर्त और स्पष्ट शब्दोंमें 'युद्धके परित्याग' का सूचक है . . .।

इस सबका भारतपर क्या प्रभाव पड़ता है। क्या उसकी गरीबी और उसकी पराधीनताने उसे शक्तिहीन राष्ट्र बना दिया है? मैं समझता हूँ, नहीं — इस दृष्टिसे कि नौजवान इस समझौतेका पूरा-पूरा आशय समझ सकें, स्कूलों और कालेजोंके अध्यापकोंको उनका मार्गदर्शन करना चाहिए। जब पढ़े-लिखे

१. अंशतः उद्धृत।

लोग इसके आशयको आत्मसात् कर लेंगे, तब यह किसी न किसी रूपमें रिस कर अनपढ़ोंके समाज तक भी पहुँच जायेगा और इससे वह वातावरण बन सकेगा जिससे आजाद हो जानेके बाद भारतकी नीति निर्धारणका आधार तैयार होगा . . .।

मैं एल० ई०के इस लेखको सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ और इस बातको माननेमें कोई कठिनाई महसूस नहीं करता कि अधिकांश हस्ताक्षर करनेवालोंकी नीतिमें प्रामाणिकताका सुस्पष्ट अभाव होने पर भी केलॉग समझौतेकी सम्भावनाएँ बहुत हैं। एल० ई०ने 'यंग इंडिया'को पत्र लिखनेवाले जिस सम्बन्धित संवाददाताका उल्लेख किया है उसके द्वारा समझौतेके सम्बन्धमें व्यक्त आशंकाको तो मैं भी पूरी तरह स्वीकार करता हूँ। किन्तु कुछ लोगोंके प्रयत्नोंमें प्रामाणिकताका अभाव मुझे अधिक परेशान नहीं करता। मेरी कठिनाई एल० ई० के सुझावके उस भागसे सम्बन्धित है जिसमें शान्तिका वातावरण विस्तृत करनेके लिए भारतके योगदानकी चर्चा है। परिस्थितिवश शान्ति स्थापनामें भारतका योगदान पश्चिमी राष्ट्रोंकी अपेक्षा भिन्न प्रकारका होगा। भारत स्वतन्त्र राष्ट्र नहीं है। और उसकी वर्तमान स्थितिसे यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि स्वतन्त्र होनेकी संकल्पशक्ति भी उसके पास नहीं है। समझौतेके सहयोगियोंमें अधिकांश वे लोग हैं जो एशिया और आफ्रिकाके निवासियोंके शोषणमें साझीदार हैं। भारतीय जनता इन सबसे अधिक शोषित है। इस तरह शान्ति समझौतेका मूल अभिप्राय संयुक्त रूपसे होनेवाले शोषण कार्यको निर्विघ्न चलते रहने देना हैं। कमसे कम इस समय तक तो समझौता मुझे ऐसा ही मालूम देता है। भारतने कभी किसी देश पर हमला नहीं किया। उसने एकाध बार केवल आत्मरक्षाके लिए असंगठित अथवा अर्ध-संगठित ढंगसे विरोध किया है। इसलिए शान्तिकी आकांक्षा विकसित करनेकी उसे आवश्यकता नहीं है। वह तो उसमें काफी है; उसे चाहे इसका भान हो, चाहे नहीं। अपने शोषणका शान्तिपूर्ण ढंगसे विरोध करके ही वह शान्तिकी स्थापनामें योगदान कर सकेगा। इसका यह अर्थ हुआ कि उसे शान्तिपूर्ण तरीकोंसे स्वतन्त्र होना चाहिए; इस वर्षकी हदतक हमने स्वतन्त्रताको औपनिवेशिक स्वराज्य कहा है। यदि यह सम्भव हो गया तो संसारमें शान्तिकी स्थापनाके लिए किसी भी राष्ट्रके द्वारा किया गया वह बड़ेसे बड़ा योगदान होगा। यदि मेरा निदान सही है तो एल० ई० स्कूलोंमें जिस प्रकारकी शिक्षा चाहते हैं वह तो प्रभावशून्य और इससे भी बुरी यानी पाखण्डपूर्ण होगी। इसे पढ़ानेकी बात अध्यापकोंके गले उतर जाये तो भी सम्बन्धित सिद्धान्त कक्षाके लड़के-लड़कियोंके गले कदापि नहीं उतर सकता। ऐसा व्यक्ति जिसने कभी मक्खीको भी नहीं सताया, कभी रक्तपात न करनेका निश्चय लेनेकी अपीलके उद्देश्यको नहीं समझ पायेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-७-१९२९

१०३. विवेकसे काम लें

कश्मीरसे एक नौजवान लिखता है :

> **कुछ दिनों पहले मैं कुछ भारतीय महापुरुषोंके चित्र लाया था। अब मैंने देखा कि ये सारे चित्र जर्मनीमें छपे हैं। मैं दुखी हो गया हूँ कि मैं ऐसी विदेशी वस्तु, जो अपने देशमें ही उपलब्ध है, खरीद लाया। जिन चित्रोंसे मुझे प्रेरणा मिल सकती थी, उन्हींसे अब मेरी भावनाओंको चोट पहुँच रही है। मेरे समान विचारवाले मेरे मित्र इन चित्रोंको जला डालनेकी सलाह देते हैं। लेकिन इसके लिए मेरी अन्तरात्मा इजाजत नहीं देती क्योंकि चित्र उन महापुरुषोंके हैं जिन्होंने देशके लिए अपना जीवन बलिदान किया है। मेरा अनुरोध है कि आप मुझे इस बारेमें सलाह दें। मैं 'यंग इंडिया' के माध्यमसे आपके उत्तरकी प्रतीक्षा करूँगा।**

इस नौजवानकी 'यंग इंडिया' के माध्यमसे मेरा उत्तर पानेकी इच्छा उचित है। मुझे प्रसन्नता है कि इस जवानकी अन्तरात्माने चित्रोंको जलानेसे रोका। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जर्मनीमें छपे इन चित्रोंको जलाना गलत था। लेकिन संसारमें मोटी समझ नामकी वस्तु भी तो है। बातको सानुपात समझ लेना ही मोटी समझ है। इस तरहकी छोटी-छोटी गलतियोंका प्रायश्चित्त केवल यही है कि हम और अधिक सावधान रहें, ताकि भविष्यमें ऐसी भूलें फिर न हों। अगर यह नौजवान और इसके मित्र अपने भीतर झाँकें तथा अपने आसपासको भी समझें तो उन्हें और भी बड़ी विषमताएँ और विदेशी वस्तुएँ अपने पास ही अथवा अपने चारों ओर मिलेंगी। वे परिष्कारका प्रारम्भ करें, सबसे बुरी विदेशी वस्तुके उपयोगके बहिष्कारसे। बाकी सब चीजें तो स्वयंमेव सध जायेंगी। यहाँ भी मित्रोंको मोटी समझसे काम लेना चाहिए और समझना चाहिए कि विदेशी शब्दको बहुत व्यापक अर्थ देना होगा। ऐसी कोई भी वस्तु जो अन्तरात्माको हानि पहुँचाती है, विदेशी है। क्या यह सत्य नहीं है कि हम गुड़ तो खाते हैं पर गुलगुलोंसे परहेज करते हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-७-१९२९

१०४. मिलें और स्वदेशी वस्त्र-बहिष्कार

यों तो इस सम्बन्धमें मैं पहले भी लिख चुका हूँ फिर भी लोग मुझसे यह सवाल बराबर पूछते रहते हैं कि मैं बहिष्कारमें शामिल होनेके लिए देशी मिलोंको आमन्त्रित क्यों नहीं करता। कुछ यह भी पूछते हैं कि मिलें इस आन्दोलनमें क्या भाग ले रही हैं? कुछ लोग यह भी जानना चाहते है कि कांग्रेसके कार्यकर्त्ता खादीके साथ-साथ मिलके कपड़ोंका भी प्रचार करके उन्हें उत्तेजन क्यों न दें?

आइए, पहले आखिरी सवालपर विचार करें। प्रश्न उठानेवालोंको याद रखना चाहिए कि कांग्रेसके प्रस्तावमें बहिष्कारको खादीके द्वारा ही सिद्ध करनेकी बात कही गई है। इसके विशेष और शक्तिशाली कारण हैं। पिछले ५० वर्षोंसे मिलोंको जो अवसर मिलता आ रहा है, उसमें वे विदेशी वस्त्रका बहिष्कार नहीं कर सकी हैं; और जो मिलें इस समय हैं, अभी बहिष्कारका उनके द्वारा सफल होना असम्भव है। देखते ही देखते नई मिलें खड़ी नहीं की जा सकतीं। अतएव अगर बहिष्कारको सफल बनाना है तो यह खादीके जरिये ही हो सकता है। मिलके कपड़ोंके साथ-साथ खादीकी प्रगति नही की जा सकती। दुःखके साथ यह तो कुबूल करना ही पड़ेगा कि जो विशाल जन-समाज अपनी बुद्धिसे तनिक भी काम लेना नही जानता, वह तो मौका पाकर अधिक सस्ता और सुलभ मिलका कपड़ा ही खरीदेगा; खुरदरी, महँगी मालूम होनेवाली और बड़े परिश्रमसे मिलनेवाली खादी नहीं। इससे नतीजा यही निकलता है कि जिस क्षेत्रमें कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंका प्रभाव पड़ सकता है, यह क्षेत्र अभी बहुत विस्तृत नहीं हुआ है,—वहाँ उन्हें मिलके कपड़ेकी गुंजाइशकी बात भूलकर खादीका ही प्रचार करना चाहिए।

इसके बाद मैं दूसरे प्रश्न पर आता हूँ। हमें इतना तो समझना ही चाहिए कि केवल खादीका प्रचार करनेसे उसकी देशी मिलके कपड़ेके साथ स्पर्धा नही बढ़ती। मिलवालोंकी इच्छा हो या न हो; मिलें बहिष्कार-आन्दोलनमें महत्वपूर्ण भाग ले रही हैं। विदेशी कपड़ेके मुकाबले जन-साधारणमें मिलका कपड़ा अधिक खपता है। भारतके कोने-कोनेमें मिलोंकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एजेन्सियाँ काम करती ही रहती हैं। एक प्रतिष्ठित मिल-मालिकने नीचे लिखी जो बात मुझे कही थी, वह बिलकुल ठीक थी: "हमें तो आपकी मददकी जरूरत ही नहीं है। हम ऐसी जगहोंमें भी अपना दखल जमा लेते हैं, जहाँ शायद आपकी आवाज तक नहीं सुन पड़ती। अगर आप हमारे कपड़ेका प्रचार करने लगेंगे तो उससे उसकी माँग बढ़ेगी और हम उस माँगको पूरा नहीं कर सकेंगे; नतीजा यह होगा कि आपके कारण हमें कपड़ेका भाव बढ़ानेका लोभ होगा।" जब मैंने उनसे कहा कि हम तो खादी द्वारा ही बहिष्कारकी बात कर रहे हैं, तो इसके विरुद्ध उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने तत्काल स्वीकार किया कि अगर विदेशी कपड़ेका स्थान ले लेने योग्य खादी पैदा की

जा सके और वह लोकप्रिय हो जाये, तो बहिष्कार सम्भव है। जिस तरह ये मिल-मालिक हमारे विचारोंसे सहमत हुए, उसी तरह और भी अनेक मिल-मालिक हमसे सहमत हैं। अगर कांग्रेस के कार्यकर्त्ता मिलके कपड़ोंको खपानेका काम करने लगें तो बहिष्कारमें रुकावट पैदा हो, और इस अविचारपूर्ण कार्रवाईके फलस्वरूप मिलोंको आखिर नुकसान ही उठाना पड़े। पाठकोंको समझना चाहिए कि आन्दोलनके बार-बार असफल होनेसे निराशा बढ़ती है, और किसी दिन ऐसा हो सकता है कि लोग कपड़ेकी खरीदीके सम्बन्धमें विचार करना ही छोड़ दें। ऐसे समय तो चाहे जैसी जोखिम उठाकर भी हमें आन्दोलनको नाकामयाबीसे बचाना चाहिए। जहाँ-जहाँ मनके प्रमाद और अपूर्णताके कारण होनेवाली भूलोंकी जोखिमसे बचा जा सकता है, वहाँ-वहाँ उससे बचना चाहिए। विदेशी कपड़ोंका व्यापारी जन-साधारणकी उदासीनताके बलपर अपना उल्लू सीधा कर लेता है। जिस दिन लोग बुद्धिसे काम लेने लगेंगे उस दिन बहिष्कारके सफल होनेके सम्बन्धमें कोई शंका नहीं बच रहेगी। देशी मिलें अपना काम कर रही हैं, यही नही बल्कि कांग्रेसकी सहायताके बिना भी वे बहिष्कार-आन्दोलनसे पूरा-पूरा लाभ उठा रही हैं।

अब मैं पहले प्रश्न पर आता हूँ। मिल-मालिक चाहें तो वे बहिष्कार-आन्दोलनकी भरपूर मदद कर सकते हैं। उनसे पिछले साल पण्डित मालवीयजी, पण्डित मोतीलालजी और मैंने सक्रिय मदद पानेका प्रयत्न किया था। लेकिन वह निष्फल हुआ। इसका कारण शायद यह हो कि जिस आन्दोलनको सरकारका समर्थन न हो, या जिसे सरकार मन ही मन नापसन्द करती मालूम पड़ती हो, मिल-मालिकोंके लिए उसमें कांग्रेसके ढंगसे शामिल होना स्वभावतया ही अशक्य था। इनमें से बहुतेरे तो सरकारी प्रभुत्वमें रहनेवाले बैंकों पर निर्भर रहते हैं। फिर भी अगर देशमें ऐसी मिलें हों, जो सरकारकी ओरसे डाले गये, चाहे जैसे छिपे हुए दबावके खिलाफ काम कर सकती हों, तो वे आन्दोलनमें नीचे लिखे ढँगसे प्रत्यक्ष हाथ बँटा सकती हैं:

१. वे अपनी एजेंसियों द्वारा खादी बेच सकती हैं;

२. वे बहिष्कार-आन्दोलनको अपनी बुद्धिका लाभ दे सकती हैं;

३. बहिष्कारकी दृष्टिसे वे अखिल भारत चर्खा-संघके साथ विचार-विमर्श करके यह तय कर सकती हैं कि कौन-सा कपड़ा तैयार करना और कौन-सा नही;

४. वे खादीका नाम देकर या किसी दूसरे ढंगसे मिलकी खादी बनाना बन्द कर सकती हैं;

५. कपड़ेका भाव इस तरह निश्चित कर सकती हैं कि जिसमें न तो उन्हें नुकसान ही हो और न वे बहुत मुनाफा ही कमायें;

६. फिर वे बहिष्कारके काममें आर्थिक सहायता दे सकती हैं।

इन छः मुख्य बातोंमें से और भी कई दूसरी बातें निकाली जा सकती हैं। किन्तु मिलें इस तरहकी मदद तो तभी कर सकती हैं, जब मिल-मालिकों और उनके भागीदारोंके हृदयमें देश-प्रेमकी आग जलती हो और वे मुनाफेकी कोई सीमा बाँध लें। मुझे विश्वास है कि अगर भागीदारोंके सामने सचाईसे मुद्देकी बातें पेश की जायें

तो वे कभी ऐतराज नहीं करेंगे। वास्तवमें निश्चय तो पूंजीपतियोंको ही करना चाहिए। एक सज्जनने मुझसे कहा था: "जब हमें विवश होकर आना पड़ेगा तभी हम आयेंगे, उससे पहले नहीं।" शायद यह सच हो।

एक बात और। पाठकोंको समझना चाहिए कि मिलोंके हिन्दुस्तानकी जमीन पर खड़ी होने-भरसे ही वे देशी नहीं कही जा सकतीं। ऐसी अनेक मिलें हैं, जो नाममात्रके लिए देशी है। उनके मालिक, व्यवस्थापक और भागीदार, सभी विदेशी होते हैं। उनकी व्यवस्था और भागीदारीमें भारतीयोंको पास नहीं फटकने दिया जाता। उनकी कमाईका अधिकतर हिस्सा विदेशोंमें चला जाता है। मजदूरोंको जो थोड़ी बहुत मजूरी मिलती है, बस वही भारतमें रह जाती है। अगर ऐसी मिलें देशी हैं, तब तो सरकार भी देशी कही जा सकती है। ये बहिष्कारमें कभी सहायक नहीं हो सकतीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-७-१९२९

१०५. हिंसाका सर्वस्व नाश करो

राजा महेन्द्रप्रताप एक बहुत बड़े देशभक्त हैं। इस सज्जन पुरुषने निर्वासित बने रहनेको ही अपना भाग्य मान लिया है। उन्होंने वृन्दावनकी अपनी सुन्दर जागीर शिक्षा-कार्यके लिए समर्पित कर दी है। वृन्दावनका प्रेम-महाविद्यालय, जो आजकल आचार्य जुगलकिशोरजीकी अध्यक्षतामें चल रहा है, इन्हींकी सृष्टि है। मेरे साथ राजा साहबका अकसर पत्र-व्यवहार रहा है। पर उन पत्रोंको मैंने प्रकाशित नहीं किया। किन्तु उनके सबसे ताजा लेखको छापे बिना मेरा जी नहीं मानता है। पत्र यों है:—

> मानव-जातिका मित्र और जन्मतः आपका देशवासी होनेके नाते मेरी इच्छा है कि आप अपने प्रतिष्ठित पत्रमें मेरे निम्नलिखित विचार प्रकाशित करनेकी कृपा करें।
>
> अहिंसा क्या है?
>
> "मैं अपनेको अहिंसाका सच्चा अनुयायी मानता हूँ। मगर अपने पक्षको स्पष्ट करनेके लिए इस शब्दकी व्याख्या कर देना जरूरी है। और जब मैं यह कहता हूँ और जोर देकर, कि कई लोग, जो अपने आपको इस पवित्र शब्दका पुजारी मानते हैं, इसका भाव तनिक भी नहीं समझे हैं, तब तो और भी जरूरी हो जाता है कि मैं इसकी व्याख्या कर दूँ।
>
> 'अहिंसा' का अर्थ, जैसा मैं समझता हूँ, यही है कि मन, वचन और कर्मसे किसीके दिल या शरीरको चोट न पहुँचाई जाये। फिर भी इस सिद्धान्तके

लिए इतना ही काफी नहीं है। अहिंसाके अनुयायीको उन सभी परिस्थितियोंको बदलना पड़ता है, जिनमें हिंसा होती हो, या जिनमें उसका होना सम्भव हो। जब कोई आदमी किसीकी हिंसाको सह लेता है या उसमें सहायता देता है, तब मैं उसके कार्यको अहिंसा नहीं, निकृष्ट प्रकारकी हिंसा कहता हूँ।

आज भारतमें ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो अहिंसाके नामपर सुन्दर-सुन्दर व्याख्यान दे डालते हैं, मगर अंग्रेजोंकी हिंसाका अन्त करनेके लिए कुछ नहीं करते। मैं कहता हूँ कि ऐसे सभी व्यक्ति उस अपराधको कराने तथा उसे सहायता पहुँचानेके अपराधी हैं, जिसे अंग्रेज भारतमें भूखों, निर्बलों और असहायों पर किया करते हैं।

इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि हमारे महान् नेता गांधीजी में भारतीय राष्ट्रकी सेवा करनेकी आन्तरिक अभिलाषा है। फिर भी मुझे भय है कि बिना किसी जोशीले और सक्रिय कार्यक्रमके समर्थनके सिर्फ उन्हींके ढंगसे काम करनेसे लोग सुखी नहीं हो सकते।

मैं गांधीजीके खादी आन्दोलनकी बड़ी सराहना करता हूँ और उसका हृदयसे समर्थन करता हूँ। हमारे जन-समाजकी आर्थिक दशामें वह किसी बड़ी हदतक सुधार करे या न करे—क्योंकि इस समय समाजमें कई नई-नई शक्तियाँ काम कर रही हैं—फिर भी यह तो हर हालतमें मानना ही पड़ेगा कि मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे खादी-आन्दोलनका विचार प्रशंसनीय है। वह लोगोंको सादगीकी दिशा बतलाता और उनमें एक हदतक एकताकी भावना जागृत करता है।

मगर मुझे कहना चाहिए कि हमें तो इससे कहीं ज्यादाकी जरूरत है। अहिंसाकी सच्ची भावनासे प्रेरित होकर हमें हिंसाकी प्रतीक तमाम ब्रिटिश संस्थाओंका सत्यानाश करना है।

सारे राष्ट्रको एक होकर इस ध्येयके लिए कोशिश करनी चाहिए। आइए हम सब मिलकर शीघ्र ही ब्रिटिशोंकी भारतमें, न केवल भारतमें बल्कि सारे विश्वमें व्याप्त पशुताका अन्त कर दें। हरएक भारतीय अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार अपना कर्त्तव्य पालन करे। अहिंसाकी सच्ची भावनाकी रू-से मैं अपने विचार जबरन किसीपर लाद नहीं सकता। हाँ, हरएक स्वयं अपना कर्त्तव्य निश्चित कर ले। मैं तो सिर्फ उस शाश्वत सत्यकी ओर इशारा-मात्र कर सकता हूँ और वह यह है कि विधाता निःसन्देह प्राणिमात्रका हित चाहता है—प्रत्येक स्त्री और पुरुषका—प्रत्येक मानव-मात्रका। अगर कोई मनुष्य या जाति स्वार्थसे प्रेरित होकर काम करती है, दूसरोंको सताती है तो अवश्य ही वह अपने गुणोंका दुरुपयोग करती है और विधाताकी इच्छाके विरुद्ध जा रही

है। मैं सिर्फ यह कहता हूँ कि, आइए, हम सब व्यक्तिशः हिंसाका नाश करनेकी भरसक कोशिश करें। यही सच्ची अहिंसा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-७-१९२९

१०६. खुद कातनेवालोंसे

अखिल भारतीय चरखा-संघके सदस्यों और उन सब सज्जनोंको, जो अपना हाथ-कता सूत चन्दे या दानके तौरपर भेजते हैं, चाहिए कि अपना सूत तैयार करने और पैक करके भेजनेमें बड़ी सावधानीसे काम लें। हम इस बातकी उपेक्षा न करें कि हाथ-कते प्रत्येक गज सूतसे देशकी सम्पत्तिमें उतनी वृद्धि होती है। दक्षिण आफ्रिका में मैंने व्यापारियोंको कई बार चावल और दूसरे अनाजके निर्खको पैनीके १/३२ वें हिस्से तक बताते देखा है। तीक्ष्ण बुद्धिवाले यूरोपीय व्यापारी इस बातको भली-भाँति जानते थे कि जैसा कि व्यापारमें हमेशा होता ही रहता है, चावलकी हजारों बोरियों का सौदा होनेपर यही भिन्नाँक अनन्त गुनी हो जाते हैं। अगर हम भी वही पैनी दृष्टि रखकर सोचें तो हम एक गज हाथ-कते सूतके महत्वको महसूस करेंगे और सोचेंगे कि जब ३० करोड़ हाथ एक-साथ सूत कातने लगेंगे तब उसकी कितनी जबर्दस्त कीमत होगी। यह भी याद रखना चाहिए कि प्रत्येक गज सूतकी कीमत उसकी बारीकी, समानता और मजबूतीके अनुपातमें बराबर बढ़ती रहती है। दूसरे, चूँकि अलग-अलग भेजी गई सूतकी लच्छियोंकी कीमत बहुत थोड़ी होती है, जहाँतक हो सके सूतके भेजने-भिजवानेमें मार्ग-व्ययको बचानेकी कोशिश करनी चाहिए। अतएव जो एजेंसियाँ सूतका चन्दा और दान इकट्ठा करनेका काम करती हैं, वे सूतके उचित वर्गीकरण और विवरणके विषयमें सावधान रहें तथा केन्द्रीय कार्यालयमें ऐसे सूतको निश्चित समयपर ही भेजा करें। अच्छेसे-अच्छे कार्यकर्त्ता भी इस बातको बहुत कम महसूस कर पाये हैं कि चरखेका सन्देश राष्ट्रीय जीवनमें सम्पूर्ण क्रान्तिका सन्देश है। इस सन्देशको सफलतापूर्वक लोगोंतक पहुँचानेका अर्थ है, एक ऐसे राष्ट्रका निर्माण, जो सुगठित, सुसंगठित, सम्पूर्ण नियमित, आत्म-संयमी, आत्म-निर्भर, स्वाभिमानी, उद्यमी और उन्नत है, एवं जिसका एक भी उद्यमी और कार्य-तत्पर सदस्य भूखों नहीं मरता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-७-१९२९

१०७. एक अभागिन पुत्री

भारतवर्षमें जिन्हें मैं जानता हूँ और जिन्हें नहीं भी जानता, ऐसी बहुत-सी पुत्रियाँ हैं। उनमें से एकने 'अभागिनी पुत्री'के उपनामसे पुष्करसे मुझे एक पत्र लिखा है। उसे मैं अक्षरशः नीचे देता हूँ।[1]

जो हाल लक्ष्मीदेवीका है, वही भारतवर्षमें बहुत-सी हिन्दू कन्याओंका होता है। बेचारी कन्या कुछ-कुछ जानने लगती है और खेलने तथा पठन-पाठनके योग्य होती ही है कि स्वार्थी और धर्मान्ध माता-पिता उसे संसार-सागरमें ढकेल देते हैं। जैसा विवाह लक्ष्मीदेवीका किया गया है, वह धर्म-विवाह कभी नहीं माना जा सकता। धर्म-विवाहमें कन्याको यह ज्ञान होना चाहिए कि विवाह कहाँ किया जा रहा है, विवाहके लिए उसकी सम्मति लेनी चाहिए, विवाहसे पहले यथासम्भव कन्याको, जिस नवयुवकके साथ उसका अचल सम्बन्ध होनेवाला है, उसे देखनेका मौका मिलना चाहिए। लक्ष्मीदेवीके साथ ऐसा कोई भी व्यवहार नहीं हुआ है, दूसरे, उसकी उम्र इतनी छोटी थी कि वह विवाहके योग्य ही न थी। इसलिए उसे इस सम्बन्धसे इन्कार करनेका, प्रस्तुत विवाहको विवाह न समझनेका सम्पूर्ण अधिकार है। इस दुःखद किस्सेमें इतना अच्छा है कि लक्ष्मीदेवीकी माता उसका साथ दे रही हैं। उन्हें मेरी ओरसे धन्यवाद। लक्ष्मीदेवीके पितासे मेरी प्रार्थना है कि वह अधर्मको धर्म मानकर अपनी पुत्रीके मार्गमें कोई रुकावट न डालें। मुझे उम्मीद है कि लक्ष्मीदेवीने जिस वीरता और विनयके साथ प्रकाशित किये जानेके इरादेसे यह पत्र लिखा है, उसी वीरता और दृढ़ताके साथ वह अपने निश्चयपर कायम रहेगी, और जो नवयुवक उसका पाणिग्रहण करना चाहता है, उसके साथ पवित्र सम्बन्धमें बँधेगी। मैं यह भी आशा करता हूँ कि वह सेवाकी अपनी प्रतिज्ञापर कायम रहेगी। वे कन्याएँ, जो बुरी रूढ़ियोंको ठुकराकर नया मार्ग ग्रहण करती हैं, और मेरी धर्म-पुत्री बनना चाहती हैं, उन्हें चाहिए कि वे कभी विनय, विवेक, सत्य और संयमको न छोड़ें। क्योंकि स्वेच्छाचारसे और विनयादिकी मर्यादाका भंग करनेसे वे दुःखी होंगी, मैं लज्जित होऊँगा, और वे दूसरोंके लिए कभी मार्गदर्शक नहीं बन सकेंगी। ऐसी कन्याओंमें सीताके समान मर्यादा, नम्रता, पवित्रता और द्रौपदीके समान वीरता और तेजस्विता अत्यावश्यक है।

सुकन्याओंको याद रखना चाहिए कि उन्हें भारतवर्षमें स्वराज्य — रामराज्य — स्थापित करनेमें पुरुषोंके साथ-साथ काम करना है और स्त्रियोंकी दुःखद स्थितिको सुधारना तो उन्हींका विशेष धर्म है।

हिन्दी नवजीवन, ४-७-१९२९

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखिकाने बताया था कि उसके माता-पिताने उसका विवाह एक ऐसे व्यक्तिसे कर दिया था जिसके पहलेसे ही एक परित्यक्ता पत्नी थी। अपने ससुरालकी संस्कृति-हीनताका वर्णन करते हुए उसने पुनर्विवाहकी अपनी इच्छाके साथ समाज-सेवाकी इच्छा भी व्यक्त की थी।

१०८. विदेशी खाँड और खादी

मेरठ जिलेसे एक सज्जन लिखते हैं:[1]

. . . मैं ३०–३२ आदमियोंके एक कुटुम्बमें से हूँ। यह कुटुम्ब बाप-दादोंके जमानेसे खँडसालका काम करता आया है। मुझे आशा है, खँडसालसे आप मेरा मतलब समझ गये होंगे; काश्तकारोंसे कच्ची राब खरीदकर उसकी खाँड बनाना खँडसाली कहलाता है। इसमें कोई मशीन वगैराकी मदद नहीं ली जाती; लेकिन अब पिछले कई सालोंसे विदेशी खाँड आ जानेसे और मशीनकी बनी खाँडकी वजहसे हम लोगोंको बहुत नुकसान हो रहा है। यानी हम इतना भी नहीं जुटा पाते कि मजदूरी ही ठीक-ठीक पड़ जाये। जब कि कपड़ेके बाद खाँडमें देशका बहुत-सा रुपया विदेशोंमें चला जाता है, आप खाँडके बारेमें बिल्कुल ही खामोश क्यों रहते हैं? हम लोगोंकी समझमें नहीं आता कि क्या करें। घरमें हम सबोंकी औरतें, जैसा पहलेसे रिवाज है, सूत कातती हैं और वह सूत मजदूरी देकर बुनवा लिया जाता है; मगर वह बहुत थोड़ा होता है और ज्यादातर सूत मोटा होनेकी वजहसे दरी, दो-तहे लिहाफ, बिछौने या ज्यादासे-ज्यादा उनके कुर्ततक बनवा पाते हैं। . . .आपसे हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ कि क्या बाप-दादोंके रोजगार यानी खँडसालको बिलकुल छोड़ दें और सूत कातने लगें? यह हाल हमारे गाँवमें करीब-करीब दस या बारह घरानोंका है। . . .

मुझे दुःखपूर्वक कहना पड़ता है कि यदि खँडसालका धन्धा नुकसानमें चलता है तो उसे छोड़ देना चाहिए। खाँडके बाहरसे आनेको रोकनेका कोई तरीका आज मेरी नजरमें नहीं आता। खाँड अनावश्यक वस्तु है। उससे बहुत-सी व्याधियाँ पैदा होती हैं। परन्तु उसका मोह कैसे छूटे? आज भारतवर्ष जितनी खाँड खाता है, उतनी तैयार करनेकी शक्ति उसमें नहीं है। फिर एक तो घरमें बनी हुई खाँड बहुत महँगी पड़ती है, दूसरे वह उतनी सफेद भी नहीं होती और लोग उसे खरीदते नहीं हैं। यह उद्योग खादी-आन्दोलन जैसा नही है, जिसके लिए लोगोंमें सफलतापूर्वक आन्दोलन किया जा सके। स्वदेशी खाँडके प्रचारसे भी खँडसालोंको लाभ नहीं पहुँच सकता। इसलिए इस धन्धेमें जिन्हें मुनाफा न मिले वे इसे छोड़ दें।

तो फिर किया क्या जाये? मेरी दृष्टिसे तो खँडसालीकी जगह बुननेका काम करना अच्छा होगा। कातनेसे आजीविका नहीं मिल सकती। बुननेसे आजीविका अवश्य मिल सकती है। और खादी-प्रचारके कारण बुननेका काम बढ़ता ही रहेगा।

१. अंशतः उद्धृत।

अब रहा प्रश्न लेखकके कुटुम्बमें खादी-प्रचारका। थोड़े ही प्रयत्नसे कुटुम्बीजन महीन सूत कात सकते हैं। महीन सूत कातकर जैसे महीन कपड़े पहनने हों पहने जा सकते हैं। यदि कुटुम्बका प्रत्येक मनुष्य एक घंटा कताईके लिए निकाल ले तो साड़ी, धोती इत्यादि सब कपड़े केवल बुनाईके दाम देनेपर बन जायेंगे। यदि बुनाईका काम कुटुम्बमें ही प्रवेश पा जाये तो और अधिक लाभ होगा।

हिन्दी नवजीवन, ४-७-१९२९

१०९. पत्र : रिचर्ड बी० ग्रेगको

४ जुलाई, १९२९

प्रिय गोविन्द,

मैं आपको पत्र लिखनेमें आपके समान नियमित नहीं रह सका हूँ। इसका कारण 'यंग इंडिया' है। वैसे तुम मेरे मनमें बने ही रहते हो।

तुम्हारे पत्र पानेके बहुत पहले ही मुझे तुम्हारे विवाहके बारेमें एन्ड्रयूजने एक पंक्ति लिख दी थी और मुझे मालूम हो गया था। तुमसे मुझे इसका बहुत सुन्दर विवरण मिला। मैं तुम्हारे और तुम्हारे साथीके सुदीर्घ एवं सुखद, सेवाभावी जीवनके लिए कामना करता हूँ। तुम्हारा और श्रीमती ग्रेगका आश्रममें स्वागत है; तुम लोगोंके आनेसे बड़ी प्रसन्नता होगी। उनको तुम्हारे सभी भारतीय संगी-साथियोंसे मिलना तो चाहिए ही।

भोजन सम्बन्धी वह किताब मुझे मिल गई है। वह मुझे कुछ खास नहीं जँची। तुमने 'यंग इंडिया' में मेरे हाल ही के प्रयोगके[1] बारेमें पढ़ा होगा। प्रयोग तो अभी चल ही रहा है। मगर मैं अभीतक इस सम्बन्धमें किसी निश्चित परिणामकी खबर नहीं दे सकता।

मैं अभी-अभी अलमोड़ाकी पहाड़ियोंसे उतरकर मैदानमें आया हूँ। हिमालयकी ठंडी पहाड़ियोंमें आरामके साथ मैंने काम-काजको भी जोड़ लिया था। हमें बर्फीली चोटियोंका मनमोहक दृश्य देखनेको मिला। जब कभी आसमान साफ होता था, चकाचौंध पैदा कर देनेवाले बर्फसे ढँकी मानो अर्धचन्द्राकार रंगभूमि हमारी आँखोंके सामने होती थी।

आशा है अब तुम पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो।

तुम दोनोंको स्नेह,

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ४६६४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "दीवाना", १३-७-१९२९।

११०. पत्र : नारायणदास मलकानीको

[५ जुलाई १९२९के पूर्व][1]

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिला। गुजरात और तमिलनाडकी गतिविधियोंसे सम्बन्धित अपने विचार मुझे अवश्य लिखें और साथ ही आश्रम जिस तरह चल रहा है उसके बारेमें भी अपने विचार लिखें। वहाँ तुम काफी समयसे हो। अबतक तुम्हारी कोई राय बन चुकी होगी।

अगर सिन्धमें कपासका काम चलाना सम्भव नहीं है तो तुम ऊन-उद्योग चला सकते हो। अगर सिन्ध सचमुच विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार करना चाहता है तो उसे यज्ञार्थ अथवा कहिए, स्वयं कातना होगा। सभी प्रान्तोंको यह समझ लेना चाहिए कि खादीके बिना विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार असम्भव है। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि हम अपनी जरूरतके लायक पर्याप्त कताई स्वयं कर लिया करें। इस दिशामें तकली सबसे सरल चीज है।

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च:]

मैं छः तारीखको साबरमती पहुँचूँगा।

अंग्रेजी (जी० एन० ८९२) की फोटो-नकलसे।

१११. इसमें आश्चर्य ही क्या ?

दशक्रोई और धोलका ताल्लुकोंमें लगान और तकावी वसूलीके सिलसिलेमें किये गये जुल्मोंके बारेमें आये हुए पत्रोंका जो सार भाई महादेवने भेजा है, पाठक उसे अन्यत्र देखेंगे। पत्रोंका सारांश देनेसे पहले उन्होंने लिखा है कि वह ऐसा मानते थे कि बारडोलीकी घटनासे सरकार सचेत हो गई होगी। मगर ऐसा माननेका कोई कारण न था। बारडोलीकी लड़ाईसे सरकारकी राजनीति नहीं बदली है। बारडोलीके किसानोंकी हिम्मतके आगे सरकार झुकी जरूर है। जहाँ-जहाँ बारडोली-जैसी हिम्मत होगी, तहाँ-तहाँ सरकार झुकेगी। जब दशक्रोई और धोलका ताल्लुकोंके किसानोंको स्वाभिमानका पाठ पढ़ाया जायेगा, तब कोई भी उनका बाल बाँका नहीं कर सकेगा।

१. पत्रपर ५-७-१९२९ की तिथि पड़ी है। जान पड़ता है यह तिथि पत्रके प्राप्त होनेपर डाल ली गई थी।

अन्यत्र दिये हुए संक्षिप्त बयान सच ही हैं या नहीं, इस पर मैं यहाँ विचार करना नहीं चाहता। अगर उनमें कोई अतिशयोक्ति है, तो सरकारी अधिकारी उसे सुधारें, जो सुधार वे भेजेंगे, मैं उसे छापनेके लिए तैयार रहूँगा। मगर मैं इतना तो जानता हूँ कि संक्षिप्त बयानोंमें उल्लिखित जुल्मोंसे भी ज्यादा जुल्म हुए हैं, होते हैं, अतएव ऐसे अत्याचार किये भी गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

इस लेखका उद्देश्य तो यही बताना है कि सैकड़ों बारडोलियोंके होते हुए भी जहाँके लोग डरपोक बने रहेंगे, वहाँ अत्याचारी भी मिलते ही रहेंगे। यह दूसरी बात है कि अत्याचारी सरकारी व्यक्ति हैं या गैर-सरकारी। गैर-सरकारी जुल्म भी लोगोंको कुछ कम नहीं सहने पड़ते हैं। अतएव स्वयंसेवकोंका कर्त्तव्य है कि वे सर्व-साधारणको हिम्मतका पाठ सिखायें। लोगोंको चाहनेपर भी सर्वत्र वल्लभभाई-जैसे सरदार तो मिल नहीं सकते। इसलिए सभी स्वयंसेवकोंको वल्लभभाईके गुण सम्पादन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। उनके-जैसी बुद्धि सबको नहीं मिल सकती; मगर उनकी-सी हिम्मत तो जो चाहे वही प्राप्त कर सकता है और उनकी तरह आठों पहर जागरूक भी जो चाहे वही रह सकता है। अगर ये दो बातें हों तो बस है।

लोग देते रहेंगे, तबतक सरकार लगान वसूल करती ही रहेगी। अगर सरकार 'वर मरे, कन्या मरे, गोरका[1] घर भरे' वाली बातका अनुसरण न करे तो उसका राज्य न चले। सरकारका अलिखित नियम तो यही है कि लोग मरें या जियें, लगान तो वसूल किया ही जाना चाहिए। यह या ऐसे अन्य अलिखित नियमोंको धो-पोंछनेका दूसरा नाम स्वराज्य है। लगान या कर सल्तनतकी सत्ताकी बुनियाद है। जनताकी दृष्टिसे यह बुनियाद ही झूठी है। एक नहीं अनेक बार यह साबित हो चुका है कि जो लगान वसूल किया जाता है, उसे जमा करनेकी लोगोंमें ताकत नहीं है। मगर जिस पद्धतिसे राज्यतन्त्र चल रहा है, उसे निबाहनेके लिए तो जितना कर वसूल किया जाता है वह भी नाकाफी है। अतएव अधिकारी दिन-रात इसी विचारमें अपनी बुद्धि खपाते रहते हैं कि लगान कैसे बढ़ाया जाये। प्रजाके हाथमें सत्ता आ जानेपर भी अगर यही रफ्तार रही तो इतना ही लगान वसूल करना पड़ेगा और रियाया पर ऐसे ही जुल्म होते रहेंगे। इसीसे मैं पुकार-पुकार कर कह चुका हूँ कि इस पद्धतिको बदलना स्वराज्यकी एक व्याख्या है। इस पद्धतिको पलटनेके लिए, जो लगान अन्यायपूर्ण साबित हो चुका है, उसे जमा न करनेकी कला लोगोंको सीखनी पड़ेगी। यानी अभ्यास और अनुभवसे यह सिद्ध करना पड़ेगा कि लगान अन्यायपूर्ण है, इतने पर भी अगर घर-बार बिक जायें, जेल जाना पड़े या दूसरे उपद्रव किये जायें तो भी अन्यायपूर्ण लगान जमा न करनेके निश्चयपर अटल रहना चाहिए।

मगर आम रियायाको यह चीज कौन सिखाये? स्वयंसेवकगण विभिन्न गाँवोंमें जमकर बैठें, गाँववालोंकी सेवा करें, उनका विश्वास सम्पादन करें, उनके सुख-दुःख जानें, उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थितिका अभ्यास करें और धीरे-धीरे अपनी हिम्मतकी छाप उनपर डालें। अगर बारडोलीमें पहलेसे ही ऐसा काम न हुआ होता,

१. उपाध्याय-पुरोहित।

स्वयंसेवक वहाँ जाकर पहलेसे न बसे होते, तो वल्लभभाईकी लासानी सरदारी बेअसर साबित होती। कोई सरदार बिना साधनोंके कभी नहीं लड़ सका है। सरदारके हथियार होते हैं सिपाही — सेवक। भाई महादेवने जिन जुल्मोंका संक्षिप्त विवरण भेजा है, वैसे जुल्म तो जगह-जगह होते ही रहते होंगे, मगर हमें उनका कोई विवरण नही मिलता। तमाम परेशानियोंकी जड़ एक होती है और उसका इलाज भी एक ही होता है। देखनेमें भले ही दोनों अलग-अलग मालूम पड़ते हों, मूलकी जाँच करने पर एक ही दिखाई पड़ेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-७-१९२९

११२. 'नवजीवन'को बड़ा करनेके बारेमें

मैंने 'नवजीवन'में सामयिक समाचार देनेके बारेमें एक 'नवजीवन'-प्रेमीके जो विचार प्रकाशित[1] किये थे उसके सम्बन्धमें बहुत-से लोगोंका मत प्राप्त हुआ है। उनमें से एक नगर-निवासी 'नवजीवन'-प्रेमीने यों लिखा है:[2]

इससे विपरीत ही एक विचार ग्रामवासी 'नवजीवन'-प्रेमीने इस प्रकार व्यक्त किया है।[3]

दोनोंके विचार मुझे ठीक लगते हैं। दोनों जुदा-जुदा दृष्टिकोणोंसे व्यक्त किये गये हैं। इस प्रश्नको हल करनेका एक तरीका यह है कि मैं 'नवजीवन'के ग्राहकोंका नाम-धाम देख लूँ और ज्यादा ग्राहक शहरके हैं या गाँवके, यह देख लूँ। किन्तु इस प्रकारका निर्णय करनेसे पहले और भी पाठकोंके विचार जाननेकी जरूरत है। इसलिए यह आशा करता हूँ कि जिन्हें इस चर्चामें दिलचस्पी है, वे मुझे अपना मत लिख भेजेंगे।

सम्भव है कि बहुत-से ग्राहक ग्रामवासी हों और वे खबरें पाना चाहते हों। तो भी ऐसा कहाँतक किया जा सकता है, इसपर मुझे विचार तो करना ही पड़ेगा। यहाँ इतना लिखनेकी जरूरत तो इसलिए है कि पाठक यह न समझ लें कि खबरें देनेके विचारसे आकार तो बढ़ाया ही जायेगा। 'नवजीवन' अधिकसे अधिक पाठकोंके लिए उपयोगी हो यह प्रयत्न तो निरन्तर किया ही जा रहा है। किन्तु उसे अपने विचारों और स्वराज्य प्राप्तिका मार्ग बनाना कहाँतक सम्भव और योग्य है, यह कोई छोटी-मोटी बात भी नहीं है। 'नवजीवन'के मुख्य उद्देश्यको किसी भी प्रकार

१. देखिए "**नवजीवनके** बारेमें सुझाव", २३-६-१९२९।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकका सुझाव था कि **नवजीवन**का आकार-प्रकार पहले जैसा बना रहे। परन्तु उसमें गांधीजी अपना ही एकाध लेख और दिया करें।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने **नवजीवन**का आकार बढ़ाने तथा उसमें वर्तमान समाचार देनेके विचारका समर्थन किया था।

हानि न हो, इसका ध्यान रखना मेरा पहला कर्त्तव्य है। मूल मर्यादा मुझे प्रिय है। और उसे बनाये रखनेका प्रयत्न मुझे वृथा नहीं लगता। समाचार देनेके प्रयत्नके विषयमें शंका तो रहती ही है। किन्तु मैं 'नवजीवन' प्रेमियोंके पाससे प्रकाश माँगता हूँ। खबर देनेकी माँग विचारशील प्रेमीकी है। मैं उसे एकदम गई-गुजरी बात नहीं मान सका। वे भी यह चाहते हैं कि दूसरे पाठक सोच-विचारकर मत बनायें और लिखकर भेजें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ७-७-१९२९

११३. तात्कालिक असर

मैंने बलसाड़के भंगियोंकी दुर्दशाके बारेमें ठक्करबापाका पत्र[1] छापा था। उसे पढ़कर बलसाड़के उत्साही युवक तुरन्त काममें जुट गये और नगरपालिकाको जागृत किया। इस सम्बन्धमें जो कदम उठाये हैं उनके बारेमें यात्राके दौरान मुझे ताल्लुका समिति, राष्ट्रीय सेवा मण्डल आदिकी तरफसे पत्र मिले थे। इस आन्दोलनके परिणाम-स्वरूप जो प्रस्ताव नगरपालिकामें पास किया गया, उसका जो विवरण मेरे पास आया है, उसमें से मैं नीचेके उद्धरण दे रहा हूँ:[2]

नगरपालिकाने इस प्रकार भंगी भाइयोंके लिए सुविधा कर देनेका जो प्रस्ताव किया उसके लिए तथा जिन सेवकोंने मेहनत की उनको मैं धन्यवाद देता हूँ। मैं यही आशा करता हूँ कि यह उत्साह ठण्डा नहीं पड़ेगा। वे जबतक भंगी भाइयोंके हृदयमें प्रवेश कर उनकी मद्यपानकी लत नहीं छुड़ा देते तबतक चैन न लें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ७-७-१९२९

११४. उत्कलके कंकालोंमें

श्री जीवराम कल्याणजी कोठारीकी उदारतासे 'नवजीवन' के पाठक अनभिज्ञ नहीं हैं। केवल अपना धन देकर उन्हें सन्तोष नही हुआ। उन्होंने अपना तन और मन खादी-कार्यको अर्पित कर दिया है। वे चौबीसों घंटे उसका ही विचार करते थे। इससे भी सन्तोष नहीं हुआ तो शरीरको भी उसी काममें लगानेका निश्चय करनेके बाद अन्तमें उन्होंने इस कामको करनेके लिए सबसे गरीब और खादीकी दृष्टिसे सबसे कठिन प्रान्त ढूँढ़ निकाला। उन्हें जो समृद्धि प्राप्त हुई है वह मजदूरोंसे ही हुई

१. देखिए "बलसाड़के भंगियोंकी दुर्दशा", ९-६-१९२९।

२. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। बलसाड़ नगरपालिकाने अस्पृश्योंके लिए कुएँ खोदने और उनके लिए छप्पर बाँधने और शाला खोलनेके लिए पाँच-पाँच सौ रुपए खर्च करनेका प्रस्ताव पास किया था।

है इसलिए मजदूरोंको बदला देनेके विचारने उनके हृदयमें घर कर लिया और अन्तम इसके अनुसार अब वे कोई एक वर्ष हो गया उत्कलमें काम कर रहे हैं। उनकी धर्मपत्नी भी उनके साथ है और अब कराचीकी विधवा-सेविका पूरबाई भी वहाँ पहुँच गई हैं। उनके साथ मगनभाई नामके एक सज्जन भी हैं और दूसरे सहयोगी हैं घनश्याम शाहू नामके एक व्यक्ति। मेरी माँगपर उन्होंने टूटी-फूटी किन्तु मधुर भाषामें अपने कामका ब्यौरेवार विवरण कलकत्तामें दिया था। उसे सावधानीसे पढ़-समझकर उसके बारेमें एक लेख मैंने आन्ध्र देशकी यात्राके दौरान लिख भेजा था। किन्तु यह महत्वपूर्ण लेख डाकमें गुम हो गया और अभीतक हाथ नहीं आया। अब भाई जीवरामका दूसरा पत्र आया है; उसमें इस समय जो काम चल रहा है, उसका थोड़ा-बहुत वर्णन है। इससे पाठकोंको कुछ अनुमान हो जायेगा, इसलिए मैं इसे नीचे दे रहा हूँ।[1]

मैंने इस पत्रकी भाषामें बहुत फेरफार नहीं किया है। मैंने कई बार देखा है कि ऐसे पत्रोंकी भाषामें फेरफार करनेसे उनका रस कम हो जाता है। मैं तो समझता हूँ कि मैंने व्याकरण आदिके छोटे-मोटे जो सुधार किये हैं, उससे भी रस कम तो हुआ ही है। इससे भाई जीवरामका अभिप्राय तो स्पष्ट हो ही जाता है। उनके पत्रमें जो परिवर्तन हुए हैं वे अवान्तर हैं। सामान्य पाठक बातको न समझें और एकदम अपरि-मार्जित भाषा पढ़ते हुए वे ऊब न जायें इस भयसे मैंने भाषामें कुछ परिवर्तन करनेका प्रयत्न किया है। झूठी चमक-दमक, ऊपरी टीम-टाम हमपर इस तरह हावी हो गई है कि खरी वस्तुपर भी जबतक मुलम्मा नहीं चढ़ाया जाता, हम उसकी कद्र नहीं करते। बिना धुली किन्तु टिकाऊ और सहज परखी जा सकनेवाली खादीके बदले लोग धुली हुई, माँड लगी हुई, उजली खादी ज्यादा पैसा देकर खरीदते हैं और भूल जाते हैं कि यह खूब धोई-फींची खादी दूसरी खादीसे एक तो कमजोर होती है और फिर [माँड चढ़ा देनेके कारण] अच्छी-बुरी खादीकी पहचान करना कठिन हो जाता है। ऐसा ही इन पत्रोंके बारेमें भी है; किन्तु इस विषयपर ज्यादा नहीं लिखूँगा।

भाई जीवरामके कामका मूल्यांकन करनेमें पत्रके सुधारोंसे बाधा नहीं पड़ी है।

भाई जीवराम और उनके-जैसे जो सेवक कठिन प्रदेशमें कठिन काम कर रहे हैं उन्हें मेरी सलाह है कि वे कभी निराश न हों, परिणाम ईश्वरके हाथमें हैं; काम करना ही हमारा धर्म है। काम और साधनकी योग्यताके बारेमें हमें शंका न हो तो हम उसके पीछे मर मिटें, पर उसे छोड़ें नहीं। महान कार्यमात्र पृथ्वी पर इसी प्रकार होते आये हैं। जहाँ भाई जीवराम रहते हैं, वहाँ अन्तरानन्दके सिवा रहनेका एक भी प्रलोभन नहीं है। जलवायु खराब है; दूध, घी आदिकी कोई सुविधा नहीं है या लगभग नहीं है। जुदा भाषा है। लोग अपनी इच्छासे नहीं किन्तु बाह्य परिस्थितिके कारण आलसी हैं। वहाँ चरखेके लिए बिल्कुल वातावरण नहीं है। ऐसी

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा: पत्रमें कताई सीखनेपर बहनोंका आलस्य और डर किस प्रकार जाता रहा है, इसका वर्णन था।

स्थितिमें – ऐसी कठिनाइयोंमें रहना तो वही पसन्द कर सकता है जिसके हृदयमें प्रेम भरा है और जिसे अपने कर्त्तव्यके विषयमें सम्पूर्ण श्रद्धा है।

भाई जीवराम ऐसी कठिनाइयाँ सहन करते रहे हैं। वे लोगोंमें धीरे-धीरे चरखा शास्त्रका ज्ञान उँड़ेलें और लोग वहीं चरखा बनायें, सूतका अंक निकालना, रुईकी पहचान करना सीखें और पिंजाईकी सूक्ष्म क्रियाओंको समझें। इच्छा और प्रयत्नके सामने कुछ भी असम्भव नहीं।

भाई जीवरामका उदाहरण बहुत-से युवकोंके लिए अनुकरणीय है – खासकर धनिक वर्गके युवकोंके लिए। धनिक वर्ग अपना धन देकर ही सन्तोष न माने; किन्तु तन और मन भी अर्पित करे। जितने मनोयोगसे वे अपना व्यापार करते हैं उतने ही मनोयोग और श्रमसे इस कामको भी करें तो खादी प्रचार बहुत तेजीसे आगे बढ़े। जिन्हें भी अनुभव हुआ है, वे जान गये हैं कि करोड़ों कंकालोंमें जागृति लानी हो, उनकी सेवा करनी हो, उन्हें सुखी बनाना हो तो उसके लिए चरखा ही एकमात्र प्रधान साधन है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ७-७-१९२९

११५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

८ जुलाई, १९२९

प्रिय सतीश बाबू,

कितने दुःखकी बात है कि आप इतनी जल्दी दूध त्यागनेके प्रयोगपर उतर आये। यह स्पष्ट है कि गोपाल रावकी आशावादिता और अनुमान सतही है। मेरा स्वास्थ्य तो स्वयं पनपता ही जा रहा है। गेहूँ नहीं, गिरी नहीं, दाल नहीं; शुद्ध फलाहारसे मेरा वजन ११½ पौंड बढ़ गया है। अलमोड़ामें थोड़ा बुखार आ जानेके कारण मैंने अनाज और गिरीका उपयोग छोड़ दिया था। इससे मुझे कोई हानि नहीं हुई, फायदा ही हुआ। परन्तु मैं समझता हूँ कि अपने पिछले अनुभवोंके बलपर मेरा यह सब करना ठीक है। मीराबहन अंकुरित गेहूँ, चना और कुछ फल तथा कच्ची सब्जियाँ लेती हैं और उसका स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है; यह इसलिए कि वह दूध और घीका प्रयोग भी करती है। आप भी ऐसा ही कर सकते हैं। अगर दूध और घीका त्याग न किया जाये तो कच्चे अनाजके प्रयोगमें कोई बुराई नहीं है। अधिकांश सम्बन्धित साहित्यमें यही सूचित किया गया है। दूधरहित आहारके प्रयोगोंकी सफलताका अभीतक दावा नहीं किया जा सकता है। इसलिए फिलहाल तो तुम्हें दूध और घीका प्रयोग करते रहना चाहिए। कृपया इसमें जल्दबाजी न करें।

आपका,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० १६०६) की फोटो-नकलसे।

११६. पत्र : प्रभावतीको

मौनवार [८ जुलाई, १९२९][१]

चि० प्रभावती,

हम आरामसे शनिवारकी रात आश्रम वापस पहुँच गये। मेरा वजन दो रतल बढ़ गया है। अभी बिना पकाया भोजन ही ले रहा हूँ। खाँसी दूर हो गई या नहीं? जयप्रकाशके आनेमें देरी है। इसलिए मैंने राजेन्द्रबाबूसे कहा है कि वे तुम्हें यहाँ वापस भिजवा दें तो 'गीता' और अंग्रेजीका और अभ्यास करा दूँ। यदि पिताजी आज्ञा दें और इच्छा हो तो तुरन्त आ जाना। मुझे तो अच्छा लगेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३४७)की फोटो-नकलसे।

११७. अलमोड़ाके अनुभव

आतिथ्य

जब किसी पर हर जगह गहरा प्रेम प्रकट किया जाता है और उसकी बड़ी फिक्र की जाती है, तब उस प्रेम और चिन्ताकी अलग-अलग कीमत आँकना मुश्किल हो जाता है। मैंने सोचा था कि इस विषयमें आन्ध्रदेशकी बराबरी कोई न कर सकेगा। लेकिन आन्ध्रके बाद शीघ्र ही अलमोड़ामें जो अनुभव प्राप्त हुए उन्होंने मुझे इस धारणामें परिवर्तन करनेको विवश कर दिया। अलमोड़ा किसीसे पीछे नहीं रहा। मेरी हिमालयकी सुन्दर पर्वतमालाओंकी इने-गिने दिनोंकी यात्राको अलमोड़ाके मित्रोंने अधिकसे-अधिक सुखकर बनानेमें कोई बात उठा नहीं रखी थी। एक बातमें वे आन्ध्रसे भी बाजी ले गये। उन्होंने, अनेक थैलियोंके रूपमें जो चन्दा इकट्ठा हुआ था, उसमें से स्वागतका खर्चा नहीं काटा। मोटरका तमाम जबरदस्त खर्च कुछ मित्रोंने खानगी तौरसे उठा लिया। समितिने उन लोगोंका खर्चा उठाना भी मंजूर नहीं किया, जो मेरे साथ यात्रामें होते हुए भी कर्मचारियोंमें से नहीं थे, और जो अपना खर्च स्वयं दे सकते थे। आखिरी निर्णयके तौरपर यह कह दिया गया था कि "अगर देना ही है तो खादी-निधिके लिए जो चाहे सो दिया जा सकता है।" अलमोड़ाके उदार आतिथ्यका बखान यहीं समाप्त कर देना अच्छा है। इन पहाड़ियोंपर प्रकृतिके आतिथ्यके आगे मनुष्यकी सारी आतिथ्य भावना पानी भरती है। हिमालयका मनमोहक सौन्दर्य, सुखद जलवायु और आँखोंको आनन्द पहुँचानेवाली चारों ओरकी हरियालीको

१. गांधीजीके बिना पकाये भोजनके प्रयोग और आश्रम वापस पहुँचनेके उल्लेखसे।

देखकर मनुष्यको ऐसा लगता है कि सब-कुछ भर पाया। मुझे नहीं लगता दुनियाके सुन्दरतम स्थानोंमें इन पहाड़ियोंके दृश्यों और आबोहवासे बढ़कर या इनके मुकाबिलेके भी कोई दूसरे स्थान होंगे। अलमोड़ाकी पर्वतमालाओंमें तीन सप्ताहसे अधिक रह चुकनेके बाद, मुझे उन लोगोंकी बात सोचकर पहलेसे अधिक हैरत होने लगी है, जो स्वास्थ्य-सुधारके लिए विदेशोंकी यात्रा करते हैं।

अस्पृश्य कौन है?

अस्पृश्यता सहस्र फनोंवाला एक सर्प है और जिसके एक-एक फनमें विषैले दाँत हैं। इसकी कोई परिभाषा सम्भव ही नहीं है। उसे मनु या अन्य प्राचीन स्मृति-कारोंकी आज्ञासे भी कुछ लेना-देना नहीं है। उसकी अपनी निजी और स्थानीय स्मृतियाँ हैं। मसलन, अलमोड़ामें एक जातिकी जाति, जिसका धन्धा तथाकथित सनातन धर्मके अनुसार भी एकदम निर्दोष है, अछूत मानी जाती है। उस जातिके लोग शिल्पी किसान कहे जाते हैं। बोरा नामक एक दूसरी जातिकी भी यही दुर्दशा है; यद्यपि वह न मुर्दार माँस खाती हैं, न शराब पीती हैं, और न सफाई या स्वच्छताके नियमोंकी उपेक्षा ही करती हैं। परम्पराने उन्हें अछूत बना दिया है। हिन्दू-धर्म, जो किसी बातपर सोचता ही नहीं है, आँखें बन्द करके ऐसी परम्पराओंका निर्वाह करता चला जाता है और फलस्वरूप लोग उसकी जैसी हँसी उड़ाई जानी चाहिए वैसी और उससे भी अधिक हँसी उड़ाते हैं। सुधारक इस बुराईसे लोहा लेनेकी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन मेरे विचारमें हिन्दू-धर्मको इस कलंकसे मुक्त करनेके लिए और भी अधिक जोरदार और उग्र उपायोंसे काम लिया जाना चाहिए। हम व्यर्थ ही कट्टरताका हृदय दुखानेसे डरते हैं। अगर अपने जमानेमें ही हम इस बुराईका अन्त देखना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि हम निडर बनें। जो इसके लिए जवाबदेह हैं, अस्पृश्यताका यह भूत उन लोगोंके सरपर तो चक्कर काटता ही रहता है। अलमोड़ामें चौके-भोजनके वक्तकी छूतछातने गहरी जड़ जमा ली है, यहाँतक कि जातियों और उप-जातियोंसे आगे बढ़कर हरएक व्यक्ति अछूत बन गया है। चौकेकी बुराईका राज्य प्रेम-विद्यालय-जैसी राष्ट्रीय संस्थापर भी अपना असर डाले हुए है। पूछनेपर जब यह पता चला कि विद्यालयके ट्रस्टियोंमें से कोई भी चौकेकी प्रथामें विश्वास नहीं करता है, मगर केवल इस डरसे कि कहीं बच्चोंके माता-पिता उन्हें विद्यालयमें भेजना बन्द न कर दें, इस कुप्रथाकी खुलकर बात नहीं की जाती तब मुझे कुछ आश्वासन मिला।

नायक

जिस तरह दक्षिणमें एक फिरकेके लोग अपनी कन्याओंसे लज्जाजनक जीवन बितवाते हैं और उन्हें देवदासी कहा जाता है, उसी तरह अलमोड़ामें भी नायक नामकी एक जाति है, जो बिना किसी अन्य नामके अपनी कन्याओंसे पापमय जीवन बितवाती है। वह अपने कार्यको अपना धर्म कहती है और उसका समर्थन करती है और इस तरह लड़कियोंके साथ-साथ धर्मको भी कीचड़में घसीटती है। यदि परमात्माके परिवर्तनहीन और अपरिवर्तनीय जीवित किसी नियमके स्थानपर अगर

कोई सनकी व्यक्ति होता तो अवश्य ही केवल क्रोधमें आकर उसने उन लोगोंका खात्मा कर दिया होता जो धर्मके नामपर उसका और उसके नियमोंका निरादर करते हैं। सर्वेंट्स ऑफ इन्डिया सोसाइटी (भारत-सेवक-समाज) नायक माता-पिताओंसे मिलकर उन्हें इस बातके लिए राजी कर रही है कि वे अपनी कन्याओंको पतित बनानेके पापसे बाज आयें। मगर तरक्कीकी रफ्तार अभी धीमी है, क्योंकि लोकमत अभी सोया हुआ है और मनुष्यकी वासनाएँ पापका दुनियावी पुरस्कार तो देती ही रहती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-७-१९२९

११८. विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार

यह समिति अपना कार्य बड़े व्यवस्थित ढंगसे कर रही है। विधानसभा और विधान परिषद्के सदस्योंके नाम कांग्रेस अध्यक्षके पत्रके बाद समितिने उक्त सदस्योंको बहिष्कार और खादीसे सम्बन्धित साहित्य भेजा है ताकि वे अपना कार्य कर सकें। समाचारपत्रोंके सम्पादकोंके नाम पत्रमें, अन्य बातोंके अलावा, उनके इस स्पष्ट कर्त्तव्यकी ओर ध्यान दिलाया गया है कि वे विदेशी वस्त्र और शराबके विज्ञापन न लें। अब देखना है कि इस अपीलका कितना प्रभाव पड़ता है और लोग किस हदतक इसपर अमल करते हैं। पाठकोंको याद रखना चाहिए कि प्रत्येक माहका पहला रविवार विशेष रूपसे बहिष्कार-कार्यमें लगाना है। इस कामके लिए अगला दिन ४ अगस्त पड़ेगा। कांग्रेस कमेटियोंके नाम जारी गश्ती-पत्रमें दस सूत्र रखे गये हैं:

१. बड़े शहरोंसे बाहर दौरे करनेके लिए प्रचार-दलोंका संगठन;

२. घर-घर जाकर लोगोंको विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारके लिए तैयार करना;

३. जहाँ घर-घर जाकर प्रचार-कार्य चलाना सम्भव न हो, आम सभाएँ आयोजित करना;

४. प्रत्येक सप्ताहमें, जितनी बार हो सके, खादीकी बिक्रीके लिए फेरी लगाना;

५. जहाँ आवश्यक हो, बिक्रीके लिए एक छोटा खादी-भण्डार स्थापित करनेके लिए चन्दा इकट्ठा करना;

६. सप्ताहमें प्रति बुधवार और रविवारको सड़कों पर प्रचार और नगर कीर्त्तन दलोंका आयोजन करना;

७. अगले महीनोंके पहले रविवार यानी ४ अगस्त और १ सितम्बरको बहिष्कारका विशेष-कार्यक्रम आयोजित करना;

८. बहिष्कार-आन्दोलनमें सहयोग देनेके सुझावपर विचार करनेके लिए उन स्थानीय निकायोंकी विशेष बैठकें बुलानेका प्रबन्ध करना, जिन्होंने विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समिति द्वारा उनका सहयोग प्राप्त करनेके सम्बन्धमें रखे गये समितिके सुझावपर अबतक विचार नहीं किया है;

९. प्रत्येक सोमवारको विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आन्दोलनके कामका साप्ताहिक विवरण भेजना;

१०. २ अक्टूबर, १९२९ का दिन विदेशी वस्त्र-बहिष्कार दिवसके रूपमें मनाना।

विदेशी वस्त्र बहिष्कार समितिके प्रचार-विभागने विलेपार्ले, चम्पारन और अन्यत्र[१] चल रहे कामका यह रोचक और उत्साहवर्धक ब्यौरा[२] दिया है।

आशा है अन्य स्थानोंपर भी इन संगठनोंका अनुकरण होगा। लेकिन कार्यकर्त्ताओंको यह नहीं भूलना चाहिए कि खादीके जरिए विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कार आन्दोलनमें सफलता तभी मिलेगी जब हम यह तथ्य भली-भाँति समझ लेंगे कि जिस प्रकार हम उपभोक्ता हैं, उसी प्रकार हमें उत्पादनकर्त्ता भी बनना पड़ेगा। इस तथ्य को भली-भाँति समझते ही हम खादीमें स्वतःस्फूर्त उत्पादन तथा विवरणकी क्षमता पैदा करके उसे अजेय बना देंगे। इसीलिए यदि फेरी लगाकर खादीकी बिक्रीका प्रबन्ध करनेवाला संगठन बिक्रीके साथ-ही-साथ स्वयं खादीका उत्पादन भी करता नहीं चलेगा तो थोड़े ही समय बाद फेरीके लिए आसानीसे खादी नहीं मिल पायेगी। जैसे कार्यकर्त्ता स्वयं खादी पहनकर उसकी बिक्रीके लिए अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार वे स्वयं सूत कातकर उत्पादनकी दिशामें भी उदाहरण प्रस्तुत करें। इसका सबसे आसान तरीका तकलीको अपनाना है। इसे अपनानेवाला कोई भी व्यक्ति इस बातकी सच्चाईको स्वयं अनुभव कर सकता है कि इस मामूली-सी चीजमें कितनी कल्पनातीत सम्भावनाएँ भरी हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-७-१९२९

१. इसमें कर्नाटक और काठियावाड़ भी शामिल थे।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

११९. स्वावलम्बी शिक्षा

अलमोड़ा जिला बोर्डके मानपत्रमें, उसकी देखरेखमें पढ़नेवाले बालकोंकी शिक्षाका जो उल्लेख किया गया है, और जिस प्रशंसनीय ढंगसे उसने बालकोंको ऊनकी कताई और बुनाई सिखानेका प्रयत्न किया है, उसने मुझे अपना यह विचार फिरसे जोरदार शब्दोंमें प्रकट करनेको प्रेरित किया है कि शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। मेरी यात्राओंमें इस विचारकी बराबर पुष्टि होती गई है। अगर शासनको लाखों बालकोंकी शिक्षाका भार अपने सिर उठाना पड़े तो वह किसी भी विवेकपूर्ण प्रमाणमें कर वसूल करके शिक्षाके लिए पर्याप्त धन इकट्ठा नहीं कर सकेगा। यह तो एक सनातन सत्य है कि शासनका पहला कर्त्तव्य प्रत्येक बालक और बालिकाको शालाओंमें भेजकर उन्हें आजकलके समान गैर-जिम्मेदार शिक्षा नहीं, उचित शिक्षा दिलानेका प्रबन्ध करना है। मगर भारत-जैसे देशमें शिक्षा अगर पूरी तरह नहीं तो अधिकांशमें तो स्वावलम्बी होनी ही चाहिए। और अगर हम अंग्रेज शिक्षा-शास्त्रियोंके अपने पर पड़े हुए जादुई प्रभावको हटा सकें तो हमें अपने ध्येयकी प्राप्तिके साधनों – तौर-तरीकों – के पानेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। दुनियाकी उत्तमसे-उत्तम भावना लेकर भी अंग्रेज अध्यापक अंग्रेज और भारतीय जरूरतोंके बीचके भेदको भली-भाँति नहीं समझ सके हैं, न समझ सकेंगे। हमारे देशकी आबोहवामें विलायती ढंगकी इमारतें आवश्यक नहीं हैं; न प्रधानतया ग्रामीण वातावरणमें पले हुए हमारे बच्चोंको उस शिक्षाकी ही जरूरत है, जो खासकर शहरी वायुमण्डलमें पले हुए अंग्रेज बच्चोंके लिए आवश्यक है।

हमारे बालकोंको शालाओंमें भर्ती किये जाते समय पट्टी, पेन्सिल या पुस्तकोंकी जरूरत नहीं होनी चाहिए, बल्कि उस समय उनके हाथोंमें सादे ग्रामीण औजार दिये जाने चाहिए, ताकि वे उनका भली-भाँति इस्तेमाल करना और उनसे लाभ उठाना सीख सकें। इसका मतलब हुआ, शिक्षा-प्रणालीमें क्रान्ति। मगर शालामें जाने योग्य हरएक बालकके लिए शिक्षा सुलभ बनानेके लिए सिवा क्रान्तिके और दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

यह एक मानी हुई बात है कि वर्तमान सरकारी शालाओंमें पढ़ने, लिखने और गणित की जो शिक्षा दी जाती है, बालक-बालिकाएँ भावी जीवनमें उनसे बहुत कम लाभ उठाते हैं। वे इनमें से ज्यादातर बातें तो साल-भरके भीतर ही भूल जाते हैं, फिर यह भले ही उपयोगमें न आनेके कारण होता हो। इनकी ग्राम्य वातावरणमें कोई जरूरत भी नहीं होती।

लेकिन अगर बालकोंको उनके आसपासके वातावरणके अनुकूल किसी धन्धेकी शिक्षा दी जाये तो न केवल उससे उनपर होनेवाले खर्चमें कुछ मदद होगी, बल्कि वे स्वयं भी भावी जीवनमें इस शिक्षासे लाभ उठा सकेंगे। मसलन, मैं एक ऐसी

सम्पूर्ण स्वावलम्बी शालाकी कल्पना कर सकता हूँ, जिसमें कताई या बुनाईका काम सिखाया जाता हो; और साथ ही जिसके पास कपासका खेत भी हो।

जिस योजनाका मैं उल्लेख कर रहा हूँ उसमें साहित्यिक शिक्षाका बहिष्कार नहीं किया गया है। प्राथमिक शिक्षाका कोई भी पाठ्यक्रम तबतक सम्पूर्ण नहीं माना जायेगा जबतक उसमें पढ़ने-लिखने और गणितको स्थान न होगा। हाँ, इतना जरूर है कि पढ़ने-लिखनेका समय आखिरी सालमें आयेगा, जब बालकों या बालिकाओंका मन वर्णमालाके लिए भली-भाँति तैयार हो जायेगा। अक्षर लिखना एक कला है। चित्रकारके चित्रकी भाँति हरएक अक्षर सही-सही लिखा जाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि बालक-बालिकाओंको प्राथमिक चित्रकलाका ज्ञान मिला हो। इस तरह औद्योगिक शिक्षाके साथ-साथ, जिसमें उनका पाठशालाका अधिकतर समय लगेगा, वे प्राथमिक इतिहास, भूगोल और गणितकी जबानी तालीम भी पाते जायेंगे। वे सदाचार सीखेंगे, रात-दिनकी व्यावहारिक सफाई, स्वच्छता और व्यवस्थाका पदार्थ-पाठ पढ़ेंगे और जो-कुछ सीखेंगे उसे अपने साथ अपने घरोंमें ले जायेंगे और अनजान ही वहाँ एक क्रान्ति पैदा कर देंगे।

अलमोड़ा जिला बोर्ड और ऐसे ही दूसरे बोर्ड, जिनके मार्गमें कोई बाधा नहीं है, जिसमें राष्ट्रीय दलका स्पष्ट बहुमत है, जिनमें श्रद्धा है और ऐसे सदस्य हैं, जो ध्येयकी सफलतातक अविराम प्रयत्न करते हैं, यह प्रयोग करके देख सकते हैं। अगर राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएँ अपने अस्तित्वके औचित्यको सिद्ध करना चाहती हैं, तो उन्हें चाहिए कि वे इस प्रश्नको हाथमें लें। उन्हें मौलिक शोधखोज करनी है, उन बातोंकी भद्दी नकल नहीं, जिनकी वे निन्दा करती हैं और जिन्हें बदल डालना चाहती हैं।

जिस पद्धतिका जिक्र इन पंक्तियोंमें किया गया है, उसके लिए मैं मौलिकताका कोई दावा नहीं करता। बुकर टी० वाशिंग्टनने इसके प्रयोगमें बड़ी सफलता पाई थी। अगर मैं भूल नहीं कर रहा हूँ, तो कहना चाहिए कि उनकी उच्च शिक्षाका ढंग भी स्वावलम्बी था। अमेरिकामें तो कालेजके विद्यार्थी भी कोई अच्छा-सा लाभकारी धन्धा करके अपनी शिक्षाका पूरा खर्च स्वयं ही कमा लेते हैं। तरीकेमें अन्तर है, मगर मूल विचार एक ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-७-१९२९

१२०. सिलहटका जलप्रलय

जब मैं कौसानीमें था तब मुझे पहले-पहल[1] स्थानीय कांग्रेस समितिके अध्यक्षसे सिलहट घाटीकी भीषण बाढ़के समाचार मिले थे। मामूली तौर पर भी भारतके इस प्रदेश-विशेषमें बरसात भयंकर ही होती है, मगर मेरे सामने पड़े हुए अखबारोंसे मुझे पता चल रहा है कि जैसी बाढ़ इस बार आई है, कभी पहले वैसी आनेकी बात किसीको याद नहीं पड़ती। बाढ़के कारण जिस इलाकेको क्षति पहुँची है उसका क्षेत्रफल ५,५०० वर्गमील है और उसकी आबादी १८ लाख है। इस बाढ़के कारण धन और जनकी जो भीषण हानि हुई है, उसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं है; दैनिक पत्रोंमें विस्तारसे इसपर चर्चा हो चुकी है। मेरे पास कमसे-कम चार समितियोंने तार और पत्र भेजकर सहायताकी माँग की है। इनमेंसे एक श्री सुभाष बोसकी ओरसे मिली है और उसमें डा० प्र० चं० रायकी अध्यक्षतामें एक केन्द्रीय संकट-निवारण समितिकी स्थापना की बात कही गई है। इस बाढ़के कारण धन और जनकी जो हानि हुई है, उसे स्वयं देखने, समझनेके लिए श्री अमृतलाल ठक्कर रवाना हो गये हैं।

गुजरात तो अभी-अभी ऐसी बाढ़का स्वयं अनुभव कर चुका है, इसलिए वह असमके कष्टकी कल्पना कर सकता है। दयालु और देशभक्त व्यक्ति ऐसे सवाल कभी नहीं कर सकता: "अगर रोज-रोज बाढ़ें आयें और अकाल पड़ें तो कोई रोज-रोज दान कहाँ तक दे सकता है? इतना है ही किसके पास? अगर इस तरह दान देने पड़ें तो कुबेरका भण्डार भी खाली हो जाये।" जब तक हम खा रहे हैं तब तक जो भूखा है उसे हमसे लेनेका अधिकार है। यदि इसे एक प्रमाग-वाक्य मान लिया जाये तब फिर अपनी नित्यकी जरूरतसे जिसके पास कुछ अधिक है वह माँगे जाने पर बाढ़ आदिसे पीड़ित लोगोंकी मददके लिये देनेसे इनकार नहीं कर सकता।[2]

जिन्होंने अबतक बाढ़ सहायताके लिए कुछ नहीं दिया है, उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी दानकी रकम भेजें। दाताओंकी ओरसे जो-कुछ मुझे मिलेगा उसके बल पर अधिकसे अधिक संकट-ग्रस्तोंके संकट-निवारणका प्रयत्न किया जायेगा। ऐसी आकस्मिक दुर्घटनाओंके अवसर पर पहले आघातके खत्म होनेके तत्काल बाद मिलने-वाली सहायता ही स्वागतके योग्य होती है। ऐसे अवसरों पर तात्कालिक सहायता तो सर्वनाश द्वारा प्रकृति स्वयं ही कर देती है। जो लोग अपनी दुःख-गाथा सुनानेको पीछे रह जाते हैं, मनुष्य अपनी सहानुभूति द्वारा उनके सन्तापको शीतल करता है।

१. देखिए "तार: करीमगंज कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षको", २२-६-१९२९।

२. यह अनुच्छेद **नवजीवन**में १५-७-१९२९ को प्रकाशित "आसाममां जलप्रलय" शीर्षक लेखसे लिया गया है।

पाठक जो दान भेजेंगे उसका उपयोग बहुत ही सावधानी और यथासम्भव पूरी जाँच-पड़तालके बाद ही किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-७-१९२९

१२१. मद्यनिषेध

श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको कार्यसमितिने नशाबन्दीका प्रचार-कार्य सौंपा है। उन्होंने भारतीय मद्यनिषेध संघ (प्रोहिबीशन लीग आफ इंडिया) का 'प्रोहिबीशन' अंग्रेजी मुख-पत्र प्रकाशित किया है। इस पत्रकी कीमत डाक-खर्चके अतिरिक्त दो आना है और इसे गांधी आश्रम तिरुचेनगोडुसे प्राप्त किया जा सकता है। सामग्री दिलचस्प है। उससे पता चलता है कि नशाबन्दी आन्दोलनकी प्रगतिमें रुकावट डालनेके लिए, सरकार अपने सभी उपलब्ध साधनोंको काममें ला रही है। मध्यप्रदेशका एक जिला है दमोह। काफी विरोधके बावजूद यहाँ नशाबन्दी आन्दोलन काफी आगे बढ़ा है। मैं जिज्ञासुओंसे जोर देकर कहूँगा कि वे इस पत्रमें नशाबन्दी आन्दोलनका इतिहास पढ़ें। तथापि नीचे लिखी हुई कहानी छापनेका मोह तो मैं छोड़ नहीं पा रहा हूँ। यह दुःखद कहानी एक शराब बेचनेवाले द्वारा प्रस्तुत हर्जानेके दावेसे सम्बन्धित है:

> **मद्रास प्रान्तके सेलम जिलेमें सिंगारापेटके ग्राम-मुनसिफ पेरूमल नायडू पर मण्डल राजस्व अधिकारी (डिवीजनल रेवेन्यू आफीसर) द्वारा विभागीय मुकदमा चलाया . . . और उन्हें एक वर्षके लिए मुअत्तिल कर दिया।**
>
> **इस विभागीय दण्डसे ही सन्तुष्ट न होनेपर स्थानीय ताड़ी-घरके ठेकेदारने उनपर ३०० रु०के हरजानेका दावा किया। वादी ठेकेदारका कथन है कि प्रतिवादीके तर्कोंके फलस्वरूप तीन महीने यानी जनवरीसे मार्च, १९२६ तक उसकी दुकानपर कोई ग्राहक नहीं आया। लिहाजा प्रतिवादी इस हर्जानेकी पूर्तिके लिए जिम्मेवार है। मुकदमा विचाराधीन है।**

अगर मैं ऐसी प्रशासन-पद्धतिको जिसके अधीन यह सब कुकृत्य सम्भव हों, आसुरी व्यवस्था कहूँ तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? मुझे यह सुनानेकी जरूरत नहीं है कि शासन तो इससे भी बुरा हो सकता है। अगर कभी आसुरी शासन व्यवस्थाओंमेंसे एकका चुनाव करनेका अवसर आ गया तो ऐसे जवाब पर विचार किया जा सकेगा। यह दुर्भाग्यकी बात है कि जनता पर प्रभाव रखनेवाले कुछ शिक्षित भारतीय भी इस शैतानी जालमें फँस गये हैं। वाइसराय महोदयको चेम्सफोर्ड क्लबमें दिये रात्रि-भोजके सम्बन्धमें महादेव देसाईके विवरण[1]से इसकी पुष्टि होती है। एक-

१. "शिमलासे पत्र" शीर्षकसे ११-७-१९२९ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित पत्र।

दोको छोड़कर सभी भारतीयोंने जी-भर कर 'शेम्पेन' पी। जब शैतान स्वतन्त्रता, सभ्यता, संस्कृति, आदिके समर्थकका रूप लेकर सामने आता है तो वह लगभग दुर्निवार्य बन जाता है। इसलिए यह अच्छा ही है कि नशाबन्दी कांग्रेसके कार्यक्रमोंकी पूर्णताका एक आवश्यक अंग है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-७-१९२९

१२२. काशीकी पण्डित-सभा

जब मैं काशीजीमें था, मेरे पास काशी-पण्डित-सभाकी तरफसे तीन प्रश्न भेजे गये थे। उन प्रश्नोंके उत्तर देना मैंने अपना धर्म समझा था। परन्तु उस समय मुझे अवकाश नहीं था और वे प्रश्न मेरे दफ्तरमें पड़े रहे। भ्रमणमें मैं उन्हें हाथमें नहीं ले सका। अब जब कि दफ्तरमें पड़ा काम निबटा रहा हूँ, उक्त प्रश्न मेरे सामने हैं, और वे इस प्रकार हैं:

१. श्रुतियों तथा श्रुति-सम्मत स्मृतियोंको अभ्रान्त प्रमाण माननेवाला एक सनातनधर्मी धर्मशास्त्रज्ञ "दैवयात्रा विवाहेषु संकटे राजविप्लवे उत्सवेषुच सर्वेषु स्पर्शास्पर्शो न दुष्यतः" इत्यादि अपवादोंके सिवा अछूतों (चाण्डालादि)के स्पर्श का सर्वदा व सर्वथा किस तरह समर्थन कर सकता है और कह सकता है कि हिन्दू-धर्ममें अस्पृश्यताको स्थान नहीं है?

२. "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्ये व्यवस्थितौ" इस गीता-वाक्यको अविचल श्रद्धा-भक्तिके साथ माननेवाली सनातनधर्मी जनता ही भारतवर्षमें अधिक है, और उसीमें आपको काम करना है, अतएव जबतक आप अपने अछूतोद्धारवाले कार्यक्रमको शास्त्र-सम्मत सिद्ध न कर लें तबतक उसका प्रचार कैसे हो सकता है।

३. मुसलमान उलेमाओंके हृदयमें यह भाव कूट-कूटकर भरा है कि इस्लाम धर्मके सिवा दूसरे धर्मको माननेवालोंकी हत्या करना सवाब है, वे काफिर हैं, उनके साथ मेल तभी हो सकता है जब वे इस्लाम धर्म कबूल कर लें। जबतक छोटे-बड़े सभी मुसलमान इन्हीं उलेमाओंके अधीन हैं, तबतक हिन्दू-धर्मकी रक्षा करते हुए हिन्दू लोग मुसलमानोंसे किस प्रकार मेल कर सकते हैं?

मेरे उत्तरमें पण्डित महाशय पाण्डित्यकी आशा न करें। मैंने धर्मको अनुभव द्वारा जिस रूपमें जाना है, शास्त्रको अनुभवसे मैं जिस तरह समझा हूँ, उसीके आधार पर उत्तर देनेका नम्र प्रयत्न करता हूँ।

केवल श्रुति-स्मृतियोंके नामपर कोई वचन धर्म-वाक्य नहीं बन सकता। ऐसी कोई भी बात जो सत्यादि अटल सिद्धान्तोंके विरुद्ध है, धर्म-प्रमाण नहीं हो सकती।

मनुस्मृति आदि जो ग्रन्थ आज हमारे सामने रखे जाते हैं, वे मूलतः जैसे थे वैसे प्रतीत नहीं होते, क्योंकि उनमें विरोधी वचन आते हैं। उनमें ऐसे भी वचन पाये जाते हैं, जो सनातन नीति, सिद्धान्त और बुद्धिके विरोधी हैं। श्रुतिग्रन्थोंके रहस्यको देखते हुए 'अस्पृश्यता' पाप ही प्रतीत होती है। मैंने अस्पृश्यताके विषयमें जो वाक्य कहा है वह तो यों है :– "आज हम जिसे अस्पृश्यता मानते हैं, उसके लिए शास्त्रमें कोई प्रमाण नहीं है।" इस कथनमें और पण्डितोंने जिस वचनका मुझमें आरोपण किया है, उसमें बहुत अन्तर है। आजके अछूतकी व्याख्याके लिए प्रचलित स्मृति-ग्रन्थोंको प्रमाण मानें तो भी कोई आधार नहीं मिलेगा। पण्डितोंने जो स्मृति वचन उद्धृत किया है, उसे प्रमाण माननेसे भी हमारा तीन-चौथाई कार्य सधेगा। "देवयात्रा, विवाह, संकट, राजविप्लव और उत्सव," हमारे सामने आज भी मौजूद हैं। इनमें किसीको अछूत न माननेकी स्मृतिकी सम्मति होते हुए भी पण्डित लोग क्यों जनताके सामने अस्पृश्यताका समर्थन करते हैं ?

अब दूसरे प्रश्नका अधिक उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने स्पष्टतया बताया है कि मेरे कार्यक्रमके लिए पण्डितोंके ही वचन काफी हैं। परन्तु यहाँ इस बात पर थोड़ा विचार करें कि शास्त्र किसे कहा जाये। मै ऊपर बता चुका हूँ कि संस्कृत भाषामें छपे हुए हरएक संस्कृत ग्रन्थको शास्त्र मानें तब तो पुण्यको पाप और पापको पुण्य सिद्ध किया जा सकेगा। इसलिए गीताकी भाषाके अनुसार तो 'गीताके स्थित-प्रज्ञ'का वचन ही शास्त्र वचनका बुद्धिग्राह्य अर्थ हो सकता है। इसलिए यदि पण्डित लोग जनताको सीधे रास्ते पर ले जाना चाहें तो पाण्डित्यके साथ प्रज्ञाको भी स्थिर करें, और राग-द्वेष आदिका त्याग करें। जबतक पण्डित लोग तपश्चर्या करके गीताके 'ब्रह्मभूत' न बनेंगे तबतक मेरे जैसे प्राकृत मनुष्यके पास अनुभवके सहारे सेवा करने के सिवा और चारा नहीं है।

अब रहा तीसरा प्रश्न। मेरा नम्र अभिप्राय है कि तीसरा प्रश्न करके पण्डित महाशयोंने अपना अज्ञान प्रकट किया है। न तो इस्लामकी ही यह शिक्षा है कि अन्य धर्मवालोंकी हत्या कर्त्तव्य है, न भारतवर्षीय उलेमाओंके हृदयोंमें ही यह बात है। और न सब मुसलमान ही ऐसे उलेमाओंके अधीन हैं। हिन्दू-धर्मकी रक्षा तो हिन्दुओंकी पवित्रतासे ही हो सकती है, किसी अन्य बातसे नहीं। आत्मा ही आत्माकी रक्षा कर सकती है। 'आप भला तो जग भला' इस लौकिक कथनके न्यायसे सबके साथ मिल कर रहना ही हमारा कर्त्तव्य है। मेरा अनुभव भी मुझे यही सिखाता है।

हिन्दी नवजीवन, ११-७-१९२९

१२३. विधवा और विधुर

जबसे विधवा-विवाहके बारेमें मैंने अपना अभिप्राय[1] प्रकट किया है तबसे कई प्रकारके प्रश्न आते रहते हैं। बहुतेरोंके उत्तर देनेकी आवश्यकता प्रतीत न होनेसे मैं उन्हें भूल जाता हूँ। मगर निम्नलिखित प्रश्नावली विचारणीय है:

१. किस उम्र तककी विधवाओंको शादी करनेकी अनुमति दी जाये?

२. निश्चित उम्रसे अधिक आयुकी विधवा, विधवा-विवाहकी बात समाज द्वारा स्वीकृत हो जानेपर अपना विवाह कर देनेको कहे और उसके लिए उद्यत हो जाये तो उसे किस प्रकार रोका जाये?

३. विधवा-विवाहके स्वीकृत हो जाने पर यदि सन्तानवती और गत-यौवना विधवाएँ विवाह करना चाहें तो क्या उन्हें ऐसा करनेकी अनुमति दी जाये?

४. श्रीयुत रामानन्द चटर्जी, सम्पादक 'माडर्न रिव्यू', द्वारा लिखित एक लेख लाहौरसे प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी पत्र 'विडोज कॉज' में प्रकाशित हुआ है, उससे प्रकट होता है कि ३५ वर्ष तककी उम्रवाली विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकती हैं। क्या यह उचित है?

५. पुनर्विवाहकी प्रथा प्रचलित हो जानेपर विधवाओंमें फिरसे शादी कर लेनेकी इच्छा जागृत हो जायेगी और वे विधवाएँ भी, जो अबतक लोक-प्रथाके कारण विवाहका ध्यान तक नहीं करती थीं, विवाह करने लगेंगी।

इन प्रश्नोंके पृथक-पृथक उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इन प्रश्नों के पीछे मेरे अभिप्रायके अर्थके बारेमें गलत-फहमी है। जो अधिकार यानी रियायत विधुरको है, वही विधवाको होनी चाहिए। अन्यथा विधवा पर बलात्कार होता है, और बलात्कार हिंसा है, जिसका परिणाम बुरा ही होता है। जो प्रश्न विधवाके लिए किये जाते हैं, विधुरके लिए वे उठते ही नहीं हैं। इसका कारण तो यही हो सकता है कि स्त्रियोंके लिए पुरुषने कानून बनाये हैं। यदि कानून बनानेका कार्य स्त्रियोंके जिम्मे होता, तो स्त्री कभी अपने अधिकार पुरुषसे कम न रखती। जिन मुल्कोंमें स्त्रियोंको कानून बनानेका अधिकार है, वहाँ स्त्रियोंने भी अपने लिए आवश्यक कानून बना लिये हैं।

अतएव उक्त प्रश्नोंका उत्तर यह हुआ कि पिताका धर्म है कि वह निर्दोष तरुण विधवाका पुनर्विवाह करे, और जो विधवा पुनर्विवाह करनेकी इच्छा करे उसके रास्तेमें कोई रुकावट न डाली जाये।

१. देखिए "कुछ प्रश्न", २६-६-१९२९।

यह माननेके लिए कोई प्रमाण नहीं है कि इस प्रकारकी व्यवस्थासे सब विधवाएँ पुनर्विवाह कर लेंगी; जिन मुल्कोंमें विधवाको पुनर्विवाह करनेकी रियायत है, वहाँ भी सब विधवाएँ शादी नही करतीं, न सब विधुर ही शादी करते हैं। जिस वैधव्यका पालन स्वेच्छासे होता है, वह हमेशा सराहनीय है। जिसका पालन बलात् कराया जाता हो वह वैधव्य निन्द्य है और वर्णसंकरतावर्धक है। मैं ऐसी अनेक विधवाओंको जानता हूँ, जिनके मार्गमें कोई रुकावट न होते हुए भी जो पुनर्विवाह नहीं करना चाहतीं।

हिन्दी नवजीवन, ११-७-१९२९

१२४. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

११ जुलाई, १९२९

भाईश्री नाजुकलाल,

तुम्हारा क्या हुआ? मोतीको यहाँ कुछ अरसेके लिए भेजनेकी जरूरत है। सुनता हूँ, उसे हिस्टीरिया है और शरीर कमजोर होता जा रहा है। वह यहाँ आये तो इलाज किया जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १२१४४)की फोटो-नकलसे।

१२५. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

आश्रम, साबरमती
१२ जुलाई, १९२९

भाई हरिभाऊ,

बिजौलियाके बारेमें समझ गया हूँ। जहाँ-जहाँ सत्य और अहिंसाका हृदयसे पालन किया जाता है वहाँ हमेशा उसके आश्चर्यजनक परिणाम देखनेमें आये हैं। तुम्हारे पत्रके जवाबमें क्षेमानन्दजीको उसी दिन पत्र लिख दिया था। मेरा दृष्टिकोण क्षेमानन्दजी खुद नहीं समझे, यह मैं स्वयं नहीं जानता। जवाब तो बिलकुल स्पष्ट थे; किन्तु जब तुम आओ तो पूछ लेना या लिखकर पूछना। रामनारायणजीको जब आना हो तब भेज देना। उनकी पत्नी स्त्री-निवासमें अलग रहेगी इतना तो मालूम है न?

मुझे बुखार तो दो ही दिन हुआ था। उसका खुराकके प्रयोगके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रयोग अभी चल रहा है। बैजनाथजीकी पुस्तकको लोगोंने पसन्द किया है, यह जानकर खुशी हुई है।

तुम दूध छोड़नेके जंजालमें न पड़ना। अभी दूधके त्यागके प्रयोगमें पूर्ण सफलता मिली है, इसका दावा मैं स्वयं नहीं करता। परन्तु अपनी गाड़ी किसी तरह चला लेता हूँ। क्योंकि त्याग सम्बन्धी मेरा यह आग्रह स्वतन्त्र और बहुत पुराना है। दूध लेकर मुझे परेशानी होती है। बादामको सूखे साफ कपड़ेसे पोंछ कर छिलके सहित बारीक पिसवा लेता हूँ। यह चूरा घीकी तरह हो जाता है। पहले तो मैं पानीमें भिगो कर छिलका उतार लेता था। पीछे मालूम हुआ कि इसके छिलकेमें भी कई क्षार हैं। इन्हें नहीं फेंकना चाहिए। इसके अतिरिक्त छिलका रेचक तो है ही। यदि तुम बादामका प्रयोग करो तो तुम्हें टमाटर, बन्द गोभी और चौलाईका ताजा साग, इनमेंसे एक चीज तो लेनी ही चाहिए। इन्हें लेनेसे 'ए' नामक विटामिन मिलता है जो सिर्फ या मुख्य रूपसे हरे पत्तोंमें होता है। आजकल इस विटामिनकी आवश्यकता बहुत मानी जाती है। साग, टमाटर या बन्द गोभी कच्चा ही लेना चाहिए। अग्निका स्पर्श होनेसे 'ए' विटामिन नष्ट हो जाता है। अब तुम्हारे पत्रकी किसी बातका जवाब देना बाकी रह गया नहीं लगता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू, ६०६५)की नकलसे।
सौजन्य: हरिभाऊ उपाध्याय।

१२६. तार: नागेश्वररावको

[१२ जुलाई, १९२९को अथवा उसके पश्चात्][1]

नागेश्वरराव,

स्थिति उलझनपूर्ण। 'नवजीवन'का मैनेजरके आपसे बातचीत करके स्वयं निर्णय लेनेके लिए भेज रहा हूँ।

अंग्रेजी (एस० एन० १५४२५)की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह नागेश्वरराव द्वारा मद्राससे भेजे तार, दिनांक १२ जुलाई, १९२९के उत्तरमें भेजा गया था। मूल तार इस प्रकार था: "पुराने प्रेसपर ३,५०० की डिग्री। कागज व्यापारीकी ३,००० की माँग। प्रेसकी जमानतके लिए ७,००० की व्यवस्था कर रहा हूँ। कृपया पैसे तारसे भेजें।"

१२७. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

१३ जुलाई, १९२९

भाईश्री नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मोती दो या तीन महीनेके बाद आये तब मै तो यहाँ नहीं रहूँगा। इसके सिवा बीमारीको लम्बा खींचना भी ठीक नही है। मोतीको तुरन्त भेजनेमें क्या अड़चन है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १२१४५)की फोटो-नकलसे।

१२८. 'फैडिस्ट' अर्थात् सनकी

'फैडिस्ट' शब्दका अर्थ देनेमें पाठकोंने काफी मदद की है। चार स्थानोंसे 'घुनी' शब्द आया है। यह शब्द सुझानेवालोंमें से एक बहन है। वह अंग्रेजी नहीं जानती; किन्तु गुजरातीमें मैंने जो व्याख्या की थी, उस परसे उसे सहज ही 'घुनी' शब्द सूझा और यही शब्द 'फैडिस्ट' शब्दका सबसे ज्यादा अर्थ देता है। दूसरे कई लोगोंने 'चक्रम' [पागल] शब्द भेजा है। 'फैडिस्ट' 'चक्रम' कदापि नहीं होता। 'चक्रम'के लिए अंग्रेजीमें एक अच्छा शब्द है 'मैडकैप'। एक और शब्द 'दाधारींगो' [पागल] भी मिला है; किन्तु यह भी ठीक नहीं बैठ सकता।

अंग्रेजी और गुजराती दोनों भाषाओंके जानकारके लिए दोनों भाषाओंके पर्याय-वाची शब्द ढूँढ़ना मनोरंजक काम है। यदि कोई ऐसा पर्याय-कोष बनाया जाये तो वह एक उपयोगी चीज होगी। मेरे इस निर्दिष्ट कोषके क्षेत्रमें अंग्रेजीके वाक्य गुजरातीमें और गुजरातीके वाक्य अंग्रेजीमें रचकर अर्थ देनेका काम नही आता। मेरी कल्पनाके शब्दकोषमें तो रोज व्यवहारमें आनेवाले अंग्रेजी-गुजराती शब्दोंके लगभग एक-से अर्थके शब्द होंगे। सावधान भाषा-प्रेमी थोड़े समयमें ही एक ऐसा छोटा-मोटा शब्दकोष तैयार कर सकता है। मेरे जैसा जो व्यक्ति गुजराती बोलते समय अंग्रेजी शब्द इस्तेमाल न करना चाहे तो उसके लिए ऐसे छोटेसे किसी कोषकी बड़ी उपयोगिता होगी। जिनमें शक्ति हो, शौक हो और पासमें समय हो, वे सज्जन ऐसा शब्दकोष तैयार करें और मुझे भेजें। यदि वह उपयोगी हुआ तो उसे 'नवजीवन'में प्रकाशित कर दिया जायेगा और यदि पारिश्रमिक जरूरी माना गया तो वह कुछ पारिश्रमिक देनेकी व्यवस्था भी करेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-७-१९२९

१२९. क्या यह अनुपम नहीं है?

यद्यपि शिमला और दार्जिलिंग भी हिमालयके अंचल हैं, मगर वहाँ मुझे हिमालय के महत्वका भान नहीं हो सका था। यों वहाँ मैं थोड़े ही समय तक रहा; किन्तु मुझे तो वह प्रदेश एक अंग्रेजी बस्ती जैसा ही लगा। अलमोड़ेमें जाकर अलबत्ता मैं इस बातकी कल्पना कर सका कि हिमालय क्या है। अगर हिमालय न हो तो गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु न हों; हिमालय न हो, तो न बारिश हो और ये नदियाँ ही न हों; और तब फिर भारत सहरा जैसी मरुभूमि बन जाये। उस बातके जाननेवाले और हमेशा हर बातके लिए ईश्वरका उपकार माननेवाले हमारे दीर्घदर्शी पूर्वजों ने हिमालयको यात्राका धाम बना दिया था। इस क्षेत्रमें हजारों हिन्दुओंने ईश्वरकी शोधमें अपनी देहका बलिदान किया है। वे पागल नहीं थे। उनकी तपश्चर्याका ही बल है कि आज हिन्दू-धर्म और हिन्दुस्तान जीवित है।

कौसानीमें सूर्यके तेजमें नाचते हुए, बर्फमें ढके शिखरोंकी कतारका दर्शन करते हुए मैं यह विचार कर रहा था कि हिमालयके इन श्वेत शिखरोंको देखकर भिन्न-भिन्न कोटिके लोग क्या विचार करेंगे। उस समय जो विचार एक-पर-एक आते गये, पाठकोंको भी उनका भागीदार बनाकर मनको हलका कर लेता हूँ।

बालक उस दृश्यको देखें तो कह उठे: यह तो 'फेनी'का पहाड़ है, चलो हम दौड़ चलें और उसपर बैठकर 'फेनी' चखें। मुझ-जैसा चरखेका दीवाना कहेगा, कपास चुनकर, लोढ़कर और फिर उसकी रुईको पींजकर किसीने रेशमी रुईका जबर्दस्त पहाड़ खड़ा कर दिया है। इस देशके लोग कैसे पागल हैं कि इतनी रुईके होते हुए भी नंगे-भूखे और मारे-मारे फिरते हैं? धर्मनिष्ठ पारसी जा पहुँचे तो सूर्यदेवको नमस्कार करता हुआ कहेगा: अभी हाल सन्दूकमेंसे निकाली हुई नई, उज्ज्वल दूध-जैसी पगड़ी और वैसे ही उज्ज्वल और तह किये हुए जामे पहन कर पर्वत-रूपी हमारे दस्तूर-गण सूर्यनारायणके दर्शनमें लीन होकर हाथ जोड़कर, स्थिरचित्त खड़े हैं और शोभा पा रहे हैं? भावुक हिन्दू इन जगमगाते और साथ ही सुदूर घने बादलोंमें से पानी झेलते हुए शिखरोंको देखकर कहेगा: यह तो साक्षात् दयाके भण्डार शिवजी अपनी उज्ज्वल जटामें गंगाजीको झेल रहे हैं और सारे भारतको प्रलयसे बचा रहे हैं।

शंकराचार्य भी अलमोड़ामें घूमे थे। उन्हें आज भी यह कहते सुन रहा हूँ: सचमुच यह अद्भुत दर्शन है, मगर सारी ईश्वरी माया है। न हिमालय है, न मैं हूँ, न तू है; जो कुछ है सो वह है, और वह भी ब्रह्म ही है। वही सत्य है, जगत मिथ्या है। बोलो 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'

पाठको! सच्चा हिमालय हमारे हृदयोंमें है। इस हृदय रूपी गुफामें छिपकर उसमें शिवदर्शन करना ही सच्ची यात्रा है, यही पुरुषार्थ है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-७-१९२९

१३०. कातनेवाले बुनें तो?

श्री जेठालाल गोविन्दजीका आत्मविश्वास और उनका उत्साह साधारण नहीं हैं। उन्होंने नीचे लिखा समझने योग्य हिसाब भेजा है:[1]

जहाँ कातनेवाले बुन सकते हैं, वहाँ उन्हें उत्तेजन तो दिया ही जाता है; मगर उतने उत्साहके साथ नहीं, जैसा इस विषयमें भाई जेठालालमें है। इस तरहका उत्साह तो अनुभवी व्यक्तियोंमें ही पाया जा सकता है। यह बात स्वयंसिद्ध है कि खादी के बुनने तककी तमाम क्रियाओंका किसानके घरोंमें प्रवेश पा जाना इष्ट है। धुनने और कातनेकी क्रियाओं पर जोर देनेमें बुनना भी छिपा हुआ है। मगर सब बातों पर समान जोर देनेसे आशंका यह रहती है कि कहीं उन सभीका महत्त्व न घट जाये और ध्यान विभिन्न क्रियाओंमें बँट जानेके कारण सबकी हानि न हो जाये। अगर कताईका काम एक बार स्थायी रूप धारण कर ले तो बुनाई तो अपने आप किसानोंके घरों तक पहुँच जायेगी। किलेकी किसी दीवारको घेर कर पड़ा हुआ सेनापति सारी दीवार पर गोले नहीं बरसाता, बल्कि दीवारके एक नन्हेसे हिस्से पर लक्ष्य जमाकर वहीं गोले बरसाना शुरू करता है। जहाँ दीवारमें पहला छेद हुआ कि वह समझ लेता है, विजय मिल गई। दीवार गिरानेवाला मजदूर तमाम ईंटों पर एक साथ अपनी ताकत नहीं आजमाता, बल्कि एक किसी ईंट-विशेष पर ही बल-प्रयोग करता जाता है; जहाँ वह ईंट गिरी कि औरोंको तो वह सहज ही अपनी कुदालीसे गिरा लेता है। कताईके बारेमें भी कुछ इसी तरह की दलील लागू होती है। किन्तु यह दलील भाई जेठालालके लिए नहीं है। वह तो अपने आत्म-विश्वासको कदापि कुण्ठित न करें। जिन्हें यह पत्र पढ़कर चक्कर आने लगे, ये पंक्तियाँ उन्हें धीरज बँधानेके लिए हैं। अगर वे बुनाईके नामसे ही घबराते हों, तो उसका नाम छोड़ दें। जो समझ सकें उनके लिए भाई जेठालालके भेजे हुए उक्त आँकड़े आशाजनक और मार्ग-प्रदर्शक हैं। जिन नर-कंकालोंका जिक्र मैं बार-बार करता हूँ, जो एक-दो नहीं, बल्कि करोड़ों हैं, उन तक तो हम अभी पहुँचे ही नहीं हैं। जिन लोगों तक हम पहुँचे हैं, वे उन नर-कंकालोंके मुकाबले सुखी हैं। उनके पास तो करघा रखने योग्य जगह भी नहीं है। कइयोंके तो घर-बार कुछ भी नहीं हैं। वे तो जंगली पशुओंकी तरह दर-ब-दर भटकते रहते हैं। उनके लिए ये धनुष और तकुए ही तीर हैं।

इनके मिलने पर ही उनकी आँखोंमें तेज आ सकता है। बादमें, दूसरा कदम बुनाईके रूपमें बढ़ाया जा सकता है। ऐसोंके तो शायद, भाई जेठालालने दर्शन भी

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें आँकड़े देकर कहा गया था कि यदि पींजनेवाला सूत भी काते तो वह इतनी अच्छी तरह कातेगा कि कातते हुए सूत टूटनेकी नौबत नहीं आयेगी। इसी तरह यदि कातनेवाला खुद बुने भी तो वह बुनते समय सूत नहीं टूटने देगा और अगर बुनकर विक्रेता हो तो वह खरीदारोंकी रुचिका ध्यान रखकर बुनेगा।

नहीं किये होंगे। मैंने जहाँ-तहाँ देखे जरूर हैं, मगर इतना भटककर भी उनके निवास-स्थान तक पहुँचनेका सद्भाग्य मुझे नहीं मिला है, अथवा यों कह सकता हूँ कि मेरी तपस्या इतनी प्रबल नहीं है। वे लोग तो रेलकी पटरियोंसे बहुत दूर बसे पड़े हैं। सच्चे दरिद्रनारायण उन्हींके कंकालोंमें निवास करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-७-१९२९

१३१. 'नवजीवन' के बारेमें

'नवजीवन' में खबरें देते रहनेके बारेमें जो सुझाव दिया गया था, मेरे पास 'नवजीवन' प्रेमियोंके उससे सम्बन्धित पत्रोंका ढेर लग गया है। रोज पत्रोंकी वर्षा होती है। पाठकोंने दिलचस्पी लेकर बड़ी सुन्दर रीतिसे चर्चा की है। संख्याका विचार करें तो अधिकांश लोग समाचार देनेके सुझावको पसन्द करते हैं। किन्तु जो इससे असहमत हैं उनकी संख्या भी काफी है और पाठक समझ सकते हैं कि सम्भवतया असहमत होनेके पीछे अपेक्षाकृत गहरा विचार किया गया हो। एक सज्जनका कथन इस प्रकार है:[1]

एक दूसरे भाईने हिन्दीमें लिखा है। उसका यह अभिप्राय है कि मैं तो 'नवजीवन' सत्य-दर्शन आदिका सुख प्राप्त करनेके लिए पढ़ता हूँ। मुझे 'नवजीवन प्रेमी'का सुझाव तनिक भी पसन्द नहीं है।

असहमतिसूचक पत्रोंमें बहुत-से पत्र इसी प्रकारके हैं। मैं तो सार-मात्र ही रख रहा हूँ। उनमें की गई 'नवजीवन' की स्तुति हम एक तरफ रख दें तो उनके मतका सार यह है: 'नवजीवन' का क्षेत्र निश्चित है। उसे विस्तृत करनेसे न यह सधेगा, न वह। मुझे लगता है कि यह दलील सही है। समाचार देनेका प्रलोभन तो बड़ा है; किन्तु यह भी लगता है कि वह मोह है। कोई भी पत्र अनेक उद्देश्योंको पूरा नहीं कर सकता। 'नवजीवन' का उद्देश्य स्वराज्य-प्राप्ति है। इसलिए हमारा यही कर्त्तव्य है कि साथियोंका समय सिर्फ उसीकी प्राप्तिमें लगायें। उनकी शक्तिका उपयोग किसी दूसरे अच्छे कामके लिए करना भी स्वराज्य आन्दोलनको धक्का पहुँचाने-जैसा है; यह तो हुआ तात्विक निर्णय।

भाई मोहनलालके साथ विचार करते हुए देखता हूँ कि इसमें बहुत-सी व्यवहारिक अड़चनें भी हैं। 'नवजीवन' की कीमत बढ़ाये बिना समाचार नहीं दिये जा सकते। कीमत बढ़ाना मैं ठीक नहीं मानता। यह सही है कि कुछ लोगोंका यह भी विचार है कि चाहे कीमत बढ़ानी पड़े तो भी समाचार दिये जायें। किन्तु उनकी

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पाठकने लिखा था कि वह नौ वर्षसे **नवजीवन**, पढ़ रहा है और उसे समाचार न दिये जानेसे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। साथ ही **नवजीवन** और **यंग इंडिया** **इंडियन ओपिनियन**से बेहतर हैं क्योंकि उनमें दिये गये लेख साधारण समाचारोंसे ज्यादा कल्याणकारी हैं।

इस उदारताका लाभ नहीं उठाना चाहिए। 'नवजीवन'को गरीबसे गरीब व्यक्तिके पास भी पहुँचना है; मुझसे हो सके तो मैं कीमत और भी कम करूँ, ज्यादा नहीं।

फिर समाचार चुननेकी कठिनाई भी रहेगी। क्या दें और क्या न दें? बहुत-से पत्रोंमें यही ध्वनि है कि आजकल सच्ची खबर नहीं मिलती; किन्तु 'नवजीवन' यह काम कर सकेगा, यह भ्रम है। 'नवजीवन'का आधार भी देश-विदेशसे प्राप्त तार और समाचारपत्र ही होंगे। 'नवजीवन' अपने संवाददाता नियुक्त करके समाचार मँगानेकी स्थितिमें नहीं है। हिन्दुस्तानका एक भी समाचारपत्र ऐसी स्थितिमें नहीं है। 'रायटर' आदिके तार विश्वसनीय नहीं होते। लगभग सभीमें स्वार्थ, जल्दबाजी, पक्षपात और आवेश रहता ही है। ऐसी खबरोंमें क्या पसन्द करें और क्या छोड़ें?

मुझे दूसरी व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी दिखाई देती हैं। इसीलिए अन्तमें मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि 'नवजीवन'में समाचारोंके लिए स्थान नहीं है; किन्तु यह चर्चा मुझे बहुत अच्छी लगी। मैं चर्चामें भाग लेनेवालोंका आभारी हूँ। इससे मुझे अपनी जिम्मेदारी और भी विशेष रूपसे समझमें आई। जिस दिशामें 'नवजीवन' चल रहा है, उसीमें काफी काम करना बाकी है। ऐसा तो मैं करनेका यथासम्भव प्रयत्न करूँगा ही। समयके अभाव या यात्राके कारण मुझे बहुतसे विषय छोड़ देने पड़े हैं। उनपर लिखनेका प्रयत्न करूँगा और मूल सुझावके आशयको ध्यानमें रखूँगा। वह इस तरह कि यदि किसी लेखमें किसी घटनाका उल्लेख होगा तो इसकी पूरी जानकारी देनेका प्रयत्न करूँगा। इससे विषय समझनेमें कठिनाई नहीं होगी।

समाचारोंके इच्छुक पाठकोंको मेरी सलाह है कि वे उन्हें कहीं औरसे प्राप्त कर लें। उन्हें पानेका लोभ छोड़ देनेसे भी कुछ खोयेंगे नहीं। बाल्फर इंग्लैंडका एक चतुर प्रधान था; वह उच्च कोटिका विद्वान था। उसका कहना था: "मैं समाचारपत्र कभी नहीं पढ़ता। मेरे लिए जो कुछ जानना जरूरी होता है, वह मेरे सहयोगी मन्त्री मुझे बता देते हैं।" इस कथनमें अतिशयोक्ति या गर्व नही था। उसे समाचारपत्र पढ़नेकी आवश्यकता दिखाई नहीं दी। अध्ययनशील होनेके कारण वह अपना समय समाचारपत्र पढ़नेमें नहीं देना चाहता था। ग्रामवासियोंको वर्तमान समाचारोंसे क्या मिलेगा? सिनेमाकी प्रगति, विमानोंकी गति, खूनके समाचार, जगतमें हो रहे विप्लवोंसे सम्बन्धित समाचार, अदालतोंमें चल रहे गन्दे मुकदमोंका गन्दा विवरण, घुड़दौड़ और सट्टेके समाचार, मोटर आदिकी दुर्घटनाएँ? ज्यादातर तो समाचार ऐसी बातोंके बारेमें ही होते हैं।

हाँ, ग्रामवासियोंको भी इतिहास, भूगोल जानना चाहिए। उसके तो अलग साधन हैं। यह विद्यापीठका क्षेत्र है। और यह प्रश्न ग्रामवासी बालकोंकी शिक्षाका नहीं, पर ग्रामवासी स्त्री-पुरुषोंकी शिक्षाका है। काकासाहबने श्री नगीनदासके दानके बाद इस कामको हाथमें लिया है। ईश्वरकी कृपा होगी तो कुछ ही वर्षोंमें हमें उसका शुभ परिणाम दिखाई देगा। 'नवजीवन'में शिक्षा-सम्बन्धी पूर्ति अंक प्रकाशित

करनेका निश्चय लिया जा चुका है। इस निमित्तसे जो हो सकेगा वह होगा ही। और मानसिक विकासके लिए जगतको जानने और उसके साथ ऐक्य स्थापित करनेके लिए जिन खबरोंकी आवश्यकता होगी, वे सहज ही इस पूर्ति या 'नवजीवन'के दूसरे हिस्सोंसे मिलती रहेंगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-७-१९२९

१३२. पत्र : एक रूसी पत्र-लेखकको[1]

साबरमती (भारत)
१४ जुलाई, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका कृपापूर्ण, रोचक पत्र मिला। धन्यवाद। हो सकता है कि 'यंग इंडिया'के स्तम्भोंमें युद्ध और अहिंसाके सम्बन्धमें अपने विचार मैं स्पष्टताके साथ व्यक्त न कर पाया होऊँ, लेकिन आप इतना तो निश्चित ही मान सकते हैं कि मैं कहीं भी, मेरे देश तकके किसी सशस्त्र युद्धमें कभी भाग लेनेवाला नहीं हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९७०३)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : भारतमें सोवियत राजदूतावास

१३३. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

[१४ जुलाई, १९२९][2]

भाई रामेश्वरदास,

आपका पत्र मीला है। जो उस बहेनके बारेमें लीखा है वही भाइयोंके भी लागु होता है। तुमारे तो निश्चित होकर केवल रामनामका सहारा ही लेनेका है। सब अच्छा हो जायगा।

बापुके आशीर्वाद

जी० एन० १९९ की फोटो-नकलसे।

१. नई दिल्लीमें सोवियत संघके राजदूतावासके सांस्कृतिक विभाग द्वारा गांधी-दर्शन-प्रदर्शनी (१९६९)में प्रदर्शित।

२. डाककी मुहरसे।

१३४. पत्र : जेठालाल जोशीको

आश्रम, साबरमती
१४ जुलाई, १९२९

भाई, जेठालाल,

तुम्हें विद्यापीठसे प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना चाहिए, उसके बाद ही कुछ किया जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १३४९)की फोटो-नकलसे।

१३५. पत्र : अल्बर्ट एम० टॉडको[1]

१५ जुलाई, १९२९

यह आपकी कृपा है कि यदि मैं अपनी जरूरतके बारेमें आपको सन्तोष दिला दूं तो आप मुझे आर्थिक सहायता देना चाहेंगे। वैसे तो अपने लिए मैंने जो जीवन-दर्शन चुना है उसीके कारण ऐसी जरूरत मुझे सदा ही बनी रहती है, और मेरी आवश्यकताओंकी पूर्ति उन भारतीयों द्वारा हो जाती है जो मेरे कार्यक्रमोंमें रुचि रखते हैं। आश्रमका[2] संविधान भेज रहा हूँ जिससे आप मेरे विभिन्न क्रिया-कलापोंका अनुमान लगा सकेंगे।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५२१३)की फोटो-नकलसे।

१. उनके पत्र दिनांक २५ अप्रैल, १९२९ के उत्तरमें पत्र जिसमें लिखा था: "क्योंकि मैं आपसे और आपके कामसे पूरी तरह सहमत हूँ, इसलिए आपको मैं कुछ रकम भेजना चाहूँगा। शायद पाँच डालर . . .। यदि मुझे लगा कि आपको सहायताकी आवश्यकता है तो मैं जितना भी मेरे लिए सम्भव होगा, सहर्ष भेजूँगा।"

२. खण्ड ३६, पृष्ठ ४१९-३१।

१३६. पत्र : प्रभावतीको

१५ जुलाई, १९२९

चि० प्रभावती,

बहुत दिन हो गये, तुम्हारा पत्र नही आया। ऐसा क्यों? यहाँ सब कुशल है। कोई तीस व्यक्ति कच्चे अनाजका प्रयोग कर रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३४८)की फोटो-नकलसे।

१३७. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

१५ जुलाई, १९२९

भाई मूलचन्दजी,

आपका पत्र मीला। देशी रियासतमें काम जाहेर आन्दोलनसे बहोत कम हो सकता है। अमलदारोंको मील कर जो हो सके कीया जाये अथवा सभा बुलानेका मौकुफ कीया जाय।

आपका
मोहनदास

जी० एन० ७५५ की फोटो-नकलसे।

१३८. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

मौनवार [१७ जुलाई, १९२९][1]

चि० गंगाबहन (बड़ी),

तुम्हें फिरसे वैद्यका[2] काम सौंपते हुए मुझे संकोच तो हुआ ही है। किन्तु तुम सावधान रहोगी तो कठिनाई नहीं होगी। उसका कमसे कम उपयोग करना। अपना स्वास्थ्य भी सुधारना। कोठरियोंके फेरफारसे बेचैन नहीं होना। ऐसे फेरफार तो होते ही रहते हैं। हमारे पास कोठरी है ही कहाँ? अपरिग्रह तो मनकी स्थिति है। एक कलम जैसी मामूली चीजको भी अपना मान लिया तो परिग्रह माना जायेगा।

१. १७ जुलाई, १९२९ को बुधवार था; किन्तु साधन-सूत्रमें यही तारीख है।

२. प्रशासनमें जो सख्ती बरतनी पड़ती है, आशय उस शल्य चिकित्सक-जैसी सख्तीसे है।

संसार हमें जहाँ और जैसे रहने दे, वहाँ और वैसे रहें। ऐसा करना आ जाये, तभी मनमें सम्पूर्ण सेवाभाव आ सकता है। कृष्णमैया देवी और मैत्रीके बारेमें खूब कठोर बन जाओ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो : गं० स्व० गंगाबहेनने

१३९. टिप्पणियाँ

एक साधु पुरुषका देहावसान

डॉ० रूथ पी० ह्यूम अहमदनगरसे लिखती हैं:

> **आज एक समुद्री तारके द्वारा मुझे अपने पितासे रेवरेंड आर० ए० ह्यूम डी० डी० के २४ जूनको देहावसानका समाचार मिला है।**
>
> **मेरे पितासे आपका व्यक्तिगत परिचय था, इसलिए मैंने आपको सूचित करना ठीक समझा। मैंने यह भी सोचा कि शायद आप 'यंग इंडिया'में भी इसका उल्लेख करना उचित मानें। आप उनके जीवन और कृतित्वके बारेमें जानते हैं; और यह भी जानते हैं कि सन् १८४७ में उनका जन्म बम्बईमें हुआ था और उन्होंने एक मिशनरीकी तरह १८७५ में भारत लौटकर अहमदनगरमें काम करना शुरू किया था। इसके बाद अवकाश पाकर १९२६ में वे अमेरिका चले गये थे। वे अभी-अभी तक सक्रिय रहे। किन्तु उनका स्वास्थ्य कमजोर था और इसलिए हमें उनके शरीर छूटनेपर आनन्दित होना और उनके दीर्घकाल तक सेवा करते रह सकनेके लिए भगवान्का उपकार ही मानना होगा।**

मुझे दिवंगत मित्रके सुखप्रद संस्मरणोंकी भली-भाँति याद है। उनके यहाँ रहते हुए और फिर अमेरिका चले जानेके बाद भी मेरा उनका खासा पत्र-व्यवहार था। उनके पत्रोंसे मुझे भारतके प्रति उनके हार्दिक प्रेमकी झलक मिलती रहती थी। उन्होंने उस विशाल महाद्वीपके दौरेके समय दीनबन्धु एन्ड्रयूजको मदद पहुँचाई थी। उनकी सुपुत्रीको उनकी पवित्र आत्माके लौकिक बन्धनोंसे मुक्त होनेसे जिस सुखका अनुभव हुआ है, मैं उसमें उनके साथ हूँ। ऐसी मृत्युमें दुःख मानना अथवा सान्त्वना देनेकी कोई बात नहीं होती। यों तो सदा ही मृत्यु "निद्रा और विस्मृति" है, किन्तु ऐसे अवसरों पर यह बात विशेष रूपसे सही उतरती है।

टीकेका विरोध

सियालकोटके श्री कृष्णगोपाल दत्त नीचे लिखा तार करते हैं:

> **टीका विरोधी संघ पालघाटके मन्त्रीको अपने बालकको टीका न लगाने देनेके अपराधमें कैदकी सजा दी गई। इसपर 'एसोसियेटेड प्रेस'को दिया गया**

मेरा वक्तव्य देखें। खेदकी बात है कि लोग राजनैतिक बातोंको छोड़कर अन्य बातोंको महत्वहीन समझते हैं। बेचारे मन्त्रीको गौरवपूर्ण उद्देश्यके अपराधमें सजा दी गई, फिर भी समाचारपत्र निर्दयताके साथ चुप बने रहे। आप पत्रोंमें अपनी तीव्र भावना प्रकट करें। कृपा होगी।

अपने अन्तःकरणकी प्रेरणाके लिए जेल-यात्रा करनेवाले इन मन्त्रीका मैं अभिनन्दन करता हूँ। मगर यह जानकर मुझे रोष नहीं आता कि जनता या समाचार-पत्रवाले इस घटनाके सम्बन्धमें उदासीन हैं। मैं कई वर्षों पहलेसे टीका लगानेका कट्टर विरोधी रहा हूँ। लेकिन मैं यह समझता हूँ कि मुझे अपने विचारोंके लिए सार्वजनिक समर्थनकी आशा नहीं रखनी चाहिए। लकीरके फकीर डाक्टर टीका लगानेके विरोधका समर्थन नहीं करते। अगर कोई डाक्टर टीकेके विरोधमें अपने विचार प्रकट करता भी है तो अन्य डाक्टर उसका बहिष्कार कर देते हैं। फिर टीका लगानेकी प्रथासे जबर्दस्त आर्थिक स्वार्थ भी आ जुड़े हैं। टीका लगानेसे आदमी कुछ समयके लिए चेचकसे भले ही बच जाता हो,[1] मगर इतनेसे लाभके लिए वह अपने शरीरकी हानि करता है और आत्मा तो इससे कलुषित होती ही है। लेकिन इन दलीलोंको चाहे जितनी सबल और अनुभवसिद्ध होते हुए भी मानेगा कौन? क्योंकि जिस आदमीके शरीरमें टीकेका रसीला पदार्थ छोड़ा जाता है, वह थोड़े समयके लिए यह समझ ही लेता है कि वह बच गया है। अतएव लोग टीकेका मूल्य आँकनेमें अपने लाभका विचार तो करेंगे ही और प्रलयकाल तक यही होता रहेगा। सरकारी अधिकारी तो वही कर सकते हैं, जो पालघाटके मन्त्रीके साथ किया गया है। पूर्ण स्वराज्य स्थापित होनेपर भी यह चलता रहेगा। अतएव सुधारकोंको चाहिए कि वे जनताके अविश्वास और सदा लोकमतसे एक कदम पीछे चलनेवाले समाचारपत्रोंके प्रति धैर्यसे काम लें। टीकेका विरोध करनेवाले लोग इस मन्त्रीकी जेल-यात्राको अपने लाभ और स्वागतकी चीज समझें। लेकिन अगर हम अपने कर्तृत्वकी डुग्गी बजाने लगें तो उतनेसे भी हाथ धो बैठेंगे। अगर ऐसी सजाएँ शान्त और नम्र होकर सह ली जायें तो अबेर-सबेर सुधार होकर ही रहे; कानून बदल दिया जाये और उसमें हार्दिक प्रेरणावश विरोध करनेवालोंके रक्षणके लिए धारा जोड़ दी जाये। मगर ऐसा होनेसे पहले टीकेमें विश्वास न रखनेवालोंको चाहिए कि वे आरोग्यके नियमोंका कठोरतापूर्वक पालन करके अपनी नीरोगिता साबित कर दें और जब कभी रोग फूटे तब खुद होकर ही टीका लगवानेवालेको अभयदान देनेकी गरजसे अलग जाकर रहने लगें। समाचारपत्रोंमें मैंने पढ़ा था कि उक्त मन्त्रीने सजाका विरोध करनेकी गरजसे उपवास किया था। मेरे विचारमें निश्चय ही उनका यह काम भ्रमपूर्ण और अनावश्यक था। हम अन्यायके विरोधमें उपवास करते हैं। इस मामलेमें अदालतने अन्याय किया ही नहीं है। कानूनकी सविनय अवज्ञाके लिए सत्याग्रही हँसते-हँसते जेल जाये। दूसरे, चाहे जिस अन्यायके विरोधमें उपवास किये भी नहीं जाने चाहिए। प्रशंसाके योग्य

१. देखिए "चेचक और हैजा", ३०-९-१९२९ भी।

उपवासकी स्पष्ट मर्यादाएँ होती हैं। इन मर्यादाओंका मैं बहुत दफा जिक्र कर चुका हूँ। जब मर्यादाको लांघकर उपवास किया जाता है, तब वह बहुत दूषित नहीं, तो हँसीका पात्र तो अवश्य ही बन जाता है।

यज्ञार्थ कताई

अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीने तमाम खादी-संस्थाओंको संघके सदस्य बढ़ानेका आदेश किया है, दूसरे शब्दोंमें उनका आदेश यह है कि खादी-संस्थाएँ यज्ञार्थ कताईके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करें — उसका प्रचार बढ़ायें। इस कामके लिए अपार क्षेत्र पड़ा हुआ है, अगर देर है तो हमारे जी-जानसे उसमें जुट पड़नेकी है। बहुत दिनोंके सतत प्रयत्न और प्रयासके बाद अब कहीं खादी-फेरी लोकप्रिय हो रही है। मगर अभी सब लोगोंको यह अनुभूति नहीं हुई है कि अगर खादीका उत्पादन न हुआ तो खादी-फेरी भी न रहेगी। मजूरी देकर कताईका प्रबन्ध करना आसान नहीं है। उसके लिए धन और जन यानी कार्यकर्त्ता चाहिए। यज्ञार्थ कताईके लिए धनकी जरूरत नहीं होती; थोड़े कार्यकर्त्ता-भर चाहिए, बशर्ते कि लोगोंकी यज्ञ-भावनाको और यज्ञार्थ कताईके प्रति उनके सद्भावको जागृत कर दिया जाये। मुझे आशा है, श्री बैंकरकी अपील पर त्वरित और समुचित ध्यान दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १८-७-१९२९

१४०. एक आन्ध्रवीर

आन्ध्र-यात्राके दिनोंमें मुझे एक आन्ध्र-युवककी तसवीर भेंट की गई थी। तसवीर आल्लुरी श्रीराम राजूकी थी। उस समय मुझे उनके जीवनकी कोई जानकारी न थी। पूछनेपर मुझे उनकी बहादुरीकी कई अत्यन्त दिलचस्प और बोधप्रद गाथाएँ सुनाई गईं। यद्यपि उनकी सारी प्रतिभा और वीरता मुझे पथभ्रष्ट-सी मालूम हुई, तथापि मैं उस सबको सुनकर मुग्ध हो गया, और मैंने उनके जीवनकी प्रामाणिक कथा जानना चाही। 'कांग्रेस' नामक तेलुगु समाचार-पत्रके सम्पादक श्री अन्नपूर्णैयाने उनकी जीवनकथा अभी-अभी मेरे पास भेजी है। संक्षेपमें मैं उसे यहाँ दे रहा हूँ।[1] सशस्त्र विद्रोहका मैं समर्थन नहीं कर सकता, उससे मुझे सहानुभूति भी नहीं हो सकती। फिर भी मैं श्रीराम राजू-जैसे युवक-रत्नका, उनकी वीरता, आत्मत्याग, शालीनता और जीवनकी सादगीके लिए अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता। अगर उनकी जीवनकथामें कही गई बातें सच हों, तो वे 'फितूरी' नहीं कहे जा सकते; हाँ, वे एक सुभट अवश्य माने जा सकते हैं। हमारे देशके नवयुवक श्रीराम राजूके समान हिम्मत, उत्साह, देशभक्ति और कार्यदक्षताका सम्पादन करके स्वराज्यके लिए शुद्ध सत्याग्रहकी लड़ाईमें इन गुणोंका उपयोग करें तो क्या ही अच्छा हो। मुझे तो दिन-दिन यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है कि हमारे शिक्षित मध्यम वर्गने

१. अंशतः उद्धृत।

अपने स्वार्थके कारण साधारण वर्गकी जिस विशाल जनताको दबी हुई हालतमें रखा है, अगर उस विशाल जनताको हम सचमुच जागृत करना चाहते हैं और उसका सच्चा उद्धार करना इष्ट समझते हैं, तो उसके लिए सत्य और अहिंसा ही एकमात्र साधन है। हमारे जैसी करोड़ोंकी संख्यावाली प्रजाके लिए और किसी उपायकी जरूरत है ही नहीं।

आल्लुरी श्रीराम राजूके बचपनके बारेमें पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं है। पश्चिम गोदावरी जिलेके मोगालु गाँवमें जुलाईकी चौथी तारीखको, एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय कुटुम्बमें उनका जन्म हुआ था। जगतके दूसरे अनेक साम्राज्य-संस्थापक और साम्राज्य-संहारक महापुरुषोंकी तरह श्रीराम राजूने भी पाठशालामें खास तौरपर कोई विशेष शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। आन्ध्रकी अनेक शालाओंमें उन्होंने शिक्षा पाई, मगर दर्जा पाँचसे आगे पढ़ न सके। शालाके अभ्यासमें उन्होंने कभी तीव्र बुद्धिका परिचय नहीं दिया। वह एक अच्छे गायक और उदीयमान कवि थे। . . .

ऐसा नहीं जान पड़ता कि असहयोग आन्दोलनके प्रति उनकी कोई खास सहानुभूति थी। उन्होंने कई बार शस्त्र-बलमें अपनी श्रद्धा प्रकट की थी। उनका परवर्ती जीवन भी इसी बातकी पुष्टि करता है। मगर एक प्रयोगके नाते असहयोग-आन्दोलनकी भी आजमाइश करके देख लेनी चाहिए, इसी विचार से शायद, वह असहयोगके दिनोंमें चुप रहे। गांधीजीके कार्यक्रमकी शराब-बन्दी और अदालतका बहिष्कार सम्बन्धी बातें उन्हें पसन्द थीं। यही कारण है कि उन्होंने गोदावरी तथा विजगापट्टम जिलोंमें और एजेंसी प्रान्तमें भी शराब-बन्दीके आन्दोलनको उत्साहपूर्वक उठा लिया था। उनकी भक्तिमत्ता और शुद्ध जीवनके कारण झुण्डके-झुण्ड लोग उनकी ओर आकर्षित होने लगे थे। एजेंसी इलाकेके लोगोंके लिए तो उनका प्रत्येक वचन शास्त्र-प्रमाण ही था। इन सरल लोगोंके हृदयोंपर उनके दर्दभरे शब्दोंका जादू-जैसा असर हुआ। मद्यपान-निषेध और अदालतोंके बहिष्कारका उनका सन्देश दावानलकी तरह गाँव-गाँवमें फैल गया। और सारे एजेंसी इलाकेके एक-एक आदमीने उनकी आवाजपर कमर कस ली। वहाँकी प्रजामें एक नूतन जागृति फैल गई, नई जान आ गई। झुण्डके-झुण्ड लोगोंने शराब न पीनेकी सौगन्ध खाई, व्रत लिये, और अदालतें सूनी हो गईं। गाँवोंमें बहुतेरी पंचायतें कायम की गईं और उनके द्वारा फैसले होने लगे। कहा जाता है कि राजू स्वयं नियमित रूपसे खादी पहनते थे। और 'फितूरी' मामलोंमें दिये गये बयानोंसे भी पता चलता है कि राजू अपने सिपाहियोंको भी खादीकी ही पोशाक पहनाते थे। तूनीके असहयोगी खादी कार्यकर्त्ता श्री रलापल्ली कासन्नापर श्री राम राजूकी फौजको खाकी पोशाकके लिए खादी देनेके अपराधपर मामला भी चलाया गया था। राम राजूका मुकाम

श्रीरामके मन्दिरमें था। वहाँ वह तप करते थे। लोगोंके दलके-दल उनके दर्शनोंके लिए वहाँ पहुँचते और उनकी अमृत मधुर बातें सुनकर भाव-मग्न हो जाते। उनका सन्देश भक्ति और अध्यात्मका था, मगर दूधमें चीनीकी तरह उसमें देशभक्तिका रस भी भरपूर था। इस वचनामृतको लूटनेके लिए लोगोंके दलके-दल टूट पड़े। फलस्वरूप उस पच्चीस वर्षीय नवयुवक संन्यासीके उपदेशों से अनपढ़ कोया लोगोंमें बड़ी भारी क्रान्ति हो गई। ये लोग स्वभावके शान्त और अचपल होते हैं, मगर जब एक बार जोशमें आ जाते हैं तो किसीके रोके नहीं रुकते। सरकारने इसे सूँघ लिया। . . . कहा जाता है कि मुसलमान डिप्टी कलेक्टर[1] और तपस्वी राजू एक-दूसरेसे मिले भी थे, मगर ठीक पता किसीको भी नहीं है कि बातचीत क्या हुई थी। हाँ, इस मुलाकातके फल-स्वरूप डिप्टी कलेक्टरने मद्रास सरकारसे सिफारिश की थी कि वह राजूको ३० एकड़ जमीन और खेती सम्बन्धी खास सुविधाएँ दे। राजूको जमीन दी भी गई थी। इस तरह सरकार उन देशभक्तको कृषक बना डालनेकी चाल चल रही थी।

मगर देशभक्त तो देशभक्त ही बने रहे। सिर्फ तीस एकड़ जमीनसे वह सन्तुष्ट होनेवाले न थे। उनका आदर्श तो था लुटेरोंकी भाँति कब्जा करके बैठी हुई विदेशी सत्ताके पंजेसे सारे भारतको मुक्त करना। उन्होंने गीताका अभ्यास किया था, और वह स्वधर्मको खूब समझ चुके थे। स्वाधीन भारतकी छवि उनकी आँखोंके सामने नाचा करती थी। बस, इस इरादेसे उन्होंने गुपचुप अपना काम शुरू कर दिया। उस समय एजेंसी इलाकेकी परि-स्थिति अनुकूल थी। देशके लिए उन्होंने उससे पूरा-पूरा लाभ उठाया।

एजेंसीके गुडेम ताल्लुकेको उन्होंने अपनी प्रवृत्तिका केन्द्र बनाया। एजेंसीमें देशकी साधारण शासन-प्रणाली नहीं चलती। . . . कोया लोगोंके जन्मसिद्ध अधिकार छीन लिये गये थे। रोटी पकानेके लिए पहलेकी तरह अब वे जंगलमें से एक भी पेड़ काट नहीं सकते थे, न अपने मवेशियोंको जंगलमें चरनेके लिए छोड़ ही सकते थे; यही कारण था कि उन दिनों एजेंसीके सारे-के-सारे इलाकेमें असन्तोषकी आग जल उठी थी। . . .

स्थानिक असुविधाओंने जलतेमें घीका काम किया, और स्वराज्यके आन्दोलनको खूब उत्तेजन मिला। राजू एजेंसीमें इतने ज्यादा लोकप्रिय हो गये थे कि हर तरहका दमन किये जानेपर भी लोगोंने सरकारको राजूके सम्बन्धमें थोड़ी भी खबर न दी। . . .

कुल मिलाकर दोनों दलोंका छः बार जमकर सामना हुआ। इनमें से पाँचमें राजू अच्छी तरह विजयी हुए। छठे सामनेके मौकेपर सरकारने मला-

१. श्री फजलुल्ला।

बार और आसामसे विशेष सेनाकी टुकड़ियाँ मँगाई थीं। घमासान युद्ध हुआ। . . . एक बार राजू सोये हुए थे, इतनेमें एकाएक शत्रुओंने धावा बोल दिया, तिसपर भी राजूने बड़ी बहादुरीके साथ दुश्मनका मुकाबला किया और साफ बच गये। आखिरी लड़ाईमें भी राजूपर एकाएक चढ़ाई की गई थी। कहा जाता है कि इस बार राजू हार गये। लोग कहते हैं कि जब राजूने सुना कि एजेंसी प्रदेशकी रियायाका घोरतर दमन किया जा रहा है, सरकारी फौजकी रसद जुटानेके लिए प्रजापर तरह-तरहके अत्याचार किये जाते हैं और लोगोंको कड़ीसे-कड़ी सजा दी जाती है, तो वे जरा घबराये और उनकी हारका कुछ हदतक यह भी एक कारण था। . . .

राजू पकड़े गये, गोलीके शिकार बने, वह जिन्दा हैं या मर गये, आदि प्रश्न रह-रहकर उठते हैं। इस बारेमें सरकारी घोषणाएँ गोलमोल और शंकास्पद हैं। राजूके अन्तकी पहेलीको सुलझाना या बुझाना मुश्किल है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-७-१९२९

१४१. धागेसे बँधी नंगी तलवार

भले ही हम दावतें खाते रहे हों या उपवास कर रहे हों, डेमोक्लीसकी तलवारकी तरह हमारे सिरपर धारा १२४ (अ) सदा लटकती रहती है। अबकी इस तलवारका वार डाक्टर सत्यपाल जैसे सेवक पर ऐसे समय हुआ है, जब कि वह कांग्रेसके स्त्री-पुरुषोंके लिए क्रिसमस-सप्ताहमें लाहौरमें होनेवाली राजनैतिक दावतकी तैयारी कर रहे थे। अपनी मातृभूमिसे सच्चा प्यार रखनेका साहस करनेके कारण पंजाब सरकारने उन्हें दो वर्ष कारागृहमें विश्राम और ५००) जुर्मानेका पुरस्कार दिया है। कुशासनसे अपनी मातृभूमिको मुक्त करनेकी इच्छा रखनेके कारण डाक्टर सत्यपाल राजद्रोहके दोषी ठहराये गये हैं। अगर डाक्टर सत्यपाल राजद्रोही हैं, तो भारतमें ऐसा कौन भारतीय है, भले ही वह उदार मतवादी हो या राष्ट्रीय, मुसलमान हो या हिन्दू, जो निस्सन्देह राजद्रोही न हो? जिस भाषणको लेकर डा० सत्यपाल पर राजद्रोहका अभियोग चलाया गया था, उसे मैंने बार-बार पढ़ा है। खोजने पर कोई भी व्यक्ति दैनिक पत्रोंमें डा० सत्यपालके भाषणसे भी अधिक उग्र भाषण प्राप्त कर सकता है। उक्त धाराके असन्तोष शब्दकी व्याख्या करते हुए एक टीकाकारने उसका 'अर्थ प्रीतिका अभाव' बताया है। वह तो अपनी व्याख्यामें यहाँ तक बढ़ गये हैं कि उनकी दृष्टिमें जिसके हृदयमें कानून द्वारा प्रस्थापित सरकारके लिए प्रीति नहीं है, वह असन्तोष फैलानेका दोषी है। मैं ऐसे एक भी भारतीयको नहीं जानता, जो वर्तमान सरकारके प्रति वास्तवमें कोई प्रीति रखता हो। यह कहना कि वर्तमान सरकार 'कानून' द्वारा प्रस्थापित सरकार है, 'कानून' शब्दका दुरुपयोग करना है।

यह सरकार तो नंगी तलवारके बल पर कायम है। यह वह तलवार है जिसके द्वारा निरंकुश शासक जब चाहें, हम पर वार कर सकते हैं, और ये शासक भी वे हैं जिनकी नियुक्तिमें जनताका कोई हाथ नहीं होता।

अतएव डाक्टर सत्यपालका कारावास इस बातकी घोषणा करता है कि १२४ (अ)को मिटानेके लिए देशव्यापी आन्दोलन किया जाये। मगर इस धारा या ऐसी अन्य धाराके मिटानेका अर्थ है, वर्तमान शासन-प्रणालीको मिटाना, दूसरे शब्दोंमें, स्वराज्य प्राप्त करना। अतएव वस्तुतः तो उस धाराको मिटानेके लिए भी उतनी ही शक्ति चाहिए जितनी स्वराज्य पानेके लिए आवश्यक है। यह बिलकुल मुमकिन है कि एक ओर तो सरकार इस धाराको समाप्त करनेका ढोंग रचे और दूसरी ओर छिपे जरियोंसे इसी धाराकी शक्तिका प्रयोग सुरक्षित रखा जाये। आज जनता न तो इस तरह धोखेमें रखी जा सकती है, न उसे धोखेमें रहना ही चाहिए। इसलिए अगर सचमुच हम यह महसूस करते हैं कि डा० सत्यपालके साथ अन्याय किया गया है — देशके आन्दोलनको क्षति पहुँचाई गई है, तो हमें चाहिए कि हम वर्तमान आन्दोलनको व्यापक बना दें और उसके बल पर एक ऐसी सरकार खड़ी करें, जो सचमुच हमारी प्रेम-पात्र हो, जिसे हम हृदयसे अपनी सरकार कह सकें। उस हालतमें न तो देश-व्यापी राजद्रोहकी घटनाएँ ही घटेंगी, न राजकीय हत्याएँ होंगी, न हत्याओंके प्रयत्न किये जायेंगे और न जबर्दस्ती लादे गये शासनसे थक कर लोग ऐसे कामोंके प्रति छिपी हुई सहानुभूति ही रखेंगे। जिस दशाको हम असह्य समझते हैं, अगर उसे हमने खत्म नहीं कर दिया है तो इसका यह मतलब नहीं है कि हम उससे सन्तुष्ट हैं; अवश्य ही यह हमारी बेबसीका प्रमाण है। लेकिन यह बेबसी भी अब तेजीसे समाप्त हो रही है। यही देखना है कि इसका नतीजा खून-खच्चरसे पूर्ण अराजकतामें प्रति-फलित होता है, या सुव्यवस्थित सविनय अवज्ञा-भंग द्वारा हम अपना ध्येय प्राप्त करते हैं। यह बात ज्यादातर तो अंग्रेज शासकोंके रुख पर निर्भर रहेगी, मगर उससे भी अधिक यह स्वयं हम पर निर्भर है। अगर हम डाउनिंग स्ट्रीट या व्हाइट हालकी तरफ ताकना बन्द कर दें और अपनी फिक्र आप करने लगें, तो हमारी अधीरता मिट जायेगी। तब हम रचनात्मक कामोंमें इतने संलग्न हो जायेंगे कि अधीरताका विचार भी न आयेगा। मुझे शक है कि हममेंसे कई, स्वराज्यको तोहफेकी तरह प्राप्त करना चाहते हैं, एड़ी-चोटीका पसीना एक करके नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-७-१९२९

१४२. बिना राँधे आहारके प्रयोग[1]

बगैर राँधे हुए आहारका जो प्रयोग मैं कर रहा हूँ, उसके सम्बन्धमें मेरे पास अंग्रेजी और गुजरातीके पत्र अच्छी संख्यामें आते रहते हैं। कुछने बिना राँधे आहारके अपने सफल प्रयोगोंका वर्णन भी लिख भेजा है। इन अन्तिम प्रकारके पत्रोंसे मुझे पता चलता है कि बगैर रँधा हुआ (कच्चा) आहार करनेवालोंकी संख्या देशमें काफी है। ये सब पत्र लिखनेवाले सज्जन मेरे द्वारा सबको अलग-अलग उत्तर न देनेके लिए क्षमा करेंगे; किन्तु वे इतना विश्वास रखें कि उनके सुझावोंमें मुझे जो नया अथवा अपनाने योग्य लगा उसे मैंने स्वीकार कर लिया है। अनेक सज्जनोंने मेरे प्रयोगोंके परिणामके बारेमें और भी अधिक जाननेकी इच्छा की है।

प्रयोग तो अभी चल ही रहा है। बीच-बीचमें अपने इस प्रयोगको करते चले जानेके बारेमें मनमें शंकाएँ भी उठी हैं। आन्ध्रकी यात्राके समय जब मुझे अत्यधिक दुर्बलताका अनुभव हुआ तब मेरे मनमें ऐसी शंकाएँ आई थीं। किन्तु खुराकको आग पर पकाये बिना लेनेके सिद्धान्तके सही होनेके प्रति मेरे मनमें कुछ ऐसा विश्वास जम गया है और मेरा उसके प्रति कुछ ऐसा पक्षपात है कि मैं इस प्रयोगको सहज ही नहीं छोड़ दे सकता। क्योंकि मेरे लेखे यह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ही नहीं; आर्थिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी उपयोगी है। राष्ट्रीय कार्य करनेवाले जिन लोगोंको प्राय: कठिन परिस्थितिके बीच देशके विभिन्न भागोंमें काम करना पड़ता है, यह उनके लिए बहुत महत्वकी चीज है। विभिन्न प्रान्तोंमें विभिन्न प्रकारके भोजनोंकी जो रूढ़ पद्धतियाँ हैं, इससे उन सबका निराकरण हो जाता है। किन्तु अभी इसके विषयमें मैं बिलकुल निश्चिन्त भावसे नहीं लिख सकता; अभी तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इससे अभी तक मुझे कोई हानि नहीं हुई है। डाक्टर अन्सारीने दिल्लीमें मेरे शरीरकी परीक्षा करके कहा था कि आज मेरा शरीर जितना नीरोगी है, उतना पहले कभी उन्होंने देखा हो, याद नहीं पड़ता; और वे मेरे शरीरको भली-भाँति जानते हैं। कोल्हापुरके अस्वास्थ्यके[2] बाद मेरे खूनका जो दबाव १५५से कम कभी नहीं पाया गया था, इस समय ११८ था और नाड़ीका दबाव ९८। डा० अन्सारीके विचारमें ११८ मामूलीसे कुछ कम था, मगर इसमें कोई खतरा न था, क्योंकि तब मलेरियाके हलके आक्रमणसे मैं उठा ही था और केवल रसीले फल खाकर ही रहता था।

तपेदिकपर लिखे गये डाक्टर मुथुके ग्रन्थ और कर्नल मैक्कैरिसनकी जानकारीसे भरी हुई और सावधानीसे लिखी गई 'आहार-प्रवेशिका' को पढ़कर प्रयोगको जारी

१. इसीसे मिलता-जुलता लेख "अग्निथी अस्पृष्ट खोराक" नवजीवन, १४-८-१९२९ प्रकाशित हुआ था। इस अनुवादका मिलान उससे कर लिया गया है।

२. २६ मार्च, १९२७ को। देखिए खण्ड ३३, परिशिष्ट-३।

रखनेका मेरा निश्चय कहीं अधिक बलवान हो गया है। पहली पुस्तकमें आहार पर ठीक तरहसे प्रकाश डालनेवाला एक प्रकरण है और दूसरीमें, जो कि भारतके बच्चोंको समर्पित की गई है, बड़ी सरल और संक्षिप्त भाषामें आवश्यक आहार-सम्बन्धी वे तमाम उपयोगी बातें बता दी गई हैं, जो किसी साधारण पाठकके लिए उपयोगी हो सकती हैं। यह पुस्तक बड़ी सावधानीके साथ पढ़ी जाने योग्य है। मेरे विचारमें ग्रन्थकारने जैविक आहार (जैसे मांस और दूध) पर बहुत ज्यादा जोर दिया है, यद्यपि उनके लिए यह बिलकुल स्वाभाविक है। वनस्पति-जगत्में मनुष्यके सम्पूर्ण पोषणकी अनन्त सम्भावना पड़ी है; वर्तमान औषधि विज्ञानने अभी तक इस क्षेत्रको अछूता ही छोड़ दिया है, और वह सहज स्वभावके वश होकर मांस और मांस नहीं तो दूध और उससे बने अन्य पदार्थों पर ही जोर देता रहा है। भारतीय चिकित्सकों का, जो परम्परासे शाकाहारी हैं, कर्त्तव्य है कि वे इस कार्यको पूरा करें। विटामिन या जीवनतत्त्वकी तेजीके साथ होनेवाली शोधने और सीधे सूर्यसे महत्वके विटामिन पानेकी सम्भावनाने चिकित्सा-शास्त्र द्वारा प्रस्थापित और स्वीकृत आहार-सम्बन्धी कई सिद्धान्तोंमें क्रान्तिका क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया है। चाहे जो हो, दोनों ग्रन्थकार इस बात पर तो मुझे एकमत होते मालूम पड़ते हैं कि तमाम खाद्य पदार्थ उनकी प्रकृत अवस्थामें ही खाये जाने चाहिए, बशर्ते कि हम उनसे ज्यादासे-ज्यादा लाभ उठाना चाहते हों और खासकर अगर हम उनमेंके कुछ महत्वपूर्ण जीवनतत्त्वोंको नष्ट होनेसे बचाना चाहते हों। उनका मत है कि आगसे कुछ जीवनतत्त्व नष्ट हो जाते हैं, और गेहूँको मैदा बनानेमें और चावलको पालिश कर देने पर उनके सारे उपयोगी क्षार और जीवनतत्त्व निकल जाते हैं।

पिछले लेख[1] में मैं कह चुका था कि कोई मेरे प्रयोगका जल्दीमें अनुकरण न करे। मगर अब दो महीनेके अपने अनुभवके बाद मैं यह कह सकता हूँ कि यदि लोग थोड़े प्रमाणमें दूध-घी लेते हुए यह प्रयोग करना चाहें, तो निश्चिन्त होकर कर सकते हैं। यद्यपि मैं खुराक आग पर बिना पकाये लेनेके साथ-साथ दूध और घी भी नहीं ले रहा हूँ तथापि मैं दूसरोंसे अभी घी और दूध छोड़नेकी सिफारिश नहीं करूँगा। यों तो मेरा यह विश्वास अडिग है कि दूध और घी दोनोंको छोड़कर भी स्वास्थ्यको बिना किसी खतरेके कायम रखा जा सकता है। किन्तु मै अभी इस बातका दावा नहीं कर सकता कि मैंने शाकाहारके ऐसे सन्तुलित मिश्रणकी खोज कर ली है जिससे ठीक वे ही लाभ मिल सकते हों जिनके दूध आदि लेनेसे मिलनेकी बात कही जाती है। इन लेखकोंका यह कहना तो है ही कि थोड़ा दूध और शुद्ध घी लेते रहनेसे वनस्पतियोंसे प्राप्त प्रोटीन और स्निग्ध पदार्थोंके लाभमें वृद्धि हो जाती है और इससे उनको पचानेमें भी मदद मिलती है।

इस समयकी मेरी खुराकका प्रमाण यों है:

पिसे हुए अंकुरित गेहूँ	८ तोला
पिसा हुआ बादाम	४ तोला

१. देखिए "दीवाना" १३-६-१९२९ और "वनपक्व बनाम अग्निपक्व", १६-६-१९२९।

गिरी बादाम	१ तोला
ककड़ी या लौकी जैसी सब्जियाँ	१६ तोला
खट्टे नींबू	२ अदद
सूखी दाख (किशमिश)	२० अदद
शहद	४ तोला

एक महीने तक नमक नहीं लिया था। फिलहाल कुछ डाक्टर मित्रोंके चेतावनी देनेसे और प्रयोगकी दृष्टिसे सिर्फ ३० ग्रेन नमक ले रहा हूँ।

ऊपर बतलाई गई खुराक दो भागोंमें ली जाती है। सवेरे छः बजे एक तोला बादाम (गिरी) चबा लेता हूँ। गर्म पानीके साथ शहद तीन बार पीता हूँ। दैनिक कार्यक्रममें अब तक किसी तरहकी रुकावट नहीं आई है, न वजन घटा है।

अगर लोग क्रम-क्रमसे बढ़ेंगे और अनाजको खूब चबा-चबाकर खायेंगे तो, हानिकी जरा भी सम्भावना नहीं रहेगी, उलटे लाभकी पूरी आशा रखी जा सकती है। हाँ, खुराकका प्रमाण ठीक-ठीक बनाये रखना चाहिये। अगर थोड़ा भी मुँह बिगड़े, हिच-कियाँ आने लगें, कै या वमन हो, तो समझना चाहिए कि कोई-न-कोई पदार्थ ज्यादा खा लिया गया है। दूध लेनेवालोंको बादामकी कोई जरूरत नहीं रहती, और चूँकि दूध-घी तो लेने ही हैं, अतएव बादामको छूना भी न चाहिए। घीके बदले कच्चा—पानीवाला—नारियल किसकर गेहूँ और चनेके साथ लिया जा सकता है। नारियलका किसा हुआ गूदा एक बारमें चार तोलासे ज्यादा न लिया जाये। मेरे प्रयोगमें इस समय चने नहीं हैं। मगर प्रयोग करनेवाले अंकुरित चने या मूँग बिना किसी भयके ले सकते हैं। अगर नमक लेना हो, तो थोड़ा लिया जाये। चार तोला गेहूँ और दो तोला चनोंसे शुरुआत करनेमें कोई खटका नहीं रहता। मुझे शाक अधिक लेना पड़ता है, आम तौर पर उतना लेना जरूरी नहीं है। जिन्हें कब्जियत हो वे पालक आदिकी शाक लें। यह शाक भी एक बारमें ४ तोलासे ज्यादा न लिया जाये। मेरे प्रयोगमें शहद है, जो प्रत्येक प्रयोगकर्त्ताके लिए जरूरी नहीं है। कुछ दिनोंके प्रयोगके बाद अगर किसी तरहका बखेड़ा न मालूम हो, जीभ साफ रहे और दस्त खुल कर आये तो आवश्यकतानुसार गेहूँ और चनेका प्रमाण बढ़ाया जा सकता है। मजबूत दाँतवाले नारियलको छोड़कर और कोई भी चीज पीस कर न खायें। शुरु-आतमें दाँत और जबड़े दुःखने लगेंगे, इससे कोई डर नहीं। यह थकावट बतलाती है कि हमने दाँत और जबड़ोंका उपयोग करना—उन्हें कसरत देना छोड़ दिया था, उनपर अत्याचार किया था। ऊपर बतलाई खुराकको चबानेमें कमसे-कम आध घंटा लगेगा, इससे भी ज्यादा लगे तो घबरायें नहीं, न जल्दी-जल्दी चबाना शुरू करें। जबतक खुराक भली-भाँति पिस कर मुँहमें लपसी न हो जाये, तबतक उसे गलेके नीचे न उतारा जाये। इस तरह अधिकसे-अधिक पैंतालिस मिनटमें जितना चबाया जाये उतना चबालें; जो बच रहे उसे दूसरी बार खाना चाहिए। इस खुराकमें गेहूँ, चने, और नारियल तो सवेरेसे साँझ तक खुशी-खुशी लेते रह सकते हैं। ली हुई भाजीके चबा जानेसे कोई अड़चन नहीं होती। चबाते-चबाते अगर बच ही जाये तो

फेंकी जा सकती है। सूखी दाखके बदले एक केला लेना अधिक अच्छा है। दिन-भरमें दो केलोंसे ज्यादाकी जरूरत नहीं होती। इससे भी अच्छा तो यह है कि मौसमी फल लिये जायें जैसे, इस ऋतुमें जामुन। सूखे फलोंकी अपेक्षा ताजे फल अच्छे होते हैं।

गुड़ लिया जा सकता है, सफेद चीनी तो हरगिज न लेनी चाहिए क्योंकि वह स्पष्टतया हानिकारक है। सूखे मेवे, अंजीर या खजूरसे आवश्यक चीनी हमें मिल सकती है, लेकिन इनका उपयोग भी बहुत परिमित होना चाहिए। अगर जरूरत हो तो गेहूँकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है। शुरू-शुरूमें कुछ समय तक पेट खाली-खाली-सा मालूम पड़ेगा। इसका कारण पेटका वह दुरुपयोग है, जो हम करते आये हैं। जबतक वह अपनी पूर्वस्थितिमें न आ जाये, हम इस कष्टको सहन कर लें। ऐसी भूख रसीले फल खाकर, कुछ अधिक भाजी लेकर, या अच्छी मात्रामें शुद्ध पानी पी कर कम की जा सकती है, गेहूँ या चनेकी बतलाई हुई मात्रामें वृद्धि करके नहीं। अगर हालत ठीक हो तो दूध अवश्य ही बढ़ाया जा सकता है। इस समय ३०से भी अधिक साथी मेरे साथ यह प्रयोग कर रहे हैं। उनके लिए जो ज्यादासे-ज्यादा प्रमाण रखा गया है, वह यों है:

अंकुरित गेहूँ	२० तोला
अंकुरित चना	८ तोला
भाजी	१६ तोला
खोपरा	८ तोला
दाख	४ तोला
नींबू का रस	१ तोला
दूध	आधा पौंड
ताजे फल जब मिल जायें	
खोपरेके बदलेमें घी	२ तोला

गाँवोंमें, जहाँ भाजीपाला मुफ्त मिल सकना चाहिए, बिलकुल ही नहीं मिलता, इसका कारण सिर्फ अज्ञान और आलस्य ही है। थोड़ी-सी ही मेहनतसे खेतके एक हिस्सेमें या घरके आँगनमें थोड़ी-बहुत शाकभाजी पैदा की जा सकती है। 'भाजी उगानेमें तो कुछ भी परिश्रम नहीं होता। बहुतेरी भाजी तो अपने आप उग आती है। ऐसी बहुतेरी भाजी खाने योग्य भी होती है, और इस प्रयोगमें भाजी एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। हर तरहकी भाजी कोमल होनी चाहिए और उसे पानीसे भली-भाँति साफ कर लेनी चाहिए। लौकी वगैरा भी सख्त न हो। इनकी छाल नहीं निकाली जानी चाहिए। छालको बोरी छुरीसे घिसकर साफ कर लेना जरूरी है। बहुमूल्य क्षार छालके नीचे ही रहते हैं, छाल निकालकर शाकका गूदा-मात्र रखनेसे शाककी कीमत आधी रह जाती है।

जो इस लेखको पढ़कर प्रयोग करनेकी इच्छा करें, वे प्रयोग नियमानुसार शुरू करें। नियमित-रूपसे रोजनामचा लिखें। हरएक वस्तु तौल कर लें और उसकी

कीमत भी लिखते रहें। शरीरमें मालूम होनेवाले परिवर्तन और मलमूत्रादिकी स्थिति भी नोट करते रहें। इस तरहका टिप्पणीपूर्ण रोजनामचा उनके खुदके लिए और दूसरोंके लिए भी मार्गदर्शक हो सकेगा। प्रयोग शुरू करते समय अपने शरीरका वजन करा लेना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-७-१९२९

१४३. भोलापन या धृष्टता

नीचे दिया गया पत्र-व्यवहार[1] पाठकोंको रोचक लगेगा:

(१)

डिप्टी कमिश्नरका बंगला
गोंडा,
१९ जून, १९२९

महोदय,

मैं यह पत्र गोंडाके अकालकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करनेके लिए लिख रहा हूँ। . . . उसने [सरकारने] अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है। अब जनता अपना कर्त्तव्य निभाना आरम्भ कर रही है। अकाल-पीड़ित क्षेत्रसे बाहर फैली गरीबी दूर करनेके लिए मुझे धनकी आवश्यकता है और मैं गैर-सरकारी लोगोंसे चन्दे ले रहा हूँ।

मैं आपकी संस्थासे भी इसलिए अनुरोध करता हूँ क्योंकि वह देशके न केवल राजनीतिक बल्कि सामाजिक और आर्थिक कल्याणके लिए काम करनेका दावा करती है। . . . साम्राज्यवादके विरुद्ध लड़नेके लिए आपने लीगको १०० पौंड देनेका वायदा किया है, तो क्या आप भुखमरीके विरुद्ध लड़नेके लिए इतना ही धन नहीं देंगे?

इकत्तीस कम्युनिस्ट घोषित किये गये लोगोंको मेरठमें जेल जानेसे बचानेके लिए कांग्रेसके प्रमुख सदस्य चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, क्या आप गोंडाके पाँच लाख भूखे लोगोंको अकालसे बचानेके लिए ऐसा ही कुछ नहीं करेंगे?

और यदि आप दान और राजनीति दोनों उद्देश्योंको एक ही साथ साधना चाहते हैं तो क्या आप वे सारे विदेशी वस्त्र मुझे भेज देंगे जो आप इकट्ठा करते हैं? मैं उन्हें नेपालकी सीमा पर स्थित इस जंगली हिस्सेमें भेज दूँगा, जहाँ वे पक्के देशभक्तोंकी आँखोंमें नहीं खटकेंगे। आपने यूरोपीय वस्त्रोंको जो

१. अंशतः उद्धृत।

सजा सुनाई है यदि आप उनको क्षमा-दान देकर, सजाको कुछ नरम बनानेके लिए तैयार हों अर्थात् उन्हें आगमें जलानेकी बजाय देश-निकाला देनेको तैयार हो जायें तो मैं इस बातका जिम्मा लेता हूँ कि वे फिर कभी देशमें लौटकर नहीं आयेंगे। जब आप यह समझ लेंगे कि आपके देशवासियोंमें हजारों लोग ऐसे हैं जो इतने चिथड़े भी नहीं जुटा पाते कि अपना शील पूरी तौर पर ढँक सकें, तब मैं समझता हूँ कि आप कपड़े जलानेकी बात नहीं सोच सकेंगे। सच्ची देशभक्ति तो आवश्यकताके समय अपने देशवासीकी सहायता करनेमें ही है। इसीलिए मैं आपसे उदारतापूर्वक धन और वस्त्रके दानके लिए अनुरोध करता हूँ।

हृदयसे आपका,
बी० जे० के० हालोज
अध्यक्ष
अकाल-सहायता कोष, गोंडा

मन्त्री
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

(२)

महोदय,

आपका १९ जूनका पत्र मुझे २४ जूनकी शामको मिला। . . .

गोंडा और उसके निकट बहराइच जिलेकी स्थिति काफी भयंकर है। . . निःसन्देह राज्यके शासन-तन्त्र या समाजके गठनमें अथवा दोनोंमें ही कहीं न कहीं कोई बहुत बड़ी खराबी तो है ही।

वे दिन तो लद गये जब अपनी सभी बुराइयोंके लिए हम देवी-देवताओं या प्रकृतिको जिम्मेवार बता देते थे। आधुनिक विज्ञानने प्रकृतिकी निरंकुशता और मनमानीको काफी हद तक घटा दिया है। . . .

आपके सहायता-कार्यसे जनताको कुछ न कुछ राहत तो मिलेगी ही, वह चाहे कितनी ही अस्थायी क्यों न हो। इन कार्योंकी निःसन्देह प्रशंसाकी जानी चाहिए। लेकिन क्या आप यह नहीं मानते कि इस तरहसे दान या सहायता कार्यसे भारतकी गरीबीकी समस्याका एक शतांश भी हल नहीं होगा? . . . सर्वथा निश्चित है कि धनवानों द्वारा दिया गया दान, उन परिस्थितियों को जिनके कारण अकाल पड़ते हैं, नहीं मिटा सकता।

राष्ट्रीय कांग्रेसका मूल-मन्त्र यही है कि इन सभीके दोषोंके मूल कारणोंको दूर करके ऐसी भयंकर परिस्थितियोंको खत्म कर दिया जाये। कांग्रेसका यह

दृढ़ विश्वास है कि गरीबी पर विजय प्राप्त करने और समाजमें किसी हद तक खुशहाली लानेका केवल एक उपाय है और वह यह है कि शासनकी समूची व्यवस्था और समाजके ढाँचेमें परिवर्तन किया जाये। . . . यही कारण है कि कांग्रेस 'साम्राज्यवाद विरोधी लीग' जैसी उन संस्थाओंका साथ देती है जो गरीबी और असमानताके मूल कारणों पर चोट करती हैं।

अगर भारतकी वर्तमान सत्तारूढ़ सरकार वास्तवमें गरीबीपर प्रहार करने और उसे मिटानेके लिए उत्सुक होती तो वह बड़ी-बड़ी विपत्तियोंके समय मामूली-सी राहत-भर दे देनेकी बजाय कहीं अधिक बड़ा कदम उठाती; वह यह महसूस कर लेती कि उस देशमें, जहाँ इतनी भयंकर गरीबी है, एक इतनी खर्चीली और अधिकारियोंके बोझसे लदी हुई प्रशासन-व्यवस्था नितान्त असंगत और कष्टकारक है; वह समझ जाती कि उसने इस देशमें जो राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था खड़ी की है और जिस सामाजिक ढाँचेको उसने मजबूत बनाया है उस समूचे तन्त्रने बड़े ही कौशल और बड़ी शीघ्रतासे देशको कंगाल बना डाला है और यह क्रम अभी जारी है; वह महसूस कर लेती कि इस गरीबीके लिए जिम्मेवार वह स्वयं हैं और इसीलिए गरीबीको जल्दीसे जल्दी मिटानेका तरीका यही है कि वह अपने आपको कार्य-क्षेत्रसे हटा ले, अपना शासन समाप्त कर दे और उन लोगोंको शासन चलानेका मौका दे जो इन समस्याओंको सरकारकी अपेक्षा कहीं अधिक निस्वार्थ भाव और सक्षमताके साथ कर सकते हैं।

. . . नीम हकीमोंके टोटके आजमानेके बजाय, अधिक स्थायी परिणाम देनेवाला अचूक उपचार ही आप ज्यादा पसन्द करेंगे। मुझे भरोसा है कि आप इस बातको समझेंगे कि मौजदा शासन-व्यवस्थाको एकदम हटा देना और सामाजिक ढाँचेमें परिवर्तन लाना ही एकमात्र अचूक उपचार है। . . . इस दिशामें आप तथा वे सभी लोग, जो किसी भी एक देश या समुदाय अथवा वर्ग द्वारा किसी दूसरेका शोषण किये जानेका विरोध करते हैं, यदि नैतिक और व्यावहारिक सहयोग देंगे तो हम उसका स्वागत करेंगे।

. . . कांग्रेसका विश्वास है कि अस्थायी राहत-कार्यका रूप भी यह होना चाहिए कि लोगोंको कृषि का ही कोई अनुपूरक धन्धा सिखाया जाये जिससे जरूरतमन्दोंको तत्काल आर्थिक सहायता मिल जाये और अच्छे दिनोंमें भी वह आमदनी बढ़ानेका साधन हो। . . . इस प्रकारके राहत-कार्य आयोजित करनेका तरीका यह है कि चरखे और रुईके वितरण और उधार देनेकी व्यवस्था करके धुनाई और हाथ-कताईको प्रोत्साहन दिया जाये। इससे हाथ-बुनाईको अपने-आप लाभ पहुँचेगा। अगर आप इस प्रकार राहत देनेकी बात पसन्द करें और इस कार्यमें सहयोग देनेको तैयार हों तो मैं बड़ी खुशीसे

अखिल भारतीय चरखा संघसे सिफारिश करूँगा कि इस मामलेमें वह जो कुछ कर सकता है करे।

हृदयसे आपका,
जवाहरलाल नेहरू
महामन्त्री

बी० जे० के० हालोज महोदय
अध्यक्ष, अकाल-सहायता कोष
डिप्टी कमिश्नरका बंगला
गोंडा (सं० प्रा०)

यह विश्वास करना कठिन है कि डिप्टी कमिश्नरने पत्रमें जो-कुछ लिखा है सो गम्भीर भावसे लिखा है। वह सहायताके लिए एक अनुरोधकी अपेक्षा ज्यादातर तो पण्डित जवाहरलाल नेहरूको परोक्ष रूपसे दिये गये एक उपदेश-जैसा ही लगता है। यदि वह सहायताके लिए सच्चे हृदयसे किया गया अनुरोध है, तो उसमें साम्राज्यवाद विरोधी लीग, मेरठके बन्दियों तथा विदेशी वस्त्रोंकी होली जलानेकी बातोंका उल्लेख करना यदि धृष्टतापूर्ण नहीं तो सर्वथा असंगत तो है ही। डिप्टी कमिश्नरके योग्य उत्तर उनको मिल गया है। उनका अनुरोध तो लगभग ऐसा है जैसे कोई आक्रमणकारी सेना अपने ज्यादा फटेहाल बन्दियोंकी ओरसे कुछ कम फटेहाल बन्दियोंसे सहायताके लिए अनुरोध करे, जब कि हालत यह है कि आक्रमणकारी सेना यदि स्वयं हट जाये तो दोनों ही श्रेणियोंके बन्दियोंको तुरन्त मुक्ति मिल जायेगी। और फिर सरकारके किसी अधिकारीको कांग्रेस जैसी संस्थासे, जो कि अकाल अथवा ऐसी अन्य विपत्तियोंको अपने ही ढंगसे हल करती है,—सहायताकी आशा करनी ही क्यों चाहिए। पत्र-लेखक महोदय यह भूल जाते हैं कि विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार चाहनेवाले कांग्रेसके लोग अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहते हुए उक्त वस्त्र अकाल-पीड़ितोंको भी नहीं दे सकते। उनकी रायमें ऐसा करना तो भुखमरीको स्थायी बनाना होगा। इन लोगोंकी रायमें तो भारतवर्षकी गरीबीका प्रमुख कारण विदेशी वस्त्र ही हैं। विपत्तिके दिनोंमें भी, इस प्रकारके वस्त्रोंका उपयोग करना भुखमरीसे मुक्ति पानेके दिनको टालना तो होगा ही।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १८-७-१९२९

१४४. ब्रिटिश कोलम्बियामें सिख

ब्रिटिश कोलम्बियामें बसे भारतीयोंके बारेमें दीनबन्धु एन्ड्रयूजने लिखा है:[1]

. . . ब्रिटिश कोलम्बियामें रहनेवाले सिख-समुदायने मातृभूमि भारतको गौरव प्रदान किया है। इन सारे वर्षोंमें उन्होंने साहसके साथ संघर्ष किया है और सच्चे भाईचारेकी भावनासे दूसरोंकी सहायता की है। ऐसा एक भी बार नहीं हुआ जब 'खालसा दीवान सोसाइटी' किसीके निराश्रित हो जाने पर सहायताके लिए आगे न आई हो। इन बहादुरोंकी चारित्रिक निर्भीकता और पौरुषने मेरे मनको मोह लिया है।

कोमागाटामारूकी घटना अब राईकी-सी बात हो गई है। ब्रिटिश कोलम्बियाके निवासी इस घटनासे लज्जित हैं। वे इसे किसी प्रकार भी उचित ठहरानेका प्रयत्न नहीं करते। यों कुछ सुधार भी हुआ है। अब सिख कनाडामें अपनी पत्नियाँ लानेके लिए स्वतन्त्र हैं और बहुत-से तो ले भी आये हैं। यह एक बात तो निष्पन्न हुई . . .।

यों हमारी बात तो अभी तक शेष है -- अर्थात् नागरिक अधिकारोंकी। इन लोगोंको आस्ट्रेलिया या न्यूजीलैंडकी तरह नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं। अगर इन अधिकारोंपर इस समय जोर दिया जाए तो निःसन्देह ये मिल जायेंगे। इसका समय आ गया है। आवश्यकता इस बातकी है कि श्रीयुत शास्त्रीके[2] समान कोई चरित्रवान व्यक्ति 'एजेंट जनरल' के रूपमें कनाडा जाये और वहाँ रहे। अगर ऐसा हो सका तो नागरिक अधिकार अवश्यमेव मिल जायेंगे।

मैं निष्कर्ष रूपमें यह कहना चाहता हूँ कि संसारके सभी देश एक-दूसरेके निकट आ रहे हैं। भारत अब अधिक देर तक अलग-अलग नहीं रह सकता। संसारके सभी प्रगतिशील देशोंमें भारतीय राजदूत रहें जो अन्य देशोंसे मित्रता बढ़ायें तथा भारतकी साख स्थापित करनेमें सहयोगी बनें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-७-१९२९

१. अंशतः उद्धृत।

२. वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री।

१४५. बाल-वृद्ध-विवाह

वृद्धोंके बालिकाओंसे विवाहके सम्बन्धमें शोलापुरसे एक माहेश्वरी नवयुवक लिखते हैं :[1]

> **माहेश्वरी-समाजकी विवाह पद्धतिसे आप परिचित होंगे ही। उसकी कुरीतियोंपर शान्तिसे किस तरह सत्याग्रह किया जाना चाहिए। . . .**
>
> **आप पुरुष और स्त्रीके किस आयुसे किस आयु तकके विवाहको सुयोग्य विवाह समझते हैं? योग्य उम्रके विवाहोंके खिलाफ होनेवाले किन विवाहोंको सत्याग्रह द्वारा रोकना चाहिए। . . .**
>
> **कृपया आप इस पत्रके सभी प्रश्नोंके उत्तर 'हिन्दी नवजीवन' में अवश्य लिखें।**

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे विवाहोंके विरोधमें सत्याग्रह आवश्यक है। परन्तु सत्याग्रह कैसे किया जाये? सत्याग्रहकी मर्यादाके बारेमें मैंने बहुत दफा लिखा है। तथापि इस समय भी कुछ लिखना आवश्यक है। सत्याग्रही संयमी होने चाहिए। समाजमें उनकी कुछ-न-कुछ प्रतिष्ठा होनी चाहिए। सत्याग्रही दुराचारी पर न कभी क्रोध करे न उससे वैरभाव रखे। दुराचारोंका कार्य चाहे जितना दुष्टतापूर्ण क्यों न हो, दुराचारी व्यक्तिके प्रति सत्याग्रही कठोर शब्दका प्रयोग न करे। वह कर्म और कर्मीका भेद कभी न भूले। कर्म दुष्ट (बुरे) और अच्छे होते हैं, उनके कारण कर्मी दुष्ट न माना जाये। सत्याग्रहीका एक आवश्यक मन्तव्य यह है कि इस संसारमें ऐसा कोई पतित नहीं है, जिसका प्रेम द्वारा सुधार न हो सकता हो। सत्याग्रही दुराचार को सदाचारसे, दुष्टताको प्रेमसे, क्रोधको अक्रोधसे, असत्यको सत्यसे, हिंसाको अहिंसासे दूर करना चाहते हैं। और कोई तरीका इस दुनियामें पापोंको दूर करनेका नहीं है। इसलिए जो मनुष्य सत्याग्रही होनेका दावा करता है, उसे आत्मनिरीक्षण करके देख लेना चाहिए कि क्या वह क्रोध, द्वेष आदिसे मुक्त है? वह जिन विकारों का विरोध करता है, स्वयं उन विकारोंसे मुक्त तो है न? सत्याग्रहीकी आधी विजय आत्मशुद्धि और तपश्चर्यामें आ जाती है। सत्याग्रहीको विश्वास रखना चाहिए कि बगैर व्याख्यानादिके ही सत्य और प्रेमका अदृष्ट और अदृश्य परिणाम दृष्ट और दृश्य परिणामोंसे कहीं ज्यादा होता है।

परन्तु सत्याग्रहीको कुछ बाह्य कार्य भी करने हैं। उसका सबसे पहला काम तो यह है कि सुधारके लिए सार्वजनिक आन्दोलन करके कुप्रथाओंके प्रति विरोधी लोकमत तैयार करे। जब किसी बुराईके विरोधमें लोकमत तैयार हो जाता है, तब कोई धनिक व्यक्ति भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। लोकमत सत्याग्रहका बलवान

१. अंशतः उद्धृत।

शस्त्र है। लोकमत निर्मित हो चुकने पर भी जब कोई व्यक्ति उसकी परवाह न करे तब यह समझ जाना चाहिए कि उसके बहिष्कारका समय आ पहुँचा है। बहिष्कार करनेकी दशामें भी ऐसे मनुष्यका कोई अनिष्ट तो कभी न किया जाये। बहिष्कारका दूसरा अर्थ यहाँ असहयोग है। जो मनुष्य समाजका विरोध करता है, उसे समाजकी सेवा पानेका अधिकार नहीं है। इससे आगे बढ़नेकी मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रत्येक परिस्थितिके लिए कुछ-न-कुछ विशेष कर्त्तव्य तो सदा ही हो सकता है। विवेकशील और बुद्धिशाली सत्याग्रही ऐसे कर्त्तव्यको जान ही लेता है।

कामी पुरुषोंके कामकी तृप्तिका प्रश्न विकट है। कामीके न ज्ञान बचता है, न विवेक। कामी पुरुष किसी-न-किसी तरह अपने कामकी तृप्ति कर लेता है। समाज ऐसे व्यक्तियोंसे कैसे निबटे? इसका एक उपाय यह है कि कन्याकी आयु २० वर्ष हो चुकनेके पहले और उसकी सम्पूर्ण सम्मतिके अभावमें उसका विवाह कभी न किया जाये। ऐसी कोई कन्या वृद्धके साथ कभी विवाह नहीं करेगी। तब फिर वृद्ध कामी क्या करे? समाजके पास इसका कोई उत्तर नहीं है। समाजका कर्त्तव्य निर्दोष बालिकाको बचानेका है, कामीके कामकी तृप्ति करनेका कदापि नहीं। वस्तुतः जब समाजमें शुद्धि-पवित्रताकी मात्रा बढ़ जाती है तब कामीका काम भी शान्त हो जाता है।

हिन्दी नवजीवन, १८-७-१९२९

१४६. पत्र : प्रभावतीको

१८ जुलाई, १९२९

चि० प्रभावती,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं २६ तारीखको इलाहाबाद जा पहुँचूंगा। हम वहाँ दो दिन ठहरेंगे। यदि तुम तब वहाँ आ सको तो अच्छा हो। यहाँ आनेके प्रश्न पर पिताजीकी आज्ञा मानना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मगर मेरा विश्वास है कि पिताजी आज्ञा दे देंगे। संलग्न पत्रको जहाँ पहुँचाया जाना है, वहाँ पहुँचा देना।

मैंने गेहूँ और चना खाना छोड़ दिया है। मैं केवल खोपरा, फल और कुछ साग-सब्जी ले रहा हूँ।

तुम्हें अपनी खांसी बिलकुल अच्छी कर लेनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३५९)की फोटो-नकलसे।

१४७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

२० जुलाई, १९२९

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने कार्यक्रमपर नजर डाल ली है। मेरे हिसाबसे तो वह बिलकुल ठीक है। मैं समझता हूँ कि मैं आसानीसे इतना बर्दाश्त कर लूँगा। सोमवारोंके ख्यालसे मैंने उसे अभी नहीं देखा है। लेकिन मेरा ख्याल है कि तुमने सोमवारके दिनों यात्राका कार्यक्रम नहीं रखा होगा।

प्यारेलाल, देवदास और कुसुमबहन मेरे साथ रहेंगे। वल्लभभाई, महादेव और मणिबहन जबलपुर होते हुए पहुँच जायेंगे। मैं नहीं समझता कि मेरे साथ इनके सिवा और कोई भी होगा।

कृपया मुझे २८ तारीखको मत रोकना। २७ को कार्यक्रम पूरा करके मैं पहली गाड़ी पकड़ लेना चाहूँगा।

आशा है, कमला पहलेसे अच्छी है। इलाहाबाद आने पर मैं उसे स्वस्थ और प्रफुल्लित देखना चाहता हूँ।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू कागजात, १९२९
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय

१४८. पत्र : प्रभावतीको

२० जुलाई, १९२९

चि० प्रभावती,

इसके साथ राजेन्द्रबाबूका पत्र है। इस स्थितिमें तो फिलहाल तुम सदाकत आश्रम में रहकर जो सीख सको वह सीखो और अगस्तमें हिम्मत बाँध कर ससुराल जाओ। वहाँ जाकर बड़ोंकी सेवा करना; किन्तु अपने नियमोंका पालन दृढ़तापूर्वक करना। वहाँ जाना तो है ही। सास-ससुरको विनयपूर्वक प्रसन्न करके वापस भी आ सकती हो। इस बीच यदि जयप्रकाशकी कोई खबर न मिले तो मुझे लगता है कि इस समय जब वे आग्रह कर रहे हैं, ससुराल न जाना भूल होगी। वहाँ जाओ किन्तु परदा न करो। ससुरसे साहसपूर्वक बात करना। यदि वह क्रोध करें तो धीरजसे

सहन कर लेना। तुम्हारी पवित्रता देखकर उनका क्रोध शान्त हो जायेगा। वहाँ जाकर भी पढ़नेका आग्रह न छोड़ना। अंग्रेजीके बारेमें जयप्रकाशके आग्रहकी बात भी बताना। गीता आत्मसन्तोषके लिए आवश्यक है, यह समझाना। मुझसे इलाहाबाद मिलने आना हो तो आ जाना।

कोई बात समझमें न आई हो तो पूछ लेना। मैं २६के सवेरे इलाहाबाद पहुँचूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३५३)की फोटो-नकलसे।

१४९. टिप्पणियाँ

'नवजीवन'की पूर्ति

काकासाहबने अनेक दिनों पहले जो संकल्प कर रखा था, वह अब कार्यरूपमें परिणत हो सका है। फलस्वरूप इस अंकके साथ 'शिक्षण और साहित्य' नामक अंश 'नवजीवन' की पूर्तिके रूपमें पाठकोंको निःशुल्क मिला करेगा। पूर्ति देते रहनेका यह निश्चय करके 'नवजीवन'के संचालकोंने एक जोखिम उठाई है; क्योंकि इसे प्रकाशित करनेके लिए 'नवजीवन'को कोई अतिरिक्त आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होगी। ज्ञान-पिपासु सज्जन इस पूर्तिके कारण 'नवजीवन' लेने लगेंगे और उसकी बिक्री बढ़ेगी ऐसी आशा तो अवश्य रखी गई है। यह आशा सफल हो अथवा न हो, पूर्णिमाके आसपास हर महीने यह पूर्ति तो प्रकाशित होती ही रहेगी। मुझे आशा है कि सभी उसे ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे और उसे सँभाल कर रखेंगे। काकासाहब इसे शिक्षाकी दृष्टिसे अधिकसे अधिक उपयोगी बनानेका प्रयत्न करेंगे। अपेक्षा तो यह की गई है कि आगे चलकर यह विद्यापीठकी नित्य वर्द्धमान प्रवृत्तियोंको पूरी तरह प्रतिबिम्बित कर सकेगी। इसमें विद्यापीठ तथा भारतकी राष्ट्रीय शालाओंका वर्णन भी दिया जाता रहेगा। यों मेरा भविष्यके बारेमें अभी कुछ कहना आवश्यक नहीं है। माह-दर-माह उसमें तो प्रगति होगी, पाठक स्वयं उस आधार पर उसकी उपयोगिताको देखेंगे और उसका मूल्यांकन करेंगे।

याज्ञिकोंका धर्म

लकड़ीकी मोलीकी बात यद्यपि सभी की जानी हुई है, तथापि समय-समय पर उसकी याद ताजा कराने योग्य है। एक लकड़ीको तो दुर्बल बालक भी तोड़ सकेगा किन्तु लकड़ीकी मोलीको राममूर्ति जैसा पहलवान भी नहीं तोड़ सकता। एक लकड़ी का टुकड़ा पानीको कुनकुना भी नहीं कर सकता, मगर लकड़ीका एक ढेर हजारोंका भोजन पका सकता है। इसी तरह एकका किया हुआ सूत्र-यज्ञ भले ही कुछ न कर सके; अनेक लोगों द्वारा किया हुआ सूत्र-यज्ञ मैंचेस्टर, जापान आदिसे आनेवाले

तमाम कपड़ेको बेकाम साबित कर देगा और हर साल भारतसे बाहर जानेवाले करीब १ अरब रुपये बचा लेगा। जगतके इस निरपवाद नियमको ध्यानमें रखते हुए चर्खासंघकी उत्पत्ति हुई है। 'संघ'का अर्थ ही सम्मिलित है। अतएव जो चर्खेको शक्तिमें विश्वास रखते हैं, जिन्हें सूत कातनेके यज्ञमें श्रद्धा है, उन्हें इस मौके पर चर्खा-संघमें शामिल होकर उसका बल बढ़ाना चाहिए। और जो शामिल हो चुके हैं उन्हें अपने पड़ोसीको संघमें शामिल होनेके लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। याद रहे कि इसमें युवकोंके लिए भी स्थान है। देशमें जगह-जगह युवकोंके संघ कायम तो हुए हैं, मगर मैं नहीं समझता कि युवक संघ-शक्तिका सच्चा या पूरा-पूरा उपयोग कर रहे हैं। शालाओंमें पढ़नेवाले सारे युवक और युवतियाँ अगर तकलीकी शक्तिको समझ जायें, और हजारोंकी तादादमें चर्खा-संघमें शामिल हो सकें तो हर-रोज सूतका एक सुन्दर पहाड़ तैयार किया जा सके। इस तरह हरएक आदमी—स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध—अपने-अपने मामूली कर्त्तव्यका पालन करते हुए भी इतना तो सहज ही कर सकता है और स्वराज्य यज्ञमें हाथ बँटा सकता है। अगर किसी बातकी जरूरत है, तो सिर्फ इच्छा-शक्तिकी—आर्थिक लगनकी। अतएव अगर आप सूत न कातते हों, तो कातने लगें और दूसरोंको भी प्रेरित करें; चर्खा-संघके सदस्य न हों, तो खुद उसके सदस्य बनकर दूसरोंको भी न्यौता दें। याद रहे कि सूत कातने का मतलब रुई पींजकर उसमेंसे समान और मजबूत सूत निकालना है। चाहे जैसा बिना बटका ढीला-ढाला या रस्सी-जैसा मोटा-झोंटा सूत, सूत नहीं है।

मगनलाल स्मारक

श्री विट्ठलदास जेराजाणी लिखते हैं[1]

यह बात मेरे ख्यालसे बाहर तो नहीं ही थी, मगर स्व० मगनलाल गांधीके साथके मेरे सम्बन्धके कारण इस विषयमें कुछ लिखते हुए मुझे बहुत संकोच रहा है। मैं जानता हूँ कि इस तरहका संकोच आवश्यक नहीं है। इसमें शक नहीं कि यह काम जल्द ही पूरा किया जाना चाहिए। यह भी सच है कि थोड़ी ही रकम एकत्र करनी है। अतएव जो मगनलालकी सेवाको जानते थे, वे अगर चाहें तो शीघ्र ही रकम एकत्र कर सकते हैं और जनता खादी सम्बन्धी एक सुन्दर संग्रहालयसे लाभ उठा सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-७-१९२९

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। कहा गया था कि उक्त स्मारककी रकम अभी पूरी नहीं हुई है उसके विषयमें गांधीजी लिखें तो अच्छा होगा।

१५०. बारडोली विजयके फल

बारडोलीकी विजयके[1] महत्वकी प्रतीति हमें धीरे-धीरे ही अधिक होगी। अभी हालमें बम्बई सरकारने श्री श्राफके[2] साथके पत्र-व्यवहारमें अपना जो निश्चय प्रकट किया है वह बारडोली-विजयका एक आवश्यक परिणाम है। इस विजयका प्रभाव सारे भारतके बन्दोबस्त और मालगुजारी विभाग पर पड़नेवाला है। अगर मालगुजारी विभाग में सच्चा सुधार हो जाये, वह विभाग साफ-सच्चा बन जाये तो यही तीन चौथाई स्वराज्यके बराबर होगा। क्योंकि विदेशी शासनकी हस्तीका आधार ज्यादातर पैसा ही होता है। कोई विदेशी केवल शौकके लिए ही शासन-भार नहीं उठायेगा, अंग्रेज तो नहीं ही उठायेंगे। जहाँ पैसा नहीं मिला है, वहाँसे उन्होंने अपनी कोठियाँ उठा ली हैं। भारतके मालगुजारी-विभागमें जितना अन्धेरखाता पाया ज़ाता है, इतना शायद ही किसी दूसरे सीगेमें पाया जाता हो। बारडोलीके किसानोंने इस अँधेरे पर उजाला (प्रकाश) डाला है। मगर श्री श्राफको मिले पत्रसे हमें पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इसपर से हम बड़ी-बड़ी आशाएँ कदापि नहीं बाँध सकते। जबान देकर हकीकतन उसे तोड़ देनेके फनमें सरकारी अधिकारी उस्ताद हैं। न्याय और सुधारके बहाने वे अपनी असली चीजको कायम रखते हुए और उसी का पोषण करते हुए देखे गये हैं। मॉन्टेग्यु सुधारके बहाने अधिकारियोंने अपनी तनख्वाहें बढ़ाई हैं, अपनी स्थितिको मजबूत किया है, फौजी खर्च बढ़ाया है, और अपने व्यापारी पायेको मजबूत किया है। अतएव लगानमें सुधार करनेकी जो आशा सरकारी पत्रसे प्रकट होती है, उसे सही साबित करनेके लिए सावधानीकी जरूरत रहेगी। बारडोलीने इस बातका रास्ता बताया है, और उसे निरापद-सा बना दिया है। स्वराज्य और भुखमरीका इलाज, दोनों, इसी रास्ते चलकर मिल सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-७-१९२९

१. देखिए खण्ड ३७, परिशिष्ट १ और २।

२. सदस्य, बम्बई विधान सभा।

१५१. किम् धर्म?

श्री वालजी देसाईको एक मित्रने नीचे लिखा पत्र लिखा है:[1]

गीताजीका एक श्लोक है,[2] जिसका भावार्थ है: कर्म क्या है, ज्ञानी भी इसपर विचार करते-करते थक गये हैं। यहाँ कर्मका अर्थ धर्म करें तो भी अनुचित नहीं होगा। मैं अपने विचारमें धर्मको ही नीति समझता हूँ। नीतिके विरोधी या उससे परेके धर्मको मैं नहीं जानता। नीति-पालनकी पराकाष्ठा—आखिरी हद—धर्म है। और नीतिके मानी हैं, सत्य एवं अहिंसा। सत्य साध्य है, अहिंसा साधन। मगर प्रस्तुत प्रकारके मामलोंमें साध्य और साधन एक ही हैं। इसीलिए मैं लिख चुका हूँ कि सत्य और अहिंसा एक ही सिक्केके दो पहलू हैं।

लेकिन सदा-सर्वदा निश्चयपूर्वक यह कहा नहीं जा सकता कि क्या हिंसा है और क्या अहिंसा। यह कहना सरल होता तो अहिंसाकी कोई कीमत भी न रहती। अहिंसाका क्षेत्र रमणीय है, क्योंकि वह अनन्त है और उसकी शोध करते-करते असंख्य जीवन थक चुके हैं, और दूसरे असंख्योंने अपने प्राणकी आहुति दी है। इसीसे अहिंसा की सदा जय है।

लेकिन इतना विशाल होनेके कारण इस क्षेत्रमें जुटे रहनेवाले भ्रमित भी हो जाते हैं। इससे निराश न होकर और अधिक प्रयत्न करने चाहिए।

जैन भाई अहिंसाको अपना एकाधिकार समझते हैं; इसीसे जब-जब मैं उनकी मानी हुई अहिंसाकी मर्यादासे बाहर जाता हुआ मालूम पड़ता हूँ और फिर भी अपने कार्यमें अहिंसाका आरोप करता हूँ तब कोई सिटपिटाता है, कोई खीझता है और कोई मुझपर तरस खाता है। इन तीनों तरहके सज्जनोंसे मेरा यही कहना है कि अगर वे धीरज रखेंगे तो अहिंसाका उलझन-भरा सवाल धीरे-धीरे सुलझता चला जायेगा। मैं शोधक हूँ, साधक हूँ, सिद्ध नहीं। अतएव भूल और क्षमाका पात्र हूँ। शोध-खोज और विचारविनिमयके इस युगमें अगर मैं अपने विचार-मात्र प्रकट करता हूँ, तो इससे किसीको कोई हानि नहीं पहुँचती। मैं भूल पर होऊँगा, तो अपनेको सुधारूँगा, मेरी मान्यतामें कुछ तथ्य होगा तो जिज्ञासु उससे लाभ उठायेंगे।

अब मैं पत्रके विषयपर आता हूँ। मेरी नम्र सम्मतिमें खुराकके सम्बन्धमें जैनियोंमें जो विश्वास फैला हुआ है, उसमें भूलकी गुंजाइश है। वनस्पतिको मार कर खानेमें मुझे तो अहिंसाकी दृष्टिसे दोष मालूम होता है। खाद्य वस्तु पेड़ परसे उतार कर तत्काल ही खाने योग्य हो, तो उसे वैसे ही खानेमें कमसे-कम हिंसा है। संग्रह-मात्र हिंसापूर्ण है। अग्निस्पर्शसे घोर हिंसा होती है। आग सुलगाना भी घोर हिंसा

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने पूछा था कि क्या वनपक्व आहार जीव-युक्त है; क्या पानीमें भिगोकर उन्हें अंकुरित करके खानेसे बचना उचित न होगा। देखिए पृ० ५२-४

२. 'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः'। गीता, ४-१६।

है। ऐसी दशामें उस अग्निमें हरी या सूखी वस्तुका होम करना, पकाना और भी ज्यादा हिंसा है। मुझे तो यह बात स्वयंसिद्ध प्रतीत होती है। बगैर अग्नि पर चढ़ाये या भूने बिना वनस्पतिके खानेमें उतनी क्रिया कम हो जाती है। हरएक गैर-जरूरी क्रिया हिंसा-दोषसे भरी रहती है। जो आदमी वनस्पतिको राँधकर, भूनकर खाता है वह पूर्व दोषसे मुक्त तो नहीं ही होता। वनस्पतिको अपने शरीरसे बाहर रखकर मारने और फिर उसे खाकर मारनेके दोषसे मुक्ति नहीं मिलती। अँकुर फूट आनेसे अनाज बासी नहीं होता, न अँकुर फूटनेसे पहले अनाज निर्जीव ही होता है। अतएव मैं अन्नको अंकुरित करनेमें कोई बुराई नहीं देखता।

यह एक जुदा और विचारने योग्य प्रश्न है कि आग पर पकाई हुई वनस्पतिका असर शरीर पर क्या होता है। मेरा अपना और जिन्होंने प्रयोग किये हैं, उनका अनुभव यह बतलाता है कि वनपक्व ताजी वनस्पतिसे शरीरको जितनी शान्ति मिलती है, उतनी शान्ति आग पर पकाई हुई वस्तुसे कदापि नहीं मिलती। अग्निपक्व वस्तुमें मादकता पैदा होती है, जिससे वह शीघ्र ही विकार उत्पन्न करती है। गत चार वर्षोंका मेरा अनुभव तो यह है कि जो शारीरिक विकारशून्यता मुझमें वनपक्व वनस्पति खानेसे पैदा हुई थी, उसे जब पकाया हुआ आहार करने लगा तब खो बैठा। वही निर्विकारता इस समय मैं फिरसे प्राप्त कर रहा हूँ। डाक्टरोंके भी इसी तरहके अनुभव मेरे पास मौजूद हैं। मगर उन्हें यहाँ देकर लेखके कलेवरको बढ़ाना नहीं चाहता। अगर कोई तत्सम्बन्धी साहित्य पढ़ना चाहे तो मैं सम्बन्धित ग्रन्थोंके नाम सूचित कर दूंगा।

शहदके लिए मेरे पास कोई बचाव नहीं है। मैं मानता हूँ कि शहद न खाया जाये तो अच्छा है। नीरोगी शरीरवालोंसे मैं शहद लेनेकी सिफारिश नहीं करता। मैंने शहदका त्याग नहीं किया था; इसलिए जब यरवदा जेलमें डाक्टरने मुझे खास तौर पर शहद लेनेकी सलाह दी तब मैंने उसे लेना शुरू किया था, सो अब तक ले रहा हूँ। मगर इस प्रयोगके अन्तमें तो शहद छोड़ देनेकी आशा लगाये हुए बैठा हूँ। शहदका परिमाण तो कम कर दिया है। चीनी या खाँडके मुकाबले शहदको मैं निर्दोष मानता हूँ। डाक्टरों और वैद्योंका भी यही मत है कि शारीरिक दृष्टिसे भी चीनीके मुकाबले शहद अधिक अच्छा है। मगर यदि प्रस्तुत प्रयोग सफल हुआ तो शहदसे जो-कुछ मिलता है, प्रयोगमें ली जानेवाली वस्तुमेंसे वह सहज ही मिल जाता है। सुधरे हुए तरीकोंसे शहद निकालनेमें एक भी मधुमक्खीको कष्ट नहीं पहुँचता। मगर शहद खानेके पक्षमें यह कोई दलील नहीं है।

मैं आरोग्य, अहिंसा और जीवनके अर्थके बीचमें कोई भेद नहीं मानता। जो आरोग्यवर्धक है, उसे अहिंसाका पोषक और अर्थका अविरोधी होना चाहिए। यहाँ आरोग्यसे मतलब शुद्ध और सच्चे आरोग्यसे है। इस दरिद्र देशमें, जहाँ समाज अस्तव्यस्त हो गया है, करोड़ों स्त्री-पुरुष भूखों मर रहे हैं, अर्थका प्रश्न विकट ही है। मगर इस प्रयोगकी सफलता तभी सिद्ध होगी जब यह गरीबोंके लिए भी साध्य और सुलभ हो सके। अभी तो यह दूरकी बात है। मैं स्वयं भी केवल शरीरको ध्यानमें रखकर यह प्रयोग नहीं कर सकता। जिसे मैं धर्म-विरुद्ध मानता हूँ, उसका आचरण करके जीना नहीं

चाहता; और न स्वराज्य ही पाना चाहता हूँ। मैं तो धर्म और अर्थ, सत्य और स्वराज्य, स्वराज्य और सर्वराज्य, देशहित और सर्वहितका मेल मिलानेमें ही पुरुषार्थ मानता हूँ। यही मोक्षका मार्ग है, इसीमें मैं दिलचस्पी लेता हूँ—इसीसे मुझे रसपानका आनन्द मिलता है। जो चाहे वह इस रसको लूट सकता है। मेरा कोई भी काम इससे भिन्न किसी दृष्टिसे नहीं होता।

ऋषभदेव स्वामीकी[1] शोधके बारेमें मैं कुछ नहीं जानता।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २१-७-१९२९

१५२. गुजरातमें खादी उत्पादन

आजकल सभी स्थानोंमें खादीकी बिक्री तो बढ़ गई है; लेकिन उसका उत्पादन उसी प्रमाणमें नहीं बढ़ा। खादीके आन्दोलनकी नींव गुजरातमें रखी गई थी; किन्तु गुजरात उसपर अच्छी इमारत खड़ी नहीं कर सका। इसका एक कारण तो स्पष्ट है ही। गुजरात कपड़ा मिलोंके उद्योगका केन्द्र है। बम्बईको भी गुजरातका भाग गिनें तो ९९ प्रतिशत कपड़ा मिलें अहमदाबाद और बम्बईमें ही है। इसलिए गुजरातियोंमें मिलका कपड़ा पहले रूढ़ हुआ और दूसरे प्रान्तोंके मुकाबलेमें चरखेका लोप गुजरातसे पहले हो गया।

किन्तु गुजरातने स्वराज्यके सन्देशको उत्साहपूर्वक हाथमें लिया। रचनात्मक कार्यमें गुजरातने बहुत बड़ा हिस्सा बँटाया है। इसलिए खादी उत्पादनमें भी गुजरातका अपने लिए शोभनीय स्थान प्राप्त करना ही ठीक होगा। तमिलनाड आदिसे गुजरात होड़ नहीं कर सकता। किन्तु स्वावलम्बन पद्धतिमें और यज्ञार्थ कताईमें गुजरात चाहे जितनी प्रगति कर सकता है। जीविकाके रूपमें चरखा गुजरातमें कम चले तो कोई हर्ज नहीं, पर स्वावलम्बी और यज्ञार्थ कताईकी दृष्टिसे चरखेकी भावना दृढ़ होनी ही चाहिए। यह बात मनमें बैठ जाये और 'खादीके तारमें स्वराज्य है' यह बात बुद्धिको जँच गई हो तो चरखा स्वावलम्बन-पद्धति और यज्ञ-पद्धतिके विचारसे तुरन्त फैल सकता है। गुजरातकी नगरपालिका आदि अलमोड़ाका अनुकरण क्यों नहीं कर सकती? हम सबमें से जिनके पास काफी समय है, वे सूत कातना सीख कर रोज नियमपूर्वक सूत क्यों न कातने लगें? घर-घर इस बातका प्रचार करना आवश्यक है। जो खादीकी फेरी आदिमें समय लगा रहे हैं अब उन्हें अपना समय खादीके उत्पादनमें लगाना चाहिए।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २१-७-१९२९

१. पत्र-लेखकने पूछा था कि फिर ऋषभदेव स्वामीने अग्निसे भोजन पकानेका आविष्कार करके जगतका जो उपकार किया, सो क्या निरर्थक ही माना जायेगा।

१५३. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

साबरमती
२१ जुलाई, १९२९

प्रिय बन्धु,

मैंने आशा की थी कि आप पूर्वी आफ्रिकासे लौटनेके बाद कुछ लिखकर भेजेंगे। कृपया यह अवश्य लिखें कि आपने वहाँ क्या-कुछ किया। आशा है, आपका स्वास्थ्य ठीक है। मैं लगातार यात्रा करते रहनेके कारण अखबार कदाचित् ही देख पाता हूँ। जब कभी मौका मिलता भी है तो सरसरी नजर ही डाल पाता हूँ।

आपका,

अंग्रेजी (जी० एन० ८८१७)की फोटो-नकलसे।

१५४. पत्र : एन० ज्वर्कोफ़को[1]

साबरमती
२१ जुलाई, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मुझे मिल गया है। वह अब तक मेरे कागजातोंमें पड़ा रहा। मैं यह पत्र उसकी पहुँच और धन्यवाद देनेके लिए ही लिख रहा हूँ। आशा है, किसी न किसी दिन उसपर विस्तारसे लिखनेके लिए कुछ घंटे निकाल ही लूँगा। इस बीच आपको इतना बतला दूँ कि परिस्थिति कुछ भी हो सभी प्रकारके युद्धोंको अवांछनीय करार देनेकी भावनाका समर्थन करते हुए मुझे तनिक भी संकोच नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

एन० ज्वर्कोफ़ महोदय
मास्को-६६
सोवियत संघ

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९७०४)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : भारतमें सोवियत संघका राजदूतावास

१. नई दिल्लीमें सोवियत संघके राजदूतावासके सांस्कृतिक विभाग द्वारा गांधी-दर्शन प्रदर्शनी (१९६९)में प्रदर्शित।

१५५. पत्र : फूलसिंह डाभीको

आश्रम, साबरमती
२१ जुलाई, १९२[९][1]

भाई श्री फूलसिंहजी,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। बालक खुराकके प्रयोग करें यह मुझे अच्छा तो लगेगा ही किन्तु ऐसा तुम्हारी देख-रेख या सलाहसे ही किया जा सकता है। यहाँ तो मैं बालकोंको भी प्रयोग करने देता हूँ। इससे उनको नुकसान नहीं होता। तुम्हारी पत्नीके लिए सबसे बड़ी चीज चौबीस घंटे खुली हवा, धूप और पूरा आराम है। उसे दूध और ताजा फल जितना मिल सके, उतना खाना चाहिए। जौके दलियेके बजाय घर पीसे हुए गेहूँके दलियेकी भाखरी खाना ज्यादा अच्छा होगा। उसे खूब चबाना चाहिए। भाखरी कम और दूध अथवा दही ज्यादा खायें। सब्जीके कच्चे पत्ते भी चबाने चाहिए। ऐसा करे तो शरीर जरूर स्वस्थ हो जायेगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्रीयुत फूलसिंहजी
मारफत
श्रीयुत श्री व० बे० राष्ट्रीय विनय मन्दिर, सुनाव
बरास्ता आनन्द

गुजराती (जी० एन० १२९३)की फोटो-नकलसे।

१५६. पत्र : जेठालाल जोशीको

आश्रम
साबरमती
२१ जुलाई, १९२९

भाईश्री जेठालाल,

तुम्हारे पोस्टकार्डका जवाब देना बाकी है। आदर्शोंका पूर्ण पालन करते रहनेके लिए अपने प्रति जितनी सख्तीकी जरूरत है उतनी दूसरोंके प्रति सहिष्णु बननेकी है। कुटुम्बके लोगोंको भी विनयसे ही समझायें। अधीरता या जबरदस्ती अपने आदर्श-

१. खुराक सम्बन्धी प्रयोगके उल्लेखसे।

के विषयमें अश्रद्धा सूचित करती है। तुम्हें मुझसे मिलना हो तो जब मैं आश्रममें रहूँ तब सोमवार छोड़कर किसी भी दिन चार बजे आ सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १३५०)की फोटो-नकलसे।

१५७. भाषण: कडीकी सार्वजनिक सभामें

मंगलवार, २३ जुलाई, १९२९

मैं एक वर्षसे इस संस्थामें[1] आनेके लिए आतुर था। जबसे यह सुना कि छगन-भाई[2] आदि कई व्यक्ति इसमें अपना सर्वस्व लगा रहे हैं, तबसे यहाँ आनेका मन था। कडीके नागरिक और बड़ौदा राज्यके लोग इस संस्थाकी रक्षा करें और उसे आगे बढ़ायें यह वांछनीय है। यदि आप अपने बच्चोंको यहाँ भेजनेको तैयार हों तो वे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें यहाँ किताबी ज्ञानसे अधिक मूल्यवान शुद्ध आचार और विचारकी शिक्षा मिलेगी।

इस संस्थाकी ओरसे जो विवरण पढ़ा गया उसकी सरलता और शुद्धताके लिए मैं मन्त्री तथा संचालकोंको धन्यवाद देना चाहता हूँ। इसके साथ ही मुझे इस बातका दुःख भी व्यक्त कर देना चाहिए कि वे अभी अस्पृश्यताकी समस्या दूर नहीं कर सके। यह ठीक नहीं है। अस्पृश्यता निवारणके बिना हिन्दू धर्मकी कल्पना नहीं की जा सकती। यदि अस्पृश्यताका नाश नहीं हो पाये तो इस ज्ञानके युगमें जब सभी धर्मोंका आपसमें सम्पर्क आता है और उनकी तुलना की जाती है तब ऐसा कोई भी धर्म जिसमें कोई बहुत-बड़ा दोष हो या जिसके मूलमें ही खराबी हो टिक नहीं सकता। यदि हिन्दू धर्म खराब होता या उसके मूलमें कोई खराबी होती तो मैंने उसका त्याग कर दिया होता। हिन्दू कुलमें जन्म लिया है, मैं इतने ही से सन्तोष नहीं मान सकता। बापके कुएँमें तैर सकनेमें पुरुषार्थ है, डूब जानेमें नहीं। हिन्दू धर्म अच्छा है; किन्तु अस्पृश्यताका कलंक उसपर लगा हुआ है। हिन्दू धर्ममें यदि अस्पृश्यता मूलबद्ध होती तो उसका अवश्य ही नाश हो गया होता। यदि हिन्दू धर्ममें यह जड़ता आ गई है तो उसे दूर करनेके लिए बलिदान करना चाहिए। यह संस्था जिसके साथ छगनलालका सम्बन्ध है, समाजके दबावके कारण अस्पृश्यताको सहन भले ही करे, (तो मैं कहूँगा कि) कड़वा पाटीदार समाजकी भलाईके माध्यमसे हिन्दू धर्म और सबकी भलाई होनी चाहिए। एक कौमकी भलाईमें सबका भला है, यह मानकर इसे दूर करना एक अभिमानकी बात मानी जानी चाहिए। कड़वा पाटीदार समाज किसी भी व्यक्तिको अस्पृश्य मानकर कौमकी सेवा नहीं कर सकता। बाल-विवाह और अस्पृश्यताकी तुलनामें मैं बाल-विवाहकी बातको गौण मानूँगा। बाल–विवाह तो बड़े कहे

१. कड़वा पाटिदार आश्रम।
२. छगनलाल पीताम्बरसे।

जानेवाले पाटीदारोंमें चलता है। पूरे हिन्दुस्तानमें बाल-विवाह नहीं है। यदि ऐसा होता तो समाजका नाश हो गया होता। उसके प्रति धीरज रखा जा सकता है। किन्तु अस्पृश्यता तो एक क्षण भी सहन नहीं की जा सकती। आप लोगोंको अपना यह निर्णय जाहिर कर देना चाहिए कि (शालामें) योग्य अन्त्यज लिये बिना काम नहीं चलेगा। साथ ही मैं कताई प्रारम्भ करनेकी सलाह भी दूँगा। कताईको प्रोत्साहन दिया जाये इतना ही नहीं, उसका आग्रह रखा जाना चाहिए। बच्चोंके शरीर पर गहने, शृंगारकी चीजें नहीं रहने देनी चाहिए और उन्हें कताई सिखाई जानी चाहिए। बालकोंमें अच्छे संस्कार डालने पर जोर दें।

राष्ट्रीय भावनाका पोषण करना चाहें तो आपको चाहिए कि हिन्दीको स्थान दें। यह भाषा सीखनेमें सरल है, उससे हमारा काम जैसे-तैसे नहीं, बहुत अच्छी तरह चल सकता है। कांग्रेसका कार्यक्रम हल्का और सुन्दर होनेके साथ ही व्यापक भी है और ऐसा है कि देशमें रहनेवाले इस राष्ट्रीय कार्यक्रममें उन्हें जो स्वागतके योग्य लगे और पसन्द आये उसमें चुनकर हाथ बँटा सकते हैं। इस कार्यक्रममें खादी प्रचार और विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार भी है। एक विदेशी धागे तकका बहिष्कार करके पूरी तरह खादी ही अपनाई जानी चाहिए। यहाँ खादीकी बिक्री तो इतनी है कि माँग पूरी नहीं हो पाती। एक ही स्थान पर खादी बने और वही सब जगह बेची जाये, यह खादीका शास्त्र नहीं है। आप स्वयं उसे कातें, बुनें, तैयार करें, और पहनें। यदि आप अपने अन्य कामोंके बीचमें थोड़ा अवकाश निकालकर कातते रहें तो कहा जा सकता है कि आप देशकी सम्पत्ति बढ़ायेंगे। महीन कपड़ा पहनना हो तो महीन कातें, किन्तु आपको विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारमें पूरा-पूरा योग देना चाहिए।

इस राज्यमें शराबसे काफी आमदनी है। इस तरहकी आमदनी किसीको सुखी नहीं बना सकती। इसके प्रचारका कुछ भी कारण क्यों न हो, हमें शराबके दुकानदारों, पीनेवालों और सरकारके पास जाना और आन्दोलन करना चाहिए। आप उन्हें प्रेमपूर्वक उसका त्याग करनेके लिए भी कह सकते है; शराबखानोंके मालिकोंको समझा सकते हैं। पीनेवाला जीवन बरबाद करता है। वह पत्नी और बहनके बीचके भेदको, जिसे एक बालक भी समझ सकता है, भूल जाता है।

आजकल हम गोरक्षणके बदले गोभक्षण कर रहे हैं। हिन्दुस्तानमें हम हिन्दुओंके प्रतापसे बहुत-सी गायें आस्ट्रेलिया जाती हैं। वहाँ करोड़ों रुपयोंका गोमांस तैयार किया जाता है। वहाँ उसका रस निकाला जाता है। यदि उसका वर्णन करूँ तो आपको रुलाई आ जाये। वहाँ गायोंका जो संहार होता है, वैसा संहार यहाँ मुसलमानभाई बकरीदके दिन भी नहीं करते। वहाँ अधिकांश गायें गुजरात और काठियावाड़से जाती हैं। इस पापमें हम सीधे-सीधे तरीकेसे भागीदार हैं। पूजनेके लिए घरके आगे गाय बाँध लेना गोपालन नहीं है। भैंसको रखोगे तो गायका वध अवश्य होगा। इसलिए गायको बचाना हो तो भैंस पालनेके मोहका त्याग करना पड़ेगा। भैंसका और कोई उपयोग नहीं किया जाता। दूधके लिए भैंसको स्थान दिये जानेके कारण ही गायोंका वध प्रारम्भ हुआ है। कोई कहे कि ऊँटनीका दूध कामका है और बहुत

उपयोगी है तब तो दोनोंका वध करे। भैंससे खेती नहीं की जाती। कोंकणमें भैंसेका खेतीमें उपयोग हो सकता है; किन्तु गाय और उसके बछड़ेका उपयोग तो सब जगह है। गायसे प्राप्त सभी चीजोंका जितना उपयोग हो सकता है, उतना भैंससे प्राप्त चीजोंका नहीं हो सकता। यह तो चिकित्सा-शास्त्र भी कह सकता है। मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि गोरक्षा करना परमधर्म है। हम स्वयं गोरक्षा करें तो उसे रक्षा मिल जायेगी। हिन्दू पूरे संसारमें गायका उद्धार कर सकते हैं। हम स्वार्थमें डूबे हुए हैं इसीलिए आँख, कान मूँदे हुए हैं। जबतक हम बैलोंको बधिया करके काममें नहीं लायेंगे तबतक गायको नहीं बचा सकते। गायका पूरा-पूरा उपयोग करने पर ही उसे बचा सकेंगे। हमने चमड़ेके कामको नीच काम मानकर अन्त्यजोंको मरी गायका माँस खानेवाला बना दिया है। हमने उसकी हड्डियोंका उपयोग तो भुला ही दिया है। यदि मुफ्त दें तो बहुत-से किसान उसका इस्तेमाल कर सकते हैं। हिन्दुस्तानमें कहीं एक भी ऐसा चर्मालय नहीं चल रहा जहाँ केवल अपने-आप मरी गायका चमड़ा ही इस्तेमाल होता हो। ऐसा चर्मालय केवल मैं ही चला रहा हूँ। इस धन्धेको सीखनेके लिए मैंने आश्रममें एक खास मनुष्य नियुक्त कर रखा है और मैं उसे यह शास्त्र सिखवा रहा हूँ। गायको बचाना हो तो बछड़ोंको बधिया करके (ठीक तरीकेसे) उसके वंशको बढ़ाना चाहिए। यदि गायकी नस्ल अच्छी हो तो एक गायसे हमको कमसे-कम २० सेर दूध मिल सकता है। बंगलौरमें ८० रतल दूध देनेवाली गाय भी मैंने देखी है। किन्तु उसे रातिब आदि भी काफी दिया जाता है; ८० रतल दूध तो कोई भैंस नहीं दे सकती। यहाँ २० रतल दूध दे सकनेवाली गायकी नस्ल तैयार करनेमें अभी पाँच वर्ष लगेंगे। अच्छे साँड़ोंको रखना और इस बातका प्रचार किया जाना चाहिए। यह तो राज्यका कर्त्तव्य भी है।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, २८-७-१९२९

१५८. तार: जवाहरलाल नेहरूको[1]

[२३ जुलाई, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

जवाहरलाल,

शनिवारको समितिकी बैठकके बाद कोई गाड़ी न हो तो ध्वजारोहण रविवारको निश्चित कर लें।

अंग्रेजी (एस० एन० १५४३४)की फोटो-नकलसे।

१. इलाहाबादसे भेजे तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था: "क्या आपके द्वारा रविवारको प्रातः आठ बजे राष्ट्रीय-ध्वज फहराये जानेकी घोषणा कर सकता हूँ"।

१५९. ब्रिटिश गियानासे

जार्ज टाउनसे देशबन्धु एन्ड्रयूजके पत्र[1] दिनांक १ जूनका निम्नांकित भाग पाठकोंको रुचिकर लगेगा।

> **इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि अन्य स्थानोंके बजाय ब्रिटिश गियाना की हालत अच्छी है। जलवायुकी बात छोड़िए, वह तो बहुत आर्द्र है।**
>
> **इस उपनिवेशके प्रति मेरे आकर्षणका सबसे बड़ा कारण है, यहाँ रहनेवालोंकी जातीयताके विषसे स्पष्ट दिखाई पड़नेवाली मुक्ति। यूरोपवासियोंकी संख्या भी यहाँ नगण्य है।**
>
> **आर्थिक क्षेत्रमें, आफ्रिका निवासियोंकी हिन्दुस्तानियोंसे स्पर्धा नहीं . . . है। कुल मिलाकर आफ्रिका निवासी खेती-बाड़ीके कामसे हट रहे हैं, जब कि हिन्दुस्तानी धानकी खेतीके जबर्दस्त विकासके काममें लगे हुए हैं।**
>
> **. . . राष्ट्रकी हैसियतसे हमने आफ्रिकामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंके बारेमें बड़ी गम्भीरताके साथ सोचा है, किन्तु मैं कह सकता हूँ कि इस 'नए संसार' में हिन्दुस्तानियोंकी संख्या, अन्य सभी आफ्रिकी स्थानोंकी तुलनामें अधिक है। मैं समझता हूँ कि यही अवसर है जब हम लोग अपनी पूरी शक्ति लगाकर यहाँकी हालत इस तरह सुधारें कि आनेवाली पीढ़ियाँ 'नए संसार' में बसी हिन्दुस्तानियोंकी इस बस्ती पर गर्व कर सकें . . .।**

इस पत्रको अत्यधिक सावधानीके साथ पढ़ना जरूरी है। डेमेरोराको हिन्दुस्तानियोंके बसने योग्य बताते हुए उसकी प्रशंसामें जैसा उत्साह दीनबन्धुने दिखाया है, वैसा मैं नहीं दिखा सकता। इस जगहके अस्वास्थ्यकर होनेकी खबरोंमें अतिशयोक्ति नहीं थी। दुनियाकी ऐसी खराब आबोहवावाली जगहमें किसीको जा बसनेकी सलाह देते समय मैं तो बहुत ही सावधानी बरतूंगा। मुझे याद है कि दक्षिण आफ्रिकामें एक बार चतुराईसे भरा यह सुझाव भी आया था कि हिन्दुस्तानी लोग ऐसे स्थानोंमें चले जायें जो उनकी बस्तीके लिए अधिक उपयुक्त हो सकते हैं; पर जो गोरे प्रवासियोंके लिए नितान्त अनुपयुक्त हैं। इसका अर्थ यह है कि हिन्दुस्तानी लोग इस महाद्वीपके उन भागोंमें जा बसें जो सामान्यतः स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत ही खराब हैं। यह नहीं कहा गया था कि दक्षिण आफ्रिकाकी जलवायु भारतीयोंके लिए उपयुक्त नहीं है। वैसे इतना कहा जा सकता है कि ऐसे स्थानोंमें भी यूरोप निवासियोंकी तुलनामें हिन्दुस्तानियोंका स्वास्थ्य ठीक रहता है। लेकिन गोरे उन्हें वहाँ भी नहीं रहने देना चाहते। डेमेरारा ऐसा ही स्थान है। यहाँ गोरे मुश्किलसे ही रह पाते

१. अंशतः उद्धृत।

हैं। इसीलिए यदि यहाँके हिन्दुस्तानी राजनैतिक अयोग्यताओंसे पीड़ित नहीं हैं अथवा यहाँके महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) एक आफ्रिका निवासी हैं तो इसमें प्रसन्नता की बात क्या है? यह तो एक मजबूरी है। इसमें सद्भावनाकी बात कहाँ आती है? अगर आफ्रिका निवासी खेतिहर मजदूरके रूपमें काम करनेसे इनकार करता है तो मेरे विचारसे यह केवल इसलिए नहीं कि वह खेतोंमें काम ही नहीं करेगा, बल्कि इसलिए कि स्वास्थ्यको दृष्टिसे बुरे स्थानोंमें काम करनेकी वह इच्छा ही नहीं कर पाता। उसकी अपनी जमीन पर दक्षिण आफ्रिकामें तो वह कार्य करता है। तब फिर स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हानिकारक स्थानमें, यह श्रमसाध्य व्यवसाय, कोई हिन्दुस्तानी ही अपनी गरीबीके कारण क्यों चुने? पूर्वी आफ्रिकाकी दशा ऐसी ही है। ऊँचाई परके हिस्से उसके लिए नहीं हैं। इसलिए कुल मिलाकर यहाँके हिन्दुस्तानियोंके सामने उपनिवेश बनानेका विचार करनेके पहले अपनी दशा सुधारने, स्वराज्य प्राप्त करने तथा हिन्दुस्तानका राजनैतिक महत्व बढ़ानेकी समस्या है। मेरी रायमें इस समय हमारे लिए इतना करना काफी होगा। हमें फिलहाल संसारके विभिन्न भागोंमें बस गये हिन्दुस्तानियोंके अधिकारोंकी रक्षाका प्रयत्न करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-७-१९२९

१६०. शहरी बनाम देहाती

कई संवाददाताओंने मेरे पास 'प्रबुद्ध भारत'की कतरनें भेजी हैं, जिनमें श्री ग्रेगकी पुस्तक[1] और साथ ही चरखा-सम्बन्धी बातोंकी विशद आलोचना की गई है। लेख इतना लम्बा है कि उसे यहाँ उद्धृत नहीं किया जा सकता। जिज्ञासु पाठक मूलको ही पढ़ जायें। उसमें जिन मुद्दोंका प्रतिपादन किया गया है, वे यों हैं:

१. भारतको पाश्चात्य ढंगके अनुसार औद्योगिक बनाया जाना चाहिए।

२. जीविका-निर्वाहका प्रश्न चरखे द्वारा हल नहीं किया जा सकता।

३. चरखेकी सफलताके लिए जो शर्तें रखी गई हैं, मनुष्य-स्वभाव और वर्तमान लोक-रुचिकी दृष्टिसे, उनकी पूर्तिकी आशा रखना कठिन है।

४. यन्त्रोंका महत्व और औचित्य देशकी आन्तरिक आवश्यकताओंकी पूर्तिमें उतना नहीं है, जितना विदेशके बाजारों पर आक्रमण करने और उन्हें हथियानेमें है।

५. अगर भारतको जिन्दा रहना है और मानव समाजमें उसे अपना आध्यात्मिक कार्य करना है, तो उसे अपनेको अर्वाचीन बनाना ही चाहिए। . . . हमें बिना किसी झिझकके, और उत्साहपूर्वक अर्वाचीन औद्योगिक तरीकोंको अपनाना चाहिए, . . . किन्तु साथ ही हमें आध्यात्मिकताका भी व्यापक

1. "खादीका अर्थशास्त्र" या "इकार्नोमिक्स ऑफ खद्दर"।

व्यवहार करते रहना चाहिए, राष्ट्रके मस्तिष्कमें शक्तिशाली आध्यात्मिक आदर्श की सृष्टि करनी चाहिए और स्वदेशके प्रति लोगोंमें महान् प्रीति पैदा करनी चाहिए, जिससे हम अर्वाचीनके उन अँधेरे पहलुओंको कुशलतापूर्वक पार कर जायें, जिनमें आज पाश्चात्य संसार बुरी तरह फँसा हुआ है। आध्यात्मिक आदर्शवादके अभावमें अर्वाचीनता प्रलयकारिणी साबित होगी।

जहाँतक हो सका है, मैंने लेखकके ही शब्द दिये हैं।

मुझे दुःख है कि मैं इन सिद्धान्तोंसे अपनेको एकमत नहीं पाता। स्पष्ट ही ये सिद्धान्त इस विचारके परिणाम हैं कि अर्वाचीन सभ्यता अपेक्षाकृत अच्छी चीज है और उसके आगमनको रोकनेकी थोड़ी भी आशा नहीं रखी जा सकती। एक ओर इसकी अतृप्त भौतिक आकांक्षाएँ हैं, और दूसरी ओर युद्ध इसका परिणाम होनेके कारण पश्चिममें विवेकशील लोगोंका एक ऐसा दल दिन-ब-दिन बढ़ रहा है, जिसे इस सभ्यतामें विश्वास नहीं है।

लेकिन सवाल भले-बुरेका नहीं है, सवाल तो यह है कि भारतको पश्चिमी ढंगका औद्योगिक देश क्यों बनना चाहिए? पाश्चात्य सभ्यता शहराती है। इंग्लैंड या इटली-जैसे छोटे देश अपनी जीवन-धाराको शहराती बना सकते हैं। अमेरिका-जैसे विशाल देशके लिए भी, जिसकी आबादी बहुत बिरली या बिखरी हुई है, यही एक उपाय है। लेकिन यह बात सोचने योग्य है कि एक घनी आबादीवाले विशाल देशको, जिसकी प्राचीन परम्परा ही देहाती है और जो अबतक बराबर उपयोगी बनी हुई है, पाश्चात्य आदर्शकी नकल करना चाहिए या नहीं। उसे ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि जो बात परिस्थिति विशेषवाले एक देशके लिए अच्छी है, वही एक बिलकुल जुदी परिस्थितिवाले देशके लिए भी अनुकूल हो। 'भटा एकको पित करे, करे एकको बाय।' किसी देशकी प्राकृतिक रचना उसकी संस्कृतिके निर्माणमें महत्वका हाथ रखती है। ध्रुव प्रदेशमें रहनेवाले किसी मनुष्यके लिए 'फरकोट' भले ही एक आवश्यक वस्तु हो, किन्तु भूमध्यरेखाके बीचके उष्णतम प्रदेशोंमें रहनेवालेका उसीसे दम घुटने लगेगा।

लेखकका यह कहना कि जीविका–निर्वाहका प्रश्न चरखेसे हल नहीं हो सकता, तर्ककी दुनियामें कोई स्थान ही नहीं रखता। उलटे इस प्रश्नका हल तो चरखे या उसी-जैसी किसी वस्तुसे हो सकता है। अगर भारतको पेटभर खाकर जीना हो तो क्या देशी और क्या विदेशी हरएक प्रतिष्ठित लेखकने भारतके लिए गृह-उद्योगकी आवश्यकताको स्वीकार किया है। प्रस्तुत लेखकने श्री ग्रेगके निष्पक्ष निबन्धको रूखे ढंगसे निरुपयोगी बताकर न तो अपने साथ न्याय किया है, न श्री ग्रेगके साथ और न उनके अपने देशके साथ। श्री ग्रेगका इंजीनियरिंग (स्थापत्य विज्ञान) सम्बन्धी अनुभव विशाल है, उन्होंने निश्चित रूपसे यह सिद्ध कर दिया है कि अगर भारतके ३० करोड़ निवासियोंके हाथ-पैरोंमें भरी हुई शौर्य शक्ति निरुपयोगी करार दे दी जाती है और उसके बदले देशके जीवन-निर्वाहकी दृष्टिसे भाप या ऐसी ही किसी दूसरी शक्तिका इस्तेमाल करनेका असम्भव प्रयत्न किया जाता है, तो अवश्य ही

वह घातक होगा, और उसके कारण भारतके करोड़ों स्त्री-पुरुष मृत्युके मुखमें चले जायेंगे। अगर मनुष्य कोई ऐसी कोशिश करे कि जिससे हाथका कौर मुँह तक ले जानेमें हाथसे काम न लेना पड़े तब तो कोई बात ही नहीं बची; हाथका काम यन्त्रको करने देना और इस तरह अत्यन्त गर्म भोजन खाते समय हाथके स्पर्श-स्नायु मस्तिष्क तक जो सन्देश पहुँचाते रहते हैं उनके द्वारा मिलनेवाली स्वयंसिद्ध रक्षासे वंचित रह कर कभी-कभी मुँहको जला लेनेकी जोखिम उठाना भयंकर है।

तीसरी बातका उत्तर तो इसीमें आ जाता है। 'चरखेके लिए दी गई शर्तें मनुष्य-स्वभाव और वर्तमान लोक-रुचि' के विपरीत तो हैं ही नहीं बल्कि वे तो 'मनुष्य-स्वभाव और वर्तमान लोक-रुचि' पर ही आश्रित हैं। भारतके लिए तो यह कोई अजीब बात नहीं है। अगर ऐसा होता तो जहाँ देशकी अन्य अनेक राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ निराशा और उलझनोंमें फँसी पड़ी हैं, वहाँ चरखेका सन्देश २,००० गाँवोंमें न फैला होता, और न उसने धीमेही सही लगातार इतनी तरक्की की होती, जितनी कि पिछले ८ वर्षोंकी जागृतिमें हमारी आँखों देखते हुई है।

चौथे मुद्देमें लेखक यन्त्र-युगकी पूजाको इसलिए उचित नहीं मानते हैं कि उससे 'देशकी आन्तरिक आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं,' बल्कि इसलिए कि उससे 'विदेशी बाजारों पर आक्रमण किया जा सकता है, वे हथियाये जा सकते हैं।' सौभाग्यसे हो या दुर्भाग्यसे, भारतके पास कोई विदेशी बाजार ही नहीं हैं जिन पर वह आक्रमण करे या जिन्हें हथियाये। और अगर यह लेखक ऐसी कोई योजना तैयार कर रहे हैं, तो मेरे विचारमें चरखेके समर्थकोंने अपने सामने जो कार्यक्रम रख छोड़ा है, उसके मुकाबले उनकी योजनाका सफल होना कठिनतर काम है।

लेखकका आखिरी मुद्दा उनकी सारी दलीलों पर पानी फेर देता है। ये भारत को अर्वाचीन भी बनायेंगे और उसकी आध्यात्मिकताको भी सुरक्षित रखेंगे, जिसके बिना, जैसा कि वह बड़े टाइपमें देते हैं, 'अर्वाचीनता प्रलयकारिणी सिद्ध होगी।' वे भारतसे वह काम कराना चाहते हैं, जिसे अनुभवी ऋषियोंने असम्भव बतलाया है। 'मनुष्य परमात्मा और लक्ष्मी दोनोंको नहीं पूज सकता।' वह इस बातको लगभग मंजूर करते हैं कि पश्चिम इन दोनोंमें सामंजस्य बैठानेमें असफल हुआ है। फिर वह क्योंकर यह सोचते हैं कि भारत उस असम्भव कामको कर सकेगा? हम यह क्यों न सोचें कि अगर हमारे पूर्वज इसे कर सकते तो बहुत पहले उन्होंने यह कर लिया होता? सचमुच इस प्रयत्नके बाद ही उपनिषदोंके रचयिताओंने कहा था: 'सब कुछ परमात्माका है। अतएव इस तरह रहो कि तुम्हारा मन तुम्हारे पड़ोसीकी सम्पतिके लिए न ललचाये।'[1] हथियानेका मतलब ही जबर्दस्ती करना है। जबर्दस्ती का आध्यात्मिकतासे कभी मेल नहीं बैठाया जा सकता। अतएव ऐसे विषादपूर्ण विषम विचारवाले लेखको पढ़कर मुझे दुःख हुआ और सो भी एक ऐसे पत्रमें जिसका ध्येय एकमात्र आध्यात्मिक-संस्कृतिका प्रचार है।

१. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

ज्यादातर दुःखकी बात तो यह है कि लेखकने अपनी दुधारी बातोंकी स्थापना करते समय नाहक ही स्वामी विवेकानन्दके नामको घसीटा है। एक विवेचनापूर्ण लेखमें स्वकल्पना-प्रसूत बातोंको किसी स्वर्गीय महापुरुषकी बातें कहकर प्रमाणित करना साहित्यिक चोरी है—अपहरण है, और उसे इसी रूपमें समझा जाना चाहिए। हमें यह विचार करना चाहिए कि हम मुट्ठी-भर शिक्षित भारतीय देशके करोड़ों मूक निवासियोंके भाग्यके साथ उनके न्यासीके नाते खिलवाड़ करने जाकर कितनी गम्भीर जिम्मेदारी अपने सिर उठा रहे हैं। उन लोगोंकी जिम्मेदारी तो और भी गम्भीर और बढ़ी-चढ़ी है, जो अपने लिए थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक दृष्टिका दावा करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-७-१९२९

१६१. टिप्पणियाँ

स्वागतम्

भारत-कोकिला पश्चिममें अनेक बातोंमें विजय प्राप्त करके स्वदेश लौट आई हैं। समय ही बतायेगा कि उनके द्वारा उत्पन्न प्रभाव कितना स्थायी हुआ है। खानगी जरियोंसे जो संवाद मिलते रहे हैं, उन्हें कसौटी माना जाये तो कहना चाहिए कि सरोजिनी देवीने अमेरिकाकी प्रजाके मन पर अपने कार्यकी गहरी छाप डाली है। इस विजय यात्राको समाप्त करके अब वह ऐसे समय स्वदेश वापस आई हैं जब कि देशके सामने अनेक और उलझन-भरी समस्याएँ हैं। इन समस्याओंको हल करनेमें वह हाथ तो बँटायेंगी ही। जिस मोहिनी मन्त्रकी छाप वह इतनी सफलतापूर्वक अमेरिकावालों पर डाल सकी हैं, ईश्वर करे उनका वह जादू हमपर भी असर कर जाये।

असम-बंगाल जलप्रलय

पूर्वी बंगाल और असम पर जो दैवी प्रकोप हुआ है, उसके निवारणके लिए सहायताकी जो अपील[1] की गई थी उसके जवाबमें ठीक-ठीक चन्दा इकट्ठा होने लगा है। एक ओर अबतक कुल मिलाकर ९७०५) चन्देमें मिले हैं, दूसरी ओर डा० प्रफुल्लचन्द घोषने नीचे लिखा तार भेजा है, जिससे संकट-ग्रस्त प्रदेशकी वस्तुस्थितिका सच्चा परिचय होता है:[2]

> तीन जगहोंसे गोमतीका बाँध टूट जानेके कारण 'औस' धानकी पकी पकाई फसल बरबाद हो गई है। फलस्वरूप मवेशियोंको घास मिलना भी

१. देखिए "सिलहटका जलप्रलय", ११-७-१९२९।

२. तारका पहला अनुच्छेद छोड़ दिया गया है जिसमें डा० घोषने कुछ सज्जनों द्वारा बाढ़-पीड़ित क्षेत्रोंका निरीक्षण करनेके बाद राहत कार्यके विभिन्न मदोंमें दिये गये दानकी तफसील दी थी। इन सज्जनोंके नाम और दानकी तफसीलके लिए देखिए "टिप्पणियाँ", १५-८-१९२९ का उपशीर्षक "बाढ़ पीड़ित और चरखा"।

दुर्लभ हो गया है। मजदूर वर्ग बेकार बैठा है। जिन किसानोंके पास जरा-जरा-सी जमीन है, उनकी हालत दयनीय हो हो गई है। उनके पास न तो पेट-भर खानेको अनाज है, न नई जमीन लेकर जोतने योग्य पूंजी। सौ के करीब गाँवोंमें बाढ़ अब उतर चुकी है; उनकी हानिके आँकड़े मिले हैं; अन्दाजन उन गाँवोंमें करीब अब नौ लाख रुपयोंकी फसल बरबाद हो चुकी है। बाढ़के पहले भी इन गाँवोंकी हालत बहुत अच्छी तो नहीं ही थी। लेकिन इस नये संकटके कारण तो उनका सर्वनाश ही हो गया है।

संकट-निवारणका काम लम्बे समय तक जारी रखना पड़ेगा। क्योंकि कई खेत ऐसे हैं, जिनमें जुलाई १९२०से पहले कोई भी फसल खड़ी नहीं की जा सकती। चरखे बनवाने, जमीन जुतवाने, धान साफ करने और कताईकी व्यवस्था के लिए बहुत ज्यादा रुपयोंकी जरूरत पड़ेगी। अतएव सभीसे हमारी नम्र प्रार्थना है कि वे इस आपत्तिकालमें टिपराकी जनताकी सहायता करें।

चन्देकी तमाम रकम श्री सुरेशचन्द्र बनर्जी (अध्यक्ष) या डा० प्रफुल्ल-चन्द्र घोष (मन्त्री)के नाम 'अभय आश्रम, कुमिल्ला,' के पतेसे भेजी जानी चाहिए। हर तरहकी सहायता सधन्यवाद स्वीकार की जायेगी।

यह तो मेरे पास जो पत्र आ रहे हैं उनमेंसे केवल एक है।[1]

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-७-१९२९

१६२. बड़ौदा राज्यमें मिल-मजदूर[2]

सेवामें,

सम्पादक 'यंग इंडिया'

महोदय,

मैं बड़ौदा राज्यमें सूती कपड़ा मिलों और अन्य कारखानोंके मजदूरोंकी दयनीय दशाकी ओर आपका ध्यान दिलाना चाहूँगा और प्रार्थना करूँगा कि इन लोगोंकी स्थिति सुधारनेमें आप कृपापूर्वक अपनी सहायता प्रदान करें। शायद आपको यह मालूम है कि ब्रिटिश भारतमें सन् १९२२से श्रमिकोंसे सप्ताहमें साठ घंटे काम लेनेकी व्यवस्था है; अर्थात् उन्हें दिनमें दस घंटे काम करना पड़ता है। लेकिन बड़ौदा राज्यकी मिलोंमें, आज भी श्रमिकोंसे १२ घंटे, और आवश्यकता पड़ने पर इससे भी अधिक समय तक काम लेनेकी छूट है। यही स्थिति बाल-श्रमिकोंकी है। यहाँ कारखाना कानूनके अनुसार आधे समय तक

१. इस शीर्षकको २८-७-१९२९ के **नवजीवन**में प्रकाशित टिप्पणीसे भी मिला लिया गया है।
२. यह 'चिट्ठी-पत्री' शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

काम करनेवाले बच्चोंकी न्यूनतम आयु १२ वर्ष और पूरे समय तक काम करनेवाले बच्चोंकी आयु १५ वर्ष निश्चित कर दिये जानेपर भी आज तक छोटी आयुके बच्चोंसे काम लिया जा रहा है. . .। मुझे मालूम है कि अहमदाबादके कपड़ा मिल मजदूरोंने आपके मार्गदर्शनमें संघर्ष किया और वर्तमान कारखाना कानून लागू होनेके पूर्व ही वहाँ दैनिक कामके लिए १० घंटे निश्चित करा लिये गये थे। इसी प्रकार आपके ही सुझावपर और आपके ही प्रभावके कारण इन्दौर राज्यमें भी यही सुधार लागू हो गया है। अब बड़ौदा राज्य भी अपने कारखाना कानूनमें परिवर्तन करनेका विचार कर रहा है। राज्य द्वारा इन नियमोंका मसविदा प्रकाशित कर दिया गया है। यदि इन नियमोंको अन्ततः स्वीकृत कर लिया गया तो बड़ौदाके मजदूरोंको भी ब्रिटिश भारतके समान सुविधाएँ मिलने लगेंगी। किन्तु मुझे पता चला है कि स्थानीय मिल-मालिक इस अत्यधिक आवश्यक और चिर-अपेक्षित सुधारका विरोध कर रहे हैं . . .। यह प्रश्न आगामी सप्ताह बड़ौदा परिषदके सामने विचारार्थ प्रस्तुत हो रहा है और यदि इस मौके पर आप कृपापूर्वक उक्त विषयसे सम्बन्धित अपने विचार प्रकाशित कर सकें तो वे परिषद और राज्य दोनोंके लिए ही और न्यायपूर्ण एवं स्थायी निर्णय लेनेकी दिशामें बहुत सहायक सिद्ध होंगे।

मैं हूँ,
आप 'दोनोंका मित्र'

उपर्युक्त पत्र[1] में सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। लेखकको मैं जानता हूँ और यह मानता हूँ कि अपने बारेमें उन्होंने जो-कुछ कहा है, वैसा है भी। मैं नहीं जानता कि मेरी आवाज जहाँ पहुँचनी चाहिए वहाँ तक पहुँचेगी या वहाँतक पहुँच भी गई तो कितनी प्रभावशाली होगी? फिर भी मैं यह दृढ़तापूर्वक कहूँगा कि किसी भी देशी रियासतका उसमें भी बड़ौदा जैसे राज्यका श्रमिकोंको ब्रिटिश भारतके मुकाबिलेमें भी कम सुविधाएँ देना उचित नहीं है। दरअसल ब्रिटिशभारतमें भी कानून द्वारा निश्चित प्रतिदिन १० घंटेका कार्यकाल और बच्चोंको काम पर लगानेकी आयुके मामलेमें सुधारकी आवश्यकता है। अगर पूँजीपतियोंको एकदम बदनाम नहीं हो जाना है तो उन्हें स्वयंमेव आत्मसंयमसे काम लेना चाहिए और श्रमिकोंके हितोंको अपना हित समझना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-७-१९२९

१. अंशतः उद्धृत।

१६३. एक कुत्सापूर्ण पुस्तक

मुस्लिम प्रचारक श्री एफ० के० दुर्रानी, बी० ए०, की लिखी हुई "स्वामी दयानन्द : उनके जीवन और उपदेशोंका आलोचनात्मक परिचय" नामक पुस्तकपर मेरी राय जाननेकी गरजसे तीन सज्जनोंने मेरे नाम अनुरोधात्मक पत्र भेजे हैं। पुस्तकके लेखक तबलीग-साहित्य-मण्डल, लाहौरके मन्त्री हैं। एक चौथे पत्र-लेखकने मुझे उक्त पुस्तककी एक प्रति भी भेजी है। संवादाताओंमेंसे एक मुझे याद दिलाते हैं कि चूंकि 'रंगीला रसूल'[1] पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए मैं जरा भी झिझका नहीं था, श्री दुर्रानीकी पुस्तकके बारेमें भी मुझे वैसा ही करना चाहिए। यथासम्भव अपने तमाम धैर्यको एकत्र करके मैं उक्त पुस्तकको पूरा पढ़ गया हूँ, और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि पुस्तक कुत्सित है, अपमानजनक है और ऐसी है, जिसे न तो किसी जिम्मेदार आदमीको लिखना ही चाहिए और न किसी जिम्मेदार प्रकाशकको प्रकाशित ही करना चाहिए। प्रस्तावनामें लेखक इस बातका दावा करते हैं कि वे पुस्तकके विषयका विवेचन बिल्कुल निष्पक्ष भावसे और शास्त्रीय ढंग पर करेंगे। मगर प्रस्तावनामें ही वे अपनी प्रतिज्ञाको भूल जाते हैं। वे कहते हैं: "हम न किसीकी स्तुति करना चाहते हैं, न निन्दा।' मगर दूसरे ही पन्नेमें सत्यार्थ प्रकाशके बारेमें उन्होंने लिखा है, 'सत्यार्थ प्रकाश' एक निकम्मी पुस्तक है, उसमें जो उपदेश और विचार प्रकट किये गये हैं, वे तो इतने भद्दे और बचकाने है कि उन्हें पढ़कर यह विश्वास नहीं होता कि जिस आदमीने आर्यसमाज-जैसी शक्तिशाली संस्थाकी स्थापना की है, वही इस निकम्मी-अर्थहीन पुस्तकका कर्त्ता भी है।" प्रस्तुत पुस्तकके लेखकको यह लिखते हुए थोड़ी भी झिझक पैदा नहीं हुई कि स्वामी दयानन्द जैसा महान् सुधारक "झूठ बोलनेवाला, चालबाज, अयोग्य और 'भँगेड़ी' था, जिसके नशेमें वह अक्सर मदहोश बना रहता था। उसने अपने जीवनकी जो घटनाएँ दे रखी हैं, वे एकदम कपोल-कल्पित हैं। उसके जन्म और बचपनकी घटनाओं पर अन्धकारका पर्दा पड़ा हुआ है।" ग्रन्थकर्त्ताके पास प्रयोग करनेको न तो स्वामीजीके लिए ही कोई शिष्ट शब्द हैं, न आर्यसमाजके लिए ही। इतना ही नहीं उन्होंने आलोच्य विषयसे भटककर हिन्दुओं और हिन्दू-धर्मको भी गालियाँ दे डाली हैं। लेकिन इन मिसालोंको बढ़ाना जरूरी नहीं है। पुस्तकका एक पृष्ठ ऐसा नहीं है, जो पूरी तरह निन्दाका पात्र न हो। उपसंहारवाले आखिरी अध्यायमें ग्रन्थकारकी असलियत प्रकट हो जाती है। वे कहते हैं:

> **अगर हमें अपनी मातृभूमिसे प्रेम है, अगर हम चाहते हैं कि भारत एक महान् और सभ्य देश बने, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम हिन्दू-धर्मके प्राचीन अन्धविश्वास-रूपी काले धब्बोंसे उसे मुक्त करें, और मातृभूमिके प्रत्येक बच्चेको**

१. देखिए खण्ड २४ और ३४।

इस्लामका अमृतपान करायें। . . . इस्लाम एक विजयिनी शक्ति है, और मुसलमानोंका जन्म ही इसलिए हुआ है कि वे स्वातन्त्र्य और साम्राज्य हासिल करें। अगर हम अपना संख्या-बल बढ़ानेकी जी-तोड़ मेहनत करें तो ये दोनों बातें हमें प्राप्त हो सकती हैं। हम भारत-माताके बालक हैं और उस मातृ-भूमिके प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य भी हैं। और—दूसरे देशोंकी भाँति उसका भी राष्ट्रोंकी मण्डलीमें बराबरीका स्थान होना चाहिए। हिन्दू-भारतके किये यह सब हो नहीं सकता। अकेले इस्लामके झण्डेके तले रहकर ही वह स्वतन्त्र हो सकता है।

ग्रन्थकारने अपनी इस मनोवांछित लालसाको पूरा करनेके लिए जहरमें बुझी कलमसे काम लिया है और एक महान् अर्वाचीन सुधारकको, उसके ग्रन्थोंको, और उसके महान एवं बुद्धिशाली आर्यसमाजको पानी पी-पी कर कोसा है और साथमें हिन्दुओं तथा हिन्दू-धर्मको भी घसीटा है। मैं श्री दुर्रानीको सलाह देता हूँ कि वे अपनी पुस्तक पर फिरसे विचार करें। इस अपमानजनक पुस्तकके प्रकाशनके लिए क्षमा-प्रार्थना करें, और पुस्तक वापस ले लें। मैं सलाह देनेका यह साहस इसलिए कर रहा हूँ कि अपने एक सार्वजनिक पत्रमें उन्होंने कहा है:

अगर कोई यह साबित कर दे कि पुस्तक द्वेष-भावनासे प्रेरित होकर और दिल दुखानेकी गरजसे लिखी गई है, तो मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ, कि इसी संस्करणको लौटा लूँगा और पुस्तककी बिक्री सर्वथा बन्द कर दूँगा। किसी सरकारके बजाय मैं अपनी विवेक-बुद्धिसे ही अधिक डरता हूँ। मगर इस मामलेमें मेरा मन बिलकुल साफ है।

अगर मेरी सम्मतिका कोई मूल्य है, तो मैं यह कह सकता हूँ कि उक्त पुस्तकसे हरएक आर्यसमाजी, हरएक हिन्दू और वस्तुतः हरएक पक्षपातहीन स्त्री और पुरुषका—जिसमें मुसलमान भी शामिल हैं—दिल अवश्य ही दुखेगा। अगर पेड़की कीमत उसके फलसे हो सकती हो तो कहना चाहिए कि प्रस्तुत पुस्तक द्वेष-भावनाका फल है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-७-१९२९

१६४. स्वावलम्बनके आधारपर खादीकी प्रगति

खादी-प्रतिष्ठान सोदपुरके श्री सतीशचन्द्र दासगुप्तको 'नवजीवन' के सब पाठक जानते होंगे। कुछ दिन हुए उन्होंने राष्ट्रीय-सेवा-संघ नामक एक संस्थाकी स्थापना की है। संस्थाका उद्देश्य लोगोंमें खादी-उत्पत्तिकी स्वावलम्बन पद्धतिका प्रचार करना है। वे इस कोशिशमें हैं कि इसी उद्देश्यको लेकर सब लोग अपना-अपना सूत खुद कातने लगें। श्री सतीशबाबूने इस सिलसिलेमें उक्त संघके कार्योंका एक दिलचस्प विवरण भेजा है। वह नीचे दिया जा रहा है।[1]

संघको काम शुरू किये अभी कुछ ही महीने हुए है। उस दृष्टिसे मैं कहूँगा कि उसने अच्छा काम करके दिखाया है। यदि यह बात लोकप्रिय हो जाये तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वावलम्बनकी पद्धति सबसे सस्ती और कारगत सिद्ध होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-७-१९२९

१६५. मेरी अपूर्णता

एक पाठक लिखते हैं:[2]

पाठकने जो कुछ लिखा है, सो उचित ही हैं। मैं शहद लेता हूँ, क्योंकि मैंने अबतक उसका सर्वथा त्याग नहीं किया है। मेरी अपूर्णताको जितना मैं जानता हूँ, दूसरे शायद ही जान सकते हैं। बात यह है कि ऐसी कई वस्तुएँ हैं जिनका त्याग मुझे इष्ट लगता है, परन्तु मैं उनका त्याग नहीं कर पाया हूँ। मेरे स्वास्थ्यके लिए शहद अच्छा माना गया है। मैं कई खाद्य पदार्थोंका त्याग कर चुका हूँ। इसलिए यह जानते हुए भी कि शहदमें हिंसा है, मैं उसका त्याग करनेका साहस नहीं कर सका हूँ। बुद्धिसे किसी वस्तुको त्याज्य समझना एक बात है, हृदयसे उसे छोड़ना दूसरी। इतना लिख चुकने पर मैं कह सकता हूँ कि शहद छोड़नेका मेरा प्रयत्न चालू है। परन्तु शहद छोड़ने पर चीनी, गुड़, इत्यादिका छोड़ना भी आवश्यक हो जाता है। विकृतिकी दृष्टिसे चीनी सबसे बुरी चीज है। चीनी बनानेमें हिंसा भी काफी होती है। शहदसे मुझको कोई हानि नहीं हुई है। डाक्टरोंका अभिप्राय है कि आरोग्यके लिए मधु अच्छी वस्तु है। एक बात और। मधु प्राप्त करनेकी आधु-

१. विवरण नहीं दिया जा रहा है।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कहा था कि शहद निकालनेमें हिंसा करनी पड़ती है, इसलिए उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। "किम् धर्म" २१-७-१९२९ भी देखिए।

निक पद्धतिमें मक्खीकी हत्या तो की ही नहीं जाती; फिर भी इससे शहद खानेका समर्थन नहीं हो सकता।

व्यवसाय-मात्र सदोष है, वह जितना कम किया जाये अच्छा ही है।

अब थोड़ा विषयान्तर करता हूँ। पाठक समझ लें कि खाद्याखाद्यमें ही अहिंसा की परिसमाप्ति नहीं होती। सूक्ष्म-दृष्टिसे इन वस्तुओंका ख्याल रखना स्तुत्य है। परन्तु जो अहिंसा परम धर्म है, वह इस अहिंसासे कहीं बढ़कर है। अहिंसा हृदयकी उच्चतम भावना है। जबतक हमारा आपसका व्यवहार शुद्ध नहीं है, जबतक हम किसीको अपना दुश्मन समझते हैं, तबतक यह कहना चाहिए कि हमने अहिंसा-भावका स्पर्श तक नहीं किया है।

एक मनुष्य खाने-पीनेमें हिंसाका सूक्ष्म पालन करता है, परन्तु यदि व्यापारमें अनीतिसे काम लेता है, दगा देनेसे नहीं हिचकिचाता, अपने स्वार्थके लिए दूसरोंको दुःख देता है, तो निस्सन्देह वह अहिंसा धर्मका पालन नहीं कर रहा है। दूसरा कोई मनुष्य मांसाहारी है या आहारके नियमोंका सूक्ष्मतासे पालन नहीं करता, परन्तु यदि उसका हृदय दूसरोंको दुखी देख पिघल जाता है और उनकी मदद करनेकी चेष्टामें वह अपने आपको खपा देता है तो कहना पड़ेगा कि यह परोपकाररत साधु अहिंसा-धर्मको जानता है और उसका भली-भाँति पालन करता है।

इस मध्य-बिन्दुको छोड़कर आजकल हम धर्मको भुला रहे हैं, इसलिए मैं तो यह चाहता हूँ कि आपसी बैरके बढ़नेसे जो घोर हिंसा हो रही है, हम उसे देखें, और उसे मिटानेमें ही पुरुषार्थ समझें। अंग्रेजों, मुसलमानों और विजातियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो? इस धर्मका परिशोधन अहिंसाका सच्चा क्षेत्र है।

शुद्ध आहारकी शोध-खोजका काम दैवीसम्पद्वाले वैद्योंका है। साधारण जनता इस चीजको समझ भी नहीं सकती। इसके लिए विज्ञानकी जानकारी आवश्यक है। शहदको मैं निर्दोष कह दूँ तो क्या, और सदोष कहूँ तो क्या? जो मधुकी उत्पत्तिके शास्त्रको जानता है, जिसने उसके असरका अनुभव किया है, वह उस सम्बन्धमें जो कहे उसे ही हम सहज भावसे करते रहें। आरम्भमात्रमें दोष है। खाद्यपदार्थ-मात्र लेनेमें कुछ-न-कुछ हिंसा तो है ही। यह सब जान लेनेपर हमारे सामने एक ही धर्म रहता है: जिसका त्याग कर सकते हैं, उसका त्याग करें। केवल स्वादके लिए कभी कुछ न खायें। इस शरीरको ईश्वरके रहनेका मन्दिर मानकर हम अपनेको इसका रक्षक समझें और इसे यथासम्भव और यथाशक्ति शुद्ध रखनेकी कोशिश करें। इसे हरगिज भोगका भाजन न समझें; हाँ, नित्य संयमका क्षेत्र मान कर संयम बढ़ाते रहें। बस, इतना निश्चय करके हम खाद्याखाद्यके झगड़ेसे बच जायें।

हिन्दी नवजीवन, २५-७-१९२९

१६६. भाषण: अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, इलाहाबादकी बैठकमें समझौता-प्रस्तावपर

२७ जुलाई, १९२९

गांधीजीने निम्नलिखित प्रस्ताव सामने रखा:

देशकी आम हालतको देखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी यह बैठक अपनी राय जाहिर करती है कि वह समय आ गया है जब ३१ दिसम्बर १९२९ के बाद अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनके लिए देशको तैयार करनेकी दृष्टिसे पूरी तरह राष्ट्रीय पैमाने पर प्रयत्न किया जाये। वह कार्यसमितिसे इस विषयमें हमराय है कि विभिन्न केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानसभाओंसे कांग्रेसके सदस्योंको इस्तीफे देकर इस आन्दोलनको प्रबल बनाना चाहिए। किन्तु धारासभाके कुछ कांग्रेसी सदस्यों और इस समितिसे बाहरके कुछ सदस्योंने जो राय जाहिर की है उसे ध्यानमें रखते हुए यह समिति निश्चय करती है कि विधानमण्डलोंसे हट आनेकी बात आगामी लाहौर कांग्रेस तक स्थगित रखी जाये।

इस समितिकी यह भी इच्छा है कि सर्वसामान्य जनता और विशेष रूपसे विधानमण्डलोंके सदस्य यदि आवश्यक हो जाये तो अगली पहली जनवरीसे विधान-मण्डलोंसे अपने आपको पूरे तौर पर अलग करनेकी तैयारी कर लें।

यह भी निश्चित किया जाता है कि लाहौर कांग्रेस अधिवेशनसे पहले यदि किसी नई समस्याके उठ खड़े होनेपर विधानमण्डलोंके सदस्य वहाँसे हटना निश्चय करें तो कांग्रेस दलको ऐसा करनेसे रोकनेवाली कोई बात खड़ी नहीं होती।

उक्त प्रस्तावपर हिन्दीमें बोलते हुए महात्मा गांधीने कहा कि इस प्रस्तावसे बहुतोंको आश्चर्य हुआ होगा और बहुतोंको तो दुःख तक हुआ होगा। व्यक्तिगत रूपसे स्वयं मुझे भी यह प्रस्ताव समितिके सामने पेश करते हुए दुःख हुआ है। किन्तु कार्य-समितिका कर्त्तव्य था कि निर्णय लेनेके पहले वह सारी परिस्थिति पर विचार कर ले। विधान-परिषदोंके सदस्योंकी राय बड़ी सख्त थी। वे लोग यदि कांग्रेस-कमेटीके द्वारा बाध्य किये जाते, तो विधानमण्डलोंसे इस्तीफे तो दे देते; किन्तु इसपर उनके मनमें शिकायत बनी रहती और फल यह होता कि कांग्रेसको जो आज अपनी एकताका दावा करती है, अपने बीचमें फूटके खतरेका भय पैदा हो जाता।

कोई भी इस परिस्थितिका मुकाबला करनेके लिए तैयार नहीं था — कमसे कम मैं तो बिल्कुल ही नहीं था।

आगे चलकर महात्मा गांधीने कहा: कार्य-समितिने विधान-मण्डलके कांग्रेसी सदस्योंसे यह भी कहा था कि वे अपनी पूरी बात सामने रखें। उनमेंसे कुछने अपनी बात कांग्रेस कमेटीके सामने रखी और मेरे सामने भी रखी। उसका आशय यही था

कि अभी सदस्योंसे बाहर आनेकी बात कहनेका समय नहीं आया है। यद्यपि मेरा तो यही ख्याल है कि वह समय आ गया है और विधानमण्डलोंसे सम्बन्ध विच्छेद करके देशको बहुत लाभ होगा। कांग्रेसके अध्यक्षकी जो राय आज है वह मेरी राय पहले भी थी और आज भी है। किन्तु हमें यह भी देखना है कि व्यक्तिगत रायों पर अमल करवानेसे कांग्रेस-संगठनका संचालन सहूलियतके साथ नहीं हो सकता।

महात्मा गांधीने कहा:

आप लोग जानते हैं कि जब स्वराज्य पार्टी बनी और मैं जेलसे छूटकर आया तो मैंने आपके अध्यक्ष और श्री चित्तरंजनदासके साथ समझौता किया। मैं उनके सामने झुका और वही बात आज भी कर रहा हूँ। मैं आज अपना सिर कांग्रेस अध्यक्षके सामने तो नहीं झुका रहा हूँ, किन्तु उन लोगोंके सामने झुका रहा हूँ जो समझते हैं कि फिलहाल उन्हें अपनी जगहें खाली करने पर बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। हम सब मिलकर काम करना चाहते हैं।

एकता बनाये रखनेकी इस चिन्तासे प्रेरित होकर ही मैंने कल कार्य-समितिको सलाह दी कि यद्यपि कमेटीके सुझावके अनुसार कदम उठानेका समय आ गया है, तथापि हमें विधानमण्डलोंके कांग्रेस सदस्योंको आजकी इच्छाके मुताबिक चलना चाहिए।

महात्मा गांधीने आगे चलकर कहा कि यद्यपि इस्तीफे देनेकी बात आज निलम्बित कर दी गई है, तथापि यह प्रस्ताव सदस्योंको इस बातका अधिकार देता है कि यदि कोई ऐसी नई समस्या खड़ी हो जाये जिसके कारण उन्हें लाहौर कांग्रेसके पहले विधानमण्डलोंसे हटना आवश्यक लगे तो वे बिना कार्य-समितिसे पूछे स्वेच्छापूर्वक त्यागपत्र दे सकते हैं।

प्रस्ताव इस बात पर भी जोर देता है कि पहली जनवरी १९३० से तैयारी प्रारम्भ कर देना हमारा धर्म है। पहली जनवरीसे जो-कुछ कहना जरूरी है उसे करनेकी तैयारी तो आजसे ही शुरू कर देनी चाहिए। अगली ३१ अगस्तको लोगोंसे इस बातका हिसाब पूछा जाना चाहिए कि उन्होंने कांग्रेसके सदस्य बनानेके लिए क्या-क्या प्रयत्न किये हैं। कांग्रेसके वे सदस्य जो परिषदोंमें हैं, केवल परिषदोंमें काम करें और उसके बाहर नहीं, ऐसी अपेक्षा नहीं की जाती। इस प्रस्तावसे उनका उत्तरदायित्व बढ़ गया है।

मैं उनसे यह भी कहना चाहूँगा कि जब कमेटीने उनकी रायको इतनी अहमियत दी है तो उन्हें भी यह चाहिए कि वे अपना कर्त्तव्य बड़ी लगनके साथ करें।

अन्तमें महात्मा गांधीने आशा व्यक्त करते हुए कहा कि समझौतेके इस प्रस्तावको स्वीकार करनेके आधार पर ऐसा नहीं समझा जा सकता कि वे लोग (विधानमण्डलोंके कांग्रेसी सदस्य) स्वतन्त्रता नहीं चाहते अथवा अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन नहीं चाहते। मुझे पूरा विश्वास है कि एक जनवरी १९३० को वे अपने-आपको सर्वथा योग्य सिद्ध करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २९-७-१९२९

१६७. मेरा धर्म

२८ जुलाई, १९२९

पुत्र और पुत्रवधुके व्यवहारसे दुःखी एक सज्जन लिखते हैं :[1]

पत्र-लेखकको मैं भली-भाँति जानता हूँ। वे एक प्रतिष्ठित सज्जन हैं। उनकी सम्मतिसे उनके पुत्र और पुत्रवधु कुछ दिनोंतक मेरे साथ रहे थे। मुझे उन दोनोंके विषयमें जो अनुभव हुआ सो मधुर ही है। दोनों संयमी हैं, शान्त स्वभावके हैं, विनयी हैं, और गुरुजनोंका मन रखनेके लिए उत्सुक रहते हैं। दोनों सादा जीवन बिताते हैं। दोनों बालिग हैं। पुत्र अपना जीविकोपार्जन आप करता है और पुत्रवधुने कपड़ों और गहनोंका शौक तथा जातिकी अनेक त्याज्य रूढ़ियोंका त्याग कर दिया है। पिताको इनमेंकी कुछ बातें पसन्द नहीं आईं। फलस्वरूप उन्हें दुःख हुआ है और वह मानते हैं कि मेरे कारण पुत्र और पुत्रवधु अपने गुरुजनोंकी आज्ञाका भंग करते हैं।

प्रस्तुत पत्रकी उत्पत्तिका यही इतिहास है। पिताके दुःखको मैं समझता हूँ, मगर अपने आचरणके लिए मुझे पश्चात्ताप नहीं हो रहा है। मेरे विचारमें पुत्र और उनकी पत्नीका व्यवहार उचित था, और है। माँ-बापका अपनी बालिग सन्तानसे यह आशा रखना कि वह हर बातमें ठीक उन्हींके समान बननेका आग्रह रखे, एक ऐसी बात है जो निभ नहीं सकती। स्वतन्त्रताके इस युगमें माता-पिताको इस तरहके लोभका त्याग कर देना चाहिए। शास्त्रोंमें भी कहा है कि सोलह वर्षके बाद पुत्र मित्र समझा जाये।

मेरे विचारमें जिस तरह मर्यादा-पालन पुत्रोंका धर्म है, उसी तरह पिताके लिए भी यह आवश्यक है कि वह अपने ईश्वर होनेकी वृत्ति (प्रभुता)को अंकुशमें रखें। अगर पुत्र विनयसे बरतता है, सेवाके अवसर पर सेवा करता है, अपंग होने पर माता-पिताका भरण-पोषण करता है, तो पिताको इतने ही से सन्तोष मानना चाहिए। मुझे तो पता नहीं है कि प्राचीन कालके संस्कारी माता-पिता इससे अधिक कोई अपेक्षा रखते थे।

मैं जानता हूँ कि सैकड़ों या हजारों नवयुवकोंपर मेरा प्रभाव पड़ा है। मुझे अपने धर्मका भान है। मैं मानता हूँ कि पुत्र-धर्मके पालनका मैंने ठीक-ठीक प्रयत्न किया था, और उसमें थोड़ा-बहुत सफल भी हुआ था। मेरे माता-पिता मुझे अपना आज्ञाकारी पुत्र मानते और पूरी स्वतन्त्रता देते थे। उनका अंकुश मुझे कभी खटका

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा रहा है। पत्रमें कहा गया था कि गांधीजीने विवेकके आधारपर माता-पिताका विरोधतक करनेकी जो सलाह युवकोंको दी है उसके कारण परिवारोंमें तनाव पैदा हो रहा है। पत्र-लेखकका कहना था कि ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका व्रत उन्हीं लोगोंको लेना चाहिए जो उनके फलितार्थोंको समझने योग्य प्रौढ़ हो चुके हों। यह भी कहा गया था कि आश्रममें स्त्री और पुरुषोंको अलग-अलग रखा जाना चाहिए।

नहीं। मेरे अपने पुत्र हैं, पौत्र हैं; मैं उनमेंसे किसीके मार्गमें रुकावट नहीं डालता। जो बालिग हैं, वयप्राप्त हैं, वे सब पूरी तरह स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण कर रहे हैं। इस तरहकी तालीम देकर मैं कभी पछताया नहीं हूँ। मेरा बड़ा लड़का खुले आम मेरे विरुद्ध व्यवहार करता है; इसका मुझे दुःख नहीं है। उसके विरोधी आचरणके रहते हुए भी मैं अपनी कल्पनानुसार, जहाँ तक हो सकता है, उससे पिताका सम्बन्ध रखता हूँ। वह मुझे हस्ताक्षर करते समय 'आज्ञांकित पुत्र' लिखता है। मैं नहीं समझता कि इस तरह वह मेरा अपमान करता है। मुझे समझ लेना चाहिए कि उसकी आज्ञाकारिताकी मर्यादा है। मेरे पास मेरी सगी पुत्रियोंके समान रहनेवाली कुमारिकाएँ हैं, सगी बहनोंके समान रहनेवाली बहनें हैं। वे सब स्वतन्त्रतापूर्वक रहती हैं, स्वेच्छासे मेरे पास आती हैं। मैं कभी सोचता तक नहीं कि वे हमेशा मेरे इशारों पर ही चलें। उनके माता-पिता भी उनके मेरे साथ रहनेसे असन्तुष्ट नहीं हैं। ऐसे अनगिनत अनुभवोंके आधार पर मैं यह अनुमान करता हूँ कि संयमी जीवनकी शिक्षाके साथ पूर्ण स्वतन्त्रताका पान करानेमें कोई दोष नहीं है। मुझे जरा भी याद नहीं आता कि मेरे संसर्गमें आनेवालोंकी कोई हानि हुई है, या उनका जीवन कलुषित बना है।

युवकोंको मैं जो ज्ञान सिखाता हूँ उसमें कोई बड़ा रहस्य नही है, न वह किसी तरह भयंकर है, न उसपर अमल करनेमें किसी बातका खतरा है। कई उदाहरणोंमें मैंने देखा है कि उलटे वह बुद्धिगम्य है, हृदयग्राह्य है। अतएव जो माता-पिता या गुरुजन अपने पुत्रों या पुत्रियोंके व्यवहारसे दुःखी हुए हैं, उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे मौजूदा जमानेको पहचानें। मैं तो आज हूँ और कल नहीं। मेरे मर जानेसे भी युगका प्रवाह—जमानेकी रफ्तार—रुकनेवाली नहीं है। उलटे युग-प्रवाह तो लोगोंको उच्छृंखलताकी ओर घसीटे जा रहा है। उसे रोककर मैं नवयुवकों को संयमके रास्ते ले जानेकी कोशिश करता हूँ। इस कार्यमें माता-पिताओं—गुरुजनों—को मेरी सहायता करनी चाहिए।

आश्रमकी स्त्रियोंके साथ मेरे व्यवहारमें, माताके समान मेरे उनके स्पर्शमें, लेखक को दोष मालूम पड़ता है। इस बारेमें मैंने अपने आश्रमवासी साथियोंके साथ चर्चा की है। आश्रममें पढ़ी-लिखी या अनपढ़ बहनोंको जो मर्यादित स्वतन्त्रता प्राप्त है, मेरी जानकारीमें भारतके और किसी भी हिस्सेमें स्त्रियोंको वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। अगर पिता खुले आम अपनी कन्याका निर्दोष भावसे स्पर्श करे, तो मेरी रायमें वह दूषित नहीं है। मेरा छूना भी इसी तरहका है। मैं कभी एकान्तमें नहीं रहता। बालाएँ रोज मेरे साथ घूमने निकलती हैं, तब मैं उनके कन्धों पर हाथ रखकर चलता हूँ। इस स्पर्शकी अपनी निरपवाद मर्यादा है, जिसे बालाएँ जानती हैं और दूसरे सब भी जानते हैं।

हम अपनी बालिकाओंको अपंग बनाते हैं, उनमें अनुचित विकार पैदा करते हैं; जो बात नहीं है, उसका आरोप उनमें करते हैं। और फिर इसके बाद हम उन्हें दबाना शुरू करते हैं, और अक्सर व्यभिचारका पात्र बना देते हैं। बालिकाएँ मानने लगती हैं कि वे स्वयं अपने शीलकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। इस अपंग दशामेंसे बालिकाओं को मुक्त करनेके लिए आश्रममें भगीरथ प्रयत्न किया जा रहा है। इस तरहकी कोशिश

मैंने दक्षिण आफ्रिकामें ही शुरू कर दी थी। मुझे इसका कोई बुरा परिणाम नजर नहीं आया। उलटे आश्रममें तालीम पाई हुई अनेक बालाएँ बीस वर्षकी हो जाने पर भी निर्विकार रहनेका प्रयत्न कर रही हैं, और दिन-दिन निर्भय एवं स्वावलम्बी बनती जा रही हैं। मेरे विचारमें यह विश्वास कि कुमारिका-मात्रके स्पर्श या दर्शनसे पुरुष विकारवश होता ही है, पुरुषके पुरुषत्वको लजानेवाला है। अगर यह बात सच हो तो फिर ब्रह्मचर्य एक असम्भव बात ठहरती है।

इस संक्रमण कालमें देशके स्त्री-पुरुषके बीचका सम्बन्ध मर्यादित तो होना ही चाहिए। मैं प्रतिदिन प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ कि अमर्यादित स्वतन्त्रतामें खतरा है। इसीलिए स्त्री-स्वातन्त्र्यको निभाते हुए भी यथासम्भव मर्यादाका पालन आश्रममें किया जाता है। सिवा मेरे और कोई पुरुष बालाओंका स्पर्श नहीं करते, करनेका मौका ही नहीं आता। और पितृ-भाव किसीकी इच्छा करनेसे ही उत्पन्न नहीं हो जाता।

मेरे स्पर्शमें योगबलका कोई भी दावा नहीं है। मुझमें योगबल-जैसी कोई बात है नहीं। मैं तो औरोंकी भाँति ही मिट्टीका विकारमय पुतला हूँ। किन्तु इससे क्या; विकारमय पुरुष भी तो पिताकी हैसियतमें देखे गये हैं। मेरी कई लड़कियाँ हैं, कई बहनें हैं। मैं एकपत्नी-व्रतसे बँधा हुआ हूँ। पत्नी भी अब तो पत्नी मिट कर मित्र रह गई है। अतएव सहज ही विकराल विकारों पर अंकुश रखना पड़ता है। भरी जवानीमें मुझे माताने प्रतिज्ञा के सौन्दर्यका ज्ञान कराया था। प्रतिज्ञाकी यह वज्रसे भी अधिक अभेद्य दीवार मेरी रक्षा करती है। मेरी इच्छाके विरुद्ध भी इस दीवारने मेरी रक्षा की है। भविष्य रामजीके हाथों है।

आश्रमके कतिपय पुराने दम्पतियोंको छोड़कर शेष सब स्त्री-पुरुषोंके निवास-स्थान जुदे-जुदे हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-७-१९२९

१६८. मैंने अन्त्यजोंके लिए क्या किया है?

'नवजीवन' के एक पाठक पूछते हैं:[1]

अन्त्यजोंके लिए मैं क्या कुछ कर रहा हूँ, इस सवालका जवाब देना मुश्किल है। इस बातका कोई हिसाब तो दे ही नहीं सकता। अतएव यही कहा जा सकता है कि अभी तक मैंने कुछ भी नहीं किया है। किन्तु यदि यह जवाब कुछ ठीक-सा न लगे तो यों कह सकते हैं कि अन्त्यज भाई-बहन जितना कहें उतना किया है। बात तो यह है कि अन्त्यज-सेवाके नाम पर मैं अपनी शक्ति-भर जो कुछ करता

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने पूछा था कि आप अछूतोद्धारका कार्य किन-किन दिशाओंमें कर रहे हैं। उसने यह भी सुझाया था कि यदि गांधीजीके स्वयंसेवक आर्य-समाज और हिन्दू महासभाके सहयोगसे काम करें तो राजनीतिक क्षेत्रमें भी अधिक सफलता पानेकी सम्भावना है।

हूँ, वह स्वयं अपने लिए ही करता हूँ। यह कहना कि कोई अन्त्यजोंका उद्धार करता है, दूषित है। अस्पृश्यताको मिटाकर उच्च कहे जानेवाले स्वयं अपना उद्धार करते हैं, हिन्दू-धर्मकी रक्षा करते हैं। इस दृष्टिसे विचार करने पर तो प्रस्तुत प्रश्नका उत्तर देनेकी जरूरत ही नही रहती। जिस हद तक यह सवाल सिर्फ मुझे लक्ष्य करके पूछा गया है, उसका जवाब यह है कि मैं स्वयं तो स्वतन्त्र-रूपसे कुछ करता नहीं हूँ, न कर ही सकता हूँ। भारत-भरमें असंख्य साथी इस काममें जुटे हुए हैं। उनके कार्यमें मेरा जितना भाग हो सकता है, कोई उसकी गणना करना चाहे तो भले ही कर ले।

यह भाई मानते हैं कि मैं ज्यादातर खादीका काम करता हूँ; मगर यह उनकी भूल है। मै स्वयं खादीका कोई काम करता हूँ, यह तो नहीं कह सकता; हाँ, प्रतिदिन नियमानुसार यज्ञके लिए कातता अवश्य हूँ; उतना ही मेरा अपना खादी-काम कहा जा सकता है। और तो जो कुछ होता है, सो साथियों द्वारा ही।

साथ ही खादी-काममें सैकड़ों या हजारों अन्त्यजोंकी जो सेवा हो जाती है, सो तो है ही। दूसरे, अन्त्यजोंकी सेवाका काम ऐसा नहीं है कि हम फी गज खादी की कीमतके समान उसकी कीमतका कोई अन्दाज लगा सकें। अगर कोई पूछे कि अन्त्यज-शालाएँ कितनी खोली गई, उनके लिए कुएँ कितने खोदे गये, मन्दिर कितने बाँधे गये, तो इन सबके जवाबसे मुझे सन्तोष तो नहीं ही हो सकता। अगर कोई कह सके कि अस्पृश्यताका पारा इतना उतरा है, तो अवश्य कुछ समझमें आये। मगर हमारे पास ऐसा यन्त्र नहीं है। अन्त्यजोंके लिए हजारों शालाओं, मन्दिरों और कुँओंके होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि अस्पृश्यतारूपी दीवारमेंसे एक ईंट भी नहीं हिली है। जब अस्पृश्यता निवारणका काम शुरू हुआ तब अपनेको कट्टर वैष्णव माननेवाले मित्रोंने कहा था: "अगर आप अस्पृश्यता-निवारणकी धुनको छोड़ दें तो उनके लिए शालाएँ वगैरा बनवानेके काममें आप जितनी कहें उतनी मदद दे सकते हैं। अस्पृश्यता मिटा कर आपको क्या करना है?" ऐसी मददसे मुझे जरा भी सन्तोष नहीं हो सकता था। मुझे अन्त्यजोंके लिए जुदी संस्थाएँ नहीं चाहिए थीं, मुझे तो वर्तमान सार्वजनिक संस्थाओंमें उनके लिए प्रवेशाधिकारकी जरूरत थी। जुदी संस्थाएँ हिन्दुओंके भूषणकी नहीं, बल्कि उनके दूषणकी सूचक हैं। यदि आजकल अन्त्यजोंके लिए जुदी शालाएँ, मन्दिर वगैरा बनवानेके झंझटमें मैं पड़ता भी हूँ तो सिर्फ विवश होकर, आपद्धर्म समझ कर, और यह आशा रख कर कि आखिरकार इन संस्थाओं और दूसरी संस्थाओंके बीचका भेद मिट जायेगा।

मैं स्वयं तो अस्पृश्यताको हवा होते देख रहा हूँ, मगर यह साबित करनेके लिए मेरे पास कोई यन्त्र नहीं है।

'प्रेमपंथ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जोने;
मांहीं पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने।'[1]

१. प्रेमका पंथ पावककी ज्वाला है — लोग इस ज्वालाको देखकर भाग खड़े होते हैं। जो इसकी लपटोंके बीच चला गया है, वह उसमें बड़ा सुख मानता है और दूर खड़े होकर देखनेवाले जल जाते हैं।

आर्यसमाज और हिन्दू-महासभा अपनी अन्त्यज-सेवाके लिए धन्यवादकी पात्र हैं। मैं जहाँ थोड़ा-बहुत भी कर सकता हूँ, करता हूँ। लेकिन मैं कबूल करता हूँ कि कई बार काम करनेके तरीकेमें भेद होनेकी वजहसे मैं अपनी सेवाएँ समर्पित नहीं कर सकता। मुझे इस बातका लोभ नहीं है कि हरएक कार्यमें मेरा हाथ होना ही चाहिए, न हरएक कामके करनेकी मुझमें शक्ति ही है। मुझे अपनी शक्तिका भान है, उस मर्यादामें रहकर मुझसे जो कुछ हो सकता है, करके कृतार्थ होता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-७-१९२९

१६९. सन्देश: कांग्रेस मुस्लिम दल, बम्बईको

२८ जुलाई, १९२९[1]

आप लोगोंने कांग्रेस मुस्लिम दलकी स्थापना की है, इससे मुझे प्रसन्नता हुई है। अगर दलको पूरा-पूरा समर्थन मिला और अगर वह सो नहीं गया तो उससे कांग्रेसको बड़ी शक्ति मिलेगी और दलके द्वारा साधारणतः भारतकी और विशेषतः मुसलमानोंकी सच्ची सेवा हो सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-७-१९२९

१७०. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

रेलगाड़ी

२९ जुलाई, १९२९

प्रिय जवाहरलाल,

इन्दुके नाम तुम्हारे पत्र[2] उत्तम हैं; उन्हें प्रकाशित किया जाना चाहिए। तुमने उन्हें हिन्दीमें लिखा होता तो कितना अच्छा होता। कुछ भी हो, उनका हिन्दीमें साथ ही साथ प्रकाशन होना चाहिए।

तुम्हारा विषय-निरूपण बिल्कुल परम्परागत है। आदमीकी उत्पत्ति अब एक विवादास्पद विषय हो गया है। धर्मकी उत्पत्ति तो और भी विवादास्पद बात है। परन्तु इन मतभेदोंसे तुम्हारे पत्रोंका मूल्य नहीं घटता। उनका महत्व तुम्हारे निष्कर्षोंके ठीक होनेमें न होकर निरूपणके ढंगमें और इस तथ्यमें है कि तुमने इन्दुके हृदय तक पहुँचने और अपनी बाह्य प्रवृत्तियोंके बीचमें भी उसकी बुद्धिकी आँखें खोलनेकी कोशिश की है।

१. सन्देश ब्रेलवीकी अध्यक्षतामें दलकी पहली बैठकके अवसरपर आबिद अली द्वारा इसी तिथिको पढ़कर सुनाया गया था।

२. पिताके पत्र पुत्रीके नाम।

जो घड़ी मैं ले आया हूँ उसके बारेमें कमलासे झगड़ना नहीं चाहता था। इस भेंटकी तहमें जो प्रेम है, उसका मैं सामना नहीं कर सका। मगर घड़ी फिर भी इन्दुके लिए धरोहरके रूपमें रखी रहेगी। इतने तमाम छोटे-बड़े शरारतके पुतलोंसे घिरा रहकर मैं ऐसी खूबसूरत चीजको सुरक्षित नहीं रख सकता। इसलिए अगर कमला इन्दुको उसकी प्यारी घड़ी वापस दे दिये जाने पर राजी हो जाये तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

कांग्रेसके 'ताज' पर मेरा लेख[1] लिखा ही जा चुका है। वह 'यंग इंडिया' के अगले अंकमें निकलेगा।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

१७१. पत्र : नारायणदास मलकानीको

२९ जुलाई, १९२९

प्रिय मलकानी,

आश्रम लौटते समय रेलगाड़ीमें मैंने तमिलनाडु सम्बन्धी तुम्हारी रिपोर्ट[2] अभी पढ़ी। रिपोर्ट अच्छी है। उसकी स्पष्टवादिता मुझे पसन्द आई। इसे मैं वरदाचारी[3] के पास उनके विचार जाननेके लिए भेज रहा हूँ?

वहाँकी बाढ़का क्या हाल है?

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ८९३)की फोटो-नकलसे।

१. "ताज कौन पहने?", १-८-१९२९।

२. देखिए पत्र : "नारायणदास मलकानीको", ५ जुलाई, १९२९के पूर्व।

३. एन० एस० वरदाचारी; पुणताम्बेकरके साथ "हाथ-कताई और हाथ-बुनाई" पुस्तिकाके सह लेखक

१७२. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

रेलगाड़ी
२९ जुलाई, १९२९

चि० शान्तिकुमार,

डॉ० लियोनार्ड हिलकी लिखी पुस्तक 'साइन्स ऐंड आर्ट ऑफ लिविंग' मँहगी न हो और प्राप्त हो तो भेज देता। मँहगी न हो अर्थात् मूल्य तीन रुपये तक हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७१३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१७३. टिप्पणी : छगनलाल जोशीके लिए

२९ जुलाई, १९२९

उसे[1] लड़कीको ले आनेके लिए लिखा है। उसे रख ही लेंगे, ऐसी आशा वह न बाँधे। देखनेके बाद और यदि वह आश्रम-जीवन का पालन कर सके तो उसे रखनेमें शायद कोई अड़चन नहीं होगी।

गुजराती (एस० एन० १५४३२) की माइक्रोफिल्मसे।

१७४. टिप्पणी : छगनलाल जोशीके लिए

२९ जुलाई, १९२९

उसे[2] लिखा है कि वह अपना प्रतिनिधि भेज सकता है। खानेका खर्च हम उठा लेंगे।

गुजराती (एस० एन० १५४१८) की माइक्रोफिल्मसे।

१. गोपीगंजके जंग बहादुर। जिनके १७-७-१९२९ के पत्रके जवाबमें यह टिप्पणी लिखी गई थी।
२. बैजवाडाके बी० सुब्रह्मण्यम्, जिनके १० जुलाई, १९२० के पत्रपर यह टिप्पणी थी।

१७५. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

३१ जुलाई, १९२९

चि० शान्तिकुमार,

तुमने वापसी डाकसे ही पुस्तक[1] भेज दी है। आशीर्वादके सिवा और क्या भेजूं?

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७१४)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१७६. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

३१ जुलाई, १९२९

भाई हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। . . .[2]के बारेमें 'नवजीवन'में लिखा है सो पढ़ लो। तुम्हारी सलाह ठीक है। तथ्य मालूम कर सको तो करना। . . .अपवित्र हो तो उसके लिए हमारे पास उपाय ही नहीं है। जो पवित्र हो तो उसकी रक्षा करें।

कताईके बारेमें — मेरी दृष्टि दोनों पर है। किन्तु हमें सदस्य तो शिक्षित वर्गसे चाहिये, गरीब कातनेवाली स्त्रियों से नहीं। वे इस बातको न समझ सकेंगी। उत्पत्ति बढ़ानी है और उसमें लोगोंकी दिलचस्पी पैदा करनी है। लोग दिलचस्पी लेने लगें तो उत्पत्ति बढ़ जायेगी। समझदार व्यक्ति दिल और दिमाग लगाकर कातें तो वे बारीक सूतका उत्पादन बढ़ा सकते हैं और नई खोज भी कर सकते हैं। सब नहीं करेंगे। पर ऐसे कातनेवालोंमें कुछ नई खोज करनेवाले जरूर निकल आयेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०६६)से।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

१. देखिए "पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको", २९-७-१९२९।
२. साधन-सूत्रके अनुसार। गांधीजीके लेखके लिए देखिए "लक्ष्मीदेवीकी कथा", १-८-१९२९।

१७७. पत्र : बेचर भानजीको

३१ जुलाई, १९२९

भाईश्री ५ बेचर,

तुम्हारा पत्र मिला। जबतक अपनी पत्नीको तुम प्रेमसे न जीत सको तबतक थोड़ा सोचकर व्यवहार करना। लड़कियाँ छोटी हों तो उनके खादी पहननेका आग्रह कर सकते हो। लेकिन उसमें भी विवेक-बुद्धिका उपयोग इष्ट है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५५७६)की फोटो-नकलसे।

१७८. क्या हम स्वराज्यके योग्य हैं?

पाठक नीचे लिखा पत्र पढ़कर दुखी होंगे :[1]

मैं विक्रमपुरका रहनेवाला हूँ। मेरा घर स्व० देशबन्धुके घरसे कुछ ही मील दूर है। मेरा जन्म एक नामशूद्र कुटुम्बमें हुआ है। . . .

जिस दफ्तरमें मैं काम करता हूँ, उसमें काम करनेवाले सभी ५० मुहर्रिर उच्च जातिके कहे जानेवाले हिन्दू हैं। . . .

. . . मेरे साथी मुझे कृमिकीटोंसे भी गया-गुजरा मानते हैं। नौकर तक मेरे बर्तन माँजने या उठानेसे इनकार करता है। यद्यपि सफाई और शिष्टताके लिहाजसे मैं 'मेस' के किसी भी सदस्यसे घटकर नहीं हूँ, तो भी . . .

. . . जबकि लोग अपने देशवासियोंके साथ ही इतनी निर्दयताका बरताव करते हैं, क्या आप समझते हैं कि हम स्वराज्यके योग्य हैं? जब उच्च कहलाने वालोंके हाथोंमें सत्ता भी आ जायेगी, तब क्या उस उच्चाधिकारके कारण नीच कहलानेवालोंके प्रति उनका व्यवहार और भी भयंकर नहीं हो जायेगा? . . . मेरा मानसिक क्लेश हद दर्जे तक बढ़ गया है। कृपा कर शीघ्र ही उत्तर दीजिएगा और बतलाइएगा कि मैं क्या करूँ।

चूँकि लेखक अपनेको प्रकट नहीं करना चाहते, मैंने उनके पत्रके कुछ भाग निकाल डाले हैं। इसमें शक नहीं कि इन नामशूद्र भाईके साथ जो व्यवहार होता है, वैसा व्यवहार इसी श्रेणीके और भी कई भाइयोंको सहना पड़ता है। यह तो

१. अंशतः उद्धृत।

निर्विवाद है कि देशमें अस्पृश्यताकी कुप्रथाका जोर घट रहा है, तथापि जो दलित जातियाँ दिन-दिन अधिक जागृत हो रही हैं और तथाकथित उच्च जातियों द्वारा अपने पर किये जानेवाले अत्याचारोंके प्रति स्वभावतः जिनके मनमें विरोधका भाव जाग रहा है वे अब पहलेसे भी अधिक व्याकुल हो चली हैं। उनका यह डर ऊपर-ऊपरसे देखें तो ठीक ही मालूम होता है कि स्वराज्य प्राप्तिके बाद भी अगर यही हाल रहा तो सुधारकोंकी पुकार अरण्यरोदन बनी रहेगी और अबतक जो प्रगति हुई है वह भी अन्धकट्टरताके कारण धूलमें मिल जायेगी। मगर मैं चाहता हूँ कि दलित मित्र यह समझ लें कि उनका यह डर निराधार है। ऐसा डर रखकर वे सुधारकोंके साथ ठीक-ठीक न्याय नहीं करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद संख्याकी बात महत्वपूर्ण नहीं रहेगी। तब मुट्ठीभर लोगोंका दृढ़ संकल्प हमारी समस्याको हल कर सकेगा। जो आगे कदम बढ़ा रहे हैं, वे देख सकते हैं कि स्वातन्त्र्य-संग्रामके अग्र-भागमें सुधारवादी ही डटे हैं, प्रतिक्रियाशील लोग नहीं। क्योंकि प्रतिक्रियाशील लोग तो धर्मके झूठे नाम पर विदेशी शासनकी सहायता लेकर उसके हाथों अपनी रक्षा चाहते हैं। अतएव जब स्वराज्य प्राप्त हो जायेगा, देशके शासनकी बागडोर सुधारकोंके ही हाथों जायेगी।

दूसरे, 'दलित' जातियोंको यह विश्वास रखना चाहिए कि स्वतन्त्र भारतके लिए जिस संविधानकी कल्पना की जा सकती है, उसमें कानून द्वारा उनके हकोंकी पूरी-पूरी रक्षाका समावेश भी अवश्य होगा।

तीसरे, उन्हें चाहिए कि वे अपने आपको असहाय न समझें और न सुधारकोंकी सहायताकी अपेक्षा ही रखें। उनका पक्ष न्याय्य है और उन्हींको उसकी रक्षा भी करनी है। स्वराज्यका सच्चा अर्थ तो यह है कि स्वराज्य-प्राप्त देशका प्रत्येक सदस्य सारी दुनियाके मुकाबले अपने स्वातन्त्र्यकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। आन्तरिक उन्नतिका ही दूसरा नाम स्वराज्य है। दलित भाइयोंकी यह व्याकुलता ही उनकी और भारतकी स्वाधीनताका पूर्ण और अत्यन्त आशाप्रद चिन्ह है। निर्दोष असन्तोष उन्नतिका सूचक है। मगर तबतकके लिए तो उन तमाम मुहर्रिरोंका और दूसरोंका, जो दलित भाइयोंके सम्पर्कमें आते हैं, यह परम कर्त्तव्य है कि वे उनके साथ अत्यन्त आदर और शिष्टताका बरताव करें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १-८-१९२९

१७९. ताज कौन पहने?[1]

कांग्रेसके सभापति-पदकी जिम्मेदारी हर साल अधिकाधिक बढ़ती जाती है। इस वक्त हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न उपस्थित है कि अगले सालके लिए यह ताज कौन पहने। क्योंकि अबकी बार तो उसमें काँटे ही काँटे होंगे, फूल एक भी नहीं। मैं देखता हूँ कि फेहरिस्तमें जिनके चुने जानेकी सम्भावना हो सकती है उनके नामोंके साथ मेरा नाम भी है। जब मैंने पहली बार किसी समिति द्वारा रखे गये नामोंमें अपना नाम देखा था, तब मैंने उसकी कोई खास परवाह नहीं की थी। लेकिन अब देखता हूँ कि मित्रगण आ-आ कर गम्भीरतापूर्वक मुझसे बातें करते हैं और इस बात पर जोर देते हैं कि अगर यह कंटीला ताज मुझे न पहनानेकी बात न उठे तो मैं खुद इसकी माँग करूँ। इस प्रस्तावके समर्थनमें जो दलीलें दी जाती हैं, मैं यहाँ उन पर विचार करनेकी कोई जरूरत नहीं समझता। मैं उनमेंसे कुछका वजनदार होना कबूल करता हूँ। जितना विचार मैं उनपर कर सकता था, कर चुका हूँ; फिर भी मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि मुझमें न तो इस भारको उठानेकी हिम्मत है और न अपनी शक्ति या योग्यतामें विश्वास ही है। मैं देख रहा हूँ कि मैं पदसे सम्बन्धित सारे कामोंकी तफसीलमें उतरनेके योग्य नहीं बचा और यह बिलकुल जरूरी है कि अगर मैं कोई पद स्वीकार करता हूँ तो अपने स्वभावके अनुसार उसकी तफसीलमें उतरूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि जिस रफ्तारसे घटनाएँ हो रही हैं उसके मुकाबले मेरी गति धीमी है। इस तरह मेरे और उगती हुई पीढ़ीके बीच एक खाई-सी खड़ी है। मैं उनके बीचमें पिछड़ा हुआ नजर आता हूँ। मैं स्वयं अपनेको पिछड़ा हुआ समझता हूँ सो तो नहीं है; किन्तु जब उनके बीच रहकर काम करनेका सवाल पैदा होता है, तब मैं महसूस करता हूँ कि मुझे पिछली पाँतिमें बैठना चाहिए और उमड़ती हुई लहरको अपने ऊपरसे होकर गुजर जाने देना चाहिए। इस भारको उठानेमें अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए मैंने ये दो निश्चित दलीलें दी हैं। कुछ दूसरी दलीलें भी हैं, मगर मैं उन्हें इसी श्रेणीकी नहीं मानता। फिर भी मेरी रायमें ये दो दलीलें ही नामजदोंकी फेहरिस्तमेंसे मेरा नाम निकाल डालनेकी दृष्टिमें काफी हैं।

मेरी सम्मतिमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूको यह ताज पहनना चाहिए। अगर पिछली बार निर्णयके समय मेरी सुनी जाती तो चालू बरसमें ही वे इसपर होते। मगर बंगालकी जोरदार माँगके आगे बुजुर्ग सहयोगीको[2] सिंहासनपर बैठनेके लिए विवश होना पड़ा था।

१. यह २९ जुलाई, १९२९ के पूर्व लिखा गया था। देखिए "पत्र: जवाहरलाल नेहरूको", २९-७-१९२९।

२. आशय श्री मोतीलाल नेहरूके अध्यक्षपद ग्रहण करनेसे है।

बूढ़े नेताओंका कार्यकाल अब समाप्त हो चुका है। आगे आनेवाले संग्राममें जूझनेका काम नौजवान स्त्री-पुरुषोंका है। और इसलिए यह सर्वथा उचित है कि उनकी रहनुमाईके लिए उन्हींमेंसे कोई खड़ा किया जाये। बूढ़ोंको चाहिए कि वे जमानेकी रफ्तारको समझें, नहीं तो जो कुछ वे उदारभावसे नही देंगे वह उनसे जबर्दस्ती छीन लिया जायेगा। जिम्मेदारीका बोझ आ पड़ने पर नौजवान अपने आप सौम्य और गम्भीर हो जायेंगे और उस उत्तरदायित्वको उठानेके लिए तैयार हो रहेंगे, जो उन्हींको सँभालना है। पण्डित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य हैं। उन्होंने वर्षों तक अनन्य योग्यता और निष्ठाके साथ कांग्रेसका मन्त्री पद सँभाला है। अपनी बहादुरी, दृढ़ संकल्प, निष्ठा, सरलता, सचाई, और धैर्यके कारण देशके नौजवानोंका मन उनकी मुट्ठीमें है। वह किसानों और मजदूरोंके भी सम्पर्कमें आये हैं। यूरोपीय राजनीतिका जो सूक्ष्म परिचय उन्हें है, उससे उन्हें स्वदेशकी राजनीतिको समझने और निर्माण करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी।

लेकिन कुछ वयोवृद्ध नेता कहते हैं: "हमें सम्भवतः कांग्रेसके बाहरके अनेक दलोंके साथ गम्भीर और नाजुक चर्चा छेड़नी पड़ेगी और सम्भवतः ब्रिटिश कूटनीतिसे मोर्चा लेनेका भी समय आयेगा। इसके सिवा अभी हमारे सामने हिन्दू-मुस्लिम समस्या भी उलझी ही पड़ी हुई है, ऐसे समय रहनुमाईके लिए आप-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमें देशकी बागडोरका होना आवश्यक है।" इस दलीलमें तथ्यकी जितनी बात है, उसका पर्याप्त उत्तर मेरे इस कथनमें आ जाता है कि किसी विशेष क्षेत्रकी दृष्टिसे मुझमें जो भी खूबियाँ हैं, उनका प्रयोग मैं हर तरहके पद-भारसे मुक्त और पृथक् रहनेकी अवस्थामें और भी अच्छी तरह कर सकूँगा। जबतक जनताका मुझ पर विश्वास और प्रेम बना हुआ है, इस बातका जरा भी डर नहीं है कि पदाधिकारी न होनेकी वजहसे मैं, अपनी शक्तियोंका, जो मुझमें हो सकती हैं, सम्पूर्ण उपयोग न कर सकूँगा। ईश्वरकी कृपासे मैं किसी पदग्रहणकी आवश्यकता स्वीकार किये बिना ही १९२०से देशके जीवनको प्रभावित करनेमें समर्थ हो सका हूँ। मैं नहीं समझता कि बेलगाँव-कांग्रेसका सभापति[1] बननेसे मेरी सेवा-क्षमता थोड़ी भी बढ़ी हो।

और जिन्हें यह पता है कि जवाहरलालका और मेरा क्या सम्बन्ध है, वे यह भी जानते हैं कि वह सभापति हुए तो क्या और मैं हुआ तो क्या। विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममें मतभेद भले ही हो, हमारे दिल तो एक हैं। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रताके रहते हुए भी, अपने कड़े अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणोंके कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सहयोगी हैं कि उनमें पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।

एकाध आलोचक दबे स्वरमें ऐसा भी कहते हैं: "क्या जवाहरलालका नाम अंग्रेज 'बुल'के भड़कानेके लिए लाल चीथड़ेका काम नहीं करेगा?" मैं कहता हूँ कि इन अनाम आलोचकोंकी तरह तर्क करनेका अर्थ तो यह है कि हम न अंग्रेज राजनीतिज्ञोंकी व्यवहार-पटुता और नीति-चातुर्यको समझते हैं, और न खुद अपनी शक्ति में ही विश्वास रखते हैं। राष्ट्रपति चुनते समय इस बातका ख्याल रखना कि

१. १९२४ में।

अंग्रेज राजनीतिज्ञ हमारे चुनाव पर क्या कहेंगे अपनेमें आत्मविश्वासकी कमी प्रकट करना है। आलोचक महोदय अंग्रेज स्वभावको जितना समझते हैं, मैं उनसे अधिक समझता हूँ। एक अंग्रेजकी नजरमें सचाई, वीरता, धैर्य और स्पष्टवादिता बहुमूल्य गुण हैं, और जवाहरलालमें ये सब प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं। अतएव अगर चुनावके समय ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंका भी ख्याल करें तो भी पण्डित जवाहरलाल उस दृष्टिसे किसी कदर कम नहीं उतरते।

और आखिर यह तो है ही कि कांग्रेसका अध्यक्ष कोई निरंकुश हाकिम नहीं होता। उसका दर्जा एक ऐसे प्रतिनिधिका होता है, जिसे एक प्रथित परम्परा और सुसंगठित संविधानके भीतर रहकर काम करना होता है। ब्रिटेनके राजाको जनता पर जिस हद तक अपने विचार लादनेका हक है उससे ज्यादा हमारे अध्यक्षको भी कदापि नहीं हो सकता। कांग्रेस एक ४५ वर्ष पुरानी संस्था है, और उसका महत्व एवं प्रतिष्ठा उसके अत्यन्त सुप्रसिद्ध अध्यक्षोंसे कहीं बढ़कर है। दूसरे, जब समय आयेगा, ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंको किसी एक व्यक्तिसे नहीं बल्कि सारी कांग्रेससे मोर्चा लेना पड़ेगा। अतएव सब तरह विचार करनेके बाद मैं उन लोगोंको जिन पर इस विषयका उत्तरदायित्व है, यही सलाह देता हूँ कि वे मेरा ख्याल छोड़ दें और इस उच्च पदके लिए पूरी-पूरी आशा तथा विश्वासके साथ पण्डित जवाहरलालको ही चुनें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-८-१९२९

१८०. चरखेके शोधकको इनाम

पाठकोंको याद होगा कि कुछ वर्ष पहले श्री रेवाशंकर जगजीवन झवेरीने सिंगर मशीनके जैसा घर-घर काममें आने योग्य एक चरखा तैयार कर देनेके लिए ५,००० के इनामकी घोषणा की थी; बहुतेरोंने इस इनामको पानेकी कोशिश की थी। एक चतुर कारीगरको तो उनके प्रयोगोंके लिए आश्रममें हर तरहकी सुविधाएँ जुटा दी गई थीं। मगर सारी कोशिशें बेकाम साबित हुई। फिर भी हमने घरोंमें चलनेके लायक सुधरे हुए चरखेकी आशा सर्वथा छोड़ नहीं दी थी। श्री रेवाशंकर जगजीवनतो निराशाको अपने पास भटकने तक नहीं देते। अब वे चरखा संघकी कार्यकारिणी समिति से एक ऐसे इनामकी घोषणा करवानेमें सफल हुए हैं, जिससे पश्चिमी आविष्कारकोंका ध्यान भी उसकी ओर आकर्षित हो सके। फलस्वरूप पाठक इसी अंकमें अन्यत्र पढ़ेंगे कि इस बातके लिए रु० १,००,०००के यानी वर्तमान विनिमयकी दरके मुताबिक ७,७०० पौंडके इनामकी घोषणा की गई है। जो अवधि दी गई है उसके समाप्त होने तक यदि रुपयेको कीमतमें घट-बढ़ हो जाये, तो भी रकम ७,७०० पौंड तो कायम ही रखी जायेगी। मुझे उम्मीद है कि इस इनामके कारण चरखेके लिए भी

कोई सिंगर-जैसा आविष्कारक सामने आयेगा, जो उसे इतना उपयोगी बना सकेगा कि कातनेवालोंकी मौजूदा आमदनीमें आठगुनी वृद्धि हो जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-८-१९२९

१८१. ब्रिटिश न्यासी

हम बड़ी प्रसन्नतासे इस अंकमें श्री पेनिंगटनका पत्र अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। श्री पेनिंगटन नब्बे वर्षके हो चुके हैं, लेकिन उनका अपने आपमें और अपने राष्ट्रमें जो विश्वास है वह सदाकी भाँति ताजा है। काश, स्वयं हममें और उस राष्ट्रके प्रति जिसका प्रतिनिधित्व करनेकी हम विनम्र चेष्टा कर रहे हैं, ऐसा ही विश्वास होता। श्रीयुत पेनिंगटनने अपने पत्रमें 'पुनश्च'[1] लिखनेके उपरान्त 'वैयक्तिक' शब्दका प्रयोग किया है। लेकिन इस मामलेमें गोपनीयताका कोई सवाल ही नहीं उठता। मैंने उसे छाप दिया है क्योंकि इससे उनका सम्मान बढ़ता है। इस अनतिदीर्घ भू-मण्डलमें पाठक भी मेरे साथ उनके सुदीर्घ जीवनकी कामना करेंगे।

लेखकने जो-कुछ लिखा है उसके विषयमें मुझे यह स्वीकार करना होगा कि मैं उनकी बातका कायल नहीं हो सका हूँ। यदि अंग्रेज शासक सच्चे अर्थोंमें न्यासी होते तो श्री पेनिंगटन और मेरे बीच कोई मतभेदकी गुंजाइश ही नहीं होती। श्रीयुत पेनिंगटनकी ईमानदारी पर शंका करनेका प्रश्न नहीं उठता। लेकिन यह तो सत्य है कि वे आत्मप्रवंचनाके भँवरमें पड़े हैं। ब्रिटेनके मन्त्रि-मण्डलके कुछ बहुत ही प्रमुख लोगोंने न्यास-सिद्धान्तका खुलकर विरोध किया है और शक्ति-सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। इससे संसार परिस्थिति जान गया है और हम चेत गये हैं। 'हमने तलवारके बल पर हिन्दुस्तान पर कब्जा किया है और हमारा इरादा उसे तलवारके ही बल पर अपने अधीन रखनेका है।' यहाँ तलवारका अर्थ स्पष्ट ही बारूद और कूटनीतिके अन्तर्गत आनेवाली सभी चालें हैं। इस प्रकार शक्ति सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए एक नग्न सत्यकी घोषणा हो गई है।

श्रीयुत पेनिंगटन और उनके साथी विचारकोंको यह याद दिलानेकी जरूरत नहीं है कि न्यास तो सदा ही एक बोझ, 'एक जिम्मेदारी होती है। लेकिन अंग्रेजोंने यदि शुद्ध रूपसे न भी कहा जाये तो मुख्य रूपसे अपने हितके लिए हिन्दुस्तान पर अधिकार किया है। उन्हींके शब्दोंमें, उन्होंने इस देश और उसके निवासियोंका शोषण किया है। स्वर्गीय लार्ड सेल्सबरीके शब्दोंमें उन्होंने हिन्दुस्तानको चूसा है। इसमें सन्देह नहीं कि एक न्यासी जब अपने कर्त्तव्यका पालन करता है तो उस न्यासका जिसका वह न्यासी है, अवश्यमेव हित होता है। न्यासीके संरक्षणमें संरक्षितकी उन्नति होती

१. इसमें श्री पेनिंगटनने लिखा था: "अगर चाहें तो आप इसे बड़ी खुशीके साथ प्रकाशित कर सकते हैं। मेरा जन्म सन् १८३९ का है। दूसरी बार लिख सकनेको आशा मुझे नहीं है।"

है, किन्तु हमारा विकास अवरुद्ध हुआ है। यह बात गोखले और परवर्ती सभी नेताओं ने प्रमाणित की है।

सुलहकी ब्रिटिश घोषणा उस थके-टूटे घोड़ेकी तरह है जिसका अब कोई उपयोग ही नहीं हो सकता। अब कोई इस फेरमें नहीं आ सकता। अब तो हम सुलहकी घोषणा भारतवर्षकी ओरसे चाहते हैं। यह घोषणा अगर रक्तकी नदीको पार करके भी करनी पड़े तो हमें उसे करनेकी शक्ति चाहिए और जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी। जबरन थोपी गई विषाक्त शान्तिको, जिसने हमारा दम घोट कर रखा है, हम कदापि पसन्द नहीं करेंगे। हम तो अभ्यंतरको प्राणवान बनानेवाली उस शान्तिकी कामना करते हैं जो हमें स्वस्थ और सशक्त रखे।

पेनिंगटनने हमें [राष्ट्रसंघकी ओरसे दिये गये] फरमान (मैनडेट)की याद दिलाई है। यह तो शोषणके लिए किसी देशके अनधिकृत अधिग्रहणका छद्म नाम है। वे जरा उन राष्ट्रोंसे पूछें जिनपर यह फरमान लागू हुआ है और पता लगायें कि उन्हें यह आदेश कहाँ तक भाता है। ढोंग और मक्कारी वर्तमान युगके अभिशापोंमें शामिल है; किन्तु केवल चिकनी-चुपड़ी बातोंसे ही पेट नहीं भर सकता। अब जनता मीठे शब्दोंके जालमें नहीं फँस सकती। सद्भाव रखनेवाले लोग आज भी ऐसे खोखले ख्यालों और गई बीती बातोंसे भुलावेमें पड़ जाते हैं, इसे देखकर तरस आता है। इसी आत्म-प्रवंचनामें पड़े रहनेके कारण पेनिंगटन जैसे प्रतिष्ठित लोगोंकी सेवाकी उपादेयता भी ओछी पड़ जाती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-८-१९२९

१८२. असममें बाढ़

इस बाढ़के सम्बन्धमें श्रीयुत अमृतलाल ठक्करकी यह पहली रिपोर्ट[1] प्रस्तुत की जा रही है। एकत्रित पैसा भेजा जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-८-१९२९

१. रिपोर्ट यहाँ नहीं दी गई है। रिपोर्टमें कछार और सिलहट जिलोंमें हुए नुकसानका विवरण और लोगोंके रहनेके लिए मकान बनाने तथा पशुओंके लिए चारेकी व्यवस्था करनेके लिए चन्दा इकट्ठा करनेकी प्रार्थना की गई थी।

१८३. सृजनका सुख

उपर्युक्त शीर्षकसे 'सेंट वर्चमेन्स कालेज' पत्रिकामें कोचीनके कैप्टन ए० आर० पोड्डवलका विचारोत्तेजक तथा पठनीय लेख[1] प्रकाशित हुआ है। यंग इंडिया'के आकार को देखते हुए लेख कुछ लम्बा है, किन्तु मैंने उसमें काँट-छाँट करनेकी हिम्मत नहीं की। मैं कैप्टन पोड्डवालका पूरा लेख पाठकोंके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि लोग इस लेखसे प्रभावित होकर दरिद्रनारायणकी सेवाके लिए प्रेरित होंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-८-१९२९

१८४. बम्बईमें दूधकी व्यवस्था

श्रीयुत नगीनदास अमोलकराय एक उत्साही कार्यकर्त्ता हैं; वे बम्बईमें सस्ते और शुद्ध दूधकी व्यवस्थाके लिए सुनियोजित आन्दोलन चला रहे हैं। इस दृष्टिसे उन्होंने एक ज्ञापक तैयार किया है जिसमें यह बताया गया है कि यदि रेलवे कम्पनी उचित और जिम्मेदारीका रवैया अपनाये तो वह दूधको सस्ता करनेमें बड़ी मदद पहुँचा सकती है; अर्थात् वह दूधका भाड़ा कम कर दे और उपनगरोंसे बम्बई स्टेशन तक कम खर्चमें दूध पहुँचानेकी सुविधाएँ कर दे। उनका कहना है[2] कि रेल किराया तय करनेकी प्रणाली दोषपूर्ण है।

> **पालघाट (५८ मील) और वलसाड (१२५ मील)के बीचके क्षेत्रमें अच्छे चरागाह हैं, . . . लेकिन यहाँ ऐसी डेरियाँ नहीं हैं जहाँसे दूध बम्बई भेजा जा सकें। दूधके विक्रेताओंके सामने ज्यादातर दूधका उत्पादन खुद ही करने और अपनी भैंसोंको (१६००३) शहरके बीचोंबीच बने तबेलों (९६)में रखनेके अलावा और कोई उपाय नहीं है। भैंसें यहाँ अप्राकृतिक परिस्थितियोंमें रखी जाती हैं। यहाँ उनके चरनेकी कोई सुविधा नहीं है। भैंसे बाँधनेके इस स्थानका मासिक किराया एक भैंस पर ९ या १० रुपये पड़ता है। दूध देने-वाली भैंसोंमेंसे १२ प्रतिशत भैंसें दूध सूख जाने पर फिर जनने तक बेकार बँधी रहती हैं और इस अवधिमें प्रति भैंस पर किरायेके रूपमें २४०) रु० खर्च आता है। प्रतिवर्ष २६,०००से अधिक भैंसोंसे दूध लिया जाना खत्म ही**

१. लेख नहीं दिया जा रहा है। इसमें लेखकने अपने वैयक्तिक उपयोगकी वस्तुएँ अपने आप तैयार करनेके सर्जनात्मक आनन्दकी बात की थी और इस सन्दर्भमें चरखेका उल्लेख भी किया था।

२. अंशत: उद्धृत।

हो जाता है। यदि वे दूध सूखने पर काट न डाली जायें तो फिर शीघ्र ही जननेके बाद उसी मात्रामें दूध देने लगें।

. . . बम्बईमें दूधका भाव संसारके किसी भी स्थानके भावकी तुलनामें अधिक है। यहाँ दूध न्यूयार्क और लन्दनसे भी महँगा मिलता है। कलकत्ताकी तुलनामें भी यहाँ दूधका भाव ५० प्रतिशत अधिक है। फल यह है, बम्बईमें रहनेवाले गरीब बच्चोंकी बड़ी संख्यामें अकाल मृत्यु हो जाती है और अच्छी भैंसोंकी नस्ल तो प्रायः समाप्त ही होती चली जा रही है। . . .

मुझे मालूम हुआ है कि रेलवे बोर्डकी स्थानीय सलाहकार उप-समिति और नगर-निगमके कुछ सदस्योंको मिलाकर एक संयुक्त समितिका गठन हुआ है जो इस प्रश्न पर विचार कर रही है। बम्बईमें सस्ते और शुद्ध दूधकी व्यवस्थाका प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव भारतके प्रथम नगरके निवासियों और विशेषकर उनके बच्चोंके स्वास्थ्य पर पड़ता है। इसके मानवीय और आर्थिक पहलू भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। आशा है यह संयुक्त समिति उपनगरोंमें स्थापित डेरियोंके पनप सकने और शहरके मध्यमें स्थापित तबेलोंसे जानवरोंको हटानेके प्रश्नको सरल बना सकने योग्य कोई हल सुझायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-८-१९२९

१८५. लक्ष्मीदेवीकी कथा

लक्ष्मीदेवीका जो पत्र[1] मैंने प्रकाशित किया था, उसके सिलसिलेमें मेरे पास बहुत-से खत आये हैं, उनमें एक तो लक्ष्मीदेवीके साथ जिनका विवाह किया गया था, उन्हींका है। उन नवयुवकका नाम श्री मदनमोहन शर्मा है। वे कालेजमें पढ़ते हैं। श्री मदनमोहन शर्मा लिखते हैं:[2]

जो दूसरे पत्र आये हैं, वे सब करीब-करीब श्री मदनमोहन शर्माके बयानका समर्थन करते हैं। भाई हरिभाऊ उपाध्यायने इस बातकी जाँच भी की है। उनका भी पत्र[3] आया है। उन्होंने इस विषयमें 'त्यागभूमि' में जो लेख लिखा है, उसे भी मैं पढ़ चुका हूँ। भाई हरिभाऊका पत्र भी मेरे सामने पड़ा है। दोनोंको जो सलाह हरिभाऊजीने दी है, वह मुझे उचित जान पड़ती है।

मैं नहीं जानता कि दोनों बयानोंमें किसका मानने योग्य है। यदि श्री मदन-मोहनका बयान सच्चा है तो लक्ष्मीदेवीने बड़ी गलती की है। यदि लक्ष्मीदेवीका सच्चा है तो मैंने जो अभिप्राय दिया है, उसपर मैं कायम हूँ। श्री मदनमोहनके

१. देखिए "एक अभागिन पुत्री", ४-७-१९२९।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखक, लक्ष्मीदेवीके पतिने, लिखा था कि लक्ष्मीदेवीने जो आरोप लगाये हैं वे मिथ्या हैं।

३. गांधीजीने इस पत्रका उत्तर ३१-७-१९२९ को दिया था।

दूसरे पत्र भी आये हैं। उनमें वे प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि उन्होंने जो-कुछ लिखा है, उसमें न कोई बात छिपाई है, न कुछ असत्य ही लिखा है। उन्होंने मुझे इस बातकी जाँच करनेके लिए भी लिखा है। भाई हरिभाऊ उपाध्याय मेरे साथी हैं, उनपर मुझे विश्वास है। उन्होंने तो साफ लिखा है कि दोनों पक्षोंने सच्ची बात पर कुछ-न-कुछ पर्दा तो डाला ही है। ऐसी हालतमें शुद्ध सत्यका पता लगना मुश्किल है। श्री मदनमोहनको मेरी सलाह है कि वह और जो कुछ कहना चाहते हों, हरिभाऊजीसे कहें और उनके मनमें जो शंका है, उसे दूर करें।

मुझे यह भी लिखा गया है कि मैंने लक्ष्मीदेवीका खत छाप कर श्री मदनमोहनके साथ अन्याय किया है और असत्यको उत्तेजन दिया है। मैं तो समझता हूँ कि लक्ष्मीदेवीका खत प्रकट करके मैंने सत्यकी और दोनों पक्षोंकी सेवा की है। पुरुष-वर्ग बहुत दफा स्त्रियोंके साथ घोर अन्याय करता है। बहुत-सी स्त्रियोंका दुःख उनकी जिन्दगीके साथ ही समाप्त होता है। यदि लक्ष्मीदेवीने असत्य लिखा है तो अपनी जातिको हानि पहुँचाई है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। परन्तु यदि मैं उनका खत प्रकाशित न करता, तो अब असत्यके प्रकट होनेका जो अवसर आया है, वह नहीं आ सकता था। मेरे लेखका सहारा सत्यवती लक्ष्मीदेवीको ही मिल सकता है, अ-सत्यवतीको कभी नहीं। उनके खतकी सत्यता पर ही मेरी सलाह अवलम्बित थी। लक्ष्मीदेवीको चाहिए कि यदि वह सत्यके रास्ते पर हैं तो निर्भय होकर अपनी निर्दोषता सिद्ध करें। यदि उन्होंने असत्य लिखा है, तो उसे स्वीकार करें और पश्चात्ताप करें। मेरे पास जो खत आये हैं, उनमें तो लक्ष्मीदेवी पर बहुत-से आक्षेप किये गये हैं। लक्ष्मीदेवीकी रक्षा केवल उनके सत्य, सतीत्व और दृढ़तासे ही हो सकती है।

हिन्दी नवजीवन, १-८-१९२९

१८६. पत्र : रामेश्वरप्रसाद पोद्दारको

आश्रम, साबरमती
१ अगस्त, १९२[९][1]

भाई रामेश्वरदास,

तुम्हारा पत्र मिला। रामनाम बुद्धिसे नहीं लिया जा सकता। वह तो श्रद्धासे लेना चाहिए और उससे शान्ति न मिले और उसे न लेनेका विचार करें तो यह माना जायेगा कि श्रद्धा नहीं रही है। शान्ति मिले या न मिले, सुख मिले या दुःख किन्तु रामनाम लेना ही ठीक है। यह विश्वास रखकर रामनाम जपते रहें, कभी हारें नहीं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० २०१) की फोटो-नकलसे।

१. जी० एन० रजिस्टारके अनुसार।

१८७. भाषण: तिलक पुण्यतिथिपर गुजरात विद्यापीठमें

[२ अगस्त, १९२९][1]

आपका यही सवाल है न कि लोग 'शठं प्रति शाठ्यम्' को तिलक महाराजका सिद्धान्त मानते हैं, तो हमें उनके जीवनमें इस सिद्धान्तकी प्रतीति कहाँतक होती है? हमें इस प्रश्नकी छानबीनसे बहुत-कुछ नहीं मिल सकता। इस बारेमें तिलक महाराज के साथ मेरा थोड़ा-बहुत पत्र-व्यवहार[2] अवश्य हुआ था। उनके जीवनके नम्र विद्यार्थी और गुणोंके एक पुजारीके नाते मैं कह सकता हूँ कि तिलक महाराजमें विनोदकी शक्ति थी। विनोदके लिए अंग्रेजीमें 'ह्यूमर' शब्द है। अबतक हम इस अर्थमें 'विनोद' का उपयोग नहीं करते, इसीसे अंग्रेजी शब्द देकर अर्थ स्पष्ट करनेकी जरूरत पड़ी। वे राष्ट्रका इतना बोझ उठाते थे कि अगर उनमें यह विनोद-शक्ति न होती तो वे पागल हो जाते। अपनी विनोदप्रियताके कारण वे स्वयं अपनी रक्षा तो कर ही लेते थे, दूसरोंको भी विषम स्थितिमेंसे बचा लेते थे। दूसरे, मैंने यह देखा है कि वाद-विवाद करते समय वे कभी-कभी जानबूझकर अतिशयोक्तिसे भी काम ले लेते थे। प्रस्तुत प्रश्नके सम्बन्धमें मेरा उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है; आप लोग उसे देख जायें। 'शठं प्रति शाठ्यम्' तिलक महाराजका जीवन-मन्त्र नहीं था; अगर ऐसा होता तो वे इतनी लोकप्रियता प्राप्त न कर पाते। मेरी समझमें, संसार-भरमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है, जिसमें किसी भी मनुष्यने इस सिद्धान्त पर अपने जीवनका निर्माण किया हो, और फिर भी वह लोकमान्य बन सका हो। यह सच है कि इस बारेमें मैं जितनी गहराईसे सोचता हूँ, वे उस पर उतनी बारीकीसे ध्यान नहीं देते थे — हम शठके प्रति शाठ्यका कदापि उपयोग कर ही नहीं सकते। 'गीता रहस्य' में एक-दो स्थानोंमें, सिर्फ एक ही दो स्थानोंमें, इस बातका थोड़ा समर्थन मिलता जरूर है। लोकमान्य मानते थे कि राष्ट्रहितके लिए अगर कभी शाठ्यसे — दूसरे शब्दोंमें, 'जैसेको तैसा' के सिद्धान्तसे काम लेना पड़े तो ले सकते हैं। साथ ही वे यह भी अवश्य मानते थे कि शठके सामने भी सत्यका प्रयोग करना अच्छा है, यही सत्य-सिद्धान्त है; मगर इस सम्बन्धमें वे कहते थे कि साधु लोग ही इस सिद्धान्त पर अमल कर सकते हैं। तिलक महाराजकी व्याख्याके अनुसार साधु लोगोंका अर्थ वैरागी नहीं, बल्कि उन लोगोंसे होता है जो दुनियासे अलिप्त रहते हैं; जो दुनियादारीके कामोंमें भाग नहीं लेते। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि अगर कोई दुनियामें रहकर इस सिद्धान्तका पालन करे तो वह अनुचित होगा — वह न कर सके तो यह दूसरी बात होगी; और वे मानते थे कि [उस हालतमें] शाठ्यका उपयोग करनेका उसे अधिकार है।

१. प्रजाबन्धुसे, ४-८-१९२९

२. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ ५१०-११।

लेकिन अगर ऐसे महान् पुरुषके जीवनका मूल्य आँकनेका हमें कोई अधिकार हो, तो हम उसका मूल्य विवादास्पद बातोंके आधार पर न ठहराएँ। लोकमान्यका जीवन भारतके लिए, समस्त विश्वके लिए एक बहुमूल्य विरासत है। उसकी पूरी कीमत तो भविष्य ही निश्चित करेगा। इतिहास ही उसकी कीमतका अन्दाजा लगायेगा; वही लगा सकता है। जीवित मनुष्यका ठीक-ठीक मूल्य, उसका सच्चा महत्व, उसके समकालीन कभी निश्चित कर ही नहीं सकते; उनसे कुछ न कुछ पक्षपात तो हो ही जाता है, क्योंकि इस कामके कर्त्ता भी रागद्वेषपूर्ण लोग ही होते हैं। सच पूछा जाये तो इतिहासकार भी राग-द्वेष-रहित नहीं पाये जाते। गिबन प्रामाणिक इतिहासकार माना जाता है; मगर मुझे तो पन्ने-पन्ने पर उसके पक्षपातका अनुभव होता रहता है। मनुष्य-विशेष या संस्था-विशेषके प्रति राग अथवा द्वेषसे प्रेरित होकर उसने बहुतेरी बातें लिखी होंगी। समकालीन व्यक्तिके मनमें विशेष पक्षपात होना सम्भव रहता है। लोकमान्यके महान् जीवनका उपयोग तो यह है कि हम सदा उनके जीवनके शाश्वत सिद्धान्तोंका स्मरण और अनुकरण करें।

तिलक महाराजका देशप्रेम अटल था। साथ ही उनमें तीक्ष्ण न्यायवृत्ति भी थी। इस गुणका परिचय मुझे अनायास ही मिल गया था। १९१७की कलकत्ता-महासभाके दिनोंमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी सभामें भी वे आये थे। महासभाके कामसे उन्हें फुरसत तो कैसे हो सकती थी? फिर भी वे आये और भाषण करके चले गये। मैंने वहीं देखा कि राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति उनमें कितना प्रेम था। मगर इससे भी बढ़कर जो बात मैंने उनमें देखी, वह थी अंग्रेजोंके प्रति उनकी न्यायवृत्ति। उन्होंने अपना भाषण ही यों शुरू किया था: "मैं अंग्रेजो शासनकी खूब निन्दा करता हूँ, फिर भी अंग्रेज विद्वानोंने हमारी भाषाकी जो सेवा की है, उसे हम भुला नहीं सकते।" उनका आधा भाषण इसी भावनासे भरा था और अन्तमें उन्होंने कहा था कि अगर हमें राष्ट्रभाषाके क्षेत्रमें काम करना और उसको उन्नत करना हो तो हमें भी अंग्रेज विद्वानोंकी भाँति ही परिश्रम और अध्ययन करना चाहिए। उन्होंने कहा था कि हमारी लिपिकी रक्षा और हमारे व्याकरणकी व्यवस्थाके लिए हमें एक बड़ी हद तक अंग्रेज विद्वानोंकी भाँति ही परिश्रम और अध्ययन करना चाहिए। उन्होंने कहा था कि हमारी लिपिकी रक्षा और हमारे व्याकरणकी व्यवस्थाके लिए हम एक बड़ी हद तक अंग्रेज विद्वानोंके आभारी हैं। जो पादरी आरम्भमें आये थे उनमें दूसरों की भाषाके लिए प्रेम था। गुजरातीमें टेलर-कृत व्याकरण कोई साधारण वस्तु नहीं है। लोकमान्यने तब इस बातका विचार नहीं किया था कि अंग्रेजोंकी स्तुति करनेसे मेरी लोकप्रियता घटेगी। लोगोंका तो यही विश्वास था कि वे अंग्रेजोंकी केवल निन्दा ही कर सकते हैं।

तिलक महाराजमें जो त्यागवृत्ति थी, उसका सौवाँ या हजारवाँ भाग भी हम अपनेमें नहीं बता सकते। और उनकी सादगी? उनके कमरेमें न तो किसी तरहका फर्नीचर होता था, न कोई खास सजावट। अपरिचित आदमी तो सोच भी नहीं सकता था कि यह किसी बड़े आदमीका निवासस्थान है। रग-रगमें भिदी हुई उनकी

इस सादगीका हम अनुसरण करें तो कैसा हो? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही। अपने कर्त्तव्यमें वे सदा अटल रहते थे और उसे कभी भूलते ही न थे। धर्म-पत्नीकी मृत्युका संवाद[१] पाने पर भी उनकी कलम चलती ही रही। हम एक ओर तो खूब आनन्द भोगते रहना चाहते हैं, और दूसरी ओर स्वराज्य भी लेना चाहते हैं। ये दोनों बातें परस्पर-विरोधी हैं। इन दिनों देशमें पाखण्ड, स्वच्छन्दता और स्वेच्छाचार का बाजार गर्म है। अगर हम स्वराज्य लेना चाहते हों तो स्वराज्य ही हमारा ध्यान-मन्त्र होना चाहिए, स्वेच्छाचार कदापि नहीं। क्या हम तिलक महाराजके जीवनके भोग-विलासमें बीते एक भी क्षण पर अँगुली रख सकते हैं? उनमें जबर्दस्त सहिष्णुता थी। यानी वे चाहे जितने उद्दण्डसे उद्दण्ड आदमीसे भी काम करवा लेते थे। लोक-नायकमें यह शक्ति होनी चाहिए। इससे कोई हानि नहीं होती। अगर हम संकुचित हृदयके बन जायें और सोच लें कि फलाँ आदमीसे काम लेंगे ही नही, तो या तो हमें जंगलमें जा कर बस जाना चाहिए या घर बैठकर गृहस्थका जीवन बिताना चाहिए, और इसमें भी शर्त यही है कि हम खुद अलिप्त रह सकें।

मुँहसे तिलक महाराजका बखान करके ही हम अपने कर्त्तव्यकी इति न मान बैठें। काम, काम और काम ही हमारा जीवन-सूत्र होना चाहिए। जब कि हम स्वराज्य-यज्ञको चालू रखना चाहते हैं, हमें चाहिए कि हम निकम्मे साहित्यका पढ़ना बन्द कर दें, निरर्थक बातें करना छोड़ दें और अपने जीवनका एक-एक क्षण स्वराज्यके काममें बिताने लगें। आप पूछेंगे कि क्या पढ़ाई छोड़कर यह काम करें? १९२१ में भी विद्यार्थियोंके साथ यही लेकर मुझे विवाद करना पड़ता था। तिलक महाराजने क्या किया था? उन्होंने जो बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे, वे बाहर रहकर नही, जेलमें लिखे थे। 'गीता रहस्य' और 'आर्क्टिक होम' वे जेलमें ही लिख पाये थे। बड़े-बड़े मौलिक ग्रन्थ लिखनेकी शक्ति होते हुए भी उन्होंने देशके लिए उसका बलिदान किया था। उन्होंने सोचा: "घरके चारों ओर आग भभक उठी है, इसे जितनी बुझा सकूँ, उतनी जल्दी बुझाऊँ।" उन्होंने अगर हजार घड़े पानी उसपर डाला तो हम एक ही घड़ा डालें; मगर डालें तो सही। पढ़ाई आदि आवश्यक होते हुए भी गौण बातें हैं। अगर स्वराज्यके लिए इनका उपयोग होता हो तो करना चाहिए, अन्यथा इन्हें तिलांजलि दे देनी चाहिए। इससे न हमारा नुकसान होगा न संसारका।

तिलक महाराज अपने जीवन द्वारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण छोड़ गये हैं। जिनके जीवनमेंसे इतनी सारी बातें ग्रहण करने योग्य हों; जिनकी विरासत इतनी जबर्दस्त हो, उनके सम्बन्धमें उक्त प्रश्नको लेकर बैठे रहनेकी गुंजाइश ही नहीं रहती। हमारा धर्म तो गुणग्राही बननेका है।

१. नवजीवनमें यहाँ पाद टिप्पणी है: यहाँ इससे भी आश्चर्यजनक एक दूसरे प्रसंगकी याद आये बिना नहीं रह सकती। लोकमान्य एक बार छत्रपति शिवाजीकी पवित्र स्मृतिके समारोहका उद्घाटन करने, उनकी राजधानी रायगढ़, गये। आपने ज्येष्ठ पुत्रको गंभीर रुग्णावस्थामें घरमें छोड़कर उन्हें रवाना होना पड़ा था। रायगढ़ पहुँचते ही उन्हें तार मिला जिसे उन्होंने सरलतासे जेबमें रख लिया और समारोह सम्पन्न होने के पश्चात् ही उसे पढ़ा।

आज हमें जो काम करना है, वह मुर्दार आदमियोंके किये हो नहीं सकता। स्वराज्यका काम कठिन है। भारतमें आज एक लहर बह रही है; उसमें खिचकर हम भाषण करते हैं; उपद्रव मचाते हैं, तूफान खड़े करते हैं, चाहे जिस ढंगसे संस्थाओंमें घुस जाते हैं और फिर उन्हें नष्ट करते हैं और धारासभाओंमें जाकर भाषण करते हैं। तिलक महाराजके जीवनमें ये बातें हमारे देखनेमें भी नहीं आतीं। उनके जीवनके जो गुण अनुकरणीय हैं, सो तो मैं ऊपर कह ही चुका हूँ। मगर आप इतना करेंगे तो आपका इस राष्ट्रीय विद्यापीठमें रहकर अध्ययन करना सार्थक होगा, अन्यथा आपपर जो खर्च हो रहा है, वह व्यर्थ जायेगा। अगर हम कर्त्तव्य-कर्म न करें तो इन भाषणों और पाठ्य-क्रमके निबन्ध-वाचन आदिके होते हुए हम जहाँ थे वहीं बने रहेंगे और आजके उत्सवमें जो दो घंटे बीते हैं, वे भी निरर्थक सिद्ध होंगे। मुझे आशा है, ऐसा न होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-८-१९२९

१८८. रानीपरजकी शाला

ऊपरका मनोरंजक वर्णन[1] मुझे जैसा प्राप्त हुआ है वैसा अक्षरशः छाप रहा हूँ। इसमें कई स्पष्ट भूलें हैं; उन्हें मैंने जानबूझकर नहीं सुधारा है। इस शालामें उद्योगोंको प्रमुख स्थान प्राप्त है। बालक अक्षर-ज्ञान खेल-खेलमें ही प्राप्त कर लेते हैं। इसमें भाई जुगतरामकी[2] कला-कुशलताकी छाप स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी-सी कला हममें न हो तो भी हम उनकी तरह प्रेमपूर्वक काम करना सीख लें; यदि इतना हो जाये तो ऐसी शालाएँ पूरे देशमें खोली जा सकती हैं; तब इस कृषि-प्रधान देशके बालकोंका उद्धार हो जाये और उन्हें आवश्यक शिक्षा प्राप्त होने लगे। इस शालामें रानीपरज बालक संस्कारवान् बनते हैं, आचारवान् बनते हैं, वे आरोग्य-सम्बन्धी नियम सीखते हैं और उनका पालन करते हैं। ये बालक स्वाश्रयी बनते हैं और स्वतन्त्रताका मन्त्र साधते हैं। कोई ऐसी मिथ्या धारणा न बना ले कि इस शालामें रानीपरज बालक ही कुछ सीख सकते हैं और करोड़पतियोंके बालकोंको इसमें कुछ नहीं मिलेगा। यह बात तो सिद्ध की जा सकती है कि करोड़पतियोंके बालकोंके लिए आज जो पाठशालाएँ चल रही हैं उनमें रानीपरज बालकोंका तो दम घुट जाये। इस तरह जहाँ रानीपरज बालकोंका दम घुटता है वहाँ देशका दम ही घुटता है, ऐसा मानना चाहिए। किन्तु वेडछीकी इस शालामें यदि करोड़पतियोंके बालकोंको शिक्षा प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हो तो वे राष्ट्रीयताकी शुद्ध प्राणवायुका पान करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-८-१९२९

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२. जुगतराम दवे, शालाका एक अध्यापक।

१८९. बर्माके चन्देका हिसाब

बर्माकी यात्रामें जो चन्दा इकट्ठा हुआ उसके हिसाबका जो संक्षिप्त विवरण उद्योग मन्दिरके मन्त्रीने तैयार किया है उसे ऊपर दिया गया है।[1] प्रत्येक गाँवके नाम-सहित आँकड़े रंगूनसे आ गये हैं। उनका दिया जाना आवश्यक नहीं है। फिर भी जो सज्जन इन आँकड़ोंको देखना चाहें वे श्री नानालालके पास जाकर उन्हें देख सकते हैं। यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि पैसा जिस-जिस संस्थाके लिए प्राप्त हुआ था, वह उसे भेज दिया गया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-८-१९२९

१९०. टिप्पणियाँ

दो बालकोंका यज्ञ

दो बहन-भाई हैं चन्दन और कृष्णविजय। माता विधवा है। उन्हें खादीपर श्रद्धा है; और कुटुम्ब खुशहाल है। पूरे कुटुम्बमें छः व्यक्ति हैं; परिवार अपने उपयोगकी खादीके लिए खुद ही सूत कात लेता है। सालके आखिरमें कुछ खादी बच भी जाती है। बालक सब पढ़ते हैं। दो बड़ी लड़कियाँ विनय मन्दिरमें शिक्षा पा रही हैं। चन्दनकी उम्र पाँच और कृष्णविजयकी छः वर्षकी है। ये दोनों स्वेच्छासे जितना चाहते हैं उतना सूत कातते हैं। इनसे ऐसा करनेको कहा नहीं जाता; वे केवल अपने बड़ोंको देखकर ही कातते हैं।

इन दो बालकोंके सूतकी बनी खादीका थान मैंने अभी-अभी देखा है, और उसे देखकर सूतकी शक्तिमें मेरा मोह बढ़ा है। इनका सूत पाँचसे छः अंकके बीचका है। पूरे थानका वजन सवा पाँच रतल है। लम्बाई १२.३" और अर्ज ३३" है और तानेके सूतका अंक ७ है। मेरी दृष्टिमें यह कोई मामूली बात नहीं है। अगर खादी खेलते-कूदते बन सकती है तो उसकी शक्तिका अन्दाज पाठक खुद लगा लें। माता, चाचा और बड़ी लड़कियाँ तो सुन्दर महीन सूत कातती हैं। कोई यह न समझे कि यह कुटुम्ब कपड़ोंके इस्तेमालमें काट-कसर करता होगा। बालकोंकी पोशाक खास अच्छे गृहस्थोंके बालकों-जैसी ही होती है। धुस्से, चादर आदि भी पर्याप्त संख्यामें काममें लाये जाते हैं। अतएव इस कुटुम्बकी मिसाल हरएक मध्यम वर्गके परिवार पर लागू होती है। खासियत इसमें यही है कि सारा कुनबा खादीसे प्यार करनेवाला है, और अभिभावक चाचाने अपने प्रेमके कारण सबको खादी-प्रेमी बना दिया है।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

जो स्वराज्यके लिए पागल हैं, उन्हें अगर खादीकी धुन भी लग जाये तो घर बैठे विदेशी कपड़ेका बहिष्कार किया जा सके और अगर बहिष्कार सफल हो जाये तो जनतामें नये तेजका आविर्भाव हो, नया आत्मविश्वास आये। सभी बालक इन बालकों का अनुकरण कर सकते हैं। क्या माता-पिता अपने बच्चोंको ऐसी प्रेरणा देंगे?

शर्मके कारण नाम न बतानेवाले भाईसे

जबतक आप शर्मके मारे नाम छुपाते हैं तबतक दोषमुक्त नहीं हो सकते। यह कुटेव एक बीमारी है ऐसा मानकर उसे किसीसे छुपाना आवश्यक नहीं है। बल्कि यदि प्रकट कर दें तो गलती करनेमें शर्म आने लगे और दोषमुक्त होनेमें सहायता पहुँचे। जबतक आप झूठी शर्म मानेंगे तबतक मैं आपका उपनिषद् पढ़ना भी निरर्थक मानता हूँ। शर्मके योग्य बात तो गलती करना ही है। गलती छुपानेसे वह दोगुनी हो जाती है।

भूल सुधार

भाई जीवराम कल्याणजी उत्कलमें जो सेवा कर रहे हैं उससे सम्बन्धित मेरे लेख[1]के विषयमें वे कहते हैं:[2]

भाई जीवरामकी इच्छा नहीं है फिर भी मुझे अपने प्रेमके विषयमें लिख देना आवश्यक लगा। भाई जीवरामने जो लिखा है उससे उनकी निर्भयता प्रकट होती है। मैंने भूलसे उन्हें जिस प्रशंसाका पात्र कहा उसे वे अंगीकार नहीं करना चाहते। यशके साथ-साथ मजदूरोंका लाभ उठाकर पैसा पैदा करनेकी बात भी कही गई थी — वे उस आक्षेपका मेरी जानकारीके लिए ही खण्डन करना चाहते थे। दोनों ही उद्देश्य निर्मल हैं। हरड़ बीनकर लानेवाले लोगोंको मजदूर कहना चाहिए अथवा नहीं, या उनसे प्राप्त वस्तुके व्यापारको मजदूरोंके बलपर पैसा पैदा करना कहा जाना चाहिए या नहीं, यह बात हमारे विषयकी हदतक प्रस्तुत नहीं है। मेरा यह ख्याल कि जीवरामभाई मजदूरोंसे श्रम कराकर, उन्हें कम मजदूरी देकर पैसा कमानेके विचारसे उत्कल गये हैं, गलत था — पाठकोंको इसपर से इतना ही समझ लेना है। भाई जीवराम जिस भावनासे गये वह भी शुद्ध थी, पाठकोंका तथा मेरा यह जान लेना काफी है। [उनके साथी] भाई मगनलाल गृहस्थ नहीं, ब्रह्मचारी हैं, यह एक विशेष बात है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-८-१९२९

१. देखिए "उत्कलके कंकालोंमें", ७-७-१९२९।

२. पत्र-लेखकका कहना था कि स्वयं-सेवक मजदूरोंसे फायदा नहीं उठाते। वे तो उनके द्वारा इकट्ठी की हुई हरड़ोंकी बिक्री कराकर उन्हें मदद ही पहुँचाते हैं। इस क्षेत्रमें और भी सेवक हैं; अतः सेवाका सारा यश किसी एकको नहीं जाता।

१९१. पत्र : देवचन्द पारेखको

आश्रम, साबरमती
४ अगस्त, १९२९

भाईश्री देवचन्दभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। किसी भी रियासतमें परिषदकी कार्यकारिणी समिति इत्यादिका सदस्य चुने जाने पर परिषद्‌का प्रतिबन्ध कोई बाधा नही डालता। किन्तु इस मामलेमें मुझे बहुत सन्देह है कि फिलहाल काठियावाड़की कोई रियासत किसी दूसरी रियासत के निवासीको इस प्रकार चुनेगी। यदि तुम अपना नाम दो और वह स्वीकार न किया जाये तो यह असह्य हो जायेगा। यदि भाई जमनादास विश्वास दिला सकें कि तुम्हारा नाम स्वीकृत हो ही जायेगा तो मै तुम्हारे चुने जानेमें कोई अड़चन नहीं मानता। इसमें लाभ तो मुझे कुछ भी नहीं दिखता। व्यावहारिक दृष्टिसे भी इसका विचार न करना ही अच्छा होगा। एक कदम उठा लेनेके बाद कहाँ जाकर रुकेंगे इसकी खबर ही नहीं पड़ती। किन्तु इन तमाम विषयोंके बारेमें स्थानीय स्थितिसे अवगत तुम लोग अधिक समझते हो, मैं यह माननेके लिए तैयार हूँ। और इसलिए तुम्हारी इस सलाहको बहुत महत्वपूर्ण मानना जरूरी नहीं है।

तुम्हारा एक स्वभाव पड़ गया है। उसे अब तुम्हें छोड़ ही देना चाहिए। मेरा इस समय परिषद्‌में आ सकना एक कल्पनातीत बात थी। समय तमाम कामोंमें रुका हुआ है। जवाहरलालको मानपत्र अवश्य दिया जाये, किन्तु वह मेरे हाथसे नहीं दिया जा सकेगा। यदि बापका बेटेको मानपत्र देना शोभनीय माना जा सकता हो, तभी यह शोभनीय लगेगा। मुझे जवाहरलालकी भी एक चिट्ठी मिली है। उसमें लिखा है कि सम्भव है, उन्हें अपनी धर्मपत्नीका तुरन्त ही ऑपरेशन कराना पड़े; उस हालतमें वे आ नहीं सकेंगे। दिये हुए वचनका पालन करनेमें वे बहुत तत्पर माने जाते हैं। किन्तु यदि ऊपर जैसा कोई प्रसंग आ जाये तो बड़ेसे-बड़े बलवानका बल भी तृणवत् हो जाता है। हम आशा यही रखें कि ऐसा कोई विघ्न उपस्थित नहीं होगा।

बापूके वन्देमातरम्

[पुनश्चः]

दुबारा नहीं पढ़ा है।

गुजराती (जी० एन० ५७१८)की फोटो-नकलसे।

१९२. पत्र : एम० आर० जयकरको

साबरमती
५ अगस्त, १९२९

प्रिय श्री जयकर,

अप्रत्याशित रूपसे पत्रके साथ आपका सूत पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सुखके पुराने दिनोंकी याद ताजा हो गई। पुरानी यादें इसी तरह हरी करते रहिए। आपके काते हुए एक-एक गज सूतके अनुपातमें देश समृद्ध होगा; और दूसरे लोग भी प्रेरणा पाकर आपका अनुकरण करेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

जयकरके निजी कागजात, पत्र व्यवहार फाइल सं० ४०७/६
सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया

१९३. टिप्पणी : छगनलाल जोशीके लिए

[५ अगस्त, १९२९][1]

इसके लिए जो ठीक लगे सो करो। उसे रखा जा सके तो मुझे अच्छा ही लगेगा; किन्तु उसका पश्चात्ताप सच्चा है या नहीं इसका विचार तो तुम्हें करना है।

बापू

गुजराती (एस० एन० १५८१५) की माइक्रोफिल्मसे।

१. गांधीजीके स्वाक्षरोंमें यह टिप्पणी जेठालाल वीरजीके कराचीसे लिखे २८-७-१९२९ के उस पत्रपर दी गई है जिसमें उसने लिखा था कि मैंने छगनलालके पत्रका अनर्थ नहीं किया है।

१९४. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

५ अगस्त, १९२९

भाई बनारसीदास,

आपका खत मीला है। 'मराठा' का लेख पढ़ गया। मेरा अभिप्राय है कि हमारे इस बारेमें कुछ भी नहिं लीखना चाहीये। मेरा विश्वास है कि इसका कोई असर पश्चिममें नहिं पड़ेगा। यदि पड़ा तो उसका जो-कुछ उत्तर हम देंगे उससे काम और बिगड़ेगा। सेवकोंपर ऐसा हुमला होता ही रहेगा। कुछ भी आवश्यक होगा तो दीनबन्धु[1] मुझे अवश्य लीखेगा।

आपका,
मोहनदास

जी० एन० २५५६ की फोटो-नकलसे।

१९५. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

६ अगस्त, १९२९

चि० शान्तिकुमार,

तुम्हारा पत्र और चैक[2] मिल गये हैं। रसीद इसके साथ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७१५-बी) फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१९६. तार : प्रफुल्लचन्द्र घोषको[3]

[६ अगस्त, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

अमृतलाल ठक्करसे सिलचरमें मिलिए।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४४९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज।

२. असम राहत कोषके लिए १०० रुपयेका चैक।

३. कौमिलासे ५ अगस्तको दिये गये और ६ अगस्तको साबरमतीमें प्राप्त उनके तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार है : "राहतके कार्यक्षेत्रमें कताई आरम्भ कर रहा हूँ। कृपया अपने राहत कोषसे दस हजार या जितना अधिक सम्भव हो देनेकी व्यवस्था करें।"

१९७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

७ अगस्त, १९२९

प्रिय जवाहरलाल,

पुस्तकके नामके रूपमें "डान ऑफ हिस्ट्री' [इतिहासका उषाकाल] मुझे पसन्द नहीं। 'लैटर्स टु इन्दिरा' ['इन्दिराके नाम पत्र']की अपेक्षा 'ए फादर्स लैटर्स टु हिज डाटर' ['पिताके पत्र पुत्रीके नाम'] नाम शायद ज्यादा अच्छा रहेगा। वैसे पहले पर भी मुझे कोई आपत्ति नहीं।

मानता हूँ कि कमलाको बार-बार उभरनेवाली इस पीड़ासे छुटकारा मिल जाये। यदि डाक्टर लोग आपरेशन करानेकी सलाह दें, तो मैं वह जोखिम उठानेको तैयार हो जाऊँगा।

घड़ीको मैं अलग तालेमें रख रहा हूँ और वहाँ आते समय साथ लेता आऊँगा।

मैं ११ तारीखको जिन्नासे मिलने बम्बई जा रहा हूँ। सरोजिनी देवीकी उत्कट आशावादिता सराहनीय है। परन्तु मैं कोई बड़ी आशा बाँधकर बम्बई नहीं जा रहा हूँ।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू कागजात, १९२९।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१९८. पत्र : देवचन्द पारेखको

आश्रम, साबरमती
७ अगस्त, १९२९

भाई देवचन्दभाई,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। समितिपर नियुक्त होनेका विचार छोड़ दिया सो अच्छा किया है।

भाई जवाहरलालको रेवाशंकरभाई अथवा दरबार साहब मानपत्र दें। मैं सोचता हूँ कि दरबार साहब उपस्थित तो रहेंगे ही। वल्लभभाई तो तब मद्रास प्रदेशमें होंगे।

बापू

गुजराती (जी० एन० ५६९७) की फोटो-नकलसे।

१९९. पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

आश्रम, साबरमती
७ अगस्त, १९२९

भाईश्री,

आपका पत्र मिल गया है। आपकी मेहनत सफल हो। मेरे इस अज्ञानके लिए मुझे क्षमा करें। टैरिफ बोर्डमें कौन-कौन हैं?

आप जिस प्रकारके विशेषज्ञोंकी आशा बाँधे हैं वैसे विशेषज्ञ फिलहाल कांग्रेसके पास नहीं हैं। कांग्रेसकी प्रतिष्ठा जितनी व्यापक हुई है, उसकी ज्ञान-शक्ति भी उसी अनुपातमें व्यापक नही हुई, यह दुःखकी बात है। पर कौन जाने, सन्धिकालमें यही अनिवार्य था। सरकारी ढाँचेमें ढले विदेशी अर्थशास्त्रके विद्यार्थी कांग्रेसकी ग्रामाभिमुखता देनेवाली अर्थ-नीतिकी कद्र नहीं कर सके, उससे समरस नहीं हो सके, आवश्यक त्याग नहीं कर सके, इसलिए उन्होंने उसे छोड़ दिया। यह विच्छेद न हुआ होता तो हमें कबका अपने घर पर कब्जा मिल गया होता। आज कांग्रेसकी स्थिति अपंग जैसी है, तो भी आप अपनी इच्छाका अधिक स्पष्टीकरण करें और मुझे आवश्यक जानकारी लिख भेजें। इसके लिए जो-कुछ करना सम्भव होगा वह मैं अवश्य करूँगा। बाहरसे नमक मँगाना बाहरसे पानी मँगानेकी तरह असंगत लगता है। किन्तु हमारी असंगतियोंकी क्या कोई सीमा है? आंगनमें कपास पैदा होता है, फिर भी हम लगभग एक अरबका कपड़ा बाहरसे मँगाते हैं। इसके आगे डेढ़ करोड़के विदेशी नमककी तो बिसात ही क्या है। यह तो विषयान्तर हो गया; इसलिए इतना लिखा भी बहुत मानें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

पुरुषोतमदास ठाकुरदासके कागजातमें उपलब्ध गुजराती पत्रसे : फाइल संख्या ८९/१९२९

सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२००. पत्र : मदनमोहन मालवीयको

[७ अगस्त, १९२९][1]

भाई साहेब,

'ब्राह्मण महासम्मेलन' नामका अखबार काशीमें प्रगट होता है। सनातन धर्मका रक्षक अपनेको मनाता है। उसमें महर्षि दयानन्द स्वामी पर बहोत गंदे आक्षेप आते हैं। इस बारेमें आर्यसमाजी पत्रोंमें बहोत टीका भी आती है। क्या आप इन लेखोंको रोक नहिं सकते हैं?

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपका,
मोहनदास

भारतभूषण, पंडित
मदनमोहन मालवीयजी
यूनिवर्सिटी, बनारस सिटी

जी० एन० ८६८३ की फोटो-नकलसे।

२०१. टिप्पणियाँ

चेचकका टीका

मेरे कहीं यह कह देने पर कि टीका लगवाना 'माताकी बीमारीसे बचनेका एक अस्थायी-सा उपाय'[2] है, टीकेका विरोध करनेवाले कुछ उत्साही सज्जन मुझे उपालम्भ दे रहे हैं। ये पत्र-लेखक 'अस्थायी-सा' के उपयोगको भूलकर मेरे अपने आपको टीका-विरोधी कहनेके दावेको अमान्य करते हैं। मैं अपने इन उत्साही मित्रोंसे यह समझनेका निवेदन करूँगा कि अगर कोई व्यक्ति टीकेको बीमारीसे बचनेका एक अस्थायी-सा उपाय माने और इस अस्थायी संरक्षणको कोई महत्व न दे तो वह एक ठीक ढंगका टीका-विरोधी व्यक्ति माना जा सकता है। जहाँतक मेरा सवाल है, मैं स्थायी, अस्थायी अथवा और किसी भी प्रकारके संरक्षणकी दृष्टिसे टीकेका उपयोगी होनेमें विश्वास नहीं करता। वह संरक्षणका आभास देता है; सो भी इसलिए कि जो इस गन्दी पद्धतिके आगे सिर झुका देते हैं; उनमें से बहुत-से लोग इस आधार पर कि उनके पड़ोसी टीके लगवा रहे हैं, माताकी बीमारीसे बच जानेकी बातपर भरोसा कर लेते हैं। भयके मारे हुए इन बेचारोंको कौन यह समझा सकता है कि अपने उन तमाम पड़ोसियोंकी तरह जिन्होंने माताके टीके कभी नहीं लगवाये और जो

१. डाककी मुहरसे।
२. देखिए "टिप्पणियाँ", १८-७-१९२९ का उपशीर्षक "टीकेका विरोध"।

माताकी बीमारीसे बचे रहे, खुद वे भी बचे रह सकते हैं। अपनी टिप्पणीमें मैंने केवल एक मनोवैज्ञानिक तथ्यका उल्लेख-भर किया था। यदि टीका विरोधी सज्जन-वृन्द तथ्योंके बारेमें पूरी तरह सावधान रहें, जनताके पूर्वग्रह और भयको उनका ठीक स्थान दें तथा अनिवार्य रूपसे टीका लगवानेके प्रति धीरजके साथ लोकमत तैयार करें तो काफी काममें अवधिके भीतर ही वे सुधार करा लेनेके बारेमें आश्वस्त हो सकते हैं। यदि भारतका शिक्षित समाज ऐसी बातोंके प्रति उदासीन न रहे तो ऐसी एक बातको अनिवार्य बनाया ही नहीं जा सकता था जिसके विषयमें गण्यमान्य चिकित्सकोंकी राय सुधारकोंकी बातके पक्षमें जाती है और जिसके विषयमें ऐसे आँकड़े भी प्राप्त हैं जो इस अनिवार्यताके खिलाफ कुछ नहीं तो एक तर्कसम्मत पक्षका निर्माण तो कर ही देते हैं। यदि मेरे पड़ोसियोंको रोगकी छूतका डर हो तो मैं अनिवार्य रूपसे अपनेको उनसे दूर कर दिये जानेकी बात तो समझ सकता हूँ किन्तु जिस कामके प्रति मुझे धर्म और स्वास्थ्यके आधारपर आपत्ति है उसे करानेपर मैं मजबूर नहीं किया जा सकता। समाजको मुझसे अपनी रक्षा पानेका अधिकार तो है; किन्तु मेरी ही रक्षाके लिए मुझपर जबर्दस्ती कोई चीज लादनेका उसे कोई अधिकार नहीं है। मुझे गलती करनेका अधिकार – जबतक मेरी गलती किसी औरको खतरेमें नहीं डालती-मेरी आजादीका सार-तत्त्व है।

एक देशभक्तका देहान्त

एक संवाददाता लिखते हैं:[1]

> **मुझे यकीन है, आपको यह जानकर हार्दिक दुःख होगा कि लाला बाँके-दयाल, जो साप्ताहिक 'झंग सियाल' के सम्पादक और पंजाबके एक निःस्वार्थ कांग्रेसी कार्यकर्त्ता थे अब नहीं रहे। . . . शायद आपको याद होगा कि उन्होंने आपके प्राइवेट सेक्रेटरीकी तरह काम भी किया था और फौजी कानून के अत्याचारोंके सम्बन्धमें निकलनेवाली कांग्रेसकी रिपोर्टके लिए पंजाबके कुछ गाँवोंसे उन्होंने प्रमाण एकत्र करने और उनको छाँटनेका काम किया था। लाला बाँकेदयालजीने गरीबीकी जिन्दगी बिताई। उन्हें भूखों भी मरना पड़ा। क्या आप उनके आश्रितोंका कष्ट दूर करानेके लिए पंजाब कांग्रेसको अथवा किन्हीं उदार व्यक्तियोंको प्रेरित करेंगे? बाँकेदयाल जैसे आजीवन कार्यकर्ता और निःस्वार्थ देशभक्त इससे कुछ अधिकके अधिकारी हैं।**

जब मैं कांग्रेसकी ओरसे फौजी कानून-सम्बन्धी अत्याचारोंकी जाँच करनेके लिए पंजाब गया था तब मुझे लाला बाँकेदयालके सम्पर्कमें आनेका अच्छी तरह स्मरण है। संवाददाताने उनकी सेवाओंके बारेमें जो-कुछ लिखा है, उसकी मैं पुष्टि कर सकता हूँ। मैं दिवंगतके कुटुम्बके प्रति समवेदना प्रकट करता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि पंजाबके सम्पन्न कांग्रेसजनोंको उनके परिवारकी स्थितिकी जाँच करनी चाहिए

१. अंशतः उद्धृत।

और उसके लिए आवश्यक प्रबन्ध करना चाहिए। सभी देशभक्त कार्यकर्त्ताओंको यह अनुभव होना चाहिए कि उनकी सच्ची सेवा ही उनके पीछे रह जानेवाले आश्रितोंके लिए निश्चित बीमेका काम देगी। राहत स्थानीय ही मिलनी चाहिए। यह ठीक नहीं कि कराचीके देशभक्तके परिवारका भरण-पोषण डिब्रूगढ़से करना पड़े।

अ० भा० च० सं०के भंग करनेवाले सदस्य

अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्री सूचित करते हैं कि उसके अनेक सदस्यगण अपनी सदस्यता तो बनाये रखना चाहते हैं किन्तु उसके नियमोंके पालनमें तत्पर नहीं हैं। अवधि बढ़ा देनेके बावजूद अभीतक कितनोंने ही अपने हिस्सेका सूत नहीं भेजा है तथा और भी रियायतकी माँग कर रहे हैं। मैंने मन्त्रीसे अनमने भावसे परिषद्की बैठक होनेकी तिथि २१ तारीखतक बढ़ा देनेको कहा है। किन्तु यदि किसी संस्थाके सदस्य रियायतें ही माँगतें रहें तो वह संस्था कमजोर हो जाती है? मैं जानता हूँ कि सदस्योंकी दीर्घसूत्रता अनेक संस्थाओंके नाशका कारण हुई है। तथापि जिस संस्था को तीन करोड़ स्त्री पुरुषोंकी व्यक्तिशः सेवा करनी पड़ती हो अगर वह सदस्यताकी शर्तोंके सम्बन्धमें ढिलाईसे काम ले तो उसका काम नहीं चल सकता। और यदि सदस्यगण नियमसे कातें तो सूत भेजनेकी शर्त कोई कड़ी शर्त भी नहीं है। कई सज्जन पिछले चन्देको चढ़ते जाने देते हैं और सोचते हैं कि लगातार कई घंटोतक कातकर साराका-सारा आवश्यक सूत अदा कर देंगे। दुर्भाग्यवश वे कई घंटे उन्हें कभी मिल ही नहीं पाते और वे नियम-भंगके दोषी बन जाते हैं। रोज नियमसे आधा घंटा कात लेना आसान है और नित्य चरखेके माध्यमसे करोड़ों गरीब लोगोंसे जीवन्त सम्पर्क स्थापित कर सकना एक आनन्दकी बात होनी चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि सदस्यगण मेरे कथनकी सचाईको समझकर जल्दी बकाया सूत अदा कर देंगे और फिर कभी चंदा बकाया न रखनेका अहद कर लेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-८-१९२९

२०२. लाइलाज

प्रस्तावित भू-राजस्व विधेयकपर और उससे सम्बन्धित बारडोली जाँच-प्रतिवेदनपर[1] गवर्नर महोदय और राजस्व मन्त्रीके भाषणोंको सावधानीसे पढ़नेके बाद मुझे इस निष्कर्षपर पहुँचनेको विवश होना पड़ रहा है कि यह सरकार लाइलाज है; यह सुधर नहीं सकती। लगता है जैसे बम्बई सरकारने तो समितिके इस प्रतिवेदनको केवल इसलिए स्वीकार कर लिया था कि उसके सिरपर तलवार लटक रही थी। उसे मालूम था कि प्रतिवेदनको अस्वीकृत करनेसे सारा आन्दोलन पहलेसे भी अधिक गम्भीर रूपमें भड़क उठेगा। इस स्वीकृतिमें कोई शालीनता या बड़प्पन नहीं

१. देखिए "बारडोली जाँच समितिका प्रतिवेदन", १३-६-१९२९।

था। राजस्व मन्त्रीने तो यहाँतक कह दिया कि यदि सरकार चाहती तो सर्वश्री ब्रूमफील्ड और मैक्सवेल द्वारा एकत्रित और स्वीकृत आँकड़ोंके ही आधारपर उक्त सज्जनों द्वारा निकाले गये निष्कर्षोंसे बिलकुल विपरीत निष्कर्ष निकाल सकती थी; किन्तु उसने मामलेको दाखिल-दफ्तर करनेके ख्यालसे रिपोर्टको स्वीकार कर लिया है। हाकिमों की ज्यादतियों या बन्दोबस्त अधिकारियोंकी उन जबर्दस्त भूलोंके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा गया, जिनके कारण संघर्ष लम्बी अवधितक चला और लोगोंको भारी कष्ट सहन करने पड़े। भूतपूर्व गवर्नरके प्रकाशित पत्रोंके बावजूद, राजस्व मन्त्री यह कहनेकी हिम्मत कर रहे हैं कि मामलेकी छानबीनका आदेश किसी दबावके कारण नहीं बल्कि इसलिए दिया गया था कि बन्दोबस्त गैरकानूनी बताया गया था और दरोंके गलत आँकड़ोंपर आधारित होनेके निश्चित आरोप लगाये गये थे। वे भूल जाते हैं कि भूतपूर्व गवर्नरने तो इन आरोपोंका खण्डन किया था और एक अशोभनीय ढँगसे अपनी पूरी शक्ति बन्दोबस्तको सर्वथा उचित सिद्ध करनेमें लगा दी थी और फिर उतने ही अशोभनीय ढंगसे यह अविवेकपूर्ण भविष्यवाणी की थी कि यदि मामलेकी जाँच कराना स्वीकार कर लिया गया तो जाँचके निष्कर्षस्वरूप लगान की दर और ऊँची निर्धारित हो जायेगी।

भाषणोंने यह बात बिलकुल ही स्पष्ट कर दी है कि सरकार न्यायकी खातिर न्याय करनेमें विश्वास नहीं करती। उसके अस्तित्वको खतरा पैदा करनेवाले महत्वपूर्ण मामलोंमें वह यदि किसी चीजके सामने झुक सकती है तो वह दबाव ही है। उसने सोचा, यदि यह दबाव कारगर ढंगसे डाला जायेगा तो उसके अस्तित्वको कहीं बड़ा खतरा पैदा हो जायेगा, और यदि वह जनताकी न्यायपूर्ण माँगोंको मान लेगी तो उसे इतना बड़ा खतरा नहीं उठाना पड़ेगा। इस प्रकार सरकारने बारडोली आन्दोलनके आगे अपने घुटने केवल इसलिए टेके कि आन्दोलनके दबावके कारण उसके अस्तित्वको जितना बड़ा खतरा पैदा हो गया था, अनिच्छापूर्वक नाममात्रके न्यायकी मंजूरी देनेमें उतना बड़ा खतरा नहीं था।

परन्तु बारडोलीके साथ किये गये नाममात्रके इस यत्किंचित् न्यायने ही कुछ ऐसे परिणाम दिखाये कि सरकार परेशानीमें पड़ गई। अब उसे यह घोषणा करनी पड़ गई है कि सर्वश्री ब्रूमफील्ड और मैक्सवेल द्वारा बतलाई भूलें भविष्यमें दुहराई न जा सकें इसलिए शीघ्र ही राजस्व विधेयक प्रस्तुत किया जायेगा। पर प्रस्तावित विधेयककी रूपरेखाका जो आभास राजस्व मन्त्रीने दिया है, उससे उत्साहित होनेका कोई कारण नहीं दिखता। डर तो इस बातका है कि उक्त कानून कहनेके लिए कुछ तथा अमलमें कुछ और ही होगा। यदि लगान-निर्धारणके तरीकेमें आमूल परिवर्तन नहीं किया गया और बन्दोबस्त अधिकारियोंके निर्णयोंके विरुद्ध न्यायालयोंमें अपील करनेका अधिकार नहीं दिया गया तो सार्वजनिक तौर पर आँकड़े एकत्र करने और उनको सहेज रखनेका कोई लाभ ही नहीं है। सरकार जानती है कि ऐसा अधिकार देनेका अर्थ होगा राजस्वकी भारी हानि; और राजस्वमें उल्लेखनीय कमीका प्रभाव होगा प्रशासन-व्यवस्थामें क्रान्तिकारी सुधार। उल्लिखत दोनों भाषणोंसे ऐसी कोई आशा नहीं बँधती।

अस्तु, अब सरदार वल्लभभाई और उनके नवनिर्मित संघको क्या करना चाहिए सो निश्चित हो गया है। इसका निर्माण शुभ घड़ीमें हुआ। इसमें सभी प्रकारके विचारोंके लोग मौजूद हैं। संघकी सम्पूर्ण शक्ति यह करनेकी कोशिशमें लगेगी कि प्रस्तावित कानूनसे उन लोगोंको बहुत काफी राहत मिले जो अपनी छोटी-छोटी जोतोंके कारण करोंके अत्यधिक भारको सँभालनेमें असमर्थ है और उसके बोझसे दबकर कराह रहे हैं। बारडोलीके मामलेमें सरकारसे भयंकर गलती हुई हैं; उसे सरकारने शोभा और स्पष्टवादिताके साथ स्वीकार नहीं किया है। इसलिए अब ऐसी कोई आशा नहीं रह गई है कि समझदारी और तथ्योंकी पूरी जानकारीके साथ, बड़े पैमाने पर एक जोरदार आन्दोलन चलाये बिना कभी भी कोई वास्तविक सुधार किया जा सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-८-१९२९

२०३. महाराष्ट्र खादी-संघ

महाराष्ट्र खादी संघ देशकी सर्वोत्तम खादी संस्थाओंमेंसे एक व्यवहारपटु और सुव्यवस्थित संस्था है। धुलियाके श्री शंकरराव देव इस संघके अध्यक्ष हैं, अतः इसमें आश्चर्यकी कोई बात भी नहीं है। संघके मन्त्रीने चरखा संघके पास अपने संघका एक बहुत ही दिलचस्प विवरण भेजा है। उसका कुछ भाग नीचे दिया जाता है:[1]

> **खादी-प्रचारके लिए हमारे कार्यकर्त्ताओंने अपने-अपने क्षेत्रमें दौरा किया था और वहाँ प्रमुख स्थानोंमें भाषण किये थे। . . . खादी प्रचारकी इन यात्राओंमें कार्यकर्त्ताओंने नियमित-रूपसे खादी पहननेवालों अथवा अबसे आगे नियमित खादी पहननेकी प्रतिज्ञा करनेवालों और हर साल कमसे-कम १०)की खादी खरीदनेकी प्रतिज्ञा लेनेवालोंके हस्ताक्षर लिये। . . . इन कार्यकर्त्ताओंने जो विवरण भेजे हैं उनसे पता चलता है कि आज सारे महाराष्ट्रमें नियमित खादीधारियोंकी संख्या ४,००० है। . . .**
>
> **. . . पहलेकी भाँति आज खादी आन्दोलनका महाराष्ट्रमें न तो कोई तिरस्कार करता है, न मजाक ही उड़ाता है। अब धीरे-धीरे जनता इस आन्दोलनके महत्वको समझने लगी है। . . .**

मैं संघको जैसा कि मैं कई बार कह चुका हूँ, यह सलाह देता हूँ कि खादी-उत्पत्ति बढ़ानेके लिए उसे नीचे लिखी तीनों प्रकारकी चरखा-प्रवृत्तिको उत्तेजन देना चाहिए:

१. स्वावलम्बी कताई,

२. यज्ञार्थ कताई, और

३. भुखमरी और बेकारी मिटानेके लिए मजूरी देकर कताई कराना।

१. यहाँ उस आंशिक विवरणसे भी केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

इसके सिवा संघको महाराष्ट्रका एक नक्शा तैयार करना चाहिए। नक्शेमें यह बताया जाए कि महाराष्ट्रके किन-किन भागोंमें बहुत ज्यादा गरीबी फैली हुई है और किन स्थानोंके लोगोंके लिए फुर्सतके वक्तमें गृह-उद्योगके रूपमें कताई और धुनाईका काम बहुत जरूरी है। यह कहना आवश्यक न होगा कि अगर संघके सब कार्यकर्त्ता बुनना सीख लें और चरखा दुरुस्त करनेकी कला हस्तगत कर लें, तो थोड़े ही समयमें वे अपने काममें बहुत कुछ सफलता पा सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-८-१९२९

२०४. बिना राँधा आहार

बिना राँधे आहारसे सम्बन्धित मेरे प्रयोगोंमें जो दिलचस्पी पैदा हुई है और उसके समर्थनमें जो पत्रादि मिले हैं, निस्सन्देह वह उल्लेखनीय है। कुछ पत्र-लेखकोंने तो अपने अनुभव प्रकाशनके लिए भी भेजे हैं। लेकिन मैं उनको प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। उत्साहीजनोंमें, मैंने अतिशयोक्तिकी प्रवृत्ति पाई है। बहुधा लोग या तो अपर्याप्त आँकड़ोंके आधारपर अपने निष्कर्ष निकाल लेते हैं अथवा अपने प्रयोगों और परिणामोंके बीच ऐसे सम्बन्धकी कल्पना कर लेते हैं जो यथार्थसे मेल नहीं खाती। यद्यपि ये प्रयोग, मेरे अपने प्रयोगोंके साथ मिलाकर देखनेपर मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं, तथापि उन्हें दूसरे साथियोंके मार्ग-दर्शक सिद्धान्तके रूपमें प्रकाशित करते हुए मुझे संकोच होता है। अस्तु, मैं अपने अनुभवों और जाँच-पड़ताल के प्रमाणित परिणामोंको इस चेतावनीके साथ समय-समयपर प्रस्तुत करता रहूँगा कि इनमें कसर भी हो सकती है। मैंने लम्बी अवधिके प्रयोगों और जाँच-पड़तालके बाद यह देखा है कि भोजनके बारेमें ऐसा कोई एक नियम नहीं है जो सभी प्रकारकी शारीरिक स्थितिवाले लोगोंपर समान रूपसे लागू हो सके। बुद्धिमानसे-बुद्धिमान चिकित्सक अपनी सलाह देते हुए केवल इतना ही कह सकता है कि अमुक प्रकारका भोजन किसी विशेष व्यक्तिके लिए लाभकारी हो सकता है क्योंकि वह ऐसी ही स्थिति वाले अधिकांश लोगोंके लिए लाभकारी रहा है। चिकित्सा-विज्ञानके क्षेत्रमें अनुसन्धान करनेवाले वैज्ञानिकके सामने जितनी अड़चनें आती हैं उतनी अड़चनें विज्ञानकी किसी अन्य शाखामें नहीं आती। वह किसी औषधि या भोजनके प्रभाव अथवा इनके सेवनके कारण मानव-शरीरकी प्रतिक्रियाओंके बारेमें विश्वासपूर्वक कहनेका साहस नहीं कर सकता। इसका आधार सदा अनुभव रहा है और रहेगा। 'भटा एकको पित्त करे, करे एकको बाय' यह प्रचलित कहावत व्यापक अनुभवपर आधारित है और इसकी सच्चाई नित्य-प्रति सिद्ध होती रहती है। इस परिस्थितिमें समझदार स्त्री-पुरुषोंके लिए प्रयोगके लिए अपरिमित क्षेत्र पड़ा है। आम आदमीको शरीरके बारेमें काम-चलाऊ जानकारी तो होनी ही चाहिए, क्योंकि शरीर हमारी आत्माके विकासमें अत्य-धिक महत्वपूर्ण हिस्सा अदा करता है। फिर भी हम शरीरकी जितनी घोर उपेक्षा

करते हैं या शरीरके बारेमें लोगोंमें जितना अज्ञान है, उतना अन्य किसी चीजके बारेमें नहीं। शरीरको, ईश-मन्दिर समझनेके बजाय, उसे हम लोग भोगका साधन समझते हैं और अपनी इस प्रवृत्तिको बढ़ावा देने और इस प्रकार पार्थिव शरीरका दुरुपयोग करनेके लिए, निर्लज्जतापूर्वक चिकित्सकका सहयोग लेने दौड़ते हैं।

परन्तु हम अब आजतक प्राप्त परिणामोंको लिख डालें।

१. [उद्योग] मन्दिरमें मेरे साथ इस प्रयोगमें शामिल लोगोंकी संख्या अब बाईस हो गई है। इनमें से अधिकांशने दूध छोड़ दिया है।

२. वे अब भोजनके साथ केले भी लेने लगे हैं और नारियलकी मात्रा बढ़ा दी है।

३. यह बात पर्याप्त विश्वासके साथ कही जा सकती है कि दूध पीना जारी रखनेसे कमजोरी आने अथवा किसी अन्य प्रकारके अनिष्टकारी परिणामका भय नहीं रह जाता।

४. बिना राँधे अंकुरित अन्नों या दालों और बिना राँधी हरी सब्जियोंको हजम करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती।

५. अजीर्णसे पीड़ित लोगोंमें से अधिकांश लोगोंको अन्नों और दालोंका प्रयोग छोड़ देना पड़ा। उन्होंने नारियलका पानी तथा घिया, कद्दू, ककड़ी आदि हरी सब्जियाँ अच्छी तरह धोकर काफी मात्रामें छिलके सहित खानी आरम्भ की। नारियलका पानी तैयार करनेके लिए ऐसे नारियलको जो सूखा न हो बारीक पीसकर, उसमें नारियलका ही अथवा सामान्य जल मिलाकर और उसे फेंटकर मोटे कपड़ेसे छान लिया जाता है। इस प्रकार बिना किसी हानिके या बेचैनी महसूस किये पूराका-पूरा नारियल लिया जा सकता है।

६. अधिकांश लोगोंका वजन घट गया है। किन्तु बिना राँधे भोजनकी सिफा-रिश करनेवाले चिकित्सा-विशेषज्ञ, इस बातपर जोर देते हैं कि इस प्रकार वजन घटना एक हदतक शरीरकी स्वस्थ प्रक्रियाका सूचक है और इस बातका प्रतीक है कि शरीर विषैले पदार्थोंको निकाल रहा है।

७. अधिकांश लोग अभीतक कमजोरीका अनुभव करते हैं, लेकिन उल्लिखित प्रामाणिक मतपर — कि ऐसे प्रयोगोंमें कमजोरी आना बीचकी एक अनिवार्य स्थिति है — विश्वास रखकर वे अपने प्रयोगोंमें लगे हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माँड व चिकनाईयुक्त खाद्य-पदार्थोंके अत्यधिक प्रयोगके कारण बढ़ा हुआ पेट तबतक खालीपन महसूस करता है जबतक उसका आकार सामान्य नहीं हो जाता।

८. प्रयोग आसान नहीं है। इनके परिणाम भी चमत्कारिक नहीं होते। इसके लिए धैर्य, लगन और सावधानी आवश्यक होती है। प्रयोग करनेवाले प्रत्येक स्त्री-पुरुषको अपने शरीरके लिए उपयुक्त विभिन्न खाद्य-पदार्थों और उनकी मात्राका सन्तु-लन स्वयं निश्चित करना होता है।

९. हममें से लगभग प्रत्येक व्यक्तिने पहलेसे अधिक स्पष्ट मानसिक शक्ति और स्फूर्तिदायक आत्म-शान्तिका अनुभव किया है।

१०. कई लोगोंने अनुभव किया है कि यह प्रयोग पशु-प्रवृत्तियोंको शान्त करनेमें निश्चित तौरपर सहायक होता है।

११. पूरी तरह चबाकर खानेकी सुस्पष्ट आवश्यकतापर जितना जोर दिया जाये, थोड़ा है। मैंने देखा कि उद्योग-मन्दिरके बड़े ही सावधान किस्मके निवासियोंमें से भी कई ऐसे हैं जो चबा-चबाकर खानेकी कलासे अनभिज्ञ हैं और इसीलिए उनके दांत खराब हैं और मसूड़े फूले रहते हैं। इस सिलसिलेमें कुछ ही दिनोंतक काफी देरतक खूब चबा-चबाकर नारियल और हरी सब्जियाँ खानेके बड़े आश्चर्यजनक परिणाम हुए हैं।

अनेक चिकित्सक मेरे प्रयोगमें रुचि ले रहे हैं। जिन वस्तुओंका उपयोग मैं कर रहा हूँ, वे उनके पक्ष-विपक्षमें आयुर्वेदिक ग्रन्थोंके उद्धरण मुझे भेजते रहते हैं। दो या तीनने तो गर्म पानीके साथ शहद लेनेके विरोधमें एक ही तरहकी उक्तियाँ भेजी हैं और उसके गम्भीर परिणामोंकी घोषणाएँ भी की हैं। लेकिन जब मैंने उनसे यह पूछा कि क्या उक्त प्रमाणोंको उन्होंने अपने निजी अनुभवोंके आधारपर भी परखा है, तो वे चुप रह गये। गर्म पानीके साथ शहद लेनेका मेरा अनुभव चार सालसे अधिक पुराना है। इस प्रयोगका मैंने कोई बुरा असर नहीं देखा। शहदके प्रयोगपर अहिंसाके आधारपर भी आपत्ति की गई। इस आपत्तिमें काफी वजन है, यह मैं स्वीकार करता हूँ, किन्तु शहद संचय करनेका पश्चिमी तरीका अधिक स्वच्छ है और उसपर ऐसी आपत्ति भी अधिक लागू नहीं होती। मुझे भय है, यदि मैं सभी मामलोंमें शुद्ध तर्कको ही एक कसौटी मानकर चलूँ, तो मुझे ऐसी बहुत-सी चीजें छोड़ देनी पड़ेंगी जिन्हें मैं खाता हूँ या जिनका उपयोग करता हूँ। लेकिन जीवन केवल तर्कोंसे ही तो अनुशासित नहीं होता। जीवन तो एक जीती-जागती चीज है, ऐसी जीती-जागती चीज जो देखनेमें बेतरतीब और अनियमित-सी लगती है, पर जिसके अपने नियम और तर्क होते हैं। मैंने, चिकित्सकोंकी सलाहपर यरवदा जेलमें शहद लेना आरम्भ किया था। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि उसका प्रयोग अब भी मेरे लिए आवश्यक है या नहीं। पश्चिमके चिकित्सक इसके बड़े प्रशंसक हैं। चीनीकी अत्यधिक बुराई करनेवाले अधिकांश चिकित्सक, शहदकी बहुत तारीफ करते हैं। उनका कहना है कि शहदका प्रयोग उतना उत्तेजक नहीं होता, जितना साफ की हुई चीनी अथवा गुड़का होता है। अभी शहदका प्रयोग छोड़कर मैं अपने प्रयोगोंको कमजोर नहीं बनाना चाहता। यदि बिना राँधे भोजनके प्रयोगोंको शंकातीत सफलता मिली तो अहिंसाके पक्षकी अ-सेवाकी अपेक्षा उससे उसकी सेवा ही अधिक होगी।

एक अन्य चिकित्सकने भी अंकुरित दालके प्रयोगके विरुद्ध प्रमाण दिया है; किन्तु इस प्रमाणकी पुष्टिमें उसका निजी अनुभव कुछ भी नहीं है। अनेक आयुर्वेदिक चिकित्सकोंसे मेरी यही शिकायत रही है। मुझे विश्वास है कि निश्चय ही चिकित्सा-शास्त्रके संस्कृत ग्रन्थोंमें अपार ज्ञान भरा पड़ा है। पर लगता है कि हमारे यहाँके आयुर्वेदिक चिकित्सा-शास्त्री इतने आलसी हैं कि वे उस ज्ञानका सच्चे अर्थोंमें उलथा करनेका कष्ट नहीं उठाना चाहते। वे छपे-छपाये सूत्रोंको दुहरा कर ही सन्तोष कर

लेते हैं। सामान्य व्यक्तिकी हैसियतसे भी मैं यह जानता हूँ कि अनेक आयुर्वेदिक औषधियोंके बहुगुण सम्पन्न होनेका दावा किया जाता है, किन्तु उन गुणोंका प्रदर्शन यदि आज नहीं किया जा सकता तो फिर उनका उपयोग कहाँ रहा? मेरा आग्रह है कि इस पुरातन विज्ञानका पुनरुद्धार किया जाए और हमारे आयुर्वेदिक चिकित्सकोंमें शोध अथवा अनुसन्धानकी सच्ची भावना आए। तबाही की हदतक खर्चीली पश्चिमी दवाओंके निर्माणमें उच्चतर मानवीय भावनाओंकी ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। इसलिए मैं तो स्वयं ही उनके अत्याचारसे मुक्ति पानेके लिए उतना ही उत्सुक हूँ जितना कि आयुर्वेदिक पद्धतिका कोई बड़े-से-बड़ा समर्थक हो सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-८-१९२९

२०५. नशाबन्दी आन्दोलन[1]

सेवामें,

सम्पादक 'यंग इंडिया'

महोदय,

आपकी पत्रिकाके ४ अप्रैलवाले अंकके पृष्ठ ११२ पर छपी श्री राजगोपालाचारीकी योजना निश्चय ही श्री गांधीके अहिंसाके सिद्धान्तसे मेल नहीं खाती। नशाबन्दी तो बल-प्रयोग है; और बल-प्रयोगसे कोई समस्या हल नहीं की जा सकती, कमसे-कम शराबखोरीकी समस्या तो नहीं ही की जा सकती और सो भी उन लोगों द्वारा जिन्होंने बल-प्रयोग (हिंसा) के हर रूपको तिलांजलि दे दी है। अहिंसक ढंगसे नशाबन्दीका आन्दोलन अपने-आपमें विरोधाभास लिये हुए है। क्या कोई दण्ड-संहितामें ऐसी एक व्यवस्था जोड़ सकता है कि यदि कोई व्यक्ति अपने घरमें एक गिलास ताड़ी (या बियर) पिये तो उसे जुर्माना अथवा सजा भुगतनी होगी? नशाबन्दीका मैं पूरी तरह समर्थक हूँ। लेकिन अत्याचारका विरोधी हूँ और मामूली (पूरी तरह संयमित) मद्य-सेवनको रोकना अत्याचार है।

आपका,

जे० बी० पैनिंगटन

६ मई, १९२९

मैं यह बात माननेमें असमर्थ हूँ कि नशेको रोकना हर हालतमें बल-प्रयोग ही है। अगर मैं अपने बच्चोंको कोई अनुचित कार्य करनेसे रोकूँ और इस निषेधाज्ञा को भंग करने पर मैं उन्हें नहीं बल्कि अपने-आपको उपवास द्वारा अथवा अन्य

१. यह "पत्र-व्यवहार" शीर्षकके अन्तर्गत छपा था।

प्रकारसे सजा दूँ—जैसा मैंने अक्सर किया है और जिसके परिणाम भी बहुत अच्छे रहे हैं, तो वह उस अर्थमें बल-प्रयोग नहीं कहलायेगा जिस अर्थमें श्री पैनिंगटन उसे लेते हैं। बलका प्रयोग तो वह होगा, पर उस दशामें बल शारीरिक नहीं बल्कि आत्मिक बल होगा, क्रूरताका नहीं बल्कि प्रेमका होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि श्री राजगोपालाचारीकी मद्यनिषेध योजना आत्मिक नहीं बल्कि शारीरिक है, प्रेमपूर्ण नहीं बल्कि क्रूरतापूर्ण है और मैं स्वीकार करता हूँ कि तिसपर भी उसका समर्थन करनेका दोष मैंने किया है; यह दुर्भाग्यकी बात है किन्तु है सही कि मेरी अहिंसा अत्यन्त अपूर्ण, असंगतिपूर्ण और सर्वथा अविकसित है। लेकिन फिर भी वह श्री पेनिंगटन अहिंसाकी जितनी कल्पना कर सकते हैं उससे मीलों आगे है। मैं यह मानता हूँ कि भारतमें भूखे-नंगे स्त्री-पुरुषों द्वारा की जानेवाली छोटी-मोटी चोरियोंके अपराधके मुकाबलेमें जिसके लिए उनपर मुकदमे चलाये जाते हैं और सजाएँ दी जाती हैं—नशीले पेयोंका सेवन कहीं बड़ा अपराध है। मैं बिलकुल ही अनिच्छासे लाचार होकर दण्ड-संहिताकी एक मध्यम-सी पद्धतिको स्वीकार करता हूँ; और वह इसलिए कि लोग अभी प्रेमके कानूनको पूरी तरह समझ ही नहीं पाये हैं। और जबतक मैं इसे स्वीकार करता हूँ, मुझे इस बातकी वकालत करनी ही होगी कि उत्तेजक शराब बनानेवालों और बार-बार चेतावनी देनेके उपरान्त भी शराब पीनेवालोंको भी अत्यन्त संक्षिप्त अदालती कारवाईके बाद सजाएँ दी जानी चाहिए। मैं आगमें या गहरे पानीमें कूदने पर उतारू अपने बच्चोंको बलपूर्वक रोकनेमें भी संकोच नहीं करूँगा। इस लाल पानीकी तरफ दौड़ना धधकती भट्ठी या उफनती नदीकी तरफ दौड़नेसे कहीं ज्यादा खतरनाक है। आग और पानी शरीरको नष्ट करते हैं, जब कि शराब शरीर और आत्मा दोनों ही को।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-८-१९२९

२०६. सनातन धर्मके नामपर अधर्म

चूँकि आजकल मैं 'हिन्दी नवजीवन' में भी कुछ-न कुछ लिखता हूँ, हिन्दी समाचार-पत्रोंकी जो बातें मेरे देखने योग्य मानी जाती हैं, मेरे सामने रखी जाती हैं। आज मेरे सामने एक अखबार आर्यसमाजका और दूसरा सनातनधर्मियोंका रखा गया है। सनातन धर्मके अखबारमें महर्षि दयानन्द स्वामीकी घोर, असभ्य और अश्लील निन्दा की गई है। पत्रमें जिस भाषाका प्रयोग किया गया है और जैसे आक्षेप स्वामीजी पर किये गये हैं, वे एक धार्मिक और अपने उत्तरदायित्वको समझनेवाले पत्रको शोभा नहीं देते। सनातन धर्मकी रक्षा करनेवाले इस पत्रकी कुछ प्रतिष्ठा है या नहीं, मुझे पता नहीं। मुझे आशा है, ऐसे पत्रको कोई प्रतिष्ठा नहीं देता होगा।

मुझे डर है कि स्वामीजी पर किया गया यह हमला किसी नीच स्वार्थसे प्रेरित होकर किया गया है और इसी कारण वह इतना असभ्यतापूर्ण और असत्यमय है।

मुझे यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि ये लेख खुफिया पुलिसके किसी प्रतिनिधि द्वारा लिखे गये हैं। इतने जहरीले लेख लिखनेका और कोई कारण दिख नहीं पड़ता।

हिन्दू महासभाको चाहिए कि वह गन्दे सनातनी अखबारोंको रोके। आर्यसमाजियोंसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे ऐसे लेखोंको पढ़ें ही नहीं, और अगर पढ़ें भी, तो गुस्सा न करें। साथ ही अपने अखबारोंमें उनका जिक्र तक न करें। गन्दे लेखक विरोधके भूखे हैं; क्योंकि विरोध ही उनकी खुराक है। स्वामी दयानन्दका चरित्र इतना बलवान था, उनकी जन-सेवा इतनी महान् थी कि स्वार्थी अथवा ज्ञानहीन लेखकवर्ग उसे तनिक भी हानि नहीं पहुँचा सकता। यदि वे सब्र रखेंगे तो ऐसे गन्दे लेख अपने-आप बन्द हो जायेंगे। यदि कोई ऐसे लेखोंकी टीका ही न करे, इनका ख्याल तक छोड़ दे तो इस धन्धेका स्वयं ही लोप हो जाये।[1]

हिन्दी नवजीवन, ८-८-१९२९

२०७. पति धर्म

एक मित्र लिखते हैं:[2]

पतिवर्ग पत्नी-धर्मका उपदेश देनेके लिए सदा उत्सुक रहता है, और पत्नियोंसे यहाँतक कहा जाता है कि वे अपनेको पतिकी मिल्कियत समझें। पति तो मानता ही है कि उसे पुरुषके नाते जो अधिकार अपने घर-बार, जमीन-जायदाद और पशु इत्यादि पर प्राप्त हैं, ठीक वही अधिकार उसे पत्नी पर भी प्राप्त है। इस बातके समर्थनमें रामायण-जैसे ग्रन्थका भी अवलम्बन लिया जाता है:

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी।

रामायणकी इस पंक्तिका आधार लेकर समाजमें पत्नी दण्डनीय ठहराई जाती है, उसे दण्ड दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यह चौपाई गो० तुलसीदासजीकी नहीं है, यदि है भी तो कह सकते हैं कि इन शब्दोंमें तुलसीदासजीने अपना अभिप्राय नहीं प्रकट किया है, बल्कि अपने समयमें प्रचलित रूढ़िका निरूपण किया है। यह भी असम्भव नहीं कि इस बारेमें सहज ही उन्होंने उस समयकी प्रथा पर विचार किये बिना ही अपनी ऐसी सम्मति दे दी हो। रामायण भक्ति-निरूपणका ग्रन्थ है। गो० तुलसीदासने सुधारककी दृष्टिसे रामायण नहीं लिखी है। यही कारण है कि उन्होंने रामायणमें अपने जमानेकी बातोंका प्रकृत चित्र खींचा है, सहजभावसे उनका वर्णन किया है। इस वर्णनके सदोष होनेपर भी रामायण-जैसे अद्वितीय ग्रन्थका महत्व कम नहीं होता। जैसे, रामचरितमानससे भूगोलकी शुद्धताकी आशा नहीं की जा

१. देखिए पृष्ठ २९७।

२. यहाँ नहीं लिया गया है। पत्र-लेखकने अपने एक मित्रका उल्लेख किया था जो पत्नीको अच्छी गृहिणी न माननेके कारण उससे असन्तुष्ट थे और उसका परित्याग करना चाहते थे। पत्रमें पति-पत्नीके पारस्परिक अधिकारोंकी बात उठाई गई थी।

सकती, ठीक उसी तरह हम अपनी वर्तमान नई दृष्टिके प्रतिपादनकी आशा भी उस ग्रन्थसे न करें। परन्तु यह तो विषयान्तर हुआ। गोस्वामी महाराजने स्त्रीके बारेमें कुछ भी क्यों न माना हो, इसमें सन्देह नहीं कि जो मनुष्य स्त्रीको पशुतुल्य समझता है, उसे अपनी मिल्कियत मानता है, वह अपने अर्द्धांगका विच्छेद करता है।

पतिका धर्म है कि पत्नीको अपनी सच्ची सहधर्मिणी, सहचारिणी और अर्द्धांगिनी माने; उसके दुःखसे दुखी हो, और सुखसे सुखी। पत्नी पतिकी दासी कदापि नहीं है, न वह कभी पतिके भोगकी भाजन ही है। जो स्वतन्त्रता पति अपने लिए चाहता है, ठीक वही स्वतन्त्रता पत्नीको भी होनी चाहिए।

जिस सभ्यतामें स्त्री-जातिका सम्मान नहीं किया जाता, उस सभ्यताका नाश निश्चित ही है। संसार न अकेले पुरुषसे चल सकता है, न अकेली स्त्रीसे; इसके लिए तो एक-दूसरेका सहयोग ही उपाय है। स्त्री अगर कोप करे तो आज पुरुष-वर्गका नाश कर सकती है। यही कारण है कि वह महाशक्ति मानी गई है।

हिन्दू सभ्यतामें तो स्त्रीका इतना सम्मान किया गया है कि प्राचीन कालमें स्त्रीका नाम प्रथम पद रखता था। उदाहरणार्थ, हम 'सीताराम' कहते है, 'रामसीता' कदापि नहीं। विष्णुका 'लक्ष्मीपति' नाम प्रसिद्ध है ही। महादेवको हम पार्वती-पतिके नामसे भी पूजते हैं। महाभारतकारने द्रौपदीको और आदि-कवि बाल्मीकिने सीताजीको गौरवका स्थान दिया ही है। हम प्रातःकाल सतियोंका नाम लेकर पवित्र होते हैं। जो सभ्यता इतनी उच्च है, उसमें स्त्रियोंका दर्जा पशु या मिल्कियतके समान कदापि हो नहीं सकता।

अब जो प्रश्न पूछे गये हैं उनका उत्तर देना सहज है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पतिके कमाये हुए धनपर स्त्रीको पूरा अधिकार है और पत्नी पतिकी मिल्कियतकी अविभाज्य भागीदार है। पत्नीकी रक्षा करना और अपनी हैसियतके मुताबिक उसके भरण-पोषण और वस्त्रादिका प्रबन्ध करना पतिका आवश्यक धर्म है।

हिन्दी नवजीवन, ८-८-१९२९

२०८. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

आश्रम, साबरमती
८ अगस्त, १९२९

भाई नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला, इस वक्त तुम्हारे लायक मेरे पास कुछ है नहीं। मोतीभाईकी माँग स्वीकार कर लो। जब भी मेरे पास तुम्हारे लायक कुछ होगा तब मैं फौरन पर्याप्त नोटिस देकर बुला लूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १२१४६)की फोटो-नकलसे।

२०९. पत्र : देवचन्द पारेखको

आश्रम, साबरमती
८ अगस्त, १९२९

भाईश्री देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिल गया है। भाई जवाहरलालका[1] पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। काम कुछ नाजुक है। आपने जो जवाब दिया है वह भी ठीक नहीं है। राजनैतिक मामलोंको स्वेच्छापूर्वक छोड़ दिया है, यह बात भी आपको स्पष्ट लिखनी चाहिए थी। यह भी आपको मालूम होना चाहिए था कि विरोधमें आन्दोलन होगा ही। और उन्हें आन्दोलन करनेका अधिकार है यह भी हमें मान लेना चाहिए। जहाँ सिद्धान्त भेद हो वहाँ हम विरोधी पक्षका मुँह बन्द नहीं कर सकते। अब देखो क्या होता है। आपका जवाब तो यह होना चाहिए था ? कि जिन्होंने आपको तार दिया है उनके साथ हमारा मतभेद है, पत्र या तार द्वारा कुछ भी समझाना मुमकिन नहीं; हमारी समितिका विचार है कि आकर सब बात जानने पर आपको सन्तोष होगा। अपने ही हाथों खाई चोटका दुःख किससे कहें? अब जो कुछ होना होगा साफ सामने आ जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७१९) की फोटो-नकल से।

२१०. पत्र : गोवर्धनभाई पटेलको[2]

८ अगस्त, १९२९

भाईश्री गोवर्धनभाई,

कामके बोझके कारण तुम्हारे पत्रका जवाब देना भूल गया था। कल रातको याद आया। पक्का निर्णय तो दोनोंके मिलने पर ही दिया जा सकता है। मेरी रायमें दावेदारोंको अपनी अर्जीमें घटाने-बढ़ानेका एक मुद्देके बजाय दूसरे पर जोर देने

१. जवाहरलाल नेहरूको राजकोटकी "यूथ लीग" के अध्यक्ष पदके लिए आमन्त्रित किया गया था। सौराष्ट्रके किसी राजनैतिक कार्यकर्त्ताने उन्हें एक तार भेजा था और उसके कारण वे आनेमें संकोच कर रहे थे।

२. यह पत्र गोवर्धनभाईके २-८-१९२९ के पत्रके उत्तरमें भेजा गया था। पत्र मजदूर संघ और मिल मालिक संघके बीच झगड़ेके बारेमें था, जिसमें गांधीजी और मंगलदास सेठ पंच नियुक्त किये गये थे।

आदिका अधिकार है। १९२३ की कटौती ठीक थी या नहीं इस प्रश्न पर विचार करनेका अधिकार पंचको है या नहीं इस बारेमें भी पंचोंने अभी निर्णय नहीं किया है।

मोहनदास करमचन्द गांधी

गुजराती (एस० एन० १४९७५)की माइक्रोफिल्मसे

२११. पत्र : रैहाना तैयबजीको

९ अगस्त, १९२९

प्रिय रैहाना,

तुम्हारा प्रेम-पत्र मिला। मैं अगले रविवारको छोड़ कर शेष सारे अगस्तभर यहीं रहूँगा। इसलिए तुम जब भी आना चाहो या आ सको, आ सकती हो।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (एस० एन० ९६०९) की फोटो-नकलसे।

२१२. पत्र : फूलचन्द के० शाहको

आश्रम, साबरमती
१० अगस्त, १९२९

भाईश्री फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई जवाहरलालको जवाब दिया है उसके बारेमें मैंने परसों ही देवचन्दभाईके पते पर पत्र लिखा है। वह तुमने देखा ही होगा। भाई अमृतलाल चाहे जो करें तुम्हें तो विनय और दृढ़तासे काम लेना है।

मेरे पास तो परिषदके कामके बारेमें कई प्रकारकी टीकाएँ आया करती हैं किन्तु मैं उन्हें पी जाता हूँ। तुम्हारे पास उन्हें भेज कर तुम्हें चिन्तामें नहीं डालना चाहता। किन्तु कहीं भी असत्य, कपट, दम्भ या ज्यादती नहीं रहने देना। मेरा वहाँ आना असम्भव है। मानपत्र किससे दिलवाया जाये, इसके बारेमें भी लिख चुका हूँ। जिनके ऊपर मुकदमा चल रहा हो, वह भत्ता देकर भी साक्षियोंको बुलायें तो उसमें मुझे कोई दोष नहीं दिखाई देता। जमानत देकर न छूटें। इस प्रकारके झूठे मुकदमेमें भी सत्याग्रहीकी कसौटी हो जाती है और उसे ईश्वरदत्त तालीम मिलती है। तालीम मिलती है अथवा मिलनी चाहिए, इसका हम ख्याल तक नहीं करते।

प्रस्तुत सत्याग्रहीने मनमें सम्बन्धित अहीरके प्रति गुस्सा नहीं आने दिया। किन्तु उसे तो उससे प्रेम तक कर सकना चाहिए। यदि न कर सके तो वह सच्चा सत्याग्रही नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ९१९०) की फोटो-नकल से।

२१३. प्रतिज्ञाकी ढाल

नियमित-रूपसे 'नवजीवन' पढ़नेवाले एक भाई लिखते हैं:

मैं हमेशा कातता तो हूँ, मगर सवाल यह है कि प्रतिज्ञाबद्ध होकर कातूँ या बगैर प्रतिज्ञा किए? मान लीजिए कि मैंने प्रतिदिन एक घंटा कातने की प्रतिज्ञा ले ली, उस हालतमें तो मुझे सदा कातना ही चाहिए। कम या ज्यादा समय तक कात ही नहीं सकता। सम्भव है कभी प्रवासपर जाना पड़े, ज्यादा दिन लग जायें, और कातना सम्भव न हो, तो प्रतिज्ञाका भंग तो हुआ ही न? इसका क्या उपाय किया जाये। विचार उठते हैं, बीमार पड़ जायें तो भी क्या? जबतक साँस है तबतक तो कातना ही चाहिए। न कातनेसे ईश्वरकी दृष्टिमें बड़े भारी अपराधी ठहरते हैं। इसके लिए क्या इलाज है? अगर प्रतिज्ञा नहीं लेते हैं तो मनको दृढ़ बनाए रखना कठिन है। सोचते हैं, चलो आज नहीं काता तो न सही, कल दुगुना कात लेंगे।

आप कहेंगे; मनको दृढ़ रखो। लेकिन जब आजकलके देशके नेताओंके मन दृढ़ नहीं रह सकते, तो मुझ-जैसोंकी क्या कथा? कृपया बतलाइए, इन दोमेंसे किस उपायका आश्रय लिया जाये। साथमें जवाबके लिए एक आनेका टिकट भेज रहा हूँ।

मैं स्वयं बचपनसे प्रतिज्ञा लेनेका आदी हूँ, इससे प्रतिज्ञाके प्रति मेरा बड़ा पक्षपात है। मेरा अपना अनुभव तो यह है कि प्रतिज्ञाके कारण मैं अनेक बार भयसे मुक्त हुआ हूँ। दूसरोंको भी मैंने भय-मुक्त होते देखा है। प्रतिज्ञा-हीन जीवन बिना नींवका घर है, अथवा यों कहिए कि कागजका जहाज है। प्रतिज्ञा लेनेका अर्थ है, निश्चल होना। जो आदमी निश्चल, दृढ़-प्रतिज्ञ नहीं है, उसका विश्वास कौन कर सकता है? हम आपसमें जो इकरारनामे लिखते हैं, वे भी प्रतिज्ञापत्र ही हैं। मुँहसे कही हुई बात भी इकरारनामा ही है।

पहले प्रतिष्ठित लोगोंकी बात, उनका वचन ही पर्याप्त होता था। उसीके बल पर वे लाखोंका लेन-देन कर पाते थे। प्रतिज्ञाके बल पर ही यह संसार भी टिका हुआ है। अगर मनुष्योंके आपसी व्यवहार प्रतिज्ञाबद्ध न हों तो संसार छिन्न-भिन्न हो

जाये। हिमालय प्रतिज्ञाबद्ध है। अगर वह जब चाहे तब हलचल कर सकता होता, तो आज भारतकी हस्ती न होती, हो ही न सकती। सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह अगर प्रतिज्ञाबद्ध न हों तो मानव-जातिका जीवन असम्भव हो जाये। लेकिन हम जानते हैं कि असंख्य वर्ष बीत चुके, सूर्य नियमसे उगता रहा है और आगे भी उगता रहेगा। शीतरश्मि चन्द्रमा भी अपनी कलाओंके साथ उदय-अस्त होता रहा है, भविष्य में भी उसका यही क्रम जारी रहेगा। यही वजह है कि हम सूर्य-चन्द्रके आधार पर अपने काम करते हैं, तिथियाँ निश्चित करते हैं, समय जानते हैं और उसकी रक्षा या सदुपयोग करते हैं।

ग्रहादि जिन नियमोंका भली-भाँति पालन करते हैं, मनुष्यके लिए भी वे ही नियम लागू पड़ते हैं। जो आदमी अपने जीवनको प्रतिज्ञामय नहीं बनाता वह कभी स्थिर नहीं बन सकता। अक्सर हम देखते हैं कि मनुष्य इन शब्दोंमें अपना अहंकार प्रकट करता है: मुझे व्रतकी क्या जरूरत है? फलाँ काम तो मैं चुटकियोंमें कर सकता हूँ, और अगर न भी किया तो क्या? जब करना आवश्यक हो जाता है, तब तो कर ही लेता हूँ। शराब छोड़नेकी प्रतिज्ञा मैं क्यों करूँ? मैं पीकर पागल तो कभी बनता ही नहीं हूँ। कभी-कभी एकाध प्याली पी लेता हूँ। ऐसा मनुष्य बुरी आदतोंकी गुलामीसे कभी छूट नहीं सकता।

प्रतिज्ञा न लेनेका अर्थ अनिश्चित या डाँवाडोल रहना है। अनिश्चित मनुष्यके भरोसे संसारका कोई काम पूरा नहीं पड़ सकता। अनिश्चित सिपाही या सेनापति क्या कर सकता है? जो चौकीदार कहता है कि जहाँ-तक हो सकेगा, चौकसी रखूँगा, उस चौकीदारके भरोसे पर कोई भी गृह-स्वामी आजतक सुखकी नींद नहीं सोया। यथासम्भव जागृत रहनेकी बात कहनेवाला सेनापति भी आजतक कभी विजयी नहीं हुआ।

अनियमित-रूपसे कातनेवालोंके असंख्य उदाहरण मेरी नजरमें हैं। वे सब पिछड़ गये हैं। नियमपूर्वक कातनेवाले पर कताईका असर जीवनव्यापी हुआ है। उसके पास ढेरों सूत जमा हो सका है। व्रतको 'समकोण'की उपमा दी जा सकती है। जिस तरह एक नन्हा-सा समकोण आलीशान इमारतोंको सुडौल बनाने और उन्हें स्थिर रखनेमें समर्थ है, उसी तरह व्रत-रूपी समकोण भी जीवनको शुद्ध और स्थिर बनानेमें समर्थ है।

हाँ, व्रतकी मर्यादा होनी चाहिए। सामर्थ्यसे बाहरका व्रत लेनेवाला अविचारी कहा जायेगा। व्रतमें शर्तोंकी गुंजाइश होती है। बीमारी और प्रवासके दिनोंको छोड़-कर और दिनोंमें मैं प्रतिदिन एक घंटा कातूँगा या दो सौ गज कातूँगा, अथवा एक घंटा और कमसे-कम दो सौ गज कातूँगा, आदि आशयकी प्रतिज्ञा ली जा सकती है और सहज ही उसपर अमल भी किया जा सकता है। व्रतके मानी यह नहीं है कि कठिन-से-कठिन काम किया जाये; बल्कि आसान या किसी कठिन कामको नियमपूर्वक करनेका निश्चय ही व्रत है।

व्रतमें संयम तो होना ही चाहिए। दूसरे शब्दोंमें, अधिकसे-अधिक खाने, रोज-रोज नाचने, गाली-गलौज करने या ऐसे दूसरे स्वेच्छाचारपूर्ण व्रत, व्रत नहीं होते।

मुझे यह स्पष्टीकरण इसलिए करना पड़ता है कि आज भी मुझे कुछ ऐसे उदाहरण याद हैं जिनमें अनीतिपूर्ण कार्योंको व्रतका रूप दिया गया था। जब असहयोग आन्दोलन अपने पूरे जोशमें था, किसीने पूछा था: "मैं सरकारकी नौकरी करनेको बँधा हूँ, अब उसे कैसे छोड़ूँ?" "मैं शराबकी दुकान पर पाँच वर्ष तक काम करनेकी शर्त मान चुका हूँ, अब उसे कैसे छोड़ूँ?" कई बार ये और ऐसे प्रश्न आदमीको उलझनमें डाल देते हैं। लेकिन हम गहरा विचार करके देखें तो हमें पता चलेगा कि पाप करनेके व्रत नहीं लिये जाते; व्रतमें उन्नति ग्रहीत है, अवनति कदापि नहीं।

लेखकने अन्तमें कहा है "लेकिन जब आजकलके देश-नेताओंके मन दृढ़ नहीं रह सकते तो मुझ-जैसोंकी क्या कथा?" यह सवाल कमजोरीका सूचक है। देश-नेताओंके गुणोंका संग्रह करना चाहिए। देश-नेता कोई सम्पूर्ण अवतार नहीं होते। वे अपने कतिपय गुणोंके कारण नेता बनते हैं। हम उनपर विचार करें, उनका अनुसरण करें। उनके दोषोंका स्मरण तक न करें। जो पुत्र अपने पिताके दोषोंका संग्रह करके उनपर अमल करता है, अथवा उनसे दूर रहनेमें अपने आपको असमर्थ पाता है, वह सुपुत्र नहीं है। विरासत पिताके गुणकी हो सकती है, दोषकी नहीं। जो पुत्र पिताके ऋणको बढ़ाता है, वह नालायक है। सुपुत्र ऋण चुकाता और पूंजी बढ़ाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-८-१९२९

२१४. जहरकी तरह कड़वी

एक भाईने बहुतेरे सवाल पूछे हैं, उन सबके जवाब देनेकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता। उन सवालोंमें से एक यों हैं:

> जनवरी १९३० की पहली तारीख तेजीसे चली आ रही है। किन्तु आप तो, 'खादी, खादी और खादी' ही कहते चले जा रहे हैं। सिर्फ खादी आन्दोलनमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है, देशको भी वह जहर-सा कड़वा लगने लगा है। अच्छा तो यह हो कि आप सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओंको आज्ञा देकर भारतमेंसे ऐसे एक करोड़ नौजवानोंका दल खड़ा करवाइए, जो देशके लिए अपने सिर दे सकें; और फिर आप इन नौजवानोंसे खादी या (देशी) मिलोंके कपड़े पहननेकी प्रतिज्ञा करवाइए। और फिर जिन नियमोंका पालन अत्यन्त आवश्यक हो, उन्हें भी स्पष्ट कर दीजिए। आप चाहें तो इन नियमोंमें खादीको अग्रस्थान दे सकते हैं। याद रहे कि सिंह-सा भूखा भारत देश आज भी १९२१ की भाँति फिर सविनय-भंगके लिए तैयार है, मगर कोई कर्णधार नहीं मिल रहा। दूसरी ओर वल्लभभाई-जैसे नेताओंको मजदूरों और किसानोंका संगठन करनेकी सलाह दीजिए। उनके इस प्रयत्नसे

जिस तरह बारडोलीके हजारों किसान तोपके गोलोंके सामने खुली छाती अडिग खड़े रहनेको तैयार थे, उसी तरह दूसरे मजदूर और किसान भी शीघ्र ही एक हो जायेंगे।

भले ही खादी किसीको जहर-सी कड़वी लगने लगी हो, मेरे पास उसे छोड़कर दूसरा कोई इलाज नहीं है। मैं खादीको छोड़कर स्वराज्यकी कल्पना नहीं कर सकता। क्योंकि खादी-विहीन किसान बिना बैलके हल या बिना खादके खेत-जैसा है। खेती किसानका धड़ है और चरखा हाथ-पैर।

और यह कहना कि जन-साधारणको खादी जहर-सी कड़वी लगती हैं, मिथ्या है; हाँ, यह सच है कि अनेक नगरनिवासियोंको वह कड़वी लगती है। मगर शहरोंमें ही तो सारा भारत नहीं आ जाता। भारतके मुट्ठी-भर शहर समुद्रमें एक बूँदके जैसे हैं। भारतका आधार उसके देहात हैं। गाँवोंमें जो सार्वजनिक काम हो रहा है, वह खादी-कार्य ही है। आज देशके २,००० गाँवोंमें खादी-काम हो रहा है। यह काम दिन-दिन बढ़ रहा है, घट नहीं रहा। इस आन्दोलनसे मध्यम श्रेणीके कमसे-कम २,००० आदमियोंका भरण-पोषण हो रहा है। और खादी-प्रवृत्ति कमसे-कम एक लाख गरीब स्त्रियोंके लिए अन्नपूर्णा बनी हुई है। इससे दस हजार जुलाहोंको रोजी मिल रही है, और धोबी, रंगरेज, पिंजारे, दर्जी आदिको जो रोजी मिलने लगी है, सो तो जुदी है। इतने पर भी जिसे यह आन्दोलन या इसके कारण उत्पन्न खादी जहर-सी लगती है, वह कमनसीब है।

पण्डित जवाहरलाल या श्री सुभाषचन्द्र बोस इतने भोले या आलसी नहीं हैं कि युवकोंका संगठन करनेके लिए मेरी आज्ञाकी बाट जोहते रहें। वे अपनी सामर्थ्यके अनुसार युवकोंको संगठित कर रहे हैं। उन्हें न केवल मेरी आज्ञाकी जरूरत ही नहीं है, बल्कि वे ऐसे योद्धा हैं जो मेरे रोके रुक नहीं सकते। बात तो यह है कि आगे बढ़कर काममें गड़ जानेवाले एक करोड़ तो क्या, दस हजार नौजवान भी आज तैयार नहीं हैं। मुझे विश्वास है कि अगर वे चाहें तो तत्काल सामने आ सकते हैं। मगर आज उनके दिल इस ओर रुजू नहीं हो रहे हैं। अकेले भाषणों, तमाशों, जुलूसों आदिसे स्वराज्य नहीं मिल सकता। स्थायी और रचनात्मक कामकी बड़ी आवश्यकता है।

यह कहना भी ठीक नहीं है कि अगर कर्णधार हो तो लोग असहयोग या सविनय भंगके लिए तैयार हैं। अगर मेरी शर्तोंको स्वीकार कर असहयोग या सविनय भंगके जहाजपर चढ़नेवाले मुसाफिर मिलें तो उन्हें लेकर चलने — उनका कर्णधार बनने — का काम मुझे पूरी तरह पसन्द आये। मगर मैं निराशावादी नहीं हूँ, इसलिए यह आशा लगाए बैठा हूँ कि पहली जनवरी तक शुभ संयोग पैदा हो ही जायेंगे।

सरदार वल्लभभाईको भी मेरे हुक्मकी जरूरत नहीं है, अथवा यों कहिए कि हुक्म तो उनकी जेबमें पड़ा है। लेकिन हुक्म पर अमल करनेके लिए बारडोली ताल्लुके चाहिए। बारडोलीको अपनी मर्यादामें रहकर लड़नेकी तैयारी करनेमें सात वर्षोंका समय लगा था। आज तो यही शंका हो रही है कि बारडोली भी स्वराज्य-

यज्ञमें बलि होनेको तैयार है या नहीं। सरदार वल्लभभाईको और मुझे बारडोलीसे आशा तो बहुत कुछ है। लेकिन अभी तो लौंदा चाक पर है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-८-१९२९

२१५. सत्याग्रहका फल

एक 'आत्मार्थी' लिखते हैं[1]:

यत्किंचित् ही क्यों न हो, सत्याग्रहका फल वही होता है, जो 'आत्मार्थी' ने लिखा है। संसारका इतिहास सत्याग्रहकी विजयोंसे भरा पड़ा है। इतिहासमें सत्याग्रहके पराजयका एक भी वास्तविक उदाहरण नहीं मिल सकता। किन्तु यह निश्चय कर लेना आवश्यक है कि आग्रह सत्यपूर्ण है। 'आत्मार्थी' के भेजे हुए रुपये मिले हैं। उन्होंने 'करेंसी' नोट बिना रजिस्ट्री कराये ही भेजा था। लेकिन यह उचित नहीं। नोट भेजनेवालोंको लिफाफा सीलबन्द और रजिस्ट्री कराकर ही भेजना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-८-१९२९

२१६. टिप्पणियाँ

अपना नाम देनेवाले सज्जनसे[2]

मेरा तात्पर्य यह है कि अकसर डाक्टर लोग विवाहको औषध स्वरूप मानते हैं किन्तु ऐसा करके वे गम्भीर भूल करते हैं। मैं यह जानता हूँ कि उससे कुछ लोगोंको लाभ होनेका आभास हुआ है, किन्तु मेरा यह अनुभव है कि उससे बहुतोंको नुकसान हुआ है। टेढ़े रास्तेसे जाते हुए कभी-कभी क्षणिक सफलताका भ्रम होता तो है, किन्तु इस कारण धोखेमें आकर सीधे रास्तेको छोड़ना उचित नहीं है। उचित तो यही है कि चाहे जितनी तकलीफ क्यों न उठानी पड़े किन्तु सीधा रास्ता कभी नहीं छोड़ना चाहिए; इसलिए आप जैसी स्थिति तक पहुँचे हुए लोगोंके लिए मेरे पास संयमके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने सूचना दी थी कि उनकी प्रेरणासे उनके एक आत्मीय अपना सुधार करते चले जा रहे हैं और सत्याग्रहकी अपनी इस सफलतासे सन्तुष्ट होकर पत्र-लेखकने विभिन्न सार्वजनिक कार्योंके लिए दस रुपये भेजे थे।

२. किसी संयमका व्रत धारण कर चुकनेवाले भाईने अपना नाम प्रकट करके पूछा था कि डाक्टर विवाहकी सलाह दें, तो क्या करना चाहिए।

'नवजीवनका पाठक' से

आपके पत्रमें उत्तर देने लायक तो बहुत कुछ है किन्तु मैं बेनाम पत्रोंका उत्तर देकर इस प्रवृत्तिको प्रोत्साहन नहीं देना चाहता। आप यदि अपना नाम-धाम लिख भेजें तो मैं उत्तर देनेका प्रयत्न करूँगा।

एक काठियावाड़ी युवकसे

यदि आपने प्रश्न मनमें द्वेषभाव रखकर न किये हों तो ऐसे प्रश्नोंको करनेमें कोई दोष नहीं है। किन्तु प्रश्न दोषपूर्ण हों या निर्दोष, अपना नाम जाहिर न करनेकी यह भीरुता क्यों? आप अपना नाम छिपाकर खुद अपना या काठियावाड़का नाम रौशन नहीं करते। जिनमें इतनी भी हिम्मत नहीं है कि कोई बात कहकर अपना नाम प्रकट कर सकें वे कोई सेवा नहीं कर सकते, स्वराज्यकी लड़ाईमें भाग लेनेकी तो बात ही क्या?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-८-१९२९

२१७. क्या राम रक्तपातके दोषी थे?

जिन्हें खादी जहर-सी लगती है, उन्हीं भाईका एक और सवाल यों है[1]:

मेरा दृढ़ विश्वास है कि अहिंसात्मक निर्बलोंका ही नहीं, असहयोग बलवानों का भी खास बल है। यह सर्वव्यापी सिद्धान्त है। जाने अनजाने हम रात-दिन उसपर अमल करते रहते हैं। आज जो इतिहास मिलता है, उसमें राजाओंकी लड़ाईको ही अधिक महत्व दिया गया है। लोगोंका — प्रजाका — इतिहास भविष्यमें लिखा जायेगा। जब वह इतिहास लिखा जायेगा, तब हम देखेंगे कि उसके पन्ने-पन्नेमें अहिंसात्मक असहयोग भरा पड़ा है। जब स्त्री दुष्ट पतिके आगे नहीं झुकती, तब वह उससे अहिंसात्मक असहयोग करती है। 'क्वेकर,[2]' लोगोंका इतिहास अहिंसात्मक असहयोग का जगमगाता उदाहरण है। भारतमें वैष्णवोंका इतिहास भी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करता है। जो काम ये लोग कर सकते हैं, सारी दुनिया उसे कर सकती है।

१. देखिए "जहरकी तरह कड़वी", ११-८-१९२९। पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकका कहना था कि निःशस्त्र और निर्बल होनेके कारण ही अहिंसक असहयोग भारतीयोंके लिए उपयुक्त हो सकता है; नहीं तो रामने भी रावणसे युद्ध करके रक्तपात किया था और जीते-जी एक बिल्ली भी अपने बच्चेको कुत्तेके मुँहसे छीननेके लिए लड़ती ही रहती है। सभी तैंतीस करोड़ भारतीयोंका अहिंसामें विश्वास नहीं हो सकता।

२. १७ वीं शताब्दीमें स्थापित एक ख्रिस्ती-सेवक-सम्प्रदाय। इसके मतावलम्बी अपनी धार्मिकता, सादगी और प्रामाणिक व्यवहारके लिए प्रसिद्ध है।

देखनेवाले साफ-साफ देख सकते हैं कि जगत्‌की गति शान्तिकी ओर है। मानव-जातिका शरीर तो मनुष्यका है, मगर अभी उसने पशु-स्वभावका त्याग नहीं किया है। उसे यह स्वभाव छोड़ना ही पड़ेगा। इसी कारण कुत्ते बिल्लीकी मिसाल बेठिकाने है और हमारे लिए अशोभनीय है। हम कुत्ते-बिल्ली नहीं हैं; हम दो पैरोंपर सीधे खड़े होनेवाले, आत्माको पहचाननेकी इच्छा रखनेवाले और बुद्धिशक्ति रखनेवाले प्राणी हैं।

और रामचन्द्र? कौन सिद्ध कर सका है कि रामचन्द्रने लंकामें खूनकी नदी बहाई थी? दस सिरवाला रावण कब जन्मा था? बन्दरोंकी फौज किसने देखी थी? रामायण धर्म-ग्रन्थ है; रूपक है। करोड़ों लोग जिस रामकी पूजा करते हैं, वह राम घट-घट व्यापी है। रावण भी हमारे ही शरीरमें रहनेवाले दस सिरवाले विकराल विकारोंका रूप है। उसके खिलाफ अन्तर्यामी राम सदा युद्ध करता है। वह तो दयाकी मूर्ति है। अगर किसी ऐतिहासिक रामने किसी ऐतिहासिक रावणसे युद्ध किया भी हो तो उससे हमें बहुत-कुछ सीखनेको नहीं मिलता। इन प्राचीन राम-रावणको खोजनेकी क्या जरूरत है? आज तो वे जहाँ-तहाँ मिलते ही रहते हैं। सनातन राम ब्रह्म-स्वरूप है, सत्य और अहिंसाकी मूर्ति है।

भारतकी समस्या न तो क्रोधसे सुलझेगी, न रामायणादि ग्रन्थोंके अर्थका अनर्थ करनेसे और न पशुओंकी नकलसे। इस समस्याको हल करनेके लिए हमें अपने आपको पहचानना पड़ेगा। अहिंसात्मक असहयोग भारतको उसके मनुष्यत्वकी याद दिलानेवाली चीज है। भले ही करोड़ों लोग एक-साथ इस बातमें श्रद्धा न रखें। हथियार उठानेके लिए भी करोड़ों तैयार कहाँ बैठे हैं? करोड़ों तैयार हो भी नहीं सकते। अहिंसात्मक युद्धमें अगर थोड़े भी मर मिटनेवाले लड़ाके होंगे, तो वे करोड़ोंकी लाज रखेंगे और उनमें प्राण फूँकेंगे। अगर यह मेरा स्वप्न है, तो भी मेरे लिए मधुर है। आकाश कुसुम है, तो भी मेरी कल्पनाकी आँखोंमें उसकी शोभा है, और उसमेंसे सौरभ फैलता ही रहता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-८-१९२९

२१८. बिना राँधे आहारका प्रयोग

इस सप्ताह मैं इस प्रयोगके बारेमें केवल प्रगतिका ही जिक्र नहीं कर सकता। मुझे दो व्यक्तियोंसे प्रयोग छोड़नेको कहना पड़ा है, क्योंकि उनकी कमजोरी और कब्जियतका मैं कोई उपाय नहीं खोज सका और आखिर मुझे हारकर उनका यह प्रयोग बन्द कराना पड़ा। अपने और दूसरोंके शारीरिक प्रयोगोंके आधार पर मैं मानने लगा था कि नारियलका दूध और सब्जी हरएक की कब्जियत मिटानेमें समर्थ हो सकेंगे। मगर यहाँ यह नहीं हुआ। काफी तादादमें नारियलका दूध और सब्जी लेते हुए भी उनकी कब्जियत नहीं गई। किन्तु खुद मुझपर इसका दूसरा असर हो रहा है। कब्जियतका तो नाम भी नहीं रह गया है; उलटे नारियलके दूध और सब्जीके असरसे अधिक रेचन होने लगा है। यह कोई अच्छा लक्षण नहीं है।

दूसरोंके प्रयोगोंमें भी कोई खास प्रगति हुई हो, सो बात नहीं है। तिसपर भी मैं दृढ़तापूर्वक मानता हूँ कि यह क्षेत्र रमणीय और प्रयत्न करने योग्य है। वन-पक्व अन्नमें जो सत्व और स्वाद रहता है, वह रँधे हुएमें कदापि नहीं होता। इतना है कि नया क्षेत्र होनेके कारण हमारे सामने इस सम्बन्धके अनुभव बहुत थोड़े हैं। अतएव इस प्रयोगकी सिद्धिके लिए धैर्यकी बहुत आवश्यकता है।

जो लोग प्रयोग कर रहे हों, वे उन्हें सावधानीसे करें, हठपूर्वक डटे न रहें, अरुचिका आभास होते ही छोड़ दें। यों इतना तो निःसन्देह कहा जा सकता है कि शाक और द्विदल कच्चे ही खाये जाने चाहिए। इस तरह पकानेकी चीजोंम केवल गेहूँ रह जाते हैं। रोटी, दूध, कच्चा शाक और अंकुरित द्विदल खानेसे न किसी तरहका नुकसान होता है और न कमजोरी ही बढ़ती है। द्विदलका परिमाण अवश्य कम ही रखना चाहिए। शाक भी कम रहे — यानी तीन तोलाके करीब द्विदल और पाँच तोलाके करीब सब्जी।

प्रयोग करनेवालोंमें से एकने अपने अनुभवोंका जो जिक्र किया है, वह यों है:[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-८-१९२९

२१९. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

११ अगस्त, १९२९

प्रिय जवाहरलाल,

सत्याग्रहियोंकी जो छोटी टुकड़ी तुम्हें मानपत्र अर्पित करेगी, उसके विषयमें भेजा गया विवरण संलग्न है।

जो तार या विरोध-पत्र[2] तुम्हें मिल रहे हैं, उनकी परवाह मत करो। यदि कमलाका स्वास्थ्य जानेकी इजाजत दे तो काठियावाड़ जाकर तुम स्वयं स्थितिको समझ लोगे। मैं ७ सितम्बरको बम्बईसे भोपालके लिए रवाना हो रहा हूँ और यदि तुम कोई परिवर्तन नहीं कराना चाहोगे तो कार्यक्रमके मुताबिक ११ तारीखको आगरा पहुँच जाऊँगा।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

अ० भा० कां० क०, फाइल संख्या २७३, १९३१।
सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने अपने २८ दिनसे चलते हुए प्रयोगका विवरण दिया था। वे प्रारम्भमें भूखका अनुभव करते रहते थे; परिमाण बढ़ा देनेपर यह शिकायत नहीं रही। कुछ दिनों कब्ज भी रहा किन्तु केलोंकी जगह दाख लिये और दालें घटाकर हरी शाक और नारियलका दूध बढ़ा दिया, तब यह शिकायत भी दूर हो गई।

२. देखिए पृष्ठ ३०९।

२२० पत्र: एन० आर० मलकानीको

(११ अगस्त, १९२९)[1]

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिला। वल्लभभाई द्वारा भेजे चेकके अलावा और जो भी कुछ सम्भव होगा मैं भेजूँगा। ये चीजें आदमीकी शक्तिसे कहीं अधिक ही होती चली जा रही हैं।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ८९४)की फोटो-नकलसे।

२२१. भेंट: 'हिन्दू'के प्रतिनिधिसे[2]

बम्बई
१२ अगस्त, १९२९

गांधीजीने आज मुझे अकेलेको ही अलगसे मुलाकातका अवसर दिया।

श्री मैकडानॉल्डके भाषण तथा सम्राटके भाषणमें हिन्दुस्तानका उल्लेख न होनेके सम्बन्धमें उनके विचार पूछनेपर गांधीजीने उत्तरमें कहा:

"मैंने पूरा भाषण नहीं पढ़ा है। मैं इस विषयमें कोई भी विचार व्यक्त करनेमें असमर्थ हूँ।"

उन्हें भारतीय लोकमतसे तालमेल बैठानेकी (मजदूर दलकी सरकारकी) 'चिन्ता'-के बारेमें भारत-सचिव और मन्त्रिमण्डलके अन्य सदस्योंसे भेंट करनेवालोंकी प्रतिक्रिया बताये जाने पर गांधीजीने कहा:

मैं लेबर-सरकारकी कठिनाई खूब समझता हूँ। सब-कुछ इसपर निर्भर करेगा कि वह क्या प्रस्ताव हमारे सामने रखती है।

जब यह कहा गया कि साइमन कमीशन, जिसके सम्बन्धमें मजदूर-दल (लेबर पार्टी) वचन-बद्ध है, अभीतक अपना कार्य पूरा नहीं कर पाया है, गांधीजीने कहा:

१. पत्र प्राप्तकर्त्ताके अनुसार।

२. यह इस शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था — "लाहौर और भारत: कांग्रेसकी माँगके बारेमें गांधीजीका मत" — "जब-तब संवाद भेजनेवाले एक संवाददाता" की ओरसे।

जहाँ चाह है वहाँ राह है।

लाहौर कांग्रेसकी अध्यक्षताके बारेमें पूछने पर गांधीजीने कहा कि वे यह सम्मान स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने कहा कि मैं तो अब पीछेकी कतारमें हूँ। जब मैंने कहा कि 'यंग इंडिया'में प्रकाशित उनके लेखके[1] बावजूद भी चुनावमें उनको अधिक मत मिले हैं तो, गांधीजीने दुहराया :

मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा। मामला अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने अन्तिम निर्णयके लिए प्रस्तुत किया जायेगा।

यह पूछने पर कि क्या अन्तिम चुनाव करनेका अधिकार स्वागत-समितिको नहीं था; उन्होंने कहा :

जी नहीं। मामले पर अ० भा० कां० कमेटी विचार करेगी।

यह पूछने पर कि क्या लाहौर कांग्रेसमें स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी जायेगी, गांधीजीने बहुत स्पष्ट शब्दोंमें कहा :

निराश होनेका मैं कोई कारण नहीं देखता। मैं औपनिवेशिक स्वराज्यका समर्थक हूँ। मैं ३१ दिसम्बर, १९२९ की रात्रिके बारह बजे तक इसकी प्रतीक्षा करूँगा। मैं आशा करता हूँ कि जब तक औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो, पहली जनवरीसे मैं पूर्ण स्वराज्यवाला बन जाऊँगा।

बिना राँधे भोजनसे सम्बन्धित उनके प्रयोगोंके बारेमें पूछे जानेपर गांधीजीने कहा :

आपके प्रश्नोंमें यही सर्वश्रेष्ठ है।

उन्होंने आगे कहा कि मेरा स्वास्थ्य पहलेकी तरह ही अच्छा है, शरीरकी साधारण दशा बहुत ही अच्छी है, चिकित्सकोंकी राय भी पक्षमें थी; लेकिन मेरा वजन १० पौंड घट गया है और मैंने अभी बिना राँधे भोजनके सम्बन्धमें कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-८-१९२९

१. देखिए "ताज कौन पहने ?", १-८-१९२९।

२२२. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

१२ अगस्त, १९२९

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र ठीक मिल रहे हैं। कुछ ब्यौरेवार हाल तो मिलता है।

मुझे बहुत कम समय मिलता है।

लगता है कि सुशीला बहुत उदास है, इसलिए उसका यहाँ आ जाना ही ठीक होगा।

सोराबजी जैसे आज हैं, वैसे एक वर्ष पहले भी थे। किन्तु जो घटनाएँ हुई हैं, उनका सुशीलाके मन पर असर हुआ, इसे मैं समझ सकता हूँ। हम तो अपने मनमें सबके लिए स्नेह बनाये रखें और नीतिका कभी त्याग न करते हुए संसारमें अलिप्त रहें।

रामदास यहाँ थोड़े दिन रहकर गया। नीमू लखतर गई है। देवदास अलमोड़ासे दिल्ली चला गया था।

मेरा स्वास्थ्य ठीक रहता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७५७)की फोटो-नकलसे।

२२३. पत्र : प्रभावतीको

१२ अगस्त, १९२९

चि० प्रभावती,

तुम्हारा पत्र मिला। ससुराल तो दस पन्द्रह दिनके लिए ही जाना है। वे किसी मंगल विधिके लिए तुम्हें वहाँ बुलाना चाहते हैं। उन्हें सन्तोष होगा और तुम्हारा मार्ग ज्यादा साफ हो जायेगा।

जयप्रकाशका पत्र ठीक है। उसके आनेमें देर तो होगी ही। इस समय ज्यादा लिखनेका समय नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३५८) की फोटो-नकलसे।

२२४. तार: अमृतलाल ठक्करको[1]

[१२ अगस्त, १९२९को अथवा उसके पश्चात्]

ठक्कर

आज ही बम्बई से लौटा। हरिवल्लभको रोकनेके लिए रमणलालको प्रातः तार भेज दिया।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४६१)की फोटो-नकलसे।

२२५. पंच-फैसला[2]

साबरमती आश्रम
अहमदाबाद
१४ अगस्त, १९२९

मजदूरोंकी ओरसे यह दलील दी गई है कि मिलोंकी वर्तमान स्थिति इतनी अच्छी है कि १९२३ में की गई कटौतीको रद्द कर दिया जाना चाहिये और उन्हें कमसे-कम उतना ही वेतन दिया जाना चाहिए जितना कि १९२३ में मिलता था। इस मुद्देपर दोनों पक्षोंकी बात सुनने तथा जो बयान दिये गये उनकी जाँच करनेके बाद पंच यह फैसला करते हैं कि मजदूर कटौतीके अपने मुद्देको साबित नहीं कर सके, इसलिए उसे रद्द किया जाता है।

मोहनदास गाँधी
मंगलदास गिरधरदास

गुजराती (एस० एन० १४९७५) की माइक्रोफिल्मसे।

१. श्री अमृतलाल ठक्करके दिनांक १२ अगस्तके तारके उत्तरमें। तार था: "क्या आपने पेटलाद वालोंको लिख दिया है? हरिवल्लभको असममें रोकने हेतु तार दे रहा हूँ।"

२. "मिल मालिकों और मजदूरोंके बीचके विवादपर लिखी गई टिप्पणी", ७-९-१९२९ भी देखिए।

२२६. पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

आश्रम, साबरमती
१४ अगस्त, १९२९

भाईश्री,

आपका दूसरा पत्र भी मिल गया है और साथमें टाइप किये हुए और छपे हुए कागजात भी। मैं फुरसत निकालकर उन्हें देख जाऊँगा। जितना हो सकता है उतना अवश्य करूँगा। मुझे समाचार देते रहिएगा। मैं उससे तंग नहीं होऊँगा।

आपका,
मोहनदास

सर पुरुषोत्तम ठाकुरदास
नवसारी चैम्बर्स
आउट्रम रोड
फोर्ट, बम्बई १

पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासके कागजातमें उपलब्ध गुजराती पत्रसे : फाइल सं० ८९/१९/२९।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय।

२२७. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

आश्रम, साबरमती
१४ अगस्त, १९२९

भाईश्री हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी अपनी रिपोर्ट अच्छी है। इस समय ज्यादा लिखानेका समय नहीं है। भाई घनश्यामदासका प्रेम उनको भुलावेमें डाल देता है और इसलिए निर्दोष सलाह देनेवाले पर भी वे क्रोधित हो जाते हैं। मैं इस 'दुधारू गाय' को सहज ही छोड़ दूंगा, ऐसा भी नहीं है। मैं बहुत सँभलकर प्रयोग कर रहा हूँ। घनश्यामदासको पूर्णतया आश्वस्त और निर्भय करना। तुम्हारे दो पत्र वापस भेज रहा हूँ। फुरसत मिलेगी तो थोड़ा ज्यादा लिखूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०६७) से।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

२२८. तार: पुरुषोत्तमदास टण्डनको[1]

[१४ अगस्त, १९२९ को या उसके पश्चात्]

कृपया २१ को अथवा उससे पहले साबरमती अवश्य आइए।

अंग्रेजी (एस० एन० १५४५२) की फोटो-नकलसे।

२२९. बिना राँधा आहार

प्रिय महाशय,

आप अपने आहार-सम्बन्धी प्रयोगोंके सम्बन्धमें जो-कुछ लिख रहे हैं उसकी 'हिन्दू' के २२ जुलाईके अंकमें उद्धृत एक नयी किस्त[2] मैंने बहुत चावसे पढ़ी और मुझे यह देखकर खुशी हुई है कि दूध और दूधसे बने पदार्थोंके खिलाफ आपकी आपत्ति इस हद तक नहीं जाती कि आप 'भारतकी युवा-पीढ़ी' को उसको त्याग देनेकी सलाह दें। सच तो यह है कि आप अपने प्रयोग के परिणामोंको काफी निष्पक्ष भावसे प्रस्तुत कर रहे हैं। किन्तु आपके इस विवरणमें मुझे तथ्यकी दो भूलें दिखाई देती हैं। वनस्पति-सृष्टिसे मनुष्यको इतना पोषण प्राप्त हो सकता है या नहीं कि वह अपनी शक्तिके उच्चतम स्तर पर काम कर सके, आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानने इस प्रश्नकी छान-बीन न की हो ऐसा नहीं है। उसने इस प्रश्नकी छानबीन की है और बताया है कि वनस्पति-सृष्टिकी इस क्षमताकी एक सीमा है। शुद्ध शाकाहारसे प्राप्त होनेवाले पोषणके सीमित होनेका एक कारण तो यह है कि मनुष्यके पेटकी रचना और लम्बाई शाकाहारी प्राणियोंके पेटसे भिन्न है। मनुष्यकी पाक-प्रणाली न तो इतनी लम्बी है और न उसमें इतनी जगह ही है कि उसमें उपयुक्त शाकान्न पर्याप्त मात्रामें समा सके। इसके सिवा जितना उसमें समा सकता है उससे वह मनुष्यके शरीरके पूर्ण स्वास्थ्यके लिए आवश्यक सारा पोषण खींच भी नहीं सकती। (ब) सिर्फ एक विटामिन — विटामिन डी ऐसा है जिसके लिए मनुष्य (बड़ी हद तक) सूर्य पर निर्भर रह सकता है। उससे दूसरे महत्वपूर्ण विटामिन भी प्राप्त किये जा सकते हैं, ऐसा माननेका हमारे पास कोई आधार

१. लाहौरसे १४ अगस्तको भेजे श्री टण्डनके नम्र तारके उत्तरमें: "बैंकसे ३१ अगस्तको सेवा निवृत्त हो रहा हूँ। २१के पहले आपसे मिलना चाहता हूँ। क्या साबरमती आ सकता हूँ?"

२. देखिए पृष्ठ २३२–६।

नहीं। . . . यह अवश्य सही है कि जिन खाद्य वस्तुओंमेंसे वे मिलते हैं उनमें वे अधिकांशतः सूर्यकी मददसे ही बनते हैं। . . .

आजकलके भारतीय आहारोंका एक बड़ा दोष यह है कि उनमें 'ए' विटामिनकी, शरीरको माफिक आनेवाले प्रोटीनोंकी और कुछ क्षार-तत्वोंकी कमी पाई जाती है। और भारतकी आहार-सम्बन्धी सबसे बड़ी आवश्यकता है, दूधका और दूधसे बननेवाले उन दूसरे पदार्थोंका जो इन तत्वोंकी पूर्ति कर सकते हों — अधिक उपयोग। . . . मैं आपसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि आप दूधका तिरस्कार न करें। भारतके नौजवानोंको प्रतिदिन एक पिंट दूधसे जितना लाभ होगा, उतना शायद ही किसी और चीजसे हो। उदाहरणके लिए, भारतमें पाई जानेवाली पेटकी, फेफड़ोंकी, मूत्राशयकी (जैसे पथरी आदि) बीमारियोंके आधिक्यका कारण विटामीन 'ए'की कमी है। . . .

आपका,
आर० मैक-कैरीसन

कूनूर,
२६ जुलाई, १९२९

पुनश्च: आप जब आन्ध्रका दौरा दुबारा करें तो हर दिन एक पिंट दूध लेकर उस अत्यधिक कमजोरीको टालें, जिसके शिकार आप पिछली बार हो गये थे।

मैं इस पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ और उसे यहाँ प्रकाशित तक कर रहा हूँ।[1] मैं चाहता हूँ कि चिकित्सा विज्ञानमें निष्णात दूसरे लोग भी मेरा मार्ग-दर्शन करें। मैं जो प्रयोग कर रहा हूँ उसमें मेरा आशय आहारके विषयमें, सामान्य आदमी के लिए जिस हद तक सम्भव है उस हद तक, सत्यकी खोज करना ही है।

मैं इस विषयका सामान्य ज्ञान रखनेवाले व्यक्तिके नाते डॉ० मैक-कैरीसनकी इस दलीलका कि मनुष्यके लिए जैविक आहार जरूरी है, सीधा विरोध नहीं कर सकता। लेकिन मैं यह जरूर कहूँगा कि ऐसे भी कई डाक्टर हैं, जिनका निश्चित मत है कि जैविक आहार — जिसमें दूध भी शामिल है — मनुष्यके शरीरके पोषणके लिए अनिवार्य नहीं है। स्वभावसे और जिस वातावरणमें मेरा पालन-पोषण हुआ उसके फलस्वरूप मैं खुद तो शुद्ध शाकाहारी भोजन ही पसन्द करता हूँ और उपयुक्त शाकाहारी भोजनमें कौन-कौनसे खाद्य किस मात्रामें होने चाहिए, यह जाननेके लिए पिछले कई वर्षोंसे प्रयोग कर रहा हूँ। लेकिन जब तक दूध-विहीन भोजनके समर्थनके लिए बहुत पर्याप्त प्रमाण नहीं मिल जाते, तब तक इस आशंकाके लिए कोई कारण नहीं है कि मैं दूधको बुरा बताऊँगा और लोगोंको उसे छोड़नेकी सलाह दूँगा। मेरे जीवनमें जो अनेक विसंगतियाँ हैं, उनमेंसे एक यह भी है कि यद्यपि मैं खुद तो दूध नहीं

१. अंशतः उद्धृत।

लेता, लेकिन मैं एक आदर्श डेरी चला रहा हूँ जहाँकी गायोंका दूध भारतमें अन्यत्र किसी भी जगह पैदा होनेवाले इस तरहके दूधसे शुद्धता और मक्खनकी अपनी मात्रामें अच्छी तरह स्पर्धा कर सकता है।

डॉ० मैक-कैरीसनने चिकित्सा-विज्ञानका नाम लेकर जो दावा किया है उसके बावजूद मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि मनुष्यको शाकाहारके द्वारा पूरा पोषण कैसे मिले, इस बातको ध्यानमें रखकर वैज्ञानिकोंने अभी तक बीजों, पत्तियों और फलोंके असंख्य प्रकारोंकी छिपी हुई सम्भावनाओंकी पूरी खोज नहीं की है। इसका एक कारण तो यह है कि जैविक आहारके साथ कितने ही लोगोंके स्वार्थ जुड़ गये हैं और इन जबर्दस्त स्वार्थोंके प्रभावके फलस्वरूप डाक्टरीका धन्धा करनेवाले लोग इस सवाल पर तटस्थ वृत्तिसे विचार करनेमें असमर्थ हो गये हैं। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि इस रास्तेकी विकट कठिनाइयोंको पार करने और अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी इस विषयके सत्यको ढूँढ़ निकालनेका काम निष्णात डाक्टर लोग नहीं, बल्कि सामान्य परन्तु उत्साही जिज्ञासु व्यक्ति ही करेंगे। यदि सत्यके इन विनम्र शोधकोंको वैज्ञानिक लोग मदद दें, तो मुझे उसीसे सन्तोष हो जायेगा।

मैं डॉ० मैक-कैरीसनके विटामिन-सम्बन्धी ज्यादा सही जानकारी देनेके लिए उनका आभारी हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १५-८-१९२९

२३०. टिप्पणियाँ

काली चमड़ी

तो अब आखिर यह फैसला हो ही गया कि एक जगत-प्रसिद्ध मासिक-पत्रके सम्पादकको, एक अमेरिकन भूतदयावादी द्वारा लिखे गये और मासिक पत्रमें समय-समय पर प्रकाशित किये गये लेखोंको पुस्तक रूपमें छपानेके अपराधमें १०००)का दण्ड भरना पड़ेगा। डा० संडरलैंडकी 'इंडिया इन बॉन्डेज' नामक पुस्तक और कुछ नहीं, 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित उनके लेखोंका संग्रह ही है। मैंने इन पृष्ठोंमें बार-बार लिखा है कि जिस धाराके आधार पर श्री रामानन्द चटर्जी पर अपराध लगाया गया था, वह इतनी व्यापक और रबरके समान विस्तारशील है कि जो सच बातोंको थोड़ा भी निडरताके साथ व्यक्त करता है, ऐसे प्रायः हरएक व्यक्तिको उसके अनुसार अपराधी ठहराया जा सकता है।[1] उक्त धाराके अनुसार रामानन्द बाबू जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तिको मुजरिम करार देना न्यायका उपहास करना है। लेकिन रामानन्द बाबूका बड़ा दोष तो यह है कि उनकी चमड़ी काली है। उनके कपाल पर काले कुलीकी छाप लगी हुई है और यही वजह है कि उन्हें और उनके प्रकाशकको भीषण पाप

१. देखिए "डॉ० संडरलैंडकी पुस्तक" १३-६-१९२९।

करनेवाले अपराधियोंका-सा दण्ड दिया गया है। मैं नहीं मानता कि इस सजाके कारण रामानन्द बाबू अपने मासिकके लिए लिखनेकी नीति और लेखोंका चुनाव करनेमें किसी भी तरहका परिवर्तन करेंगे। इस घटनाके कारण उन्हें अभूतपूर्व प्रसिद्धि प्राप्त हो गई है; उनके मासिकका खासा विज्ञापन हो गया है। इस मामलेको चलाकर सरकारने लोगोंके दिलमें अपने लिए प्रीति पैदा की हो सो भी नहीं, उलटे इससे लोगोंका असन्तोष बढ़ा ही है। जो लोग अपनी उग्र नीतिके लिए प्रसिद्ध हैं वे आशा रखते हैं कि किसी-न-किसी दिन सरकार उन्हें अपने चंगुलमें फँसायेगी ही। मगर यह कभी आशा भी नहीं की जाती थी कि रामानन्द बाबूके समान स्वतन्त्र विचार रखनेवाले और साथ ही अपनी गम्भीरताके लिए प्रसिद्ध व्यक्ति भी न्यायालयोंके सामने अपराधीके रूपमें खड़े किये जा सकते हैं। मगर हुआ वही जिसकी आशा नहीं थी। अस्तु! लोकमान्य तिलकका-सा श्रेष्ठ सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए मैं रामानन्द बाबूको बधाई देता हूँ। कानूनकी बारीकियाँ चाहे जो हों, साधारण नागरिककी दृष्टिमें तो यह अभियोग और न्यायका यह ढकोसला राष्ट्रीय अपमान ही समझा जायेगा।

असमकी बाढ़

मेरे बम्बई रहते हुए मुझे श्री विपिनचन्द्र पालका निम्नलिखित पत्र मिला था:

पिछले बुधवारसे मैं यहाँ सेवा-कार्यके लिए आया हुआ हूँ। आप जानते हैं कि सिलहट जिला मेरी जन्मभूमि है। पिछले दिनों सिलहट और कछार जिलेमें जो बाढ़ आई, वह अभूतपूर्व थी। वहाँके पुराने से पुराने निवासियोंको भी वैसी बाढ़ आनेकी याद नहीं आती। मुझे मालूम हुआ है कि आप वहाँके लोगोंके कष्टके समाचार सुनकर द्रवित हो उठे हैं और आपने कुछ हजार रुपये उनकी सहायताके लिए भेज भी दिये हैं। वहाँ काम करनेवाले लोगोंको दिन-ब-दिन वहाँकी विपत्तिका अधिकाधिक अनुमान होता जा रहा है। भारत-सेवक समाजके श्री ठक्करने बाढ़पीड़ित जिलोंका दौरा किया है और स्वयं परिस्थिति को देखकर तथा अबतक प्राप्त सहायताको अपर्याप्त समझकर उन्होंने सिलहट कछार बाढ़ सहायता समितिसे बम्बई तथा अन्य प्रान्तोंमें प्रतिनिधि मण्डल भेजकर देखने और मुझे उसका नेतृत्व करनेकी बात सुझाई। जब प्रस्ताव मेरे सामने रखा गया तो मैं उससे इनकार तो नहीं कर सका; किन्तु अब मुझमें बीस बरस पहले जैसी शक्ति नहीं है और स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा नहीं रहता। मेरे इस बार बम्बई आनेकी यही कहानी है।

मैं यह पत्र इस काममें आपसे सहायता पानेकी दृष्टिसे लिख रहा हूँ। नुकसानका अद्यावधि अनुमान देनेके विचारसे अखबारोंकी एक कतरन भी भेज रहा हूँ। यदि आप हमारी अपीलके समर्थनमें कृपापूर्वक दो शब्द कह दें तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आजकी व्यापारिक मंदीके बावजूद—यह मंदी बम्बईमें तो बहुत बुरी तरह है—इस कार्यके लिए उदारताके द्वार बन्द

नहीं होंगे। मुझे विश्वास है कि हमारे वहाँकी गरीब जनताके लिए आप इतना अवश्य ही करेंगे।

मैं इस अपीलका हार्दिक समर्थन करता हूँ। जो विपत्ति पड़ी है सो भयानक है और इसमें छोटी-से-छोटी रकमसे भी राह मिलती है।

बाढ़-पीड़ित और चरखा

कुलौरा (असम)से श्री धीरेन्द्रदास तार[1] द्वारा सूचित करते हैं:

आज मैं चरखेके कार्यका विवरण भेज रहा हूँ। बाढ़के पहले करीमगंजके बाढ़-पीड़ित क्षेत्रमें तीन कताई-केन्द्र थे। इनमें ८१ कतैये थे, जो पखवाड़ेमें १११ पौंड सूत कात कर देते थे। बाढ़के बाद तीन और नये केन्द्र खोले गये हैं। फलस्वरूप पिछले पखवाड़ेमें कातनेवालोंकी संख्यामें सौ की वृद्धि हुई है और सूतकी उत्पत्ति १११से २२५ पौंड तक पहुँची है। इसमें नौसिखुओंका सूत भी शामिल है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि कताई-केन्द्रोंमें 'रेशम' टिकटोंकी संख्या उन बाढ़ पीड़ित स्थानोंसे कहीं कम है, जहाँ कताई-केन्द्र नहीं हैं। यद्यपि बाढ़का असर दोनों जगह एक-सा हुआ है। सिलचर और कछार जिलोंमें चरखोंकी माँग बहुत ज्यादा बढ़ गई है। हरएक गाँवमें थोड़ा-बहुत कातना जाननेवाले लोग मिल जाते हैं। आज यहाँ दो हजार चरखे सहज ही शुरू किये जा सकते हैं। सूतकी खपत जहाँकी तहाँ हो सकती है। यहाँ जुलाहे भी हैं। संकट-निवारणके दूसरे काम, जैसे, चावल और धानका कूटना, मकान बनाना, तालाब साफ करना, घास काटना, चटाई बनाना वगैरा पूर्ववत् हो रहे हैं। पेटलादके सेठ रमणलाल केशवलाल यहाँ आये थे। उन्होंने कताईके लिए २५०) दिये हैं। चटगाँवके श्री भीमजीभाईने भी साधारण कामोंके लिए ५०) भेजे हैं। ठक्कर सेठ श्री रमणलालके प्रतिनिधि श्री हरिवल्लभभाई को सिलचरका काम सौंपकर यहाँसे रवाना हो गये हैं। हरिवल्लभभाई अक्सर पूछताछ करते और कताईके सिवा दूसरे राहत कामोंमें भी मदद पहुँचाते हैं। इस समय आवश्यकताके मुकाबिले हमारे पास पैसा बहुत कम है। क्या हम आपसे सहायताकी आशा और अपील करें?

इससे पता चलता है कि किस तरह अन्य साधनोंके अभावमें चर्खा उपयोगी हो जाता है और कामके सुसंगठित हो जाने पर किस तरह वह दूसरोंके सामने पल्ला पसारनेकी लज्जासे लोगोंकी रक्षा करता है।

श्री जिन्नासे बातचीत

बम्बईमें श्री जिन्नासे मेरी जो बातचीत[2] हुई है, उसे लेकर मैं हवाई किले बाँधनेकी कोई जरूरत नहीं देखता। पश्चिमी देशोंकी सफल और उज्ज्वल यात्राके

१. अंशतः उद्धृत।

२. बातचीत १२-८-१९२९ को हुई।

बाद श्रीमती सरोजिनी देवी जबसे स्वदेश आई हैं, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको सफल बनानेके लिए वे बराबर प्रयत्न कर रही हैं, उपाय सोच रही हैं। इसी इरादेसे वे लोगोंकी एक-दूसरेसे मुलाकातके लिए कोशिश भी कर रही थीं। चूँकि आते ही वे पहले बम्बई ठहरीं थीं, उन्होंने सहज ही श्री जिन्नासे मिलकर अपने कामका श्रीगणेश कर दिया और इलाहाबादमें मुझसे कहा कि मैं बम्बई जाकर शीघ्र ही श्री जिन्ना और अलीभाइयोंसे किसी दिन मिल लूँ। इसी कारण मैं बम्बई गया था। पहले श्री जिन्नासे मिला और बादमें अलीभाइयोंसे। हमारी बातचीत मित्रोंकी वार्तालाप थी। ये दोनों वार्तालाप एक-दूसरेसे सम्बन्धित नहीं थे। वास्तवमें उन्हें मित्रोंकी आपसकी बातचीत ही कहना चाहिए। अतएव उन्हें कोई खास महत्व देनेकी जरूरत नही होनी चाहिए। मुझे कोई प्रातिनिधिक अधिकार प्राप्त नही हैं, और न मैं किसी प्रतिनिधिकी हैसियतसे गया ही था। हाँ, इतना जरूर है कि मैं स्वभावतः ही शान्ति और समझौतेकी तमाम मांगोंकी छानबीन कर डालना चाहता हूँ और यही वजह है कि जिन लोगोंका भारतमें थोड़ा भी प्रभाव है, उनकी मनोदशाका परिचय पानेका एक भी अवसर खोता नहीं। अतएव जनताके लिए तो यही अच्छा है कि वह इन वार्त्तालापोंके परिणाम या विषय को लेकर बड़ी-बड़ी आशाएँ न बाँधे। अगर इनका कोई परिणाम निकला ही तो जनता भी अवश्य उसे जानेगी। इस बीच जिनका प्रार्थनामें विश्वास है, वे मेरे साथ मिलकर प्रार्थना करें कि देशकी हिन्दू, मुसलमान और दूसरी सब जातियोंमें शीघ्र ही एकता या समझौता हो जाये। और जो लोग ऐसी एकताको मेरे समान स्वयं भी हमारी उन्नतिके लिए—हमारी ही नहीं बल्कि दुनियाकी प्रगतिके लिए भी—अनिवार्य समझते हैं वे उसे पानेको जी-तोड़ मेहनत करें। सचाईके साथ किया गया प्रत्येक छोटे-से-छोटा प्रयत्न हमें एकताके निकट पहुँचायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-८-१९२९

२३१. विदेशी वस्त्र-बहिष्कार

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समितिकी ताजी पत्रिकाके नीचे लिखे उद्धरणसे[1] पता चलता है कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कारका प्रचार-कार्य लगातार और दृढ़ताके साथ किया जा रहा है।

> **कई और नगरपालिकाओंने इस दिशामें कदम उठाये हैं। बेलगाँव जिले की निपानी नगरपालिकाने विदेशी वस्त्रोंपर चुंगी बढ़ानेके साथ-ही-साथ हाथ-कती, हाथ-बुनी खादी परसे चुंगी उठा ली है और अपने चपरासियोंकी वर्दी वगैराके लिए यथासम्भव हाथ-कती खादी खरीदनेका निर्णय किया है। आन्ध्र की बैजवाड़ा नगरपालिकाने भी अपनी आवश्यकताका तमाम कपड़ा हाथ-कती**

१. अंशत उद्धृत।

खादीके ही रूपमें खरीदने और अपनी शालाओंमें कताई शुरू करनेका निश्चय किया है। लेकिन अब तक सबसे अधिक साहसपूर्ण निश्चय करनेका श्रेय तो मध्यप्रदेशकी मुड़वारा नगरपालिकाको है, जिसने तमाम विदेशी वस्त्र पर फी मन २ आनाके बजाय चुंगीकी दर फी मन २ रुपये कर दी है। यह कहना अनावश्यक है कि उसने हाथ-कती खादी परसे चुंगी उठा ली है।...

सिन्धमें बिक्रीके १८ केन्द्र चल रहे हैं—७ कराचीमें और एक-एक हैदराबाद, नवाबशाह, भिरिया, हालनी, टाल्टी, रोहरी, सक्कर, शिकारपुर, नौशहर, फीरोज, लरखाना, और जैकोबाबादमें।....

आगरामें एक विशेष समितिकी सीधी देखभालमें विदेशी वस्त्र बहिष्कारके लिए २५ स्वयंसेवक काम कर रहे हैं। उन्होंने २५० घरोंमें फेरी लगाकर ३००)की खादी बेची और १०० आदमियोंसे विदेशी वस्त्रके त्यागकी प्रतिज्ञा करवाई।....

मेमनसिंह (बंगाल): छः मैजिक लैंटर्न और स्लाइडोंके साथ १२ व्याख्यानदाता जिले-भरमें दौरा कर रहे हैं। उन लोगोंने २००से भी ज्यादा सार्वजनिक सभाओंमें लगभग ३०० व्याख्यान दिये और कई जगहोंमें विदेशी कपड़ोंकी होली भी जलाई।....

लेकिन हम यह न भूलें कि विदेशी वस्त्र बहिष्कार समितिकी अपनी सीमाएँ हैं। जबतक तमाम कांग्रेस-समितियोंकी ओरसे स्वेच्छापूर्ण, बुद्धियुक्त और दृढ़ सहयोग नहीं मिलता, तबतक हमारा इस सालके भीतर बहिष्कार-कार्यको सफल कर दिखानेका इरादा पूरा नहीं हो सकेगा। इस कार्य पर अभी और अधिक शक्ति केन्द्रित करनेकी जरूरत है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-८-१९२९

२३२. कुछ धार्मिक प्रश्न

एक भाई नीचे लिखे प्रश्न पूछते हैं:

१. "धर्मका वास्तविक रूप तथा उद्देश्य:—आज धर्मके नाम पर कैसे-कैसे अनर्थ होते हैं? जरा-जरा सी बातोंमें धर्मकी दुहाई दी जाती है; किन्तु ऐसे कितने मनुष्य हैं जो धर्मके उद्देश्य तथा रहस्यको जानते हों? इसका एक-मात्र कारण धार्मिक शिक्षाका अभाव है। मुझे आशा है, आप इसपर और नीचे लिखे दूसरे प्रश्नों पर 'हिन्दी नवजीवन' द्वारा अपने विचार प्रकट करनेका कष्ट स्वीकार करेंगे।

२. मनुष्यकी आत्माको किन साधनों द्वारा शान्ति मिल सकती है और उसका इहलोक व परलोक बन सकता है?

३. क्या आपके विचारसे अगर मनुष्य अपने पिछले दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त कर ले तो उनका फल नष्ट हो सकता है?

४. मनुष्यके जीवनका उद्देश्य और उसके प्रमुख कर्त्तव्य क्या होने चाहिए?

यह आश्चर्य और आनन्दकी बात है कि 'यंग इंडिया' 'गुजराती नवजीवन', और 'हिन्दी नवजीवन' के पाठकोंमेंसे हिन्दी पाठक ही धर्मके बारेमें ज्यादातर प्रश्न पूछते हैं। इसका यह अर्थ तो हरगिज नहीं होता कि दूसरे प्रान्तके लोगोंमें धर्म-जिज्ञासाका अभाव है। परन्तु यह ठीक है कि 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठकोंमें ही अधिकतर ऐसे हैं, जिन्हें धार्मिक प्रश्नोंकी चर्चासे प्रेम है और जिसके समाधानके लिए वे मेरी सहायताकी अपेक्षा रखते हैं। मैं अपने लिए धर्मशास्त्रके गम्भीर अनुभवका दावा नहीं कर सकता; हाँ, धर्म-पालनके प्रयत्नका दावा मैं अवश्य करता हूँ। अपने इस प्रयत्नमें मुझे जो अनुभव होते हैं, उनसे अगर पाठकोंका कुछ लाभ हो सकता है, तो अवश्य ही वे उनसे लाभ उठा सकते हैं। अपनी इस मर्यादाका उल्लेख करके अब मैं उक्त प्रश्नोंके उत्तर देनेकी चेष्टा करूँगा।

१. निःसन्देह यह सच है कि आजकल देशमें धार्मिक शिक्षाका अभाव है। धर्मकी शिक्षा धर्म-पालन द्वारा ही दी जा सकती है; कोरे पाण्डित्य द्वारा कदापि नहीं। इसी कारण किसीने कहा है:

'सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्?'

अर्थात, सत्संग मनुष्यको क्या नहीं बना सकता? तुलसीदासने सत्संगकी महिमाका जो वर्णन किया है उसे कौन नहीं जानता? इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक पुस्तकोंका पठन-पाठन अनावश्यक है। इसकी आवश्यकता तभी होती है जब मनुष्य सत्संग प्राप्त कर चुकता है और कुछ हद तक शुद्ध भी बन चुकता है। यदि इससे पहले धर्म-पुस्तकोंका पठन पाठन शुरू किया जाता है तो शान्तिप्रद होनेके बदले उसका बन्धन बन जाना अधिक सम्भव है। तात्पर्य, समझदार मनुष्य दुनिया-भरकी फिक्र करनेके बदले पहले स्वयं धर्म-पालन करना शुरू कर दे। फिर तो 'यथा-पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' के न्यायानुसार एकके आरम्भका असर दूसरे पर अवश्य ही पड़ेगा। अगर सब अपनी-अपनी चिन्ता करने लगें तो किसीको किसीकी चिन्ता करनेकी जरूरत ही न रह जाये।

२. साधु-जीवनसे ही आत्मशान्तिकी प्राप्ति सम्भव है। यही इहलोक और परलोक, दोनोंका साधन है। साधु-जीवनका अर्थ है, सत्य और अहिंसामय जीवन; संयम-पूर्ण जीवन। भोग कभी धर्म नहीं बन सकता। धर्मकी जड़ तो त्याग ही में है।

३. पिछले दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त शक्य है और कर्तव्य भी है। प्रायश्चित्तका अर्थ न मिन्नतें मानना है, और न रोना-पीटना ही है। हाँ, उसमें उपवासादिकी गुंजाइश अवश्य है। पश्चात्ताप ही सच्चा प्रायश्चित्त है। दूसरे शब्दोंमें, दुबारा दुष्कर्म न करनेका निश्चय ही शुद्ध प्रायश्चित्त है। दुष्कर्मोंके फलोंका कुछ-न-कुछ नाश तो अवश्य होता है। जबतक प्रायश्चित्त नहीं किया जाता तबतक फल चक्रवृद्धि व्याजकी भाँति बढ़ता ही रहता है। प्रायश्चित्त कर लेनेसे सूदकी वृद्धि बन्द हो जाती है।

४. मनुष्य जीवनका उद्देश्य आत्मदर्शन है। और उसकी सिद्धिका मुख्य एवं एकमात्र उपाय पारमार्थिक भावसे जीवमात्रकी सेवा करना है; उसमें तन्मयता तथा अद्वैतके दर्शन करना है।

हिन्दी नवजीवन, १५-८-१९२९

२३३. वृक्ष-पूजा

एक भाई लिखते हैं:

> **यहाँके स्त्री-पुरुष और पूजाओंके साथ वृक्ष-पूजा भी किया करते हैं। मगर जब मैंने समाज-सेवकोंकी शिक्षित स्त्रियोंको भी वृक्ष-पूजा करते देखा, तो हैरान हो गया। परन्तु उन बहनों और कुछ मित्रोंका कहना है कि यदि यह पूजा किसी प्रकारकी इच्छाके बिना की जाये, तो इसे अन्धविश्वास नहीं कह सकते। हम तो पवित्र भावसे पूजा करते हैं। उन्होंने सावित्री और सत्य-वानका उदाहरण दिया और कहा कि आज उनकी यादगारका दिन है, इसी लिए हम यह पूजा करते हैं। किन्तु उनकी यह दलील मेरे गले नहीं उतरी। अतः आपसे इस विषय पर प्रकाश डालनेकी प्रार्थना करता हूँ।**

यह प्रश्न अच्छा है। इसके गर्भमें मूर्ति-पूजाका प्रश्न छिपा है। मैं मूर्तिपूजाका हामी भी हूँ और विरोधी भी। मूर्ति-पूजाके कारण जो वहम पैदा हो जाते हैं, उनका खण्डन या विरोध करना आवश्यक है। यों तो, मूर्ति-पूजा मनुष्यमात्र किसी न किसी रूपमें करता ही है। पुस्तक-पूजा भी मूर्ति-पूजा है। मन्दिरों और मस्जिदोंको पवित्र माननेका भी यही अर्थ है। मगर इसमें कोई बुराई नहीं। शरीरधारी इसके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकता। इसीलिए मेरे अपने ख्यालसे तो वृक्ष-पूजामें कुछ भी दोष नहीं है। उलटे वह बड़ी अर्थपूर्ण और महाकाव्यका-सा महत्व रखनेवाली है। वृक्ष-पूजाका अर्थ वनस्पतिमात्रकी पूजा है। वनस्पतिमें जो अद्भुत सौन्दर्य भरा पड़ा है, उससे हमें ईश्वरकी महिमाका कुछ-कुछ ज्ञान होता है। बगैर वनस्पतिके हम एक क्षण भी जी नहीं सकते। जिस मुल्कमें वृक्षादिकी कमी होती है, वहाँकी वृक्ष-पूजामें तो गम्भीर अर्थशास्त्र निहित है।

अतः मेरे विचारमें वृक्ष-पूजाका विरोध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वृक्ष-पूजा करनेवाली स्त्री पूजा करते समय किसी तत्त्वज्ञानका उपयोग नहीं करती। अगर उससे पूछा जाये कि वह पूजा क्यों करती है, तो कोई कारण न बता सकेगी। एकमात्र श्रद्धा ही उसकी पूजाका कारण है। उसकी वह श्रद्धा एक बड़ी और पवित्र शक्ति है। इस शक्तिका नाश किसी हालतमें भी इष्ट नहीं है।

हाँ, निजी स्वार्थके कारण जो मन्नतें ली जाती हैं, वे अवश्य ही दोषमय हैं। मन्नत-मात्र सदोष है। वृक्षोंकी मन्नत मनाना जितना सदोष है, गिर्जों और मजारों आदि की मन्नतें भी उतनी ही दोषपूर्ण हैं। मन्नतके साथ मूर्ति-पूजाका या वृक्ष-पूजाका कोई

भी अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। जनताको मन्नतोंकी जालमेंसे छुड़ाना बहुत ही जरूरी है। परन्तु यह तो विषयान्तर हुआ। हम लोगोंमें अन्धविश्वास इतने जड़ पकड़ गये हैं कि सभी उनके जालमें फँस जाते हैं।

इसका कोई यह अर्थ न कर बैठे कि वृक्षादिकी पूजा सबके लिए आवश्यक है। पूजा करनेके लिए ही मैं वृक्षादिकी पूजाका समर्थन नहीं करता; बल्कि इसलिए कि ईश्वरकी प्रत्येक कृतिके प्रति मेरे हृदयमें सहज ही आदर है।

हिन्दी नवजीवन, १५-८-१९२९

२३४. पत्र: चन्द्रकान्तको

आश्रम, साबरमती
१५ अगस्त, १९२९

भाई चन्द्रकान्त,[1]

चरखा-द्वादशीके[2] दिन कताईमें भाग लेनेवाले सब लोग पिछले बारह महीनोंमें अपने काते हुए सूतका हिसाब करें। और यदि यह सूत पिछले वर्षके सूतसे कम निकले तो चरखा-द्वादशी मनाना बन्द करनेका प्रस्ताव पास करनेके बाद यह चरखा-द्वादशी मनायें। इससे सच्ची प्रभु-सेवा होगी; और तुम्हारे मन्त्रकी रक्षा होगी, चरखा-द्वादशीकी लाज रह जायेगी। यही मेरा सन्देश है।

मोहनदासके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ३: कुसुमबहेन देसाईने

२३५. तार: घनश्यामदास बिड़लाको[2]

अहमदाबाद
१७ अगस्त, १९२९

घनश्यामदास बिड़ला
८, रायल एक्सचेंज
कलकत्ता

आपका तार मिला। पेचिश का हल्का-सा प्रकोप है। कमजोर तो बहुत हूँ किन्तु सर्वश्रेष्ठ डाक्टरकी देखरेखमें हूँ। चिन्ता का कोई कारण

१. कपड़वंजमें सेवासंघके कार्यकर्ता तथा नगरपालिकाके भूतपूर्व अध्यक्ष।

२. श्री बिड़लाके दिनांक १७ अगस्तके तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था: "गांधीजीके स्वास्थ्यके बारेमें अत्यधिक चिन्तित हूँ। तार द्वारा सविस्तार जानकारी दें। कृपया उन्हें कुछ दिन पूरी तरह दुग्धाहार पर रहनेकी सलाह दें, ताकि वे अपना खोया वजन पुनः प्राप्त कर लें।" (एस० एन० १५४७२)

नहीं। अत्यावश्यक हो जाने पर ही बकरीका दूध लूँगा। गुरुवारसे बिना राँधा भोजन बन्द कर दिया है।

गांधी

अंग्रेजीसे (सी० डब्ल्यु० ७८८२)से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२३६. तार : सतीशचन्द्र दासगुप्तको[1]

[१७ अगस्त, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

धन्यवाद। खबर अतिशयोक्तिपूर्ण। तबीयत सुधर रही है।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४७४)की फोटो-नकलसे।

२३७. खुर्शेद नौरोजीको[2]

[१७ अगस्त, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

प्रयोग खत्म। स्वास्थ्य अभी तक सामान्य नहीं। चिन्ताकी बात नहीं।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४७३)की फोटो-नकलसे।

२३८. ग्राम-शिक्षा

इस पूर्तिके[3] द्वारा काकासाहब अनेक काम कर डालना चाहते हैं। उनमें से एक यह भी है कि जो स्त्री अथवा पुरुष विद्यार्थीकी सामान्य आयु पार कर चुकने पर भी अनपढ़ हैं, गृहस्थ हैं, काम-धन्धेमें लगे हुए हैं और महागुजरातके प्रायः दस हजार गाँवोंमें बसे हुए हैं, उन्हें भी यथासम्भव कुछ तालीम मिल सके। इस तरहकी तालीम का व्यापक या उदार अर्थ लिया जाना चाहिए; यह तालीम अक्षरज्ञानसे परेकी तालीम है। गाँववालोंको वर्तमान दृष्टिके लिहाजसे कई बातोंका व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता;

१. सतीशचन्द्र दासगुप्तके दिनांक १७ अगस्तके तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था: "कृपया महात्माजीके स्वास्थ्यके बारेमें तार करें।"

२. खुर्शेद नौरोजीके दिनांक १७ अगस्तके तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था: "सभी आपके स्वास्थ्यके बारेमें चिन्तित हैं। सभी प्रयोग कृपया छोड़ दें।"

३. **नवजीवन**की "शिक्षण अने साहित्य" नामक मासिक पूर्ति।

और बहुधा इस ज्ञानके अभावमें अज्ञानपूर्ण अन्धविश्वासोंका उनपर जबर्दस्त असर रहता है। काकासाहबकी इच्छा है कि इस पूर्ति द्वारा उनके ये अन्धविश्वास दूर हों और उन्हें कुछ उपयोगी ज्ञान मिले।

आरोग्यके लिहाजसे गाँवोंकी हालत बड़ी ही दर्दनाक है। हमारी गरीबीका यह एक सबल कारण है कि आरोग्यका जो ज्ञान आवश्यक और सहज प्राप्त है, उसका भी हममें अभाव है। अगर गाँवोंके स्वास्थ्य एवं आरोग्यमें सुधार हो सके तो सहज ही लाखों रुपयेकी फिजूलखर्ची बच जाये और उस हद तक लोगोंकी स्थिति भी सुधर जाये। तन्दुरुस्त किसान जितना काम कर सकेगा, रोगी किसान उतना कदापि नहीं कर सकता। हमारे यहाँ मृत्युकी संख्या असाधारण है और इसकी वजहसे जो नुकसान हो रहा है, वह साधारण नहीं है।

कहा जाता है कि हमारी गिरी हुई और दर्दनाक तन्दुरुस्तीका कारण हमारी आर्थिक दरिद्रता है; अगर यह गरीबी दूर हो सके तो तन्दुरुस्ती अपने आप सुधर जाये। सरकारको गालियाँ देने या सारा दोष उसीके मत्थे मढ़नेके लिए कोई भले ही यह बात कहे, मगर इसमें आधेसे भी कम सचाई है। मेरा अपना अनुभवसिद्ध मत है कि हमारे अस्वास्थ्य और अनारोग्यमें हमारी गरीबीका बहुत थोड़ा हाथ है। गरीबीके कारण कहाँ कितनी अस्वस्थता फैली हुई है, सो मैं जानता हूँ। लेकिन यहाँ इस बातकी चर्चा नहीं करूँगा।

इस लेखमालाका हेतु तो यह बतलाना है कि जो रोग हमारे अपने दोषोंके कारण पैदा होते हैं वे सहज ही, बहुत थोड़े खर्चसे या बिना खर्चके कैसे या किन उपायों द्वारा दूर हो सकते हैं।

इस दृष्टिसे हम अपने गाँवोंकी हालतकी जाँच करें। हम देखते हैं कि हमारे बहुतेरे गाँव गन्दगीके घर होते हैं। उनमें लोग जहाँ-तहाँ पाखाना फिरते हैं। घरके आंगनोंको भी नहीं छोड़ते। पाखाना फिरनेके बाद मैलेको धूल आदिसे ढँकनेकी भी कोई परवाह नहीं करता। गाँवोंमें रास्ते तो कहीं भी स्वच्छ नहीं होते। जगह-जगह मिट्टीके और कूड़े-करकटके ढेर दिखाई पड़ते हैं। ऐसे रास्तों पर चलते हुए हमें और हमारे बैलोंको भी कष्ट होता है। जिन गाँवोंमें तालाब होते हैं, उनमें वहीं बरतन साफ किये जाते हैं, वहीं मवेशी पानी पीते हैं, नहाते और पड़े रहते हैं; क्या बालक और क्या बड़े, सब कोई तालाबमें ही मैला साफ करते हैं; तालाबके किनारेकी जमीन पर वे पाखाना तो फिरते ही हैं। फिर, वही पानी पीने और भोजन पकानेके काम भी आता है।

मकान बनानेमें किसी खास नियमसे काम नहीं लिया जाता। मकानोंके बनवानेमें न तो पड़ोसीकी सुख-सुविधाका ख्याल रखा जाता है और न इसी बात पर विचार किया जाता है कि घरमें रहनेवालोंको हवा और उजाला बराबर मिलेगा या नहीं।

गाँववालोंमें सहयोगकी कमी होनेसे वे अपने आरोग्यके लिए आवश्यक वस्तुएँ भी पैदा नहीं कर पाते। वे लोग अपनी फुरसतके वक्तका सदुपयोग नहीं करते, या यों कहिए कि उन्हें वक्तका सदुपयोग करना नहीं आता; इस कारण उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण होती चली जाती है।

आरोग्यके सामान्य ज्ञानके अभावमें किसी रोग द्वारा ग्रस्त हो जानेपर गाँव-वाले सादे घरेलू उपाय करनेके बदले बहुत बार ओझों, पण्डों वगैराको घुमाते हैं, अथवा जन्त्र-मन्त्र, छू-छा आदिके जालमें फँसकर बरबाद होते हैं; इस सबमें पैसा खर्च करते हैं और रोग तो घटनेके बजाय बढ़ता ही जाता है।

इन सब कारणों पर और इनको मिटानेके उपायों पर हम इस लेख-मालामें विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-८-१९२९

२३९. असमके बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता

इस बारेमें श्री ठक्करबापाका नीचे लिखा पत्र मिला है।[1]

इसपरसे पाठकोंको पता चलेगा कि वहाँकी जरूरत कितनी जबर्दस्त है और पाठकोंकी ओरसे जो रकम मिली है उसका वहाँ किस प्रकार सदुपयोग भी हो रहा है। भाई हरिवल्लभदाससे मैंने प्रार्थना की है कि वे वहाँ अधिक समय तक ठहरें। आशा तो यही है कि वे रुक भी गये होंगे। उन्हें वहाँ रुके रहनेके लिए सेठ नारण-भाई केशवलालकी पेढ़ीकी अनुमति आवश्यक थी। वे तार द्वारा इस सम्बन्धमें अपनी उदार सम्मति तुरन्त ही भेज चुके हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-८-१९२९

२४०. दीर्घदृष्टिकी जरूरत

ता० ४-८-१९२९के 'नवजीवन' में भाई जीवराम कल्याणजीका जो 'भूल सुधार' शीर्षक पत्र छपा है, उसके सम्बन्धमें एक पाठक लिखते हैं।[2]

इस लेखका भाई जीवराम द्वारा कही गई बातों पर कोई असर नहीं पड़ता। उनका केवल यही कहना था कि उत्कल जानेमें उनका हेतु उनके द्वारा मजदूरोंके साथ किये गये अन्यायका निवारण नहीं था, बल्कि उड़ीसावासियोंके दुःखसे दुखी होकर ही वे उत्कल गये थे। जिनकी मारफत उन्होंने हरड़ खरीदी थी, वे उनकी

१. नहीं दिया जा रहा है। ठक्कर बापाने २४,००० रुपयोंकी प्राप्तिकी सूचना देते हुए इस बातका विवरण दिया था कि उक्त रकम असमके बाढ़-पीड़ित क्षेत्रोंमें चावल वितरित करने और कताईको उत्तेजन देनेपर किस प्रकार खर्च की जा रही है।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने बताया था कि जो हरड़ भारतसे बाहर भेजी जाती है, वह वहाँ रँग बनानेके काममें लाई जाती है और फिर विदेशी व्यापारी उसे यहाँ भेजकर हमारे ही भेजे गये कच्चे मालके कई गुना दाम वसूल कर लेते हैं।

अधीनतामें काम करनेवाले मजदूर नहीं थे, बल्कि स्वतन्त्र रूपसे हरड़ इकट्ठा करने और बेचनेवाले लोग थे। लेखकने जो प्रश्न उठाया है, वह इससे जुदा है, मगर महत्व-पूर्ण होनेके कारण मैंने उसे ऊपर दे दिया है। जो कच्चा माल खोजकर और इकट्ठा करके हम विदेश भेजते हैं, उससे कुछ व्यक्तियोंको भले ही फायदा होता हो, किन्तु कुल मिलाकर तो उसके कारण देशको लाभके बदले हानि ही होती है। दूसरे शब्दोंमें, देशका धन विदेशोंमें बहा चला जाता है। यह बात अधिकांश रूपमें सच है। लेकिन भारतमें तो ऐसी भी चीजें पैदा होती हैं, जिनका हम कोई उपयोग नहीं कर सकते और जिनके उपयोगके लिए काफी साधन भी हमारे पास नहीं हैं। ऐसी चीजें हम अवश्य ही विदेश भेज सकते हैं और उनका तैयार माल खरीद सकते हैं। भारतमें उत्पन्न होनेवाली तमाम कच्ची चीजोंका पक्का माल स्वदेशमें ही बना सकनेके मोहकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता। इससे नुकसान भी हो सकता है। यह प्रश्न तो हो सकता है कि हरड़ बाहर भेजने योग्य चीज है या नहीं। इस सम्बन्धमें मैं अपनी कोई राय प्रकट नहीं कर सकता। जब तक हम कपास जैसी अत्यन्त महत्वपूर्ण चीजको बाहर भेजनेका अपराध करते रहेंगे, तब तक दूसरी मामूली चीजोंकी बिसात ही क्या है? अगर हम इन छोटी-छोटी चीजोंका ही विचार करने बैठें तो 'निहाई चुराकर सुईका दान' करनेवाली मसल चरितार्थ होगी। अगर हममें थोड़ी भी दूरंदेशी हो तो आज तो हमें अपना सारा समय और सारी चतुराई देहातमें अपने कपासके उपयोगका प्रचार करनेमें ही लगा देनी चाहिए। यदि हम इस एक कामको ठीकसे कर लें तो और दूसरी सब बातें अपने-आप सरल हो जायें। जिस तरह एक जहरीले पेड़की छायाके तले उसकी सन्तति रूपमें अनेक नन्हें-नन्हें जहरीले पौधे हो जाते हैं, और मूल वृक्षका नाश करनेसे उन सबका नाश अपने-आप हो जाता है, उसी तरह कपासके जहरीले व्यापारके सम्बन्धमें भी हमें समझ लेना चाहिए।

इस प्रश्नकी चर्चा करते समय अब तक मैं इंग्लैंडसे आनेवाले कपड़ेका ही जिक्र करता आया हूँ, और बताता रहा हूँ कि उसके कारण हम हर साल साठ करोड़ रुपये दरियामें फेंक देते हैं। साथ ही अगर हम जापान वगैरा देशोंसे आनेवाले कपड़े का भी हिसाब लगायें तो यही रकम एक अरब तक पहुँच जाये। लेकिन बात यहीं समाप्त नहीं होती। इसके सिवा भी इस व्यापारके पीछे हम और भी लाखों रुपये विदेशोंको देते रहते हैं। इस एक अरब रुपयोंके सहारे जो विदेशी एजेंसियाँ, बीमा कम्प-नियाँ वगैरा जीवित हैं, वे भी बहुत-सा धन विदेशोंमें खींचे ले जाती हैं; और वह रकम इस एक अरबसे अतिरिक्त ही होती है।

इस महान् समस्याको हल करनेमें व्यापारी वर्ग ही सबसे बड़ी रुकावट है। व्यापारी लोग न तो विदेशी कपड़ेका धन्धा छोड़नेको तैयार हैं, न उसकी जगह कोई और धन्धा स्वीकार करनेको ही। उलटे इस धन्धेको कायम रखनेके लिए वे कई तरहके उचित-अनुचित प्रयत्न करते हैं। उन्हें अपने कामके समर्थनमें दलीलें तो मिल ही जाती हैं। एक बात और विदेशी कपड़ेकी भाँति ही विचार भी हम विदेशोंसे ही ग्रहण करते हैं। चित्रों, छपाई आदिके लिहाजसे सुन्दर और चतुराईके साथ लिखे गये

अखबार खासकर अंग्रेजोंके ही रहते हैं। इन अखबारनवीसोंके पास धनकी विपुलता रहती है, अतएव उनके लेखोंमें चालाकी तो होती ही है। इसीसे हमें अपने विचार कुछ देरके लिए कमजोर प्रतीत होते हैं और उनके विचारोंसे हम चौंधिया जाते हैं। यदि ये विचार हमारे स्वार्थके पोषक हुए, तब तो फिर कहना ही क्या है? देशकी यह स्थिति दयनीय है। इसे देखते हुए इस समयका सच्चा काम तो विदेशी कपड़े के व्यापारियोंके हृदय-परिवर्तनका है। यानी जिस दिन व्यापारी-वर्ग व्यापारमें परमार्थ को स्थान देगा, देश-हितकी प्रधानता मँजूर करेगा, उसी दिन हमारे स्वराज्यका काम सरलतम हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-८-१९२९

२४१. कातनेवाले बुनें तो?

अगर उक्त अंक[1] ठीक हैं, तो पाठक देखेंगे कि कताई ही मध्य-बिन्दु बन सकती है। जो सुन्दर कातते हैं वे सदा स्वावलम्बी ही हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-८-१९२९

२४२. पत्र: रमणीकलाल मोदीको

आश्रम, साबरमती
१८ अगस्त, १९२९

चि० रमणीकलाल,

छगनलाल तुम्हारे पत्र मुझे पढ़नेको दे दिया करता है। अब तुमने मुझे भी लिखा है। तुम्हारा ध्यान तो लगभग रोज करता हूँ और लिखनेकी इच्छा भी होती है। किन्तु फुरसत नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त अब चारपाई पर पड़ा हूँ। यों, चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आज तबीयत ठीक है। इस समय दो बजे हैं किन्तु छः बजेके बाद फिर दस्त नहीं हुआ। वह महिला मुझे याद है। उसका पत्र सुन्दर है। तुमने ठीक जवाब दे दिया होगा। तुमसे जो कुछ हो, धैर्यपूर्वक करते रहो। थोड़ी-सी क्रियाएँ भी पक्की तरहसे सीख लेना जरूरी हैं। ताराका सुन्दर और लम्बा पत्र

१. पत्र और आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। 'कातनेवाले बुनें भी तो" शीर्षकमें जेठालाल गोविन्दजीके **नवजीवन**, १४-७-१९२९ में प्रकाशित लेखकी भूलें बताते हुए शिवाभाई गोकलभाई पटेलने आँकड़े देते हुए यह दिखाया था कि स्वावलम्बनका अर्थ कताई तककी क्रियाओंमें स्वावलम्बन ही लिया जाना चाहिए।

मुझे मिला था। वह वेड़छीमें है और सन्तुष्ट है। अपना स्वास्थ्य भी सुधारना। अभी कैसा है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ४१४६)की फोटो-नकलसे।

२४३. पत्र : माधवजी वी० ठक्करको

आश्रम, साबरमती
१८ अगस्त, १९२९

भाईश्री माधवजी,

मैं सोच ही रहा था कि तुम्हारा पत्र क्यों नहीं आया। आज मिल गया है। तुम्हें कुछ भी भेजनेकी जरूरत नहीं, इसलिए यह विचार मनसे निकाल देना। शोक न करना। इसके लिए कुटुम्बमें क्लेश बढ़ानेकी जरूरत नहीं है। जो कमजोरी महसूस होती है, धैर्यसे वह भी चली जायेगी। अभी तो तुम्हें अच्छा खासा अनुभव हो गया है। इसलिए क्या खुराक लो यह समझ सकोगे। मैं तो इस समय चारपाईपर पड़ा हूँ; पेचिश हो गई थी। आज कुछ ठीक हुई लग रही है। ऐसे समय कच्ची खुराकके बारेमें कोई सलाह देनेवाला नहीं मिलता। इसलिए फिलहाल मैंने प्रयोग मुल्तवी कर दिया है। ग्यारह लोग अभी तक टिके हुए हैं। अपने स्वास्थ्यकी खबर लिखते रहा करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६७९०)की फोटो-नकलसे।

२४४. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

[१८ अगस्त, १९२९ के पश्चात्][1]

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम दोनोंका छोटा-सा पत्र मिल गया है। ऐसे पत्र भी मिलते रहें तो सन्तुष्ट रहूँ।

मेरे स्वास्थ्यके बारेमें कोई खबर मिले तो घबरानेकी कोई बात मत समझना। अब तो तबीयत सुधर रही है। थोड़ी ताकत आ जाना बाकी है। कच्चे अनाजका प्रयोग छोड़ दिया है। दूध भी लेना शुरू किया है, इसलिए मानता हूँ कि ताकत आनेमें समय नहीं लगेगा।

१. कच्ची खुराक सम्बन्धी प्रयोगके उल्लेखसे। देखिए "बिना राँधा आहार", १८-८-१९२९।

देवदास दिल्लीमें ही है। रामदास बारडोलीमें, नीमू लखतरमें और हरिलाल आजकल राजकोटमें है। इन दिनों उद्योग मन्दिर भरा पड़ा है। बहुत-सी नई बालिकाएँ आई हैं इससे स्त्री-शिक्षा आदिका बहुत बड़ा प्रश्न खड़ा हो गया है। अभी तो बड़ी गंगाबहन सारे कामकी देखभाल करती हैं।

प्रभुदास यहीं है और काका साहबके साथ विद्यापीठमें काम करता है। यह खबर मैंने तुम्हें भी दी थी न?

तुम दोनोंने आखिरकार क्या निर्णय किया है, यह जाननेके लिए उत्सुक हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७४७) की फोटो-नकलसे।

२४५. पत्र: प्रभावतीको

[१९ अगस्त, १९२९ से पूर्व][1]

चि० प्रभावती,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। तुम्हारे पत्रके जवाबमें मैंने तार इसलिए भेजा था कि मेरा पत्र खो गया हो तो तुम्हें धीरज बँध जाये। इच्छा की है तो ससुराल जाने लायक हिम्मत ईश्वर जरूरत देगा। संयुक्त प्रान्तकी मुसाफिरी ११ सितम्बरको यहींसे शुरू होगी। उसी दिनमें आगरा पहुँच जाऊँगा। वहाँसे मेरे साथ रह सको तो जरूर आ जाना। जयप्रकाशके पत्रके उद्धरण मुझे अच्छे लगे हैं। वह बहुत स्वच्छ हृदयका नवयुवक लगता है। खादीके बारेमें वह अपने लिए जो स्वतन्त्रता चाहता है, वह ठीक है। प्रेमसे अथवा तर्कसे उसे इस विषयमें जीत लेना ही काफी होगा।

बहुत-से लोग आ गये, इसलिए पत्र अधूरा रह गया है।

बादमें समय मिलने पर दूसरा पत्र लिखूँगा। आराका पता लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३०९)की फोटो-नकलसे।

१. ससुराल जानेके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र १९ अगस्तको लिखे पत्रसे पूर्व लिखा गया होगा। देखिए "पत्र: प्रभावतीको", १९-८-१९२९।

२४६. तार : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती
१९ अगस्त, १९२९

घनश्यामदास बिड़ला
८, रायल एक्सचेंज, कलकत्ता

कलसे दही आरम्भ । चिन्ता न करें ।

गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७८८३) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२४७. पत्र : प्रभावतीको

मौनवार, १९ अगस्त, १९२९

चि० प्रभावती,

यह पत्र चारपाई पर पड़े-पड़े लिख रहा हूँ। पेचिश हो जानेके कारण कच्चे अनाजका प्रयोग छोड़ दिया है। आज तबीयत ठीक है। थोड़े दिनोंमें पूरी शक्ति आ जायेगी। तनिक भी चिन्ता करनेका कारण नहीं है। यात्राका कार्यक्रम भेज दूंगा। इस समय मेरे पास नहीं है। तुम्हारा पत्र मिल गया है। अब ससुरालसे क्या लिखती हो, इसकी राह देख रहा हूँ। ईश्वर सब ठीक ही करेगा। कोई कठिनाई नहीं हुई होगी और होगी भी तो पार कर लेना।

कल मुझे बकरीके दूधका दही लेना पड़ा। डाक्टरका ख्याल था कि उसके बिना पेचिश दूर नहीं होगी। मुझे उसमें हठ करनेकी बात नहीं दिखाई दी। जयप्रकाशका पत्र तो मैंने फाड़ दिया है। प्रश्नोंको अभीके अभी याद करने लायक समय नहीं है। याद आ गये तो उत्तर लिख दूंगा।

जितना अपने-आप सीख सको, उतना सीखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३५७)की फोटो-नकलसे।

२४८. तार : राजेन्द्रप्रसादको

सोमवार, [१९ अगस्त, १९२९][1]

सतीशचन्द्र मुखर्जीको मेरी ओरसे दो सौ पचास रुपये दे दीजिए।

गांधी

राजेन्द्रप्रसाद
खादी भण्डार
मुजफ्फरपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १५४९८)की फोटो-नकलसे।

२४९. तार : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको[2]

[१९ अगस्त, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

राजा

वल्लभभाईको जानेकी तैयारीकी सलाह दे रहा हूँ। बिना राँधे भोजनका प्रयोग सदाके लिए समाप्त नहीं हो सकता। स्वास्थ्य ठीक ही चल रहा है।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५४७९) की फोटो-नकलसे।

१. तारके मसविदेवाले कागजपर "सोमवारको हुई बातचीत और तत्सम्बन्धी निर्देश" लिखा हुआ है। साबरमती आश्रमके रजिस्टरके अनुसार इसकी तारीख १९ अगस्त, १९२९ है; यह सही प्रतीत होती है; क्योंकि १९ अगस्तको सोमवार था और इसी कागजपर गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखा है: "मुझे असमके बारेमें हरिवल्लभदासकी रिपोर्ट चाहिए।" जो स्पष्ट ही असमकी बाढ़के बारेमें है। देखिए "असमके बाढ़ पीड़ितोंकी सहायता", १८-८-१९२९।

इस तारकी एक प्रति सतीशचन्द्र मुखर्जीको भी भेजी गई थी, क्योंकि ऊपर लिखे तारके मसविदेके नीचे गांधीजीने लिखा है: "सतीशचन्द्र मुखर्जी, द्वारा" और इसके बाद लिखा है: "कृपया इन्हें भेज दें...।"

२. साबरमतीमें १९ अगस्तको प्राप्त राजगोपालाचारीके दिनांक १८ अगस्तके उत्तरमें; तार इस प्रकार था: "विश्वास है कि ऐसे एक प्रश्नपर मतभेद होनेसे कोई हानि नहीं होगी, जिसे कोई भी वास्तविक प्रश्न नहीं मानता। वल्लभभाईकी अध्यक्षता नैतिक-बलकी दृष्टिसे आपकी उपस्थितिके समान ही होगी। प्रार्थना है निराश न करेंगे। बिना राँधे भोजनके प्रयोगको आपने सदाके लिए समाप्त कर ही दिया। आशा है, सूजन कम हो रही होगी"।

२५०. तार : वल्लभभाई पटेलको[1]

[१९ अगस्त, १९२९को या उसके पश्चात्]

राजाजी द्वारा तारसे[2] तुम्हारी अध्यक्षता का आग्रह। जानेकी तैयारी करो। जानेके पूर्व यहाँ आना।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५४७९) की फोटो-नकलसे।

२५१. तार : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, लाहौरको[3]

[१९ अगस्त, १९२९ को अथवा उसके पश्चात्]

कांग्रेस
लाहौर

आपका तार मिला। धन्यवाद, पर सम्मान स्वीकार करनेमें असमर्थ। अपनेको अनुपयुक्त मानता हूँ। शारीरिक शक्ति न होनेके सिवा सभी जानते हैं मैं कांग्रेसियों द्वारा किये गये अनेक कार्यों के साथ अपनी पटरी नहीं बिठा पाता। मेरे अध्यक्ष बननेसे सभीको, मुझे भी, अटपटा लग सकता है। कृपया पण्डित जवाहरलाल नेहरूको चुनें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४८०)की फोटो-नकलसे।

१. इसका मसविदा चक्रवर्ती राजगोपालाचारीसे प्राप्त तारके पीछे ही लिख दिया गया था। देखिए पिछले शीर्षककी पाद-टिप्पणी।

२. देखिए पिछला तार।

३. दिनांक १९ अगस्तके तारके उत्तरमें, जो इस प्रकार था: "कांग्रेस स्वागत-समितिने चवालीसवें अधिवेशनका अध्यक्ष आपको चुना है, ८३ के भारी बहुमतसे। कृपया स्वीकार कीजिए।" (एन० एस० १५४८०)।

२५२. तार: कृष्णगोपाल दत्तको[1]

[१९ अगस्त, १९२९ या उसके पश्चात्]

धन्यवाद। पहलेसे अच्छा हूँ। आंशिक उपवास चल रहा है। फलोंके रसके बाद अब मठा लेता हूँ।

अंग्रेजी (एस० एन० १५४८२)की फोटो-नकलसे।

२५३. तार: जमनालाल बजाजको[2]

[१९ अगस्त, १९२९ अथवा उसके पश्चात्]

जीवराजको अभी कष्ट देना अनावश्यक होगा।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५४८३)की फोटो-नकलसे।

२५४. तार: पं० मदनमोहन मालवीयको[3]

२० अगस्त, १९२९

मालवीयजी,

धन्यवाद। सुधार हो रहा है। रविवारसे दही ले रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४८५)की फोटो-नकलसे।

१. कृष्ण गोपाल दत्तके दिनांक १९ अगस्तके तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था: "गांधीजीके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें तार भेजें। इलाज क्या चल रहा है?"

२. जमनालाल बजाजके १८ अगस्तके तारके उत्तरमें जो १९ अगस्तको मिला था। तार इस प्रकार था: "यदि मनाहीका तार न मिला तो सोमवारको डाक्टर जीवराजके साथ रवाना हो रहा हूँ।"

३. पं० मदनमोहन मालवीयके दिनांक १९ अगस्तके तारके उत्तरमें, जो २० अगस्तको मिला था। तार इस प्रकार था: "बहुत दुःख है। आशा है सुधार हो रहा है। जब डाक्टर सलाह दें बकरीका दूध लेना कृपया पुनः शुरू कर दें। कुछ दिनोंके लिए बादाम छोड़ दें।"

२५५. पत्र : सर के० वी० रेड्डीको[1]

साबरमती
२० अगस्त, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके सुविस्तृत पत्रके लिए मेरा धन्यवाद लीजिए। यात्राओं तथा बादमें बीमारी के कारण उत्तर लिखनेमें विलम्ब हो गया है। ईश्वरकी कृपासे अब स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ।

आशा है कि व्यापारिक परवानोंका मामला सन्तोषपूर्ण ढंगसे तय हो गया होगा, या हो जायेगा। दक्षिण आफ्रिकासे इसकी पूछ-ताछके चिन्तापूर्ण पत्र आते ही रहते हैं। मुझे विवश होकर यही सलाह देनी पड़ती है कि वे आपको ही कष्ट दें और यहाँसे कोई विशेष आशा न रखें। फिर भी जब कभी आप यह समझें कि यहाँ पर जोरदार काम होनेसे आपको सहायता मिलेगी तो कृपया मुझे सूचित कर दें।

शिक्षा-सम्बन्धी मामलोंके बारेमें जो समाचार आपने दिये हैं, अत्यन्त ही उत्साह-वर्धक हैं। शास्त्री-कालेजको[2] मिली सफलता, अन्ततोगत्वा दक्षिणी आफ्रिकामें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ानेमें काफी सहायक होगी।

मैं आपके इस कथनकी सत्यता समझता हूँ कि हमारे देशकी आम जनता उन मामलोंमें जिनमें उससे डटकर प्रयत्न करनेकी आशा की जाती है, उदासीन बनी रहती है। मैं जानता हूँ, साग-सब्जी लेकर फेरी लगानेवालोंके सामने हमारे जमानेमें भी कठिनाइयाँ थीं। वे बड़े सवेरे काफी लम्बी दूरी तय करते थे और अपना माल प्रातः ९ बजे तक बेच लेते थे। मैं अक्सर सोचता था कि यह वे अपने अद्भुत अध्यवसायके बल पर ही कर पाते होंगे। कामना करता हूँ कि उनके लिए किये जानेवाले आपके प्रयत्नोंको सफलता मिले।

मणिलाल और उसकी पत्नीके मामलेमें रुचि लेनेके लिए आपको धन्यवाद। आशा है वे लोग आपको सहयोग देते होंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९२४१) से।
सौजन्य : एस० वी० सुब्बाराव

१. दक्षिण आफ्रिकामें भारत-सरकारके एजेंट जनरल।
२. श्रीनिवास शास्त्रीके नामपर प्रारम्भ महाविद्यालय।

२५६. तार: मोतीलाल नेहरूको

[२० अगस्त, १९२९को या उसके पश्चात्][1]

दोनों तार मिले। कमलाके लिए ईश्वरको धन्यवाद। लाहौरसे मिले[2] कांग्रेस के सन्देशका उत्तर दे दिया कि अध्यक्षता नहीं कर सकता क्योंकि कांग्रेसके नाम पर चल रही बहुत-सी बातोंसे तालमेल नहीं बैठा पाता। जवाहरका नाम[3] पुनः सुझाया है। मेरी अध्यक्षताकी कोई उपयोगिता दिखाई नहीं देती।[4]

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५४९४)की फोटो-नकलसे।

२५७. बिना राँधा आहार[5]

इस सप्ताह आशाप्रद प्रगतिका जिक्र करनेके बजाय मुझे एक दु:खान्त किस्सा कहना पड़ता है। आग पर बिना पकाये हुए आहारका क्षेत्र एकदम नया है। इसमें बड़े प्रयत्न और सावधानीके साथ प्रयोग करने पर भी आखिर मुझे हार खानी पड़ी। पेचिशकी मामूली मगर लगातार शिकायतके कारण मुझे बिछौना पकड़ना पड़ा है, यही नहीं बल्कि राँधे हुए अन्नसे भी एक कदम आगे बढ़कर बकरीका दूध भी लेना पड़ा। मैंने पिछले नवम्बरमें दूध इसी आशासे छोड़ा था कि फिर कभी न लूँगा और डॉ० हरिलाल देसाईने बड़ी चतुराई और धैर्यके साथ इस बातकी कोशिश की थी कि मुझे फिरसे दूध न लेना पड़े। मगर उन्होंने देखा कि बिना दही या मट्ठेके आँतोंसे रिसनेवाली आँव और खूनको बन्द करनेमें वे सर्वथा असमर्थ हैं। अतएव ये पंक्तियाँ लिखते समय तक मैं थोड़ा-थोड़ा करके दो बार दही ले चुका हूँ। इसका

१. मोतीलाल नेहरूके तारोंमें से यह दिनांक २० अगस्तके तारका उत्तर मालूम पड़ता है: तार इस प्रकार था: "आपके द्वारा अध्यक्षता स्वीकार करनेकी जोरदार सिफारिश की। कमलाका स्वास्थ्य सुधारपर है। आज इलाहाबाद लौट रहा हूँ।" (एस० एन० १५४९४)।

२. देखिए "तार: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, लाहौरको", १९ अगस्त, १९२९ को या उसके पश्चात्।

३. २१ अगस्तका जवाहरलाल नेहरूका तार इस प्रकार था: "प्रार्थना है अध्यक्षताके लिए आप मेरे नामपर जोर न दें।" (एस० एन० १५४९६)

४. इसके उत्तरमें मोतीलाल नेहरूने दिनांक २१ अगस्तको यह तार दिया था: "आपका तार मिला। इनकार करनेके अपने कारणपर विचार कीजिए। स्वीकार करने और कांग्रेसको सही ढंगसे पुनर्गठित करनेके पक्षमें प्रबल कारण हैं। इसके सिवा देशकी इच्छाके विरुद्ध उसपर जवाहरको थोपना — जवाहर व देश दोनों ही के प्रति अन्याय" (एस० एन० १५४९७)

५. इसीसे मिलता-जुलता शीर्षक **नवजीवन**, २५-८-१९२९ में भी प्रकाशित हुआ था।

क्या असर होगा, सो तो मैं इस लेखके, जिसे रविवारकी रातको[1] लिख रहा हूँ, अन्तमें लिखूँगा।

मालूम होता है कि जो कच्चा आहार मैं लेता था, उसे बराबर पचा नहीं पाता था। और जिसे मैं साफ दस्त होना समझ रहा था वह भी पेचिशकी पूर्व-भूमिका ही थी। मगर कुल मिलाकर स्वास्थ्य और शक्ति मालूम होती थी इसलिए किसी खराबीके पैदा होनेकी आशंकाका कोई कारण नहीं लग रहा था।

मेरे साथियोंमेंसे भी एक-एक करके कईने प्रयोग छोड़ दिया है। चार साथी अभी टिके हुए हैं, जिनमें एक तो करीब साल-भरसे बिना पकाया हुआ आहार ले रहे हैं, और उनके विचारसे वे अपने प्रयोगमें काफी सफल हुए हैं।

साथियोंके प्रयोग छोड़ देनेका कारण यह है कि उन्हें कमजोरी महसूस हो रही थी और हर सप्ताह उनका वजन गिरता जा रहा था।

इस तरह श्री गोपालरावका यह दावा कि आग पर बिना पकाया हुआ आहार हर प्रकृति और हर उम्रके स्त्री-पुरुषोंके लिए उपयुक्त है, यानी छोटे-बड़े, रोगी और नीरोग सब लोग इससे लाभ उठा सकते हैं, असिद्ध ठहरता है। इस भासमान असफलता से उत्साहियोंको चेत जाना चाहिए और अपने बयानमें बड़ी सावधानी, सचाई और संयमसे काम लेना चाहिए और बड़ी छानबीनके साथ किसी निश्चय पर पहुँचना चाहिए।

मैं असफलताको भासमान इसलिए कहता हूँ कि अग्निसे अछूते आहारमें आज भी मुझे वही विश्वास है, जो आजसे करीब चालीस साल पहले था। नाकामयाबीका कारण तो यह है कि अग्निसे अछूते आहारके प्रयोगकी विधि और क्या-क्या चीज कितनी ली जाये इसका मुझे सच्चा ज्ञान नहीं था। इस प्रयोगके जो दो चार अच्छे परिणाम निकले हैं वे सचमुच आश्चर्यजनक हैं। किसीको कोई बड़ा कष्ट नहीं सहना पड़ा। मुझे भी पेचिशसे कोई कष्ट नहीं हुआ। जिस किसी डाक्टरने मेरे स्वास्थ्यकी जाँच की है, हरएकने स्वास्थ्यको वैसे पहलेसे बेहतर बतलाया है। अपने साथियोंके लिए मेरी रहनुमाई, अन्धेका अन्धोंको राह दिखाने जैसी थी। मुझे इस बातका दुःख है कि इस प्रयोगके लिए कोई ऐसा रहनुमा न मिला, जिससे अग्निसे अछूते आहारकी बारीक जानकारी और एक वैज्ञानिक जैसा धीरज प्राप्त होता।

लेकिन अगर मेरी तन्दुरुस्ती ठीक हो गई और मुझे थोड़ा अवकाश मिला तो मैं इन गलतियोंसे बचनेका लाभ उठा कर फिरसे कच्चे अन्नका प्रयोग शुरू करनेकी आशा रखता हूँ। एक सत्य-शोधकके नाते मैं इस बातकी खोज करना आवश्यक समझता हूँ कि मनुष्यके शरीर, मन और आत्माके स्वस्थ रखने योग्य परिपूर्ण आहार क्या हो सकता है। मेरा विश्वास है कि इस तरहकी खोज अग्निसे अछूते आहारको लेकर ही सफल हो सकती है और मैं यह भी मानता हूँ कि अन्तहीन वनस्पति-जगत्में पूरी तरह दूधका स्थान ले सकनेवाली कोई न कोई वनस्पति अवश्य है। दूधके बारेमें यह तो हरएक डाक्टर स्वीकार करता है कि दूधमें कुछ दोष निहित हैं और कुदरतने

१. १८ अगस्त, १९२९।

भी उसे शिशुओं और पशुओंके बच्चोंके लिए ही बनाया है; प्रौढ़ मनुष्योंके लिए नहीं। अतः जो खोज मेरी दृष्टिमें एक नहीं बल्कि अनेक दृष्टियोंसे इतनी आवश्यक है, उसके लिए किया गया कोई भी त्याग मेरी रायमें महंगा न होना चाहिए। अतएव आज भी मैं इस काममें दिलचस्पी लेनेवाले सज्जनोंकी सलाह और रहनुमाईकी आशा रखता हूँ। जो लोग मेरे जीवनके इस अंशसे सहानुभूति नहीं रखते और मेरे प्रति अपने प्रेमके कारण मेरे लिए चिन्तित हैं, उन्हें मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं ऐसा कोई काम न करूँगा जिससे मेरे दूसरे कामोंको क्षति उठानी पड़े। मेरी अपनी राय तो यह है कि यद्यपि मैं १८ वर्षकी उम्रसे ऐसे प्रयोग करता रहा हूँ, मुझे बहुत कम बार गम्भीर बीमारियोंका शिकार होना पड़ा है और मैं अपने स्वास्थ्यको भी काफी ठीक रख सका हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरे साथ वे भी यह महसूस करें कि जब तक ईश्वर इस दुनियाका कोई काम मुझसे कराना चाहेगा, तब तकके लिए वह क्षतिसे मेरी रक्षा करेगा और मुझे मर्यादासे बाहर जानेसे रोकेगा।

जो लोग प्रयोग कर रहे हैं, वे मेरे रास्तेमें जो क्षणिक रुकावट आ गई है उससे प्रभावित होकर उसे छोड़ न दें। मेरी असफलताके कारणोंसे वे कुछ न कुछ सीख जरूर लें।

१. यह ध्यान रहे कि अगर चबानेमें कसर रह जानेकी थोड़ी भी आशंका हो तो खुराकको और बारीक चबाकर मुँहमें घुल जाने दें, वैसे ही न निगल जायें।

२. अगर मुँहमें कुछ ऐसा अंश रह जाये जो घुल नहीं सकता, तो उसे थूक दें।

३. अनाज और दालका बहुत थोड़ा प्रयोग करें।

४. हरी भाजी या शाक पहले खूब धो लें और बादमें उसे ऊपर-ऊपरसे छील कर खाएँ। इसका परिमाण भी थोड़ा ही रहे तो अच्छा।

५. आरम्भमें तो आहारकी मुख्य चीजोंमें ताजे और सूखे फल (भिगोये हुए) तथा गिरीदार फल वगैरा ही होने चाहिए।

६. जब तक कच्चा आहार करते-करते काफी लम्बा समय निर्विघ्न न बीत जाये तब तक दूध न छोड़ना ही अच्छा है। मैंने इस सम्बन्धमें जितना साहित्य पढ़ा है, सबमें फल, खोपरा आदि गिरीदार फल और थोड़ी हरी भाजी पर ही जोर दिया है और उसीको सम्पूर्ण खुराक कहा है।

(आज मंगलवारके सवेरे मैं कह सकता हूँ कि मेरे स्वास्थ्य पर मट्ठेका असर ठीक हो रहा है।)

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-८-१९२९

२५८. उपयुक्त चरखेकी खोजमें

श्री हीरालाल अमृतलाल शाहने बहुत सोच-समझकर [चरखेके नमूनेसे सम्बन्धित] पुर्जोंके कुछ माप इत्यादि भेजे हैं। इन निदर्शनोंको[1] प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मैं चाहता हूँ कि और भी अनेक नौजवान चरखेमें इतनी दिलचस्पी दिखायें जितनी श्री शाहने ली है। व्यस्तता और व्यापार भी चरखेकी गतिका निकटसे सावधानीके साथ निरीक्षण-अध्ययन करनेमें इनके आड़े नहीं आया। अपने नमूनेके सम्बन्धमें उन्होंने एक चित्र भी भेजा है जिसे प्रकाशित करनेमें मैं असमर्थ हूँ — कमसे-कम इस सप्ताह। यह लेख मुझे 'यंग इंडिया' के पिछले अंककी सामग्री छपनेके लिए भेजते समय ही मिला था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-८-१९२९

२५९. खतरनाक संवाददाता

अभी हाल ही में प्रकाशित यह समाचार कि मेरा वजन घटकर ८० पौंड रह गया है और मुझे चक्कर भी आ गया था, बिल्कुल निराधार है। लेकिन इस समाचारसे सैकड़ों शुभचिन्तक डर गये। देशके कोने-कोनेसे, यहाँ तक कि बर्मासे भी लोगोंने तार भेजकर चिन्तातुर पूछताछ की है। अनेक बार यह देखा गया है कि मेरे सम्बन्धमें झूठी और खतरनाक खबरें छाप कर प्रेस एजेंसियोंने कानूनी कार्रवाईके योग्य काम किया है। ऐसे मौकों पर अक्सर असहयोगी या शान्तिप्रिय होते हुए भी क्षणभरके लिए, मेरा मन उनके खिलाफ गुस्सेसे भर गया है। झूठी खबरें फैलाकर भोली-भाली जनताको आघात पहुँचाना सरासर क्रूरता है। यदि कोई सवाल हजारों स्त्री-पुरुषोंसे सम्बन्ध रखता हो, तो ऐसे मामलोंमें केवल सदिच्छा और अज्ञान किसीकी ढाल नहीं बन सकते। संवाददाताओंका यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वे संवादकी सचाईके बारेमें खूब सतर्कतासे काम लें। मेरे हालके मामलेमें तो मेरी तबीयतकी ठीक हालतका पता उद्योग-मन्दिरके किसी भी जिम्मेदार व्यक्तिसे या डाक्टर हरिलाल देसाईसे सहज ही लग सकता था और इस तरह लोग व्यर्थकी चिन्तासे बचाये जा सकते थे। मैं प्रेस-एजेंसियोंको सलाह देता हूँ कि वे अपने संवाददाताओंको सावधान कर दें कि मैंने ऊपर जिस तरहके अपराधोंका जिक्र किया है उनके दुहराये जाने पर वे या तो दण्डित किये जायेंगे या फिर उन्हें हटा ही दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-८-१९२९

१. यहाँ नहीं दिये गये हैं।

२६०. कौनसा मार्ग श्रेष्ठ है?

अमेरिकासे एक मित्रने वहाँके प्रसिद्ध मासिक पत्र 'वर्ल्ड टुमारो' के अगस्त १९२८ के अंकमेंसे जॉन नेविनके 'शस्त्र त्याग और राष्ट्रीय संरक्षण' (पैसिफिस्म ऐंड नेशनल सिक्यूरिटी) शीर्षक एक शिक्षाप्रद और मार्मिक लेखकी कतरन भेजी है। वह प्रत्येक देशप्रेमीके लिए पठनीय है। नीचे लिखे आरम्भिक अनुच्छेदोंसे पाठकोंको इस बातका अनुमान हो जायेगा कि लेखक हमें किस दिशामें ले जाना चाहता है:[1]

> **शान्तिवादके सम्बन्धमें सबसे पहले यह सवाल उठता है कि इस बीसवीं सदीमें विकसित शस्त्रोंको देखते हुए क्या सचमुच फौजी साधनों द्वारा राष्ट्रीय संरक्षण हो सकता है? सम्भव है कि भूतकालमें फौजी साधनोंकी मददसे राष्ट्रीय संरक्षण हो सका होगा, मगर आज तो यह उपाय एकदम पुराना पड़ गया है। और इसपर निर्भर रहना आफत मोल लेना है। क्योंकि आज हम देख सकते हैं कि जहाँ एक ओर फौजी सामानका खर्च दिन-दिन बढ़ता जाता है, वहाँ दूसरी ओर संरक्षण सम्बन्धी उसकी उपयोगिता भी दिन-ब-दिन घटती जाती है; और आगामी दशकोंमें यह बात और भी अधिक सही होती चली जायेगी।**
>
> **. . . युनाइटेड स्टेट्स अपनी फौज और नौसेना पर चौबीस घंटोंमें लाख डालर स्वाहा करता रहता है। . . .**
>
> **मगर इसकी वजहसे संसारको कितनी ज्यादा कुर्बानी करनी पड़ती है, उसका अंदाजा अकेले डालरोंके हिसाबसे नहीं लगाया जा सकता। . . . मगर वर्तमान युद्ध-विशारद राष्ट्रकी सारी जनताको युद्धके लिए भर्ती करनेकी योजना बनाते हैं: . . . शान्तिके दिनोंमें भी पाठशालाओंमें फौजी तालीमको अनिवार्य बना देने, राष्ट्रीय तालीमपर फौजी विभागकी सूक्ष्म देखरेख और प्रभुता रहने, आदि कारणोंसे देशके नौजवानोंकी मनोवृत्ति भी दिन-दिन ज्यादातर लड़ाई-पसन्द होती जाती है। यही नहीं बल्कि डाकघर, समाचारपत्र, रेडियो, सिनेमा, कलाकार और वैज्ञानिक आदि भी धीरे-धीरे इसकी छायामें आते चले जा रहे हैं। . . . . इसकी वजहसे मानव-जातिकी स्वतन्त्रताको, वाक्‌ स्वातन्त्र्य और विचार-स्वातन्त्र्यके जन्मसिद्ध हकको और सामाजिक उन्नतिको सख्त आघात पहुँचेगा। अर्थात् फौजी साधनों द्वारा देशके संरक्षणके लिए जो कीमत चुकानी पड़ती है, उसमें इसकी भी गिनती होनी चाहिए। . . .**

१. अनुच्छेद अंशतः दिये जा रहे हैं।

लेकिन इससे भी अधिक चिन्ता की बात तो यह है कि फौजी साधन पर बराबर अनन्त धन व्यय करते हुए भी सुरक्षाकी सम्भावना नहीं बढ़ती। सम्भव है, दस-बीस साल तक जैसे-तैसे यह हालत निभ जाये, मगर आखिरकार तो इस नीतिके कारण निःसन्देह संसार पतनके गड्ढेमें गिर कर रहेगा। कुछ समय पहले सेनेटर बोराने 'तैयारीका अर्थ' शीर्षकने लिखते हुए संसारकी जनता पर दिन पर दिन बढ़नेवाले कर और सरकारी कर्जके बढ़ते हुए बोझकी तरफ खासतौर पर ध्यान खींचा था।

आजकल लोग सहज ही यह मान लेते हैं कि जो बात अमेरिका और इंग्लैंड कर रहे हैं, वह हमारे लिए भी उचित होनी चाहिए, मगर उक्त लेखकने अमेरिकी फौजके जो आँकड़े दिये हैं, उनका विचार करनेसे रोमांच हो आता है। आजकलकी युद्ध कला केवल घातक शस्त्रोंको खोजने और बनानेकी कला-भर होकर रह गई है। अब वह व्यक्तिगत वीरता, शौर्य या सहनशक्तिसे सम्बन्धित नहीं रही। हजारों स्त्री-पुरुष और बालकोंको निमिष-मात्रमें बटन दबाकर या ऊपरसे जहर बरसाकर नाम-शेष कर दिया जा सकता है।

क्या हम भी अपने संरक्षणके लिए इसी पद्धतिका अनुकरण करना चाहते हैं? हमें इसपर विचार करना होगा कि क्या हमारे पास इस संरक्षणके लिए काफी आर्थिक साधन या शक्ति है? हम दिन-दिन बढ़ते जानेवाले फौजी खर्चकी शिकायत करते हैं, मगर यदि हम इंग्लैंड या अमेरिकाकी नकल करने लगेंगे तो हमें अपना फौजी खर्च आजसे कई गुना बढ़ाना पड़ेगा।

आलोचक शायद पूछेंगे कि अगर यह आवश्यक हो, तो यह खर्च क्यों न किया जाये? लेकिन प्रश्न यह है कि वह करने योग्य भी है या नहीं। उक्त लेखक जोरदार शब्दोंमें जवाब देते हुए कहते हैं: "यह किसी भी राष्ट्रके लिए करणीय नहीं है।" यदि सरकार अपनी तथाकथित नौसेना और अन्य सेनाको न बढ़ाना चाहे तो मैं इस बातपर सरकारका विरोध नहीं करूँगा। जनतासे बलात् अहिंसाका पालन कराना सम्भव नहीं है। हरएक देशकी रियायाको स्वेच्छापूर्वक विकास करनेकी पूरी-पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। हमें यहाँ इस बात पर विचार करना है कि क्या हम पाश्चात्य देशोंकी नकल करना चाहते हैं, और फिर वे आज जिस नरकमेंसे गुजर रहे हैं, क्या हम भी उसी रास्ते गुजर कर भविष्यमें कभी वापस लौट सकेंगे? या हम अपने सनातन शान्तिपथ पर दृढ़ रहकर ही स्वराज्य पाना चाहते और दुनियाके लिए एक नया मार्ग खोज देना चाहते हैं?

शस्त्र-त्यागकी इस नीतिमें भीरुताको कहीं कोई भी स्थान नहीं है। देशकी रक्षा करने या उसे स्वतन्त्र करनेके लिए या तो हम अपना शस्त्रबल बढ़ायें, उसे बढ़ाते हुए हम अपने दुःख सहनेकी ताकत भी बढ़ायें या हम केवल अपनी सहिष्णुता को बढ़ाते हुए इसे प्राप्त करें। इन दोनों तरीकोंमें वीरताकी समान रूपसे आवश्यकता है; यही नहीं बल्कि दूसरेमें व्यक्तिगत वीरताके लिए जितनी गुंजाइश है, पहलेमें

उतनी नहीं। दूसरे पथके पथिक बननेसे भी थोड़ी-बहुत हिंसाका डर तो रहता ही है, मगर यह हिंसा मर्यादित होगी और धीरे-धीरे इसका परिमाण घटता जायेगा।

आजकल हमारा राष्ट्रीय ध्येय अहिंसाका ध्येय है। मगर मन और वचनसे तो हम हिंसाकी ही ओर झुकते दिखते हैं। वातावरणमें अधैर्य भरा हुआ है; और हमारे हिंसामें प्रवृत्त न होनेका एकमात्र कारण हमारी कमजोरी ही है। ज्ञानपूर्वक और शक्तिका भान होते हुए भी शस्त्र-त्याग करनेमें ही सच्ची अहिंसा है। मगर इसके लिए कल्पना-शक्ति और जगतकी प्रगतिके रुखको पहचाननेकी शक्ति होनी चाहिए। आज हम पाश्चात्य देशोंकी बाहरी तड़क-भड़कसे चौंधिया गये हैं, और उनकी उन्मत्त प्रवृत्तियोंको भी प्रगतिका लक्षण मान बैठते हैं, फलस्वरूप हम यह नहीं देख पाते कि उनकी यह प्रगति ही उन्हें विनाशकी ओर ले जा रही है। हमें समझ लेना चाहिए कि पाश्चात्य लोगोंके साधनों द्वारा पश्चिमी देशोंकी स्पर्धामें उतरना अपने हाथों अपना सर्वनाश करना है। इसके विपरीत अगर हम यह समझ सकें कि इस युगमें भी जगत नैतिक बल पर ही टिका हुआ है, तो अहिंसाकी असीम शक्तिमें हम अडिग श्रद्धा रख सकेंगे और उसे पानेका प्रयत्न कर सकेंगे। सभी इस बातको मंजूर करते हैं कि अगर सन् १९२२में हम अन्ततक शान्तिपूर्ण वातावरण बनाये रखनेमें सफल होते तो हम अपने ध्येयको सम्पूर्ण सिद्ध कर सकते। फिर भी हम इस बातकी जीती-जागती मिसाल तो पेश कर ही पाये थे कि यत्किंचित् अहिंसा भी कितनी असरकारक हो सकती है। उन दिनों हमने स्वतन्त्रताका जो सार समझा और पाया वह आज भी कायम है। सत्याग्रह युगके पहलेकी भीरुता आज सदाके लिए निःशेष हो चुकी है। इसलिए मेरी समझमें अहिंसा बल पानेके लिए हमें धैर्यसे काम लेना होगा, समयकी प्रतीक्षा करनी होगी। यानी, अगर सचमुच ही हम अपना रक्षण करना चाहते हों और संसारकी प्रगतिमें स्वयं भी हाथ बँटानेकी इच्छा रखते हों, तो उसके लिए तलवार-त्याग — पशुबल-त्याग — के सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-८-१९२९

२६१. टिप्पणियाँ

एक समादरणीय त्याग

स्वर्गीय लाला लाजपतराय द्वारा संस्थापित लोक-सेवक-समितिसे पूरी तरह सम्बद्ध हो जानेके लिए श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डनने एक प्रसिद्ध बैंकके मैनेजर-पदसे इस्तीफा दे दिया है; वैसे यह पद आर्थिक दृष्टिसे बहुत ही लाभप्रद था। लालाजीने अपनी समितिके लिए बड़े-बड़े नियम बनाये थे। उनके अनुसार समितिका कोई भी आजीवन सदस्य ज्यादा आय देनेवाला काम नहीं कर सकता। श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डन स्वर्गीय लालाजीको बड़े प्रिय थे, अतः टण्डनजीका यह त्याग उन दिवंगत देशनेताके प्रति उनकी कर्त्तव्य-बुद्धि और अनुसरणका बाह्य चिन्ह-मात्र है। हमारी दृष्टिमें जो काम बड़े साहसका है, श्री टण्डनजीकी निगाहमें वह कुछ भी नहीं। ऐसे त्याग उनके जीवनके अंग बन गये हैं। पिछले कई बरसोंसे पैसेके लिए पैसा कमानेके सिद्धान्त परसे उनकी श्रद्धा उठ गई है। वे बड़ी तेजीसे — लगातार अपने जीवनको सादा बनाते रहे हैं। लेकिन कौटुम्बिक दायित्व तो उनपर था ही; और उससे वे तबतक इनकार नहीं कर सकते थे जबतक कि अपने उच्च जीवन और विकासमें उन कुटुम्बियोंको भी साथ न ले लेते, जिनकी उनपर जिम्मेदारी है। अब यह स्पष्ट है कि उनके मार्गकी ये कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं, उन्होंने इनपर विजय पा ली है, और अब हमेशाके लिए वे नये क्षेत्रमें डट सकते हैं। ऐसे ही लोगोंसे राष्ट्रोंका निर्माण होता है। मैं लालाजीकी समितिको इस अवसर पर बधाई देता हूँ। लेकिन क्या जनता इस त्यागकी पात्र है? लालाजी स्मारकके लिए जो रकम माँगी गई थी वह अब तक पूरी-पूरी इकट्ठी नहीं हुई। खेद है कि एक भारतीय नररत्नके स्मारकके लिए माँगी गई पाँच लाखकी नगण्य-सी राशि भी अब तक एकत्र न हो पाई। क्या मैं आशा करूँ कि टण्डनजीका त्याग आलसियोंको कर्मण्य बनायेगा और देश उसका समुचित उत्तर देगा।

सिन्धका जल-प्रलय,

मैं जानता था कि सिन्धमें दूसरी बार भयंकर बाढ़ आ चुकी है, मगर फिर भी जानबूझकर अब तक चुप था। अबकी बारकी बाढ़ने पहलेसे कहीं अधिक सर्वनाश किया है। मगर 'अतिपरिचयात्' अवज्ञा हो रही है। लेकिन इससे बाढ़ पीड़ितोंके कष्ट कुछ कम नहीं हुए। बाढ़के कारण जो भीषण हानि हुई है उसका कुछ तफसीलवार ब्यौरा आचार्य मलकानीने मेरे पास भेजा है। ताजी खबर यह है कि बाढ़के बाद पीड़ित प्रदेशमें हैजा फूट पड़ा है। जो दाता असम-बाढ़-पीड़ितोंकी सहायताके लिए दान भेज रहे हैं उन्हें मेरी सलाह है कि वे दोनों जगहोंके लिए अपनी रकमें एक साथ भेजें और उनकी व्यवस्थाका भार मेरी व्यवहार-कुशलता पर छोड़ दें। अबसे आगे जो रकमें किसी खास प्रदेशके नामसे न भेजी जायेंगी, उन्हें मैं दोनों बाढ़-

पीड़ित प्रदेशोंके लिए भेजी गई समझूंगा। सिन्धके लिए जो कुछ मिला है, उसके बँटवारेकी व्यवस्था आचार्य मलकानीके हाथों रहेगी। पिछले गुजरात-जलप्रलय-कोषसे १५,०००) सरदार वल्लभभाई सिन्धके लिए भेज ही चुके हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-८-१९२९

२६२. पुरानी कहानी

सम्पादक, '**यंग इंडिया**,'

महोदय,

अपने तारीख २५ के अंकमें आपने राजस्व-अधिकारियोंके दमन-चक्रकी चर्चा की है और चालू वर्तमान व्यवस्थाके कारण सरकारके सिर दोष मढ़ते हुए आपने यह स्वीकार किया है कि किसानोंपर 'उनके अपने लोग' ही अत्याचार कर रहे हैं; अपने अग्र-लेखमें आपने लिखा है कि जबतक वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन नहीं किया जाता तबतक "शासनकी बागडोर भारतीय अधिकारियोंके हाथोंमें आ जानेपर भी ऐसी ही तीव्रतासे जनताका दमन होता रहेगा।" अस्तु, लगता है कि अब दो बातोंकी आवश्यकता है। पहली आवश्यकता है कि किसानोंकी स्थिति और उनके हितोंपर और ज्यादा बारीकीसे विचार करनेकी गुंजाइशके लिए भू-राजस्व-नियमोंमें उचित संशोधन हो; यह प्रचार-आन्दोलन छेड़कर और विधान-परिषदोंमें अपने प्रतिनिधियोंके जरिए आवाज उठाकर हासिल किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए। दूसरी आवश्यकता उन लोगोंके हृदय-परिवर्तन की है जो मूलतः किसानोंमेंसे ही आये हैं, पर जो बहुधा स्वार्थवश अपनी छोटी-मोटी सत्ताका प्रयोग किसानोंपर अत्याचार करनेके लिए करते हैं। सरकारकी सद्बुद्धि जगानेके प्रयासोंमें 'हृदय परिवर्तन' शब्दका प्रयोग ज्यादा ठीक समझा जाता है। किन्तु आशंका तो इसी बातकी है कि यह दूसरा तरीका कहीं अधिक कठिन सिद्ध होगा। . . .

महोदय, क्या आप इसमें एक सुधारके लिए प्रयत्न करेंगे। रैयतवारी पद्धतिके अन्तर्गत आनेवाले किसानोंका एक संघ बनायें और उसकी गतिविधियाँ रैयतको उनके अधिकारोंकी जानकारी देने तक सीमित रखें। इसके बाद उनके हितोंके लिए विधान-परिषदोंमें आवाज उठायें और नियमोंमें संशोधनके लिए प्रयत्न करें और उन्हें शराब पीनेकी ओरसे विरत करें। नशाबन्दीका यह काम उस सरकारके विरुद्ध एक अस्त्रकी तरह प्रयुक्त मत कीजिए जिसे

कुछ लोग 'शैतानकी सरकार' कहनेमें सुख अनुभव करते हैं। इस कामको गरीब परन्तु स्नेहके योग्य, जी-तोड़ मेहनत करनेवाले किसानोंके सामाजिक उत्थानके एक साधनके रूपमें लीजिए।

जे अकूज़े[1]

३० जुलाई, १९२९

यह पत्र[2] एक सुप्रसिद्ध आंग्ल-भारतीय अधिवासीका है। उनका आरोप ब्रिटिश शासनके बराबर पुराना है। आरोप लगानेवाले सज्जन भूल जाते हैं कि बुराई तो व्यवस्थामें ही है। अब व्यवस्था पगड़ी बाँधे है या टोप लगाये है—इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यह नहीं भूलना चाहिए कि गाँवके पटेलसे लेकर डिप्टी कमिश्नर तक सबके सब एक ही प्रकारकी परम्पराओंमें पले हैं, और अक्सर देखा गया है कि गुरु गुड़ रह गया है और चेला शक्कर हो गया है। अत्याचारीके आदेशों पर अमल करनेवाले बहुधा अमलमें अत्याचारीके मनसूबोंको भी मात कर देते हैं। जब तक व्यवस्था पर उच्च पदाधिकारियोंका बोझ लदा रहेगा और जब तक शिमला या व्हाइट हालमें बैठे गौरांग महाप्रभुओंकी निरंकुश इच्छाके आगे बड़ेसे-बड़ा भारतीय अधिकारी दुम हिलाता रहेगा, तब तक 'जे अकूज़े' द्वारा दर्शायी बुराइयाँ बनी ही रहेंगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-८-१९२९

२६३. दुःखप्रद कहानी

रामगढ़ (जयपुर)से एक सज्जन लिखते हैं:[3]

ऐसी दारुण घटनाएँ भारतवर्षमें बहुत सुन पड़ती हैं। और विशषता यह है कि ऐसी घटनाएँ धनिक जातियोंमें ही अधिक होती हैं। क्योंकि धनिक समाजमें वृद्ध लोगोंको भी शादी करनेकी इच्छा होती है और जो लड़की विधवा हो जाती है उसे विधवा बनाये रखनेमें ही वे लोग बड़प्पन मानते हैं। धर्मकी तो यहाँ बात ही नहीं है। इसी कारण ऐसी घटनाएँ मारवाड़ी, भाटिया, इत्यादि वर्गोंमें अधिक होती रहती हैं। इस व्याधिकी एक ही औषधि है। प्रत्येक जातिमें इन बुराइयोंके खिलाफ विनयपूर्ण आन्दोलन शुरू किये जायें और उनके द्वारा सारी जातिमें जागृति फैलाई जाये। जब समाज जागृत हो जायेगा तब न कोई वृद्ध पुरुष विवाह करनेकी धृष्टता करेगा और न कोई बालिका विधवा मानी जायेगी। साथ ही जब एक बार लोकमत तैयार हो

१. शाब्दिक अर्थ, "मैं आरोप लगाता हूँ"।

२. कुछ उद्धरण ही दिये जा रहे हैं।

३. यहां नहीं दिया गया है। इसमें १२ वर्षकी किसी बालिकाके विवाहके दो माह बाद ही विधवा हो जानेकी दारुण घटनाका उल्लेख करके उपाय पूछा था।

जायेगा, तब दैवको अथवा पूर्वजन्मके पापोंके फलको दोष देकर अथवा उन्हें निमित्त बना कर कोई बाल-वैधव्यका समर्थन नहीं करेगा। जब एक नवयुवक विधुर हो जाता है, तब उसे पूर्व-जन्मके दोषके बहाने विवाह करनेसे कोई नहीं रोकता। इसलिए सुधारकोंको मेरी सलाह है कि वे निराश न हों, बल्कि अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहें और आत्मविश्वास रख कर आगे बढ़ते चले जायें। हाँ, यह बात अवश्य याद रखनी चाहिए कि अकेले व्याख्यानों द्वारा यह काम नहीं हो सकता। सत्याग्रह तक पहुँचनेकी आवश्यकता होगी। सत्याग्रहकी मर्यादा पिछले अंकोंमें बताई गई है। सत्याग्रह-रूपी सूर्यके सामने बाल वैधव्य रूपी यह अँधेरा कभी ठहर नहीं सकेगा। क्योंकि सत्याग्रहीके शब्दकोशमें निष्फलता शब्द ही नहीं है।

हिन्दी नवजीवन, २२-८-१९२९

२६४. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

२२ अगस्त, १९२९

प्रिय जवाहरलाल,

कमलाके ऑपरेशनकी बातसे खुशी हुई। आशा है, अब वह बिलकुल अच्छी हो जायेगी।

भरोसा रखो मैं तुम्हारा नाम देश पर अनुचित तरीकेसे थोपनेकी कोशिश नहीं करूँगा। लाहौरमें समितिके तार[1] के उत्तरमें मुझे अपनी राय व्यक्त करना जरूरी मालूम पड़ा। तुम्हारे आत्म-सम्मानके लिए इतना काफी है कि तुम स्वयं ताज अपने सिर पर नहीं रखना चाहते। कोई भी बने, इस बार उसे अटपटा लगेगा ही। मैंने तुम्हारे नाम पर केवल एक सिद्धान्तके नाते आग्रह किया है। यदि देश उस सिद्धान्त पर दृढ़तासे आग्रह करनेके लिए तैयार न हो, तो हम और रुक सकते हैं।

यदि पतवार तुम्हारे हाथ नहीं देनी है, तो इस कठिन परिस्थितिमें मुझे दूसरा रास्ता यही सूझ पड़ता है कि [तुम्हारे] पिताजीको ही फिरसे चुना जाये, या फिर डा० अन्सारीको चुना जाये। तुमको कोई दूसरा नाम सूझता है?

मैं संयुक्त प्रान्तके दौरेकी तैयारी कर रहा हूँ। शरीरकी खोई हुई शक्ति दिन-दिन लौट रही है। अपने प्रयोगके लिए मेरे मनमें कोई दुःख नहीं है। मैंने उससे बहुत-कुछ सीखा है।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू कागजात, १९२९।
सौजन्य – नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. देखिए पृष्ठ ३४३।

२६५. पत्र : वसुमती पण्डितको

२२ अगस्त, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला है। बीमारीकी देखभालमें [लिखनेका] समय नहीं मिलता, इसलिए [तुम्हारे बारेमें] विचार करके ही सन्तोष कर लेता हूँ। शरीरमें ताकत आ रही है। दही काफी लेता हूँ।

वहाँ क्या मनको शान्ति मिलती है? स्वास्थ्य कैसा रहता है? शौच ठीक होता है? भूख लगती है? कमजोरी तो नहीं लगती? घूमने जाती हो?

सूरजबहन आज ही बम्बईसे आई है। इस समय तो और लोगोंकी काफी भीड़ है।

तुमसे ब्यौरेवार पत्रकी आशा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२६१) से तथा (सी० डब्ल्यू० ५०८) से भी।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

२६६. तार : राजा कालाकांकरको[1]

[२२ अगस्त, १९२९ या उसके पश्चात्]

तारके लिए धन्यवाद। स्वास्थ्य सन्तोषप्रद। सुधार हो रहा है।

अंग्रेजी (एस० एन० १५५००)की फोटो-नकलसे।

२६७. पत्र : हॉरेस एलेक्जैंडरको

२३ अगस्त, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।

अफीम और शराबके विरुद्ध जिहाद बोलनेके मामलेमें मुझे इंडिया आफिससे आम तौर पर अड़ंगोंके सिवा दूसरी उम्मीद नहीं है। इसलिए आपने जो उत्तर भेजा है, उसपर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।

१. राजा कालाकांकरके दिनांक २२ अगस्तके तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था : "कुशल जाननेको उत्सुक। स्वास्थ्य सम्बन्धी तार दें।"

जब कभी भी श्री सिल्कॉक आयेंगे, निःसन्देह उनका हार्दिक स्वागत होगा। नौजवान दोस्तके बारेमें मैं पहले ही लिख चुका हूँ। वे चाहें तो यहाँ आ जायें! अनुकूल पड़े तो वे रह सकते हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (जी० एन० १४०८)की फोटो-नकलसे।

२६८. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२३ अगस्त, १९२९

भाई घनश्यामदास,

आपका खत मीला है। आप मेरी चिंता छोड़ें। खाते हुए भी तो आदमी बीमार होता है तो मैं यदि सत्यकी खोजमें बीमार भी हो जाऊं तो क्या हुआ? आज तो काफी दही लेता हुँ। इतना आपको कह दुं की दूध दही भी एक हद तक ही चलते हैं। दूध दही मनुष्यका स्वाभाविक खोराक कभी नहिं है। जो दलील दूधके लीये आप देते हैं वही बीफ-टीके लीये और शराबके लीये सुनी है क्योंकी सबमेंसे कुछ न कुछ शारीरिक लाभ मुद्दतके लीये मीलती हैं। परंतु शारिरिक लाभ सर्वस्व [नहीं है।] कच्चे अनाजसे विषय-शांतिका जो अनुभव इतने लोगोंका हुआ है वह मूलका अनुभव नहिं था। जब मैं फल पर चार बरस तक रहा था तब रोज ४० मइल तक चलता था। और तब भी मुझको यही शांतिका अनुभव था। परंतु इस चीजको ज्यादा दोहराना नहिं चाहता हुं। मेरे प्रयोगमें केवल शारीरिक दृष्टि नहिं है। मैं जल्दीसे कच्चे अनाज पर नहिं जाउंगा, जल्दीसे दूध नहिं छोड़ुंगा। अब तो बहोत दाक्तर इस प्रयोगमें रस ले रहे हैं। बहोतोंने साहित्य भेजा है। मैं प्रयोग करूँगा तो हरिभाई दाक्तरके निरोक्षणके नीचे होगा।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१७५से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला।

२६९. तार: संयुक्त प्रान्त मजदूर संघके कानपुर अधिवेशनकी स्वागत-समितिके मन्त्रीको

[२३ अगस्त, १९२९को या उसके पश्चात्][1]

कृपया पण्डित जवाहरलालसे सलाह करें। कार्यक्रम उनके ही हाथमें है।

अंग्रेजी (एस० एन० १५५०३)की फोटो-नकलसे।

२७०. तार: सतीशचन्द्र दासगुप्तको[2]

[२४ अगस्त, १९२९के पूर्व]

सतीशबाबू
खादी-प्रतिष्ठान
सोदपुर

आपका विस्मयजनक पत्र[3]। हेमप्रभादेवीके पत्रको स्वप्नमें भी कामकाजी पत्र नहीं सोचा था। कृष्णदासका सुझाव शरारत-भरा है। जानना चाहूँगा निरंजनने क्या कहा था। तुम्हें किसीकी बातसे ऐसा विचलित नहीं हो जाना चाहिए। दूसरोंकी बातों पर कान मत दो, विशेषकर जब सम्बन्धित व्यक्ति जीवित हैं।

बापू

तीनों तार एक साथ भेजे जायेंगे। तार तैयार करनेके बाद मुझे दिखा लें।

अंग्रेजी (एस० एन० १५१९४-बी)की माइक्रोफिल्मसे।

१. उक्त समितिके मंत्रीके द्वारा दिये गये तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था: "संयुक्त प्रान्त मजदूर संघके कानपुर अधिवेशनकी स्वागत-समितिका अनुरोध। आप १४ तथा १५ सितम्बरको अधिवेशनमें भाग लें और श्रमिकोंकी ओरसे छोटी-सी थैली स्वीकार करें। स्वीकृतिका तार दें।"

२. लगता है कि यह तार और इसके बादका पत्र दोनों ही गांधीजी द्वारा सतीशचन्द्रदास गुप्तको दिनांक २४ अगस्तको पत्र लिखनेके पूर्व, एक ही दिन भेजे गये थे।

३. देखिए परिशिष्ट २।

२७१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

[२४ अगस्त १९२९के पूर्व][1]

प्रिय सतीशबाबू,

मैंने तुम्हारे आश्चर्यजनक पत्रके बारेमें तार भेजा है।[2]

हेमप्रभादेवीके किसी कामकाजी पत्रके बारेमें मैं कुछ नहीं जानता। यदि उन्होंने कोई कामकाजी पत्र लिखा भी है तो उसे कामकाजी माननेमें मुझे काफी समय लगेगा। अब तक तो यही रहा है कि उनके सभी पत्र स्नेहसे सने हुए ही रहे हैं; कामकाजी कदापि नहीं। तुम्हारे कामकाजी पत्र तक मेरे लेखे प्रेमपत्र ही रहे हैं। तुम्हारा मेरा सम्बन्ध मैं ऐसा ही समझता रहा हूँ। तुम मुझे गलत समझ सकते हो — ऐसा तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था। कृष्णदास और अन्य लोगोंके सुझाव भी मैं इतने ही शरारत-भरे मानता हूँ। मेरी समझके बाहर है कि उसने ये निष्कर्ष कैसे निकाले। उसका बरताव समझमें न आने योग्य है। बिना मुझसे पूछे-जाँचे मेरे कार्योंके बारेमें उसकी रायको तुम्हारा महत्व देना मेरे लिए पीड़ाजनक है। मैं जब तक तुमसे यह मालूम न कर लूँ कि उसने क्या कहा है, निरंजनके बारेमें कुछ नहीं कह सकता। तुम्हें मेरी इस बात पर भरोसा कर लेना चाहिए कि मैंने रामविनोदके बारेमें तुम्हारे निर्णयसे सम्बन्धित ऐसी कोई बात उनसे नहीं कही जो तुमसे न कही हो।

यदि तुम्हें अब भी सन्तोष नहीं हो तो तुम इस सिलसिलेमें मुझसे मिल सकते हो। भविष्यमें, सभी बातोंमें चाहे वे किसीसे भी सम्बन्धित हों, कहानी गढ़नेवालोंकी बातों पर विश्वास न करना। जो अपने साथवालोंके विनोदके लिए दूसरोंके बारेमें बेमतलबकी कहानियाँ गढ़कर सुनाते हैं, गपोड़िये कहलाते हैं। साथ ही, किसीके भी खिलाफ कही गई किसी बात पर तब तक विश्वास मत करो जब तक उसी व्यक्तिसे स्वयं पूछताछ न कर लो जिसके खिलाफ बात कही गई हो। तुम्हें याद है कि दादाभाईके बारेमें अशोभनीय बातें सुननेके बाद मैंने क्या किया था?

जिन बातोंको मैंने स्वप्नमें नहीं सोचा, उनको मेरी कही हुई बातें मानकर तुमने मेरे प्रति बड़ी क्रूरता की है। अब स्वीकार करो कि तुमने दस हजार बार माफी माँगने लायक खता की है।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

मेरा स्वास्थ्य सुधारपर है।

अंग्रेजी (जी० एन० १६०७)की फोटो-नकलसे।

१. और २. देखिए पिछले तारकी पाद-टिप्पणी।

२७२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२४ अगस्त, १९२९

प्रिय सतीशबाबू,

मुझे तुम्हारा पुर्जा मिला। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि निरंजनने यह कैसे अनुमान लगा लिया कि मैं तुम्हारे कारण क्षुब्ध हूँ। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे तुमसे क्षुब्ध होनेका कभी कोई कारण नहीं मिला। मैंने अक्सर तुम्हारे फैसलेके त्रुटिहीन होने पर तो शंका की है; पर तुम्हारे अभिप्राय पर कभी नहीं की। क्षोभ तो तब होता है जब अभिप्रायके विषयमें शंका हो।

सुभाषबाबू ऊँची धोती पहिनना क्षम्य नहीं मानेंगे। हमें उनके साथ निबाहना चाहिए। वे अपने-आपको बदल नहीं सकते। वे स्वयं अपने ऊपर और अपने उद्देश्य पर पूर्ण आस्था रखते हैं। उन्हें उसपर ही अमल करना चाहिए; और हमें अपने उद्देश्य पर।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० १६०८)की फोटो-नकलसे।

२७३. पत्र : एम० आर० जयकरको

२४ अगस्त, १९२९

प्रिय भाई,

पत्रके[1] लिए आपको सफाई देनेकी तो कोई जरूरत ही नहीं थी। आपने अपने पत्रमें जिन कठिनाइयोंका उल्लेख किया है उनसे मैं अनभिज्ञ नहीं रह सकता, आपका यह खयाल सही है। चूंकि श्रीमती नायडूने मुलाकातकी व्यवस्था कर ली थी, मैं श्री जिन्नासे मिलने चला गया था। मैं समझता हूँ कि यह मेरा कर्त्तव्य था। लेकिन मैंने किसीको बाँधा नहीं है। मैं किसीको बाँधना भी चाहता तो कैसे; मेरी हैसियत किसीके भी प्रतिनिधिकी नहीं थी। श्री जिन्ना अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण करते रहे और मैं केवल उसे सुनता रहा। यही अलीभाइयोंके साथ भी हुआ; उन्हें जो

१. देखिए परिशिष्ट ३।

कुछ कहना था, वह भी मैं सुनता ही रहा; इसपर उन्होंने तो बातचीतका रुख ही बदल दिया और मेरी खामोशीकी शिकायत करने लगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

जयकरके निजी कागजात, पत्र-व्यवहार फाइल सं० ४०७/६
सौजन्य: नेशनल आर्काइव्ज आफ इंडिया

२७४. एक काठियावाड़ीका सन्ताप

आवेशमें आकर एक काठियावाड़ी लिखते हैं:[1]

मैं दुखित हृदयसे यह कहे बिना नहीं रह सकता कि आपने काठियावाड़के मुँह पर ताला ठोंककर हमें घिसटते रहने पर मजबूर कर दिया है। . . . आपने शुरूमें श्री मनसुखलालभाई द्वारा लगाये गये जिन प्रतिबन्धोंका विरोध किया था, वे आपके द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धोंसे कहीं उदार थे; क्योंकि उनमें 'अमानुषिक अत्याचार' के खिलाफ व्यक्तिगत राज्योंकी टीका करनेकी स्वतन्त्रता तो थी; मगर आपने तो वह भी छीन ली। यह परिस्थिति असह्य है। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आप जालिम राजाओंके खिलाफ हमें एक शब्द भी बोलनेसे मना करते हैं। ब्रिटिश भारतके एक ग्रन्थकर्त्ताकी पुस्तक-विशेषके जब्त होनेपर उसके खिलाफ आप अपनी नाराजी जाहिर करते हैं, श्री रामानन्द चटर्जीपर निकाले गये वारंटके खिलाफ आप अपनी कलम उठाते हैं; श्री बजाजके घरकी खानातलाशीपर आप आँखें निकालते और क्रोध प्रकट करते हैं, मगर आपकी जन्मभूमिके निर्दोष बालकोंपर उनके जालिम राजा द्वारा जो अत्याचार ढाये जाते हैं, उन्हें आप देखकर भी नहीं देखते। ये सब ऐसी बातें हैं, जो हमारी समझमें नहीं आतीं। . . . 'अमानुषिक अत्याचार' के खिलाफ बोलनेकी स्वतन्त्रता तो हमें होनी ही चाहिए। . . . भावनगरमें आपने हमारी समस्याओंको हल करनेकी बात स्वीकार की थी। उसमें असफल होनेके बाद आपका यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि आप उन प्रश्नोंकी प्रकट रूपमें चर्चा करें। यह कर्त्तव्य न तो स्वयं आपने पूरा किया, न दूसरोंको वैसा करने दिया, इससे हमारे साथ किया जानेवाला अत्याचार — अन्याय बढ़ता जाता है। . . . आपको चाहिए कि आप काठियावाड़ी जनताको भी अपने अधिकारों का लाभ उठाना, उनका उपभोग करना सिखायें। उलटे आप तो उसे पीछे

१. अंशतः उद्धृत।

हटाते हैं और स्वयं भी सुनी-अनसुनी करते हैं। . . . काठियावाड़के राजदरबारियोंने आपके चारों ओर जो वायुमण्डल पैदा कर दिया है, उसे भेद कर आप दूसरे पहलुओं पर भी दृष्टि डालें और 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' द्वारा एवं राजकोटकी युवक परिषदके व्यासपीठ परसे, 'अमानुषी अत्याचार' के खिलाफ एक बार अपना पुण्य प्रकोप प्रकट करें। . . .

किसी काठियावाड़ीको इस तरह लिखनेका अधिकार है। युवक-वर्ग जो कहे उसे धैर्यपूर्वक सुनना मेरा धर्म है। प्रत्येक कर्त्तव्यके पालनमें अधिकार निहित रहता है, और प्रत्येक अधिकारके प्रयोगसे कर्त्तव्य पैदा होता है। इस तरह अधिकार और कर्तव्यका चक्र चलता ही रहता है। काठियावाड़ी युवकने मेरे सामने अपना दुखड़ा रोकर अपने अधिकारका उपयोग किया है। मैंने धर्यपूर्वक उसे सुनकर अपना धर्म पाला है, और अब मुझे युवकको सुनानेका अधिकार प्राप्त हुआ है, तथा काठियावाड़ी युवकका यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह मेरी बात सुने। सुननेका मतलब इस कानसे सुनकर उससे निकाल डालना नहीं, बल्कि सुनना यानी समझना और उसे हजम करना है।

भावनगरमें दिया हुआ वचन मुझे याद है। मैं स्वयं निराश नहीं हुआ हूँ। मैं बराबर प्रयत्नशील हूँ। इस प्रयत्नका फल प्राप्त करा देना मेरे हाथकी बात नहीं है। फलका अधिकार ईश्वरने अपने हाथोंमें रखा है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि मेरे तमाम प्रयत्न प्रकट-रूपमें ही हों। कोई यह भी न समझे कि मेरे प्रयत्न राजाओंसे मिलकर ही होते हैं। वे प्रत्यक्ष भी हो सकते हैं, अप्रत्यक्ष भी। सम्भव है उनका आरम्भ और अन्त प्रार्थनामें ही परिसमाप्त हो जाता हो। मेरे इस कथनसे काठियावाड़ी युवक या दूसरे पाठक हँसे नहीं; कोई यह भी न समझे कि मैं जैसे-तैसे अपना निरर्थक बचाव करना चाहता हूँ। सभी जानते हैं कि मैंने जीवन-भर इसी तरह किया है। दक्षिण आफ्रिकामें वर्षों तक मेरा प्रयत्न केवल प्रार्थना तक ही परिमित था, और मेरी मान्यता है कि मेरा यह प्रयत्न बहुत सफल हुआ है। अगर प्रार्थनाकी यह बुनियाद नहीं होती तो पूरी-अधूरी भली-बुरी जो भी चिनाई वहाँ हो सकी, वह कदापि न होती। यह कहा जा सकता है कि आजकल मैं हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिए कोई भी प्रत्यक्ष प्रयत्न नहीं करता, फिर भी मेरा अपना तो दावा है कि मैं उसके लिए सतत प्रयत्नशील हूँ। मैं हमेशा अपना दाँव देखता रहता हूँ, और इस तरहके अवसर मुझे मिलते भी रहते हैं। अतएव मेरी चुप्पी परसे कोई यह न समझ ले कि मैं राजाओंके विषयमें न तो कुछ करता हूँ, न कुछ सोचता ही हूँ।

फिर भी मैं जानता हूँ कि अधीर पाठक तो मेरे प्रयत्नकी परीक्षा केवल परिणामके आधार पर ही कर सकते हैं। अतएव अगर वे मुझे न पहचानें, मुझपर गुस्सा करें, मेरी हँसी उड़ायें, तो उसे भी मैं धैर्यपूर्वक सहन करूँगा, और जिस तरह बूढ़े पेड़ने 'हँसती-खेलती कोंपलों'—से कहा था उसी तरह शायद मैं भी कहूँगा, 'हमपर जो बीती है, सो तुमपर भी बीतेगी। बच्चाजी। जरा धीरज तो रखो।'

श्री मनसुखभाईके प्रतिबन्धोंकी चर्चा मैं यहाँ नहीं करूँगा। उस समय मैंने जो मत प्रकट किया था आज भी मैं उसपर कायम ही हूँ। परिस्थितिके अनुसार परिणाम भी बदलते रहते हैं। अगर देशी राज्योंमें परिषदोंका होना इष्ट है, तो मैंने उनकी जो मर्यादाएँ बतलाई हैं, वे अनिवार्य हैं। मैं इस समय उन मर्यादाओंको छोड़कर देशी राज्योंमें परिषदका होना असम्भव मानता हूँ।

मगर इस मर्यादाका सम्बन्ध परिषदसे है, व्यक्तिसे नहीं। अगर किसी व्यक्तिको किसी भी राजाकी व्यक्तिगत टीका करनी है, तो मुझे उसे रोकनेका अधिकार ही क्या है? उसे पहले अपनी शक्तिका, मर्यादाका, टीकाकी योग्यता-अयोग्यताका अन्दाज लगा लेना चाहिए।

मैंने यह कभी नहीं कहा कि देशी राज्योंके बाहर, यानी ब्रिटिश हदमें उनकी टीका नहीं हो सकती या सब प्रकारके प्रतिबन्ध हटाकर परिषदें नहीं बुलाई जा सकतीं। मैं जानता हूँ कि अगर लोकमत प्रबल हो और आवश्यकता मालूम पड़े तो ब्रिटिश सीमामें उग्र आन्दोलन किये जा सकते हैं। दूसरे, राज्य-विशेषमें राज्यकी प्रजा, उस राज्यकी चाहे जितनी टीका करे। लेकिन दुःख है कि ऐसी टीका की नहीं जाती।

मैं स्वयं 'नवजीवन' आदिमें, या किसी दूसरे ढँगसे, राजाओंकी व्यक्तिगत टीका नहीं करता; यह मेरा कार्य करनेका अपना ढँग है। मैं अपने आपको कर्म-कुशल, व्यावहारिक प्राणी समझता हूँ। मुझे अपनी शक्तिका भान है, और मैं यह जानता हूँ कि शक्तिका संग्रह कैसे करना चाहिए। मैंने जानबूझकर इस बातका अभ्यास किया है कि एक भी निरर्थक या आवेशपूर्ण बात मुँहसे न निकले। ब्रिटिश सीमामें होनेवाली छोटी-बड़ी घटनाओंकी मैं स्वतन्त्रतापूर्वक टीका करता हूँ, क्योंकि मैं मानता और जानता हूँ कि उसमें कुछ सार है—अर्थ है, उसके पीछे कुछ शक्ति है। अनेक देशी राज्योंकी भयानक स्थितिसे मैं परिचित हूँ; लेकिन उनके बारेमें मैं लिखूँ भी तो उसका कोई फल नहीं होगा; क्योंकि उसे वहाँसे थोड़ी भी पुष्टि नहीं मिल सकती। ऐसी हालतमें कुछ कहना कई अंशोंमें अपनी बात और अपने समयका दुरुपयोग करना ही है।

मुझे देशी राज्योंके प्रति कोई पक्षपात नहीं, और न मैं उनका शत्रु ही हूँ। मैं उनका नाश नहीं चाहता। उनमें सुधारकी बहुत-कुछ गुंजाइश है। और मैं मानता हूँ कि वे सुधर सकते हैं। साथ ही मेरा यह भी दृढ़ विश्वास है कि जबतक हिन्दुस्तानमें स्वराज्य नहीं होता, देशी राज्योंमें सच्चा सुधार होना असम्भव है। कुछ भीषण अत्याचारोंमें घट-बढ़ भले हो जाये, लेकिन उसमें न मुझे दिलचस्पी हो सकती है और न मैं उससे सन्तुष्ट ही हो सकता हूँ। इसीलिए मैं मूलको पकड़े बैठा हूँ। अगर मूलमें सुधार हो जाये तो शाखाएँ अपने-आप सुधर जायेंगी। आज देशी राज्योंकी गन्दगीकी ओर जनताका ध्यान खींच कर उसे उस ओर लगा देना, मूल विषको अधिक बढ़नेका अवसर देना होगा। यह जोखिम मैं कभी नहीं उठा सकता।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सम्बन्धित देशी राज्योंके बारेमें कुछ भी प्रत्यक्ष प्रयत्न न किये जायें। इस बारेमें मैं पहले लिख चुका हूँ, और फिरसे कहता हूँ कि

विभिन्न राज्योंकी प्रजाको तैयार होकर आन्दोलन करना चाहिए; और अगर उसमें ताकत हो तो सत्याग्रहके अमोघ शस्त्रसे काम लेना चाहिए। लेकिन दुःखकी बात तो यह है कि जैसे राजा हैं, वैसी ही प्रजा है। जनताके आदमी ही राजाके हाथ-पैर हैं। जुल्मोंके नीचे कुचली जानेवाली जनता बलहीन होती है, उसे बलवान कौन बनाये? लेकिन अगर वह अपनी सीमाके बाहर कहीं शुद्ध बलके दर्शन करे, तो उसे अवश्य ही उसकी छूत लग सकती है। आजतक शेरके पंजेसे कोई बकरेको नहीं बचा सका है। अगर हम यह कल्पना कर सकें कि बकरेका उद्धारक कोई बकरा ही पैदा हो सकता है तभी बकरे बच सकते हैं, मगर पशुके सम्बन्धमें हम इस तरहके ज्ञानकी कल्पना नहीं करते। मनुष्यमें तो ज्ञान होता ही है। अतएव हम आशा रखें कि जब भारतके किसी भी भागमें सच्ची जागृति पैदा होगी और लोगोंमें पूर्ण सत्याग्रहके भाव फैलेंगे तब उनकी छूत सर्वव्यापिनी होगी। बारडोली सत्याग्रह तो उस पूर्णका अंश-मात्र था। बारडोलीके लोगोंमें स्वराज्यके योग्य सत्याग्रहकी योग्यता या जागृति नहीं है। अगर यह जागृति पैदा हो जाये तो आज हम सबमें अपने-आप नवजीवनका संचार हो जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-८-१९२९

२७५. टिप्पणियाँ

दुर्बुद्धि सरकार

बारडोली और चौरासीसे सम्बन्धित सरकारी जाँच-समिति द्वारा प्रस्तुत विवरणको[1] लेकर सरदार वल्लभभाई और सरकारके बीच कुछ ज्ञातव्य पत्र-व्यवहार हुआ है। इस अंकमें महादेवभाईने उसके कुछ अंश प्रकाशित किये हैं। वे मननीय हैं। उसमें दो बातें हैं: एक तो जिन गाँवोंमें शर्तोंके उल्लंघनके कारण जो अन्याय हुआ है उसका परिमार्जन करनेके विषयमें और दूसरा, सरकारकी ओरसे जो नये परिवर्तन किये जानेकी बात कही गई है यदि उनसे कोई लाभ होते हैं तो उनका लाभ बारडोली और चौरासीको मिलनेके विषयमें। सरकारने इन दोनों बातोंका निषेधात्मक उत्तर दिया है। अन्यायके बारेमें तो वह सुनने ही को तैयार नहीं है। भविष्यमें होनेवाले परिवर्तनोंका लाभ देनेको भी वह तैयार नहीं है। रस्सी जल जाने पर भी अपनी ऐंठन कैसे छोड़ सकती है? सरकार जानती है कि जिन गाँवोंमें अन्याय हुआ है, यदि वह सलाह-मशविरा करके उसका परिमार्जन नहीं करती तो भी सरदार इसके लिए सत्याग्रह जैसे उपायका अवलम्बन नहीं करेंगे; इस उपायका ऐसी परिस्थिति में उपयोग किया नहीं जाता। इस प्रकारका कोई भय न होनेके कारण सरकार माँगोंको अस्वीकार कर रही है। दबाव पड़े बिना न्याय न करनेकी नीतिके कारण सरकार अप्रिय हो गई है और होती चली जा रही है। अफसर भी सरकारको यह सीधी-सी बात समझानेके लिए तैयार नहीं हैं कि यदि दो-चार गाँवोंसे कुछ कम लगान

१. ब्रूमफील्ड-मैक्सवेल रिपोर्ट।

वसूल हुआ है तो उससे सरकारका कोई नुकसान नहीं होता। किन्तु इसमें उसकी शान, 'प्रेस्टीज' आड़े आती है। दूसरी बात है भविष्यकी। कुछ गाँवोंको लेकर सत्याग्रह नहीं किया जा सकता; किन्तु यदि भविष्यमें होनेवाले लाभसे बारडोली और चौरासी वंचित रखे जाते हैं, तब तो सत्याग्रह किये बिना काम नहीं चल सकता। ऐसे समय सत्याग्रह अनिवार्य हो जाता है। इसलिए सरदारने सरकारसे विनयपूर्वक किन्तु दृढ़तासे कह दिया है कि आगामी कानून यदि लाभदायक बनते हैं और उनका लाभ बारडोली तथा चौरासीको नहीं मिलता तो सत्याग्रह करना ही पड़ेगा।

बारडोली इलाकेके गाँवोंके बारेमें एक कानूनी गुंजाइश है। सरदार उसे काममें नहीं लाना चाहते। किन्तु यदि वे उसका उपयोग करना चाहें तो शायद उन गाँवोंको राहत मिल जाये। यदि इस गुंजाइशका उपयोग किया गया तो बात दूसरी है; नहीं तो वे गाँव इस अन्यायको सहन करनेके लिए तैयार रहें और यदि भविष्यमें आवश्यक हो जाये तो बारडोली सत्याग्रहके लिए तैयार रहें। उक्त भविष्य कब वर्तमान हो जायेगा, सो कोई नहीं कह सकता। सरकारने जिन कानूनोंको बनानेका वचन दिया था वे तो बरसोंसे अधरमें लटके हैं। किन्तु बारडोलीको अपना मूल ऋण तो अभी चुकाना ही है। यदि वह उसे चुकानेके लिए तैयार हो जाये तो भविष्यमें आंशिक सत्याग्रहकी बात तक करना जरूरी न रहे।

दूसरा मन्दिर खुला

श्री जमनालालजीके प्रयत्नसे वर्धाका मशहूर श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर अछूत भाई-बहनोंके लिए खोला गया था। अब उन्हींके प्रयत्नसे बरार प्रान्तके इलिचपुर शहरका दत्तात्रेय मन्दिर भी खोल दिया गया है। इलिचपुर किसी समय बरारकी राजधानी था। आज भी उसकी आबादी ३८,००० है। गत पहली जुलाईको सार्वजनिक सभाके बाद मन्दिर अछूत भाइयोंके लिए खोला गया। अमरावतीके डाक्टर पटवर्धन सभापति थे। मन्दिरको खोलनेका काम जमनालालजीके हाथों हुआ। यह मन्दिर पन्द्रह वर्ष हुए, ८३,००० रुपयोंकी लागतसे बनाया गया था। मन्दिरकी व्यवस्थाका भार चौबीस सज्जनोंकी एक समितिके जिम्मे है। इनमेंसे अठारहके बहुमतसे यह मन्दिर अछूतोंके लिए खोल देनेका निश्चय हुआ है। मन्दिरके पाँच संरक्षक भी हैं। पाँचों संरक्षक मन्दिर खोल देनेके बारेमें एकमत थे। मन्दिरके दरवाजे पर इस आशयकी एक तख्ती लगा दी गई है:

> **"आजसे यह मन्दिर भंगी, महार, चमार, वगैरा तमाम हिन्दुओंके दर्शन, भजन, पूजन, प्रार्थना, कथा-श्रवण इत्यादि धार्मिक कामोंके लिए खुला रहेगा।"**

यह मन्दिर स्वामी विमलानन्दके प्रयत्नसे बना था। स्वामीजी भी इस शुभ-कार्यके अवसरपर उपस्थित थे। मन्दिर खोलते समय जमनालालजीने लगभग पचास अन्त्यज भाई-बहनोंके साथ मन्दिरमें प्रवेश किया था। इस अवसर पर जमनालालजी और वर्धा सत्याग्रह आश्रमके श्री विनोबा भावेने खास तौर पर भाषण किये थे।

इस कार्यके लिए मैं इलिचपुरके निवासियों, मन्दिरके संरक्षकों और जमनालालजी को धन्यवाद देता हूँ। अछूत भाइयोंने उस दिन जिस आनन्दोल्लासका अनुभव किया

होगा उसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ। जिस चीजके पानेके लिए वे रात-दिन तड़पते रहते हैं, जिससे हिन्दू-समाज उन्हें आजतक वंचित रखता आया है, उसके मिलने पर उन्हें आनन्द क्यों न होगा? लेकिन यह शुरूआत समुद्रमें बूंदके समान है। भारतमें हिन्दू-मन्दिर लाखोंकी संख्यामें हैं। जबतक अछूत भाइयोंके लिए देशके हरएक सार्वजनिक मन्दिरका दरवाजा खुल नहीं जाता, हिन्दू धर्मके उपासक दोषी बने रहेंगे और उनके लिए दुनियाके सामने सिर उठाकर चलना मुहाल होगा। अछूतोंका बहिष्कार करके हिन्दू-समाज स्वयं संसारसे बहिष्कृत किया गया है। हिन्दू-समाज इस बहिष्कारमेंसे बचनेका उपाय इलिचपुर और वर्धासे सीख ले।

बलसाड़के भंगी भाई

इस सम्बन्धमें नीचे दिया जा रहा दुःखद पत्र मिला है:[1]

यदि पत्रमें दी गई जानकारी सही है तो यह बलसाड़ नगरपालिका और नगर-निवासियोंके लिए लज्जाकी बात है। थोड़े-बहुत परिश्रम और यत्किंचित् द्रव्यसे जो सुधार हो सकते हैं उसके लिए उत्तरदायी संस्था अथवा व्यक्तियोंका उस ओरसे उदासीन रहना, अशोभनीय है। धनिक वर्ग आसानीसे बिना कुछ दिये जो पानी प्राप्त कर पाता है उसीके लिए भंगी भाई-बहनोंको मारा-मारा फिरना पड़े और उसके लिए पैसे भी देने पड़ें इसे कैसा मानें? मैं आशा करता हूँ कि यदि ऊपर दिये गये तथ्य ठीक हैं तो बलसाड़ नगरपालिका और उस नगरके निवासी उनका तुरन्त उपाय करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-८-१९२९

२७६. पत्र : वसुमती पण्डितको

२५ अगस्त, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं भाषाकी भूलें करता हूँ इससे तुम्हें भूल करनेका अधिकार नहीं मिल सकता। मेरे दाँत न हों तो क्या तुम्हें भी निकाल देने होंगे? मेरा अज्ञान तो निभ गया। मेरे वारिसोंका नहीं निभ सकता। अब मेरी तबीयत अच्छी

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। कहा गया था कि उन्हें पठान साहूकारोंके पंजेसे छुड़ाने तथा रहने और पीनेके पानीके लिए बलसाड़की नगरपालिकाने कुछ नहीं किया है। नागरिक भी इस ओरसे आँखें बन्द किये हुए हैं। पत्र लेखकने नवसारी नगरपालिकाकी इस मामलेमें प्रशंसा की थी और आशा की थी कि बलसाड़ नगरपालिका भी उसका अनुसरण करेगी।

है, ताकत आती जा रही है। हठपूर्वक घूमना जारी रखो। यहाँ आजकल खूब बरसात हो रही है। खुराकमें दही विशेष रूपसे ले रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२६२)से तथा (सी० डब्ल्यू० ५०९)से भी।
सौजन्य : वसुमती पण्डित।

२७७. पत्र : प्रभावतीको

मौनवार, २६ अगस्त, १९२९

चि० प्रभावती,

तुम्हारे पत्र बराबर मिलते रहते हैं। तुम चिन्ता करना छोड़ दो। अशान्तिमें शान्ति प्राप्त करना सीख लो। बाह्य संयोग हमेशा हमारी मनकी मर्जीके अनुसार नहीं होते। किन्तु मनको उनके कारण विचलित न होने देना तो हमारे हाथमें ही है। प्रतिकूल संयोगमें भी सेवाका मौका ढूँढ़ लें। हम विरोध करनेवालेसे भी प्रेम ही करें।

आगरा आनेका प्रबन्ध तो तुम्हीं कर लोगी न? मैं यहाँसे किसे लिखूँ? तुम्हें साहसके साथ अपना रास्ता अपने-आप साफ करना है। ईश्वर तो सहायता करेगा ही।

मेरी तबीयत तो अच्छी हो ही रही है। सिर्फ दही और दूध ले रहा हूँ। फल भी लेता हूँ। अब थोड़ा घूमने भी जाता हूँ। लिखना और कातना तो बिल्कुल ही बन्द नहीं हुआ है। इसलिए मेरे बारेमें चिन्ता नहीं करना।

अध्ययनके बारेमें मैंने लिख दिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३३५४)की फोटो-नकलसे।

२७८. पत्र : छगनलाल जोशीको

२६ अगस्त, १९२९

चि० छगनलाल,

शिवाभाईको स्वतन्त्र काम नहीं सौंप सकते किन्तु यदि वह उद्योग मन्दिरमें रहना चाहें तो जैसा उन्होंने कल कहा था वैसे अपने खाने-पीनेका प्रबन्ध करके रह सकते हैं। इस विषयमें और कुछ पूछना हो तो पूछ लेना।

बापू

गुजराती (एस० एन० १५५१०)की माइक्रोफिल्मसे।

२७९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२६ अगस्त, १९२९

भाई घनश्यामदासजी,

बंगाल कांग्रेस कमेटी आडिटका क्या कीया।

आपका,
मोहनदास

श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला
बिड़ला कॉटन स्पिनिंग ऐंड वीविंग मिल्स लि०
सब्जीमण्डी, दिल्ली

सी० डब्ल्यू० ६१७६ से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२८०. पत्र : माधवजी वी० ठक्करको

२७ अगस्त, १९२९

भाईश्री माधवजी,

तुम प्रयोग तो ठीक कर रहे हो। दूधके साथ फल न खानेका आग्रह न करना। किन्तु जबतक अनुकूल पड़े, तबतक अवश्य ऐसा करते रहो। इससे नुकसान तो नहीं होगा।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत माधवजी वी० ठक्कर
१७८, लोअर चितपुर रोड,
कलकत्ता

गुजराती (जी० एन० ६७९१)की फोटो-नकलसे।

२८१. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। आज जन्माष्टमी मानी है इसलिए हमेशाकी तरह गीताका पारायण किया गया। उस समय आश्रमके सभी लोगोंकी बहुत याद आई। बहुत मधुर स्वरमें और बहुत जोशके साथ पारायण किया गया। बीचमें स्तोत्र भी पढ़े गये। कार्यक्रम-दिनमें रखनेसे पाठमें दूसरे भी शामिल हो सके थे इसलिए आवाज ज्यादा मधुर जान पड़ती थी।

आज यहाँ बरसात नहीं हुई। थोड़ी धूप भी बहुत दिनोंके बाद निकली है; इसलिए वहाँ भी शायद कुछ आराम होगा। आज सभी थोड़ा बहुत फलाहार कर रहे हैं। एक-दो बहनें भी पिंजाई करें तो दूसरी बहनें भी पींजने लगेंगी। गोविंदजी पिंजाईके अलावा दूसरा काम छोड़ दें। उनसे सिर्फ पिंजाईका ही काम लेना चाहिए। यहाँसे भी मैं इस कामके लिए किसीको भेजनेका प्रयत्न तो कर ही रहा हूँ। यह पत्र तुम सब पढ़ लेना। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। अभी तक तो यहाँसे ६ तारीखको निकलनेका विचार है। आज शामको सात बजे भजन होंगे। पण्डितजीका वाद्य-वृन्द भी बजेगा। बा ने सबको आशीर्वाद लिखनेको कहा है।

श्रीमती वसुमतीबहन
उद्योगगृह
बीजापुर
(गायकवाड़)

गुजराती (एस० एन० ९२६३) से तथा (सी० डब्ल्यू० ५१०) से भी।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

२८२. पत्र : फूलचन्द के० शाहको

आश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२९

भाईश्री फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी तबीयत धीरे-धीरे अच्छी हो रही है। मुझे तुम्हारे आनेकी तो कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। मानपत्रके बारेमें तो भाई जवाहरलालको लिखा है। वह कल रातको आ रहा है। तार आया है।

परसों रातको यहाँसे रवाना होगा। वीरमगाँवसे स्वागत शुरू करोगे, ऐसा मैं मान लेता हूँ। मेरा आना तो नहीं हो सकेगा। काका बम्बईमें हैं।

अनसूयाबहन तो शायद ही आये। किसी औरको भेजा जा सकता हो या नहीं, सो मैं देखूँगा।

काठियावाड़की स्थिति तो तुम सबके-सब समझा सकते हो। रेवाशंकरभाई भी वहाँ हैं। तुमने बुलाया तो सभी पक्षोंको होगा। वे सब स्वतन्त्रतापूर्वक मिलें और जो कहना हो सो कहें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८५९)से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

२८३. पत्र : धर्मसिंह भानजी खोजाको

आश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२९

भाईश्री धर्मसिंह,

खादीके बारेमें आपने जो लिखा है, सो ठीक लगता है। मिलके सूतकी खादी नहीं चल सकती। क्योंकि हाथ-कताई मूल वस्तु है, मध्यबिन्दु है। यन्त्रवादके बारेमें प्रसंग आने पर कुछ न कुछ कह देता हूँ। रियासतोंके बारेमें 'नवजीवन'का ताजा अंक[1] देखें। आपने घी-दूधके बारेमें जो लिखा है सो तो ठीक है ही। चरखेके साथ ओटनीकी ताकत भी बढ़ हो रही है। यदि आश्रममें ऐसा प्रसंग आये तो वहाँ विधवा विवाह जरूर सम्पन्न किया जा सकता है। किन्तु यह काम जबरदस्ती नहीं किया जा सकता। ईश्वर गुणातीत होनेके कारण निर्गुण, सगुण, निर्विकारी, विकारी आदि विरोधी लगनेवाले विशेषणोंके भी योग्य है। सिपाही न बनना उत्तम काम है किन्तु सिपहगरी

१. देखिए पृष्ठ ३६२–५.

स्वीकार करनेके बाद व्यक्तिको, युद्ध योग्य है अथवा अयोग्य, इस बातका विचार करनेका अधिकार नहीं रहता। 'नवजीवन' की सूचीकी माँग बहुत-से लोग करते हैं। चन्देकी स्वीकृति भी 'नवजीवन'का आवश्यक अंग है। 'नवजीवन' संस्थामें होनेवाले लाभका उपयोग मुख्यतया 'नवजीवन'के कार्यकर्त्ताओंके लिए ही करनेकी योजना बनाई गई है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं देख सका।

श्री धर्मसिंह भानजी खोजा
बिछिया, काठियावाड़

गुजराती (एस० एन० १९८४७) की फोटो-नकलसे।

२८४. पत्र : नानाभाई मशरूवालाको

आश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२९

भाईश्री नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। स्वास्थ्य तो रोज सुधरता जा रहा है। अध्यक्ष पद स्वीकार करनेके पक्षमें जो दलीलें हैं सो तो सबकी सब मुझे मालूम हैं; किन्तु जहाँ हिम्मत न हो उसके लिए क्या करूँ? ईश्वर पर छोड़ दिया है। उसे जो करना होगा सो करेगा।

लगता है कि सुशीला अब सीता नामसे कुछ सन्तुष्ट है। कोई शिकायत नहीं करती।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६६७९)की फोटो-नकलसे।

२८५. आंग्ल-भारतीय

कुछ आंग्ल-भारतीय मित्रोंकी अक्सर यह शिकायत रही है कि मैं इन स्तम्भोंमें उनकी ओर समुचित ध्यान नहीं देता। मैंने हमेशा इस आरोपका खण्डन किया है। यदि मैं 'यंग इंडिया' में उन लोगोंका बहुधा उल्लेख नहीं करता तो यह उनके प्रति मेरे अनुत्साहका परिचायक नहीं है। उस समाजके अनेक लोगोंसे तो मुझे मित्रताका सौभाग्य प्राप्त है। स्वराज्यकी मेरी कल्पनामें यही अपेक्षित है कि उनका भी उतना ही ध्यान रखा जाये जितना कि किसी अन्य समुदायका। हाँ, वे इन स्तम्भोंमें बार-बार पैरवीके मोहताज नहीं हैं। इन स्तम्भोंमें उन समुदायोंको स्थान पानेका कहीं ज्यादा अधिकार है जो सरकार द्वारा उपेक्षित हैं या जिनके हित सरकारके विरुद्ध पड़ते हैं। जैसे अंग्रेजोंको इस स्तम्भके आधीन सुरक्षा पानेकी कोई आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार शक्तिशाली आंग्ल-भारतीयोंके हितोंको भी इस प्रकारकी सहायता बिलकुल जरूरी नहीं है। इसी तरहके अन्य कई लोगोंकी बात भी मैं गिना सकता हूँ जो इस देशके तो हैं किन्तु उन्हें 'यंग इंडिया'की सहायताकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन मैं सामान्य तौर पर एकसे अधिक बार यह आश्वासन दे चुका हूँ कि इन स्तम्भोंमें किसी एक औचित्यपूर्ण या वैध हितकी बलि चढ़ानेके विरोधमें पैरवी ही नहीं की जायेगी बल्कि ऐसी पैरवीको प्रोत्साहन दिया जायेगा।

आंग्ल-भारतीय-लीगके विधानमें आंग्ल भारतीय समाजकी परिभाषा मैंने अभी देखी है। इसकी जानकारी मुझे पहले नहीं थी। इस परिभाषाके अनुसार जिन्हें 'आंग्ल-भारतीय' माना या सम्मिलित किया गया है उनमें हैं :

१. वे सभी लोग, जो यूरोपीय और भारतीय मिश्रित वंशके हैं, जिनके पिता, पितामह या पितृपक्षके और भी पुराने पूर्वज यूरोपीय या अमेरिकी हों या उपनिवेशमें जन्मे हों; और

२. भारतमें स्थायी तौर पर बसे यूरोपीय, यूरोपीय वंशमें जन्मे ब्रिटिश उपनिवेशोंके नागरिक तथा अमेरिकी लोग।

इन परिस्थितियोंमें 'लीग' के इन मित्रोंको सचमुच अपने हितोंकी रक्षाके लिए इन स्तम्भोंमें किसी प्रकारकी वकालतकी कोई जरूरत तो नहीं ही है; बल्कि यूरोपीय हितोंको जिस हद तक भारतीय हितोंके विरुद्ध माना जा सकता है, उस हदतक तो इस समाजने अपने आपको करोड़ों भारतीयोंके विरुद्ध खड़ा कर ही लिया है।

यदि वर्णसंकर लोग शासक जातिके समान ही अधिकारों या विशेषाधिकारोंका दावा करते हैं तो आवश्यकता पड़ने पर — और यदि शासक जातिका वश चले तो — देशकी जनताके हितोंके विरुद्ध पड़ने पर उनका हित स्थानीय निवासियोंके हितोंके मुकाबिले सर्वोपरि हो जायेगा। इन स्तम्भोंमें तो ऐसी अनधिकार चेष्टाओंका, चाहे वे कहींसे भी आरम्भ हों, दृढ़ताके साथ विरोध किया जाता है। कुछ भी हो इस

'लीग' का आंग्ल-भारतीय सदस्य अपने-आपको शासकों जितना ही पूरी तरह सुरक्षित मान सकता है।

परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि आंग्ल-भारतीयोंके एक भारी बहुमतको 'आंग्ल-भारतीय लीग' में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। ऐसे लोग मेरी सहानुभूति, मैत्री और कुछ मामलोंमें सहायताके भी अधिकारी हैं। ऐसे वर्णसंकर लोगोंकी जिनका रंग या वर्ण अपने भारतीय माता-पिताके अनुरूप है और जो निर्धन हैं, बड़ी दुर्दशा है। उनके राजनीतिक अधिकारोंको तो कोई खतरा नहीं है पर उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा तो जैसे है ही नहीं। अपने वंशके भारतीय पक्ष या अंश पर वह सिर धुनता है और यूरोपीय जाति उसे अपनाती नहीं है। अस्तु, उसकी स्थिति तो कुएँ और खाईके बीच की है। अक्सर ऐसे लोगोंसे मेरा मिलना होता रहता है। उनके यूरोपीयोंकी तरह रहने या उन्हीं जैसे दिखाई देनेके लिए अपनी औकातसे ज्यादा खर्च करना पड़ता है और इसीमें वे मिट जाते हैं। मैंने उनको यह सलाह दी है कि वे अपना रास्ता निश्चित करके अपना भाग्य देशके विशाल जन-समुदायके साथ जोड़ लें। यदि ये लोग इस अत्यधिक सरल और स्वाभाविक स्थितिको समझने और अपनानेमें साहस व दूर-दर्शिताका परिचय दें, तो वे अपनी और भारतवर्ष दोनोंकी सेवा कर सकेंगे और अपने आपको इस अपमानजनक स्थितिसे, जिसमें वे इस समय हैं—उबार सकेंगे। आंग्ल-भारतीयोंके इस मूक समुदायकी सबसे बड़ी समस्या है अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा निश्चित करनेकी। ज्यों ही वे समझ लेंगे कि वे भारतीय हैं और भारतीयोंकी तरह ही रहने भी लगेंगे, उनका कष्ट दूर हो जायेगा।

'लीग' के मुखर आंग्ल-भारतीयोंसे मेरा निवेदन है कि 'लीग' की गतिविधियाँ गम्भीर समस्याओं पर लीपा-पोती करने तक ही सीमित हैं। उसे यदि अधिकांश आंग्ल-भारतीय समाजका सच्चा प्रतिनिधित्व करना है तो 'लीग' को अपनी नीतिमें आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा; उसे वह परिभाषा बदलनी पड़ेगी जिसका मैंने उल्लेख किया है; और उसे भारतीय स्वतन्त्रताके गौरवपूर्ण संघर्षमें साहसके साथ खुलकर आगे आना पड़ेगा। मेरी रायमें 'लीग' आजकल जो कर रही है, वह असम्भवको सम्भव बनानेका प्रयत्न ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-८-१९२९

२८६. टिप्पणियां

एक मूक सुधारक

श्रीयुत मणिलाल कोठारी लिखते हैं:

> आपको याद होगा कि सन् १९२२ में राजपूतानाके भीलोंकी हालत पर लिखते हुए 'यंग इंडिया' में भील-नेता मोतीलालको माफ करनेकी सिफारिश की थी।[१] सन् १९२४ में राजपूतानाके ए० जी० जी० सर आर० ई० हालैंडने सारे मामले पर सहानुभूति-पूर्वक विचार करके और उस समयके राजपूतानेके शान्तिमय वातावरणका खयाल करके सम्बन्धित राज्योंको सलाह दी थी कि वे मोतीलालको क्षमा कर दें, जिससे कुछ समय बाद उनके प्रभावका उपयोग पिछड़ी हुई और भील जातिके सामाजिक सुधारमें हो सके। मुझे पता चला है कि राजपूतानेकी तमाम देशी रियासतोंने, जिसमें मेवाड़ भी शामिल है, इस प्रस्तावको मँजूर किया था, और सर आ० ई० हालैंड एवं उनके उत्तराधिकारी लेफ्टिनेंट कर्नल पैटर्सनने भी मुझसे स्पष्ट ही कहा था कि मैं बम्बई सरकारसे अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ कि अगर बम्बई प्रान्तकी ईडर, दाँता वगैरा रियासतें मोतीलालको क्षमा कर दें तो राजपूतानेको कोई आपत्ति न होगी। लेकिन आज मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि मेवाड़-जैसी रियासत बिना मुकदमा चलाये मोतीलालजीको जेलमें बन्द किये हुए है।
>
> अधिकारी कहते हैं कि आपने मोतीलालसे अपना सम्बन्ध विच्छेद जाहिर कर दिया था। मुझे विश्वास है कि यह बात सच नहीं है। मैं मानता हूँ कि आपका उनसे प्रत्यक्ष परिचय है और आप उनके कामके बारेमें भी कुछ जानते हैं। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप कृपा कर इस गलतफहमीको दूर करेंगे और मेवाड़ दरबारको इस मामलेमें सहानुभूतिपूर्वक विचार करने और मोतीलालको छोड़ देनेकी सलाह देंगे।

पाठक शायद ही मोतीलालको न जानते हों। वह एक भोले-भाले, अपढ़ समाज-सुधारक और राजपूतानाके भीलोंके सेवक हैं। उनकी बड़ी इच्छा है कि भील लोग मांस और मदिराका त्याग कर दें। एक समय उनका भीलों पर बहुत ज्यादा प्रभाव था। और आज भी, यद्यपि प्रभाव उतना ज्यादा नहीं है, उस जातिके लोग बड़े आदरसे उनका नाम लेते हैं; क्योंकि मोतीलालके कारण ही उनमें काफी सामाजिक सुधार हो सका था। यरवदा जेलसे छूटनेके बाद मुझे मोतीलालसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे न पढ़े-लिखे हैं, न किसीसे ज्यादा बात ही करते हैं। वे तो

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ५०१-२ और ५२२-२३।

केवल काम करना जानते हैं, और अपने आपमें तथा अपने लोगोंमें विश्वास रखते हैं। जो लोग कहते हैं कि १९२२ में मैंने उनपर अविश्वास-सा प्रकट किया था, मुझे डर है कि वे सत्यको छिपाना चाहते हैं। १९२२ में जब मैंने सुना कि वे मेरे नामका उपयोग करते हैं तो मैंने यह कहा था कि उन्हें ऐसा करनेका कोई अधिकार नही है। लेकिन उसके बाद और खासकर जब मुझे उनके कार्यका कुछ परिचय प्राप्त हुआ तब तो मैंने बड़े जोरोंसे इस बातकी सिफारिश की थी कि उन्हें माफ कर दिया जाये। मैंने तो अपने सन्तोषके लिए यह भी मान लिया था कि सर आर० ई० हॉलैंडकी सिफारिशमें 'यंग इंडिया' की पंक्तियोंका भी कुछ हाथ होगा। बात कुछ भी रही हो मुझे आशा थी कि मोतीलालको क्षमा मिल गई होगी, और १९२२ की घटनाको सम्बन्धित राज्य अब तक पूरी तरह भूल चुके होंगे। इसी कारण मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि मेवाड़ राज्यमें उन्हें किसी दूसरे नये अभियोगके लिए नहीं, बल्कि १९२२ वाले पुराने आरोपोंके कारण फिरसे कैदमें रख छोड़ा है। मुझे विश्वास है कि मेवाड़ राज्य यह नहीं भूलेगा कि अगर वह भीलोंके प्यारे नेताको ज्यादा समय तक कैदमें रखे रहा तो भोले-भाले भील राज्य पर अविश्वास प्रकट करेंगे। क्योंकि वे तो यह मानते थे कि उनके नेताको क्षमा कर दिया गया है; जहाँ तक मैं जानता हूँ, मोतीलालने ऐसा कोई काम नहीं किया है, जिसके कारण वे कैदमें रखे जायें। अतएव मैं विश्वास करता हूँ कि यह भोला-भाला और सच्चा सुधारक शीघ्र ही कैदसे छोड़ दिया जायेगा और अपने लोगोंमें समाज-सुधारका काम करनेके लिए उसे प्रोत्साहित किया जायेगा।

बारडोली[1]

सरदार वल्लभभाई पटेल और बम्बई सरकारके बीचका समाचारपत्रोंमें प्रकाशित पत्र-व्यवहार पढ़ने योग्य है और उससे आजकी शासन-पद्धतिकी हठधर्मी और टससे मस न होनेका स्वभाव जाहिर होता है। कोरी प्रतिष्ठाके नाम पर वह हर चीजकी बलि दे डालती है। कभी किसी दबावके कारण विवश हो जाने पर ही महत्वपूर्ण बातोंमें उससे न्याय प्राप्त हो पाता है। ब्रूमफील्ड-मैक्सवेल रिपोर्टमें अनजाने कुछ अन्याय हो गये और सरदारने उनपर प्रकाश डाला। यदि कोई उत्तरदायी शासन-पद्धति होती तो कहते ही उन अन्यायोंका परिमार्जन कर दिया जाता। सरकार जानती है कि यदि बातचीतसे उन अन्यायोंको दूर नहीं किया जाता तो सरदार उस प्रश्नको लेकर न संघर्ष कर सकते हैं, न करना चाहते हैं। और इसलिए सरकारने उनके प्रस्ताव पर ध्यान देनेसे इनकार कर दिया। बात स्पष्ट करनेके विचारसे मैं यह बता दूँ कि बढ़े हुए लगानको लागू करनेमें कानूनी कठिनाइयाँ हैं। किन्तु वल्लभ-भाई ऐसे स्वाभिमानी हैं कि वे इसका जिक्र नहीं करना चाहते और कानूनी कठि-नाइयोंका सहारा नहीं लेना चाहते। अगर सरकार खुद अपने ही कानूनोंकी रू से लगानकी अदायगीको लागू न कर सके तो इसमें उसका धन्यवाद माननेकी तो कोई

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-८-१९२९ का उप-शीर्षक "दुर्बुद्धि सरकार"।

बात हो ही नहीं सकती। वह तो सरदारके सौजन्यपूर्ण बढ़ाये गये हाथको अस्वीकार करके अपकीर्ति कमा चुकी। किन्तु फिर भी एक मुद्दा ऐसा बच रहता है जिसे किसी सीमित ढंगका संघर्ष किये बिना सरदार छोड़ नहीं सकते। उन्होंने स्वाभाविक रूपसे यह आशा तो की ही थी कि यदि कोई नया कानून प्रस्तावित किया जाता है या कोई संशोधन होता है तो बारडोली और चौरासीको उसका लाभ मिलेगा। यदि कोई ऐसा कानून बनता है तो उस बारडोलीको जिसने सरकारको कानून बनाने के लिए बाध्य किया है, उसके लाभसे वंचित नहीं रखा जा सकता। यदि लाभकी गुंजाइश हो और सरकार उसके न मिलने देनेकी बातपर अड़ी रहे तथा अन्यथा विचार करे तो सरदार संघर्ष छेड़नेकी प्रतिज्ञा करेंगे। फिर भी जनताको तो इतना ही करना है कि वह सरकारकी हठधर्मिताको पहचान ले और जिस शासन पद्धतिके अन्तर्गत ऐसी हठधर्मिता सम्भव है, उसे समाप्त करनेका उत्साह समेटे। उसे इस बातको लेकर ज्यादा अटकल लगानेकी जरूरत नहीं है कि क्या-कुछ किया जायेगा।

'बन्दी भारत'

अगर बंगालकी सरकार डाक्टर संडरलैंडकी पुस्तकको जब्त करके श्री रामानन्द चटर्जी पर मामला न चलाती तो उसकी अब तककी परम्परा खण्डित होती। जब्ती के परिणामस्वरूप पुलिसने जो गिरफ्तारी की उसमें उसने यथासम्भव शान, अपमान और औद्धत्यसे काम लेनेमें जरा भी कसर नहीं की।[1] क्योंकि कहा जाता है कि श्री रामानन्द बाबूसे जब्त पुस्तकोंकी प्रतियाँ सभ्यतापूर्वक माँगनेके बदले पुलिसने "उनके कार्यालय पर हमला किया और वहाँसे ३५० अजिल्द प्रतियाँ, कपड़ेकी जिल्दके १०१ 'केसेज', किताबके खुले फर्मोंके पाँच बण्डल, सचित्र 'प्रोटेक्टिंग कवर' का एक बंडल और ४४ सजिल्द प्रतियाँ उठा ले गई।"

देशके एक अग्रगण्य पत्रकार और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको अपमानित करके बंगालकी सरकारने जो सन्तोष लाभ किया है, वह उसे मुबारक हो। सरकार जान ले कि अपने इन कार्योंसे वह जनताके असन्तोषकी मात्राको बढ़ा रही है। आज भले ही इन अपमानोंका बदला लेनेका हमारे पास कोई उपाय न हो, किन्तु वह समय शीघ्र ही आ रहा है, जब हम इतने असहाय नहीं रहेंगे।

लालाजी स्मारक

लालाजीकी लोक-सेवक-समितिके नेतृत्वका भार स्वीकार करनेके बाद श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन शान्त होकर कैसे बैठ सकते थे? वह तुरन्त ही मेरे पास साबरमती आये और सलाह ली कि लालाजी-स्मारक-कोषकी बची हुई रकम किस तरह एकत्र की जाये। उत्तरप्रदेशके निवासी होने और (लगभग) अपना सारा जीवन वहीं सेवामें बितानेके कारण, स्वभावतः उनकी आँखें अपने प्रान्तकी ओर ही उठीं। उन्हें इस बातकी चिन्ता हो रही थी कि कहीं उनकी यात्रा मेरी खादी-यात्राके मार्गमें बाधक तो नहीं हो जायेगी। मैंने उनसे कहा कि वे यह विचार छोड़ दें कि उनके

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २२-८-१९२९ का उप-शीर्षक "एक समादरणीय त्याग"।

चन्देका मेरी यात्रा पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यों तो मैं स्वयं यह चाहता कि दोनों कामोंके लिए एक साथ ही द्रव्य इकट्ठा करूँ। मगर अनुभवने मुझे सिखाया है कि एक समयमें एक ही काम भली-भाँति किया जा सकता है। अतएव बर्मा और आन्ध्रकी भाँति यद्यपि मैं इन दोनोंको एक-साथ नहीं मिला सकता, तथापि जो लोग मुझे स्मारक-के लिए भी कुछ देना चाहेंगे, उसे मैं बड़े प्रेमसे स्वीकारूँगा। इस दृष्टिसे मैं श्री पुरुषोत्तमदासकी स्मारक-यात्राका स्वागत करता हूँ। जो लोग स्वर्गीय लोकनेताकी स्मृतिका आदर करते हैं (और कौन नहीं करता?), अगर वे स्मारक के लिए कुछ दान देंगे तो मैं उसे खुशी-खुशी स्वीकार करूँगा। किसी भी तरह क्यों न हो मैं यह चाहता हूँ कि मेरी यात्राके कारण श्री पुरुषोत्तमदासजीकी स्मारक-कोष यात्राके काममें कोई बाधा न पड़े। सचमुच ही यह बड़े दुःख और लज्जाकी बात है कि यह रकम इतने लम्बे समय तक भी एकत्र नहीं हो पाई है।

अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन[1]

कांग्रेसकी अस्पृश्यता-विरोधी समितिके मन्त्री जमनालालजीको बरारकी भूतपूर्व राजधानी इलिचपुरके प्रसिद्ध दत्तात्रेय-मन्दिरको तथाकथित अछूतोंके लिए खुलवा देनेमें सफलता प्राप्त हुई है। गत ३१ जुलाईको उन्होंने गण्यमान्य सज्जनोंकी एक सभाके समक्ष इसका उद्घाटन किया। इलिचपुरकी आबादी ३८,००० है और यह मन्दिर वहाँके विशालतम मन्दिरोंमेंसे है। स्वामी विमलानन्दके प्रयत्नोंसे पन्द्रह वर्ष पूर्व यह ८३,००० रुपयोंकी लागतसे बना था। प्रबन्धक समितिमें २४ सदस्य हैं; उनमेंसे १८ सदस्योंने इस बातके पक्षमें मत दिया। ५ न्यासियोंकी जो समिति है उसने सर्वानुमतिसे मन्दिरका अछूतोंके लिए खोला जाना मँजूर किया। प्रवेश-द्वारपर अब जो तख्ती लगाई गई है वह इस प्रकार है:

> **आजसे इस मन्दिरमें भंगी, महार, चमार और अन्य सभी हिन्दू समान-भावसे दर्शन, भजन, पूजन, प्रार्थना और धार्मिक प्रवचन सुनने आदिके लिए अबाध रूपसे जा सकेंगे।**

उद्घाटन विधिके पहले अमरावतीके डा० पटवर्धनकी अध्यक्षतामें एक सार्वजनिक सभा भी की गई थी।

हिन्दूधर्म और राष्ट्रकी इस सेवाके लिए उक्त समारोहके संयोजकगण बधाईके पात्र हैं। हम आशा करते हैं कि जमनालालजी अन्य देवालयोंके न्यासियोंको भी वर्धा और अब इलिचपुरके इस उदाहरणका अनुसरण करनेके लिए प्रेरित कर सकेंगे। यह शुभारम्भ समुद्रमें बूँदके समान ही है। अभी तो लाखों देवालय अछूतों पर लगे हुए इस प्रतिबन्धको उठानेके रूपमें हो सकनेवाले इस प्रारम्भिक पवित्रीकरणकी राह देख रहे हैं। जबतक अस्पृश्यताका शाप धुल नहीं जाता, तबतक हिन्दुओंका सिर लज्जासे झुका ही रहेगा।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-८-१९२९ का उप-शीर्षक "दूसरा मन्दिर खुला" भी।

राजपूतानामें कताई-स्वावलम्बन

रींगसमें श्री मूलचन्दजी कताई स्वावलम्बनकी दिशामें संगठन-कार्य कर रहे हैं। वहाँ किये गये कामका एक दिलचस्प विवरण उन्होंने भेजा है। मैं यहाँ उसका सारांश दे रहा हूँ।

काम, मार्च १९२८ में शुरू किया गया था। पहले एक पाठशालाका प्रारम्भ किया गया; मन्शा इसके माध्यमसे सम्पर्कका प्रयत्न करना था। किन्तु फिर देखा कि सयानोंसे प्रत्यक्ष सम्पर्क करना जरूरी है। इसलिए किसानोंके खेतसे लौटने पर कार्यकर्त्ताओंने उनसे घर पर मिलना प्रारम्भ किया। चरखे उनके घरोंमें थे; मगर वे बेकाम पड़े हुए थे। पहले उनसे पिंजाई सीखनेके लिए कहा गया। कुछ लोग सीखने लगे। यह काम रातको ९ और १०के बीचमें सिखाया जाता था। किन्तु पिंजारोंमें जिनका यह धन्धा ही था, इससे हलचल मच गई और उन्होंने भोले-भाले किसानोंमें तरह-तरहकी बातें फैलानेकी कोशिश की। कार्यकर्त्तागण विचलित नहीं हुए। उन्होंने सारे किसानोंकी एक सभा बुलाई और उनके सामने जनकल्याणसे प्रेरित अपना उद्देश्य स्पष्ट किया। लोगोंको भरोसा हो गया और काम सुचारु रूपसे चलने लगा। फलस्वरूप विवरण प्रस्तुत करनेकी अवधि तक ५२८९ व्यक्तियोंकी आबादी-वाले ६१ गाँवोंके ९३३ कुटुम्बोंमेंसे ४१० कुटम्बोंने इस हलचलमें भाग लिया है। इनमेंसे ६७ कुटुम्बोंने अपने ही काते हुए सूतसे अपने उपयोगके लायक साराका सारा कपड़ा बना लिया; अर्थात् ३४९ लोगोंने और ५९५ स्त्री-पुरुषोंने थोड़ा-बहुत कपड़ा तैयार किया। इस अवधि अर्थात् ८ महीनोंमें ९१५ व्यक्तियोंने धुनाई सीख ली। इस तरह कुल मिलाकर २,३९८ गज खादी तैयार हुई। यह खासी अच्छी प्रगति है और इससे जाहिर होता है कि धीरजके साथ काममें लगे रहनेसे लोगोंके साथ सम्बन्ध बनाये जा सकते हैं और उन्हें अपने कल्याणकी दिशामें दिलचस्पी लेनेको प्रेरित किया जा सकता है। रींगसके आसपासके गाँवोंमें जो कुछ हो सका वह बिला-शक कम-ज्यादा परिमाणमें सारे देशमें सम्भव है।

पश्चिममें सरोजिनी देवीका काम

श्री धनगोपाल मुखर्जी लिखते हैं:[1]

> **श्रीमती सरोजिनी नायडूकी अमेरिका-यात्रासे अमेरिकावासी भारतीयोंके सौभाग्यका उदय हुआ और अमेरिकी जनताने बहुत अधिक लाभ उठाया है। उनकी इतनी बड़ी सफलताका कारण उनकी निडरता थी। खरी-खरी बातें सुनानेसे कोई नाराज हो जायेगा, इस बातकी उन्होंने कभी परवाह न की। साथ ही खुशामद द्वारा किसीको खुश करनेकी कोशिश भी उन्होंने नहीं की। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि न्यूयार्ककी रूखे दिलवाली यान्त्रिक जनता उनकी भाषण-शक्ति पर लट्टू हो गई थी। अंग्रेजी भाषा पर उनका जो अधि-**

१. अंशतः उद्धृत।

कार है, मैं नहीं जानता कि दुनियाके किसी भी व्यक्तिका किसी भाषा पर इतना अनुपम काबू हो। मगर सबसे अधिक गर्वकी बात तो यह थी कि विजेताकी भाषा पर इतना अधिक प्रभुत्व पा लेनेका उन्हें तनिक भी गर्व न था। उनकी यह अन्तिम विशेषता विरोधियोंके मानका मर्दन करनेमें खूब सफल हुई। एक गुलाम, विजेताकी भाषापर अधिकार पाकर किस बूतेपर गर्व करे!

इससे आपको पता चलेगा कि हमारी हैदराबाद निवासिनी श्रीमती सरोजिनी देवीने और उनकी मोहिनी वाणीने हमें किस दर्जे तक मुग्ध किया है। उन्होंने जिस सुन्दरताके साथ अपने कर्त्तव्यका पालन किया वह सहज ही भूला नहीं जा सकता। उन्हें फिरसे यहाँ भेजियेगा।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार

विदेशी वस्त्र बहिष्कार समितिके मन्त्री श्री जयरामदास दौलतराम लिखते हैं:[1]

विदेशी वस्त्र बहिष्कारके कार्यक्रममें जो प्रगति हुई है, उसकी दुबारा जाँचके लिए सिर्फ पाँच हफ्ते और बाकी हैं और इस कामके लिए अक्तूबरकी दूसरी तारीख ठहराई गई है। इस सालके जो थोड़े महीने और बच रहे हैं, अगर उनमें बहिष्कार आन्दोलनकी ठीक-ठीक प्रगति न हुई और उसके द्वारा हम जनताको जितना चाहिए उतना जागृत न कर सके तो लाहौरकी कांग्रेस पहली जनवरी १९३०से सविनय-भंगका कोई भी प्रचण्ड कार्यक्रम देशके सम्मुख पेश नहीं कर सकेगी।

अतएव मैं हमारी तमाम संस्थाओंसे बड़े आग्रहके साथ प्रार्थना करता हूँ कि वे पहली सितम्बरसे दिसम्बर १९२९ के अन्ततक बहिष्कारके कार्यक्रमको सफल बनानेकी सचाई और लगनके साथ पूरी-पूरी कोशिश करें।

पिछले आठ महीनोंकी प्रगतिको देखते हुए मैं नहीं समझता कि शेष महीनोंमें हम कोई खास तरक्की कर सकेंगे। अब तक जो भी तरक्की हुई है, उसके लिए हमें उस प्रभुका आभार मानना चाहिए। मगर जो काम हमें करना है, उसके मुकाबले तो हम अब तक कुछ भी नहीं कर सके हैं। इस समय उग्र आन्दोलनकी आवश्यकता है। मगर इसके लिए हममें देशभक्तिकी धधक—उसके लिए मनमें जलती ज्वाला चाहिए। दुःख है कि अब तक भी कांग्रेस समितियाँ जगी नहीं है। नियमपूर्वक विवरण भेजनेवाली समितियोंकी संख्या आज भी बहुत कम है। अनेक समितियों ने तो अब तक अपने विवरण भेजे ही नहीं हैं। अगर तमाम कांग्रेस-समितियाँ एकाग्रचित्त होकर शीघ्र ही इस काममें जुट नहीं जायेंगी तो इस सालके आखिरमें हम कुछ भी न कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-८-१९२९

१. अंशतः उद्धृत।

२८७. 'देवदासी'

अथक परिश्रमी डा० एस० मुत्थूलक्ष्मी रेड्डी लिखती हैं:[1]

चूँकि आप हिन्दू मन्दिरोंमें देवदासी प्रथाकी खुले तौर पर भर्त्सना करते रहे हैं, इसलिए मैं इस बुराईसे छुटकारा दिलानेके महान् कार्यमें आपसे सहायता का अनुरोध करनेका साहस कर रही हूँ। इस प्रेसीडेंसीमें अपने इस कार्यको मैं अत्यधिक कठिन पा रही हूँ क्योंकि तथाकथित शिक्षित लोग और यहाँतक कि कुछ सुप्रसिद्ध कांग्रेसी तक सुधारके मेरे प्रयत्नोंका विरोध करते हैं और इस कुख्यात प्रथाका पक्ष लेते हैं।

मेरे द्वारा प्रस्तुत 'देवदासी विधेयक' जो अब अधिनियम बन चुका है, सिर्फ 'इनाम' धारी देवदासियोंसे सम्बन्धित है। लेकिन इस समुदायका एक हिस्सा ऐसा भी है जो धर्मकी ओटमें आत्मसमर्पण करता है और यह भी केवल वेश्यावृत्तिके द्वारा अपनी आजीविका कमानेके लिए। यह बच्चोंका अवैध व्यापार ही है और कुछ नहीं; क्योंकि बच्चोंको खरीदा और गोद भी लिया जाता है। ('हिन्दू विधि'के अन्तर्गत देवदासियोंको गोद लेनेकी इजाजत है) . . . उस समुदायके प्रबुद्ध व्यक्तियोंने कई ज्ञापन और याचिकाएँ भेजी हैं जिनमें मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं ऐसा एक विधेयक प्रस्तुत करूँ जिसमें बच्चोंके मन और शरीरको व्यापारकी वस्तु बनानेवालोंको दण्ड देनेकी व्यवस्था हो।

भारतीय दण्ड-संहिताकी खण्ड ३७२ और ३७३की व्यवस्थाएँ प्रभावहीन साबित हो चुकी हैं। इसलिए मैंने एक दूसरा विधेयक प्रस्तुत करनेकी सूचना विधानपरिषदको दे दी है, जिसकी सफलताके लिए मैं आपका आशीर्वाद चाहती हूँ। कुछ लोग यह भी दलील दे सकते हैं कि जबतक सामान्य जनता इस प्रथाकी बुराईको स्वयं महसूस नहीं कर लेती, तबतक कानूनी व्यवस्थाका कोई लाभ नहीं होगा, लेकिन मेरा अपना मत है कि हममेंसे काफी लोग इस अन्यायको महसूस करते हैं। . . .

देवदासीसमाजमें भी बड़ी जागृति आ गई है और वे बड़े पैमाने पर प्रचार कर रही हैं; लेकिन मुझे यह देखकर दुःख होता है कि उच्च वर्णके हिन्दू उनके अपना सुधार करनेके इन प्रयत्नोंमें कोई सहायता नहीं देते। और हमारी इस प्रेसीडेंसीमें बच्चोंकी रक्षाके लिए कोई कानूनी व्यवस्था तो जैसे है ही नहीं।

१. अंशतः उद्धृत।

मैं लेखिकाके प्रस्तावका हृदयसे समर्थन करता हूँ और निःसन्देह मैं नहीं समझता कि प्रस्तावित विधेयक जनताकी आम रायसे कुछ बहुत ज्यादा आगे चला गया है। जो आवाज उठा सकता है ऐसा साराका सारा प्रबुद्ध लोकमत इस प्रथाको किसी भी रूपमें बनाये रखनेके विरुद्ध है। इस अनैतिक-व्यापारमें लगे हुए लोगोंकी रायको तो उसी तरह कोई महत्व दिया नहीं जा सकता, जिस तरह लोकमतके विरुद्ध होने पर चंडूखाने चलानेवालोंकी रायको कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। जो इसका अस्तित्व सहन करते हैं, देवदासी-प्रथा उन लोगोंके नाम पर कलंक है। जनतामें ढिलाई न होती तो इस प्रथाका कभीका खात्मा हो गया होता। लेकिन इस देशकी जनताका सद-असद्-विवेक न जाने क्यों सुषुप्त पड़ा है? बहुधा वह अनेक अन्यायोंकी कुरूपता महसूस तो करता है, पर उनके बारेमें हाथ-पैर हिलानेकी ओरसे बिलकुल उदासीन या अकर्मण्य बना रहता है। लेकिन यदि डा० रेड्डी जैसे कर्मठ व्यक्ति पहल करें तो उदासीनताको जिस हद तक तत्परतामें बदले जानेकी आशा की जा सकती है, लोग उतनी हदतक जागरूक हो जाते हैं। इसलिए मेरी रायमें डॉ० रेड्डीका प्रस्ताव किसी भी रूपमें ठीक समय आनेसे बहुत पहले रखा गया प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता। बल्कि इस तरहके प्रस्तावको बहुत पहले ही लाया जा सकता था। जो भी हो, मैं आशा करता हूँ कि उनको धार्मिक और सामान्य सामाजिक जीवनमें पवित्रता लानेके आकांक्षी सभी जनोंका हार्दिक सहयोग प्राप्त होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-८-१९२९

२८८. मूर्तिपूजा

एक जिज्ञासु लिखते हैं :

१. जिस मूर्तिपूजाका आप समर्थन करते हैं उसकी विधि क्या है? क्या किसी महापुरुषकी मूर्तिका दर्शन-मात्र पर्याप्त है अथवा उसे भोग (नैवेद्य) लगाना आदि भी? जब मूर्ति भोजन नहीं कर सकती तो उसके सामने भोजनादि रखना कहाँ तक सार्थक है?

मेरे पास मूर्तिपूजाकी कोई विधि नहीं है। प्रत्येक मनुष्य या समाज अपनी-अपनी विधि निश्चित कर सकता है। यही होता भी है। विधिके द्वारा हम उस व्यक्ति या समाजकी सभ्यताका दिग्दर्शन करते हैं। विधिमें धर्म, कर्म और रिवाजका प्राबल्य ज्यादा है। जैसे भक्त वैसे भगवान। क्योंकि यह सब कल्पना ही है। लेकिन जबतक कल्पना काम करती है, तबतक वही सच्ची वस्तु जैसी प्रतीत होती है।

दूसरा प्रश्न यों है :

२. शरीरधारी मनुष्यमें, फिर चाहे वह महापुरुष ही क्यों न हो, कुछ-न-कुछ दोष तथा त्रुटियाँ तो रहती ही हैं। अब यदि कोई मनुष्य ऐसे पुरुषकी मूर्तिकी उपासना

करता है तो मेरे खयालसे उसके दोष भी उसमें आने लगेंगे, क्योंकि उपास्यके गुण-दोष, दोनों ही, उपासकमें आ जाते हैं। क्या इस प्रकारकी उपासना आपको इष्ट है?

हमारे दो उपास्य हो सकते हैं। एक काल्पनिक आदर्श व्यक्ति और दूसरा ऐतिहासिक। मुझे काल्पनिक उपास्य ही अभीष्ट है। सम्पूर्णावतार कृष्णचन्द्र एक काल्पनिक आदर्श अवतार हैं। ऐतिहासिक श्रीकृष्ण सदोष हैं। यदि उपास्य गुण-दोषमय है तो उपासकमें भी उसके गुण-दोष अवश्य आयेंगे।

वही फिर पूछते हैं :

३. जीवात्मा सहित शरीरको चेतन और जीवात्मा रहित शरीरको जड़ कहा जाता है। यदि यह कहें कि जड़ मूर्तिमें भी सर्वव्यापक चेतन तत्व मौजूद हैं तो यह समझनेवाला कि ईश्वर सर्वव्यापक है, उसे मूर्तिमें ही सीमित क्यों समझे? चक्रवर्ती राजाको कोई एक छोटे-से गाँवका ही राजा कहे तो क्या उसका अपमान नहीं होगा?

चक्रवर्तीके शासनको हम किसी एक गाँव तक ही सीमित नहीं रखते। परन्तु जैसे वह लाखों देहातोंका शासक है वैसा ही एक गाँवका भी सम्पूर्ण शासक है। और यह बिलकुल सम्भव है कि एक देहातीको किसी दूसरे देहातका खयाल तक न हो। भक्त शिरोमणि तुलसीदासके भगवान सुदर्शनचक्रधारी कृष्णचन्द्र नहीं, बल्कि धनुर्धारी सीतारमण रामचन्द्र थे। यही वजह है कि वह कृष्णकी मूर्तिमें भी रामचन्द्रका ही दर्शन करते थे।

उनका चौथा प्रश्न यों है:

४. आपने कई बार लिखा है कि अमुक कार्यकी सिद्धिके लिए लोगोंको ईश्वरकी प्रार्थना करनी चाहिए, जैसे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता। तो फिर जो लोग वृक्षको ईश्वरवत् समझकर पूजते हैं वे अपने या दूसरेके लिए उसकी मन्नत क्यों न मानें?

मन्नत माननेमें तटस्थता नहीं होती; उसमें राग होता है, अतः द्वेष भी हो सकता है। मेरी आदर्श प्रार्थना रागरहित है, इसलिए वह सर्वव्यापक और अचिन्त्य ईश्वर तत्त्वके प्रति की जाती है। परन्तु जो वृक्षमें भी भगवानकी कल्पना करते हैं वे किसी स्वार्थ-पूर्ण प्रार्थनाके बदले हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य जैसी पारमार्थिक प्रार्थना भले ही कर सकते हैं।

अपने पाँचवें प्रश्नमें वे पूछते हैं :

५. श्रद्धाके साथ विवेककी आवश्यकता है या नहीं। विवेकरहित श्रद्धाको क्या आप अन्धश्रद्धा, अन्धविश्वास नहीं कहेंगे? और अन्धश्रद्धासे तो संसारमें बहुतसे अनर्थ हुआ करते हैं?

मेरी श्रद्धा तो ज्ञानमयी और विवेकपूर्ण है। जो बुद्धिका विषय है, वह श्रद्धाका विषय कदापि नहीं हो सकता। इसलिए अन्धश्रद्धा श्रद्धा ही नहीं है।

उनका छठवाँ और अन्तिम प्रश्न यों है:

६. जिस प्रकार आप मनुष्य-मात्रके लिए सत्य और अहिंसाका एक ही मार्ग बतलाते हैं, उसी प्रकार क्या आप उपासनाका कोई एक मार्ग सबके लिए उचित नहीं समझते? फिर वह उपासना तथा प्रार्थना चाहे किसी भी भाषामें क्यों न की जाये।

सत्य और अहिंसा सर्वव्यापक सिद्धान्त या तत्व हैं। उपासना मनुष्यकृत एक आवश्यक प्रचण्ड साधन है। इसलिए वह देशकालसे परिमित है और उसमें विविधता रहती है, रहना आवश्यक भी है। उसका अन्तिम निचोड़ तो एक ही है। जैसे, कहा भी है कि, सब नदियोंका पानी जिस तरह समुद्रमें गिरता है, उसी तरह सब देवोंके प्रति की गई वन्दना, किया गया नमस्कार मात्र केशवको पहुँचता है।

हिन्दी नवजीवन, २९-८-१९२९

२८९. पत्र : वसुमती पण्डितको

३० अगस्त, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि वहाँसे छुट्टी मिले तो दो-तीन दिनके लिए जरूर चली आओ। मैं नियमपूर्वक रोज घूमने जाता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२६४) से तथा (सी० डब्ल्यू० ५११) से भी।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

२९०. पींजन और धनुर्विद्या

हमारी भाषा गुजरातीमें पींजना अप्रतिष्ठित शब्द है। आलंकारिक भाषामें भी वह निन्दावाचक अर्थमें प्रयुक्त होता है। जो व्यर्थ ही किसी बातको बार-बार दुहराया करता है उसके सम्बन्धमें हम कहते हैं: "वह तो पींजा ही करता है।" शब्दका ऐसा उपयोग रूढ़ हो जानेके कारण पींजन-शास्त्र या पींजन-विद्या शब्द भी सुहावना नहीं लगता। पींजनकी एक नई किस्म जो 'बारडोली धनुष'के नामसे विख्यात है, धनुषाकार बाँसकी बनाई जाती है, और धनुष जैसी ही होती है, अतएव मैंने पींजन-शास्त्रके बदले क्षत्रियोचित और आदर-प्राप्त धनुर्विद्या शब्दका उपयोग करनेकी धृष्टता की है। इसके लिए मैं विद्वानोंसे क्षमा चाहता हूँ। रूढ़ शब्दका इस तरह स्वतन्त्र प्रयोग होता देखकर अगर भाषा के अन्य प्रेमी भी मुझपर क्रोध करें, तो मैं उनसे भी क्षमाकी प्रार्थना करता हूँ।

लेकिन मेरे विचारमें जब हमारी भाषाका विकास हो रहा है, उसमें नये विचार प्रवेश पा रहे हैं, नई शोध की जा रही है, वीरता आदिका क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है, तब हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम शब्दोंके उपयोगके सम्बन्धमें उदारतासे काम लें।

वर्षों पहलेसे मैं जिस स्वतन्त्र ढंगसे शब्दोंका प्रयोग करता आया हूँ, पाठक उससे अनजान नहीं हैं। मैंने क्षत्रिय शब्दकी नई व्याख्या की है। जो मारनेकी विद्या जानता है, वह क्षत्रिय नहीं, बल्कि जो मरकर दूसरोंको जिलानेकी विद्या हस्तगत करता है वही क्षत्रिय है। क्षत्रिय वह भी है जो सतत चलते रहनेवाले जगतके देवासुर-संग्राममें 'अपलायनम्'के मन्त्रकी ठीक-ठीक सिद्धि प्राप्त करता है और जो दयाकी साक्षात् मूर्ति है। ऐसे क्षत्रियकी धनुर्विद्या क्या होगी? इस प्रश्नपर विचार करते हुए जिस तरह बढ़ईका मन सहज ही बबूलकी ओर खिचता है, उसी तरह अगर मेरा मन पींजनकी ओर दौड़ जाये तो आश्चर्य ही क्या? अगर हम पींजनको निर्दोष बना लें और नौजवान उसके उपयोगमें दक्षता प्राप्त कर लें, तो वे प्रतिदिन थोड़ा समय खर्च करके भी लाखों स्त्रियोंकी सेवा कर सकते हैं। कताईशास्त्रके जानकार पुकार-पुकार कर कहते हैं कि अगर धुनाई एकसी हो, पूनीमें रेशे अलग-अलग और एक सीधमें जमे रहें तो सूत सहज ही अच्छा, यकसां और मजबूत निकले। अगर कोई मुफ्त ही पूनियाँ बनाकर दे तो जो बहनें आज पींज नहीं रही हैं और जो कभी पींजेंगी भी नहीं, उनकी बड़ी भारी सेवा हो सके। और अगर यह हो सके तो खादीको सस्ता करनेमें बड़ी मदद मिले। कताई-कामकी गति चीटीकी सी है; मगर धुननेकी या यों कहिये कि धनुर्विद्याकी गति ऐसी नहीं है। दूसरे, धनुर्विद्या में बाहुबल और हृदयबलकी खासी जरूरत रहती है। जिसे देखना हो, वह एक पिंजारेका सीना देखे। हर पिंजारेका सीना मनमें ईर्ष्या उपजानेवाला होता है; गोलाकार, उठा हुआ और सुन्दर। उसके हाथके स्नायु भी उतने ही सुगठित होते हैं। एक दृढ़ धनुर्धारी कमसे-कम २० बहनोंकी सेवा कर सकता है। क्योंकि वह दस घंटोंमें कम-से-कम १० सेर रुई तो पींजता ही है। १० घंटों तक दस बारह नम्बरका सूत कातनेवाली २० बहनोंके लिए दस सेर रुई आवश्यकतासे अधिक है। इस परसे कोई भी यह समझ सकता है कि इस विद्याके सीखनेवालेको सन्तोषप्रद गतिसे काम करनेका अवसर मिल सकता है।

एक बात और; पींजनेका काम, स्वतन्त्र धंधेके रूपमें, प्राचीनकालसे हमारे देशमें होता रहा है, तथा दूसरे धन्धोंके मुकाबले होड़में टिक सका है। आज एक पिंजारेकी माँग प्रतिमास तीस रुपयेकी होती है और उसे इतना मिलता भी है। शुरू-शुरूमें आश्रमने एक पिंजारेको ७०) प्रतिमास पर रखा था। एक मामूली पिंजारा भी आज ।।) रोज तो कमा ही लेता है। इस सुन्दर धनुर्विद्याके ज्ञानको सर्व-सुलभ बनानेके लिए एक पुस्तककी जरूरत है। मगनलाल गांधीकृत 'बुनाईशास्त्र'में इस विषयका भी उल्लेख है; मगर उसमें तो केवल मूल तत्त्वोंकी चर्चा ही हो सकती थी। दूसरे, उसके बादसे अबतक इस विद्याने बहुत प्रगति की है। गुजरात विद्यापीठने इस राष्ट्रपोषक,

करोड़ोंके उद्धारक, महान् शास्त्रको अपने यहाँ उचित स्थान दिया है। विद्यापीठने इस शास्त्रकी परीक्षाएँ नियत की हैं, और इस तरह वह इस शास्त्रके महत्त्वको दिन-दिन समझता और बढ़ाता जा रहा है। अतएव धनुर्विद्याकी पुस्तककी जरूरत महसूस की गई है। पुस्तककी उपयोगिताको बढ़ानेके लिए महामात्रकी ओरसे इस विद्याके जानकारोंको उद्देश्य करके एक प्रश्नावली प्रकट की गई है। प्रश्नावली सूक्ष्म और लम्बी है, और एक वर्ग विशेषके लोगोंके सिवा दूसरे उसमें दिलचस्पी नहीं ले सकते, इस वजहसे उसे यहाँ नहीं दे रहा हूँ। मगर जिन्हें इस विषयसे दिलचस्पी हो वे 'महामात्र, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद,'को लिखकर प्रश्नावलीकी प्रति मँगा लें। पतेके स्थानकी बायीं ओर 'धनुर्विद्या-विषयक' लिखनेसे महामात्रके कार्यालयको सुविधा होगी।

यहाँ शायद यह लिख देना जरूरी है कि 'धनुर्विद्या' शब्द अभी विद्यापीठने स्वीकार नहीं किया है। पहली बार मैंने ही इस लेखके लिए उसका उपयोग किया है। इस उपयोगके लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ। काकासाहब या दूसरे अधिकारी उसे अस्वीकार कर सकते हैं। जिसे इस शब्दका यह उपयोग न जँचे, वह इससे कोई मधुर शब्द बतानेकी कृपा करे। पिंजारेको 'ताँती' भी कहते हैं। पींजनमें ताँतके प्रधान होनेके कारण उसे ताँत-विद्या या ताँत-शास्त्र भी कहा जा सकता है। मगर मुझे तो 'धनुर्विद्या' शब्द ही प्रिय है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १-९-१९२९

२९१. टिप्पणी

श्री हीरालालकी योजना

श्री हीरालालकी चरखा-सम्बन्धी जो योजना 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'में प्रकाशित हुई है उसके विषयमें तीन अनुभवी सज्जनोंकी ओरसे एक ही दोष सूचित किया गया है। अन्य जो सज्जन इस योजना पर विचार कर रहे हैं वे भी इसके दूसरे दोषोंको समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिए प्राप्त पत्रोंसे उक्त एक दोष नीचे दे रहा हूँ:[1]

श्री हीरालाल और अन्य लोग भी इस बातपर विचार करें। श्री हीरालालकी यह योजना सदोष और निकम्मी सिद्ध भले ही हो जाये फिर भी मुझे तो उनका प्रयत्न प्रिय ही लगेगा। इस तरहके प्रयत्न बहुत जरूरी हैं। इसी दिशामें काम करते हुए यदि नया चरखा हाथ न लगा तो भी दूसरी कई बातें सामने आयेंगी। किसान विरासतमें अपने बच्चोंको 'खेतमें सोना गड़ा है' ऐसा बता गया था। बच्चोंको वह सोना भले न मिला हो किन्तु कड़े श्रमके फलस्वरूप उन्हें सोनेकी फसल मिली जो

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। श्री हीरालालने पोले तकुएका प्रयोग सुझाया था। पत्रलेखकका कहना था कि इसमें सूतके बट खुल जायेंगे और सूत कमजोर हो जायेगा।

स्वर्ण-घटसे भी अधिक बहुमूल्य सिद्ध हुई और वे कड़े श्रमकी विरासतका महत्त्व समझ गये।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १-९-१९२९

२९२. सबके लिए पठनीय

नवजीवन प्रकाशन मन्दिरने महादेव देसाई द्वारा लिखित 'बारडोली सत्याग्रहनो इतिहास' अभी-अभी प्रकाशित किया है। इसे महादेव देसाईने लिखा है, इसीलिए.. यह विवरण साधिकार तो है ही और पाठक इसमें दिये गये प्रत्येक तथ्यकी सत्यता के विषयमें असन्दिग्ध रह सकता है। जब वातावरण इस प्रचण्ड सत्याग्रहकी सुगन्धसे भरा हुआ है और लोग आगामी वर्षको उत्सुकतासे देख रहे हैं, उस समय स्वराज्यके लिए उत्सुक प्रत्येक व्यक्तिका यह जान लेना धर्म है कि सत्याग्रह कैसा शस्त्र है, उसकी क्या मर्यादा है, बारडोली-सरदार तथा बारडोलीके लोगोंने उसका किस तरह उपयोग किया, किस प्रकार उन्हें इसमें विजय मिली, उसके कैसे सुन्दर नतीजे निकले और उसका प्रभाव कहाँ तक हुआ। इसलिए यह इतिहास बहुत ही प्रासंगिक है। हरएकको इसे बारीकीसे पढ़ जाना चाहिए। विषयको देखते हुए न पुस्तक बहुत बड़ी है, न छोटी। यह डेमी आकारके ३८९ पृष्ठोंमें आ गई है। इसमें छः चित्र हैं। इनमें सबसे उपयोगी चित्र है बारडोलीका नक्शा और उसमें सूचित किये गये मुख्य गाँव। जाँच-समितिने ४७ गाँवोंमें गवाहियाँ ली थीं। इन गाँवोंको अंक डालकर सूचित किया गया है। अन्य उपयोगी तफसील इसमें दी गई है। अन्य उपयोगी चित्रोंमें बारडोलीमें 'बनियोंकी एक सभा' विशेष द्रष्टव्य है। इस इतिहासकी कीमत केवल १२ आना[1] रखी गई है। मैं आशा करता हूँ कि सभी लोग इस पुस्तकको मँगवाकर ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे, इसपर विचार करेंगे और उससे भविष्यमें स्वराज्य-यज्ञमें स्वयं किस प्रकारकी आहुति दे सकेंगे, इस विषयमें भी कुछ प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १-९-१९२९

१. साधन-सूत्रकी पादटिप्पणीमें कहा गया था कि जो इसे डाकसे मंगाना चाहें वे डाक खर्चके लिए तीन आने अतिरिक्त दें।

२९३. स्वावलम्बनकी योजना

मैंने भाई शिवाभाईका लेख[1] छापा तो जरूर था, किन्तु उसके विरोधमें मेरे पास तीन लेख आये हैं। अन्तिम पत्र भाई जेठालालका है। भाई जेठालाल जो कहते हैं, उसका खण्डन सरल नहीं है; क्योंकि वे जो लिखते हैं उसका उन्हें अनुभव है और फिर जिस कामको हाथमें लेते हैं उसे दृढ़तापूर्वक करते चले जाते हैं। वे लिखते हैं।[2]

वे सभी खादी-प्रेमी जिन्होंने खादीके शास्त्रका अभ्यास किया है, इस लेखको ध्यानसे पढ़ें। जो इस शास्त्रको नहीं जानते वे यदि गणितको समझ लें तो वे भी लेखमें जो रस है उसका आनन्द ले सकेंगे। किन्तु इतना कह चुकनेके बाद मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मैंने जो पहले कहा था, उसपर मै अभी तक दृढ़ हूँ। मेरा तो अब भी यही विश्वास है कि खादीके व्यापक प्रचारके लिए 'कातनेवाले बुनें भी'का सूत्र व्यावहारिक नहीं है। न यह आदर्श अवस्था ही है। इस योजनाके मूलमें मनुष्यके प्रति अविश्वास छिपा हुआ है। बुनाईका एक सम्पूर्ण और स्वतन्त्र धन्धा है, उसका घर-घर प्रचार नही किया जा सकता, अगर किया ही जाये तो श्रम-विभाग के व्यापक सिद्धान्तको हानि पहुँचेगी। मनुष्य जितना स्वावलम्बी है, उतना ही परावलम्बी भी है। और उसे नम्रतामय बनानेके लिए ऐसा होना आवश्यक है भी। अगर हम एक बिलकुल स्वतन्त्र मनुष्यकी कल्पना कर सकें, तो वह सामाजिक प्राणीके दायरेमें न आ सकेगा, सामाजिक प्राणी न रहनेसे वह अहिंसक न रह जायेगा, एवं प्राणीमात्रके साथ अपनी एकता स्थापित न कर सकेगा।

यह कहा गया है कि अगर कातनेवालेको स्वयं बुनना न पड़े तो वे उम्दा सूत नहीं कातेंगे। इस कथनमें मनुष्यजातिकी निन्दा है। जब सिर्फ सूत कातनेवाली मिलें उम्दा सूत तैयार करती हैं, तो सिर्फ चर्खेपर सूत कातनेवाले क्यों उम्दा सूत नहीं कातेंगे? प्रेम उनसे सुन्दर सूत कतवायेगा। यह दूसरी बात है कि कताई कामकी पूरी जानकारी हासिल करनेके लिए बुनाई जान लेना जरूरी है। पाठक भी इस बातको ध्यानमें रखें। सूतके अच्छे होनेके लिए हरएक कातनेवालेको अपना कपड़ा आप ही बुन लेनेकी जरूरत कदापि न होनी चाहिए। दिन-दिन मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि सूतको अच्छा बनानेके लिए स्वतन्त्र प्रयत्न आवश्यक है।

१. शिवाभाईका उक्त लेख **नवजीवन**में १८-८-१९२९ को छपा था और उसपर गांधीजीने टिप्पणी भी लिखी थी। लेखमें शिवाभाईने १४-४-१९२९ के **नवजीवन**में प्रकाशित जेठालाल भाईके लेखमें कही गई इस बातका आँकड़े देकर खण्डन किया था कि यदि कोई व्यक्ति कपड़ा बनानेसे सम्बन्धित बुनाई तककी सभी क्रियाएँ स्वयं करे तो वह लाभकारी बात होगी।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कहा था कि यदि बुनने तककी सभी क्रियाओंको खुद न करें तो कपासकी कीमत, लोढ़ाई, पिंजाई और कताई तक ही १० अंकके सूतकी ३० इंची एक गज खादीके दाम लगभग ३ रुपये हो जायेंगे, और यह मिलके मुकाबिले बहुत मँहगा कहलायेगा। लेखककी अन्य बातें गांधीजीके उत्तरोंसे ध्वनित हो जाती हैं।

कातनेवालेकी दृष्टिसे भी उसका सुन्दर होना लाभप्रद है। अतएव हम इस बातसे पूरा लाभ उठाकर सूतको उम्दा बनायें। जो असंख्य स्त्रियाँ कताई कर रही है उन्हें बुनाईमें भी प्रवृत्त करा देना कदापि सम्भव नहीं है। लगन और परिश्रमके फलस्वरूप अनेक स्थानोंमें स्त्रियोंके सूतमें सुधार करना सम्भव हो चुका है। पिछले सात बरसोंमें सूतमें जो सुधार हुआ है, वह आशाजनक है।

फिर, देशमें लाखों चतुर बुनकर पड़े हैं, उनकी शक्तिका उपयोग करना हमारा धर्म है। वे भी जनताके अंग हैं। उन्हें प्रेमसे जीतना होगा। हमें उन्हें समझाना होगा कि वे अपने पेशेको प्रामाणिक बनाकर देशका भला करेंगे। इस तरह आपसी विश्वास और एक-दूसरेकी मददसे ही हम तरक्की कर सकेंगे।

मिलके – भले ही वह देशी हो या परदेशी – कपड़ेकी होड़का सवाल मेरी दृष्टिमें क्षणिक और निरर्थक है। जब किसान अपना कपास स्वयं जमा करके सूत कातने तककी तमाम क्रियाएँ अपने घरपर ही कर लेंगे तब वे उचित दामों पर आवश्यक खादी जुलाहेसे अवश्य ही बुनवा लेंगे और मिलके कपड़ेको स्पर्श तक न करेंगे। खादीका अर्थशास्त्र अजीब है – अनोखा है। उसकी आत्मा है। मिलके अर्थशास्त्रकी आत्मा नहीं है। इस कारण ये दोनों परस्पर विजातीय हैं। जिस तरह विजातीय होनेके कारण समुद्र और गंगाजलकी तुलना नहीं की जा सकती, उसी तरह मिलके कपड़े और देहातमें ग्रामीणोंके हाथों तैयार हुए कपड़ेके बीच कोई तुलना नहीं की जा सकती।

लेकिन इन पंक्तियोंका कोई यह अर्थ न लगाये कि जहाँ किसान सुखी हों, घरमें बहुतसे कुटुम्बी हों, वहाँ भी बुनाईका काम घरमें शुरू न किया जाये; मैं कहता हूँ, अवश्य किया जाये। मैं जोर इस बात पर दे रहा हूँ कि कताई-कामका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रहे, बुनाईके साथ उसे मिला देनेसे, भय है, कहीं उसका दम न घुट जाये, चर्खा-प्रचारकी गति कहीं शिथिल न पड़ जाये। चर्खा-प्रचारके सिलसिलेमें बुनाईकी मर्यादाको समझने एवं निश्चित करनेकी जरूरत है। कातना करोड़ोंका काम है, बुनना लाखोंका। कताई-काम सदा ही विशेष रूपसे एक सर्वसामान्य धन्धा रहेगा, मगर बुनाई हर हालतमें मुख्यत: एक स्वतन्त्र धन्धा बनकर रहेगी। कताईके पुनरुद्धार पर करोड़ोंका आर्थिक और इसलिए नैतिक जीवन निर्भर है और इस कामको सफल बनानेके लिए जुलाहों, व्यापारियों वगैरा तमाम राष्ट्रीय अंगोंके विकासकी आवश्यकता है। कताई-कामकी सफलतामें धर्म-जागृति और आत्मशुद्धि सन्निहित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-९-१९२९

२९४. पत्र : अब्बास तैयबजीको

[१ सितम्बर, १९२९][1]

प्रिय भुर-र्रं-र,

चैककी पहुँच बाकायदा भेजी जा रही है। जबतक तुम्हारा दिल और डाक्टर यह कहते हैं कि तुम्हें घरसे ज्यादा दूर नहीं जाना चाहिए, तब तक दूसरे लोग इसके बारेमें चाहे कुछ भी कहें उससे क्या बनता-बिगड़ता है? लेकिन बस अब जल्द ही तुमको सत्तर सालके खुर्राट बूढ़ेकी बजाय सत्रह सालका नौजवान बन जाना चाहिए।

तुम्हारा,
भुर्रर

[पुनश्च :]

रैहानाके आनेपर मैं उसे तुम्हारा पैगाम दे दूँगा।

मो० क० गांधी

अब्बास तैयबजी महोदय
मुकाम बड़ौदा

अंग्रेजी (एस० एन० ९५६७)की फोटो-नकलसे।

२९५. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

साबरमती
२ सितम्बर, १९२९

भाई खम्भाता,

आपका पत्र मिला। मैं ७ तारीखके दोपहरको २ बजे रेवाशंकरभाईके यहाँ पहुँचनेकी उम्मीद करता हूँ। सुबहकी पहली गाड़ीसे दादर उतरकर विलेपारले जाऊँगा और वहाँसे २ बजे बम्बई पहुँच जाऊँगा। आपका कार्यक्रम ठीक है। साढ़े पाँच बजे रखें तो ठीक होगा। छः बजे तो और ठीक होगा। मुझे डाक्टरोंने मना किया है, इसलिए कुछ मिनट ही बोल पाऊँगा। क्या पूरा कार्यक्रम डेढ़ घंटेमें समाप्त नहीं हो सकता। किन्तु म आपको किसी परेशानीमें नहीं डालना चाहता। मेरे लिए कुछ और करना जरूरी नहीं है। मुझे ले जाना। दादरमें मिलना चाहें, तो मिल लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६५९५)की फोटो-नकलसे।

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

२९६. तार: ठाकुरदास भार्गवको[1]

साबरमती
[२ सितम्बर १९२९को अथवा उसके पश्चात्]

मेरी रायमें लड़कियोंके लिए अठारह और लड़कोंके लिए पच्चीस।

अंग्रेजी (एस० एन० १५५२३)की फोटो-नकलसे।

२९७. देवमन्दिरोंके ट्रस्टियोंसे

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी अस्पृश्यता विरोधी समितिके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे श्री जमनालालजीने सार्वजनिक हिन्दू देवमन्दिरोंके ट्रस्टियोंसे नीचे लिखी जोरदार अपील की है:[2]

> **शायद आपको यह पता होगा कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने इस साल खासकर अस्पृश्यता निवारणके लिए एक पृथक समिति नियुक्त की है। स्पष्ट ही यह काम हम हिन्दुओंके द्वारा होना चाहिए, इस सम्बन्धमें कांग्रेसके प्रस्ताव की मन्शा बिलकुल साफ है। इन दिनों जब कि भौतिक शास्त्रोंमें भीषण रूपसे तरक्की हो रही है, जब कि भारतको एक अविभाज्य ईकाईके रूपमें दुनियाके सामने सर उठाकर खड़ा होना है और जब कि एक जातिकी बुराई उसके पड़ोसियोंके लिए दुःखद और सारे राष्ट्रके लिए अभिशापरूप बन गई है, यह उचित ही है, और आप भी इसे मंजूर करेंगे कि कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय संस्थाको इसमें दिलचस्पी लेनी चाहिए और जितनी जल्दी हो सके, उस जातिको ऐसी बुराईसे मुक्त करनेमें मदद करनी चाहिए। . . .**
>
> **. . . जो हिन्दू परम्परा वैदिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों पर प्रस्थापित की गई है, जिसका पोषण कबीर, गौरांग, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, नरसिंह मेहता तथा तमाम द्राविड़ साधु-सन्तोंकी मण्डली द्वारा हुआ है, उसने सामाजिक हेलमेलके मार्गमें आनेवाले रोड़ोंको न केवल हटाया ही था; बल्कि जोरोंसे उनका खण्डन किया था और ऐसे हृदयशून्य भेदोंकी तीव्र उपेक्षा की थी। . . .**

१. ठाकुरदास भार्गवके दिनांक २ सितम्बरके तारके उत्तर में। तार था: "शारदा बिलमें लड़कीके लिए चौदह वर्ष आयु निश्चित हो रही है। विवाहके लिए लड़कियों और लड़कोंकी कमसे-कम आयुके बारेमें अपनी राय तार द्वारा सूचित करें।"

२. अंशतः उद्धृत।

. . . सीधे-सादे न्यायकी दृष्टिसे भी यह तो आवश्यक है कि हम उन्हें अपने गाँवके कुओंसे पानी भरने दें, उनके बच्चोंको अपने बच्चोंकी ही भाँति गाँवके मदरसेमें पढ़ने-लिखनेका मौका दें और अन्य हिन्दुओंकी भाँति इन भाइयों के लिए भी प्रभुके दरबारके — देवमन्दिरोंके — दरवाजे खुले छोड़ दें। . . .

बड़ी कृपा होगी अगर आप इस अपीलके सम्बन्धमें अपने विचार या कार्यकी दिशासे मुझे सूचित करेंगे।

हमें आशा रखनी चाहिए कि यह अपील अरण्यरोदन-भर न होगी। वर्धाने हमें मार्ग बता दिया है। इस सम्बन्धमें प्राप्त एक पत्रसे जो मालूम हुआ है, उसे पढ़कर पाठकोंको प्रसन्नता होगी।[1]

आशा है, हिन्दू जनता सार्वजनिक सभाएँ करके और दूसरे उपायोंसे काम लेकर भी इस अपीलका समर्थन करेगी। सबसे प्रभावशाली तरीका तो यह हो सकता है कि जहाँ-जहाँ महत्त्वके देव-मन्दिर हैं, वहाँ स्थानीय सभाएँ संगठित की जायें और उनके द्वारा ट्रस्टियोंके पास शिष्टमण्डल भेजे जायें। ट्रस्टी मन्दिरोंके स्वामी नहीं, बल्कि जनताके एजेंट हैं और यदि जनता किसी खास मन्दिरमें 'अछूतों' को प्रवेश करने देना चाहती है, तो अपने व्यक्तिगत मतभेदके रहते हुए भी ट्रस्टियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे जनताकी इच्छा पूरी करें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ५-९-१९२९

२९८. कांग्रेसका संगठन

श्री जयरामदास लिखते हैं कि कुल १७२ जिला समितियोंमें से सिर्फ २७ समितियों ने ही कांग्रेसके विदेशी वस्त्र बहिष्कार आन्दोलन सम्बन्धी नियमित रिपोर्ट भेजी है। एक तरह यह आन्दोलन कांग्रेसका सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण आन्दोलन कहा जा सकता है, क्योंकि सारे राष्ट्र पर इसका प्रभाव पड़ता है और इसमें सभी लोग हाथ बँटा सकते हैं। साथ ही यह एक ऐसा आन्दोलन है कि अगर हम इसमें कामयाबी हासिल कर सकें तो इसका शासकों और स्वयं हमपर जबर्दस्त असर हुए बिना नहीं रह सकता। श्री जयरामदास यह भी लिखते हैं कि पत्रों द्वारा बार-बार यह याद दिलाने पर भी बहुधा समितियोंकी ओरसे पत्रोंकी पहुँच तक नहीं मिलती। कई प्रान्तिक समितियोंने तो उनकी विनतीकी बिलकुल ही उपेक्षा कर दी है। इस तरह सात प्रान्तों — दिल्ली, मध्यप्रान्त (हिन्दी), ब्रह्मदेश, असम, आन्ध्र, अजमेर और

१. अनुवाद नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें कहा गया था कि सम्पूर्ण महाराष्ट्रमें सवर्ण हिन्दू इस दिशामें सहानुभूतिपूर्वक विचार करके कदम उठा रहे हैं। जगह-जगह अछूतोंके लिए मन्दिर खोले जा रहे हैं। अस्पृश्यता निवारण मण्डल एलिचपुरके भोपटकर और पूनाके रावबहादुर आचार्य सहस्रबुद्धे इस दिशामें बहुत प्रयत्नशील हैं।

उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त – की ओरसे उन्हें कोई सूचना ही नहीं मिली है। २२३० विवरणोंमें से, जिनके मिलनेकी आशा की जाती थी, केवल ८६ अर्थात् केवल ४ फीसदी विवरण ही मिले हैं। जुदा-जुदा प्रान्तोंके जिलोंकी संख्या नीचे लिखे अनुसार है:

बरार	६	उत्कल	६
महाराष्ट्र	११	केरल	[३]
बिहार	१६	सिन्ध	८
तामिलनाड	९	बम्बई	७
संयुक्त प्रान्त	२७	कर्नाटक	११
मध्यप्रान्त (मराठी)	४	बंगाल	३२
गुजरात	४		———
पंजाब	१५		१६९

सारे ब्रिटिश भारतमें कुल मिलाकर २५०से भी अधिक जिले हैं। इससे यह प्रकट होता है कि अबतक कांग्रेस दो-तिहाई जिलोंमें ही नाममात्रका कुछ काम हाथमें ले सकी है। ये चिह्न आशाजनक नहीं कहे जा सकते। समूचे देशसे अपनी बात कहनेवाली आज कांग्रेस ही एकमात्र संस्था है। यही एक ऐसी संस्था है, जिसका सुचारु संगठन और संचालन होनेसे सारे देशको स्वराज्य मिल सकता है। अगर कांग्रेसकी अधीनस्थ संस्थाएँ प्रधान कार्यालयसे प्राप्त सूचनाओं पर तत्काल ही अमल नहीं करेंगी, अथवा गाँव-गाँवमें नहीं तो कमसे-कम हरएक जिले या ताल्लुकेमें अपनी शाखाएँ नहीं खोलेंगी, तो अवश्य ही वे इस कामके अयोग्य ठहरेंगी। विदेशी कपड़ेके बहिष्कारमें सवाल मुख्यतः संगठनका है। यह काम करने योग्य है; इसके इष्ट और आवश्यक होनेके बारेमें दो मत नहीं हैं। मगर जिन लोगोंको संगठित होना है अगर वे शिथिल या उदासीन रहें तो योग्यसे योग्य मन्त्री भी इस काममें सफल नहीं होगा। म चाहता हूँ कि तमाम प्रान्तोंके सभी जिम्मेदार कार्यकर्ता इन दुःखद तथ्यों पर जो मैंने ऊपर दिये हैं, गम्भीर रूपसे विचार करें और उसके लिए कोई उपाय ढूंढ़ निकालें। यह एक ऐसी त्रुटि है जिसका उपाय ढूंढ़ निकालना मुश्किल नहीं है। जिला और ताल्लुका समितियोंके मन्त्रियोंको यह नहीं भूलना चाहिए कि अगर वे प्रधान कार्यालयसे प्राप्त सूचनाओं पर अमल नहीं करेंगे तो कांग्रेसकी बम्बई बैठकके निश्चयानुसार वे अनुशासनकी कार्रवाईके पात्र हो जाते हैं। अगर चुनावका काम मुझे सौंपा जाये तो मैं १६९ लापरवाह, चुप बैठे रहनेवाली और गैरजिम्मेदार संस्थाओंके बदले १६ ऐसी संस्थाओंको तरजीह दूंगा जो नियम-पालनमें मुस्तैद और सहयोगकी भावना रख कर काम करनेवाली हों। १६ प्राणवान संस्थाएँ कुछ काम करके दिखा सकती हैं, निष्क्रिय और निर्जीव १६९ संस्थाएँ तो भार-रूप ही सिद्ध हो सकती हैं। हमारा इन दोमें से क्या होना इष्ट है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-९-१९२९

२९९. संयुक्त प्रान्तका आगामी दौरा

स्थान-स्थानके प्रबन्धकों द्वारा संयुक्त प्रान्तके आगामी दौरेके लिए मुझसे सलाह माँगी गई है। मैं सोचता था कि आन्ध्र-यात्राके समय मैंने जो कुछ लिखा था[1] वह काफी होगा; मगर देखता हूँ कि उस समय लिखी गई पंक्तियों पर दूसरे प्रान्तों के कार्यकर्त्ताओंने ध्यान नहीं दिया; क्योंकि उनका उससे कोई सीधा सम्बन्ध न था।

संयुक्त प्रान्तके दौरेके सम्बन्धमें प्रबन्धकर्ता कृपया यह ध्यानमें रखें कि मैं अपने अज्ञान और अपरिपक्व विश्वासके कारण बीमार हो गया था और अभी अभी उस बीमारीसे उठा हूँ। डाक्टर और दूसरे मित्र केवल इसी शर्त पर मुझे यात्रा करने देनेके लिए सहमत हुए हैं कि मैं दिनमें यथासम्भव पूरा-पूरा आराम करूँगा, लम्बे-लम्बे भाषणोंसे बचूँगा, और दूसरे परिश्रमपूर्ण कामोंसे दूर रहूँगा। अतएव प्रबन्धकर्ता यह ध्यानमें रख लें कि कार्यक्रम लम्बे या लगातार एकके बाद एक न हों। वे मुझसे लम्बे भाषणकी भी आशा न रखें। विशाल व्यासपीठों पर चढ़ने या उन तक चल कर जानेकी भी कोई मुझसे आशा न रखे।

चूँकि बीमारीसे उठनेके कारण मैं अभी कमजोर हूँ, डाक्टरोंने जाँचके बाद अनेक सलाहें दी हैं। यदि उन्हें छोड़ दें तो भी एकदम कार्यकुशलताकी दृष्टिसे और यह यात्रा तो पूरी तरह काम-काजी ही होगी, यह आवश्यक है कि समय और धनकी बचत की जाये।

मैं पैर छूकर भक्ति प्रदर्शित करनेवालोंसे बहुत ज्यादा घबराता हूँ। प्रेमका प्रदर्शन करनेके लिए इसकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है; इसमें तो पतनकी सहज सम्भावना है। फिर, इसके कारण आजादीके साथ चलना-फिरना मुश्किल हो जाता है, और अक्सर पैर छूनेवालोंके नाखूनोंसे मेरे पैरोंमें घाव हो जाते हैं। इसके कारण कुछ ही गजकी दूरी पर बनाये गये व्यासपीठ तक पहुँचनेमें अक्सर पाव घंटेसे ज्यादा समय लग जाता है।

व्यासपीठ बनानेमें बहुधा बहुत पैसा खर्च किया जाता है; वह जितना चाहिए अपेक्षाकृत उससे अधिक लागतवाला होकर भी कभी-कभी बनानेमें चतुराईसे काम न लेनेके कारण खतरनाक भी साबित हो चुका है। अतएव यह बेहतर होगा कि सभा-स्थलके मध्यमें मेरी मोटर खड़ी करके उसीसे व्यासपीठका काम ले लिया जाये। आन्ध्र-यात्रामें यह प्रथा बड़ी ही उपयोगी और अनुकूल साबित हो चुकी है।

स्वागत समितियोंको किसी भी कारणसे चन्देकी थैलियोंमें से सजावट या भोजनके लिए कुछ भी खर्च नहीं करना चाहिए। अगर कहीं इन कामोंके लिए खर्चकी जरूरत पड़े ही तो उसके लिए अलग चन्दा उगाह लिया जाये। यानी किसी भी तरहकी सजावटका त्याग किया जाना चाहिए। यदि कहीं थोड़ी-बहुत सजावट की भी जाये

१. देखिए खण्ड ४० पृष्ठ ९२-४।

तो वहाँ विदेशी कपड़े, विदेशी कागज या ऐसी ही अन्य चीजोंका सम्पूर्ण बहिष्कार किया जाना चाहिए।

सभाओंमें किसी तरहका शोरोगुल न होना चाहिए। नेताओंको चाहिए कि वे सभास्थल पर पहले ही पहुँच जायें और जनताको भली-भाँति समझा दें कि वह चुपचाप बैठी रहे, धक्कामुक्की न करे, जोर-जोरसे न चिल्लाये, बीड़ी न पिये, और न ही मेरे पैर छूने वगैराके लिए आगे बढ़नेकी कोशिश करे।

मुझे और मेरे साथियोंको ठहराने और खिलाने-पिलानेमें सख्त कमखर्चीसे काम लिया जाये। साथियोंका भोजन सादासे सादा हो; न मसाले हों, न मिठाई। अगर मिल सकें तो मौसमके फल दिये जायें। कलकत्ता, बम्बई या दिल्लीसे महँगे फल न मँगाये जायें। मैं अपने साथ कुछ सूखा मेवा रखता हूँ, जहाँ-कहीं वह मिल सके, मैं नये सिरेसे उसकी पूर्तिके लिए आभार मानूँगा। मेरे भोजनमें नीबू एक आवश्यक चीज है। दुर्भाग्यवश मुझे फिरसे बकरीका दूध पीना पड़ रहा है। अतएव मेरे लिए ४ पौंड बकरीका दूध आवश्यक होगा, और अगर सम्भव हो सके तो बकरीके दूधका दही भी; बशर्ते कि दहीको जमानेके लिए गाय या भैंसके दूधका दही काममें न लाया गया हो। उबाल कर ठण्डे किये हुए बकरीके दूधमें नींबूकी कुछ बूँदे डालनेसे बारह घंटोंमें उसका दही जम जाता है।

मेरे रहनेका स्थान ऐसा चुना जाये कि जिससे मुझे शान्ति और एकान्त मिल सके। हम अपने बिस्तरेके लिए साथमें काफी कपड़े रखते हैं, फिर भी अगर कहीं इसकी व्यवस्था की जाये तो सब कपड़े शुद्ध खादीके ही होने चाहिए। जब कभी म किन्हीं शानदार कमरोंमें ठहराया गया हूँ मुझे यह देखकर मर्मान्तिक दुःख हुआ है कि उनमें सब चीजें, यहाँतक कि कपड़े भी विदेशी हैं।

सवेरे ७ बजेसे पहले कार्यक्रम शुरू न किया जाये और वह दो घंटेसे ज्यादा का न रहे। वह हर हालतमें १० बजे तो समाप्त हो ही जाये। शामको कार्यक्रम ५।। बजेसे शुरू हो और ८ तक रहे। १० से ३ तकका सारा समय मुझे विश्राम, सम्पादन-कार्य और अन्य कार्योंके लिए चाहिए। ३ और ४ के बीच मैं कातूँगा और साथ ही कार्यकर्त्ताओंसे मिलूँगा। छोटे-बड़े हरएक स्थानमें कार्यकर्त्ताओंसे मिलना मैं आवश्यक समझता हूँ।

जिन खेल-तमाशों या प्रदर्शनोंसे किसी तरहकी कोई शिक्षा न मिलती हो, कोई जानकारी न बढ़ती हो, कार्यक्रममें उन्हें स्थान न दिया जाये।

प्रबन्धकर्त्ता याद रखें कि प्रस्तुत यात्रा प्रधानतया अखिल भारत-चरखा-संघके लिए की गई एक खादी-यात्रा होगी। चरखा-संघ एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय संस्था है, जिसका काम व्यापारिक ढंगसे हो रहा है और जिसका एकमात्र ध्येय चरखेके सन्देश को देशके सात लाख गाँवोंमें बसी हुई जनताके घर-घर पहुँचाना है। इस संस्थाकी सफलता पर ही लाखों करोड़ों आधा-पेट खाकर जीनेवालोंकी बढ़ती हुई, और उन्हें पीस डालनेवाली आपत्तिका निर्मूल होना निर्भर है। इस कामके लिए मुझे मिलनेवाली प्रत्येक पाईका मैं संग्रह करना चाहता हूँ। अखिल भारत चरखा-संघकी झोलीमें पड़ा

हुआ एक रुपया भूखों मरनेवाली १६ बहनोंको भोजन देगा, वही रुपया जब किसी और की जेबमें होता है तो एक दिनकी शराब खरीदने, बीड़ी पीने या मिठाई खानेके काम आता है और इन्हीं सबके साथ वह रोगोंको भी खरीद लेता है।

जनताके पाससे उगाही हुई रकम किसी भी हालतमें अन्य किसी काममें नहीं लगाई जानी चाहिए। जनता विश्वास-भरे हृदयसे दान करती है। उसकी दी हुई रकम का सहज और सर्वोत्तम सदुपयोग उसे चरखेके प्रचारमें खर्च करना है। दिया हुआ दान इस तरहके सदुपयोगसे दूना होकर उसे वापस मिलता है। सभीको चाहिए कि दल या स्थितिका खयाल न करते हुए वे इसमें भाग लें। मुझे तो न्यायाधीशों तकने खादीके लिए दान दिया है।

यही नहीं, मैं प्रबन्धकर्त्ताओंको कांग्रेस सम्बन्धी दूसरा काम भी देना चाहता हूँ। मैं कांग्रेस संस्थाओंके विषयमें जानना और उनकी सहायता करना चाहता हूँ। अतएव जहाँ-कहीं मानपत्र दिये जायें उनमें नीचे लिखी बातें होनी चाहिए:

१. मानपत्र देनेवाले जिले या स्थानके क्षेत्रफलकी आबादीका तफसीलवार वर्णन;

२. राष्ट्रीय शालाएँ और उनमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या;

३. चालू चरखों और करघोंकी संख्या; सूतकी मासिक उत्पत्ति, खादीका परिमाण और उसकी कीमत;

४. उत्पन्न खादीकी स्थानीय और बाहरकी बिक्री;

५. स्वयं कातनेवालोंकी संख्या;

६. स्वयं-सेवकोंकी संख्या और उनका कार्यक्षेत्र;

७. भिन्न-भिन्न धर्मोके अनुसार सदस्यों (स्त्री-पुरुषों)की संख्या;

८. वहाँकी कांग्रेस समितिकी आर्थिक स्थिति;

९. विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, मद्यपान निषेध, अछूतोद्धार और हिन्दू-मुस्लिम समस्या तथा उसके लिए किये गये कार्यका विवरण।

यह तो जिन बातोंको मैं जानना चाहूँगा, उनका एक नमूनामात्र है। मैं यह भी पसन्द करूँगा, जिन-जिन ताल्लुकों या जिलोंमें मैं जाऊँ उनके नक्शे मुझे दिये जायें और उनमें यह सूचित किया जाये कि किन-किन गाँवोंमें कांग्रेसका काम हो रहा है।

जो लोग गोसेवा और जनता तक शुद्ध दूध पहुँचानेके काममें दिलचस्पी लेते हैं, वे अपने-अपने स्थानमें इस सम्बन्धकी आवश्यक बातें और तथ्य मुझे बतानेकी कृपा करेंगे।

एक बात और। विद्यार्थियोंसे मिलनेमें मुझे बड़ा आनन्द होगा, भाषण करनेके लिए नहीं बल्कि उनसे मिलकर उनके हृदयोंमें प्रवेश करने और उनके दुःख एवं कष्टोंमें भाग लेनेके लिए। मैं आशा करता हूँ कि स्त्रियोंकी सभा हर जगह होगी और साथ ही उनका हाथकता सुन्दर सूत व गहने भी होंगे ही।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-९-१९२९

३००. टिप्पणियाँ

संकटग्रस्त सिन्ध

सिन्धके संकटोंकी दुःख-गाथा वर्णन करनेसे कलम इनकार करती है। प्रतिदिन समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होनेवाली भीषण खबरें पढ़ता हूँ और हमारी असहाय अवस्था का कटु अनुभव करता हूँ। लेकिन इसीलिए हमें हाथ पर हाथ धरे बैठे न रहना चाहिए। लोगोंकी तरफसे मिला हुआ एक-एक रुपया पीड़ितोंके संकटको कुछ-न-कुछ कम ही करेगा। हमारा कर्त्तव्य है कि इस मौके पर हमसे जो थोड़ा-बहुत बन जाये, करें। एक निर्मल-हृदय विधवाकी दी हुई कुछ पाइयाँ उन लाखों रुपयोंसे कहीं अधिक सहायक होती हैं, जो स्पर्धावश (यशकी इच्छासे) दिये जाते हैं। जो कुछ भी रकम इस कामके लिए मिलेगी, अध्यापक नारायणदास मलकानीकी देखरेखमें बड़ी सावधानीके साथ खर्च की जायेगी। दाताओंको चाहिए कि वे दान देनेमें अब देरी न करें।

औद्धत्यकी सीमा[1]

कुछ दिन पहले अली भाई दक्षिण आफ्रिकाकी यात्राके लिए भारतसे रवाना हुए थे। उनके दक्षिण आफ्रिका पहुँचते ही वहाँकी संघ सरकारने उनके सामने जो अपमानजनक और स्वाभिमानको चूर करनेवाली शर्तें पेश की हैं, उनसे पुनः यह सिद्ध होता है कि यद्यपि संघ सरकारमें बाहरी परिवर्तन हुए हैं तथापि उसका प्राकृत स्वभाव जैसाका तैसा बना हुआ है। अन्यथा, सर्वदलीय परिषद्के समझौते और श्री शास्त्रीजीके अद्भुत कार्योंके बाद तो यह आशा रखी जाती थी कि संघ सरकारके लिए अली भाइयों और अप्रत्यक्ष रूपसे सारे देशका अपमान करना असम्भव हो गया होगा। विशेषकर जब अलीभाइयोंने यह वचन दे दिया था कि वे दक्षिण आफ्रिकामें राजनैतिक भाषण नहीं करेंगे, तब तो संघ सरकारको उनकी बात मान लेनी चाहिए थी। आम तौरपर अन्तर्राष्ट्रीय नीतिका यह एक सहज नियम-सा बन गया है कि जब तक कोई खास वजह न हो, प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर शक लाना, उन्हें कष्ट पहुँचानेवाली शर्तें पेश करना या रुकावटें डालना ठीक नहीं। अगर कोई खिलाफ कार्रवाई करना आवश्यक ही हो जाये, तो वह भी अत्यन्त विनयपूर्वक और राजदूतके जरिए की जाती है। मसलन, प्रस्तुत मामलेमें संघ सरकारका यह धर्म था कि वह अपनी मुनासिब और वाजिब शर्तें सीधे अली-भाइयोंके पास न भेजकर भारत सरकारके सामने पेश करती। संघ सरकारको इस बातका जरा भी हक न था कि वह अली भाइयोंसे जमानत तलब करती या उनके सामने हास्यास्पद शर्तें पेश करनेकी चेष्टा करती। मुझे आशा है, अब भी भारत सरकार अली भाइयोंको पूरा-पूरा न्याय दिला कर रहेगी, उनपर जो शर्तें लादी गई हैं, वे हटा ली जायेंगी। और उन्हें

१. "टिप्पणियाँ", २६-९-१९२९ का उपशीर्षक "अली भाइयोंपर प्रतिबन्ध" भी देखिए।

स्वाभिमानपूर्वक दक्षिण आफ्रिका जाने एवं मनचाही अवधि तक जहाँ चाहें वहाँ रहनेकी रिआयत दी जायेगी, और ऐसा करते हुए उनके मार्गमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, जाहिरा या छुपी, कोई भी रुकावट न डाली जायेगी।

शुद्ध सस्ता साहित्य

यद्यपि सत्संगपर मेरा जो विश्वास है वह गन्दे साहित्यकी प्रतियोगितामें प्रकाशित सस्ते, शुद्धसे शुद्ध साहित्य पर भी नहीं हैं, तथापि इस न्यायसे कि एकदम नहींसे कुछ अच्छा है और शुद्ध साहित्यके प्रचारसे यदि भलाई न हो सको तो कुछ बुराई तो नहीं हो सकती, मैं श्रीयुत महावीरप्रसाद पोद्दार, और उनके शुद्ध साहित्य में विश्वासी मित्रोंके सुन्दर, सस्ते और उपयोगी हिन्दी साहित्यके प्रकाशनके उद्योगका स्वागत करता हूँ। ये पुस्तकें बहुत सस्ती और बड़े अच्छे आकार-प्रकारकी हैं। इन में 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' तथा दूसरे पूर्वीय और पश्चिमी विद्वानोंके लेखों और पुस्तकोंका सार है। अधिकतर साहित्य खादी-सम्बन्धी है। मैं कुल खादी भण्डारोंसे इन्हें बिक्रीके लिए रखनेकी सिफारिश करता हूँ। पूर्ण विवरण शुद्ध खादी भण्डार, १३२/१ हैरीसन रोड कलकत्ता, से प्राप्त किया जा सकता है।

इस अंकका क्रोडपत्र

श्री हीरालाल द्वारा प्रस्तुत चरखेके विवरणके सम्बन्धमें मैंने पाठकोंको लगभग वचन[1] ही दिया था कि मैं तत्सम्बन्धी योजना प्रकाशित करूँगा। अब उन्होंने कृपा-पूर्वक चरखेका ब्लाक और उसके छपे हुए चित्र मेरे पास भेज दिये हैं। वे दोनों इस अंकके क्रोडपत्रके रूपमें दिये गये हैं।[2] मेरा उन्हें यह बता देना कदाचित योग्य ही होगा कि अलग-अलग तीन गुजराती सज्जनोंने ही हीरालालजीकी कल्पना पर बिलकुल एक-से एतराज किये हैं। ये एतराज बहुत मूलगामी है और यदि वे सही हैं तो हीरालालजीकी कल्पना सफल नहीं हो सकती। उनमेंसे एक पत्र मैंने 'नवजीवन[3]'में प्रकाशित किया है। संक्षेपमें एतराज यह है कि यदि खोखले तकुएसे दोनों सिरोंपर काम लिया जायेगा तो उसपर सूत नहीं लपेटा जा सकेगा। एक सिरेपर जो बट जायेगा वह दूसरे सिरेपर खुल जायेगा। जो तज्ञ नहीं हैं वे अपनी आपत्तिको इस रूपमें सामने रखते हैं। मैंने यह कथन श्री हीरालालजीके सामने रखा और सुझाया कि वे अपने सिद्धान्तको अमलमें न लायें और अपनी योजनाके अनुसार पहले एक नमूनेका चरखा तैयार करके उसपर नियमित रूपसे काम करके बादमें केवल तर्क-शुद्ध विवरण ही नहीं, अपने विवरणके आधारपर बना हुआ एक परिपूर्ण चरखा प्रस्तुत कर देनेकी घोषणा ही करें।

श्री हीरालाल शाहने इस दिशामें अभी तक जो परिश्रम किया है, वह अपने आपमें एक बड़ी बात हैं। उन्होंने खादी प्रेमियोंकी अन्वेषक-बुद्धिको प्रेरित करनेका

१. देखिए "उपयुक्त चरखेकी खोजमें", २२-८-१९२९।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

३. देखिए "टिप्पणी", "श्री हीरालालकी योजना", १-९-१९२९।

प्रयत्न किया है। अब वे अपने विवरणको मूर्तरूप दे पायें चाहे न दे पायें, दूसरोंको चाहिए कि जहाँतक वे पहुँचे हैं वहाँसे कामको अपने हाथमें ले लें। चरखेका यहाँ प्रस्तुत नक्शा पाठकोंके लिए इस दिशामें मार्गदर्शक सिद्ध होगा, ऐसी आशा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-९-१९२९

३०१. भारतकी सभ्यता

सन् १९२४ में जब मै संयुक्त प्रान्तमें भ्रमण कर रहा था, अयोध्याजीके नजदीक एक किसानने पुकारकर मेरी गाड़ीमें एक पर्चा फेंका। मैंने उस पर्चेको उठाया और देखा कि उसमें उसने तुलसीदासजीके रामचरित मानसमें से कई उपयोगी चौपाइयाँ और दोहे उद्धृत किये हैं। यह देखकर मुझे हर्ष हुआ और भारतवर्षकी सभ्यताके प्रति मेरे मनमें आदर बढ़ा। उस पर्चेको मैने अपने दफ्तरमें इस इच्छासे रख छोड़ा था कि किसी-न-किसी रोज उसे 'नवजीवन' में दे दूँगा।

वैसे, प्रति सप्ताह मैं उसे देखकर छोड़ देता था। क्योंकि जब वह पर्चा मुझे मिला था, तब मैं 'हिन्दी नवजीवन' के लिए कुछ नहीं लिखता था। गुजराती 'नवजीवन' के लिए मैंने उसे उतना उपयोगी नहीं समझा था, जितना 'हिन्दी नवजीवन' के लिए। पर्चेका एक हिस्सा गुजराती और हिन्दीमें सन् १९२७ में दिया गया था[1]।

अब चूँकि मैं प्रति सप्ताह विशेष रूपसे कुछ न कुछ 'हिन्दी-नवजीवन' के लिए लिखता हूँ, और चूँकि अनकरीब ही फिरसे मेरा यू० पी०का दौरा आरम्भ होता है, उस पर्चेका दूसरा हिस्सा यहाँ देता हूँ :

काहू सुमति कि खल सँग जामी,
सुभगति पाव कि परत्रिय गामी।
राजु कि रहइ नीति बिनु जाने,
अघ कि रहहिं हरि चरित बखाने॥
अध कि पिसुनता सम कछु आना,
धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥
इहां न पच्छपात कछु राखउं,
वेद पुरान संत मत भाषउं॥
अरि बश दैउ जिआवत जाही,
मरनु नीक तेहि जीव न चाही।
सत्य बचन विश्वास न करही,
बायस इव सबही ते डरही॥
आरत का न करै कुकर्मू।

१. देखिए खण्ड ३४, पृष्ठ ५३१-२।

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।
औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोगु।।
सचिव, बैद्य, गुर, तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धर्म, तन, तीनि कर, होइ बेगिहीं नास।।
पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरें मनुजाद।।
भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक बिस्वास।
उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
संत सरलचित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।।

मैंने इसमें से स्तुतिके वचन निकाल डाले हैं। इस किसान भाईके अक्षर स्पष्ट हैं और जो लिखा है, सजा कर लिखा है।

सारे इतिहासकार साक्षी हैं कि जो सभ्यता भारतके किसानोंमें पाई जाती है, दुनियाके और किन्हीं किसानोंमें नहीं पाई जाती। यह पर्चा इस बातका एक उदाहरण है। भारतकी सभ्यताकी रक्षा करनेमें तुलसीदासजीने बहुत अधिक भाग लिया है। तुलसीदासके चेतनमय रामचरितमानसके अभावमें किसानोंका जीवन जड़वत और शुष्क बन जाता—पता नहीं कैसे क्या हुआ, परन्तु यह तो निर्विवाद है कि तुलसीदासजीकी भाषामें जो प्राणप्रद शक्ति है वह दूसरोंकी भाषामें नहीं पाई जाती। रामचरितमानस विचार-रत्नोंका भण्डार है। उनकी कीमतका कुछ अन्दाजा हम उपर्युक्त दोहों और चौपाइयोंसे लगा सकते हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि किसान लेखकने इन चौपाइयों और दोहोंको ढूँढ़नेमें कोई खास परिश्रम नहीं किया है; हाँ, अपने कण्ठस्थ भण्डारमें से उसे जो याद आ गये वे ही उसने दे दिये हैं।

जब हम एक किसानके मुखसे—

सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी।
राजु कि रहइ नीति बिनु जाने।
अघ कि रहहिं हरि चरित बखाने।
अघ कि पिसुनता सम कछु आना।
धर्म कि दया सरिस हरिजाना।

-आदि वचनोंको सुनते हैं, तब भारतवर्षकी नीतिके सम्बन्धमें हमारे मनमें कभी निराशा उत्पन्न नहीं हो सकती।

आजकल यह कहा जाता है कि हमारे किसान अन्धकारमें पड़े हैं, हमारा देश तमस् प्रधान है, इसलिए उसे रजस्में प्रवेश करना होगा। पहली बात तो यह है

कि मैं इस कथनमें विश्वास ही नहीं रखता कि तमस्, रजस् और सत्वके बीच ऐसा कोई यान्त्रिक भेद है, जिसके कारण हमें एक कमरेमें से दूसरेमें क्रमशः जाना ही पड़े। मेरे विचारमें, प्रायः हरएक मनुष्यमें, तीनों गुण कुछ-न-कुछ अंशमें होते हैं। भेद केवल मात्राका है। मेरा अपना दृढ़ विश्वास है कि हमारा मुल्क तमस्-प्रधान नहीं, बल्कि सत्व-प्रधान है। और उक्त पर्चा इस बातका एक छोटा-सा प्रमाण है। अगर यह पर्चा कोई असाधारण बात होती तो यह सत्व-प्रधानताका थोड़ा भी प्रमाण सिद्ध न हो सकता। परन्तु जब हम जानते हैं कि लाखों किसानोंको तुलसीदासजीके दोहे-चौपाई कण्ठस्थ हैं और वे उनके अर्थको भी समझते हैं, तब हम अवश्य कह सकते हैं कि जिन लोगोंमें ऐसे विचार प्रचलित हैं, उनकी सभ्यताके सत्व-प्रधान होनेका यह कुछ नहीं तो एक प्राथमिक प्रमाण तो है ही।

हिन्दी नवजीवन, ५-९-१९२९

३०२. टिप्पणी : छगनलाल जोशीको

[६ सितम्बर, १९२९के पूर्व][1]

मैं कहीं भूल न जाऊँ इसलिए अभी लिखे देता हूँ :

१. काम-काज चाहे कितना भी अधिक क्यों न हो, किन्तु नये व्यक्तिको जिम्मेदारीका कभी कोई काम मत सौंपना।

२. भगवानजीको तुरन्त हिसाब-किताबका काम सौंपनेसे उनका और हमारा, दोनोंका पतन होगा। पहले तो उनका होगा।

३. जयसुखलालके बारेमें तुम्हें जो उचित जान पड़े सो दृढ़तापूर्वक करना।

४. कसुंबासे मैं साफ-साफ बात करूँगा ही। उमियासे कर ली है।

५. जयसुखलालको एजेन्ट नियुक्त करनेके बारेमें मैंने इनकार कर दिया है। मन्त्री नियुक्त करनेकी स्वीकृति दे दी है, किन्तु इन दोनोंमें बहुत बड़ा अन्तर तो है ही।

६. गोसेवाके सम्बन्धमें मुझसे बात करना। कान्ति काम तो खूब करता है, किन्तु उसके भीतर-ही-भीतर असन्तोष भी है। मैंने लोगोंको शान्त कर दिया है; किन्तु यह उचित नहीं है। यदि हम गोशालाको चमकाना चाहें तो उसे बाहरी गतिविधि पर अंकुश रखनेकी बातका पालन करना ही होगा; अन्यथा वह कभी सीख नहीं पायेगा और तब यह निश्चित समझो कि आज तक जितना हुआ है वह भी चौपट हो जायेगा। यदि सोमाभाई निरीक्षकके रूपमें सब जगह जायें तो क्या होगा? गोशालाके मामलेमें भी यही उदाहरण लागू करना।

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह टिप्पणी छगनलाल जोशीके आश्रमसे लाहौर रवाना होनेके पहले सितम्बर-अक्टूबरमें लिखी गई होगी। किन्तु स्पष्ट है कि छगनलाल जोशी और गांधीजी दोनोंके आश्रममें रहते हुए ही यह लिखी गई होगी। अपना संयुक्त प्रान्तका दौरा शुरू करनेसे पहले गांधीजी आश्रमसे ६ सितम्बरको बम्बईके लिए रवाना हुए थे, जहाँसे वे भोपाल और आगरा गये थे।

सोमाभाई जैसे खेतीका काम सँभालता है और उसे शोभान्वित करता है उसी प्रकार वह अपने पर अंकुश भी रखता है; इसलिए खेतीका काम सुरक्षित है। पारनेरकर उड़ता रहता है इसलिए गोशाला असुरक्षित है और विद्यार्थियोंके प्रति न्याय नहीं हो पाता।

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो — श्री छगनलाल जोशीने

३०३. पत्र : जी० वी० मावलंकरको

६ सितम्बर, १९२९

भाईश्री मावलंकर,

आपसे क्या कहूँ। आपको तो बहुत काम रहता है और मुझ-जैसे अनेक भिक्षुक आपके दरवाजेपर पड़े ही रहते हैं। किन्तु फीस देनेवाले भिखारियोंका हक पहला होता है या वह कोई बात नहीं है। यह तो हुई प्रस्तावना।

आपके पास नवजीवन कार्यालयके न्यासके कागज पड़े हुए हैं। अब उसका पंजीयन हो ही जाना चाहिए। आसमानी सुलतानीकी किसे खबर है। कुछ हो जानेके पहले आपको, मुझे तथा अन्य सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंको यह लांछन लगवा लेनेकी जोखिम उठानी ही पड़ेगी। इसलिए अब इसे एक सप्ताहमें पूरा करवा दीजिए। दो वर्ष बीत गये हैं, इसलिए सम्भव है, कुछ परिवर्तन करने पड़ें। इस विषयमें सोच लीजिएगा।

बापू

गुजराती (जी० एन० १२२६)की फोटो-नकलसे।

३०४. पत्र : छगनलाल जोशीको

[७ सितम्बर, १९२९के पूर्व][1]

चि० छगनलाल,

बहुत-से लोग बैठे हैं और बहुत-सा काम पड़ा है। इस बीच तुम्हें ये दो पंक्तियाँ लिख रहा हूँ।

१. शर्मा वहाँ सोमवारको पहुँचेगा। मिल गया तो उसका तार इसके साथ भेज दूँगा। वह [बिना राँधे] अनाजका विशेषज्ञ है। उसने बहुत-सी पुस्तकें भी लिखी हैं। लक्ष्मीदास और बिना पकाया अनाज खानेवाले उससे बात कर लें। इसके बाद वह आगरा आना चाहे तो जरूर आ जाये। उससे कहना कि वह वहाँ ढाई मास

१. देखिए अगला शीर्षक।

रहना चाहे तो रह सकता है। उसकी देखभाल करना। दूरसे धक्के खाता आयेगा और उसका आना बेकार होगा, इसका मुझे दुःख है। मैंने उसे लिखा था कि वह आना चाहे तो आ सकता है।

२. अपनी बहियोंकी भूलोंकी बात सुनकर मै चौंक उठा हूँ। तुम जानते ही हो कि इस विषयमें नारणदास पर मुझे पूरा विश्वास है। मैं चाहता हूँ, इसमें तुम उसकी पूरी मदद लो और जैसा वह कहे वैसा करो। लक्ष्मीदास भी इस कामको अच्छी तरह जानता है। इसमें एक क्षणकी भी लापरवाही या देरी नहीं होनी चाहिए।

३. कुएँका पानी ठीक हो गया होगा।

४. भणसालीवाले घरमें स्त्री-उद्योग जाये या नहीं, इसपर तुरन्त विचार कर लेना।

५. झवेरभाईकी पत्नीका क्या हुआ?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो : श्री छगनलाल जोशीने

३०५. पत्र : डा० हीरालाल शर्माको

७ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

सोमवारको आप आश्रम पहुँचेंगे, और मुझे मौजूद नहीं पायेंगे। इसका खेद है। परन्तु प्रसन्नताकी बात यह है कि आप आ रहे हैं। भोजनके प्रश्नके बारेमें कृपया उन लोगोंसे बात कीजिए जो बिना राँधा भोजन ले रहे थे। आप जबतक चाहें, आश्रममें रह सकते हैं। अगर आप मेरे पास आना चाहें, तो आगरा आ सकते हैं। वहाँ मैं २० तारीख तक रहूँगा। प्रयोगोंकी मेरी असफलता पर हम वहाँ बात कर सकते हैं। अगर मुझे ठीक-ठीक मार्ग-दर्शन मिले, तो अवश्य ही मैं अपने प्रयोगोंको पुनः आरम्भ करना चाहूँगा। आपकी पुस्तक मिली। धन्यवाद। दो प्रमुख खण्ड मैं अपने साथ ले आया हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ५४२९)की फोटो-नकलसे।

३०६. मिल मालिकों और मजदूरोंके बीचके विवादपर लिखी गई टिप्पणी[1]

बम्बई
७ सितम्बर, १९२९

अहमदाबादकी कपड़ा मिलोंमें लगभग ५५ हजारसे ऊपर मजदूर काम करते हैं। सन् १९२३ में मिलोंकी हालत उतनी अच्छी नहीं थी जितनी अच्छी वह सन् १९२०-२१में थी। इसलिए मिल मालिकोंने मजदूरोंकी तनख्वाहमें १५½ प्रतिशत कटौती कर दी। यह कटौती करते समय मालिक और मजदूरोंके बीच की शर्तके मुताबिक इसे पंचोंकी मारफत होना था। किन्तु वैसा नहीं हुआ। मजदूरोंने एक लम्बी हड़ताल की किन्तु वे उसमें सफल नहीं हुए। अब लगभग पिछले ८ महीनेसे मजदूर इस कटौती को रद करनेकी माँग कर रहे हैं। और आखिरकार यह काम पंचोंको सौंप दिया गया। सेठ मंगलदास गिरधरदास और मैं पंच हैं। मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि हम अपने निर्णयमें एकमत नहीं हो सके। मालिकोंकी तरफसे यह आपत्ति उठाई गई है कि १९२३ में जो कटौती की गई थी वह दोनों पक्षोंकी सम्मतिसे की गई थी। कहा तो यह भी गया था कि कटौती पंचोंकी मारफत निश्चित की गई थी। इन दोंमें से किसी भी बातके आधार पर कटौती क्यों न की गई हो, मजदूरोंको इसे रद करवानेका अधिकार नहीं है। वे इसके सिवाय यह भी कहते हैं कि मिलोंकी आर्थिक स्थिति भी कटौती रद कर सकनेके योग्य नहीं है और अन्तमें वे यह कहते हैं कि फिलहाल मजदूरोंको जो वेतन मिल रहा है वह उनकी जरूरतोंसे अधिक ही है।

इसके विरोधमें मजदूरोंके पक्षका कहना इस प्रकार है:

१. १९२३में पंचोंने कोई फैसला नहीं दिया था।

२. मजदूरोंने यह कटौती खुशीसे कबूल नहीं की थी, बल्कि इसलिए कबूल की थी कि उनमें हड़तालको और लम्बा चलानेकी शक्ति नहीं बच रही थी।

३. तथ्य कुछ भी क्यों न हों, सन् १९२३में मजदूरोंको जो वेतन मिल रहा था वह उनकी जरूरतोंको पूरा करने-भरके योग्य था। कटौती होनेसे उन्हें बहुत अधिक नुकसान उठाना पड़ा है।

पंचायतके सामने जो प्रमाण पेश किये गये, मैं उनके आधार पर इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मजदूर-पक्षकी ऊपरकी तीनों बातें सही हैं। मेरा यह भी मत है कि वेतन इत्यादिके विषयमें किसी जमानेमें किया गया कोई निर्णय हमेशा कायम नहीं रह सकता। इसलिए जब-जब मजदूरों अथवा मालिकोंकी ओरसे इस तरहकी स्थितियाँ

१. मजदूर संघने नये सिरेसे यह सवाल उठाया था कि १९२३ में मजदूरीमें जो कमी की गई थी, वह उचित नहीं था। इसी प्रश्नके सम्बन्धमें गांधीजीने यह टिप्पणी सरपंचके सामने रखनेके लिए तैयार की थी। देखिए पृष्ठ. ३०९-१० भी।

पेश की जायें तब-तब पंचायतको चाहिए कि वह उनके पक्ष और विपक्षकी बातोंको जाँच कर कोई फैसला दे।

मेरी दृष्टिमें जाँच करने योग्य मुख्य बात एक ही है। मजदूरोंको आज जो वेतन मिल रहा है क्या वह उनकी आवश्यकताओंके लिए पर्याप्त है? यदि वह अपर्याप्त हो, तो उस परिस्थितिमें, मिलकी स्थिति जबतक पूँजीमें हाथ लगाकर काम चलानेके लायक खराब न हो तबतक नुकसान उठाकर नौकरी करनेवाले मजदूरोंके वेतनमें कटौती की ही नहीं जा सकती। पंचायतके सामने जो प्रमाण उपस्थित किये गये उन परसे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि बहुत बड़ी संख्यामें मजदूरोंको उनकी आवश्यकताके अनुसार वेतन नहीं मिलता।

पंचायतके सामने नीचे लिखी दो अधिकारपूर्ण पुस्तकें पेश की गई थी:

१. कपड़ा उद्योग-मिलोंकी मजदूरी और कामके घंटोंका जाँच-सम्बन्धी विवरण — १९२३।

२. अहमदाबादके मजदूरोंके पारिवारिक खर्चसे सम्बन्धित जाँचका विवरण — १९२८।

अहमदाबादकी सभी मिलोंके मजदूरोंके वेतनकी औसत रु० २७-७-० है और यदि मजदूर एक भी दिन गैरहाजिर न रहे तो औसत रु० ३३-७-३ आती है (देखिए पुस्तक १, पृष्ठ ११-१२)।

मजदूर पक्षकी तरफसे जो आँकड़े पेश किये गये हैं, वे यह दिखाते हैं कि एक कुटुम्बका मासिक खर्च रु० ४९-१३-६ है। (देखिए परिशिष्ट अ) ये आँकड़े हिन्दू कुटुम्बसे सम्बन्धित हैं। मुसलमान कुटुम्बका खर्च इससे भी अधिक आता है। इसलिए औसतन मजदूरको इसमें नुकसान ही है। उल्लिखित पुस्तक संख्या २में स्वीकृत खर्चका आँकड़ा रु० ३९-५-८ दिया गया है। (देखिए पृष्ठ ३७)।

इस अन्तरका कारण यह है और यह कारण पुस्तकसे ही सिद्ध हो जाता है कि उसमें क्रम-संख्या २२ (ब्याज) तथा क्रम-संख्या २४ (सामाजिक व्यवहारके खर्च) का समावेश नहीं किया गया है। इसके सिवाय क्रम-संख्या ८ (दूध) और क्रम-संख्या १४ (ईंधन)से सम्बन्धित वस्तुओंका आँकड़ा कम दिया गया है। मेरा यह निर्णय है कि ये खर्च आवश्यक और वाजिब हैं। ब्याजकी रकम अनिवार्य है और कुछ अंशोंमें अनिवार्य नहीं भी है। जब वेतन कम होता है तो बनियेके यहाँसे खाने-पीनेकी चीजें उधार लानी ही पड़ती हैं और उस हालतमें उसपर कुछ-न-कुछ ब्याज देना अनिवार्य हो जाता है। शराब इत्यादि पर खर्च करनेके लिए जो पैसा उधार लिया जाता है वह आवश्यक नहीं है और इसलिए उसपर दिया जानेवाला ब्याज भी अनिवार्य नहीं है। इसलिए जितना ब्याज दिखाया गया है मैंने उतना ब्याज माना नहीं है और उतने ही ब्याजका विचार किया है जो हो सकता है। सामाजिक व्यवहारमें किये जानेवाले खर्च भी अनिवार्य हैं। मजदूर क्या, कोई भी भूखा भले रह जाये, किन्तु कुटुम्ब अथवा जातिसे सम्बन्धित अपने व्यवहारोंको निभाये बिना नहीं रह सकता। इसलिए मिल-मालिकोंकी ओरसे जो-कुछ कहा गया उस सबको सुननेके बाद भी मुझे उन आँकड़ोंको घटाकर कम करनेका कोई कारण समझमें नहीं आता जो मजदूरोंने अपने खर्चके विषयमें दिये हैं।

विभिन्न विभागोंके कपड़ा मजदूरोंका दर्जा भी विचारणीय है:

(क) ३० से ४० रुपये तक वेतन पानेवाले मजदूरोंकी संख्या १३,४८२ है।

ये वे मजदूर हैं जो मुख्यतः बुनाई विभागमें काम करते हैं। इस विभागमें केवल पुरुष होते हैं, स्त्रियाँ हैं ही नहीं।

(ख) ६ से ३० रुपये तक वेतन पानेवाले लोगोंकी संख्या ३२,८२८ है।

कपड़ा उद्योगके निम्नलिखित विभागोंमें काम करनेवाले लोग उक्त संख्यामें आ जाते हैं—पींजना, ब्लो रूम, फ्रेम, स्पिनिंग (बुनना), रीलिंग, बाइंडिंग, इंजन पर काम करनेवाले वगैरह। इन विभागोंमें पुरुषोंके सिवाय स्त्रियाँ और बच्चे भी होते हैं। उनकी संख्या इस प्रकार है:

१. पुरुष मजदूर: १७,३८१

२. स्त्री मजदूर: ६,६०२

३. बच्चे (उम्र १४ से १८ वर्ष तक): २,३६३

४. बच्चे (जो आधे दिन काम करते हैं और जिनकी उम्र १४ वर्षसे कम है) : ४३६७

(नोट — ख १ में बताई गई संख्यामें बाइंडिंग विभागकी १९७६ स्त्रियाँ शामिल हैं। अन्य विभागोंमें काम करनेवाली स्त्रियोंकी आमदनीकी तरह इनकी आमदनी इस विभागमें काम करनेवाले पुरुषोंकी आमदनीमें वृद्धि नहीं करती।)

इन आँकड़ोंसे स्पष्ट होता है कि वर्ग (क)की तरह वर्ग (ख)में भी एक बहुत बड़ा अंश केवल पुरुष मजदूरोंका है।

वर्ग (ब)में मजदूरी करनेवाले लोग लगभग ३३ रुपए ही कमा पाते हैं। यह बात उल्लिखित पुस्तकसे भी सिद्ध होती है। (देखिए कोष्ठक १, पृष्ठ ११)।

वर्ग (क)में जो लोग काम करते हैं उनके कुटुम्बके दूसरे लोग प्रायः कोई काम नहीं करते।

लगभग २३०० मजदूर ऐसे हैं जिनकी आमदनी रु० ४०–०० तक हो जाती है। इसके सिवा १६७० दिहाड़ी पर काम करनेवाले, १६५१ कारकून, और ११७१ चौकीदार वगैरह हैं। १९२३ में इन लोगोंके वेतनमें कोई कटौती नहीं की गई थी।

नोट: ये आँकड़े उल्लिखित पुस्तक क्रम-संख्या १में से लिये गये हैं जो अगस्त १९२३ में अहमदाबादकी कपड़ा मिलोंमें जो मजदूर काम करते थे उनके विषयमें तफसीलसे जानकारी देते हैं। उक्त वर्षमें मजदूरोंकी कुल संख्या ५२,०३८ दिखाई गई है। किन्तु उसके बाद इस संख्यामें वृद्धि हुई है।

पुस्तक-संख्या २ में अहमदाबादके सभी मजदूरोंके वेतनकी औसत रु० ४४–८–० आँकी गई है। पुस्तक-संख्या १में यह अधिकसे-अधिक रु० ३३–७–६ दी गई है। पुस्तक-संख्या १में मिलके बाहरके मजदूरोंको नहीं गिना गया है और उसमें उस धन्धेके अतिरिक्त अन्य आयका समावेश भी नहीं है। उसमें केवल मिलके सारे मजदूरोंकी आमदनीकी औसत दी गई है। पुस्तक-संख्या २में समस्त आमदनी और समस्त मजदूरोंका समावेश है। किन्तु एक बड़ा अन्तर यह है कि उसमें केवल

८७२ कुटुम्बोंके खर्चकी जानकारी दी गई है जब कि पुस्तक सं० १ में कपड़ा-मिलोंके समस्त मजदूरोंके वेतनोंका उल्लेख है। पुस्तक संख्या २ में नीचे लिखे वेतन पाने वालोंसे सम्बन्धित जाँचका विवरण दिया गया है।

आमदनीके हिसाबसे कुटुम्बोंकी संख्या

आमदनी	कुटुम्बोंकी संख्या	प्रतिशत जोड़
२० रु० के अन्दर	१७	१.९५
२० रु० से ३० रु० के अन्दर	१४६	१६.७४
३० रु० से ४० रु० के अन्दर	१८२	२०.८७
४० रु० से ५० रु० के अन्दर	२२०	२५.२३
५० रु० से ६० रु० के अन्दर	१५७	१८.०१
६० रु० से ७० रु० के अन्दर	७३	८.३७
७० रु० से ८० रु० के अन्दर	४५	५.१६
८० रु० से ९० रु० के अन्दर	३२	३.६७
	८७२	१०० (प्र०श०)

इसका यह अर्थ हुआ कि ५२७ कुटुम्बोंकी आमदनी ४० रुपयेसे ऊपर है; जब कि मैं ऊपर बता चुका हूँ, उसके मुताबिक उन मजदूरोंका अधिकांश भाग जो कटौती रद करनेकी माँग कर रहे हैं अधिकसे-अधिक ४० रुपयेके अन्दर पानेवाले लोगोंमें आ जाता है। और उनमें भी अधिकांश तो ३० रुपयेके भीतर पानेवालोंमें से हैं। इसलिए चाहे जिस तरहसे जाँच की जाये, सिद्ध यह होता है कि मजदूरोंका अधिकांश भाग अपने खर्चके अनुपातमें कम ही कमाता है।

मालिकोंकी ओरसे एक तर्क पेश किया जाता है कि मिलें तो आज भी नुकसानमें चल रही हैं। इसके समर्थनमें जो प्रमाण पेश किया गया है उसे मैं लचर मानता हूँ। यह सम्भव है कि कुछ-एक मिलें नुकसानमें चल रही हों किन्तु अधिकांश मिलें नुकसानमें नहीं चल रही हैं। यदि शेयरहोल्डरोंको कम ब्याज मिले अथवा ब्याज देनेके पहले घसारेका पैसा काटा नहीं जाये अथवा कुछ रकम सुरक्षित कोषमें न डाली जाये तो उसे मैं मजदूरोंके वेतनकी हदतक नुकसानमें गिननेके लिए तैयार नहीं हूँ।

मैं यहाँ एक बातका उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। मजदूर पक्षने अपनी माँगके समर्थनमें दो बातें कही थीं। उनमें से मैं एककी चर्चा कर चुका हूँ। दूसरी बात यह थी कि मिलोंको फिलहाल,इतना फायदा हो रहा है कि उन्हें कटौती रद कर देनी चाहिए। इस विषयमें पंचोंने यह संयुक्त निर्णय[1] दिया है कि मजदूर पक्ष अपना यह दावा सिद्ध नहीं कर सका है।

इसके अतिरिक्त मजदूर पक्षने जो दूसरी बात कही थी, मैं इस फैसले पर पहुँचा हूँ कि वह उसने सिद्ध कर दी है। मेरे सहयोगी और मेरे बीचमें इस बात

१. देखिए पृष्ठ ३२२।

पर सहमति है कि पंच-समितिके सामने दोनों पक्षों द्वारा पेश किये गये कागज सरपंचके पास भेज दिये जाने चाहिए।

पहले मुझे अपना फैसला लिखकर दे देना है; मेरे सहयोगी उसे देखनेके बाद अपना फैसला[1] लिखेंगे और उसे देख चुकनेपर यदि मैं कोई बात कहना आवश्यक समझूँगा तो मै वह बात भी लिख दूँगा।

यदि सरपंच पंच-समितिके साथ सलाह-मशविरा करना चाहेंगे तो हम दोनों किसी उचित स्थान पर उनके सामने उपस्थित हो जायेंगे।

यदि सरपंच और भी प्रमाणोंकी आवश्यकता समझें तो उन प्रमाणोंके पेश करवाये जानेका उन्हें अधिकार रहेगा।

जो कागज-पत्र पेश किये जा चुके हैं यदि उनके अतिरिक्त दोनोंमें से कोई भी पक्ष अपने-अपने कथनके प्रमाणमें कुछ और पेश करना चाहे तो वे उन प्रमाणोंको पहले एक दूसरेको बताकर सरपंचके सामने रख सकते हैं।

अन्तमें मै सरपंचसे यह विनती करता हूँ कि निर्णयमें ढील होनेके कारण मजदूरोंमें अशान्ति बढ़ती जा रही है; इसलिए निर्णय जितनी जल्दी दिया जा सके, उतनी जल्दी दे देना चाहिए।

मुझे नवम्बरकी २४ तारीख तक संयुक्त प्रदेशका दौरा करना है; फिर भी यदि सरपंच मुझसे कुछ पूछना चाहें तो सत्याग्रह आश्रमके पते पर पत्र देनेसे मैं जहाँ भी होऊँगा वह मुझे वहीं पहुँचा दिया जायेगा और मुझे उसका जो-कुछ उत्तर देना होगा सो मैं अपने सहयोगीको सूचित करते हुए सरपंचके पास भेज दूँगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

गुजराती (एस० एन० १४९७४)की माइक्रोफिल्मसे।

३०७. "यदि कातनेवाले बुनें भी तो?"

ऐसे एक-दो लेख और भी आये हैं। यह सबसे अच्छा जान पड़ा, इसलिए इसे प्रकाशित कर रहा हूँ।[2]

शिवाभाईके हिसाबमें[3] मुझे त्रुटि दिखाई देती है। हिसाबके दोष अलग रख कर उसके पीछे तत्वकी जो बात है उसे समझ लेना चाहिए। कई बार ऐसा होता है कि हमारे निष्कर्ष या अनुमान तो ठीक होते हैं किन्तु उन्हें सिद्ध करते समय दी गई दलीलें कमजोर या गलत तक होती हैं। मेरी रायमें सच्ची बात तो यह है कि कातनेवालोंके लिए बड़े पैमाने पर बुन सकना कभी सम्भव ही नहीं है। अतएव वह स्वावलम्बन-पद्धतिका अविभाज्य अंग नहीं बन सकता, न इसे ऐसा बनानेका

१. सेठ मंगलदासकी टिप्पणीके लिए देखिए एस० एन० १४९७५।

२. सीताराम पुरुषोत्तम पटवर्धनका उक्त लेख यहाँ नहीं लिया गया है।

३. देखिए "स्वावलम्बनकी योजना", १-९-१९२९ की पादटिप्पणी १।

प्रयत्न ही करना चाहिए। स्वावलम्बन-पद्धतिकी अन्तिम गति स्वेच्छासे स्वीकृत परावलम्बनकी होनी चाहिए। वहाँ बिजौलिया या बारडोलीकी मिसाल पेश करनेका कोई अर्थ नहीं। इन दोनों स्थानोंकी अवस्था असाधारण थी। साधारण अवस्था तो यह है कि अवकाश सभीको मिलता है। इस समयमें वह काते और कता हुआ सूत अपने गाँव ही में बुनवा ले। अगर कातनेवाला बुने तो उसकी कोई मुमानियत नहीं है; यही नहीं, बल्कि उसके लिए बुनाई सीखनेका सुभीता कर देना धर्म्य है। लेकिन इसके प्रचारकी आवश्यकता नहीं है।

दूसरे शब्दोंमें, किसी एकाकी ब्रह्मचारी या विधवाके लिए खुद ही ओटना, धुनना, कातना और बुनना, व्यापारकी दृष्टिसे हानिकर होगा। केवल बुनाईके द्वारा वे सिर्फ कातनेवालेके मुकाबले छ: या आठ गुनी अधिक कमाई कर लेंगे। उनके लिए यही आवश्यक भी है। अन्यथा उन्हें कोई दूसरा स्वतन्त्र पेशा ढूँढ़ लेना चाहिए। लेकिन बड़े कुनबोंमें एक आदमी बुननेका काम कर सकता है। मेरी कल्पनानुसार हमें चाहिए कि हम अपने कुनबेकी मर्यादाको कुछ अधिक बढ़ायें। हम गाँवको कुटुम्ब मानें और कुटुम्बोंको व्यक्ति। निर्जन द्वीपमें रहनेवाला रॉबिन्सन क्रूसो हमारा आदर्श नहीं है, बल्कि वसुधारूप जगद्व्यापी कुटुम्ब हमारा आदर्श है। इस आदर्श तक पहुँचने के लिए गाँवको कुनबा समझना, सहज ही एक कदम आगे बढ़ाना है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यह नन्हा-सा पृथ्वी-रूपी गोला उसका देश है। उसमें रहकर सब सर्वव्यापी काम करेंगे। कुटुम्ब कुटुम्बव्यापी करेगा, ग्राम ग्रामव्यापी और देश देशव्यापी। यह सब एक-दूसरेका नाश करनेके लिए नहीं, बल्कि एक-दूसरेको पुष्ट करनेकी इच्छासे होगा। मेरी दृष्टिमें चरखा सर्वव्यापक है और करघा कुटुम्ब-व्यापक या ग्राम-व्यापक। यह सहज ही साबित किया जा सकता है कि जो काते वही अगर बुने भी तो इसमें आर्थिक हानि है। और जहाँ मूल ही में आर्थिक हानि हो, वहाँ धर्म-हानि तो है ही। शुद्ध अर्थ कभी धर्मका विरोधी नही होता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-९-१९२९

३०८. सन्देश: काठियावाड़ युवक परिषद्को[1]

युवको, आप सुनें सबकी, किन्तु करें वही जिसका आपने संकल्प कर लिया है। भाषणोंके प्रवाहमें बह न जाना। काम पर ध्यान देना और चुप रहना सीखिए। आपका काम ही आपका भाषण बने। तब आप प्रजाकी पर्याप्त सेवा करने पर सुने जाने योग्य बन जायेंगे।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, ८-९-१९२९

१. यह परिषद् जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें हुई थी।

३०९. टिप्पणियाँ

प्रकृतिका प्रकोप

सिन्धमें प्रकृति इस समय कोपकी जो वर्षा कर रही है, वह वर्णनातीत है। उसके स्मरण-मात्रसे रोमांच हो आता है और हमें एक ओर प्रकृतिकी महिमा और दूसरी ओर अपनी नगण्यताका ठीक-ठीक अनुमान हो जाता है। तथापि मनुष्यका सर्वोपरि धर्म है दया। जब वह इस दया-धर्मके प्रभावमें आ जाता है, तब अपनी नगण्यताका अनुभव करते हुए भी वह यथासम्भव पुरुषार्थके लिए तत्पर हो जाता है। यदि एक व्यक्ति अथवा एक कुटुम्बके आँसू पोंछे जा सकते हों, तो हम उतना ही करते हैं। यदि हम अपन भोजनमें से भूखेको एक अंश भी दे सकें, तो उससे कुछ-न-कुछ सन्तोष मिल जाता है। और यदि स्वयं भूखे रहकर हम सब-कुछ दूसरेको दे दें, तो भी हमारा मनुष्यत्व यह कहता है कि हम इसपर गर्व न करने लगें। सर्वार्पण उच्चगामी मनुष्यका स्वभाव है और स्वभावसिद्ध कर्ममें अभिमानके लिए गुंजाइश ही नहीं है। इस समय जो देश-प्रेमकी भावना व्याप्त है, उसे देखते हुए गुजराती अपनेको सिन्धीसे अलग नहीं मान सकता। एक कुटुम्बके व्यक्तियोंके नाम अलग-अलग भले ही हों, वे अपनेको अलग-अलग नहीं मानते। इसी तरह हम भारत-वर्षके विभिन्न प्रान्तोंके होते हुए भी एक हैं और इसीलिए हमें एक-दूसरेके दु:खसे दु:खी होना चाहिए। गुजरातमें पैसेकी मदद करने और हिसाब-किताब रखनेकी शक्ति है। जिनका हृदय सिन्धके दु:खसे व्याकुल हो गया हो, उन्हें खुले हाथों पैसा देना चाहिए। जो शुद्ध भावसे सेवा करनेके लिए जाना चाहें, वे अपने नाम लिखवा दें। जो पैसा इकट्ठा होगा, वह सारा-का-सारा अध्यापक मलकानीजीको सौंप दिया जायेगा। उन्होंने इस कामकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। गुजरातकी बाढ़के समयका जो पैसा सरदार वल्लभभाईके हाथमें था, उसमें से १५,००० तो भेज दिया गया है। किन्तु यह १५,००० गुजरातकी आपत्तिसे भी भयंकर इस आपत्तिके क्षणमें है ही कितना?

यज्ञका अर्थ

एक पाठक लिखते हैं:[१]

यह अनुभवसिद्ध बात है कि आग जलानेमें हिंसा होती है। शास्त्रोंमें ऐसा कहीं नहीं कहा है कि पहले जो यज्ञ होते थे उनमें हिंसा न थी। हाँ, यज्ञार्थ हिंसाको शास्त्रने निर्दोष मान लिया था। मसलन, हममें से जो लोग निरामिषाहारी हैं, वे यह मानते तो हैं कि वनस्पतिके खानेमें भी हिंसा होती है, फिर भी वे उसे अनिवार्य समझकर सन्तोष मान लेते हैं या मनको समझा लेते हैं।

१. पत्र नहीं दिया जा रहा है। गांधीजीने २१ जुलाईके *नवजीवन*में 'किं धर्म' शीर्षक लेखमें लिखा था कि हिंसा आग जलानेमें भी है। पत्र-लेखकने आपत्ति की थी कि तब तो यज्ञ करना हिंसा करना कहलायेगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऋषि-मुनि प्राचीन कालमें जो पशुबलि आदि करते थे — अगर उन्होंने यह किया हो तो — उसे उस समयकी आवश्यकताके मुताबिक ठीक भले ही कह लें; आज वे अनावश्यक, अनार्य और क्रूर कर्म ही हैं। इस युगके लिए मैं पशुबलि इत्यादिको धार्मिक क्रिया तो मानता ही नहीं हूँ, बल्कि उसे अधार्मिक समझता हूँ और सदा यही मनाता रहा हूँ कि इसका लोप हो, यह मिट जाये। गीताजीमें यज्ञका जिस ढंगसे निरूपण किया है, उसका अर्थ विश्वव्यापक और पारमार्थिक है। जिस श्लोकमें यह बात कही गई है, उसके आसपासके श्लोकों और गीताजीकी रचनामें से उसका यही आशय सिद्ध किया जा सकता है। अतएव गीताजीके अनुकूल यज्ञका अर्थ यों किया जा सकता है : एकमात्र सेवा-भावसे या केवल पारमार्थिक दृष्टिसे किया हुआ कर्ममात्र। यहाँ कर्मका संकुचित अर्थ सर्वथा त्याज्य है। वही सच्ची सेवा है, जिसमें किसी भी जीवका अकल्याण न तो चाहा गया हो न किया गया हो।

आत्मशुद्धि

सन् १९२०में आत्मशुद्धिका जो यज्ञ आरम्भ किया गया था, वह देशके ऐसे अनेक भागोंमें जिनका हमें ज्ञान भी नहीं है, आज भी जागृत है और सतत चल रहा है। इसका ताजा उदाहरण अन्त्यज भाइयोंकी आत्मशुद्धिका आन्दोलन है। बुनकर रामजी गोपालने मुझे एक पत्र दिया है, जिसमें काठियावाड़के तेरह गाँवोंमें बसनेवाले उन तिरेपन अन्त्यजोंके दस्तखत हैं, जिन्होंने शराब वगैरा छोड़नेकी प्रतिज्ञा की है। ये सभी भाई शराब तो छोड़ ही चुके हैं, इनमें से अनेकोंने बीड़ी और अफीम भी छोड़ दी है और कुछ दूसरोंने मांसका भी त्याग किया है। ये सब लोग जब बराबर एक साल तक अपनी प्रतिज्ञाका पालन कर चुके तभी रामजीभाईने इनकी नामावली मुझे उस दिन सौंपी। इसमें शक नहीं कि इस तरहका काम जगह-जगह हो रहा है। खूबी यह है कि ये प्रवृत्तियाँ बनावटी नहीं हैं, यानी जोर-जुल्मसे कोई इन्हें लोगों पर लाद नहीं रहा है। जिन समाजोंमें ये काम हो रहे हैं, उनमें कार्यकर्त्ता भी बाहरके नहीं हैं। विभिन्न समाजोंमें जो सुधारक तैयार हुए हैं वे स्वयं ही स्वेच्छासे इन प्रवृत्तियोंको चला रहे हैं। इन और ऐसे अदृष्ट एवं मूक सेवकोंको मैं धन्यवाद देता हूँ। वे मेरी ओरसे अभिनन्दन स्वीकार करें। ईश्वर करे, उनका अनुकरण सर्वव्यापी बने।

बलसाड़के एक भंगी भाई

श्री छोटालाल बलसाड़से लिखते हैं।[1]

मुझे आशा है कि अब और अधिक विलम्ब किये बिना आवश्यक सुधार लागू कर दिये जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-९-१९२९

१. नहीं दिया जा रहा है। छोटालालने लिखा था कि वर्षाके कारण कुआँ खोदने और हरिजनोंके लिए छप्पर छानेका काम रुक गया है। उसने हरिजनोंको उनके कर्जसे छुटकारा दिलानेका वादा किया था।

३१०. चरखेका पुनर्जन्म

यह पत्र[1] छापते हुए मुझे थोड़ा संकोच तो जरूर हो रहा है, क्योंकि काका साहब और बालकृष्ण दोनोंने ही, जो यन्त्रोंकी रचना समझते हैं और कुछ हद तक यन्त्र बनाना जानते भी हैं, ऐसा कहा है कि इसमें जो मूल दोष है वह दूर नहीं किया जा सकता। मूल दोषकी बातका समर्थन करनेवाले अन्य पत्र भी आते रहते हैं। एक और सज्जनने लिखा है:[2]

फिर भी मैंने उक्त पत्रको छापना ठीक माना है। क्योंकि मूल योजनाको प्रकाशित करते समय मैंने जो-कुछ लिखा था,[3] मेरा वह अभिप्राय आज भी बना हुआ है। भाई हीरालालकी योजना सफल हो चाहे असफल, उनका प्रयत्न स्तुत्य है। अपनी योजनाके विषयमें उनकी निष्ठा भी वैसी ही स्तुत्य है। भाई हीरालाल ऐसा नहीं मानते कि उनकी योजना परिपूर्ण है। वे तो केवल इतना ही कहते हैं कि नया और शक्तिशाली चरखा सम्भव है, वह बहुत थोड़े दामोंमें बन सकता है और उन्हें इस दिशामें जो-जो बातें सूझी हैं, उन्होंने उन सबको अपनी शक्तिके प्रमाणमें लोगोंके सामने सुव्यवस्थित रूपमें रख दिया है। किन्तु अब मैं भाई हीरालाल और उन्हीं-जैसे अन्य आविष्कर्त्ताओंसे एक बात कहना चाहता हूँ। वे योजनाकी योग्यता अथवा अयोग्यताके विषयमें केवल तर्क ही न करते रहें, बल्कि भाई हीरालाल-जैसे लोगोंको जो बात सम्भव लगती है, वे उसे अपनी कल्पनाके अनुसार चरखा बनाकर तथा अमलके बाद उसके परिणामको लोगोंके सामने रखें। जिस योजनाकी परीक्षा उसको अमलमें लाकर सरलताके साथ की जा सकती हो, उस योजनाके विषयमें केवल चर्चा ही करते रहना मुझे समय और शक्तिका अपव्यय लगता है। भाई हीरालाल कहते हैं कि जो मुख्य दोष बताया जा रहा है, उनकी योजनामें वैसा कोई दोष नहीं है। मुझे आशा है कि यह सहज ही सिद्ध किया जा सकता है कि वह दोष नहीं है। इस दिशामें अधिकसे-अधिक सिद्धि तो उसे ही मिलेगी, जिसे इसके विषयमें अडिग निष्ठा है। इसलिए भाई हीरालालको मेरी यह सलाह है कि वे अब अखबारी अथवा दूसरी किसी चर्चामें न पड़कर योजना पर अमल करनेमें नित्य कोई निश्चित समय लगाया ही करें। इस अंककी पूर्तिके रूपमें भाई हीरालालकी योजना, उनके द्वारा सुझाये हुए चरखेका चित्र और उसका स्पष्टीकरण दिया जा रहा है।[4]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-९-१९२९

१. हीरालाल अमृतलाल शाहका यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उसमें उनके द्वारा नियोजित सुधरे हुए चरखेकी योजनाका वर्णन था।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कहा था कि हीरालाल शाहके द्वारा सुझाये हुए पोले तकुएसे सूतका बल बढ़ जाता है और वह कमजोर हो जाता है।

३. देखिए "टिप्पणी" "हीरालालकी योजना", १-९-१९२९।

४. यहाँ नहीं दिया गया है।

३११. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

[रेलमें]
८ सितम्बर, १९२९

चि० गंगाबहन,

मैं जानता हूँ कि तुमपर जवाबदारी बहुत है। किन्तु तुम ईश्वर पर श्रद्धा रखती हो, इसलिए कुशल ही होगी। त्यागपत्र वापस ले लेना। मानापमानको समान समझो।

छोटीसे-छोटी चीजको भी न भूलें और चित्त व्यवस्थित रखा जाये तो चूक होगी ही नहीं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो : ६ : गं० स्व० गंगाबहेन वैद्यने तथा सी० डब्ल्यू० ८७२८ से भी।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

३१२. पत्र : छगनलाल जोशीको

८ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

अभी हम लोग कुछ क्षणोंमें भोपाल पहुँच जायेंगे। मेरी तबीयत अच्छी है। मेरा कलका पत्र[1] मिल गया होगा। किशोरलालकी तबीयत नरम रहती है। कल थोड़ा बुखार था।

सुरेन्द्रसे कहना कि नाथजी मिले थे। थोड़े दिनोंके बाद वहाँ मराठेसे मिलने आयेंगे।

गोपालरावकी शायद कोई खबर आज भोपालमें मिले। सम्भावना कम ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४३०) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पृष्ठ ४०२-३।

३१३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

रविवार, ८ सितम्बर, १९२९

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम दोनोंके पत्र मिले हैं। सुशीला जब आना चाहे तभी आ सकती है। उसकी इच्छा होगी तो मैं उसे तुरन्त वापस भेज देनेके लिए तैयार भी रहूँगा। मैं यह पत्र भोपालसे लिखवा रहा हूँ। कान्ति लिख रहा है। मैं चरखा चला रहा हूँ। आज रविवार है। शाम हो गई है। मेरे मौनका समय होने ही वाला है। दूसरे लोगोंमें मेरे साथ कुसुमबहन है, जमनाबहन है, प्यारेलाल है। प्यारेलालकी बहन आगरा तक साथ रहेगी। कमसे-कम यहाँ तक तो जमनालाल भी रहेंगे। यहाँके आसपासका दृश्य बहुत रमणीक है। बौद्ध कलाका स्थान साँची यहाँसे पास है। हम लोग मंगलवारको इसे देखने जायेंगे। यहाँका तालाब भी सारे भारतमें प्रसिद्ध है। आसपासका दृश्य सुन्दर है और छः-सात मील तक फैला हुआ है।

मौनवार

'इंडियन ओपिनियन' चलानेके विषयमें तुमने प्रश्न उठाया है। उस विषयमें मेरा यहाँसे लिखना अथवा लिखवाना निरर्थक है। वहाँ जो-कुछ हो सकता है, वही करो। यदि तुम उसे बन्द कर डालनेका ही विचार करो, तो उसके पहले वहाँ जो न्यासी-गण हैं उनसे तो मिल ही लेना चाहिए। उमर सेठकी भी सलाह ली जाये।

मारवाड़ीके साथ विवाह-सम्बन्धके बारेमें तुमने प्रश्न किया है, यह देखकर आश्चर्य होता है। मुझे याद है कि मैंने तुमसे यह कहा था कि यदि सुशीलाके साथ सम्बन्धकी बात न आई होती तो मैंने तुम्हारा विवाह एक बंगाली लड़कीके साथ लगभग तय ही कर लिया था। मैंने जो कहा था सो यह है कि मैं अपने समाजके बाहर विवाह करनेकी स्वीकृति देनेके लिए तैयार नहीं हूँ — लेकिन यह तो ठीक ही है कि इस प्रकारके सम्बन्धमें भी पापकी कोई बात नहीं है। एक प्रान्तका दूसरे प्रान्तसे ऐसा सम्बन्ध अच्छा है, यह बात तो मैं बरसोंसे मानता आया हूँ।

चेचकका टीका न लगवानेपर दूसरे कुछ भी क्यों न कहें, जबतक हम उस जगहमें हैं, जहाँ चेचकका रोग फैला हुआ है, हमें [लोगोंके कहनेकी] चिन्ता नहीं करनी चाहिए। फिर भी मैं तुम्हें इस झंझटमें क्यों डालूँ? तुम्हारा मन जो-कुछ कहे और जितनी तुम्हारी शक्ति हो, उसीके अनुसार करो। अब तुम्हें इस विषयमें मुझसे पूछताछ करनेकी जरूरत नहीं है। स्वयं तुम्हें इस विषयका साहित्य पढ़कर विचार निश्चित कर लेना चाहिए। यही ठीक है और उसीके अनुसार चलना चाहिए। चेचकका टीका लगवानेवाले लोग अधिक हैं और न लगवानेवाले मुझ जैसे लोग थोड़े ही हैं।

नीमुको कुछ ही दिनोंमें प्रसव होगा। वह लखतरमें है। रामदास पत्र क्यों नहीं लिखता, सो मैं नहीं कह सकता। मैंने उसे लिखा है। नीमु तो आलसी है ही।

मथुरादासकी पत्नीके बीमार पड़ जानेसे देवदास अलमोड़ा गया है। नहीं तो वह मुझे परसों आगरामें मिल जाता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७५९) की फोटो-नकलसे।

३१४. अपील : मिल-मजदूरोंसे

९ सितम्बर, १९२९[1]

मजदूर संघ और मिल-मालिकोंके संगठनने मजदूरोंके वेतनमें की गई कटौतीको बहाल करनेके प्रश्न पर पंच-फैसला देनेके लिए महात्मा गांधी और सेठ मंगलदासको चुना था। उन्होंने अब घोषणा कर दी है कि उन दोनोंमें मतभेद होनके कारण वह प्रश्न अन्तिम निर्णयके लिए अब एक निर्णायकके पास भेजा जायेगा और उन्होंने बम्बई उच्च न्यायालयके एक अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश, दीवान बहादुर कृष्णलाल मोहनलाल झवेरीको निर्णायक चुना है। महात्मा गांधीने मजदूरोंके नाम एक अपील जारी की है कि वे धैर्य रखें तथा शान्ति बनाये रखें। उनका कहना है कि वे इस बातको जानते हैं कि पंचों द्वारा निर्णयकी घोषणामें देर होनेके कारण उन लोगोंमें थोड़ी बेचैनी फैल गई है। उन्होंने मजदूरोंको आश्वस्त किया है कि वे निर्णायकसे यथाशीघ्र निर्णय प्राप्त करनेकी कोशिश करेंगे। संयुक्त प्रान्तके दौरे पर रहते हुए भी वे मजदूरोंके लिए जो-कुछ कर सकते हैं, करेंगे और उनके कल्याणसे सम्बन्धित जानकारी इकट्ठी करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १०-९-१९२९

१. एसोसिएटेड प्रेस द्वारा इस तारीखको अहमदाबादसे जारी की गई।

३१५. पत्र : छगनलाल जोशीको

९ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र और डाकका ढेर मिल गया है। जगजीवनदासको लिखूँगा। उसे तुम्हारा पत्र भेज देना ही ठीक रहेगा। सत्य शायद आरम्भमें जहरके समान लगता है; तो भी उसका परिणाम अमृतके समान है। इसलिए हम निश्चिन्त रहें। एक-दूसरेसे प्रिय लगनेवाली बातें कहनेकी हमें बुरी आदत पड़ गई है। इसे छोड़ देना जरूरी है।

तुम्हें अब आत्मनिन्दा कम कर देना चाहिए। श्रद्धावान सफल ही होता है, ऐसा निश्चय मनमें करके कर्त्तव्य-रूपी यज्ञमें अपने विचारोंको भी होम दो। आत्म-निरीक्षण अच्छा है, किन्तु आत्मनिन्दाकी एक मर्यादा है।

रोटीके पकनेपर बहुत-से व्यक्तियोंका स्वास्थ्य निर्भर है; इसलिए उसमें कोई कसर नहीं रहनी चाहिए। उसका काम जिसके हाथमें हो उस व्यक्तिको नहीं बदला जाना चाहिए।

बहियोंके बारेमें फेरफार ठीक ही किये हैं। इस विभागमें भी कोई कसर नहीं रहनी चाहिए। सच तो यह है कि मन्त्रीकी हजार आँखें और हजार हाथ होने चाहिए। छोटीसे-छोटी बात भी उसकी नजरसे ओझल नहीं रहनी चाहिए।

मैंने तुमसे जमशेदपुरके पेरिन्सकी बात तो की थी न? यह व्यक्ति अपनी कोठरीमें बैठा सभी विभागोंसे टेलीफोनसे सम्बन्ध रखता था और रात-दिन उनकी खबर रखता था और जो आज्ञाएँ देना चाहता था, देता था। यह तो आसुरी चौकसी हुई। हम टेलीफोनके झमेलेमें न पड़ें; किन्तु जागृति तो हमारी उससे भी बढ़कर होनी चाहिए। हममें ठीक निष्काम वृत्ति आ गई हो तो नित्य काममें जुटे होनेपर भी मनमें परम शान्ति रहे और शरीर भी कमजोर हुआ दिखाई न दे। जड़ यन्त्र उपयोगसे घिसते हैं; आत्मा उपयोगसे उज्ज्वल और नई होती दिखाई देती है। इस-लिए उसका रहनेका घर भी वैसा ही लगता है। यह तो मैं आदर्शकी बात लिख रहा हूँ। मैं स्वयं इस स्थितिसे बहुत दूर हूँ, यह मैं जानता हूँ। इसलिए यह सब लिखनेका भी अधिकार मुझे कम ही है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४३१)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो – श्री छगन-लाल जोशीने**से भी।

३१६. पत्र : वसुमती पण्डितको

भोपाल
९ सितम्बर, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारे विषयमें थोड़ी चिन्ता तो बनी ही रहती है और वह इसलिए कि मुझे इन दिनों तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं लगता। जितना बनता है, उतना करके निश्चिन्त हो जाना आवश्यक है। मैं अधिक आशा रखता हूँ और तुम तदनुसार काम नहीं कर पातीं, इसकी चिन्ता तो करनी ही नहीं चाहिए। आशा रखना मेरा धर्म है। किन्तु बाल-बच्चे तो जितना कर सकते हैं, उतना कर लेनेके बाद मुक्त हो जाते हैं। यदि वे उससे अधिक करनेकी कोशिश करें तो टूट जायेंगे अथवा बिलकुल कृत्रिम हो जायेंगे और इसका अर्थ है कि वे निरर्थक बन जायेंगे। शरीरको सँभालकर रखना। यहाँ (भोपालमें) आब-हवा सुन्दर है। दृश्य भी लुभावना है। परसों हम आगरा पहुँच जायेंगे। जमनालाल शायद यहींसे साथ छोड़ देंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२६५) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२से भी।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

३१७. पत्र : कुमारी प्रेमाबहन कंटकको

मौनवार, ९ सितम्बर, १९२९

चि० प्रेमा,

तुम्हारा दुःख मैं समझता हूँ। तुम्हारे प्रेमको उससे भी ज्यादा समझता हूँ। तुम्हारी कर्त्तव्य-परायणता मुझे बहुत अच्छी लगी है। जिस रास्ते पर तुम आज चल रही हो, आत्मशुद्धि उसी रास्तेमें है; उसीमें शान्ति है और देशसेवा है; इसके बारेमें कभी शंका मत रखना। अगर आश्रमसे कुछ मिला हो तो उसे न छोड़नेका निश्चय करके स्वयं अपनी, आश्रमकी और मेरी शोभा बढ़ाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १०२१३)की फोटो-नकल तथा (सी० डब्ल्यू० ६६६१)से भी।
सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३१८. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

९ सितम्बर, १९२९

बहनो,

आज मुझे गुजराती 'नवजीवन', 'हिन्दी नवजीवन' और 'यंग इंडिया'का बचा हुआ काम करना है और वक्त कम है। इसलिए थोड़ेको बहुत समझ लेना। यहाँ होने पर भी मैं वहीं हूँ, ऐसा मान लेना। सब एकराग होना। एक-दूसरेकी मदद करना और अपनेको और मन्दिरको शोभनीय बनाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७००) की फोटो-नकलसे।

३१९. एक पत्र

यात्रामें

साबरमती[1]
९ सितम्बर, १९२९

प्रिय महोदय,

उत्कल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीसे जो जानकारी प्राप्त करनेमें मैं आखिरकार सफल हो गया, इसके साथ मैं वह जानकारी भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

संलग्न[2]

सचिव
अ० भा० कां० कमेटी
हेवेट रोड,
इलाहाबाद

अ० भा० कां० कमेटी फाइल संख्या १५१, १९२९
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली

१. स्थायी पता।
२. गांधीजीने संलग्न-संख्या नहीं दी।

३२०. पत्र : छगनलाल जोशीको

[१० सितम्बर, १९२९][1]

चि० छगनलाल,

कल भेजी हुई डाक मिल गई होगी। मैं कल भणसालीका पत्र[2] रखना भूल हो गया था। आखिर रातको ११ बजे सोते समय याद आई, इसलिए 'लेट फी'-का टिकट लगाकर डाकमें छोड़नेके लिए प्यारेलालको मोटरमें दौड़ाया। पोस्टकार्ड डाकमें डाल दिया गया है। आशा है, वहाँ पहुँच गया होगा।

न्यूयार्कसे मिली वह रकम सहायता कोषके खातेमें जमा कर देना। आज मैं अभी-अभी साँची जाकर लौट आया। अभी मैं डाक नहीं देख पाया हूँ। यदि कोई आवश्यक बात होगी तो मैं लिखूंगा।

प्रार्थनामें कितने लोग आते हैं? क्या 'गीता' का एक अध्ययन कण्ठस्थ करनेका उत्साह किसीमें है?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो : श्री छगनलाल जोशीने

३२१. भाषण : सार्वजनिक सभा, भोपालमें[3]

१० सितम्बर, १९२९

मैं यह कबूल करता हूँ कि जब दिल्लीमें नवाब[4] साहबके प्रेम और डॉ० अन्सारीके आग्रहवश मैंने भोपाल आना मँजूर किया था तब यही सोचा था कि और रियासतोंकी भाँति यहाँ भी लाखों रुपये पानीकी तरह बहाये जाते होंगे। किन्तु जब यहाँ आकर देखा कि नवाब साहब जिस महलमें रहते हैं, सो तो डॉ० अन्सारीके विशाल बंगलेके मुकाबलेका भी नहीं है, तब मुझे मौलाना शिबलीके मुँह सुनी हुई हजरत उमरके सादे जीवनकी याद हो आई।

नवाब साहबकी सादगीकी चर्चा करते-करते गांधीजी देशी राज्योंके आदर्शपर बोलने लगे। उन्होंने कहा :

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र १९ अक्टूबर और २१ अक्टूबर, १९२९ के पत्रोंके बीचमें दिया गया है। किन्तु गांधीजीके सांचीके दौरेके उल्लेखसे स्पष्ट है कि यह पत्र १० सितम्बर, १९२९ को लिखा गया था।

२. यह पत्र उपलब्ध नहीं है। किन्तु साधन-सूत्रमें २० अक्टूबर १९२९ का भणसालीको लिखा एक पत्र पादटिप्पणीके रूपमें दिया गया है।

३. यह "संयुक्त प्रान्तकी यात्रा" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था और इसका मिलान **यंग इंडिया**, १९-९-१९२९ के विवरणसे भी कर लिया गया है।

४. भोपालके नवाब।

मैं देशी राज्योंका शत्रु नहीं हूँ। मैं उनका हित चाहता हूँ। मेरे आदर्शके देशी राज्य प्रजातन्त्रके विरोधी नहीं हो सकते। मैंने कई बार आदर्श देशी राज्योंको रामराज्यकी उपमा दी है। रामराज्यका अर्थ हिन्दू राज्य नहीं, बल्कि दिव्य राज्य है -- जिसमें राजा और प्रजा दोनों सदा ईश्वरका डर रखकर अपना काम करते हों। मेरी निगाहमें राम और रहीम दोनों समान हैं। मैं सत्य और अहिंसासे परे किसी ईश्वरको नहीं जानता। मेरे आदर्श रामकी हस्ती इतिहासमें हो या न हो, मुझे इसकी परवाह नहीं। मेरे लिए यही काफी है कि हमारे रामराज्यका प्राचीन आदर्श शुद्धतम प्रजातन्त्रका आदर्श है। उस प्रजातन्त्रमें गरीबसे-गरीब रैयतको भी शीघ्र और बिना किसी व्ययके न्याय मिल सकता था। कविने अपने वर्णन में यह बतलाया है कि रामराज्यमें कुत्तेको भी न्याय मिलनेमें कठिनाई नहीं होती थी।"

रामराज्य और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी चर्चा करते-करते गांधीजीने अस्पृश्यताके बारेमें कहा :

अगर हिन्दू जनता दुनियामें अपना अस्तित्व रखना चाहती है तो अस्पृश्यता निवारणके सिवा दूसरा तरणोपाय उसके लिए है ही नहीं।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी चर्चा करते हुए गांधीजीने स्वर्गीय हकीम साहबके साथके अपने प्रेमपूर्ण सम्बन्धका जिक्र किया और अजमल जामियाके लिए आर्थिक सहायता चाही, साथ ही उन्होंने उपस्थित जनताको यह भी बतलाया कि जामियाके लिए डॉ० जाकिरहुसैन और उनके साथियोंने स्वेच्छासे गरीबी स्वीकार करके और निर्वाह-मात्रके लिए थोड़ी-सी रकम लेकर त्यागका कितना सुन्दर उदाहरण पेश किया है। अन्तमें उन्होंने भारतकी गरीब जनताके साथ सजीव सम्बन्ध जोड़नेके लिए विदेशी वस्त्र बहिष्कार और खादीके महामन्त्रका रहस्य समझाया। भोपालके नगरनिवासियोंकी ओरसे गांधीजीको खादी-कामके लिए १,०३५) की थैली मिली। जामिया मिलियाके सम्बन्धमें गांधीजीने जो प्रार्थना की थी उसके फलस्वरूप घर-घर जाकर चन्दा इकट्ठा करनेके लिए वहींकी वहीं एक समिति बनाई गई।

हिन्दी नवजीवन, २६-९-१९२९

३२२. अजमल-जामिया कोषके सम्बन्धमें प्रस्ताव[1]

[११ सितम्बर, १९२९]

चूँकि मरहूम हकीम अजमल खाँ साहबकी यादगारके तौर पर जामिया मिलिया, दिल्लीको ठीक चलाते रहना जरूरी है, इसलिए अजमल-जामिया कोषके न्यासियोंकी यह बैठक इसके द्वारा संकल्प करती है कि अबतक इकट्ठी की गई रकममेंसे १,०००) रुपए खजांचीके पास रहने दिये जायें और बाकी रकम जामियाको एक संरक्षित

१. डॉ० जाकिर हुसैनने दिनांक ११ सितम्बर, १९२९ के अपने पत्रमें गांधीजीको लिखा था: "अजमल-जामिया कोषके न्यासियोंकी भोपालमें ११ सितम्बर १९२९ को हुई बैठकमें स्वीकृत प्रस्तावकी एक प्रति आपकी फाइलके लिए संलग्न है।"

कोष बनानेके लिए दे दी जाय जिससे स्थायी किस्मके खर्चों और मौजूदा आमदनी और खर्चके बीचका अन्तर पूरा किया जाये और आगे भी जो रकम मिले वह इसी कामके लिए जामियाको दे दी जाये।

खजांचीकी जानकारीके बिना इस तारीखसे पहले मिली हुई सारी रकम खजांची के पास जमा करा दी जायेगी; और यह बैठक खजांचीको यह अधिकार देती है कि वह उस रकममेंसे जामियाके अधिकारियों द्वारा अध्यक्षकी मंजूरीसे किये गये खर्चको कानूनी खर्च मान ले। खजांची कोषके हिसाबकी जाँच-पड़तालके लिए बाकायदा सर्टिफिकेटशुदा एक आडीटर (लेखा-परीक्षक) मुकर्रर कर सकेगा।

अंग्रेजी (एस० एन० १५५८०)की माइक्रोफिल्मसे।

३२३. पत्र : छगनलाल जोशीको

आगरा
११ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

जगजीवनदासको लिखे पत्रकी नकल इसके साथ भेज रहा हूँ। कल भोपालसे भेजी गई डाक मिल हुई होगी।

प्रभावती कल यहाँ आ गई। शर्मा यहाँ पहुँच गया है। अच्छा ही हुआ। उससे बहुत-कुछ सीखा जा सकता है, ऐसा भी नहीं है। यहींसे अपने घर चले जानेके लिए कह दिया है। देवदास अलमोड़ा पहुँच गया है। जब-जब पत्र लिखो, भणसालीकी खबर देते रहना। गोपालराव अब स्वस्थ हो गया होगा। मन्दिरमें आ गया होगा।

स्त्रियोंका उद्योगालय भणसालीके घरमें ले जानेका क्या हुआ, इसके बारेमें लिखना। डॉ० मेहताका अक्तूबरमें आना अभी तक निश्चित है, ऐसा मुझे मणिलालसे मालूम हुआ है। इसलिए हमें अपना प्रबन्ध पहले ही कर लेना चाहिए। झवेरभाईकी पत्नीका क्या हुआ?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४३२)की फोटो-नकल तथा **बापुना पत्रो : श्री छगनलाल जोशीने**से भी।

३२४. पत्र : जगजीवनदासको

आगरा
११ सितम्बर, १९२९

भाईश्री जगजीवनदास,

लाठीके मन्दिरके सम्बन्धमें भाई छगनलालका पत्र साथमें भेज रहा हूँ। आप देखेंगे कि उन्होंने जो आलोचना की है वह सख्त है। यदि वह ठीक हो तो उनका उपकार माना जाना चाहिए। यदि उसमें आप पर किसी प्रकारका अन्याय हुआ हो, तो यह मानकर रोष न करना उचित होगा कि आलोचना शुद्ध हेतुसे की गई है। यदि आलोचना सही है तो आपने जबरदस्त भूलें की हैं। आपको यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए और भविष्यमें कोई जिम्मेदारी लेते समय काफी सोच-विचार करना चाहिए। आप छगनलालभाईके पत्रपर से देखेंगे कि जो खर्च किया जा चुका है उसके लिए अब पैसा जमा करनेका प्रयत्न हो रहा है। जो काम बाकी बच गया है, कहीं न कहींसे आवश्यक सहायता लेकर उसे पूरा कर डालना चाहिए। छगनलालका पत्र वापस भेज दीजिए।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १५४२२) की माइक्रोफिल्मसे।

३२५. भाषण : आगराकी सार्वजनिक सभामें[1]

११ सितम्बर, १९२९

महात्माजीने कहा कि मुझे खेद है कि पहलेकी तरह जोरसे बोल नहीं सकता और लोगोंके शोर मचानेसे बात और भी बिगड़ती है, इसलिए मैं आप लोगोंसे खामोश रहनेकी प्रार्थना करता हूँ।

जिन संस्थाओंने[2] मुझे अभिनन्दन पत्र दिये हैं उन सबको मैं धन्यवाद देता हूँ और इसके लिए खेद प्रकट करता हूँ कि मैं प्रत्येकका उत्तर नहीं दे सकता और मेरे विचारमें उनमें ऐसी कोई बात भी नहीं है जिसका उत्तर देनेकी जरूरत हो।

मुझे ४,०००) की थैली मिली है — इसमें १६०६) लाजपतराय-स्मारक कोषके लिए हैं। इस थैलीके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। और साथ ही रकम छोटी होनेके

१. इसका मिलान "संयुक्त प्रान्तकी यात्रा" शीर्षकसे **हिन्दी नवजीवन**में और **यंग इंडिया**में १९-९-१९२९ को प्रकाशित विवरणोंसे कर लिया गया है।

२. जिला कांग्रेस कमेटी, जिला रोड, नगरपालिका, तथा आगरा युवक संघ।

कारण असन्तोष प्रकट करता हूँ। मैं जानता हूँ कि आजकल आगरेका बुरा हाल है पर मुझे विश्वास है कि यह इससे अधिक दे सकता था। जिस कामके लिए धनसंग्रह किया जा रहा है उससे वर्तमान आर्थिक कठिनाइयाँ दूर करनेमें सहायता मिलेगी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ऐसे समयमें व्यापारी बहुत लाभ उठाते हैं। मेरे इस नगरमें रहनेका समय कुछ बढ़ गया है और मुझे आशा है कि मेरे आगरा छोड़नेसे पूर्व लोग मुझे और धन देंगे। जब स्वयंसेवक आपके पास माँगने आये तो आप लोग उन्हें अच्छी रकमें दें।

आन्ध्रके भाषणोंमें मैंने स्पष्ट कर दिया था कि मैं सुन्दर मढ़े हुए अभिनन्दनपत्र नहीं चाहता, कारण उन्हें रखनेके लिए मेरे पास स्थान नहीं है और उन्हें मढ़वानेमें खर्च होनेवाला प्रत्येक रुपया एक औरतका १६ दिनका भोजन-खर्च चला सकता है। अगर मैं इन अभिनन्दनपत्रोंको नीलाम कर दूँ तो आप यह न खयाल करें कि मैं उनका अपमान करता हूँ। मैं पहले भी ऐसा कर चुका हूँ और आन्ध्रमें एक अभिनन्दनपत्रका मुझे १००००) मिला था।

इसके पश्चात् महात्माजीने उपस्थित जनतासे कहा कि असहयोगमें आज भी मुझे वैसा ही अटल विश्वास है जैसा १९२०-२१ में था। आप लोगोंको १ जनवरी १९३० के लिए तैयारी करनी है, कांग्रेसने भारतीयोंको बता दिया है कि इस साल तथा अगले साल क्या करना है। स्वराज्य उसीके अनुसार चलकर अहिंसात्मक उपायोंसे प्राप्त किया जा सकता है।

इसके बाद आपने विदेशी वस्त्र बहिष्कार, अस्पृश्यता-निवारण, मद्यनिषेध तथा कांग्रेसकी सदस्यता बढ़ानेसे सम्बन्धित त्रिविध कार्यक्रम विस्तारके साथ समझाया और कहा कि इस कार्यक्रमका कारगर तरीकेसे कांग्रेसको संगठित करके ही चलाया जा सकता है, इसलिए लोगोंका कांग्रेसका सदस्य बनना एक आवश्यक काम है। उन्होंने कहा कि यदि यहाँ उपस्थित सब लोग सच्चे हृदयसे विदेशी वस्त्रका त्याग करें और खद्दर तैयार करनेके लिए तैयार हो जायें तो विदेशी वस्त्र और अस्पृश्यता बड़ी आसानीसे दूर की जा सकती है। इससे एक बहुत बड़ी शक्तिका प्रादुर्भाव होगा। यदि लोग आवश्यक तैयारी न करें और कांग्रेस कार्यक्रमको कार्यान्वित न करें तो १ जनवरीको सम्भवतः कुछ भी न किया जा सकेगा। स्वराज्य न आसमानसे टपकने वाली कोई चीज है और न वह दिसम्बरमें कांग्रेसके घोषित कर देनेसे ही हस्तगत हो सकता है। मैं तो यहाँ तक कहना चाहता हूँ कि हम अपनी घोषणामें जो कुछ लेनेकी बात कहना चाहते हैं यदि इस बीच उसे प्राप्त करनेकी शक्ति हमने पैदा नहीं की और यदि सरकारने ३१ दिसम्बर, १९२९ की अर्धरात्रि तक बात नहीं सुनी तो हमारी राष्ट्रीय घोषणा और स्वराज्यकी माँग एक अरण्य-रोदन होकर रह जायेगी और हम १९३० में कुछ भी नहीं कर पायेंगे।

आज, १५-९-१९२९

३२६. मेरी मर्यादाएँ

मुझे इस बातका बड़ा दुःख और संकोच है कि मैं कांग्रेसके अगले अधिवेशनके सभापतिके चुनावके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक बुलानेमें निमित्त बना हूँ। मित्रगणोंने मुझे फौरी तार भेज-भेज कर और पत्र लिख-लिख कर यह बताया कि मैं इस आनबानके मौके पर पीछे न हटूँ; अपने निर्णय पर पुनः विचार करूँ और अ० भा० कां० क० की बैठकको यथासम्भव टालूँ। इच्छा न रहते हुए भी मुझे उन्हें निराश करना पड़ रहा है। मैं उन्हें यही सन्तोष दिला सकता हूँ कि मेरे निर्णयके कारण उन्हें जो दुःख हुआ है, वह मेरे दुःखसे अधिक नहीं हो सकता। रहनुमाईके लिए ईश्वरी प्रेरणाकी प्रतीक्षामें मुझे विश्वास है। भीतरसे मुझे कोई प्रकाश मिल नहीं रहा है, न मैं अभी आत्मविश्वास एकत्र कर पाया हूँ।

मुझे अपनी मर्यादाओंका भली-भाँति भान है। मैं कौंसिल-प्रवेशके काममें विश्वास नही रखता। सरकारी स्कूलों और कालेजों पर भी मेरा विश्वास नहीं है। कथित न्यायालयोंमें तो और भी कम है। क्योंकि उनके द्वारा मिलनेवाला न्याय बहुत महँगा होता है, और जब सवाल शासक और शासितके बीचके किसी महत्वपूर्ण मुद्देके फैसले का होता है, तब तो इन न्यायालयोंसे न्यायका मिलना प्रायः असम्भव ही हो जाता है। जलसों और जुलूसोंमें भी मुझे कोई श्रद्धा नहीं। यद्यपि मैं मजदूरों और उनके लगातार कल्याणके लिए सत्ता और शक्ति चाहता हूँ, तथापि किसी राजनैतिक ध्येयकी पूर्ति-मात्रके लिए उसका दुरुपयोग करनेमें मेरा विश्वास नहीं है। मैं शुद्ध, पवित्र अहिंसामें श्रद्धा रखता हूँ। दूसरे देशोंमें इसका परिणाम चाहे जो हुआ हो, लाखोंकी जान लेकर हिंसात्मक साधनों द्वारा भारतके लिए स्वराज्य पानेकी सम्भावनामें मेरा विश्वास नहीं है। मैं मानता हूँ कि स्वराज्य प्राप्तिके लिए हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, यहूदी और ईसाइयोंमें एकताका होना अत्यन्त आवश्यक है। अस्पृश्यता निवारणको भी मैं इस कार्यके लिए उतना ही आवश्यक समझता हूँ। अगर किसी अल्पसंख्यकके एक भी न्यायसम्मत अधिकारको कुचलनेसे स्वराज्य मिलता हो, तो भी मैं उसे पानेकी इच्छा न करूँगा। मैं नहीं मानता कि मुसलमान हिन्दुओंके जन्मजात शत्रु हैं या अंग्रेज भारतीयोंके। मैं अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए क्या मुसलमान और क्या अंग्रेज दोनोंका सहयोग चाहता हूँ। यद्यपि असहयोग मेरे जीवन-सिद्धान्तका अंग है, तथापि वह सहयोगका मंगलाचरण-मात्र है। मैं काम करनेकी पद्धतियों और प्रणालियोंसे असहयोग करता हूँ, मनुष्योंसे कदापि नहीं। हो सकता है कि मैं डायर-जैसोंके लिए भी दिलमें बुरी भावना न रखूँ। दुर्भावनाको मैं मनुष्यत्वका कलंक समझता हूँ। अगर पाठकोंने अबतक मेरी बात धीरजके साथ सुनी है, तो वे यह सुनकर भी अधीर न होंगे कि न तो मैं पूँजीपतियोंका दुश्मन हूँ, न देशी राज्योंका ही। मैं मानता हूँ कि पूँजीपति मजदूरोंकी उच्चतम स्थितिके अनुकूल हो सकते हैं और देशी राज्य भी अपनी जनताकी उच्चतम स्थितिके अनुकूल बन सकते हैं। मैं नहीं समझता कि

यहाँ मुझे लाखोंके जीवनदाता चरखे और खादीमें बढ़ते हुए अपने विश्वासका भी उल्लेख करना आवश्यक है।

मैं जानता हूँ कि अपनी मान्यताओंके इस लम्बे कथनमें बहुत थोड़े कांग्रेसी मेरा साथ दे सकते हैं। मेरी एकाध बात ही बहुतेरोंकी आशापर पानी फेर सकती है, उन्हें बिल्कुल ही निराश भी कर सकती है। अतः किसीको यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि मेरे विचारमें मेरा कांग्रेसका सभापति बनना कौएका मोर-पंख लगाना है। कांग्रेसका सभापति एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो केवल दूरसे ही लोगोंका आदरपात्र न हो, बल्कि अपने व्यक्तित्वसे राष्ट्रके दृढ़ मतको, उसकी तमाम इच्छाओंको व्यक्त करता हो। मैं इस कसौटीपर सौ टंच उतरनेका दावा नहीं कर सकता।

लेकिन मैं जानता हूँ कि अगर मुझे अलग रहकर काम करने दिया जाये, तो मर्यादाओंके रहते हुए भी मैं राष्ट्रकी उपयोगी सेवा कर सकता हूँ। अतएव मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्यों और उनपर प्रभाव रखनेवालोंसे यही कहूँगा कि वे मुझे उस पदको स्वीकार करनेके लिए बाध्य न करें, जिसके लिए मैं स्वयं अपने आपको इतना अयोग्य पाता हूँ। कृपा करके वे विश्वास रखें कि यह पद स्वीकारनेमें कोई अनिच्छा नहीं, बल्कि अयोग्यता ही मुझे रोकती है। सचमुच एक अयोग्य सभापति तो बदसे भी बदतर है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १२-९-१९२९

३२७. चार समारोह

भोपाल जाते समय, अपने एक दिनके बम्बई-निवासके दौरान मुझे चार रुचिकर कार्यक्रमोंमें भाग लेना पड़ा। पहला कार्यक्रम विलेपार्लेमें राष्ट्रीय स्कूलसे सम्बन्धित दस्तकारी-खण्डके उद्‌घाटनका था। बहुत-से नौजवानोंने इस संस्थाको अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया है। ऐसी संस्थाको सहयोग देना बम्बईके नर-नारियोंके लिए गर्वकी बात होनी चाहिए। साधनोंसे विपन्न कोई भी राष्ट्रीय पाठशाला, राष्ट्र-विरोधी तत्वोंके संरक्षणमें चल रही किसी भी सर्वसाधन-सम्पन्न पाठशालासे हमेशा और हर दृष्टिसे कहीं अधिक श्रेयस्कर है। जैसे कि दयनीय दशामें पड़ी एक टूटी-फूटी मड़ैया भी सभी सम्भावित शारीरिक सुविधाओंसे सम्पन्न किसी महलनुमा जेलसे कहीं अच्छी होती है। दोनों प्रकारकी शिक्षण-संस्थाओंमें एक उल्लेखनीय अन्तर होता है। वह यह कि राष्ट्रीय पाठशालामें लड़के-लड़कियोंको सबसे पहला पाठ अपने देशके प्रति अपार निष्ठा रखनेका पढ़ाया जाता है, और दूसरे प्रकारकी पाठशालामें यह अपरिहार्य देशभक्ति भी विदेशी शासनके प्रति उनकी निष्ठाके बाद दूसरे दर्जे पर रखी जाती है।

दूसरा कार्यक्रम था उस भवनकी आधार-शिला रखनेका जो भारतीय महिलाओंकी सेवा हित किये जानेवाले कार्योंका भावी केन्द्र बनेगा। यह भवन भारत-सेवक-समाज (सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी)के श्री करसनदास चितालियाकी मेहनत और निष्ठाका

फल है। उन्होंने अपने-आपको पूरी तरहसे महिला-उत्थानके उद्देश्यकी मौन सेवाके लिए समर्पित कर दिया है। हालाँकि मेरी अपनी राय है कि जबतक एक कोई स्थिरमति, त्यागी, संयमी एवं तपी-तपाई ऐसी महिला नहीं मिल जाती जो इस कार्यमें पूरी तरह जुट जाये और उसका अनुगमन करनेवाली कुछ लड़कियाँ नहीं मिल जातीं तबतक ऐसे भवनका निर्माण उपयुक्त समयसे पूर्व हुआ ही माना जायेगा, फिर भी उनकी उच्चतर आस्था और निष्ठाके आगे मैं नतमस्तक हो गया। मैंने न केवल आधार-शिला रखी बल्कि उनके और श्रीमती जाइजी पेटिटके प्रयासोंसे दस वर्ष पूर्व मुझे भेंट की गई लगभग २५,००० रुपयेकी थैलीका एक बड़ा हिस्सा उसको दे दिया। किसी भी उद्देश्यकी सच्ची सेवा भवन-निर्माण करनेके बजाय निर्भीक कार्यकर्त्ता जुटा कर ही की जा सकती है। ईंट-गारेके भवनोंमें सच्चे कार्यकर्त्ताओंको आकर्षित करनेकी शक्ति नहीं होती। लेकिन जब सच्चे और निर्भीक लोगोंको आवश्यकता पड़ती है तो भवन खड़े हो जाते हैं। जो भी हो, ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है और मैं आशा करता हूँ कि यह भवन करसनदास चितालियाकी आदर्शपूर्ण आकांक्षाओंकी पूर्ति करे। मैं जानता हूँ इसके बिना वे प्रसन्न नहीं होंगे।

तीसरा कार्यक्रम वनिता-विश्राममें अन्धोंकी सहायताके लिए आयोजित किया गया था। मुझे फिर स्वीकार करना पड़ता है कि यहाँ भी स्थिति ठीक वैसी ही थी जैसी कि करसनदास चितालियाके आमन्त्रणके मामलेमें। यहाँ भी उनके उद्देश्यके पीछे खड़ी शक्ति कोई विशेष नहीं दिखती थी, लेकिन श्री एच० डी० छत्रपति और श्री बी० खम्भाताकी आस्था और निष्ठाने ही मुझे इस सभाका अध्यक्ष-पद स्वीकार करने की प्रेरणा दी थी। मैं श्री एच० डी० छत्रपतिके नेत्रहीन भाई अर्थात् डा० नीलकण्ठ राय छत्रपतिसे परिचित था। परन्तु नेत्रहीनोंसे भी कहीं अधिक दयनीय दशामें पड़े हुए करोड़ों भूखे-नंगे लोगोंकी सेवामें दिन-रात व्यस्त रहनेके कारण मैं उनकी सेवामें सक्रिय रूपसे कुछ नहीं कर सका। मुझे इस ओर आकर्षित करनेके लिए उक्त दोनों मित्रोंके जैसे चुम्बकीय आकर्षणकी जरूरत थी। तारदेवमें अन्ध आनन्दाश्रम (हैप्पी होम फॉर ब्लाइंड) है। इसी संस्थाकी सहायताके लिए सभा आयोजित की गई थी। आश्रममें आनन्द कितना है — इसे तो जिज्ञासु और उदारमना पाठक अपने-आप जाननेका प्रयत्न करें। संयोजक ऐसी पूछताछ आमन्त्रित करते हैं, पर वे लोगोंको कुछ और बातोंके लिए भी आमन्त्रित करते हैं:

(क) आश्रमके लिए धन जुटायें।
(ख) जितने अन्धे मिल सकें आश्रममें भेजें।
(ग) नगरपालिका जैसी संस्थाओंको ऐसे कामोंके लिए तैयार करें।

बतलाया गया है कि देशमें १५,००,००० पूर्णतः अन्धे व्यक्ति हैं और इनमेंसे लगभग ७० प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिन्हें यदि उचित समय पर चिकित्साकी सुविधा मिल जाती तो अच्छे हो सकते थे। वे यह भी बतलाते हैं कि आंशिक रूपसे अन्धे व्यक्तियोंकी संख्या पूर्णतः अन्धोंकी संख्यासे ढाई गुनी अधिक है। श्री छत्रपतिने एक रोचक किन्तु दर्दनाक जानकारी यह भी दी कि बम्बईमें अन्धे भिखारियोंको भीखमें

४ से ५ रुपये तक प्रतिदिन मिल जाते हैं। इसका अधिकांश भाग उनकी जेबोंमें जाता है जो उनकी लाठी लेकर उनको चलाते हैं। अतः हमें अपनी दया-भावनाको अन्धी बनाये रखनेके बजाए, जैसी कि अधिकांश बातोंमें निस्सन्देह आज वह है, — विवेकपूर्ण बनाना चाहिए। और तब यदि हम भिखारियोंको कुछ देनेके बजाय उन्हें ऐसे लोगोंकी भलाईके लिए बने अन्ध-आश्रमों तक पहुँचानेका कष्ट करें, और ऐसे आश्रमोंको ही धनकी सहायता दें, तो हम राष्ट्रीय धनकी बचत भी कर सकेंगे और इसके साथ ही साथ अन्धे लोगोंको अपनी आजीविका कमाने योग्य बना देंगे, जो बिना किसी बड़ी कठिनाईके किया जा सकता है।

चौथा कार्यक्रम था २९६, कालबादेवीमें अ० भा० च० सं०के खादी-भण्डारके नये और ज्यादा बड़े भवनको देखनेका। अपने सात वर्षके कार्यकालमें भण्डारने उन्नीस लाख रुपयेकी खादी बेची है। आज वहाँ ३१ खादी बेचनेवाले कार्यकर्त्ता (सेल्समैन), १८ दर्जी काम करते हैं और एक बड़ी संख्यामें धोबी, रंगरेज और छपाई करनेवाले रहते हैं जिनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है। भण्डार प्रतिवर्ष सिलाईके लिए १५,००० रु०से अधिक, धुलाईके लिए ९,५०० रु०से अधिक और रंगाई आदिके लिए ८,८०० रु०से अधिक रकम खर्च करता है। भण्डारमें खादीकी विभिन्न किस्मकी १,६६० मदें मौजूद रहती हैं। खादीके पुनरुद्धारके बादके इस बहुत ही थोड़े समयमें खादीका जो विकास हुआ है वह बड़ा ही प्रेरणास्पद तथा उत्साहवर्धक है, इसकी गति भले ही धीमी रही हो। खादीके विकास पर अविश्वास करनेवाले लोग बिना किसी पूर्वग्रहके एक बार ही जाकर यदि अपनी आँखोंसे भण्डारको देख आयें, तो उनका अविश्वास काफूर हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १२-९-१९२९

३२८. सच्चा वीर

सेठ जमनालालजीने अभी-अभी मुझे सिन्धके एक बहादुर कायकर्त्ताकी वीरगतिके बारेमें बताया है। वे लारकानामें काम करते थे और अपनी बहादुरी तथा त्यागके लिए प्रसिद्ध थे। पाठकोंको मालूम है कि लारकाना सहित सिन्धके बहुतसे क्षेत्रोंमें हैजा फैल गया था। श्री लाहौरी — उस कार्यकर्त्ताका यही नाम था — तब वहीं काम करते थे। उन्होंने अपने परिवारके लोगोंको तो बाहर भेज दिया किन्तु मित्रोंके मना करने पर भी स्वयं नहीं गये। हैजेकी महामारी तो आदमी-आदमीमें भेद नहीं करती। उसने लाहौरीको भी अपने पंजेमें जकड़ लिया। लाहौरी चल बसे और अब लारकाना तथा इसके सभी परिचित उसके लिए बिलख रहे हैं। उसके लिए यहाँ अथवा स्वर्गमें केवल यही कहा जायेगा 'लाहौरी, भली करी!' शोक-सन्तप्त परिवारको मैं अपनी संवेदना नहीं भेज रहा हूँ। मैं उनको और लारकानाके लोगोंको भी बधाई देता हूँ कि उन्होंने भारतके सामने इतनी विशुद्ध वीरताका एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है। मैं देश-भरके, और विशेषकर सिन्धके, युवक-युवतियोंके अनुकरणके लिए लाहौरीका

यह आदर्श प्रस्तुत करता हूँ। मृत्युके आने पर मृत्युका भय बिलकुल त्याग देना हमें सीखना चाहिए और त्यागकी वह भावना अपनाना सीखना चाहिए जिसने लाहौरीको अपने कार्यस्थल पर डटे रहनेके लिए प्रेरित किया था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-९-१९२९

३२९. टिप्पणियाँ

केनियाके भारतीय

केनियाका शिष्टमण्डल अपनी मूल माँग पर दृढ़ रहनेके लिए बधाईका पात्र है। यों हम ऐसा नहीं मानते कि इससे उसके प्रति न्याय किया जायेगा। केनियाके यूरोपीय डाउनिंग स्ट्रीटके अधिकारियोंसे अपनी शर्त मनवानेके लिए कृत-संकल्प होकर बैठे हैं। इसलिए न्यायकी आशा तो तभी की जा सकती है जब वहाँ सविनय अवज्ञा की भावना विकसित हो या यहाँ भारतमें हम अपनी बात पर अड़ जायें। चाहे हमारे प्रवासी देशवासी प्रतिरोध कर पायें या नहीं या हम यहाँसे उनकी सुरक्षाका कोई प्रबन्ध न कर पायें किन्तु हमें समानताके सिद्धान्तको स्वेच्छापूर्वक नहीं छोड़ देना है। सबको समानरूपसे मताधिकार मिलना चाहिए और जायदाद रखनेका हक भी समान ही होना चाहिए।

आलस्य बनाम एक आना

लोगोंको इस टीकाका जवाब देते हुए कि कताईमें सिर्फ एक आनेकी आय होती है, श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने विद्यारण्यम् तमिलनाडु परिषदके खादी प्रदर्शनीको खोलते समय कहा था।[1]

> **हम तो कताईको वर्तमान परिस्थितिमें एक राष्ट्रव्यापी उपायके रूपमें पेश कर रहे हैं, इससे होनेवाली सहायता कम या न-कुछ भले हो, लेकिन वह निश्चित है और तत्काल मिलती है, उसका आधार न तो आबादीको घटाने पर है और न किसीके अधिकार छीनने पर है। अगर टीका करना और हँसी उड़ाना छोड़कर कोई इससे बेहतर तरीका ढूँढ़ निकालें और उसे जनताके लिए व्यापक सहायक धन्धेके रूपमें संगठित करके बता दें तो उसके खातिर कताई काम बन्द कराया जा सकता है।**
>
> **जब आलोचना केवल आलोचना ही होती है, उसके पीछे कोई ठोस रचनात्मक उद्देश्य नहीं रहता, तब वह मानवी प्रयत्नोंके उत्साह पर कुठाराघात-मात्र करती है। खादी तो आलस्यके घने अन्धकारके बदले उद्योगका प्रकाशपूर्ण वातावरण तैयार करती है, उससे होनेवाली आमदनी भले ही थोड़ी हो, मगर है तो। उसके मुकाबले कल्पना-जगतकी निरी उड़ानोंका क्या मूल्य हो**

१. अंशतः उद्धृत।

सकता है? हम सब चाहते हैं कि हमारे करोड़ों देशभाई प्रतिदिन केवल एक आना अधिक ही नहीं, बल्कि एक रुपया अधिक कमायें। हम इससे बेहतर किसी अवस्थाके लिए कोशिश करते रहें। मगर जबतक वह प्राप्त नहीं होती है, तब तकके लिए तो इन सहायक चार पैसोंका निरादर न करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-९-१९२९

३३०. मृतात्माओंसे सम्पर्क

कई पत्र-लेखकोंने मुझसे पूछा है कि क्या आप मृतात्माओंसे कोई सन्देश प्राप्त करते हैं और आपको इस प्रकारके सन्देश प्राप्त करनेकी सम्भावनाओं पर विश्वास है अथवा नहीं। यदि इसपर विश्वास रखते हैं तो क्या यह सम्पर्क रखना उचित है। हाल ही में एक प्रश्नकर्त्ता सज्जनने इस प्रकार लिखा है:[1]

. . . मुझे भारतीय प्रेत-विद्या-संघ (इंडियन स्प्रिचुअलिस्ट सोसाइटी) बम्बईके बारेमें थोड़ा-सा जाननेका अवसर मिला है। . . . हाल ही में एक लड़का तिलक ताल, दक्षिण जिमखाना, पूनामें डूब गया था। संघके सहयोगसे इस बच्चेके माता-पिताने बालककी प्रेतात्माके साथ सम्पर्क साधा था। मुझे सूचना मिली है कि बालककी प्रेतात्माने अपने माता-पितासे बातचीत भी की। भारतीय प्रेत-विद्या-संघके संयोजक श्री वी० डी० ऋषिने अपनी पुस्तक 'सुभद्रा अथवा मृत्योपरान्त जीवन' में अपनी पत्नी तथा अन्य आत्माओंसे सम्पर्कके अपने अनुभवोंके बारेमें लिखा है। और कहा है कि प्रेतात्माएँ पृथ्वी पर अपने सम्बन्धियों और मित्रोंसे बातचीत करनेमें आनन्द अथवा एक प्रकारकी सान्त्वनाका अनुभव करती हैं। वे लिखते हैं कि इन प्रेतात्माओंने उनसे सम्पर्क साधनेकी विद्याको बढ़ावा देकर उनका भला करनेके लिए उन्हें अनेक बार धन्यवाद दिया है। श्री ऋषिका मत है कि वैज्ञानिकोंने मृत्युके बादके जीवनके बारेमें खोज आदि न कर विज्ञानकी इस शाखाके प्रति न्याय नहीं किया है। . . .

. . . क्या आप उन अनेक लोगोंकी भलाईके लिए, जो प्रेतात्माओंके साथ सम्पर्क साधनेका यत्न कर रहे हैं अथवा भविष्यमें ऐसा सम्पर्क साधेंगे, एवं मेरे हितके लिए भी इस सम्बन्धमें उपर्युक्त विषयके विरुद्ध प्रभावपूर्ण तर्क देते हुए अपने विचार (यदि सम्भव हो तो सार्वजनिक रूपसे) व्यक्त करनेकी कृपा करेंगे।

मुझे इस बातके दो-टूक उत्तर देने चाहिए। मुझे मृतात्माओंसे कभी सन्देश आदि प्राप्त नहीं होते। इस प्रकारके सन्देशोंकी सम्भावनाओं पर अविश्वास करने योग्य कोई प्रमाण भी मेरे पास नहीं है। लेकिन इस तरहके सन्देश प्राप्त करनेके अथवा करनेके प्रयत्नोंका मैं निश्चय ही विरोध करता हूँ। ये सन्देश प्रायः भ्रामक

१. अंशतः उद्धृत।

और हमारी कल्पना ही होते हैं। यदि इस प्रकारके सन्देशोंकी सम्भावनाओंको मान लिया जाये तो मैं कहूँगा कि यह कार्य प्रेतात्माओं और माध्यम दोनोंके लिए हानिकारक है। इस कारण बुलाई गई मृतात्मामें पुनः संसारके प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है और इससे वे मोहमें बँधती हैं जब कि प्रयत्न यह होना चाहिए कि मृतात्माका संसारसे मोह छूट जाये और वह अधिक ऊँची उठे। यह जरूरी नहीं कि मृतात्मा अशरीरी होनेके कारण पहलेसे अधिक पवित्र हो जाती है। इस लोककी अपनी अधिकांश कमजोरियोंको मृतात्मा अपने साथ ले जाती है। अस्तु, उसके द्वारा दी गई सलाह या जानकारी सच्ची या प्रामाणिक हो यह जरूरी नहीं है। यह भी कोई खुशीकी बात नहीं है कि मृतात्मा इस लोकसे सम्पर्क पसन्द करती है। इसके विपरीत प्रयत्न यह होना चाहिए कि यह अनुचित मोह दूर हो जाये। क्योंकि इससे मृतात्माको भी हानि ही पहुँचती है।

जहाँ तक माध्यमका सम्बन्ध है, यह बात मैं निश्चित जानकारीके आधार पर कह सकता हूँ कि उन सभी लोगोंका जिन्होंने ऐसे सन्देश प्राप्त किये या जिन्हें लगा कि वे सन्देश प्राप्त कर रहे हैं, जीवन रचनात्मक कामोंके लिए उपयोगी न रहा अथवा उनके मस्तिष्क कमजोर और विक्षिप्त हो गये। मुझे अपने ऐसे किसी मित्रका ध्यान नहीं आता जिसने इस प्रकार सन्देश प्राप्त किये हों और उसे इससे किसी प्रकारका लाभ हुआ हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-९-१९२९

३३१. सिन्धपर विपत्ति – एक अपील[1]

सिन्धके लिए यह घोर विपत्तिका वर्ष है। . . . सिन्ध सूखा इलाका है और यहाँ होनेवाली वर्षाका औसत मुश्किलसे ५" है। इस वर्ष होनेवाली कुल वर्षा २५" से ५०" तक लेखी गई है और सो भी ३ सप्ताहसे कम समयमें ही। . . . कोई भी जिला इस विनाशसे नहीं बचा है। सिन्धके मध्य भागको सबसे अधिक हानि पहुँची है। . . .

कुछ दिन पूर्व अटक नदीका चढ़ाव अपनी चरम सीमासे बढ़कर ७३" तक पहुँच गया। . . . पंजाबकी नदियोंमें भी जबर्दस्त बाढ़ आई हुई है। . . . सरकारने मुसीबतके समय काम करनेके लिए विशेष रेलोंका प्रबन्ध भी किया है।

जनता बाढ़ सहायता समिति, जिसने सन् १९२७की बाढ़के दौरान बहुत अच्छा काम किया था, पुनःसंगठित की गई है। इसके कार्यका आरम्भ गुजरात प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी द्वारा उदारतापूर्वक दिये १०,००० रुपयोंसे आरम्भ हुआ था। समितिने अबतक सिन्धसे १५,००० रुपये एकत्र कर लिये हैं। लेकिन विपत्ति अकेली कब आती है। वर्षा, महामारी और फसल नष्ट करनेवाले

१. अंशतः उद्धृत।

कीड़ोंने कराची और हैदराबादके व्यापारको छिन्न-भिन्न कर डाला है। खेतीमें हुए नुकसानके कारण जमींदार लोग कुछ देनेमें असमर्थ हैं और व्यापारी वर्गने सिन्धके ऊपरी हिस्सेमें हैजे और पंजाबमें बाढ़के कारण हानि उठाई है। इसलिए हमें अपने प्रान्तके बाहरके लोगोंसे धन इकट्ठा करनेकी अपील करनी पड़ रही है। सन् १९२७ की बाढ़के समय बम्बईसे उदारतापूर्वक दान मिला था। उन दिनों जनता बाढ़ सहायता समितिको बम्बई केन्द्रीय सहायता समितिसे दो लाख रुपयोंकी सहायता मिली थी। कठिनाई अबकी बार और भी अधिक भयंकर है। समितिको आशा है कि सहायताके लिए उसकी अपील व्यर्थ नहीं जायेगी।

३-९-१९२९ **ना० र० मलकानी**
हैदराबाद **मन्त्री**

यह अपील पिछले सप्ताहके आरम्भमें प्राप्त हुई थी। और स्पष्ट है कि यह लिखी गई थी इस माहकी ३ तारीखको। 'यंग इंडिया'में इसके प्रकाशनके समय तक आपत्तिका पूरा रूप सामने आ चुकेगा। जो भी कुछ हो, अपीलमें वर्णित कठिनाइयोंकी उपेक्षा तो की ही नहीं जा सकती। अगर ईश्वरकी इच्छा हुई तो आगेकी जिन मुसीबतोंका हमें भय है शायद वे उत्पन्न ही न हों। अपीलके उत्तरमें उदारतापूर्वक दान दिया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १२-९-१९२९

३३२. परमार्थ बनाम स्वार्थ

भाई महावीरप्रसाद पोद्दार लिखते हैं:[1]

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अगर खादीमेंसे मुनाफा कमानेकी भावना रखी जाये, तो खादी कभी चल ही नहीं सकती। चरखा संघकी यह नीति रही है कि खादीकी उत्पत्ति और बिक्री पर खर्चकी लागत फीसदी ६। से ज्यादा न लगाई जाये। अगर खर्च इससे अधिक हो तो भी उसे खादीके खरीदारोंसे वसूल न करके उसके लिए अलगसे भिक्षा माँगी जाये। प्रस्ताव तो यह है कि हो सके तो ६। फीसदीसे भी कम लागत लगाई जाये। और आदर्श स्थिति तो यह होगी कि बुनाई तककी क्रियाओंमें जो खर्च हो उससे अधिक कुछ लेनेकी आवश्यकता ही न रहे। यदि आवश्यकता हो भी तो बिक्री पर थोड़ा-बहुत व्यापारिक मुनाफा ले लिया जाये। जब खादी घीके समान प्रचलित हो जायेगी और करोड़ों लोग उसे लेने लगेंगे तब मुनाफा फी-सदी तीनसे अधिक न रहेगा — न रहना चाहिए। दूसरे, यह भी तो आशा की जाती है कि करोड़ों किसान स्वावलम्बन पद्धतिसे अपने लिए आवश्यक खादीका सूत आप ही कात कर बुनवा लेंगे और वही पहनेंगे। यदि वे अधिक खादी पैदा कर सकें तो खुद ही उसे बेचेंगे भी। यह आदर्श युग कभी आये या न

१. नहीं दिया जा रहा है।

आये, खादी द्वारा धन कमानेका लोभ तो त्याज्य ही है। खादी आजीविका पानेका एक जबर्दस्त साधन तो है किन्तु वह धनोपार्जनका साधन कदापि नहीं है। प्रत्येक उद्यमी मनुष्यको आजीविका पानेका अधिकार है, मगर धनोपार्जनका अधिकार किसीको नहीं। सच कहें तो धनोपार्जन स्तेय है, चोरी है। जो आजीविकासे अधिक धन लेता है वह, जानमें हो या अनजानमें, दूसरोंकी आजीविका छीनता है। अर्थ दो प्रकारके हैं: परम और स्व। परम अर्थ ग्राह्य है, धर्मका अविरोधी है; स्व अर्थ त्याज्य है, धर्मका विरोधी है। खादी-शास्त्र परमार्थका शास्त्र है, और इसी कारण सच्चा अर्थशास्त्र भी है। इसलिए किसीको खादीके अनावश्यक या अतिशय दाम रखने ही नहीं चाहिए।

जो खादी पर दूसरी प्रवृत्तियोंका बोझ डालते हैं, वे खादीके साथ अत्याचार करते हैं। आज खादी दूसरी प्रवृत्तियोंसे मददकी आशा रखती है, ऐसी हालतमें खादी पर दूसरी प्रवृत्तियोंका बोझ डालना जूतेके लिए भैंसको मार डालने-जैसा है।

हिन्दी नवजीवन, १२-९-१९२९

३३३. संयुक्त प्रान्तकी कुप्रथाएँ

१२ सितम्बर, १९२९

संयुक्त प्रान्तमें मेरा भ्रमण शुरू होता देख वहाँके एक अनुभवी और सुशिक्षित मित्र मुझे लिखते हैं:[1]

अगर मौका मिला तो मैं अवश्य ही इन समस्याओंको समझकर इनके बारेमें कुछ कहूँगा। यदि इन सज्जनके लिखे अनुसार सचमुच अन्य प्रान्तोंके मुकाबले संयुक्त प्रान्तमें विद्यार्थी-वर्ग विवाहके लिए अधिक उत्सुक है, और ब्याहके अवसर पर खर्च भी ज्यादा होता है तो यह निस्सन्देह खेदकी बात है।

परन्तु इन मामलोंमें प्रान्तोंकी परस्पर तुलना करनेकी आवश्यकता है ही नहीं। यदि एक प्रान्तमें कुप्रथाएँ दूसरे प्रान्तोंके बराबर या उनसे कम भी हुईं तो इससे क्या होता है? कुप्रथा-मात्रका नाश करना प्रत्येक विवेकशील मनुष्यका कर्त्तव्य है। विद्यार्थी अवस्थामें विद्यार्थियोंका विवाह-जालमें फँसना सर्वथा अनुचित है, धर्मविरुद्ध है। धर्म हमें सिखाता है कि विद्यार्थी अवस्थामें जो युवक ब्रह्मचर्यादिका भली-भाँति पालन नहीं करता, उसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेका अधिकार ही नहीं रहता। इसी तरह जो मनुष्य घर-गृहस्थी चलानेमें असमर्थ है, उसे चाहिए कि वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश ही न करे। गृहस्थाश्रम विषयसेवन या भोगविलासके ही लिए नहीं है — गृहस्थ, यदि चाहे तो, मर्यादित मात्रामें पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे, स्वपत्नीके साथ विषयसेवन कर सकता है। विषयभोगके लिए ही विषयभोग करना, क्या हिन्दूधर्ममें और क्या अन्य धर्मोंमें, सर्वथा त्याज्य कहा गया है।

१. नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें बाल-विवाह, विवाहोंमें फिजूलखर्ची और परदेकी प्रथाकी व्यापकताकी बात की गई थी।

यदि यह सच है कि संयुक्तप्रान्तके विद्यार्थियोंमें से बहुत ज्यादा विद्यार्थी विवाहित होते हैं, तो मुझे इससे एक दुःखद अनुभवका कारण समझमें आता है। हिन्दी-प्रचार संयुक्त प्रान्तका एक खास कर्त्तव्य है। जब इन्दौरमें मैंने दक्षिण भारतमें हिन्दी-प्रचारकी बात की थी, तब मुझे आशा थी कि इस कामके लिए चारित्र्यवान्, त्यागी, शिक्षित, राष्ट्र-भाषा-विशारद और ब्रह्मचारी संयुवक काफी संख्यामें मिल सकेंगे। मगर पाठकोंको यह जानकर दुःख होगा कि संयुक्त-प्रान्तसे इस काममें बहुत कम सहायता मिली। आज भी ऐसे स्वयंसेवकोंके अभावके कारण ही बंगाल, सिन्ध, उत्कल, इत्यादि प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषाका प्रचार बहुत कम हो रहा है। इसका कारण धनका अभाव नहीं, बल्कि सच्चे स्वयंसेवकोंका अभाव ही है।

विवाहमें किये जानेवाले खर्चकी बात भी दुःखप्रद है। धनिक लोग हर जगह अपनी धनराशिके अभिमानमें आकर अमर्यादित खर्च करते हैं और गरीबोंमें बुद्धिभेद उपजाते हैं। इस सम्बन्धमें भी विद्यार्थियोंको चाहिए कि वे प्रतिज्ञाबद्ध होकर माता-पिताको विवाहके अवसर पर अधिक खर्च हरगिज न करने दें। जिन मित्रने मुझे यह पत्र लिखा है, वह मुझसे मिल चुके हैं। उन्होंने श्री जमनालालजीके उदाहरणकी याद दिलाते हुए मुझसे कहा कि मैं उस उदाहरणको विद्यार्थियों और उनके माता-पिताके सामने रखूँ। जमनालालजीने अपनी पुत्री कमलाके विवाहके अवसर पर ५००)का खर्च भी शायद ही किया हो। उन्होंने जातिभोज तो दिया ही नहीं था। वरवधूको आशीष देनेके लिए कुछ मित्रोंको बुला लिया था। विवाह-विधि केवल धार्मिक क्रिया तक ही परिमित रही थी। हर प्रकारके आडम्बरका त्याग कर दिया गया था। वरवधू, दोनों, खादीके सादे कपड़े पहने हुए थे। ठीक इसी तरह हरएक धनाढ्यका धर्म है कि वह विवाह इत्यादि अवसरों पर अपने अभिमानको रोके और समाजको हानि पहुँचानेसे बाज आये।

तीसरा प्रश्न पर्देका है। पर्देकी बुराईके बारेमें मैं काफी लिख चुका हूँ। यह प्रथा हर तरहसे अकल्याणकारिणी है। अनुभवसे यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रीकी रक्षा करनेके बदले यह स्त्रीके शरीर और मनको हानि पहुँचाती है।

जमींदारोंके बारेमें मैं क्या लिखूँ? जमींदार वर्गमेंसे शायद ही कोई 'हिन्दी नवजीवन' पढ़ता हो। लेकिन चूँकि मैं मनुष्य स्वभावकी उन्नयन-शीलताको मानता हूँ, मेरा विश्वास है कि जमींदार लोग जापानके सामुराई अमीरोंकी तरह लोकसेवाका मन्त्र सीखेंगे और यथासम्भव त्यागमय जीवन बिताकर अपना एवं भारतवर्षका कल्याण करनेमें पूरा-पूरा योग देंगे। यह तो मेरी अपनी आशा है। 'हिन्दी नवजीवन'में इसका उल्लेख-मात्र करनेसे यह सफल नहीं हो सकती।

हिन्दी नवजीवन, १२-९-१९२९

३३४. पत्र : छगनलाल जोशीको

आगरा
१२ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा ९ तारीखका पत्र आज १२ तारीखको मिला। मेरे हिसाबसे कल मिल जाना चाहिए था। १२ तारीखको मिलनेका अर्थ यह हुआ कि जैसा काठियावाड़के पत्रोंके साथ होता है वैसा आगराके पत्रोंके साथ भी हो रहा है; अर्थात् वे पत्र उसी दिन अहमदाबाद नहीं जाते। इसके बारेमें किसी व्यक्तिको पोस्ट आफिस भेजकर पता चलाना। क्योंकि इस तरह देरी होनेका तो यही अर्थ हुआ कि हमारे समय पर पत्र डाकमें छोड़ देनेके बावजूद पत्र चौबीस घंटे जैसे-के-तैसे पड़े रहते हैं या साबरमती और अहमदाबादके बीच लटके रहते हैं।

सूरजबहनका मामला जरा कठिन है। डाक्टरको तो बुला लिया होगा। वह जाना चाहे तो जाने देना। उसे पत्र लिख रहा हूँ; दे देना।

जैसे-जैसे काम व्यवस्थित होता जायेगा, बोझ भी कम होता जायेगा। मेरा अनुभव तो यह है कि मनुष्यको कामका बोझ नहीं, चिन्ताका बोझ होता है। इसलिए व्यवस्थित चिन्तनवाला मनुष्य बिना किसी कठिनाईके अपनी मर्यादाका अनुमान लगा लेता है और उतना ही बोझ उठाता है; तो भी दूसरोंको वह बोझ बहुत ज्यादा मालूम होता है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ४५३३)की फोटो-नकलसे; तथा **बापुना पत्रो : श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

३३५. विचार-विमर्श : आगरामें कार्यकर्त्ताओंसे[1]

१३ सितम्बर, १९२९

आगरा और अन्य जिलोंके ३१ से अधिक कार्यकर्त्ताओंने गांधीजीसे उनके निवास-स्थानपर अनौपचारिक मुलाकात की। . . . उन्होंने गांधीजीसे दुःखी होकर शिकायत की कि "इतना अरसा बीत जाने पर भी हमारे पास खादीके कामके लिए बहुत थोड़े प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता हैं। हमें क्या करना चाहिए?" गांधीजीने फौरन कहा "गलती किसकी है?" फिर उन्होंने अपना दुःख प्रकट करते हुए कहा,

अपने आकार और जनसंख्याके आधारपर ही संयुक्त प्रान्त समूचे देशसे अपनी शर्तें मनवा सकता है। फिर यह जो असहायावस्था मुझे दिखाई दे रही है इसका क्या अर्थ है। अकेला कृपलानी सिन्धसे आकर आप सबके बीच खादीके लिए एक अच्छी भूमिका तैयार कर सकता है। भुखमरी और अभावोंकी काली छाया आप सबके चारों ओर मण्डरा रही है। जाकर देखिए, चारों तरफ लोग किस तरह मर रहे हैं और उनका उचित ढंगसे अन्तिम संस्कार करने तककी व्यवस्था भी नहीं है। आप लोगोंके सामने खादीके कामका अपार क्षेत्र पड़ा है; बशर्ते कि आप यह जानते हों कि काम किस तरह किया जाना चाहिए। अगर आपका विश्वास है कि भुखमरी दूर करनेका उपाय खादी है तो फिर आप यह चिन्ता नहीं करेंगे कि कार्यकर्त्ताओंकी संख्या ज्यादा है या कम। दृढ़ निश्चयके साथ आप अपना काम आगे बढ़ायें। किसी प्रकारकी सुस्ती न आये — पीछे मुड़कर देखनेकी जरूरत न पड़े। इन मामलोंमें अन्ततोगत्वा कामका स्तर ही मुख्य होता है।

गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकाके अपने अनुभवोंका उल्लेख करते हुए आगे कहा:

आप कहते हैं, आपके पास कार्यकर्त्ता नहीं हैं। मैं आपके सामने एक उदार प्रस्ताव रखता हूँ। मैं अपने सभी साथियोंको आपको दे देनेके लिए तैयार हूँ। इन्हें कताई और बुनाई आती है। यदि आप समझते हैं कि कताई और बुनाई सिखानेके लिए आपको इनकी आवश्यकता हो तो मैं इन साथियोंके बिना ही अपना काम चला लूँगा।

इसपर कार्यकर्त्ताओंने आपत्ति उठाई कि "यदि हम अपने सभी अच्छे कार्यकर्त्ताओंको खादीके काममें लगा देते हैं तो हमारी राजनैतिक गतिविधियाँ बिलकुल ठप हो जायेंगी और यदि खादीके कामके साथ वे राजनैतिक कार्य भी करते रहते हैं तो इससे खादीके काममें रुकावट पड़ेगी। उदाहरणके लिए उनकी गिरफ्तारी पर खादीका कार्य ठप हो जायेगा और जनताका खादी आन्दोलनसे विश्वास उठ जायेगा।" गांधीजीने उत्तर दिया:

१. यह "संयुक्त प्रान्तकी यात्रा–२" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

इसका अर्थ है, आपने सैनिककी कुशलताका आरम्भिक ज्ञान भी प्राप्त नहीं किया है। एक सैनिक यह चिन्ता कब करता है कि उसके बाद उसके कामका क्या होगा? वह तो अपने वर्तमान कर्त्तव्यकी ही चिन्ता करता है। गेरीबाल्डीने कर्त्तव्यकी पुकारपर अपनी खेती-बाड़ी छोड़ दी और उन्होंने यह चिन्ता नहीं की कि उनकी फसलका क्या होगा। जब जनरल स्मट्स लड़ाईमें शामिल हुए तब वे अपनी लाभकारी वकालत या अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान खेतीबाड़ीके बारेमें विचार करने नहीं रुके। बोथाके पास ४० हजार भेड़ोंका झुंड था। जीवन या मृत्युके संग्राममें कूदते समय उसने इन भेड़ोंकी चिन्ता नहीं की। इन सेनापतियोंमेंसे किसीने भी इस बात पर शंका नहीं की कि यदि उनकी सम्पत्ति पर शत्रुका अधिकार हो भी गया, जैसा कि वास्तवमें हुआ, तो वह थोड़े समयके लिए ही होगा और लड़ाई बन्द होने पर सम्पदा उन्हें या उनके वंशजोंको अवश्य वापस मिल जायेगी। यही हाल खादीके कार्यकर्त्ताओंका होना चाहिए। जहाँतक कार्यकर्त्ताओंके जेल जानेकी सम्भावना के फलस्वरूप, जनतामें खादी संस्थानके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होनेका प्रश्न है, मैं समझता हूँ, स्थिति इसके विपरीत ही होगी। यदि जनमतको ठीक ढंगसे तैयार किया जायेगा तो जेल जानेवाले कार्यकर्त्ताओंको बुरा-भला कहनेकी अपेक्षा जेलसे डरनेवालोंके लिए जेलसे बाहर रहना नैतिक रूपसे असम्भव हो जायेगा।

कार्यक्रमका अन्तिम प्रश्न था कि वे महिला कार्यकर्त्ताओंका इस आन्दोलनमें उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं? गांधीजीने उत्तर दिया: "परदेके बन्धनसे मुक्त करके।" इसके बाद गांधीजीने विस्तारके साथ बताया कि संयुक्त प्रान्तकी स्त्रियाँ पुरुषोंके अत्याचारसे किस तरह दबी हुई हैं; उन्होंने कहा यही उनके पिछड़ेपनका कारण है और इस दासताके समाप्त होते ही वे सामने आकर काम करने लगेंगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-९-१९२९

२३६. पत्र: ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

आगरा
१३ सितम्बर, १९२९

चि० ब्रजकिसन,

तुमारे तरफ अब तक एक भी पत्र क्यों नहीं है? तबीयत कैसी है? बीजापुरमें कौन-कौन है? सब हाल बता दो।

इसके बाद तुमारा खत मीला है।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३६४ की फोटो-नकलसे।

३३७. भाषण : विद्यार्थियोंके समक्ष, आगरामें[1]

[१३ सितम्बर, १९२९][2]

गांधीजीने अपना भाषण शुरू करनेसे पहले विवाहित विद्यार्थियोंको हाथ खड़े करनेको कहा। ८० फीसदीसे भी ज्यादा हाथ ऊपर उठ गये। आदतन खादी पहननेवालोंकी संख्या पूछने पर वह दस या बारहसे ज्यादा न निकली।

इस तरहकी निराशा और कमजोरीकी बातें किन्ही युवकोंके मुंहमें शोभा दे सकती है[3]? मैं अपने युवकोंके मुँहमे ऐसी अश्रद्धा और निराशाकी बातें सुननेको जरा भी तैयार न था। मेरे समान मौतके किनारे पहुँचा हुआ आदमी अपना भार हलका करनेके लिए अगर युवकोंसे आशा न रखे तो और किनसे रखे। ऐसे समय आगराके नौजवान मुझसे आकर कहते हैं कि वे मुझे अपने हृदय तो अर्पण करते है, मगर कुछ कर-धर नहीं सकते। मेरी समझमें नहीं आता, वे क्या कहते हैं? "दरियामें आग लग जाये तो उसे कौन बुझा सकेगा?" अगर आप अपने चारित्र्यको बलवान नहीं बना पाते तो आपका तमाम पठन-पाठन और शेक्सपियर, वर्डस्वर्थ वगैरा महा-काव्योंकी कृतियोंका अभ्यास निरर्थक ही ठहरेगा। जिस दिन आप अपने मालिक बन जायेंगे, विकारोंको अधीन रखने लगेंगे, उस दिन आपकी बातोंमें भरी हुई अश्रद्धा और निराशाका अन्त होगा। आप एक ओर अपना हृदय अर्पित करनेकी बात करें और दूसरी ओर कर्मठ होनेमें असमर्थता दिखायें तो क्या होगा। हृदय देना तो सब कुछ दे देना है। हृदय देनेके लिए पहले पासमें हृदय होना चाहिए। और यह तो तभी हो सकता है जब आप आत्मविकास करेंगे।

किन्तु इसकी जगह हम आज देखते क्या हैं? आज संयुक्त प्रान्तमें विद्यार्थी विवाह कर लेता है; सो भी सुनता हूँ अभिभावकोंके दबावमें आकर नहीं, स्वयं अपनी ही जिद और इच्छासे। विद्यार्थी-जीवनमें आप लोगोंसे शक्तिके अपव्ययकी नहीं संचयकी अपेक्षा की जाती है। देखता हूँ आप लोगोंमेंसे पचास फीसदीसे भी अधिक विवाहित हैं। यदि आप इस दुरवस्थाको सुधारना चाहते हैं तो विवाहित रहते हुए भी आप लोगोंको अपनी वासनाओंको कठोर संयममें रखना चाहिए और विशुद्ध ब्रह्म-चर्यका पालन करते हुए विद्यार्जन करना चाहिए। आप देखेंगे कि इस संयमके कारण आप शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे निखर कर निकले हैं। मैं जो-कुछ

१. यह भाषण आगरा कॉलेजके नेस्टन हालमें आगरा कॉलेज एवं सेंट जॉन्स कालेजके विद्यार्थियोंके समक्ष दिया था। यह "संयुक्त प्रान्तकी यात्रा" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. **लीडर**, १६-९-१९२९ से।

३. कालेजके विद्यार्थियोंने गांधीजीको दिये मानपत्रमें कहा था: "हम गरीब है, अतएव केवल हमारे हृदय ही हम आपको अर्पण करते हैं। हमें आपके आदर्शोंमें विश्वास है, परन्तु उनके अनुसार आचरण करनेमें हम असमर्थ हैं"।

कह रहा हूँ, उसके अनुसार चलनेको कोई कठिन काम मत गिनिए। जो विवाहित हैं उनका काम है कि वे अपने ऊपर आत्मसंयमका परिपूर्ण अंकुश रखें और स्वयं अपना तथा मानव-समाजका कल्याण करें। जो अविवाहित हैं मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे मनमें विषयवासना आने ही न दें। आखिर हमारा राष्ट्र परतन्त्र है और जो बेड़ियाँ हमें कसे हैं उन्हें हम तोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं। गुलाम बच्चे बढ़ानेके पापकी गम्भीरता आपको समझनी ही चाहिए। विभिन्न कालेजोंसे जिनमें आपका कालेज भी है, विद्यार्थी मुझे करुणाजनक पत्र लिखते रहते हैं और अपनी मानसिक दुर्बलतासे छुटकारा पानेका उपाय पूछते हैं। मैं उन्हें सदासे चला आता उपाय बतलाता हूँ। अगर वे अपनी सारी दुर्बलताके लिए भगवानसे सहायताकी प्रार्थना करें तो उन्हें फिर लाचारीका अनुभव हो न हो। मुझे जिन सज्जनने यहाँ विद्यार्थी-अवस्थामें विवाह होने जानेकी कुप्रथाके विषयमें बताया था, उन्होंने यह शिकायत भी की थी कि विद्यार्थी अपने माता-पिताओंसे इन अवसरों पर फिजूलखर्ची करानेका अपराध भी करते हैं। आप लोगोंको समझना चाहिए कि विवाह तो एक धार्मिक कृत्य है और उसमें खर्च करनेकी कोई बात नहीं होनी चाहिए। जिनके पास पैसा है, यदि वे उसे भोजों और आनन्द मनानेमें खर्च करनेकी अपनी इच्छा पर अंकुश नहीं लगाते तो गरीब लोग भी उनके अनुकरणमें पड़े रहेंगे और कर्जदार हो जायेंगे। यदि आप लोगोंमें कुछ साहस है तो आप लोग अपने विवाहका अवसर उपस्थित होने पर हर तरहकी फिजूलखर्चीका कड़ा विरोध करें।

खादीकी बात करते हुए गांधीजीने कहा, लोग कहते हैं कि मैं खादीके पीछे पागल हो गया हूँ। मुझे यह सुनकर शर्म नहीं आती और जिन लोगोंने मुझे भाषण देनेके लिए बुलाया है, उन्हें मेरे पागलपनसे भरे इस सन्देशको सुनना ही पड़ेगा। जब मैं यहाँ आ रहा था तो मुझे दूरसे, छात्रावास जिनमें आप लोग रहते हैं, दिखाये गये। मुझे तो वे महलों जैसे लगे। यदि आप विद्यार्थीगण स्वार्थी नहीं हैं तो आप लोगोंको इच्छा यह करनी चाहिए कि भारतके हर बच्चेको रहनेके लिए ऐसे स्थान मिलें। किन्तु आप जानते हैं कि जिस देशमें कमसे-कम दस करोड़ व्यक्तियोंको एक वक्त भी पेट-भर भोजन नहीं मिलता, उसमें यह बात अभी पीढ़ियों तक सम्भव नहीं होनेकी। इस बातकी आपको जाँच करने पर यदि यह विश्वास हो जाये कि यह सच बात है और अगर वे देशके गाँवोंकी हालतको जाननेकी कोशिश करें तो फिर उनमेंसे एक-एकको खादी अपना कर कुछ हद तक अपने भूखसे मर रहे देशवासियोंके साथ अपनेको एक बनानेका प्रयत्न करना चाहिए।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-९-१९२९

१. इसका मिलान, **हिन्दी नवजीवन**, २६-९-१९२९ के विवरणसे भी कर लिया गया है।

३३८. पत्र : एलन मिल्टनको[1]

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। ईसाइयोंके लिए मेरा यह सन्देश है कि ये पूर्ण सत्यके एकमात्र दावेदार होनेका दम्भ छोड़ कर विनम्रताकी भावना पैदा करें।

विभिन्न श्रेणीके लोगोंमें अधिक अच्छी भावना पैदा करनेका मैं तो यही तरीका जानता हूँ कि सभीको अपने जैसा मानकर उनसे व्यवहार करें।

हृदयसे आपका,

एलन मिल्टन महोदय
अध्यक्ष
वर्ल्ड फैलोशिप काउन्सिल
डालास, टेक्सास

अंग्रेजी (एस० एन० १५२३९)की फोटो-नकलसे।

३३९. पत्र : ए० के० भागवतको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

विस्तारसे लिखा आपका पत्र मिला। यदि बिना-राँधे भोजनके प्रयोगमें आपके द्वारा सुझाई सामान्यसे अधिक सावधानी बरतनेकी आवश्यकता पड़ती है तो निस्सन्देह यह तो राँधे हुए भोजनसे भी कठिन बात होगी। क्योंकि व्यवहारमें कोटाणुओंकी ऐसी पूरी रोकथामकी खातिर आश्वासन कौन दे सकता है? अब तक तो मैंने यही समझा है कि बिना-राँधा भोजन उतनी जल्दी नहीं बिगड़ता जितनी जल्दी राँधा

१. एलन मिल्टनके पत्र, ३०-६-१९२८ के उत्तरमें। उन्होंने गांधीजीसे ईसाई लोगोंके लिए सन्देश देनेको कहा था और स्थानीय तथा विदेशोंमें जन्मे ईसाइयोंके सम्बन्ध किस प्रकार और अच्छे हों इस बारेमें भी अपने विचार व्यक्त करनेको कहा था।

हुआ भोजन। फिर भी जो सुझाव आपने दिये हैं, मैं उनकी कद्र करता हूँ। भविष्यमें होनेवाले मेरे प्रयोगोंमें ये उपयोगी होंगे।

हृदयसे आपका,

डॉ० ए० के० भागवत
मारफत श्रीमती पंत
प्रतिनिधि औंध राज्य, जिला सतारा

अंग्रेजी (एस० एन० १५५२२)की फोटो-नकलसे।

३४०. पत्र : बालकृष्ण शुक्लको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे यह नहीं मालूम कि मैं उन्नाव किस तारीखको पहुँच रहा हूँ और मुझे यह भी मालूम नहीं है कि उन्नाव मेरे कार्यक्रममें सम्मिलित भी है अथवा नहीं। सम्भव हो, तो स्वागत समितिके मन्त्रीसे पत्र-व्यवहार करें।

हृदयसे आपका,

श्री बालकृष्ण शुक्ल
अध्यक्ष
जिला बोर्ड, उन्नाव

अंग्रेजी (एस० एन० १५५२५)की माइक्रोफिल्मसे।

३४१. पत्र : ए० ए० पॉलको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय राजन,

बहुत समय बाद तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। देखता हूँ कि तुम निरन्तर प्रगति कर रहे हो। मुझे आशंका है कि मैं जो-कुछ तुम्हें देनेकी आशा करता हूँ सो दे नहीं पाया।

हृदयसे आपका,

ए० ए० पॉल महोदय
फेडरेशन ऑफ इंटरनेशनल फैलोशिप
"मैत्री" किल्पॉक, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १५५२६)की फोटो-नकलसे।

३४२. पत्र : केदारको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। प्रो० हिगेनबाटमके वक्तव्यकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करके आपने बिलकुल ठीक ही किया। अब तो कुछ भी नहीं किया जा सकता।

हृदयसे आपका,

श्री केदार
कृषि महाविद्यालय
इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १५५३३)की फोटो-नकलसे।

३४३. पत्र : टी० आर० संजीवीको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका ७ तारीखका पत्र मिला। 'कल्पक'[1]की एक प्रति भी मिली। जैसा कि आपको मालूम है मैं 'यंग इंडिया'के स्तम्भोंमें उन पुस्तकोंके अलावा जिनका मेरे कार्यसे सम्बन्ध होता है अन्य पुस्तकोंका उल्लेख नही करता।

हृदयसे आपका,

श्री टी० आर० संजीवी,
अध्यक्ष
लेटेंट लाइट कल्चर
तिन्नेवैली (दक्षिण भारत)

अंग्रेजी (एस० एन० १५५३५)की माइक्रोफिल्मसे।

१. अंग्रेजी मासिक। इसके प्रकाशक श्री टी० आर० संजीवी थे।

३४४. पत्र : जगन्नाथ अग्रवालको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आप आगामी गुरुवारको दिनको ३ बजे मुझसे मिल सकते हैं।

हृदयसे आपका

श्री जगन्नाथ अग्रवाल
प्रधानाध्यापक
आर० के० हाईस्कूल
जगराँव

अंग्रेजी (एस० एन० १५५३९)की माइक्रोफिल्मसे।

३४५. पत्र : जी० आई० पी० रेलवे-संघके मन्त्रीको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

मैंने आपका भाषण पढ़ा। भोपालमें मेरे संक्षिप्त पड़ावके दौरान कुछ कर पाना मेरे लिए असम्भव था। मेरी राय है कि आप प्रचलित तरीकेके अनुसार मार्ग-दर्शनके लिए केन्द्रीय संगठनको सीधे ही लिखें।

हृदयसे आपका,

मन्त्री
जी० आई० पी० रेलवे संघ
भोपाल

अंग्रेजी (एस० एन० १५५५२)की माइक्रोफिल्मसे।

३४६. पत्र : निरंजन पटनायकको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय निरंजन बाबू,

आपका पत्र मिला। मुझे अब याद नहीं पड़ता कि मैंने ठीक किन शब्दोंका प्रयोग किया था। मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि सतीशबाबूके बारेमें कहनेको मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जो मैं स्वयं उनसे न कह सकूँ। भविष्यके लिए मेरी सलाह है कि दूसरेके शब्दोंको तब तक न दुहराएँ जबतक कि वह स्वयं उनकी पुष्टि न कर दे, विशेषकर उस समय जब कि उन शब्दोंसे किसी ऐसे व्यक्तिकी जो उपस्थित नहीं है, कटु आलोचना हो जाती हो।

हृदयसे आपका,

श्री निरंजन पटनायक
बरहानपुर, बी० एन० रेलवे,
(जिला गंजाम)

अंग्रेजी (एस० एन० १५५५३)की फोटो-नकलसे।

३४७. पत्र : सतीशचन्द्र मुखर्जीको

मुकाम आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

प्रिय सतीशबाबू,

तारके बाद मैं आपसे एक पत्रकी आशा कर रहा था किन्तु वह अब तक नहीं मिला। फिर भी मुझे आज राजेन्द्रबाबूसे पता चला कि कृष्णदासको मेरा वह पत्र नहीं मिला जो मैंने उसका पत्र पाते ही लिख दिया था। भाग्यसे प्यारेलालने इस पत्रकी एक प्रति रख ली थी। चूंकि मेरे पास कृष्णदासका पता नहीं है, इसलिए मैं इसे आपके पास भेज रहा हूँ। राजेन्द्रबाबूका यह भी कहना है कि रामविनोदको भी मेरा पत्र नहीं मिला। लेकिन उनका मुझे कल तार मिला जिसमें उन्होंने सूचित किया है कि उन्हें मेरा पत्र मिल गया है। मैं यह भी उल्लेख कर दूं कि आपके तारको तार-घरकी भयानक भूलोंके कारण समझना लगभग असम्भव हो गया था, लेकिन मैंने उसका अर्थ निकाल लिया।

आशा है आप स्वस्थ हैं। जवाहरलालने मेरे साथ एक आशुलिपिक छोड़ रखा है और उसका मैं लाभ उठाकर अपने हाथ व शरीरको जरा ज्यादा आराम दे रहा

हूँ; आगे बढ़नेके पहले मुझसे आगरेमें सात दिन तक आराम करनेकी अपेक्षा की गई है। कमजोरीके अलावा और कोई शिकायत नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी
मारफत श्री सतीशचन्द्र गुह
दरभंगा

अंग्रेजी (एस० एन० १५५५४)की माइक्रोफिल्मसे।

३४८. पत्र : छगनलाल जोशीको

आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारे पत्रका जवाब मैं कल तो नहीं दे सका; क्योंकि मुझे तीन बजे पच्चीस मील दूरके एक गाँवमें पहुँचना था।

प्रदर्शनीके बारेमें जैसा झगड़ा हुआ, वैसा तो होता ही रहता है। यह सब सहन करते-करते ही तुम्हें अनुभव होगा। हारना नहीं और जबतक हार नहीं जाते तबतक पतवार न छोड़ना। जब आत्मविश्वास बिलकुल ही न रहे तब छोड़ देनेमें संकोच नहीं करना।

मनकी अपूर्णता या चंचलताका मलिनतासे जो भेद है उसे हमेशा ध्यानमें रखना। मलिनताके साथ आग्रहपूर्वक भी असहयोग करना। अपूर्णता अथवा चंचलता तो रहेगी ही। मुनिजन भी उन्हें पूरी तरह नहीं जीत पाये हैं तो हम जैसोंकी बिसात ही क्या है? इस मामलेके बारेमें भाई माधवलालने लिखा है। उन्होंने खानगी जवाब माँगा है इसलिए लिफाफेमें बन्द करके इसके साथ भेज रहा हूँ। किन्तु मैं आशा तो यही करता हूँ कि वह सबको पढ़ायेंगे। न पढ़ायें तो भी मुझे तुम्हें कुछ लिखना नहीं है। तुम धैर्यपूर्वक जैसे काम लेना योग्य हो, लेते रहना। बचानेवाला, फल देनेवाला ईश्वर तो ऊपर बैठा ही है तब हमें क्या चिन्ता?

सूरजबहनके बारेमें करसनदासको लिखा है। तुम भी समय-समय पर जैसी राय तुम्हारे मनमें बने, लिखते रहना। तुम्हारा पहला पत्र और गंगाबहनके दोनों पत्र उसे भेज दिये हैं। सूरजबहनकी हमने जो परीक्षा की है उसका परिणाम सूचित करना मित्र-धर्म है।

गोशालाकी गन्दगीके बारेमें मैंने जो कहा था क्या वैसा प्रबन्ध कर दिया गया है? क्या कुआँ साफ करनेसे पानी कुछ ठीक हुआ? अब क्या रोटी ठीक बनती है?

कृष्णदास कल आ गया। छोटालालको भेज देनेके लिए आज तार भेजा है। वह आ जाये तो दोनोंको अल्मोड़ा भेज दूँगा। उत्तमचन्दकी जगह इस समय दोनोंको

रख लेना ही ठीक लगता है। इस तरह इस ओरकी चिन्ता भी दूर हो जायेगी। कृष्णदासके चेहरेमें तो बहुत परिवर्तन हुआ दिखाई नहीं देता और उसका कहना है कि छोटालालकी तबीयत भी पूरी तरह ठीक नही है।

महादेवप्रसादने गोशालाके बारेमें कुछ आलोचना लिख भेजी थी, वह सुरेन्द्रके पास है। इसपर विचार कर लेना चाहिए। जितने सुधार किये जा सकें सो तो तुरन्त कर लें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४३४)की फोटो-नकल तथा **बापुना पत्रो: श्री छगनलाल जोशीनेसे** भी।

३४९ पत्र : नारणदास गांधीको

आगरा
१४ सितम्बर, १९२९

चि० नारणदास,

नया वर्ष तुम्हें फल दे और तुम्हारी दृढ़ता और त्यागवृत्तिमें वृद्धि हो।

स्त्री निवासकी बहनें यदि समय देंगी तो किसी दिन ध्यान भी देने लगेंगी। हम तो यथायोग्य जितना सिखा सकें उतना सिखाकर सन्तोष कर लें।

जैसे तुमने सुझाव दिया है उसके अनुसार मैं भणसालीको पत्र लिखता रहता हूँ। किसीको राजकोट भेजनेकी आवश्यकता दिखाई दे तो सन्तोकका नाम याद रखना।

लगता है कि जमनादासने दादकी परवाह नहीं की है। उसे दूर करना बहुत ही आसान काम है। वह पक जाये तो यह केवल लापरवाहीका परिणाम जाना जायेगा।

पुरुषोत्तमका वजन आजकल कितना रहता है? जीभ साफ हो गई है? कब्ज चला गया है? क्या खाता है?

बा आशीर्वाद भेजती हैं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो: श्री नारणदास गांधीने

३५०. राष्ट्रीय पाठशालाएँ

"कहाँ यह बकरी और कहाँ सरकारी स्कूलोंका शेर? एक शेर कई छोटी-मोटी बकरियोंको खा जाता है। इस हिसाबसे राष्ट्रीय पाठशालाका मोह रखनेवालेकी बेवकूफीकी भी कोई हद है?" बेसमझ और उथले विचार करनेवाले लोग शायद इस तरहकी बात कहें। लेकिन इससे राष्ट्रीय शिक्षाके पुजारीको हार मान लेने या डर जानेका कोई कारण नहीं।

राष्ट्रीय पाठशाला और सरकारी स्कूलके बीच मुकाबला हो ही नहीं सकता। राष्ट्रीयताका पूरा प्रेम जबतक पैदा न हो जाये, उसके गुणोंका विश्लेषण पूरा न हो जाये, तबतक राष्ट्रीय पाठशालाकी पूरी तरह कद्र नहीं हो सकती। इसलिए राष्ट्रीयताको जाननेवाले अपने ज्ञानके बारेमें कैसे शक कर सकते हैं? राष्ट्रीय पाठशालाकी विशेषता समझ लेनेकी जरूरत है। वह यह है कि उसमें पहला और आखिरी पाठ देशप्रेमका, देशसेवाका, देशकी खातिर कुरबानी करनेका होता है। सरकारी स्कूलों में देशका प्रेम पराई हुकूमतकी वफादारी पर निर्भर है। यह कौन नही जानता कि इन दोनोंके बीच जब विरोध खड़ा हो जाता है, तो सरकारी स्कूलोंमें विदेशी हुकूमत की रक्षाको प्रधानता देनेका सबक मिलता है? इसलिए जो राष्ट्रके भक्त हैं, वे सरकारी स्कूलके महलसे राष्ट्रीय शालाकी टूटी-फूटी झोंपड़ीको पसन्द करेंगे। ऐसा कौन है जो अपने टपकते और टूटे-फूटे झोंपड़ेकी आजादीके मुकाबिलेमें महल जैसे खूबसूरत लगनेवाले और दुनियावी सहूलियतोंसे भरपूर जेलखानेकी पराधीनताको पसन्द करेगा? अगर हमने मोह और स्वार्थमें पड़कर सरकारी स्कूल और राष्ट्रीय पाठशालाके बीच चुनाव कर सकनेका यह भेद भुला न दिया होता, तो आज राष्ट्रकी पाठशालाओंमें थोड़े बालक होनेके बजाय बहुतसे बालक होते और उनके लिए सुन्दर मकान बनवा देनेके लिए धनवान एक-दूसरेसे होड़ लगाते। मगर राष्ट्रीय पाठशालाको भले ही बड़के पेड़की छायामें ही गुजर करना पड़े, भले ही उसमें मुट्ठी-भर ही बच्चे आयें, राष्ट्रीय शिक्षकोंको अपनी श्रद्धा कमी नहीं खोनी चाहिए। मैं मानता हूँ कि विलेपार्लेकी शाला ऐसी ही है, इसलिए वहाँ जा पाना मैंने अपना सौभाग्य माना।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-९-१९२९

३५१. भारतवर्षके अन्धे

तारदेव बम्बईमें अन्धोंको आश्रय देनेवाली एक संस्था है। श्री हरिप्रसाद छत्रपति इस संस्थाके आचार्य हैं और हड्डियोंके चिकित्सक भाई बहरामजी खम्भाता और उनकी धर्मपत्नी संस्थाके कामोंमें दिलचस्पी लेती हैं। हममें से हरएक प्रायः तीन प्रकार के अन्धोंको जानता है। एक हैं, ज्ञानके अन्धे। इनकी तादादका कोई पता नहीं लगा सका है। अज्ञान-रूपी अन्धेपनका दुःख हम भले ही न जानते हों, मगर यह सच है कि आँखोंके अन्धेपनकी अपेक्षा यह बहुत ज्यादा दर्दनाक है। दूसरे प्रकारके अन्धे वे लोग हैं, जो भूखों मरते हुए जी रहे हैं। उनकी तादाद गिनने योग्य है। देशमें इन लोगोंकी संख्या कमसे-कम दस करोड़ बताई जाती है। इन लोगोंके आँखें हैं, मगर तो भी ये अन्धे हैं। मोमके पुतलोंकी लगाई गई आँख यन्त्रवत् हिलती-डुलती है, मगर वह देख नहीं सकती; उसी तरह इन लगभग दस करोड़ लोगोंकी पुतलियाँ घूमती जरूर हैं, मगर उनमें देखनेकी ताकत नहीं। इन अन्धोंकी सेवामें रात-दिन लगे रहनेके कारण मैं आँखोंके अन्धोंके बारेमें उदासीन रहा हूँ।

लेकिन भाई खम्भाताका प्रेम मुझे इन लोगोंकी थोड़ी और क्षणिक सेवाके लिए बम्बई खींच ले गया। प्रस्तुत संस्थाकी मददके लिए वनिता विश्राममें आयोजित एक सभाका सभापतित्व स्वीकार करना ता० ७के कार्यक्रमका तीसरा काम था[1]।

इस संस्था द्वारा प्रकाशित साहित्य और भाई छत्रपतिके भाषणसे पता चलता है कि देशमें पन्द्रह लाख अन्धे हैं। इनमेंसे लगभग ७० फीसदी ऐसे हैं कि अगर समय पर उनकी उचित चिकित्सा हो जाये तो उनको दृष्टि मिल सकती है। यह संख्या तो दोनों आँखोंके अन्धोंकी है। आधे अन्धों या कानोंकी संख्या इससे ढाई गुनी ज्यादा है। पता चलता है कि बम्बईके अन्धोंको वहाँकी दानी, मगर विवेकसे काम न लेनेवाली जनता द्वारा फी आदमी प्रतिदिन औसतन पाँच रुपयेका दान मिल जाता है। मगर यह सारीकी सारी रकम अन्धे भाई-बहनोंको नहीं मिलती। उनकी लकड़ी पकड़ कर चलनेवाले किरायेदार नौकर इस आयका मोटा हिस्सा खद हड़प जाते हैं।

इस संस्थाके संचालक इस बातकी कोशिश कर रहे हैं कि यह दर्दनाक हालत बन्द हो, सुधरे। दुनियामें हर जगह अन्धे हैं, लेकिन पश्चिमके खोजप्रिय और परोपकारी लोगोंने इस क्षेत्रमें बहुत-कुछ काम किया है। इस तरहकी दयाका प्रचार अमेरिकामें अधिकतर पाया जाता है। भारतमें इस दिशामें आजकल जो प्रयत्न हो रहे हैं, उन्हें उसकी तुलनामें बहुत ही थोड़ा अनुकरण-मात्र कहा जा सकता है। वहाँ अन्धोंके लिए अनेक शालाएँ हैं, चतुर शिक्षक हैं। उनमें हेलन केलरके समान प्रसिद्ध और विदुषी स्त्री तैयार हो सकी है, जिसके ग्रन्थोंकी जनतामें बड़ी कद्र है।

१. देखिए, पृष्ठ ४२५–७।

सारांश, अमेरिकाके अन्धे किसी पर भाररूप नहीं हैं, उलटे कई तरहके काम करके वे अपनी जीविका आप कमा लेते है।

तारदेवमें शिक्षा पाये हुए अन्धे सभामें लाये गये थे। उन्होंने गाना गाया। एकने हारमोनियम बजाया, दूसरेने तबला। किसीने अन्धोंके लिए खास तौर पर बनाई गई उठे हुए अक्षरोंकी पुस्तकका कुछ अंश पढ़ कर सुनाया, तो किसी दूसरेने लिख-कर बताया और तीसरेने सुईमें धागा पिरोकर दिखाया। अन्धोंने आँखोंसे सम्बन्ध रखनेवाले जो काम किये थे, वे भी प्रस्तुत किये गये थे।

इस संस्थाका कहना इस प्रकार है:

१. संस्थाको चलानेके लिए धनी लोग द्रव्य देकर सहायता करें।

२. अन्धोंको कोई भीख न दे। जो अन्धे मिलें उन्हें संस्थाके स्थानमें भेज देनेसे उनकी योग्य सुश्रूषा की जायेगी और अगर उनकी आँख ठीक होने योग्य प्रतीत होगी तो चिकित्सा भी की जायेगी।

३. अन्धोंको जो रकम आजकल भीखमें दी जाती है, उसे उस रूपमें न देकर दानी लोग अपनी बचत या उसका अंश इस संस्थाके पास भेज दें।

४. जिनके पास धन नहीं है, मगर जिनके हृदयमें ऐसे अपंगोंके लिए दया है वे जहाँ-कहीं इन्हें देखें धीरज देकर समझाएँ और इस संस्थामें भेज दें। संस्था उनकी जाँच करेंगी।

अगर हममें स्वराज्यकी सच्ची भावना पैदा हो जाये तो अन्धोंको भी उससे थोड़ा ढाढ़स जरूर बँधने लगे। अन्धोंका दुःख मिटानेके लिए स्वराज्य तक रुकनेकी जरूरत नहीं है। स्वराज्य सूर्य अपने पूर्ण उदयसे पहले ही अपनी गर्मी और प्रकाश चारों ओर फैला देता है। मेरी सूचना पर अमल करनेमें न तो समयका व्यय होता है, न शक्तिका क्षय ही। स्वराज्य भावनाका मतलब तो यह है कि हममें अपनी आजादीके लिए जितना जोश है, उतना ही जोश भारतके तमाम अन्धों, लूलों, लँगड़ों और निर्बलोंकी आजादी और अच्छाईके लिए हमारी नसोंमें बहता हो। जिसका इस तरह हृदय परिवर्तन हो गया है, वह दुखियोंकी सेवाका एक भी मौका हाथसे नहीं जाने देगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-९-१९२९

३५२. विवाह और उसकी विधि

इस विषयमें एक परम मित्रके साथ मेरा पत्र-व्यवहार हुआ था। उसमें से एक पत्र मैंने लम्बे समयसे रख छोड़ा था। उसका मुख्य भाग आज मैं पाठकोंके सामने रखता हूँ।[1]

यह पत्र नहीं परन्तु एक मननीय लेख है। इसके बहुत बड़े भागमें तो मैं सहमत ही हूँ। दो विचारोंके बारेमें शायद मेरा मतभेद हो सकता है। मैं 'हो सकता है' कहता हूँ, क्योंकि बहुत बार वस्तु एक ही दिखाई देती है, परन्तु दृष्टिकोण अलग होनेसे वह अलग दिखाई देती है।

विवाहमें प्रजोत्पत्तिकी भावना तो होनी ही चाहिए, ऐसा मुझे नहीं लगता। सन्तान तथा विषय-भोगकी बिलकुल इच्छा न होने पर भी विवाह करनेवाले स्त्री-पुरुषोंके उदाहरण आज मेरी आँखोंके सामने तैर रहे हैं। आलिव श्राइनरका सम्बन्ध ऐसा था, आस्ट्रियामें एक ऐसे दम्पती[2] रहते हैं जिनका सम्बन्ध आरम्भमें ऐसा ही था और आज भी ऐसा ही है। एक और जोड़ी ऐसी है कि जब जिन्होंने विवाह-सम्बन्ध किया तब दोनोंके मनमें प्रजोत्पत्तिकी भावनाका सर्वथा अभाव था, परन्तु बादमें इस सम्बन्धके फलस्वरूप सन्तान उत्पन्न हुई; इस परिणामको दोनोंने शुभ नहीं माना। लेकिन इस परिणामका उन्होंने सदुपयोग किया। वे सावधान हो गये और संयमपूर्ण जीवन बितानेका आग्रह रखकर उन्होंने दो बालकोंकी मर्यादा बाँध ली। मैं ऐसी हिंदुस्तानी बहनोंको जानता हूँ जिन्होंने केवल दुनियाकी निन्दासे बचनेके लिए तथा अपने को अबला समझकर पुरुषका रक्षण पानेके लिए ही विवाह किया है। ऐसे अनेक विधुर पुरुष हैं जो अपनी गृहस्थीको चलाने तथा पहले विवाहके बालकोंके पालन-पोषणके लिए ही सहचरी खोजते हैं। संयमपूर्वक जीवन बितानेवाले लोगोंका विचार-प्रवाह आज विवाहको प्रजोत्पत्तिसे अलग माननेकी दिशामें बह रहा है। स्त्री-पुरुष जैसे दो भिन्न लिंगीय युगलके संगमके मूलमें प्रजोत्पत्तिकी भावना तो है ही, एकदम ऐसा मान लेनेका कोई कारण नहीं है। दाम्पत्य प्रेमकी निर्मलतामें प्राणिमात्रकी एकता की साधना क्यों न की जाये? आज जो असम्भव लगता है वह कल सम्भव क्यों नहीं हो सकता? संयमकी क्या कोई भी मर्यादा हो सकती है? मनुष्यसे भिन्न प्राणियों का उदाहरण लेकर हम मनुष्यकी उन्नतिकी मर्यादा न बाँधें। निचले दरजेके प्राणियों के उदाहरणसे हम इतना ही सबक लें कि हम उनसे अधिक नीचे न उतरें।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने सुझाया था कि विवाहकी प्रतिज्ञामें कुछ परिवर्तन-परिवर्धन किये जाने चाहिए क्योंकि शास्त्रोंने सन्ततिके बिना गृहस्थाश्रमको अभद्र और अस्वर्गीय कहा है। यह भी कहा गया था कि सप्तपदीके प्रत्येक पदके साथ की गई प्रतिज्ञाका सीधा-सादा अर्थ लेना ही अधिक योग्य है। उसका आध्यात्मिक अर्थ भी करें; किन्तु स्पष्ट अर्थकी हानि करके नहीं।

२. फ्रेडरिक और फ्रान्सिस्का स्टैंडेनेथ, देखिए खण्ड ३७, पृष्ठ ३७३।

स्त्री-पुरुषका विषय-सम्बन्ध अगर जीवनमें पाँच वर्षके बाद बन्द करना वांछनीय हो, तो आरम्भसे ही उसे बन्द रखना वांछनीय क्यों नहीं हो सकता? ऐसा करनेसे विवाहोंकी संख्या घटे तो भले घट जाये, अथवा इस प्रकारके विवाह कम हों तो भी कोई हानि नहीं। मेरी कल्पनाकी वास्तविकताके लिए एक शुद्ध उदाहरण ही काफी है। जया और जयन्त आज भले ही नानालाल कविकी कल्पनामें विहार करते हों, परन्तु कल वे समाजमें मूर्त रूप क्यों नही ले सकते?[१]

लेकिन मेरे मनमें इस समय तो कुछ दूसरी ही बात रम रही है। सप्तपदीकी प्रतिज्ञामें प्रजोत्पत्तिकी भावनाका स्थान होना ही नहीं चाहिए। यदि किसी ऐसी बातके विरुद्ध प्रयत्न न किया जाये जो होनेवाली ही है तो उसकी प्रतिज्ञा ही क्यों ली जाये? प्रजोत्पत्तिको हम कर्त्तव्य न मानें, तो भी वह होती ही रहेगी। इस कारण इस विषयसे सम्बन्धित कोई प्रतिज्ञा हो भी तो वह ऐसी होनी चाहिए: "हम रतिसुखके खातिर कभी रतिसुख नहीं भोगेंगे; परन्तु यदि हममें प्रजा-पालनकी योग्यता होगी तो हम प्रजोत्पत्तिके खातिर ही विषय-भोग करेंगे।" पाठक देखेंगे कि इस प्रतिज्ञामें और प्रजोत्पत्ति करनेकी प्रतिज्ञामें उत्तर-दक्षिणका भेद है। प्रजोत्पत्तिकी प्रतिज्ञाके कारण हिन्दू समाजमें पुत्रषणाके कारण जो अनिष्ट प्रतिदिन होते रहते हैं उन्हें कौन नहीं जानता?

मानव-समाजमें ऐसे युगकी आसानीसे कल्पना की जा सकती है, जब प्रजोत्पत्ति को विवाहका मुख्य उद्देश्य मानना आवश्यक हो जाये। आज फ्रांसमें ऐसा ही युग चल रहा है। फ्रांसकी जनताने बिना किसी अंकुशके विषय-सुख भोगनेके खातिर प्रजोत्पत्ति पर कृत्रिम प्रतिबन्ध लगाये। इस कारण वहाँ अब जन्मकी अपेक्षा मृत्युकी संख्या बढ़ती हुई मालूम होती है। इसलिए आज वहाँ लोगोंको प्रजोत्पत्तिका धर्म सिखाया जाता है। युद्धमें जहाँ विरोधी पक्षोंमें पुरुषोंका बड़ी संख्यामें संहार हो जाता है, वहाँ प्रजोत्पत्तिको धर्म माना जाता है; इतना ही नहीं, एक पुरुष अनेक स्त्रियोंसे विवाह करे ऐसा धर्म भी स्वीकार किया जाता है। यह बात स्पष्ट है कि इन दोनों उदाहरणोंका मूल तो मलिन ही है। पहले उदाहरणमें विषय-भोगका अतिरेक है; दूसरेमें मनुष्य-हिंसा चरम सीमाको पहुँच गई है। इनका जो परिणाम आया है, वह अनिवार्य ही है। इसलिए सम्बन्धित युगमें यह कर्म अधर्म होते हुए भी उसे धर्मका नाम दिया गया। सच्चा धर्म तो यह था: "तुमने खूब विषय-भोग किया, अब तुम नष्ट हो जाओ; तुम पशुसे भी बुरे साबित हुए, आपसमें तुम कट मरे, अब जो बाकी रहे हैं, उनका नाश हो जाये।" इन दोनों प्रकारके नाशमें जगत्का कल्याण है, क्योंकि उसमें कर्मका सीधा फल भोगनेकी बात है। 'भगवद्गीता' भी यही कहती है। महाभारतकारने अन्तमें बचे हुए मुट्ठी-भर व्यक्तियोंका नाश ही चित्रित किया है।

आज जब हम विवाहके अन्य अनेक शुभ उपयोग देखते हैं तब उन्हींको उद्देश्यके रूपमें सामने रखें और प्रजोत्पत्तिकी बातको उसके स्वभाव पर निर्भर रहने दें, यही

१. गुजरातीके प्रसिद्ध कवि नानालालने **जया-जयन्त** नामक एक सुन्दर नाटक लिखा है। उसका नायक जयन्त और नायिका जया विवाहित जीवनमें भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं; शरीर-सम्बन्धकी अपेक्षा आत्मासे सम्बन्धको जीवनका आदर्श मानते हैं।

मुझे वांछनीय और आवश्यक मालूम होता है। विवाह-सम्बन्धमें बँधनेवाले स्त्री-पुरुष संकल्प तो सेवाका ही करें, भोग केवल लाचारीसे भोगें।

अब विवाह-विधिके अर्थका विचार करें। सत्य पर प्रहार करके निकाला हुआ अर्थ सर्वथा त्याज्य है, यह स्वीकार करनेमें मुझे जरा भी संकोच नहीं है। परन्तु जहाँ परस्पर सम्बन्धका विचार करते हुए भी वांछनीय परन्तु बिलकुल नया अर्थ उत्पन्न हो सकता हो वहाँ ऐसा अर्थ करनेका हमें अधिकार है। और वैसा करना हमारा धर्म है। जिन अर्थोंकी पहले कभी कल्पना ही न की गई हो, ऐसे शुभ-अशुभ अर्थ तो लोग किया ही करेंगे। लोगोंकी उन्नतिके साथ उसके साधनोंकी उन्नति अवश्य होगी। लोगोंके परस्पर सम्बन्धका एक बड़ा साधन भाषा है। इसलिए भाषाका विकास तो होता ही रहेगा। और वह दोनों मार्गोसे होगा: नये शब्दों और नये वाक्योंकी रचना द्वारा तथा उन्हीं शब्दों और उन्ही वाक्योंके नये अर्थो द्वारा। कौन-सा अर्थ कब उचित है और किन परिस्थितियोंमें उसे स्वीकार किया जा सकता है, यह विवेकका क्षेत्र है। इसमें सिद्धान्तकी कोई बात नहीं है। विवेकपूर्वक किये गये अर्थ सुशोभित ही होंगे। अर्थ निकालनेकी एक ही मर्यादा होनी चाहिए: कही सत्यका थोड़ा भी लोप न हो।

सप्तपदीके मन्त्रोंमें कहाँ और कैसा सुधार किया जाना ठीक होगा, इस प्रश्न पर मैंने यहाँ विचार नहीं किया है। क्योंकि दो मूल विवादास्पद बातोंको अपने मनमें हम स्पष्ट कर लें, तो विधिका निश्चय आसान हो जाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-९-१९२९

३५३. टिप्पणियाँ

स्त्री-सेवा

मैं जब बम्बई जाता हूँ, बम्बईके भाई-बहन मुझे घेरे ही रहते हैं। मणिभवनमें भी लोगोंका जमाव बना रहता है। इस बार तो लोगोंने ता० ७ को भोपाल जाते हुए मेरे लिए बम्बईमें चार समारम्भोंका आयोजन कर रखा था। इनमेंसे दो विले-पार्लेमें और दो खास बम्बईमें थे। पहला आयोजन स्त्री-सेवाके लिए खोले जानेवाले एक आश्रमके शिलारोपणका था।

इस समारम्भके संयोजक थे भाई करसनदास चितालिया। वे बहुत समय पहलेसे ऐसे एक आश्रमका स्वप्न देखा करते थे। इसके संचालनके लिए सदासे उनकी नजर सूरजबहन और दूसरी बहनों पर रही है। दुर्भाग्यवश सूरजबहन विधवा हो गई हैं। उन्हें सधवा बनानेका एक मार्ग यह है कि स्त्री-सेवाके काममें उन्हें पूरी तरह होम दिया जाये और इस तरह उनका दुःख मिटा दिया जाये। श्रीमती रमाबाई रानडे जैसी भव्य विधवा बहनोंने इस आदर्शको सजीव बनाये रखा है। भाई करसनदासकी

सूरजबहन पर अनन्य श्रद्धा है। सूरजबहन वैसे तो निरक्षर हैं, मगर उनका हृदय कोमल है और उनमें स्त्री-सेवाकी लगन तथा जोश सदासे रहे हैं। लेकिन मेरे विचारमें अभी उन्हें तैयार होनेके लिए कुछ समय चाहिए। भाई करसनदासका मत है कि वे तैयार हों अथवा न हों, अगर एक बार उनके लिए एक नन्हीं-सी इमारत चिन दी जाये, तो अपनी सहज कोमल भावनावश वे अपने-आप तैयार हो जायेंगी और उनके आत्म-समर्पणसे दूसरी बहनें भी स्त्री-सेवाके लिए, अपने-आपको अर्पण कर देंगी।

उनके इस कथनका कारण मेरी समझमें इस कार्यके प्रति उनकी उत्कण्ठा और अधीरता है। मेरा विश्वास है कि जिस दिन बहनें तैयार हो जायेंगी, उनके लिए मकान तो तैयार हो ही जायेंगे। ईंट-चूनेकी चिनाईके पहले हृदय-मन्दिरकी चिनाई बहुत जरूरी है। अगर यह हो जाये तो और सब तो हुआ ही समझें। लेकिन इसके अभावमें दूसरी (बड़ी-बड़ी इमारतों)का होना निरर्थक होता है और अक्सर उनके बनानेमें कई कठिनाइयाँ पैदा होती हैं एवं अनेक प्रपंच रचने पड़ते हैं। आज ऐसी अनेक इमारतें पड़ी हैं, जिनमें पक्षियोंने घोंसले बना डाले हैं। और कई ऐसे आश्रम भी हैं, जो आश्रमके नामको लजाते हैं और जहाँ परमार्थके बदले स्वार्थकी, और नीतिके बदले अनीतिकी आराधना की जाती है।

किन्तु मैं तो प्रेमके वश होकर चलनेवाला एक अल्प प्राणी हूँ। भाई करसन-दासकी एकनिष्ठा पर मैं मुग्ध हूँ। उनके और जाईजी पेटिटके प्रयत्नसे करीब दस साल पहले मुझे भगिनी समाजकी ओरसे लगभग २५,००० रु० की थैली मिली थी। उसी समय मैंने निश्चय कर लिया था कि उस रकमका उपयोग सिर्फ स्त्री-सेवाके लिए करूँगा और वैसा करते समय खासकर इन दो भाई-बहनोंकी सलाह लूँगा। इस आश्रमके लिए कुछ द्रव्य भाई करसनदासने इकट्ठा किया और कुछ सूरजबहनने दिया। लेकिन उतने ही से आश्रम नहीं बन सकता था; इसलिए भाई करसनदासकी बात मानकर मैंने उक्त रकममें से इसके लिए आवश्यक द्रव्य देनेका निश्चय किया। भाई करसनदासने मकानका शिलारोपण भी मेरे हाथों करानेका आग्रह किया। अतः उनके आग्रहके कारण ही उस दिन बम्बईमें मैंने शिलारोपणका यह काम किया। अब मैं यही प्रार्थना करता हूँ और आशा रखता हूँ कि जिन बहनोंपर भाई करसनदासकी आशा टिकी हुई है, वे उनकी श्रद्धाको सफल बनायेंगी। आश्रमका न्यास और कार्यकारी मण्डल अभी बननेको है। ऐसे समय यथा सम्भव व्यावहारिकतासे काम लेकर आश्रमके उद्देश्यको सुरक्षित रखनेके लिए पूरी-पूरी सावधानीसे काम लिया जायेगा।

वैसे स्त्री-सेवा वास्तवमें तो स्त्री-सेविकाओंके तैयार होने पर ही होगी। इसके लिए स्त्रियोंको एक-साथ रहना, हिल-मिलकर काम करना, एक-दूसरेके स्वभावको सहना, स्वतन्त्र विचार करना और विचारों पर साहस एवं दृढ़ताके साथ अमल करना और कष्ट सहना सीखना पड़ेगा। पुरुषोंके मुकाबले स्त्रियोंमें त्यागकी भावना बहुत अधिक है। लेकिन भारतवर्षकी स्त्रियोंकी दृष्टि अभी कुटुम्बकी संकुचित हदसे आगे नहीं बढ़ रही है। इस कमीको दूर करना भी आश्रमके अनेक उद्देश्योंमें से एक है।

राष्ट्रीय शाला

स्त्री-सेवाके आश्रमका शिलारोपण समाप्त होनेके बाद मुझे विले पार्लेकी गुजरात विद्यापीठसे सम्बद्ध राष्ट्रीय पाठशालामें उद्योग-मन्दिर और खादी प्रदर्शनीका उद्‌घाटन करना था। यह शाला बड़ी मुसीबतमें है, और श्री गोकुलभाई वगैरा सेवकोंकी एक-निष्ठा और दृढ़ताके कारण ही अबतक टिक सकी है। खर्च घटानेके इरादेसे शाला विलेपार्लेमें लाई गई है। आजकल इस शालाके प्रणेता भाई किशोरलाल मशरूवाला हैं। इस शालामें उद्योगोंको अमली तौर पर प्रधानपद देनेका प्रयत्न किया जा रहा है, और उद्योगोंमें प्रधान उद्योग तो चरखे एवं खादीका ही है; इस कामके लिए एक मन्दिरकी आवश्यकता थी। मन्दिर अब बन चुका है। उसीमें एक नन्ही-सी खादी प्रदर्शनी की गई थी।

अविवेकी और उथला विचार करनेवाले शायद ऐसा कहें कि कहाँ यह बकरी और कहाँ सरकारी शाला-रूपी सिंह; यह जानते हुए भी कि एक सिंह अनेक छोटी-बड़ी बकरियोंको खा जाता है, राष्ट्रीय शालाका मोह रखना मूर्खताकी पराकाष्ठा ही है। मगर इससे राष्ट्रीय शिक्षाके पुजारियोंको निराश होने या डरनेका कोई कारण नहीं है।

राष्ट्रीय शाला और सरकारी शालाकी परस्पर तुलना की ही नहीं जा सकती। जबतक देशमें राष्ट्रीयताका पूरा-पूरा प्रेम पैदा न होगा, उसके गुणोंका सम्पूर्ण पृथक्करण न होगा, तबतक राष्ट्रीय शालाओंकी भी पूरी-पूरी कद्र न हो पायेगी। लेकिन केवल इसीलिए राष्ट्रीयताके जानकार अपने ज्ञानके विषयमें सशंक क्यों हों? यहाँ राष्ट्रीय शालाकी विशेषता समझ लेना आवश्यक है; वह विशेषता यह है कि उसमें पहला और आखिरी सबक देशप्रेम, देशसेवा और देशके लिए यज्ञ करनेका पढ़ाया जाता है। सरकारी शालाओंमें देशप्रेम विदेशी शासनके प्रति वफादारीके आधीन है। यह कौन नहीं जानता कि जब दोनोंमें विरोध खड़ा हो जाता है तो सरकारी मदरसोंमें विदेशी शासनकी रक्षाको ही प्रधानपद दिया जाता है। अतः जो राष्ट्रके भक्त हैं, वे सरकारी शाला-रूपी महलोंकी अपेक्षा राष्ट्रीय शाला-रूपी झोंपड़ियोंको ही अधिक पसन्द करेंगे। क्या जगत्‌में कोई ऐसा है जो अपने खण्डहर, जर्जर और बरसातमें चूनेवाले झोंपड़ेकी अपेक्षा महलोंके समान सुन्दर और सब तरहकी भौतिक सुविधाओंसे पूर्ण कारागृहकी पराधीनताको पसन्द करेगा? अगर हमने मोह और स्वार्थके वश होकर सरकारी और राष्ट्रीय शालाके बीचके इस निर्णयात्मक भेदको भुला न दिया होता तो आज राष्ट्रीय शालामें इने-गिने बालकोंके बदले असंख्य बालक पढ़ते होते और उनके लिए सुन्दर इमारतें बना देनेको हरएक धनाढ्य एक-दूसरेसे स्पर्धा करता होता। भले ही राष्ट्रीय शालाओंका काम बरगदकी छायामें होता हो और उनमें मुट्ठी-भर छात्र ही क्यों न पढ़ते हों, फिर भी राष्ट्रीय शिक्षकोंसे प्रार्थना है कि वे अपनी श्रद्धासे न डिगें। मेरा विश्वास है कि ऐसी शालाओंमें विले पार्लेका भी अपना स्थान है और इसी कारण वहाँ जाकर मैंने अपनेको कृतकृत्य समझा था।

बम्बईका खादी-भण्डार

अखिल भारतीय चरखा संघका बम्बई स्थित खादी-मण्डार खादी-प्रगतिका मीटर और विट्ठलदास जेराजाणीके खादी-प्रेमका माप है। स्वराज्यकी दृष्टिसे इस भण्डारकी प्रगति भले ही बहुत कम साबित हो, लेकिन एक दुकानकी दृष्टिसे तो उसकी प्रगति अच्छी ही कही जायेगी। पहलेकी नन्हीं-सी दुकानसे बढ़कर भण्डार कुछ बड़ी दुकान बना। फिर वहाँ भी जगह कम पड़ जाने पर अब भण्डार कालबादेवी रोड, नं० ३९६के एक नये और कुछ बड़े मकानमें ले आया गया है। इस नये मकान और दुकानमें जाना ता० ७ का मेरा चौथा[1] काम था। कहाँ तो शुरुआतके दिनोंकी मोटी-झोंटी और एक ही किस्मकी खादी जिसमें आज भी मुझ-जैसा खादीके पीछे पागल अनन्त सौन्दर्यके दर्शन करता है, और कहाँ आजकल खादीकी १,६६० अनेक विध किस्में? कहाँ उन दिनोंका राष्ट्रीय झण्डा और कहाँ आजकलका पक्के रंगकी ऊनी खादीका बना हुआ सुन्दर तिरंगा झण्डा। अस्तु, भण्डारकी इस प्रगतिका जो संक्षिप्त वर्णन भाई जेराजाणीने उस दिन सुन्दर शब्दोंमें पढ़ सुनाया था, वह यों है:[2]

मूल भण्डार सन् १९२१के जनवरी महीनेमें मोरारजी गोकलदास क्लाथ मार्केटमें खोला गया था। उस साल छः महीनोंमें २८,२७६ रु०की खादी बिकी थी। पिछले साल भण्डारने ३,९७,२८२ रु० की खादी बेची थी। सात सालमें कुछ १९,६०,०७२ रुपयेकी खादी बिक चुकी है। लेकिन बहिष्कारकी दृष्टिसे ये आँकड़े अथवा कालबा-देवीकी किसी इमारतमें दुकान ले आनेका कोई महत्त्व नहीं है। इस भण्डारकी अपनी खुदकी इमारत होनी चाहिए। बहिष्कारका सच्चा वातावरण तैयार हो सके और खादीका प्रेम भारतके बच्चोंकी नस-नसमें भिद जाये तो बम्बईमें सिर्फ एक ही खादी भण्डार न हो, बल्कि मुहल्ले-मुहल्ले और गली-गलीमें एक-एक भण्डार हो। इस तरहके प्रेमको व्यापक रूपमें प्रकट करनेका यही एक उपाय है कि आज जिन्हें खादीसे प्रेम है वे उसे अटल बनाये रहें; इस और ऐसे दूसरे भण्डारोंकी मदद करें और खादीके कार्यकर्त्ता अपनी श्रद्धाको जरा भी मन्द न होने दें। इस भण्डारको देखनेवालेकी श्रद्धा शिथिल हो ही नहीं सकती, उलटे अश्रद्धालु भी श्रद्धावान बन जाता है।

अन्त्यज-सेवाके लिए भिक्षु

काठियावाड़ अन्त्यज-समितिने भाई रामजी जूठा हिराणी और रामनारायण नागरदास पाठकको पूर्व आफ्रिका इत्यादिमें अपने कार्यके लिए निधि इकट्ठा करनेकी दृष्टिसे रवाना किया है। वरतेज अन्त्यज-आश्रममें भाई रामजी सेवक हैं और छायाके अन्त्यज आश्रममें भाई रामनारायण। यों तो काठियावाड़के इस कार्यके व्ययका बोझ

१. तीसरा आयोजन वनिता विश्रामके समारोहकी अध्यक्षता थी। देखिए "चार कार्यक्रम", १२-३-१९२९ और "भारतमें अन्धोंकी स्थिति", १५-९-१९२९।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। विवरणमें भण्डारके विभिन्न विभागों, कर्मचारियोंकी संख्या, आय-व्यय आदिका लेखा दिया गया था। इसमें यह भी कहा गया था कि खादीकी किस्मोंको देखते हुए अब भण्डारको ५ विभागोंके बजाय १८ विभागोंमें बाँटनेकी योजना है और इसलिए उसका बड़ी इमारतमें लाना आवश्यक हो गया था।

स्वयं काठियावाड़के निवासी उठायें, यह आदर्श स्थिति है। किन्तु अभी ऐसे अनेक क्षेत्र हमारे सामने हैं जिनके विषयमें लोकमत पूरी तरह तैयार नहीं किया जा सका है। अभी जनतामें ऐसे लोग हैं जो अस्पृश्यताको धर्म मानते हैं। ऐसी स्थितिमें अन्त्यज प्रेमियोंको वहाँ जाकर अपना हाथ फैलाना पड़ता है, जहाँके लोग अन्त्यज प्रेमी हों। इसी पद्धतिका अनुसरण करके उक्त दोनों सेवक पूर्व आफ्रिकाकी दिशामें रवाना हुए हैं। मुझे आशा है कि उन्हें पूर्व आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयों और विशेषतः गुजरातियोंसे यथायोग्य और यथाशक्ति मदद मिलेगी। फिलहाल अन्त्यज-समितिकी देखरेखमें तीन आश्रम और दस पाठशालाएँ चल रही हैं और लगभग ८०० बालक-बालिकाओंको उनका लाभ मिल रहा है। भला कौन दयालु व्यक्ति इनकी मदद नहीं करेगा? जिस सप्ताहमें उक्त दोनों भाई रवाना हुए मैंने उसी सप्ताहमें इसका उल्लेख 'नवजीवन'में करनेकी बात स्वीकार की थी; किन्तु कामकी अधिकतासे मैं वचनका पालन नहीं कर पाया। यदि समितिके मन्त्री भाई मूलचन्द पारेख याद न दिलाते तो सम्भव था, मैं इस बार भी चूक जाता। मैंने इस बातका उल्लेख अपने बचावके विचारसे नहीं, अपनी त्रुटि प्रकट करनेके विचारसे किया है। किसीको भरोसा न देना ठीक है; किन्तु भरोसा दे देने पर उसका समय पर पालन किया जाना चाहिए। मैंने इस कामकी हदतक ऐसा नहीं किया, इसके लिए ये भाई और अन्त्यज-समिति मुझे क्षमा करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-९-१९२९

३५४. पत्र : छगनलाल जोशीको

आगरा
१५ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

कठोरके बारेमें क्या-कुछ किया गया है? हसमुखरायको चाहिए कि वह मुझे भणसालीके बारेमें खबर देता रहे। क्या उसका वजन बढ़ा है? क्या अब सहारेके बिना चल सकता है? खुराक क्या लेता है? यह मालूम होना जरूरी है। मराठेकी तबीयत कैसी रहती है? नाथजी उससे मिलने और समझानेके लिए जानेवाले थे। शौचादिके बारेमें जो नियम बनाने थे क्या वे बना दिये गये हैं? रास्तों आदिका नाम रखना था, क्या वह आखिरकार रख दिया गया है? यदि रख दिया गया हो तो उसकी सूची मेरे देखनेमें नहीं आई।

कुछ महीने पहले मैंने एक सुझाव दिया था; उसकी याद फिर दिला रहा हूँ। सुझाव यह था कि खादी-विद्यालयको विद्यापीठ द्वारा मान्य करायें और जो लोग परीक्षामें पास हों उन्हें विद्यापीठ पदवी अथवा प्रमाणपत्र दे। इसके बारेमें हमने

फिर विचार किया ही नहीं। मुझे लगता है कि यह कर लिया जाना चाहिए। इसके बारेमें भाई शंकरलाल और काकाके साथ बात करके इसे अमलमें लाना चाहिए। तुम्हें शायद याद होगा, मैंने तो यहाँतक कहा था कि जो पास कर चुके हैं यदि वे चाहें तो उन्हें भी किसी विशेष विधिका आयोजन करके प्रमाणपत्र दें और ऐसे सब लोगोंके नाम हमारे और विद्यापीठके रजिस्टरोंमें हों। इसी तरह की दो-चार अन्य बातें भी कभी-कभी याद आ जाती हैं; किन्तु इस समय वे याद नहीं आ रही हैं।

डा० हरिप्रसादने तो नर्सिंगकी कक्षा शुरू कर ही दी होगी। शिवाभाईसे कहना कि जेठालाल और अप्पासाहबने उसके साथ हिसाबका जो मतभेद बताया है, उसका पूरा निबटारा कर ले। मुझे लगता है कि नारणदास भी उनके आँकड़ोंसे सहमत नहीं। इन तीनोंके साथ पत्र-व्यवहार द्वारा या मिलकर शिवाभाईको फैसला कर लेना चाहिए। मीराबहनने बताया है कि आजकल आश्रममें सूतका अंक मालूम करनेकी नई पद्धति चलाई गई है। यदि ऐसा हो तो उसके बारेमें 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' दोनोंमें लिखा जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४३५) की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

३५५. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

आगरा
१५ सितम्बर, १९२९

भाईश्री बनारसीदास,

आपके दोनों पत्र मिले। दयालबाग[1] देख लूँगा। फरोजाबादमें आपके पिता और पुत्रादिको मिलनेकी उम्मीद अवश्य रखता हूँ। रामनारायण यदि मुझको मिल गया है तो उसने मुझको अपनी पहचान नहीं करवाई। चिरंजीलालजीसे भी मिलनेकी उम्मीद रखता हूँ। मेरी उम्मीद है कि 'विशाल भारत'का[2] घाटा शीघ्रतासे दूर हो जायेगा। बंगालमें हिन्दी प्रचारका काम कैसे चल रहा है?

आपका,
मोहनदास

जी० एन० २५२२ की फोटो-नकलसे।

१. आगरा।
२. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका।

३५६. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१६ सितम्बर, १९२९

चि० गंगाबहन (बड़ी),

तुम्हारा पत्र मिल गया। कार्यवाहक मण्डलमें यदि तुमसे कोई सख्त बात निकल जाये, तो भी तुम्हारा उसमें बने रहना ठीक होगा; इससे विकासमें मदद मिलेगी। क्रोध आदि विकारों पर घर बैठे विजय नहीं मिलती। यह तो तभी हो सकता है, जब आदमी अपने सिर पड़ी हुई जवाबदारीको निभाते हुए दूर करनेका प्रयत्न करता है। क्रोध आ जानेके कारण जवाबदारीसे पल्ला छुड़ाना तो कायरता कही जायेगी और फिर इसका अन्दाज तक नहीं लगेगा कि हमने क्रोधको जीता है या नहीं।

यदि लक्ष्मी तकलीफ देती हो, तो मुझे लिखना। मैं दूधाभाईको लिखूंगा और वे उसे ले जायेंगे। देहरादूनकी लड़कियाँ अच्छी सिद्ध हुईं, यह जानकर मुझे खुशी हुई है। सूरजबहनको बननेमें अभी देर लगेगी।

तुमने फिरसे काफी शुरू कर दी है; कोई हर्ज नहीं। तुमने उसे छोड़नेका तो बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफल नहीं हो सकीं। शरीरके खिलाफ लड़नेकी हद तो होती ही है। अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। जितना दूध लेना जरूरी जान पड़े, उतना लेते हुए बिलकुल मत हिचकिचाना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–६ : गं०स्व० गंगाबहेनने

३५७. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मौनवार, १६ सितम्बर, १९२९

बहनो,

फिलहाल मुझसे लम्बे पत्रोंकी आशा न रखना। सोमवारको मुझे समय कम ही रहता है। क्योंकि 'नवजीवन' गुजराती-हिन्दी, दोनोंका काम सोमवारको ही करना पड़ता है। यह देखना है कि दौरेमें आगे बढ़ने पर क्या होता है। यहाँ थोड़े ही दिन ठहरना है, फिर भी मीराबहनने पींजना-कातना सिखानेकी कक्षा खोली है। जमनाबहन बम्बईसे स्त्रियोंके बनाये हुए जो कपड़े लाई है, उन्हें बेचती है। प्रभावती उसमें मदद देती है। कुसुम अपने काममें डूबी रहती है। मेरी तबीयत ठीक ही मानी जा सकती है। परन्तु कोई अपना आदमी भूल करे तो बहुत चिढ़ जाता हूँ। इससे

समझता हूँ कि शरीर अभी वैसा नहीं हुआ जैसा मैं चाहता हूँ; और शरीरसे मन इतना अलग नहीं हुआ कि वह चाहे जैसे शरीर पर पूरा काबू रख सके।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०१)की फोटो-नकलसे।

३५८. पत्र : छगनलाल जोशीको

१६ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

आज तुम्हारे पाससे डाक तो आई; किन्तु उसमें तुम्हारा पत्र दिखाई नहीं दिया। समय न मिले तो पत्र न लिखनेकी बिलकुल चिन्ता न करना। मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हारा मन जल्दी ही शान्त हो जाये। मैं इसका क्या उपाय तुम्हें बता सकता हूँ? किन्तु सच बात तो यह है कि शान्ति किसीके बतानेसे नहीं मिलती, वह तो भीतरसे ही आनी चाहिए।

मैं स्वयं इस समय क्रोध-रूपी राक्षससे जूझ रहा हूँ। अपने किसी निकटके व्यक्तिसे भूल हुई नहीं कि क्रोध-रूपी शत्रु मेरे ऊपर सवार हो जाता है। यह तो शरीर और मनकी दुर्बलताका सूचक है। मन पूरी तरह उदासीन हो गया हो तो शरीरकी दुर्बलता क्या करेगी? बुद्धि यह जानती है, पर इस बुद्धिने कभी हृदयको स्पर्श नहीं किया। किन्तु किसी दिन यह क्रोध भी छूटेगा ही। सबसे ज्यादा गुस्सा प्यारेलाल और कुसुम पर उतरता है। किन्तु जिस प्रकार अपने प्रयत्नसे मुझे ईश्वर-कृपा प्राप्त करनी है उसी तरह तुम्हें भी प्राप्त करनी है। हम दोनोंमें किसी तरहका अन्तर है ऐसा न मानना। दोनोंमें ही आत्मा है। दोनोंमें पशुताका निवास है। यदि मोह चला जायेगा तो पशुता भी चली जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४३६)की फोटो-नकलसे तथा **बापुनापत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने**से भी।

३५९. पत्र : छगनलाल जोशीको

मौनवार, १६ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा और नारणदासके पत्र दूसरे पत्रोंमें दब जानेके कारण आज पत्रोंका जवाब देते समय दिखे। डाक चले जानेके बाद आधे पढ़े सभी पत्रोंको पढ़ते और क्लिपें उतारते समय मैंने दोनोंके पत्र देखे। मुझे बहुत खुशी हुई। यही चाहता हूँ कि तुम दोनोंमें मेल बना रहे। चि० नारणदासके सुझाव पर अमल हो तो मुझे अच्छा लगेगा ही। स्त्रियोंका उद्योग-वर्ग ड्योढ़ीमें रहे तो सुविधा ही होगी। गंगाबहन को उपवासके लिए मेरी आज्ञा तो लेनी ही थी। एक-दो दिनका हो तब कोई बात नहीं। इसके बारेमें कल तार[1] भेजनेका इरादा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४३७) की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७: श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

३६०. तार : उद्योग-मन्दिर, साबरमतीको

१७ सितम्बर, १९२९

गंगाबहनके उपवास और उनके स्वास्थ्यके बारेमें तार दें।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५८२२) की माइक्रोफिल्मसे।

३६१. तार : खादी भण्डार, श्रीनगरको[2]

१७ सितम्बर, १९२९

तार मिला। अभी छोटेलालको रोक रखें। उन्हें जल्दीसे जल्दी कब छोड़ सकेंगे? क्या अब पत्र मिल रहे हैं?

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५५५६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "तार : उद्योग-मन्दिर, साबरमतीको", १७-९-१९२९।

२. खादी भण्डारके दिनांक १६ सितम्बरके तारके उत्तरमें। तार इस प्रकार था: "छोटेलालजी को तत्काल छुट्टी देनेसे कामका काफी हर्ज होगा। कृपया तार दें।" (एस एन० १५५५५)।

३६२. सन्देश : बम्बईके बच्चोंको[1]

आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

बम्बईमें रहने और पढ़नेवाले बच्चोंको यह जानना चाहिए कि भारतवर्षके करोड़ों बच्चोंके सामने वे विशाल समुद्रमें एक बूँदके समान हैं। उन्हें यह भी जानना चाहिए, इन करोड़ों बच्चोंमें काफी बड़ी संख्या उन बच्चोंकी है जो हड्डियोंके ढाँचे-भर हैं। अगर बम्बईके बच्चे इन्हें अपने भाई-बहनोंके समान ही मानते हैं तो वे इन बच्चोंके लिए क्या करने जा रहे हैं?

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २-१०-१९२९

३६३. पत्र : अध्यक्ष, म्युनिसिपल बोर्ड, लखनऊको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय महोदय,

आपका पत्र मिला। जहाँ तक राष्ट्रीय ध्वजारोहण समारोहका सम्बन्ध है, मैं यह मानता हूँ कि आपने स्वागत-समितिकी सलाहसे ही इसका समय निश्चित किया होगा; क्योंकि जब मैं दौरे पर होता हूँ, तो अपने समय पर मेरा वश नहीं रहता। सभी स्थानों पर स्वागत-समितियाँ ही मेरी गति-विधियाँ संचालित करती हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५५६०)की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह सन्देश बच्चोंको गांधीजी का जन्म-दिन मनानेके पूर्व प्राप्त हुआ था।

३६४. पत्र : स्वामी गोविन्दानन्दको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

मुझे अभी-अभी पता चला है कि आप कांग्रेसके नाम पर एक ऐसा खादी भण्डार चला रहे हैं जिसे अखिल भारतीय चरखा संघसे मान्यता नहीं मिली है। इस भण्डारमें अप्रमाणित खादी बेची जाती है। नमूनेके रूपमें मुझे एक रूमालका नमूना भी दिया गया है; स्पष्ट ही उसमें मिलके सूतका उपयोग किया गया है। कृपया इस विषयमें लिखें कि जो बात मुझसे कही गई है उसमें कितनी सचाई है।

हृदयसे आपका,

स्वामी गोविन्दानन्द
अध्यक्ष
सिन्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
केसरी कार्यालय, कराची

अंग्रेजी (एस० एन० १५५८७-क)की माइक्रोफिल्मसे।

३६५. पत्र : मन्त्री, अ० भा० च०, सं० अहमदाबादको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

मुझे स्वामी गोविन्दानन्द द्वारा चलाये जा रहे खादी भण्डारसे सम्बन्धित आपका पत्र[1] मिला। मैंने उन्हें भी एक पत्र[2] लिखा है; उसकी प्रति संलग्न है।

हृदयसे आपका,

संलग्न-१

मन्त्री
अखिल भारतीय चरखा संघ
मिर्जापुर, अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १५५८७)की माइक्रोफिल्मसे।

१. पत्रमें लिखा था : "स्वामी गोविन्दानन्दका भण्डार अ० भा० च० सं० द्वारा प्रमाणित नहीं है। फिर भी चूँकि यह भण्डार कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष द्वारा चलाया जा रहा है, इसलिए कठिनाई होनेका भय है। . . ." (एस० एन० १५५४८)।

२. देखिए पिछला शीर्षक

३७०. पत्र : कन्नूमलको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

मुझे खेद है कि जब आप आये, मैं आपसे नहीं मिल सका, क्योंकि तब मैं सोने ही जा रहा था। मुझे अब आपकी भेजी पुस्तकें मिल गई हैं। तदर्थ धन्यवाद। मुझे भेजी गई पुस्तकोंकी मूल्य-सूची नहीं दिखी और न पुस्तकोंपर ही मूल्य दिया गया है। उदाहरणके लिए हिन्दी पुस्तक 'कबीर वचनावली' पर, जिसे मैंने अभी-अभी देखा है, मूल्य नहीं लिखा है।

हृदयसे आपका,

लाला कन्नूमल
धौलपुर (राजपूताना)

अंग्रेजी (एस० एन० १५५५१)की माइक्रोफिल्मसे।

३७१. पत्र : वी० वी० दीक्षितको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

श्री शेषगिरि रावके पत्रके साथ आपका पत्र मिला। आरम्भमें मैं यह सुझाव देना चाहूँगा कि उनकी मशीन एल्लौरके श्री नारायण राजूको जो चरखेके बारेमें कुछ जानकारी रखते हैं, दिखा ली जाये। यदि वे अपने आविष्कारके बारेमें पूर्णत: आश्वस्त हैं तो वे अपनी मशीन जाँच-पड़तालके लिए साबरमती भेज दें। यदि मशीन थोड़ी भी उपयोगी प्रतीत हुई तो उन्हें उनकी कल्पनाके अनुसार ठीक प्रकारकी मशीन तैयार करनेमें यथासम्भव पूरी सहायता दी जायेगी। मशीनके सन्तोषप्रद साबित न होनेकी स्थितिमें यदि वे मशीनको वापस मँगा लेना चाहेंगे तो उसके साबरमती भेजने और वापसीका खर्चा देना होगा, अगर वे स्वयं आते हैं तो साबरमतीमें उनके ठहरने और भोजन आदिकी व्यवस्था उद्योग मन्दिर करेगा। मैं श्री रावको अलगसे पत्र नहीं लिख रहा हूँ। यही पत्र मेरे द्वारा उनके पत्रकी प्राप्तिकी सूचना माना जाये।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० वी० दीक्षित
एल्लौर
पश्चिमी गोदावरी जिला

अंग्रेजी (१५५८)की माइक्रोफिल्मसे।

३७२. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय जयरामदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं आज पुरुषोत्तमदास टण्डनको व्याख्या-पत्र भेज रहा हूँ। मैसूर बुलेटिनमें[1] तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत आँकड़ोंका 'यंग इंडिया' में मैंने जो उपयोग किया है सो तुम देख ही लोगे। इस दिशामें और अधिक कामकी जरूरत है। जो आँकड़े तुमने दिये हैं उन्हीं पर आगे काम किया जा सकता है और इसके आश्चर्य-जनक परिणाम निकलेंगे। उदाहरणके लिए एक आना सात पाईकी औसत आमदनीका मतलब है वर्षमें कमसे-कम चार महीने बिलकुल निकम्मे बैठे रहनेवाले ११ करोड़ लोगोंकी आमदनी एक आना सात पाईसे बहुत कम होती है; क्योंकि इस औसतमें बड़े-बड़े जमींदारोंकी आमदनी, उच्च पदों पर आसीन अधिकारियोंकी बड़ी तनख्वाहें और डाक्टरों तथा वकीलोंके मेहनतानेकी भारी रकमें भी तो शामिल हैं। इन आँकड़ोंकी जाँच करके ११ करोड़ लोगोंकी औसत आयका पता लगाना कठिन नहीं है। यह सात पाईके बजाय एक पाईके लगभग आयेगी। निस्सन्देह विदेशी सूत और विदेशी फुटकर सामान पर होनेवाले खर्चका अनुमान ६६ करोड़ लगाना सही नहीं है, क्योंकि अकेले इंग्लैंडसे सूतके अलावा आयातित फुटकर सामानकी लागत ६० करोड़के लगभग होती है। अगर आप इसमें इंग्लैंडसे प्राप्त सूत और जापान और इटलीसे प्राप्त सूत और फुटकर सामानकी लागत शामिल कर लें तो संख्या १०० करोड़के लगभग पहुँच सकती है। इसकी जाँच-पड़ताल होनी चाहिए। ये आँकड़े किसने तैयार किये हैं? मेरे यात्रा-वृत्तान्तकी आजतक की संशोधित प्रतिलिपि संलग्न है।

हृदयसे तुम्हारा,

संलग्न : १

श्रीयुत जयरामदास दौलतराम
मन्त्री, विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति
कांग्रेस भवन ४१४,
गिरगाँव बैंक रोड, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५५५९)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पृष्ठ ४८०–१।

३७३. पत्र : देशराजको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय देशराज,

श्री ब्रेनके ग्रामोंमें कार्य पर तुम्हारी रिपोर्ट यद्यपि अत्यधिक विलम्बके बाद प्राप्त हुई तथापि मैं इसका स्वागत करता हूँ क्योंकि मै इसकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था। मैं इसे घोटकर पिये जा रहा हूँ। क्या मैं इसका सार्वजनिक उपयोग कर सकता हूँ? यदि तुम अपने प्रत्येक बयानके लिए पक्के प्रमाण जुटा सको तो यह एक उपयोगी लेख माना जायेगा। किन्तु तुम्हारे एक भी बयानका सफलतापूर्वक खण्डन किया जा सके तो यह अच्छा नहीं होगा। सम्भव है, प्रतिवाद करनेके प्रयत्न किये जायें लेकिन तुम्हारे पास अपने कथनकी पुष्टिके लिए प्रामाणिक तथ्य होने चाहिएँ। तुम यह तो मानोगे ही कि तुम्हारे विवरणके कुछ भागोंसे सरकारकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगेगा। अस्तु, यदि तुम विवरणके किसी भागमें संशोधन करना चाहो तो कर सकते हो। पृष्ठ ६ पर कुछ स्पष्ट भूलें है। तुमने लिखा है, "उनके पास लगभग ४० गजका एक कृषि फार्म है।" मैं समझता हूँ तुम्हारा मतलब एकड़से है। पृष्ठ १४ पर तुमने लिखा है, "पिछले सालसे सरकारने गाँवके अगुओंके लिए २,५०,००० रुपये खर्च करनेकी स्वीकृति दी है।" यह तो स्पष्ट ही गलत है, किन्तु सही आँकड़ों का मैं अनुमान नहीं लगा पा रहा हूँ। तुम्हारी यह रकम २५० या २,५०० रुपये हो सकती है। कृपया मुझे सही आँकड़ोंकी सूचना दें। किन्तु इन भूलोंको देखते हुए मैं चाहूँगा कि तुम अपने विवरणको एक बार फिर देख जाओ और प्रत्येक ब्योरेको पूरी तरह सही करो। और यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि तुम्हें पत्रोंके उत्तर तत्परताके साथ देने चाहिए। यदि सम्भव हो तो कृपया अपना उत्तर मुझे लखनऊ भेजें। वहाँ मैं २७से ३० तारीख तक रहूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १५५६१)की माइक्रोफिल्मसे।

३७४. पत्र : जगन्नाथको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय जगन्नाथ,

देर आयद दुरुस्त आयद। रिपोर्ट देनेमें इतनी देरी करते चले जानेके कारण मैं मन-ही-मन तुमपर उबलता रहा हूँ। जब तुम टण्डनजी के साथ पिछली बार आश्रम आये तो मैंने सोचा कि तुम मुझे रिपोर्ट तत्काल दे दोगे। अब तुम देख सकते हो कि उसे भेजनेमें तुमने कितना समय लगाया। फिर भी इस बातसे त्रुटिकी कुछ पूर्ति हो जाती है कि रिपोर्ट काफी विस्तृत है; मैं इसे ध्यानपूर्वक पढ़ रहा हूँ। देशराजको लिखा मेरा पत्र[1] संलग्न है। कृपया वह उन्हें पहुँचा दें। मैं जहाँ तक सम्भव है अपने स्वास्थ्यको ठीक रखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

संलग्न : दौरेका कार्यक्रम[2]

अंग्रेजी (एस० एन० १५५४१)की माइक्रोफिल्मसे।

३७५. पत्र : एवलिन गैजको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। कार्नेलियसको तत्काल लिख रहा हूँ। यद्यपि श्री वर्जिसके नाम उनके पत्रसे मुझे शंका भी होती है तथापि मुझे आशा है कि मेरे पत्र-व्यवहारका परिणाम सुखद होगा। बातचीतके दौरान तुमने मुझसे कहा था कि मैं तुम्हारा नाम न बताऊँ, किन्तु मेरे विचारमें तुम्हारे नामका उल्लेख न करना गलती होगी। कार्नेलियसको यह तो मालूम ही हो जाना चाहिए कि मुझे जानकारी देनेवाला कौन है। अनुमान लगाते रहनेका अवसर न देना ही ठीक होगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारा नाम लिख देना ठीक है। हमारी बातचीतमें मैं यह नहीं

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. उपलब्ध नहीं है।

समझ पाया था कि तुम पूर्ण निषेध चाहती हो। तुमने जो दो पत्र भेजे थे, सो लौटा रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

संलग्न : २

कु० एवलिन गैज
यूनिवर्सिटी सैटलमैन्ट
वच्चनगांधी रोड
गामदेवी, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५५६२) की माइक्रोफिल्मसे।

३७६. पत्र : एन० एस० हार्डीकरको[1]

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय डॉ० हार्डीकर,

झण्डेके सम्बन्धमें लिखा आपका पत्र मिला। मैं उसपर विचार कर रहा हूँ। आपका सुझाव बिलकुल ठीक और व्यावहारिक है। इस सम्बन्धमें काम आगे बढ़ानेमें कुछ समय लग सकता है। आकारके बारेमें जो आपने कहा है, उसपर मैंने ध्यान दिया है। इसी तरहकी शिकायतें एक-दो अन्य कार्यकर्त्ताओंसे भी मिली हैं। रंगोंके पक्के होनेके बारेमें भी आपकी बात पर मैं ध्यान दे रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

डॉ० एन० एस० हार्डीकर
हिन्दुस्तानी सेवा दल
हुबली

अंग्रेजी (एस० एन० १५५२८) की फोटो-नकलसे।

१. एन० एस० हार्डीकरके दिनांक ६ सितम्बरके पत्र उत्तरमें। जिसमें लिखा था : "... दिसम्बर १९२८ में हुए दलके कलकत्ता सम्मेलनमें पारित प्रस्तावके अनुसार, प्रत्येक माहके आखिरी रविवारको नियम-पूर्वक अनेक स्थानोंपर प्रात: ८ बजे झण्डाभिवादनका कार्यक्रम चलता है। हमारे पास भारत तथा बाहरसे भी राष्ट्रीय ध्वजकी मांग आती है। बड़ा अनुग्रह होगा यदि आप अ० भा० च० सं० से यह व्यवस्था करा दें कि उसकी प्रान्तीय शाखाओंमें विभिन्न आकारके झण्डे (जिनमें चरखा बना हो) बिक्रीके लिए उपलब्ध हों।" (एस० एन० १५५२७)।

३७७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

मुकाम आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

प्रिय सतीशबाबू,

वहाँके कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके कामोंके बारेमें आपका पत्र मुझे मिला। आपने जो कुछ लिखा है सो तो बिलकुल ही सच है। मैं तो चुप ही बैठा हूँ। मैं डा० हार्डीकरका पत्र संलग्न कर रहा हूँ। झण्डेके आकारके बारेमें वे जो-कुछ कहते हैं वह ठीक ही है। क्या आप इन झण्डोंको डाक्टर हार्डीकरके सुझाये हुए नापके अनुसार बनाकर सभी भण्डारोंमें पहुँचा देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं? मैं चाहता हूँ कि आप जेराजाणीसे भी इस मामलेमें विचार-विमर्श करें। वे भी झण्डे बना-बनाकर देखते आ रहे हैं। उनको इसमें अच्छी सफलता भी मिली है। झण्डेमें प्रयुक्त रंग निश्चय ही पक्के होने चाहिए। जेराजाणीने हाथ-कते ऊनसे अच्छे झण्डे तैयार किये हैं। हम सूती और ऊनी दोनों तरहके झण्डे तैयार कर सकते हैं; परन्तु इस मामलेमें आप ज्यादा जानते होंगे।

निरंजनबाबूका पत्र संलग्न है। पत्रमें उल्लिखित बातोंमें से यदि किसीसे आपपर थोड़ा-सा भी आक्षेप आता हो तो वह आक्षेप अनुचित होगा। इसमें जान-बूझकर आपके विरुद्ध कुछ नहीं लिखा गया है; परन्तु इससे यह तो स्पष्ट है कि आघात पाकर घबराए हुए आदमीसे बात करते समय हमें कितनी सावधानी रखनी चाहिए। भविष्यमें उपयोगके लिए मैंने निरंजनबाबूको एक नुस्खा[1] लिख भेजा है। उसकी नकल इस पत्रके साथ संलग्न है। मुझे न कृष्णदास और न उनके गुरुजी से ही कोई सूचना मिली है। श्रीकृष्णदासके गुरुजी ने अपने पत्रमें एक घटना-विशेषका जिक्र किया था, जिसके बारेमें मुझे उन्हें लिखना पड़ा। उन्होंने कृष्णदासकी ओरसे क्षमा-याचनाका एक लम्बा तार भेजा है। लेकिन इस प्रकारकी क्षमा-याचना मैं नहीं चाहता। मुझे तो पूर्ण स्पष्टीकरण चाहिए। हेमप्रभादेवी इन दिनों पूरी तरह मौन धारण किये हैं। मैं समझता हूँ कि उनके मौनका कारण भी वर्तमान झंझटें ही हैं। क्या आपका वजन फिर पहले जितना हो गया है और आप स्वस्थ हैं? भोजन सम्बन्धी जो साहित्य मैंने पढ़ा है उससे एक बात तो जरूर स्पष्ट हो गई है कि मशीनमें साफ किया हुआ चावल खानेके अनुपयुक्त है। चावल-जैसा अन्न, जिसे प्रयोगमें लानेके लिए इतनी सावधानी रखनी पड़ती है, खाना ही नहीं चाहिए, खासकर उस दशामें जब अन्नकी और किस्में सहज उपलब्ध हैं। इस समय गेहूँ, दूध या दही, बिना राँधी हरी सब्जियाँ और फल काममें लाये जा सकते हैं। वनस्पति जगत्में दूधकी ठीक जगह लेने योग्य कोई वस्तु है अवश्य; इस बारेमें मुझे सन्देह नहीं है, लेकिन इसका अभी तक पता नहीं चला है। अमेरिका और इंग्लैंडके दोस्तोंने

१ देखिए पृष्ठ ४४३।

सोयाबीनके दूधका प्रयोग सुझाया है। मैं सोयाबीन प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
बापू

संलग्न: श्रीयुत निरंजन पटनायकका पत्र और उसका उत्तर

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
सोदपुर
कलकत्तेके पास

अंग्रेजी (जी० एन० १६०९)की फोटो-नकलसे।

३७८. पत्र : वसुमती पण्डितको

आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

चि० वसुमती,

फिर कुछ दिनोंसे पत्र नहीं मिला। तुम्हारे पत्र नियमपूर्वक मिलने ही चाहिए। यात्राकी तारीखें छगनलालको भेजी हैं। वहाँसे जान लेना। मेरी तबीयत अच्छी रहती है। अभी रोटी शुरू तो नहीं की है, किन्तु उसकी जरूरत भी नहीं लगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

फिरसे नहीं पढ़ा है।

गुजराती (एस० एन० ९२६६)की फोटो-नकलसे।

३७९. पत्र : ग० वा० मावलंकरको

१७ सितम्बर, १९२९

भाईश्री मावलंकर,

आपका पत्र मिला।

जवाब बड़ी जल्दीमें लिख रहा हूँ। मेरा ऐसा ख्याल था कि २०,००० रुपये कीमतका छापाखाना भी दानमें मिला था। भाई शंकरलाल जानते हैं। उन्हें दस्तावेज दिखा देना।

स्वामीका नाम तो अभी रहेगा। हम लोग तो न्यास बनानेवालोंकी हैसियतसे हैं न?

सभी नये न्यासियोंको रखनेकी जरूरत मानता हूँ। हरएकके नाम रखनेका कारण तो है ही। मिलनेका अवसर आने पर समझा सकूँगा या फिर विस्तारसे लिखनेका समय पाने पर।

मेरा ख्याल है कि उत्तर देनेकी कोई बात बाकी नहीं बची है।

बापू

गुजराती (जी० एन० १२२५)की फोटो-नकलसे।

३८०. पत्र : छगनलाल जोशीको

आगरा
१७ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

यदि तुम्हें फुटकर कामोंसे थोड़ी फुरसत मिल सकती हो तो तुम्हें या पण्डितजी या नारणदासको गंगाबहनकी मदद करनी चाहिए। जो बहनें परेशान करती हैं उन्हें वह अकेले नहीं सँभाल सकती। . . .[1] बहन चोरी करती है यह तो सिद्ध हो ही चुका है। . . .[2]में भी यह दोष है, ऐसा मुझे लगता रहता है। . . .[3]के उपद्रवी स्वभावको तो सभी जानते हैं। . . .[4] लापरवाह, नासमझ और उद्धत लड़की है।

मुझे लगता है कि (अ)[5]को एक तरफ ले जाकर तुममेंसे कोई एक उसे (ब)[6] के बारेमें बता दे। और (ब)की बुरी आदत सुधर न सके तो (अ)को चाहिए कि वह उसे बाहर ले जाये और प्रेमसे उसे सुधारे। (ब) पर क्रोध कर उसे निकाला नहीं जा सकता। किन्तु वह उद्योग-मन्दिरमें सुधर भी नहीं सकती। उद्योग-मन्दिरमें रहने-वालोंमें कुछ गुण तो होने ही चाहिए। ये न हों तो उनके सुधरनेके बदले बिगड़ने की सम्भावना है। क्योंकि उद्योग-मन्दिरकी छूटका दुरुपयोग होगा; और बाहरका अंकुश न होनेसे वे लोग जिस मर्यादाका पालन करते थे वह भी न रहेगी। यह भी सम्भव है कि (ब)के जो दोष हम देख सके हैं वह (अ)को न दिखाई देते हों। ऐसे पति मैंने कम देखे हैं, जो पत्नीके दोष देख सकते हों। सब देख सकें तो शायद संसार चल भी न सके। इसलिए यदि (अ) उसके दोष न देख सके तो मैं इसमें उसका कोई दोष नहीं मानता। किन्तु यदि वह दोष न देख सके तो दोनोंको उद्योग-मन्दिरसे चले जाना चाहिए। यह तो मुझे दीपककी तरह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। क्योंकि जब तक वह दोष न देखे तब तक (ब)को जबरदस्त सहारा रहेगा। तब तक वह (ब)के पक्षमें रहेगा; यह तो बिलकुल स्वाभाविक ही है। जब तक ऐसा चलेगा, (ब)की हानि ही होगी।

१, २, ३, ४, ५ एवं ६. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिये गये हैं।

विवाहित स्त्रियोंको लेनेमें हमारे मनमें यही विचार रहा है कि पतिकी तरफसे पूरी मदद मिलेगी। और जब हम कुछ कर सकते हों तो दोनों मन्दिर छोड़ देंगे। जो (अ) और (ब) पर लागू होता है वही (क)[1] और (ख)[2] पर भी लागू होता है।

लक्ष्मी ठीक न चले तो दूधाभाई उसे फिर वापस ले जायें। ऐसा करते-करते यदि हमारा और उसका नसीब अच्छा होगा तो वह ठीक हो जायेगी।

तुम इसपर विचार कर लो इसलिए यह सब तुम्हें लिख रहा हूँ। इसमें से जो कुछ हो सकता हो वह करना।

कृष्णमैयादेवी कैसी चल रही है?

फूलचन्द तो बिलकुल बच ही गया। पर हम इस तरह अपने नसीब पर निर्भर न रहें। बच्चे जहाँ तैरते हैं, वहाँ रस्सी वगैराका प्रबन्ध पहलेसे ही कर रखना अच्छा है। उन्हें समय-समय पर चेता तो देना ही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४३८)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७: श्री छगनलाल जोशीनें**से भी।

३८१. पत्र: नारायणदास मलकानीको

मुकाम आगरा
१८ सितम्बर, १९२९

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मुझे जो समाचार भेजा है उससे मुझे बहुत दुःख हुआ। स्वामी गोविन्दानन्दने मुझे लिखा था कि उनके द्वारा संस्थापित किसी कांग्रेस राहत-समितिको मैं अपना आशीर्वाद दूँ। मैंने उन्हें लिख दिया है कि मैं ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि जो भी धन मैं इकट्ठा कर पाया हूँ वह तो केवल तुम्हारे द्वारा ही बाँटा जायेगा। मैं अब अनुभव कर रहा हूँ कि तुम कैसी उलझनमें पड़ गये हो। अब गुजरातसे भेजे गये बकाया पैसेमें से कुछ भी किसीको न देना। सरकारी दखलन्दाजी या नियन्त्रणसे मुक्त होकर स्वेच्छासे सहायता-कार्य चलानेका अवसर मिलने पर ही गुजरातसे मिली इस रकमका उपयोग किया जा सकेगा। ऐसा न हो सके तो यह पैसा मुझे लौटा देना। जब तुम्हें यह लगे कि तुम लोगोंकी सेवा नहीं कर पा रहे हो और तुम्हारी क्षमताओंका दुरुपयोग हो रहा है, तो तुम वर्तमान समितिसे अपना सम्बन्ध तोड़ लेना। यदि तुम किसी प्रकारकी गन्दगीमें पड़े बिना शान्तिपूर्वक सहायता-कार्य चलानेमें असमर्थ रहो तो यह मानना कि भाग्य साथ नहीं दे रहा है और

१ व २. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिये गये हैं।

शायद उसकी समझमें तुम्हारी सेवाओंकी वहाँ जरूरत नहीं है। जहाँ हमारी सेवाकी आवश्यकता होती है हम वहाँ सेवा करनेके लिए सदैव तत्पर रहते हैं। हमें किसीके ऊपर अपने-आपको थोपना नहीं है। हम सेवाके लिए तत्पर हैं, यही काफी है। तुम मेरी बात बिलकुल साफ तौरसे समझ गये होगे।

अब चोइथराम[1]के बारेमें। जयरामदास और मैंने उसके बारेमें काफी बातचीत की। वे अपने शरीरको दुराग्रहपूर्वक कष्ट दे रहे हैं। जब समय है तो वे एक महीना और जरूरत हो तो कुछ ज्यादा दिनों तक आराम क्यों नहीं करते, जिससे फिर स्वस्थ हो जायें? वे तब लोगोंकी सेवाके लिए ज्यादा कामके बन जायेंगे? मैं समझता हूँ कि यदि वे आराम नहीं करते हैं तो उनके साथ रहनेवाले तुम लोग, उनके विरुद्ध हड़ताल या सत्याग्रह करके उन्हें आराम करनेके लिए मजबूर क्यों नहीं कर देते? मेरा यह पत्र उन्हें जरूर दिखा दो। फिर इस मामलेमें क्या हुआ सो मुझे लिखो।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

प्रो० नारायणदास मलकानी
जिला कांग्रेस कमेटी कार्यालय
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (जी० एन० ८९५)की फोटो-नकलसे।

३८२. पत्र : छगनलाल जोशीको

आगरा
१८ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। जान पड़ता है, रावजीभाईको बहुत दिनोंसे बुखार आ रहा है किन्तु अब तो ठीक हो गया होगा। नारणदासके बारेमें परसों लिख चुका हूँ।

आज हम सब दयालबागकी संस्थाएँ[2] देख आये हैं। उनके प्रधान साहबजी महाराजसे मिले। वहाँ चमड़ेका तो कुछ भी काम नहीं होता। मोचीका काम होता है। चमड़ा बाहरसे खरीदते हैं। गोशालासे हम कुछ सीख सकें, ऐसी कोई बात दिखाई नहीं दी। उनका खर्च बहुत ज्यादा है। इस संस्थाका सरकारके साथ सम्बन्ध है। कालेज आदि भी चलाती है। उसके लिए सरकारसे पैसेकी मदद भी लेती है। संस्था साफ-सुथरी तो खूब है। सब मकान महलों-जैसे हैं, रास्ते पक्के हैं। संस्थाके अपने चौकीदार हैं। पानीके लिए पम्प चलते हैं, बिजलीकी बत्तियाँ हैं। मैं नहीं मानता कि यह संस्था गरीबोंकी है या गरीबोंके लिए है। हाँ, अमीरोंके लायक

१. डॉ० चोइथराम गिडवानी।
२. विस्तृत विवरणके लिए देखिए **यंग इंडिया**, २६-९-१९२९।

और उनको फबनेवाली जरूर है। व्यवस्था बहुत अच्छी है। साहबजी महाराजके प्रति प्रत्येक निवासीके मनमें खूब प्रेम है। स्त्रियोंको स्वतन्त्रता है। जाति-पाँतिके बन्धन नहीं हैं; इतना ही नहीं है, किन्तु उसका निषेध तो है। विवाह जान-बूझकर जातिसे बाहर किये जाते हैं। विवाह-विधि एकदम सादी होती है। स्त्रियाँ सफेद पोशाक ही पहनती हैं। सादी चूड़ियाँ और छोटी-सी मालाके सिवा और गहने पहनने की मनाही है। और ये गहने भी दयालबागमें ही बने होते हैं; वहींके होने चाहिए। स्त्रियाँ पारसी ढंगकी पोशाक पहनती हैं। सिर पर सफेद रूमाल भी बाँधती हैं। सवेरे और शामकी प्रार्थनामें आना जरूरी है और प्रार्थना सवेरे एक घंटे और शामको दो घंटे तक होती है। साहबजी महाराज उत्साही व्यक्ति हैं। सभी कामोंमें भाग लेते हैं। सब काम उनकी देख-रेखमें होता है। आत्मदर्शन ही उनका उद्देश्य है। राजनीतिमें सत्संगियोंके भाग लेनेकी सख्त मनाही है। संस्थाकी विवरण-पत्रिका इसके साथ भेज रहा हूँ। विशेष मिलने पर।

यहाँ प्रतापनारायण वातल नामक एक गृहस्थ हैं। उन्हें रीवाँ राज्यके चर्मालयका अनुभव है। उन्होंने यहींसे पत्र-व्यवहार द्वारा चर्मालयके सम्बन्धमें हमें मदद देनेके लिए कहा है। वे शायद तुरन्त तुम्हें पत्र लिखना शुरू कर दें। यदि वे लिखें तो सुरेन्द्र को समझाना। वह उनसे पत्र-व्यवहार करे। उन्हें कोई बीस वर्षका अनुभव है, ऐसा मुझे बताया गया है।

फर्रुखाबादमें प्रेमराजके गुरु मिले, तो उनसे जान-पहचान करनेका प्रयत्न करूँगा।

लगता है गोपालरावके घावने ठीक होनेमें काफी समय लगाया। अब तो वह आ गया होगा।

डाकके बारेमें ज्यादा कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। मुझे लगता है कि वह ठीक ही आ रही है। देखता हूँ कि हिसाब लगानेमें ही भूल हुई है। क्योंकि १३ तारीखको डाकमें छोड़ा गया पत्र जल्दीसे-जल्दी १४को अहमदाबादसे निकल पायेगा। १५ तारीखकी रातको आगरा पहुँचेगा और फिर डाक सोलहको ही बाँटी जायेगी। तुम्हारा १५ तारीखका पत्र इसी हिसाबसे मिला है।[1]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

चमन कविने लिखा है कि तुमने मेरे बारेमें रोज पत्र लिखनेका वादा करके भी पत्र नहीं लिखा और उसके पत्रका जवाब तक नहीं दिया।

नारणदासने अपने पत्रमें सिर्फ मेरी आज्ञा माँगी थी। हरजीवन[2] अभी छोटेलालको नहीं आने दे रहा।

गुजराती (जी० एन० ५४३९)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो — ७: श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

१. देखिए "पत्र: छगनलाल जोशीको", १२-९-१९२९।
२. देखिए "तार: खादी भण्डार, श्रीनगरको", १७-९-१९२९।

३८३. पत्र : मणिबहन पटेलको

आगरा
१८ सितम्बर, १९२९

चि० मणि,

तेरा पत्र मिल गया। यशोदा[1] आ गई, यह बड़ा अच्छा हुआ। उसकी तबीयतके समाचार खेदजनक हैं। परन्तु अब वहाँ है अर्थात् ठीक जगह आ गई है; इसलिए सम्भव है, देखभालसे अच्छी हो जायेगी।

वल्लभभाई वहाँ पहुँच गये हों तो कहना कि ता० २७ को उनसे लखनऊमें मिलनेकी आशा रखता हूँ।

भाई इन्दुलालकी पत्नीके बारेमें जाना। वह बहन दुःखसे छूट गई, ऐसा मैं मानता हूँ। . . . [2]भाईके बारेमें जरा आश्चर्य होता है। परन्तु आजकी हवामें तो यह चीज भरी ही है, तब आश्चर्य क्या?

मेरी तबीयत अच्छी रहती है। अभी दूध, दही, फल पर हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–४ : मणिबहेन पटेलने

३८४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आगरा
१८ सितम्बर, १९२९

भाई घनश्यामदासजी,

आपका २ सप्टेम्बरका पत्र मुझको मिल गया था। मेरा तो ऐसा ख्याल है कि आन्ध्रके दौरेके समय आपको लिखा था। बंगाल कांग्रेस कमिटिके औडिट[3] करवा देनेके बारेमें मेरी आशा तो ऐसी है कि आपके औडिटर बगैर फी निरक्षणका काम कर देगा। बंगाल प्रान्तिय कांग्रेस कमिटीके मंत्रीको लिखें। मैं मंत्रीको आज ही लिखता हूँ।[4]

आगरामें मुझको काफी आराम मिला। स्वास्थ्य अच्छा है। बकरीका दूध, दही और फल पर रहता हूँ। रोटी खा सकता हूँ परन्तु खानेकी कोशिश नहीं की है।

१. मणिबहन पटेलके भाईकी पत्नी।
२. साधनसूत्रमें नाम नहीं दिया गया।
३. देखिए पृष्ठ ३६९।
४. पत्र दूसरे दिन १९ सितम्बरको लिखा गया था। देखिए पृष्ठ ३८१-२।

आपको और मुझको शान्तिसे बैठनेका कुछ समय मिले जैसा वर्धामें मिल गया था तो खान-पानादिके विषयमें आपकी विचारश्रेणी जानना चाहता हूँ। दुर्बलता या अयोग्यताके कारण आदर्श खानपानादि न करे यह एक बात है। और आदर्शको समझ लेना दूसरी बात है।

ऋषि लोगोंने खानपानादिके आदर्श विचारको काफी सिद्ध किया है परन्तु खान-पानादि वस्तुओंका कोई तीनों कालसे अबाधित् निर्णय कर लिया है ऐसा मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करती है। परन्तु मैं अपनी प्रयोगमें इस समय तो हार गया हूँ इसलिए यह विषय तात्कालिक उपयोगका नहिं रहा है।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। महादेवलालजी ने मुझको जुलाई मासमें एक खत लिखा था। उसमें आपके ऊपर आक्षेप थे। मैंने उनका ध्यान उनके पत्रकी त्रुटिकी ओर आकर्षित किया और उस पत्रको आपको भेजनेकी सम्मति माँगी। त्रुटि यह थी, उस पत्रके विषयमें महादेवलालजी ने पहले आपसे चर्चा नही की थी। उत्तरमें उन्होंने आपको पत्र भेजनेकी सम्मति दी थी। पीछे मैं दौरेमें रहा या तो कुछ कारणसे पत्र रह गया। इतनेमें महादेवलाल आश्रममें आ गये। अब तो जमनालालजी के साथ घूम रहे हैं। वह निःस्वार्थ प्रतीत होते हैं। अब मैं उनका पत्र आपके पास भेज देता हूँ। अवकाश मिलनेसे उस पत्रको पढ़ें और अवकाश मिलनेसे ही उत्तर भेजें। उत्तर भेजनेके समय महादेवलालके पत्रको भेज दें।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१७७ से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३८५. न्यायाधीशकी धमकी

समाचारपत्रोंमें छपे एक विवरणका सार नीचे देता हूँ :

> फौजदारी मामलोंकी पैरवी करनेवाले वकीलों द्वारा यह दलील पेश करना एक बहुत ही आम बात है कि मामला फर्जी है और पूरी कहानी पुलिसने तथ्योंको गढ़कर बना डाली है। मगर ज्यादातर मामलोंमें वे जिरहके वक्त इस बातकी सचाई साबित नहीं कर पाते। वकील लोग पुलिस पर ऐसे अभि-योग या तो आरोपीकी सूचनाके आधार पर, या खुदही अपने मनसे लगाते हैं। अगर यह काम आरोपीकी प्रेरणासे किया जाता है तो वकीलका दोष दुगुना हो जाता है। यदि यह पाया जाये कि आरोपी बिना किसी आधारके पुलिसको दोषी बताता है तो अदालतका कर्त्तव्य है कि वह उसे अधिक सजा दे। अगर वकील बिलावजह पुलिसपर अपराध लगाये तो वह अपनी मर्यादाका उल्लंघन करता है। वकील लोग इस तरह अक्सर जिरह करनेके हकका नाजा-

यज फायदा उठाते देखे गये हैं। ऐसे मुकदमे जिसके सामने पेश हों उस न्याया-धीशका यह कर्त्तव्य है कि जब वह देखे कि अभियुक्तका वकील पुलिसके गवाहों अथवा पुलिस पर झूठी तोहमत लगाना चाहता है, तब वह वकीलसे लगाये जानेवाले आरोपके लिए सबूत तलब करे और अगर वह सबूत न दे सके तो उसे जिरह करनेसे रोक दे। और अगर वकील अपने इल्जामकी सचाईका दावा करते हुए भी आखिर उसे साबित न कर सके तो उसके इस व्यवहारकी ओर हाईकोर्टका ध्यान खींचा जाये। यह गलत चलन दिन-दिन बढ़ता और गम्भीर रूप धारण करता जा रहा है। इस आशासे कि शीघ्र ही इसका प्रति-कार किया जायेगा मैंने अपने ये विचार प्रकट किये हैं।

ऊपरकी बात पटना उच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीशने कही है।

मैं इस पत्रके स्तंभोंमें कई बार बता चुका हूँ कि भारतकी वर्तमान तथाकथित अदालतोंमें न्याय एक दुर्लभ वस्तु बन गई है। किन्तु मैं इस बात पर विश्वास करनेके लिए तैयार नही था (यदि प्रकाशित विवरण सही हो तो) कि पटना उच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीश, वकीलों और उनके मुवक्किलोंको बिलावजह दोषी कहेंगे। देखता हूँ, पटना उच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीशने उक्त उद्‌गारोंके बहाने अभि-युक्तों और उनके वकीलोंको धमकी दी है।

अगर अभियुक्त और उनके वकीलोंके सर पर सजाकी धमकीकी तलवार सदा लटकती रहे तो पुलिसके बेजा बरतावके खिलाफ शिकायत करना उनके लिए नामुमकिन ही हो जाये। पटनाके चीफ जस्टिसका अनुभव भले जुदा हो, आम रैयतका अनुभव तो यह है कि पुलिसके बयान अक्सर काल्पनिक और फर्जी होते हैं, और इस चलनके दिनोंदिन बढ़नेका कारण अभियुक्त या उनके वकील नहीं, बल्कि पुलिस ही है। अतएव खास जरूरत तो पुलिसके अभियोग लगानेके अति उत्साह पर अंकुश लगानेकी है। यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि पुलिसकी नौकरीका आधार अपराध साबित करनेकी उसकी ताकत पर निर्भर करता है। इसलिए सच या झूठ किसी भी उपायसे गुनाह साबित करनेमें ही पुलिस-कर्मचारियोंके स्वार्थकी सिद्धि है। इस दृष्टिसे पुलिसके मामलोंमें हमेशा शंकाकी गुंजाइश तो रहेगी ही। जबतक गुनाह साबित न हुआ हो, तबतकके लिए न्यायाधीशका यह धर्म है कि वह हरएक कैदीको निरपराध समझे। यानी उसकी निरपराधता साबित करनेके मार्गमें एक भी बाधा खड़ी करनेसे पहले वह खूब विचार कर ले। शायद ही ऐसा कोई वकील होगा, जिसे कभी-न-कभी अदालतमें ऐसी बात न कहनी पड़ी हो, जिसको वह सबूतों द्वारा साबित करनेमें असमर्थ होता है; वकील जिस बातको सच मानता है उसे कहने और साबित न कर सकने पर उसे सनद रद कर दिये जानेकी धमकी दी जाये और जिरहके वक्त उसकी राहमें रोड़े अटकाये जायें तो चार्ल्स रसलके समान प्रतिभाशाली वकील भी हाथ टेक देनेको विवश होंगे। अगर जोरदार जिरहकी मदद न ली जाती तो पिगट पर फर्जी दस्तावेज तैयार करनेका जो आरोप लगाया गया था वह किसी तरह भी साबित नहीं हो सका होता। जो वकील अपने मुवक्किल

को निर्दोष मानता है, वह जिरहके मौके पर या और मौकों पर सच्ची बात जाननेके लिए विपक्षके बयानोंकी यथार्थताके सम्बन्धमें प्रश्न अवश्य ही करेगा। भले ही उसके मुवक्किलने उससे इस सम्बन्धमें कुछ कहा हो या न कहा हो; यह तो एक सामान्य बुद्धि और सामान्य नीतिकी बात है। मगर आजकल भारतकी अदालतोंमें इन्हीं दो बातोंका तो निरादर किया जा रहा है। जब सरकारकी प्रतिष्ठाका सवाल खड़ा होता है, और सरकारकी प्रतिष्ठा तो पुलिसकी प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है, तब न्यायाधीश अपनेको सरकारकी प्रतिष्ठाके संरक्षक मानकर सरकारी वकीलोंका-सा आचरण करते हैं। दुःखद होते हुए भी यह सच है। पटना हाईकोर्टके चीफ जस्टिसने इस बातको स्पष्ट कर देनेका साहस किया, तदर्थ वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-९-१९२९

३८६. टिप्पणियाँ

पंच या पशुबल

कुछ समय पहले कांग्रेसकी कार्यसमितिसे प्रार्थना की गई थी कि वह 'गोलमरी टिनप्लेट वर्क्स' की हड़तालके सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करे। कार्यसमितिने मन्त्रीको अधिकार दिया था कि वे मालिकोंके साथ पत्र-व्यवहार करें, जिससे दोनों पक्षोंके दृष्टिकोणको समझकर और अपनी राय कायम करके उसे अगली बैठकमें पेश कर सकें। इसपर पण्डित जवाहरलाल नेहरूने तुरन्त मालिकोंके साथ पत्र-व्यवहार शुरू करके अबतक एक विस्तृत विवरण तैयार कर लिया है। मैं यहाँ इस हड़तालके गुण-दोषकी चर्चा नहीं करूँगा। पत्र-व्यवहार और पण्डित जवाहरलालकी टिप्पणीसे स्पष्ट होता है कि वस्तुस्थितिके बारेमें भी दोनों पक्षोंमें महत्त्वपूर्ण मतभेद हैं। फिर भी एक बात बिलकुल स्पष्ट है। जिस कारखानेमें यह हड़ताल जारी है उसे राष्ट्रके खजानेसे जबर्दस्त सहायता मिलती है इसलिए कांग्रेसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह देखे कि इस प्रकारके उद्योग न्यायपूर्वक चलाये जाते हैं या नहीं। हड़तालियोंकी मुख्य माँगें नीचे लिखी हैं:

१. उनकी सभी शिकायतोंकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष समिति नियुक्त की जाये;

२. किसी भी हड़ताल करनेवालेको हड़तालमें भाग लेनेके कारण सजा न दी जाये; और

३. हड़तालके खिलाफ अदालतोंमें धरने आदिके जो मामले पेश हैं वे वापस ले लिये जायें।

मालूम होता है, अबतक मालिकोंने डटकर स्वेच्छाचारका प्रदर्शन किया है। शक्तिसम्पन्न बर्मा आइल कम्पनी और मेसर्स शॉ वालेस ऐंड कम्पनी उनके प्रतिनिधि हैं। वे मनमाना घाटा सह सकते हैं। मेरे सामने जो पत्र पड़े हैं, उनसे पता चलता है कि वे किसीको पंच कबूल करनेको तैयार नहीं हैं, उन्हें अपनी अनन्त धनराशि और

नामके बलका भरोसा है। पठानोंकी दस्तन्दाजी और दूसरे कई कारणोंसे इस मामलेमें अनेक उलझनें पैदा हो गई हैं; जनताके लिए इन झमेलोंमें पड़ना जरूरी नहीं है। मालिकोंका कहना है कि मजदूरोंने अनुचित अधीरतासे काम लिया है, और दूसरे उपायोंका सहारा लेकर फलकी प्रतीक्षा करनेके बदले एकदम हड़ताल शुरू कर दी है। बहुत से-बहुत कहें तो यह एक निरा वकालती बचाव है। अतएव लोकमतको मजदूरोंकी उचित माँगोंका हृदयसे समर्थन करना चाहिए। मजदूर यह कहलवाना नहीं चाहते कि जनता उनकी बातको बिलकुल सही माने। वे तो अपनी माँगकी सचाईकी निष्पक्ष जाँच और हड़तालसे पहलेकी स्थिति स्थापित करवाना चाहते हैं। यदि पूँजी और श्रमको शान्तिके साथ मिलकर काम करना है तो इसमें दो रायें नहीं हो सकतीं कि मालिकोंके अधिकतम शक्तिशाली संघको भी पंच-सिद्धान्तको अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

कोरा आदर्शवाद किसे कहें?

मेरठ कालेज बोर्डने पिछले दिनों कालेजके विद्यार्थियों और आचार्यों द्वारा राजनीतिक सभाओंमें भाग लेनेके विषयमें एक प्रस्ताव पास किया था। प्रस्तावके विरोधमें आयोजित बैठकमें आचार्य कृपलानीने जो भाषण दिया उसका विवरण मेरे सामने है। उसके अनुसार सविनय अवज्ञा आन्दोलनके विषयमें उन्होंने इस प्रकार कहा:

> आजकल असहयोग आन्दोलनको कोरा आदर्शवाद, महज शेखचिल्लीपन कह देनेका चलन-सा हो गया है। किन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि बिना आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त किये देशके राजनीतिक रूपमें स्वतन्त्र रह सकनेकी बातसे बढ़कर शेखचिल्लीपन और क्या हो सकता है? विदेशी वस्त्रके बहिष्कार और स्वयं अपना कपड़ा बना लेनेकी सीमित स्वदेशी भावनाके बिना स्वतन्त्र हो सकनेकी बात सोचनेसे बड़ी कोरी कल्पना और क्या हो सकती है? निर्जीव विदेशी संस्थाओं अर्थात् हमारे आजकी सरकारी शालाओं और कालेजोंमें रहने और पढ़ने-पढ़ानेवाले लोगोंमें से सच्चे राष्ट्रीय सेवकोंको पानेकी अपेक्षा रखनेसे ज्यादा बड़ा कोरा स्वप्न और क्या हो सकता है? यदि राष्ट्रीय जीवनका कोई अर्थ है तो एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षाकी योजना होनी ही चाहिए जो पूरी तरह राष्ट्रके मार्ग-दर्शन और अधिकारमें चलती हो, जिसका हमारे अतीतसे तालमेल हो, वर्तमानके प्रति उत्तरदायी हो और देशके भविष्यके प्रति पूरी तरह सजग हो। मैं यह भी पूछता हूँ कि दिल्ली और शिमलामें चलनेवाली संसद और उसकी प्रान्तीय शाखाओंकी गति-विधियोंमें भाग लेकर स्वराज्य-प्राप्तिकी आशासे बढ़कर अति आशावाद और क्या हो सकता है। क्या उनका निर्माण भारतको अपनी पूर्णता तक पहुँचनेकी दृष्टिसे किया गया था? वे इस उद्देश्यको तो तभी प्राप्त कर सकती हैं जब वे अपने अस्तित्वको समाप्त करके अपना स्थान ऐसी संस्थाओंको दे दें जो इस देशकी मिट्टीकी उपज हों और जो विदेशी

मालिकोंके संदिग्ध वरदान न होकर हमारी अपनी शक्तिके परिणामस्वरूप अस्तित्वमें आई हों। अदालतोंकी ही बात लीजिए। आजकी उनकी व्यवस्थाके रहते हुए उनसे न्याय पानेकी अपेक्षा करना ख्याली पुलाव पकाना ही है। और अन्तमें इस बातमें विश्वास करना कि खिलौने-जैसे कुछ बमों और पिस्तौलोंके धमाके करके एक ऐसी सुसंगठित और सैन्य सज्जित निरंकुशताको हटाया जा सकता है जो राज्यशासनके नाम पर यह सब करती है, पागलपनकी हद है। यह पागलपन केवल उन अपरिपक्व और अत्यधिक भावुक मस्तिष्कवालोंको ही उचित लग सकता है जो इस गुलामीसे ठीक ही ऊब उठे हैं किन्तु जो इस जबरदस्त राष्ट्रीय समस्याको हल करनेमें जिस सही-सही हिसाबको लगानेकी जरूरत है उसे नहीं समझ पाये हैं।

मुझे आशा है कि श्रोताओंने आचार्यके इन शब्दोंका मर्म समझ लिया होगा। विद्यार्थी जबतक मूक, प्रभावशाली, दृढ़ संकल्प और आत्मत्यागी कार्यकर्त्ता नहीं बन जाते तबतक वे स्वतन्त्रताके संघर्षमें अपने-आपको उपयोगी सिद्ध नहीं कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-९-१९२९

३८७. कुछ मननीय आँकड़े

विदेशी वस्त्र बहिष्कार समितिने नीचे लिखे मननीय आँकड़े और हकीकतें प्रकाशित की हैं:

विदेशोंसे आनेवाला सूत और कपड़ा	रु० ६६ करोड़
फी आदमी खर्च होनेवाला कुल कपड़ा	१३ गज
गाँवोंकी आबादी	२९ करोड़
खेती पर आश्रित रहनेवाले	२३ करोड़
सालके कुछ महीनों तक काम करनेवाले	११ करोड़
भारतका कृषि-ऋण	रु० ७०० करोड़
फी आदमी औसत दैनिक आय	१ आना ७ पाई
कताईकी औसत दैनिक आय	१ आना
मिल, फैक्टरी, वर्कशाप और उद्योगोंमें काम करनेवाले कुल कर्मचारी	१५ लाख
कपड़ेकी मिलोंकी पूँजी	रु० ५१ करोड़
कपड़ोंकी मिलोंके मजदूर	३४/५ लाख
खादी-काममें लगी हुई अखिल भारतीय चरखा-संघकी पूँजी	२१ लाख
अ० भा० च० सं०के मजदूर	१ लाख
मिलोंके जरिए मिलनेवाले रोजगारमें फी आदमी खर्च	रु० १,३२८

हाथ-कताईके जरिये मिलनेवाले रोजगारमें फी आदमी खर्च	**रु०**	**२१**
मिलके कपड़ेकी कीमतके मुकाबले मजदूरीका औसत		**२५ प्रतिशत**
खादीकी कीमतके मुकाबले मजदूरीका औसत		**७३ प्रतिशत**

मुझे पूरा विश्वास है कि विदेशी वस्त्र बहिष्कार समितिके गणकने आयातके जो आँकड़े दिये हैं वे वास्तविक आँकड़ोंसे[1] बहुत कम हैं। मैं जानता हूँ कि उक्त कार्यालय आँकड़े बढ़ा-चढ़ाकर कभी नहीं देता; इसलिए हम उसके द्वारा ६६ करोड़को ही [विदेशी कपड़ेके आयातकी] सही रकम मानकर चलें। इससे यह सिद्ध होता है कि हम हरसाल फी आदमी २)का कर देते हैं और सो भी अपने आलस्यकी खातिर। अगर ये ६६ करोड़ रुपये देशमें रखे जा सकें और चार महीने तक बेकार रहनेवाले ११ करोड़ लोगोंमें बाँटे जा सकें तो उनकी सालाना आयमें ६)की वृद्धि हो जाये, जो कोई छोटी रकम नहीं है। देशी मिलों द्वारा देशकी जो सेवा हो रही है, वह खादी द्वारा की जानेवाली सेवाके मुकाबले बहुत ही नगण्य है। लाखों स्त्री-पुरुषोंकी भयंकर बेकारीकी समस्याको हल करना देशी मिलोंका काम नहीं। जो थोड़े-से मजदूर मिलोंमें काम करते भी हैं उन्हें तैयार कपड़ेकी कीमतका २५ फीसदी हिस्सा ही मिलता है। उधर जो लोग खादीका काम करते हैं, उन्हें घर बैठे तैयार खादीकी कीमतका ७३ फीसदी हिस्सा मिल जाता है और वे सहज ही कारखानों तथा मिलोंके भ्रष्ट वातावरणसे बच जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-९-१९२९

३८८. बुद्धि बनाम श्रद्धा

'मूर्तिपूजा' शीर्षक लेखमें[2] मैंने लिखा था कि जहाँ बुद्धि निरुपाय हो जाती है, वहाँ श्रद्धाका आरम्भ होता है। अर्थात् श्रद्धा बुद्धिसे परे है। इससे कई पाठकों को यह शक हुआ है कि यदि श्रद्धा बुद्धिसे परे है तो वह अन्धी ही होनी चाहिए। मेरा मत इससे उलटा है। जो श्रद्धा अन्धी है वह श्रद्धा ही नहीं है। अगर कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक यह कहे कि आकाशमें पुष्प होते हैं, तो उसकी बात उचित नहीं मानी जा सकती। करोड़ों मनुष्योंका प्रत्यक्ष अनुभव इससे उलटा है। आकाश-कुसुमकी बात मानना श्रद्धा नहीं, घोर अज्ञान है। क्योंकि आकाशमें पुष्प हैं या नहीं, यह बात बुद्धिगम्य है और बुद्धि द्वारा इसका 'नास्तित्व' सिद्ध हो सकता है। इसके विपरीत जब हम यह कहते हैं कि ईश्वर है, तब हमारे कथनके 'नास्तित्व'को कोई सिद्ध नहीं

१. देखिए पृष्ठ ४६५।

२. देखिए पृष्ठ ३८२-४।

कर सकता। बुद्धिवादसे ईश्वरके अस्तित्वको असिद्ध करनेका कोई कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, हरएक मनुष्यके दिलमें इस विषयमें शंका तो फिर भी बनी ही रहेगी। उधर, करोड़ोंका अनुभव ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करता है। किसी भी मामलेमें श्रद्धा-की पुष्टिके लिए अनुभूत ज्ञानका होना आवश्यक है। क्योंकि आखिर श्रद्धा तो अनुभव पर अवलम्बित है, और जिसे श्रद्धा है, उसे कभी-न-कभी अनुभव होगा ही। परन्तु श्रद्धावान कभी अनुभवकी आकांक्षा नहीं करता, क्योंकि श्रद्धामें शंकाको स्थान ही नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि श्रद्धामय मनुष्य जड़-रूप या जड़ बन जाता है। जिसमें शुद्ध श्रद्धा है, उसकी बुद्धि तेजस्वी रहती है। वह स्वयं अपनी बुद्धिसे जान लेता है कि जो वस्तु बुद्धिसे भी अधिक है, उससे भी परे है, वह श्रद्धा है। जहाँ बुद्धि नहीं पहुँचती, वहाँ श्रद्धा पहुँच जाती है। बुद्धिकी उत्पत्तिका स्थान मस्तिष्क है, श्रद्धाका हृदय। और यह तो जगत्का अविच्छिन्न अनुभव है कि बुद्धिबलसे हृदयबल सहस्रशः अधिक है। श्रद्धासे जहाज चलते हैं, श्रद्धासे मनुष्य पुरुषार्थ करता है, श्रद्धासे वह अचल पहाड़ोंको विचलित कर सकता है। श्रद्धावानको कोई परास्त नहीं कर सकता। बुद्धिमानको हमेशा पराजयका डर रहता है। सम्भव है बालक प्रह्लादमें बुद्धिकी न्यूनता रही हो मगर उसकी श्रद्धा मेरुके समान अचल थी। श्रद्धामें विवादको स्थान ही नहीं है। इसलिए एककी श्रद्धा दूसरेके काम नहीं आ सकती। एक मनुष्य श्रद्धासे दरिया पार हो जायेगा, मगर यदि दूसरा अन्धानुकरण करेगा तो डूब ही जायेगा। इसी कारण भगवान् कृष्णने 'गीता'के १७वें अध्यायमें कहा है—यो यच्छ्रद्धः स एव सः—जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बनता है।

तुलसीदासजी की श्रद्धा अलौकिक थी। उनकी श्रद्धाने हिन्दू संसारको रामायणके समान ग्रन्थरत्न भेंट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु उसकी भक्तिके प्रभावके मुकाबले उसकी विद्वत्ताका कोई महत्त्व नहीं रहता। श्रद्धा और बुद्धिके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। श्रद्धासे अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, इसलिए अन्तःशुद्धि तो होती ही है। बुद्धिसे बाह्य ज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है, परन्तु उसका अन्तःशुद्धिके साथ कार्य-कारण जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अत्यन्त बुद्धिशाली लोग अत्यन्त चारित्र्यभ्रष्ट भी पाये जाते हैं। मगर श्रद्धाके साथ चारित्र्यशून्यताका होना असम्भव है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि एक बालक श्रद्धाकी पराकाष्ठा तक पहुँच सकता है और फिर भी उसकी बुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे? इसका उत्तर 'गीता'में है, 'रामचरितमानस'में है। भक्तिसे, सत्संगसे श्रद्धा प्राप्त होती है। जिन लोगोंको सत्संगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, उन्होंने 'सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्?' वचनामृतका अनुभव अवश्य किया होगा।

हिन्दी नवजीवन, १९-९-१९२९

३८९. प्रमाणपत्र : मुंशी अजमेरीको

आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

भाई अजमेरीजीने मुझको अपनी संगीत प्रसादीका आग्रामें बहोत अनुभव कराया है। उनकी मधुर वाणीसे और हिंदी संस्कृत भाषाके ज्ञानसे मुझको बड़ा आनंद हुआ।

मोहनदास गांधी

ज्योत्स्ना, मुंशी अजमेरी अंक १९६९

३९०. पत्र : बंगाल कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीको

मुकाम आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

मन्त्री
बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
११६, बो बाजार स्ट्रीट
कलकत्ता

प्रिय मित्र,

जैसा आप जानते हैं, बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके बारेमें मुझे अभी कार्य-समितिको अपनी रिपोर्ट देनी है। कार्यालय एक लेखा-परीक्षक चुनने और उसकी रिपोर्ट भिजवानेके लिए मुझपर दबाव डाल रहा है। मैंने श्री घनश्यामदास बिड़लाको लेखा-परीक्षक चुनकर भेजनेके लिए कहा है। ऐसी स्थितिमें आप लेखा-परीक्षकको वे सभी आवश्यक सुविधाएँ जिनकी उन्हें जरूरत हो जुटा दीजिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५५६५) की माइक्रोफिल्मसे।

३९१. पत्र : बी० नरसिंहम्‌को

मुकाम आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे आपकी स्याहीके बारेमें प्रमाण-पत्र देना प्रिय लगेगा। मैंने यथासम्भव हमेशा उसका उपयोग किया है। मेरा निजी अनुभव तो यह है कि यह स्याही उपयोगी तो है; परन्तु जो लोग मेरी अपेक्षा फाउन्टेन पैनका अधिक उपयोग करते हैं वे कहते हैं कि यह स्याही फाउन्टेन पैनके लिए विदेशोंसे आनेवाली स्याही-जैसी अच्छी नहीं है। मैं समझता हूँ कि आपकी स्याहीके, उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ स्याही जितनी उपयोगी न होनेसे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि साधारणतया स्याहीके लिए जितने गुण चाहिए, वे सब इसमें हैं। लेकिन जब प्रमाणपत्र देनेकी बात आती है तो मुझे बड़ी हिचकिचाहट होती है। मैं किसी चीजकी तारीफ करके जनताको धोखेमें नहीं डालना चाहता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि अभी आप उसकी उपादेयताके बल पर ही चलें। मुझे कुछ दिन तक आश्रममें आपकी स्याहीका अधिक उपयोग करनेका मौका दें। जब मुझे स्याहीका उपयोग करनेवालोंसे उसकी सर्वप्रियताका प्रमाण मिल जायेगा, तो मैं उस समय ज्यादा आसानीसे प्रमाणपत्र दे सकूँगा। इसलिए आप बाजारमें जो स्याही भेजते हैं इसमेंसे बीच-बीचमें मेरे पास भी भेजते रहें। मैं भी आपको इस बारेमें रिपोर्ट भिजवाता रहूँगा और जब मैं प्रमाणपत्र देनेकी स्थितिमें हो जाऊँगा तो वह आपको भेज दूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० नरसिंहम्
मन्त्री, गुन्टूर मण्डल जातीय विद्या परिषद्
तेनाली

अंग्रेजी (एस० एन० १५५४९)की माइक्रोफिलमसे।

३९२. पत्र : लाला बनारसीदासको

मुकाम आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यह मानना मेरे लिए कठिन है कि भारत सेवक समाज (सर्वेंटस् ऑफ पीपल सोसाइटी) के कार्यकर्त्ता आपकी बात नहीं सुनेंगे। मैं आपका पत्र उन्हें भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत लाला बनारसीदास, बी० ए०, एल एल० बी०,
प्रबन्धक, राधाकृष्ण हाईस्कूल
जगरांव

अंग्रेजी (एस० एन० १५५६३) की माइक्रोफिल्मसे।

३९३. पत्र : भानुप्रसादको

मुकाम आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। निःसन्देह मेरे लिए कुछ सलाह देनेके पूर्व आपसे मिल लेना सुविधाजनक होगा। इसलिए मैं आपका यह सुझाव स्वीकार करता हूँ कि आप मेरे फैजाबादमें रहते मिल लें अथवा तारीखोंका अनुमान लगाकर बनारस या लखनऊमें मिलनेकी कोशिश करें। आशा है आप पहलेसे अच्छे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत भानुप्रसाद
रकाबगंज, फैजाबाद (अवध)

अंग्रेजी (एस० एन० १५५६४) की माइक्रोफिल्मसे।

३९४. पत्र : राधा गांधीको

आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

चि० राधा,

आजकल मुझे अपना काम ज्यादातर पत्र बोलकर लिखवानेसे चलाना पड़ता है, क्योंकि यदि आराम भी लेना हो और काम भी करना हो तो खाते हुए और चरखा चलाते हुए पत्र लिखवा डालने चाहिए। तुम्हें बुखार क्यों आ गया? मनु चली गई, कोई बात नहीं। सन्तोकके आ जाने पर उससे कहो कि वह मुझे तफसीलसे लिखे।

उमियाके बारेमें जल्दीसे-जल्दी निर्णय कर लेना चाहता हूँ। अगर वह अपनी गुजराती थोड़ी और अच्छी कर ले, तो बहुत अच्छा हो। तू इस विषयमें उसे लिखती रहना। रुक्मिणीकी तबीयत कैसी है? तुम दोनों बहनोंको जब-जब सेवा करनेका कोई प्रसंग मिल जाये, तब-तब उसे बहुत अच्छी तरहसे और खूब नम्रतापूर्वक किया करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८६७६) से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

३९५. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। विश्वस्त होकर मैंने 'तुम' की जगह 'तू' का प्रयोग किया है। तूने मुझे विस्तृत उत्तर लिखकर अच्छा ही किया। काममें लगा हुआ पिता एक ही लकीर लिखे, तो भी बच्चे सन्तोष कर लेते हैं; लेकिन वे तो अपना हृदय पूरा उँडेलेंगे ही।

यह बात बिलकुल सच है कि मेरे जालमें जो भी आ जाये उसे फँसा लेनेकी ही मेरी इच्छा रहती है। किसीके जालमें फँसकर हमारा सत्यानाश हो सकता है। लेकिन मेरे जालमें फँसकर किसी भी व्यक्तिका सत्यानाश हुआ हो,

ऐसा मैं नहीं जानता। इसलिए मैं अपना धन्धा जारी रखे हूँ। बम्बई जानेके किरायेकी तेरी माँग ठीक है; मुझे वह ठीक लगी है। मैंने छगनभाई जोशीको[1] लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ५ : कुमारी प्रेमाबहेन कंटकने

३९६. पत्र : छगनलाल जोशीको

आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। गंगाबहनको लिखे पत्र पढ़कर उसे दे देना, ताकि तुम मेरी बात समझ सको। मनजीने गंगाबहनको हैरान ही कर दिया है। उसे गंगा-बहनको सान्त्वना देनी चाहिए। . . .[2]ने चोरी की है यह तो मैं मानता ही हूँ। पहले भी उसने कई बार चोरी की थी, यह तो तुम्हें मालूम है न?

मैंने अपने पिछले पत्रमें (अ)के बारेमें जो शंका उठाई थी वह इस समय सही साबित हुई है। यदि . . .[3]में अपनी स्त्रीके दोषोंको समझनेकी क्षमता आ जाये तो वह उसकी पत्नी न रहकर, असंख्य अन्य स्त्रियोंमें से एक हो जाये। . . .का किस्सा सिद्ध करता है कि पति भी एक अद्भुत प्राणी होता है। इतना तो मैं लिख चुका। अब तुम्हें जैसा ठीक लगे, वैसा करना।

मैं चाहता हूँ कि अब तुम मनमें ऐसा विश्वास रखो कि तुम्हारा मन मलिन नहीं है। ऐसे विश्वासके लिए एक ही शर्तकी जरूरत है कि तुम मलिन विचारोंको एक पलके लिए मनमें न रहने दो। बल्कि जब भी मनमें मलिन विचार आये उससे संघर्ष करो। मन तो भटकता ही रहेगा। उसपर अंकुश लगायें और विजय प्राप्त करें, इसीमें पुरुषार्थ है और ऐसा करना हमारा कर्त्तव्य है। जो यह मानेगा कि मेरा मन अपवित्र है वह कई बार ऐसे विचारोंको मनमें पोषित होने देता है और दुर्बल हो जाता है। इसलिए जहाँ मलिनतासे निरन्तर द्वन्द्व कर रहे हों, वहाँ कभी उसके अस्तित्वको स्वीकार न करें। इसीमें सत्यकी सूक्ष्मतम आराधना है।

भाई मराठेने अपने प्रयोगकी असफलता कबूल कर ली हो तो बहुत अच्छी बात है। किन्तु उस हालतमें अब जरूरी है कि वह अपना प्रयोग सबके सामने करे। और उसे जो-कुछ भी आता हो वह बढ़ईगिरी सीखनेवाले विद्यार्थियोंको सिखाये अर्थात् शिक्षक बन जाये। यह बात उसे अच्छी तरह समझा सको तो समझाना या नाथजीसे कहना।

१. उस समय छगनलाल जोशी सत्याग्रह आश्रमके मन्त्री थे।
२ व ३. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

सिन्धका पैसा अभी नहीं भेजना। क्योंकि वहाँका काम गड़बड़ है। और मलकानीका पूरा उपयोग नहीं हो सकता। उसे तो सरकारी समितिमें जबरदस्ती घसीट लिया गया है। इसलिए मैंने उसे लिखा है कि अभी तक भेजा हुआ पैसा भी इस समितिकी मारफत न खर्च किया जाये।

असम-बाढ़-कोषका पैसा भी अभी तो अपने पास रखो।

बुखारके इस मौसममें सभी उबला हुआ पानी पियें। टट्टीके लिए जुलाब या एनिमा लें। और खाना कम कर दें तो बहुत अच्छा हो। जरा भी डर लगे तो १५ ग्रेन सोडाके साथ ३ ग्रेन कुनैन नींबूके रसमें ले लें।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं पढ़ा।

गुजराती (जी० एन० ५४४०)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

३९७. पत्र : माधवजी ठक्करको

आगरा
१९ सितम्बर, १९२९

चि० माधवजी,

तुम्हारा पत्र कुछ दिनों तक डाल कर रखना पड़ा। फिलहाल तुम जो खुराक ले रहे हो, उसे लेते रहना और उसका परिणाम देखना मुझे आवश्यक मालूम होता है। ताकत तो आ ही जायेगी। उतनी ही खुराक लेता जितनी पच जाये। वजन बढ़ानेकी जल्दी नहीं करनी है। व्यापारको छोड़कर सेवा-भावसे लोगोंकी सेवा करनेमें लग जाना एक आदर्श वस्तु तो है ही, किन्तु यह काम उतावली करनेसे नहीं होगा। जब यह तय हो जाये कि व्यापार किया ही नहीं जा सकता, तभी उसे छोड़नेका निर्णय लेना। यह बहुत जरूरी है कि उतावलीमें कुछ करनेके बाद पश्चात्तापका अवसर न आये। मैंने बहुत-से सहयोगियोंको यही बताया है कि वे पहले तो अपने व्यापारका अपनेको न्यासी समझें और समझें कि व्यापार किसी दूसरेका है। इसी तरह उसे चलायें और अपने जीवनको सादा बना लें। कमसे-कम खर्चमें अपना निर्वाह करें। जब इतनी शक्ति आ जाये, तो जैसे न्यासी न्यासको छोड़ते हुए दुखी नहीं होता उसी प्रकार व्यापारको छोड़ते हुए भी लेशमात्र दुःख नहीं होगा और ऐसा करना सहज भी हो जाता है। तुम अपने विचारोंमें अपनी पत्नीको भी साथ रखते ही होगे?

अपने दौरेका कार्यक्रम साथमें दे रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६७९२) की फोटो-नकलसे।

३९८. पत्र : छगनलाल जोशीको

मैनपुरी
२० सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

आज तुम्हारे पत्र यहीं मैनपुरीमें मिलनेकी आशा थी, किन्तु नहीं मिले। इसलिए अब तो परसों कानपुरमें ही पत्र मिलनेकी आशा कर रहा हूँ। आज मन 'यंग इंडिया' में उलझा हुआ है, और कुछ लोग मिलनेके लिए इन्तजार कर रहे हैं। इसलिए कुछ विशेष नहीं लिखवा रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

बालसे कहना, उसे पत्र लिखवानेका समय नहीं मिला। फिर लिखूंगा।

गुजराती (जी० एन० ५४४१)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीनेसे** भी।

३९९. पत्र : छगनलाल जोशीको

फर्रुखाबाद
२१ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

हम आज फर्रुखाबादमें हैं। डाक तो यहाँ भी नहीं आई। मानता हूँ कल कानपुरमें ढेर-सारी मिलेगी।

गोपालराव अब तक आ गया होगा। उसपर आपरेशनका क्या असर हुआ, यह मालूम होना चाहिए।

नारणदासने अब काम सँभाल लिया होगा। तुमने रतिलालके खर्चके बारेमें पूछा था। वह जो चाहे सो खर्च करे, ऐसा तो मैंने उससे नहीं कहा था। किन्तु यह जरूर कहा था कि उसे पैसे-पैसेके लिए आज्ञा माँगनेकी जरूरत नहीं है। अर्थात् जैसे बैंकके हिसाबमें होता है, वैसे वह डेढ़ सौसे ऊपर ले तो उसका ओवर ड्राफ्ट माना जायेगा और जब ओवर ड्राफ्ट हो तो हमें उसे बता देना चाहिए। यह सारा मामला थोड़ा नाजुक है। उसे एक बही दे रखी हो तो ठीक होगा। उसे फौरन मालूम हो जायेगा कि कितना पैसा लिया है। ज्यादा पैसे लेना चाहे तो उसे जानना जरूरी भी होगा। प्रेमपूर्वक जितना बचा सकें उतना बचायें। क्या वह आफिसमें कुछ मदद करता है।

वामन पतकी हिन्दी कक्षा ठीक चला रहा है। प्रेमराजके गुरुसे आज मिला हूँ। वे मुझे फर्रुखाबाद ले जानेके लिए आये थे। कांग्रेस कमेटीका अध्यक्ष होनेसे उनके पास दो ही बालक नहीं, बल्कि बहुत-से हैं। मैंने कहा है कि यदि प्रेमराज टिक जाये और बालकोंको सँभालना स्वीकार करे तो इनको अपने पास रखनेमें कोई अड़चन नहीं होगी। बहुत करके इन बालकोंसे आज मिल पाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४४२)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७: श्री छगनलाल जोशीनेसे** भी।

४००. गाँव या घूरे?[1]

श्री कर्टिस, जिन्होंने सन् १९१८ में भारतवर्षकी यात्रा की थी और जिनका थोड़ा-बहुत हाथ मॉन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारोंमें भी था, ने हमारे गाँवोंके बारेमें लिखते हुए कहा था, "दूसरे देशोंके गाँवोंसे तुलना करें तो कह सकते हैं कि भारतके गाँव मानो घूरों पर बसी हुई बस्तियाँ हैं।" यह टीका जरा सख्त है; सम्भवतः हमें यह बुरी लग सकती है, मगर यह कोई नहीं कह सकता कि इसमें सचाई नहीं है। हम चाहे जिस गाँवमें चले जायें सबसे पहले हमें उसके घूरेके दर्शन होंगे। गाँवके घूरे अक्सर ऊँचे टीले पर होते हैं। गाँवके भीतर घुसने पर हमें बाहर और भीतरकी हालतमें कोई खास फर्क नजर नहीं आयेगा। वहाँ भी रास्तेमें गन्दगी होगी। बालक तो जब चाहा तब रास्तों और गलियोंमें पाखाना-पेशाब करते मिलेंगे ही; बड़े-बूढ़े भी जहाँ-तहाँ पेशाब करते मिलेंगे। अनजान यात्री इस दृश्यको देखकर घूरों और गाँवकी बस्तीके बीच कोई भेद नहीं कर पायेगा। वस्तुतः कोई खास भेद है भी नहीं।

लोगों की यह आदत चाहे जितनी पुरानी हो, बुरी है और भुलाने योग्य है। 'मनुस्मृति' आदि हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें, 'कुरान' शरीफमें, 'बाइबल'में, जरथुस्तके फरमानोंमें, रास्तों, आँगनों, घरों और नदी-नालों तथा कुओंको खराब न करनेके सम्बन्धमें बड़ी सूक्ष्म सूचनाएँ दी गई हैं। मगर आजकल तो हम उनका अनादर ही करते हैं। यहाँ तक कि हमारे तीर्थस्थानोंमें भी काफी गन्दगी होती है। अगर यह कहा जाये कि तीर्थस्थान अपेक्षाकृत अधिक गन्दे होते हैं तो शायद अतिशयोक्ति न होगी।

मैंने अपनी आँखों हरद्वारमें गंगा-किनारे मलमूत्र त्याग करते हुए स्त्री-पुरुषोंको देखा है। जो स्थान आदमियोंके बैठनेके लिए है, यात्री वहीं मल-त्याग करते हैं, गंगाकी धारामें जहाँ हाथ-मुँह धोते हैं वहींसे पीनेका पानी भरते हैं। तीर्थस्थानोंके तालाबों की भी, यात्रियोंके हाथों, इसी तरह दुर्गति होते मैंने देखी है। ऐसे कामोंमें दया-धर्मका लोप होता और समाज-धर्मके निरादरका पातक लगता है।

१. यह लेख **शिक्षण अने साहित्य** नामक **नवजीवनकी** मासिक पूर्तिमें प्रकाशित हुआ था।

इस तरहकी लापरवाहीके कारण तीर्थस्थानोंकी हवा दूषित हो जाती है और पानी कीटाणुयुक्त हो जाता है। ऐसी हालतमें अगर तत्काल ही हैजा, टाइफाइड (आन्त्र-ज्वर) वगैरा छूतसे फैलनेवाले रोग उत्पन्न हो जायें तो आश्चर्य ही क्या? हैजेकी बुनियाद ही गन्दे पानीमें है। टाइफाइडके बारेमें भी बहुत हद तक यही कहा जा सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि करीब ७५ फीसदी रोग हमारी गन्दगीके कारण फैलते हैं।

इसलिए ग्राम-सेवकोंका पहला धर्म देहातवालोंको सफाईसे रहना सिखाना है। इस तरहकी शिक्षाके लिए व्याख्यानों या पत्रिकाओंसे बहुत काम नहीं चलता। गाँव-वाले स्वयंसेवककी बातें सुनना पसन्द नहीं करते, अगर सुनते भी हैं तो तदनुसार काम करनेका उत्साह नहीं रखते। पत्रिकाएँ बाँटने पर उन्हें कभी पढ़ते नहीं, अनेकोंको तो पढ़ना आता ही नहीं है और सच्ची जिज्ञासाके अभावमें जो पढ़ना जानता है, वह दूसरोंको पढ़ाता या पढ़कर नहीं सुनाता।

अतएव स्वयंसेवकका तो यह कर्त्तव्य हुआ कि वह गाँववालोंके सामने प्रत्यक्ष उदाहरण रखे। उन्हें पदार्थपाठ दे। जो काम गाँववालोंसे कराने हैं, उन्हें वह स्वयं करके बताये, तभी गाँववाले उस ओर रुजू होंगे। कोई यह शंका न करे कि उस हालतमें भी वे काम नहीं करेंगे—जरूर करेंगे। फिर भी स्वयंसेवकके लिए धैर्यकी जरूरत तो होगी ही। यह मानना निराधार होगा कि हमारी दो दिनकी सेवासे लोग अपने-आप सब काम करने लगेंगे।

स्वयंसेवक पहले गाँववालोंको इकट्ठा करके उन्हें उनका धर्म समझायें। बादमें उन लोगोंमें से कोई कामके लिए आगे आये या न आये वह खुद सफाईका काम शुरू कर दे। उसे गांवमेंसे ही फावड़ा, टोकरी, बाल्टी, झाड़ू और कुदाली वगैरा चीजें जुटा लेनी चाहिए। लोगोंको इस बातका विश्वास दिला देने पर कि उनकी चीजें उन्हें वापस मिल जायेंगी, यह सम्भव नहीं कि वे ये वस्तुएँ देनेसे इनकार कर दें।

इसके बाद स्वयंसेवक रास्तों और गलियोंकी जाँच करेगा और जहाँ मलमूत्र दीख पड़ेगा, उस जगहको साफ कर देगा, मैलेको फावड़ेकी मददसे टोकरीमें भर लेगा और उस स्थानको सूखी मिट्टीसे ढँक देगा। जहाँ पेशाब होगा, वहाँकी गीली मिट्टीको फावड़ेसे उसी टोकरीमें भर लेगा और आसपास तथा उस जगह पर दूसरी साफ और सूखी मिट्टी फैला देगा। अगर पास ही कूड़ा-करकट होगा तो उसे झाड़ूसे इकट्ठा करके एक ओर ढेर बना देगा और मैलेको ठिकाने पहुँचानेके बाद उसी टोकरीमें कूड़ा-करकट भी भरकर ले जायेगा।

यह एक महत्त्वका सवाल है कि मैला और कूड़ा-करकट कहाँ डाला जाये। सवाल सफाईसे सम्बन्ध रखता है और अर्थपूर्ण है। बाहर—खुलेमें—पड़ा हुआ मैला बदबू फैलाता है। उसपर मक्खियाँ बैठती हैं और फिर वही हमारे शरीरों पर या खाने-पीनेकी चीजों पर बैठकर रोगके कीटाणुओंको चारों ओर फैला देती हैं। अगर हम मक्खियोंकी इस क्रियाको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे देखें तो अवश्य ही जिन मिठाइयोंको हम आज बड़ी तादादमें खाते-पीते हैं उनको हमेशाके लिए छोड़ दें।

मैला किसानोंके लिए सोना है। उसे खेतमें डालनेसे वह सुन्दर खादका काम देता है और खेतकी उपजाऊ-शक्तिको खूब बढ़ाता है। चीनी लोग इस काममें सबसे अधिक चतुर हैं। कहा जाता है कि वे मलमूत्रका सोनेके समान संग्रह करते और उससे करोड़ों रुपयोंकी बचत कर लेते हैं; साथ ही अनेक तरहके रोगोंसे भी बच जाते हैं।

अतएव स्वयंसेवक किसानोंको यह बात समझाये और जो किसान इजाजत दें उनके खेतोंमें मलमूत्र वगैरा गाड़ दें। अगर कोई किसान अज्ञानवश स्वयंसेवककी उपेक्षा करे तो स्वयंसेवक मैलेको घूरेके पास ही कहीं गाड़ दे। इतना कर चुकने पर वह उस कूड़े-करकटके ढेरके पास जाये।

कूड़ा-करकट दो तरहका होता है। एक खादके योग्य, जैसे कि शाकपातके छिलके, डंठल, अनाज, घास वगैरा। दूसरा, कचरा, लकड़ी, पत्थर, पतरे वगैरा। इनमेंसे जो कूड़ा-करकट खादके योग्य है उसे खेतमें या जहाँ उसका खाद इकट्ठा किया जा सके, रखना चाहिए। और दूसरेको गड्ढे वगैरा पूरनेमें लगा देना चाहिए। इस तरह गाँव साफ रहेगा और नंगे पैर चलनेवाले भी बिना किसी खतरेके चल-फिर सकेंगे। कुछ दिनोंकी मेहनतके बाद अवश्य ही लोग इस कामकी कीमत परखने लगेंगे। जब समझेंगे तब वे इसमें मदद करने लगेंगे और फिर तो खुद ही यह भार उठा लेंगे। अगर हरएक किसान अपने और अपने कुटुम्बियोंके मल-मूत्रका खेतके लिए उपयोग करेगा तो किसीको किसीका बोझ नहीं मालूम पड़ेगा और सब अपनी-अपनी फसलमें उत्तरोत्तर उन्नति होते देखेंगे।

रास्तेमें पाखाना फिरनेकी आदत तो होनी ही न चाहिए। खुलेमें सब किसीके देखते हुए पाखाना फिरना या बच्चोंको फिरने देना भी असभ्यताका चिह्न है। और इस असभ्यताका भान तो हमें बना ही रहता है, क्योंकि ऐसे समय जब कोई आ जाता है, हम सिर नीचे झुका लेते हैं। अतएव हरएक गाँवमें किसी एक जगह पर बहुत कम खर्चमें पाखाने बनवाने चाहिए। घूरे इस काममें आ सकते हैं। इस तरह एकत्र खादको किसान आपसमें बाँट सकते हैं। जबतक किसान स्वयं इस ढंगका इन्त-जाम न करने लगें, तबतक स्वयंसेवकको घूरोंकी सफाई भी रखनी पड़ेगी। रोज सबेरे जब गाँववाले घूरेका उपयोग कर चुकें तब स्वयंसेवक किसी नियत समय पर घूरे पर जायें और तमाम मैलेको इकट्ठा करके ऊपर कहे अनुसार उसको ठिकाने पहुँचा दें। अगर खेत न मिले तो जहाँ-जहाँ मैला गाड़ा हो, वहाँ कुछ निशान बना देना चाहिए। इससे रोज-रोज गाड़ते समय सुभीता होगा और जब किसान इसकी उपयोगिता समझने लगेंगे तब वे इस एकत्र खादका इस्तेमाल कर सकेंगे।

मैला बहुत गहरा नहीं गाड़ना चाहिए। पृथ्वीके नौ इंच गहरे भागमें अनेक परोपकारी जन्तु रहते हैं। इस गहराईमें उनका काम तमाम मैलेको शुद्ध करना और उसे खादमें बदल देना होता है। सूर्यकी किरणें भी रामके दूतकी भाँति अद्भुत सेवा करती हैं। जिसे इस बातकी जाँच करनी हो वह स्वयं अनुभव द्वारा कर सकता है। कुछ मैला नौ इंचकी गहराईमें गाड़ दें और एक सप्ताह बाद उस जमीनको खोद

कर नोट करें कि उसमें क्या परिवर्तन हुए हैं। इसी तरह उसी मैलेका थोड़ा हिस्सा तीन या चार फीटकी गहराईमें गाड़कर एक सप्ताह बाद उसकी जाँच करनी चाहिए। इससे आँखों देखा अनुभव मिलेगा। मैलेको छिछला गाड़ना चाहिए। मगर साथ ही उस पर इतनी मिट्टी फैला देनी चाहिए कि कुत्ते वगैरा उसे खोद न सकें और उसमें-से बदबू फैल न सके। कुत्तोंसे बचानेके लिए कहीं-कहीं काँटोंके झंखाड़ रख देना अच्छा है।

मैलेको छिछला गाड़नेकी बातके साथ यह भी समझ लेना जरूरी है कि मैलेके लिए चौरस या आयताकर बड़ा गड्ढा होना चाहिए। क्योंकि गाड़े हुए मैले पर दुबारा मैला तो डालना है नहीं और न उसे तुरन्त खोलना ही है। इसलिए पहले दिन जहाँ मैला गाड़ा हो, उसके पास ही एक चौरस गड्ढा तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढेमेंसे निकाली हुई मिट्टी उसीके एक किनारे पर पड़ी रहनी चाहिए। दूसरे दिन उसीमें मैला डालकर ऊपरसे किनारेवाली मिट्टी उसपर ढँक दी जानी चाहिए और उस जगहको समतल बना देना चाहिए। हरी शाकभाजीके कचरेका खाद भी इसी तरह तैयार कर लेना चाहिए; मगर मैलेके साथ नहीं; उससे अलग कुछ दूरी पर। क्योंकि मैला और हरी पत्तियोंका खाद एक ही साथ नहीं गाड़ा जा सकता। दोनों पर जन्तुओंकी क्रिया एक समान नहीं होती। इससे स्वयंसेवक यह तो समझ गये होंगे कि जिस जगह पर वे मैला गाड़ेंगे, वह सदा साफ और समतल रखी जाये और किसी अमी-अमी जुते खेतके समान दीख पड़े।

अब वह कूड़ा बच रहा, जो खादके काम नहीं आ सकता। यह कूड़ा किसी एक गहरे गड्ढेमें डालना चाहिए, अथवा गाँवके आसपास जो गड्ढे पूरे जाने हों, उनमें भर देना चाहिए। यह कूड़ा भी रोज गड़ता रहे, दबता रहे और ऊपरकी सतह साफ बनी रहे।

इस तरह एक महीने तक काम करने पर बिना ज्यादा मेहनतके ही गाँव घूरों-जैसे नहीं बचेंगे; सुन्दर और साफ बन जायेंगे। पाठक समझ गये होंगे कि इसमें पैसोंका कोई खर्च नहीं होता। इस कामके लिए न तो सरकारकी मदद चाहिए, न बहुत ज्यादा विज्ञानकी ताकत चाहिए; हाँ, स्नेह-सिक्त स्वयंसेवक जरूर चाहिए।

यहाँ यह कहना आवश्यक नहीं कि जो बात मलमूत्रके लिए ठीक है वही गोबर और ढोरोंके पेशाबके लिए भी ठीक है। लेकिन इसपर तो अगले प्रकरणमें विचार करेंगे।[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-९-१९२९

१. देखिए खण्ड ४२, "उपले या खाद", १७-११-१९२९।

४०१. साँड़ बनाम बैल

एक नवयुवक पूछते हैं कि यद्यपि साँडकी कोई कीमत नहीं होती, और बधिया बैलको किसान बहुत कीमत देकर खरीदते हैं, फिर भी साँडको खस्सी करनेमें पाप क्यों माना जाता है?

'नवजीवन' में इस प्रश्न पर एकाधिक बार विचार हो चुका है। लेकिन सम्भव है, बहुतोंको वह याद न हो। प्रश्न सहज ही उठ खड़ा हो सकता है। यह तो नहीं कह सकते कि बधिया करनेमें दोष नहीं है। शास्त्रने पूर्ण धर्म और व्यवहार-धर्म, दोनोंकी शिक्षा दी है। व्यवहार-धर्ममें बधिया करनेकी रियायत ही नहीं, बल्कि आज्ञा भी दी गई है। यह बहुत पुरानी प्रथा है — उतनी ही पुरानी जितनी कि गाय का दूध पीनेकी। पाठक यह तो जानते होंगे कि घोड़े वगैरा सवारीके जानवर भी, जिनसे मनुष्य काम लेता है, आवश्यकता पड़ने पर खस्सी किये जाते हैं।

यह तो वस्तुस्थिति हुई। आरम्भ-मात्र दोषमय है। इस दृष्टिसे बधिया करनेकी क्रिया भी दोषपूर्ण है। बछड़ेको बधिया करते समय थोड़ा ही क्यों न हो, लेकिन कष्ट होता है, अतएव वह क्रिया दूषित है। अगर बछड़ेमें ज्ञान और शक्ति हो तो वह कभी बधिया न बने; इस कारण भी यह क्रिया दोषरूप है।

लेकिन इन या ऐसे प्रश्नोंका विचार हम स्वतन्त्र धर्म समझकर नहीं करते। प्रासंगिक धर्म रेलगाड़ीकी पटरीके समान सीधा नहीं होता। उसे तो घोर जंगलमें, जहाँ दिशाका भी भान नहीं रहता, घुसकर रास्ता साफ करना पड़ता है। ऐसे समय तो एक कदम ही काफी होता है। दूसरा कदम बढ़ाते समय अनेक बातोंका विचार करना पड़ता है; पहला कदम उत्तरकी ओर रखा हो तो दूसरा शायद पूर्वमें रखना पड़े। इस तरह रास्ता टेढ़ा भले ही दीख पड़े, लेकिन वही सच्चा हो सकता है और इसी कारण उसे सीधा कह सकते हैं। प्रकृति भूमितिका अनुसरण नहीं करती। प्रकृतिकी आकृतियाँ अतिशय सुन्दर होती हैं, फिर भी वे भूमितिके साँचेमें नहीं ढलतीं।

अगर हमारे लिए गायका दूध पीना और बैलोंसे खेती करना इष्ट और आवश्यक हो तो बछड़ेको बधिया करना धर्म है, और न करना अधर्म। इस तरह स्वतन्त्र रूपसे विचार करनेमें जो बात अधर्म है, प्रसंगानुकूल वहीं धर्मका रूप धारण करती है। अगर हम बछड़ेको बधिया न करें, दुग्धालय न चलायें, चर्मालय न खोलें, गायकी हड्डियों, चमड़ों, आँतों आदिका व्यावहारिक ढंगसे उपयोग न करें और फिर भी गायका दूध पीना चाहें तो पश्चिमकी भाँति हम भी गोमांस खाने लगेंगे और गोवंशका नाश हो जायेगा।

आजकल गोवंशका नाश हो रहा है। अनुभवी जानते हैं कि पहले जो गाय भूमिका भार हलका करती थी, यानी जितना खाती थी उससे कहीं अधिक देती थी, वही गाय आज भारतभूमिके लिए भाररूप हो गई है। दूसरे शब्दोंमें, आज वह

जितना खाती है, उससे कम देती है। इस कारण बहुतेरे लोग अज्ञानवश उदासीन होकर गायके बदले भैंसका दूध पीने लगते हैं। कत्ल होनेके लिए बेशुमार गायें आस्ट्रेलिया रवाना की जाती हैं। बहुसंख्यक गायें भारतमें ही कत्ल की जाती हैं और उनका मांस ब्रह्मदेशको भेजा जाता है। दूसरी बेशुमार गायें बेमौत मर जाती हैं। बेमौत मरनेवाली गायोंकी संख्या तो किसीके पास नहीं है। शेष जो जिन्दा रहती हैं वे जिन्दा रहकर भी मरी हुई-सी होती हैं। पूरा दूध नहीं देतीं, इसी कारण पेट-भर चारा भी उन्हें नहीं मिलता।

अगर हम पर धर्म-विषयक शिथिलताने प्रभुत्व न जमा लिया हो, धर्मके सम्बन्धमें हम लापरवाह न बन गये हों, तो हमें अन्य शास्त्रोंकी तरह गोसेवा-शास्त्रका भी अभ्यास करना चाहिए और पुराने वहमों तथा पुराने रिवाजोंको, जो आज बेकाम अथवा हानिकारक हो चुके हैं, छोड़ देना चाहिए।

इसी कारण वर्षों पहले मैं तो इस निश्चय पर पहुँच चुका था कि जो बछड़े उत्तम गाय पैदा करने लायक उम्दा नस्लके न हों उन सबको बचपनमें बधिया करके बैल बनाना चाहिए और दूसरोंको भी इसीकी प्रेरणा देनी चाहिए। प्रत्येक गोसेवक का यही धर्म है। कल्पित अथवा आदर्श लेकिन अशक्य धर्मके नाम पर समयानुकूल आवश्यक धर्मकी उपेक्षा करना पाप है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-९-१९२९

४०२. पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको

२२ सितम्बर, १९२९

चि० मथुरादास,

तुमने कठिन व्रत ले लिया है। किन्तु ले लिया, यह ठीक किया। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे। क्रोध जीतना ऐसा सरल नहीं है और कई बार तो क्रोध व्याप्त हो गया है, इसका ध्यान भी नहीं रहता। किन्तु प्रयत्नसे बहुत-कुछ हो जाता है। हम तो प्रयत्न ही करें।

तुम्हारा शरीर अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७३१)की फोटो-नकलसे।

४०३. पत्र : छगनलाल जोशीको

कानपुर
[२२ सितम्बर, १९२९][1]

चि० छगनलाल,

आज साढ़े ग्यारह बजे कानपुर पहुँच गये। यहाँसे डाक जल्दी जाती है। यदि पत्र आज ही डाकमें छोड़ने हों, छोड़ने तो हैं ही, इसलिए थोड़ेमें ही लिखूंगा। रमणीकलाल मिलने आ पहुँचा है। उसकी तबीयत काफी अच्छी है। इस तरह अलग-अलग समय कुछ लोगोंको आश्रमसे भेजनेमें फायदा है, यह हमने देख लिया है।

आश्रमकी चिन्ता कर्त्तव्यपरायण व्यक्तिको धीरे-धीरे खा जाती है। और जबतक हम अपने-आपको अनासक्त नहीं बना पाते तबतक ऐसा होता ही रहेगा।

तुम्हारी तरफसे आनेवाली डाकमें पत्र फिरसे लापरवाहीसे बँधे हुए होते हैं। डोरी इतनी मजबूती तथा सख्तीसे बँधी होनी चाहिए कि उसमेंसे एक भी पत्र खिसक न सके। यह डोरी तो मानो शोभाके लिए बँधी हुई थी। लिफाफा फटा हुआ था और इसलिए यदि उसमेंसे कोई पत्र निकालना चाहे, निकाल सकता था। इसका ख्याल करना। बाँधनेवाला इस कामको अच्छी तरह सीख ले। गंगाबहनको पत्र लिख रहा हूँ। बाकी कलकी डाकसे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने

४०४. भाषण : कानपुरमें[2]

२२ सितम्बर, १९२९

गांधीजी ने अपने भाषणमें शालाओंमें कताईको सफल बनानेके लिए तीन आवश्यक शर्तोंकी ओर बोर्डका ध्यान खींचा था, वे शर्तें यों थीं : कताईकी समुचित शिक्षा और उसके संगठनके लिए हरएक शालामें एक चरखा-शास्त्री नियुक्त किया जाये। शालामें नियुक्त साधारण शिक्षकोंके वेतनमें थोड़ी वृद्धि करनेसे ही यह काम सीख

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. यह भाषण जिला बोर्ड और नगरपालिकाकी ओरसे दिये गये अभिनन्दनके उत्तरमें था। जिला बोर्डने कहा था कि उसने अपनी शालाओंमें कताईको अनिवार्य कर दिया है और दूधकी समस्याको हल करनेकी दृष्टिसे पैंतीस हजार रुपयोंकी रकम लगाई है। यह विवरण "संयुक्त प्रान्तकी यात्रा–३"के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

लेनेके लिए तैयार किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि शालाओंमें चरखेके बदले तकलीका ही इस्तेमाल किया जाये। और तीसरी यह कि कते हुए सूतको बुननेका प्रबन्ध भी किया जाना चाहिए। दूधकी समस्या पर बोलते हुए उन्होंने कहा: हमें इसके लिए विशेषज्ञोंके मार्गदर्शनकी आवश्यकता है। भारतमें शुद्ध और सस्ते दूधकी दिन-दिन अधिकाधिक कमी होती जा रही है, इसका कारण यह है कि हमने शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार अपने दुग्धालयोंका संचालन न कर अक्षम्य लापरवाहीका परिचय दिया है। भारतमें गायोंके वधका कारण भी यह है कि वह अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे लाभकारी हो गया है। अगर गायोंके कत्लसे आर्थिक लाभ होना बन्द हो जाये तो गोवध अपने-आप रुक जायेगा। अतएव अगर गोरक्षा करनी हो तो हमें दुग्धालयके साथ-साथ मरे हुए ढोरोंके चमड़ेका ठीक-ठीक उपयोग करनेके लिए आदर्श चर्मालय भी स्थापित करने पड़ेंगे। इसके सिवा गायोंकी नस्लमें सुधार करना भी जरूरी है जिससे गायोंको मारनेसे लाभ मिलना बन्द हो जाये।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३-१०-१९२९

४०५. भाषण: खुदरा कपड़ेके व्यापारियोंके बीच, कानपुरमें[1]

२२ सितम्बर, १९२९

आपने मुझे रुपयोंकी थैली और मानपत्र दिये, तदर्थ मैं आपका आभार मानता हूँ। लेकिन इतने ही से मुझे सन्तोष नहीं होता। अगर आप चाहते तो सहज ही कह सकते थे कि हम आपके काममें मदद देनेको तैयार नहीं हैं, क्योंकि वह हमारे धन्धेका विरोधी है। लेकिन मैं मानता हूँ कि अबतक व्यापारी-वर्गने द्रव्य द्वारा खादी-कामकी ठीक-ठीक सहायता की है। आपको भली भाँति समझ लेना चाहिए कि विदेशी वस्त्रके बहिष्कारमें जोर-जबरदस्तीको कोई स्थान ही नहीं है, वह तो हृदय-परिवर्तनसे ही सफल हो सकता है। अगर विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करके लोग खादीकी माँग करें, तो खादीकी उत्पत्ति और बिक्रीके रूपमें आपको अपने व्यापारके लिए एक सुन्दर और विशाल क्षेत्र मिल जायेगा। आप जानते हैं, या आपको जानना चाहिए कि आपका विदेशी वस्त्र-व्यवसाय भारतके करोड़ों गरीब लोगोंका सर्वस्व चूस रहा है। हाथकताईका व्यापक सहायक उद्योग बन्द हो जानेसे आज वे भूखों मर रहे हैं। अगर मैं इन नरकंकालोंके दुःखोंका आपके सामने वर्णन करूँ तो आपकी आँखें डबडबाये बिना न रहें। इन लोगोंके प्रतिनिधिके नाते मैं आज आपसे भिक्षा माँगने आया हूँ। अगर मैं आपको समझा सकता तो विदेशी वस्त्र व्यापारको बन्द करवाकर आपको अपनी व्यावहारिक शक्तिका खादीकी सेवामें विनियोग करनेकी अवश्य ही सलाह देता। मगर

१. इसका मिलान **यंग इंडिया**, ३-१०-१९२९ में प्रकाशित संयुक्त प्रान्तकी यात्रा—३से कर लिया गया है।

मैं जानता हूँ कि आज आप इस कामके लिए तैयार नहीं हैं। अतएव आज तो मैं आपसे यही प्रार्थना करूँगा कि आप भारतके गरीबों पर तरस खाकर नहीं, बल्कि आपने उन्हें जो हानि पहुँचाई है उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप खुले हाथों, निधिके लिए द्रव्य दें।

हिन्दी नवजीवन, १०-१०-१९२९

४०६. पत्र : महादेव देसाईको

२२ सितम्बर, १९२९

चि० महादेव,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। इस बार तो मैं तुम्हें बिलकुल ही नहीं लिख सका। जिसे बिना लिखे चल ही नहीं सकता था, उसीको लिखकर सन्तोष किया और काफी समय बचा लिया। यह पत्र तो लिख ही रहा हूँ। मौन लेकर लिखने बैठा हूँ। इस समय रातके नौ बजे हैं।

तुमने काफी कतरनें भेज दी हैं। एकको छोड़कर और किसीको नहीं पढ़ा। जतीनके[1] बारेमें अभी तो कुछ नहीं लिखा जा सकता। जो हमारा अपना मण्डल कहलाता है, वह भी मुझे नहीं समझ पा रहा है, उसमें मुझे अनोखा कुछ नहीं लगता। मेरे अभिप्रायके ठीक होनेके बारेमें मुझे तो तनिक भी शंका नहीं है। मैं इस आन्दोलनको श्रेयस्कर नहीं मानता। मौन इसलिए रहना पड़ रहा है कि यदि बोलूँ तो उसका दुरुपयोग होगा। फिर भी लगता है कि लोग मेरी स्थिति समझ गये हैं। किसीने मेरी राय नहीं माँगी है। अखबारवाले जरूर माँगते हैं, किन्तु मैं उसे नहीं गिनता।

तुमने वल्लभभाईके विषयमें जो लिखा है वह मुझे ठीक नहीं जान पड़ता। उन्हें फिलहाल अध्यक्ष बनाना बाल निगलने-जैसा है। फिर भी तुम सब लखनऊ आनेवाले ही हो, तब इसपर विशेष विचार करेंगे। मैं तो इस बारेमें कुछ भी नहीं सोच रहा हूँ। समय आने पर ईश्वर मददके लिए आयेगा ही। कोई मुझे परेशान भी नहीं कर रहा है।

मद्रासमें वल्लभभाईने शानदार काम किया। कर्नाटक इत्यादिके विषयमें तो जब तुम बताओगे, तब पता चलेगा। 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में तुम्हारे लेख पढ़े। वे ठीक मालूम पड़े हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ११४५५)की फोटो-नकलसे।

१. यतीन्द्रनाथदास।

४०७. पत्र : छगनलाल जोशीको

रातके ९-३० बजे
२२ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा २० तारीखका पत्र २२ को कानपुरमें मिला। आगरामें २३ को मिलता। यह बात मुझे बहुत विचित्र लगती है।

हम मोरवीकी गायोंकी देख-रेख करें, उपयोग करना हो तो करें और उन्हें अच्छा बनाकर वापस भेजें। ऐसा ही करना चाहिए।

बुनाईशालाको मान्य करानेके मेरे सुझावका क्या अर्थ है सो मालूम है न? प्रमाणपत्र विद्यापीठ दे और परीक्षा भी वही ले। जब हम परीक्षा देने लायक प्रगति कर लें तो दुग्धालयका भी यही किया जाये।

लक्ष्मी, लेडी चिनुभाईको [कताई] सिखाने जाती है, यह तो बहुत ही अच्छा है।

बुधाभाईकी पत्नीसे झगड़ेकी बात तो मैं वर्षोंसे जानता हूँ। इस बार उनकी पत्नीसे मिला भी हूँ। मुझे तो दोष पत्नीका ही प्रतीत होता है। बहनें आपसमें इसके बारेमें बात करती हों तो उन्हें हमें बताना चाहिए। समय न होनेसे तुम्हें ज्यादा नहीं लिख रहा हूँ। किन्तु तुम्हें पूरी जानकारी की जरूरत हो तो बुधाभाईसे मिल लेना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

गोशालाके किवाड़ खुले कैसे रह गये? किसका दोष था? लाहौरसे जो व्यक्ति आये हैं, वे गिरफ्तार किये जायें तो कोई बुराई नहीं है। ऐसा तो होता ही है। कभी लोग शरण लेने भी आ सकते हैं। हम अलिप्त रहें, इतना ही काफी है।

गुजराती (जी० एन० ५४४३) की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

४०८. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

कानपुर
मौनवार, २३ सितम्बर, १९२९

बहनो,

गंगाबहनका तुम्हारी तरफसे लिखा हुआ पत्र मिला। मेरी गैरहाजिरीमें वालजी-भाई वर्ग लेते हैं, यह बहुत अच्छा है। सभी उनकी विद्वत्तासे पूरा लाभ उठाना। उनके पास जो है, वह मैं नहीं दे सकता। इसलिए आजकल जब वे अधिक समय दे सकते हैं, तो उनके ज्ञानका अधिकसे-अधिक लाभ उठाना।

लक्ष्मीबहन अब आ गई होगी। रमाबहन और डाहीबहनका प्रार्थनामें मौजूद न रह सकना समझा जा सकता है। कर्त्तव्य-परायणता ही प्रार्थना है। प्रत्यक्ष सेवाकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए ही हम प्रार्थनामें बैठते हैं। मगर जहाँ प्रत्यक्ष कर्त्तव्य आ पड़े, वहाँ प्रार्थना उसमें आ ही जाती है। समाधिमें बैठे हुए यदि किसीको बिच्छू काटने पर चिल्लाते हुए सुन ले, तो वह समाधि छोड़कर उसकी मददके लिए दौड़नेको बँधी हुई है। दुःखीकी सेवा करनेमें समाधिकी पूर्ति होती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०२)की फोटो-नकलसे।

४०९. पत्र : छगनलाल जोशीको

मौनवार, २३ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल (जोशी),

चि० छगनलालका पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। उससे ज्ञात होगा कि कुछ दुःख तो अब भी है। वह कार्यवाहक मण्डलमें है क्या? यदि हो तो लगता है कि उसे खबर नहीं दी गई। इन बातोंमें कुछ भी न हो, किन्तु उनका परिणाम कटु हो सकता है। जो कुछ तथ्य मालूम करने हों वे उससे स्पष्ट रीतिसे पूछ लो। जैसा चरखा-संघने किया है, बजटका वैसा मसविदा तैयार कर लेना। जिन मदोंके आँकड़े चाहिए उन्हें लिख रखो। जैसे-जैसे सूचना मिलती जायेगी, हमें अपनी स्थितिका अनुमान होता जायेगा।

व्यवस्थाके खर्चके बारेमें छगनलालने जो लिखा है, वह ठीक नहीं है। किन्तु जहाँ बहुत-से सहायक कार्यकर्त्ता रखे गये हों, वहाँ ६¼ प्रतिशत व्यवस्थाका खर्च जोड़कर, खादीका जो भाव बने, उससे इसकी तुलना करें।

किन्तु मुख्य बात तो छगनलालको मन-ही-मन कचोटनेवाला दुःख है। इसका कारण मालूम करना। यदि अनिवार्य हो तो उदासीन रहना। और अगर उसका कुछ उपाय किया जा सके तो करना।

मेरा वजन कमानीवाले काँटेपर कल ९८ [पौंड] था। इसलिए अपने काँटे पर ९४ तो जरूर होगा।

छगनलालके पत्रमें रघुनाथकी पिंजाईके बारेमें पढ़ोगे। इससे मालूम होता है कि हमारा काम कच्चा है। जो पिंजाई करे उसमें आठ घंटे पिंजाई करनेकी शक्ति होनी चाहिए। रघुनाथ थक जाता है। इससे स्पष्ट है कि अभी उसका हाथ बैठा नहीं है। स्नायु गठित नहीं हुए हैं। पिंजाई करनेवाले जितनी शक्ति तो शायद उसमें न आये पर थकावट तो महसूस नहीं होनी चाहिए। सभी कामों पर यह बात लागू होती है। हरएकको प्रत्येक काममें निपुण होना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४४४)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने**से भी।

४१०. पत्र : छगनलाल जोशीको

[२३ सितम्बर, १९२९ के पश्चात][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है।

तुम्हारा वजन तो बहुत कम हो गया है। लगता है कि तुम बहुत चिन्ता करते हो। तुम्हें कुछ महीने बाहर रहकर या अलमोड़ा-जैसे स्थानमें रहकर शरीरको मजबूत बना लेना चाहिए। शरीरको इतना कमजोर नहीं होने देना चाहिए था।

दुःखका कोई कारण हुए बिना किसीको दुःख होता हो तो उसके लिए तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। छगनलाल [गांधी]से तखमीना माँगनेका अधिकार तो तुम्हें था ही।

मुझे लगता है कि मुन्नालाल तो टिकेगा नहीं। माधवलाल कल्पनाकी लहरों पर सवार है।

नारणदासने विचार बदल दिया है, यह सुनकर आश्चर्य हुआ। उसका कारण मालूम करना।

मैं सोचता हूँ कि रमणीकलाल दीवालीके बाद आ सकेगा।

मुझे भी यह लगता है कि हमें लाहौरकी प्रदर्शनीमें किसीको भेजना चाहिए।

गुजराती (जी० एन० ५४७४)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

१. छगनलाल गांधीसे तखमीना मांगनेके उल्लेखसे। देखिए पिछला शीर्षक।

४११. पत्र : दूधाभाईको

कानपुर
२४ सितम्बर, १९२९

भाई दूधाभाई,

इन दिनों लक्ष्मीके विषयमें फिरसे शिकायतें आ रही हैं। किन्तु मैं अभी निराश नहीं हूँ और आशा रखता हूँ कि हम उसे कभी सायला और कभी साबरमतीमें रखकर [निर्दोष] बनानेमें सफल हो जायेंगे। फिलहाल तो उसने फिर परेशान करना शुरू कर दिया है। साबरमतीमें बहुत दिनों तक वह अपना दिमाग ठिकाने नहीं रख पाती। गंगाबहनने उसे प्रेमसे सराबोर कर देनेमें कोई कसर नहीं रखी है। उन्होंने उसपर अपना निजी पैसा भी खर्च किया है। किन्तु वह अभी ऐसे प्रेमको समझने योग्य नहीं हुई है। उसे ले जाओ, सिखाओ और वापस भेज दो। आजकल तो वह मुझे पत्र भी नहीं लिखती।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १५८२३) की माइक्रोफिल्मसे।

४१२. पत्र : छगनलाल जोशीको

कानपुर
२४ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। भाई जगजीवनदासने तुम्हारे या मेरे पत्रका कुछ बुरा नहीं माना, यह तो बहुत अच्छी निशानी है।

पैसेके बारेमें मैंने भाई मूलचन्दको लिखा है; तुम भी वहाँसे लिखना।

मन्दिर सम्बन्धी भूलोंकी अब ज्यादा छानबीन करनेकी जरूरत नहीं है। रामजीको तो उसमें कदापि न घसीटें।

माधवलालका दूसरा पत्र आया है। मैं उसकी चिन्ता नहीं करता। इस तरहके झगड़े तो उठते ही रहेंगे और शान्त भी हो जायेंगे।

लक्ष्मी गंगाबहनके साथ न रह सके तो दूधाभाईको लिखना कि उसे फिर थोड़े समयके लिए ले जायें और जब आनेके लिए तैयार हो तब भेजें। ऐसा करते-करते वह ठीक हो जायेगी। इसके साथ दूधाभाईके लिए पत्र भेज रहा हूँ। उसका उपयोग करना पड़े तो कर लेना।

गलियारासे वैसा ही पत्र आया है जैसा मैंने सोचा था। अब हम जितनी जल्दी हो सके, काम शुरू कर दें तो अच्छा हो।

उस अंग्रेज सज्जनका पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। उसके स्टीमरका पता लिख रखना। वह किस शुक्रवारको बम्बई पहुँचेगा, यह अखबारोंसे देख लेना। 'टाइम्स' से तुरन्त मालूम हो जायेगा।

मैं वहाँ नहीं होऊँगा, यह तो दुःखकी बात है ही; किन्तु तुम उसकी देखभाल करना। जैसा मैंने मीराबहनके लिए किया था, वैसा करना। अर्थात् मच्छरदानी तो रखे ही, पानी भी उबला हुआ पिये, दाल न खाये, जितना हो सके उतना दूध पिये। घीके बदले मक्खन ले। जरूरत हो तो फल भी देना — यदि फल लेनेकी आदत हो तो — पूछ लेना। धूपमें अपनी टोपी पहनकर घूमे। धूपमें कम जाये। इस सम्बन्धमें श्री अलेक्जेंडरका पत्र भी है। वह हमारे यहाँ एक या दो सप्ताह रहकर गये थे। यह पत्र शायद तुमने देखा भी होगा। उसे भेजूँगा तब पढ़ लेना।

भाई मलकानीको अभी कुछ नहीं भेजना है। इसके बारेमें तुम्हें लिख चुका हूँ।[1]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४४५) की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो – ७: श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

४१३. भाषण: विद्यार्थियोंके समक्ष, कानपुरमें[2]

२४ सितम्बर, १९२९

महात्माजी ने उत्तर देते हुए कहा:

आप लोगोंने जिन शब्दोंमें अपना स्नेह जताया है, वे शब्द स्वागत योग्य तभी बनेंगे जब यहाँ उपस्थित सभी विद्यार्थी उदारता अपनायेंगे। मेरी समझमें तो ये शब्द केवल वक्ताओंकी भावनाओंको ही बताते हैं और यदि यह सत्य है तो इन शब्दोंका मूल्य उतना नहीं है। सभी धर्मोने प्रगतिके लिए सर्वप्रथम आत्मसंयमकी शिक्षा दी है।

विद्यार्थियोंको ध्यानमें रखते हुए उन्होंने कहा कि विद्यार्थियोंमें आत्मविश्वास तो है लेकिन उनमें पवित्रताका अभाव है। हजारों विद्यार्थियोंके बीच घूमनेके उपरान्त मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि जबतक विद्यार्थियोंके हृदयमें सच्ची पवित्रता और सादगी नहीं आती तबतक युवा परिषद् (यूथ लीग) जैसी संस्थाओंकी स्थापनासे कोई लाभ नहीं होगा। मेरा ४५ वर्षका अनुभव यह बताता है कि उक्त गुणोंके

१. देखिए "पत्र: छगनलाल जोशीको", १९-९-१९२९।

२. डी० ए० वी० कालेजमें; श्री चटर्जी और दीवानचन्द, प्रधानाचार्योंने गांधीजी का स्वागत किया था।

अभावमें लोग किसी कामके नहीं बन पाते। विद्यार्थियोंमें इच्छा-आकांक्षाएँ होती हैं, परन्तु इतना होनेसे ही बात नहीं बनती।

इसके बाद महात्माजी ने विद्यार्थियोंकी तुलना नशा करनेवाले ऐसे व्यक्तिसे की, जो नशेके प्रभावमें बहुत-कुछ कहता है और तरह-तरहके काम करता है, लेकिन नशा उतरते ही उसका यह कहना-करना समाप्त हो जाता है। कृषि महाविद्यालयके विद्यार्थियों की अनुपस्थितिका उल्लेख करते हुए महात्माजीने कहा कि वे बुजदिल हैं; उन्होंने समारोहमें सम्मिलित न होनेके आदेशोंको पसन्द न करते हुए भी उनका पालन करनेके लिए अपने-आपको राजी कर लिया; क्योंकि उनके मनमें इस बातका भय था कि अवज्ञा करने पर उन्हें शिक्षा पूरी करनेके बाद मिलनेवाली ५० रुपयोंकी कोई नौकरी शायद न मिले।

उपस्थित विद्यार्थियोंकी ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा: "अगर आपके प्रधानाचार्य भी ऐसा आदेश जारी करते तो आप लोग भी नहीं आते।" अपने स्पष्ट कथनके लिए क्षमा माँगते हुए उन्होंने कहा कि यदि मैं विद्यार्थियोंसे साफ-साफ बात नहीं करूँ तो फिर किससे करूँ। उन्होंने कहा कि यदि ऐसी ही धारणा रही तो न विद्यार्थी-समाज कुछ पा सकेगा और न ही देश।

इसके बाद महात्माजी ने स्वामी श्रद्धानन्दका उल्लेख किया। वे किसी ऐसी सभामें, जहाँ वे ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अपने विचार न रख सकते हों, जाने के लिए तैयार नहीं होते थे। वे अपने गुरुकुलमें भी सदा इसकी बात करते रहे। महात्माजी ने कहा कि मैं भी इसी प्रकार विषयेन्द्रियोंके संयम पर जोर देता हूँ। पश्चिमसे इस देशमें जो पुस्तकें आती रहती हैं, वे जितेन्द्रिय होनेकी बात कभी नहीं सिखातीं।

आप पूछते हैं कि सन् १९३०में मैं आपसे क्या करनेकी आशा करता हूँ। मैं तो यह चाहूँगा कि सन् १९३०में आप लोग आवश्यकता पड़ने पर हँसते-हँसते मृत्युका भी आलिंगन करें। लेकिन यह किसी पापकर्माकी मौत नहीं होनी चाहिए। ईश्वर उन्हींका बलिदान स्वीकार करता है जो पवित्र-हृदय हैं। इसलिए आप लोग अपने-आपको बलिदान तक देश-सेवाके योग्य बननेके लिए शुद्ध करें। यदि आप चरित्रकी निर्मलता प्राप्त नहीं कर लेते तो निश्चित जानिए, सन् १९३०में आप कोई प्रभावशाली काम नहीं कर सकेंगे।[1]

अपनी बात जारी रखते हुए उन्होंने कहा कि केवल सरकार बदलनेसे कुछ नहीं होगा। जैसा कि देखा गया है, मौजूदा भारतीय अधिकारी अंग्रेज अधिकारियोंसे भले नहीं हैं। आवश्यकता है शासन-प्रणालीमें परिवर्तन लानेकी। मैं जनवरीमें आप लोगोंसे लेना ही लेना चाहता हूँ; मेरे पास उस समय देनेके लिए तो कुछ भी नहीं होगा। मुझे आपसे जो धन मिला है उसके लिए आपको गरीब महिलाओंका आशीर्वाद

१. यह अनुच्छेद यंग इंडिया, १०-१०-१९२९ से लिया है।

मिलेगा। परन्तु जनवरीमें तो आप लोगोंको इतना भी नहीं मिलेगा। महात्माजी ने आनेवाले अवसरके लिए पूरी तैयारी करनेकी जोरदार अपील की ताकि लोगोंको आनेवाली घटनाका आभास कुछ समय पूर्व ही उस तरह मिल जाये जैसे दिन निकलनेसे पहले उषाकी लालिमासे सूर्योदय होनेका आभास मिल जाता है। अगर विद्यार्थी इन तीन महीनोंमें पूरी तैयारी नहीं कर लेते हैं तो कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। आजादी तो हृदयकी शुद्धिके बादकी कुरबानीसे ही प्राप्त हो सकती है। हृदय शुद्ध किये बिना स्वराज्य पाना सम्भव नहीं है। यह पहली जरूरत है। इसके बाद ही कांग्रेसके सिद्धान्तों पर अमलकी बात आयेगी।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २७-९-१९२९

४१४. भाषण : काशीमें

बुधवार, २५ सितम्बर, १९२९

महात्मा गांधीने अपने भाषणमें अछूतोंसे कहा :

आप धैर्य धारण करें। यद्यपि अछूतोंके लिए बहुत-कुछ कार्य किया गया है। किन्तु अबतक यह सन्तोषजनक नहीं हो पाया है। यदि किसी धर्मके प्रति मनमें घृणा उत्पन्न हो जाये तो उसे छोड़ देना चाहिए। जहाँतक मैं देखता हूँ, अस्पृश्यता हिन्दू धर्ममें नहीं है; बल्कि स्पृश्यता ही हिन्दू धर्मकी जड़ है। जिस प्रकार वस्त्र खराब होनेसे छोड़ दिया जाता है और अच्छा वस्त्र पहना जाता है उसी प्रकार हिन्दू धर्म भी तभी छोड़ा जा सकता है जब कोई उससे अच्छा धर्म मिले।

अगर कोई मुझे चमार या भंगी कहे, तो मुझे अच्छा लगता है, क्योंकि ये नाम पेशोंके कारण पड़े हैं और चमार या भंगीका पेशा खराब नहीं है। डाक्टर भी वही करता है। दोनोंके कार्यमें अन्तर नहीं है; पर उसे कोई खराब नहीं कहता। डाक्टर तो अपने कार्यके बदले बहुत पैसे ले लेते हैं, और आप गुजारे-भरके लिए लेते हैं। धर्ममें खराबियाँ जरूर आ गई हैं। हम ईश्वरसे प्रार्थना करें कि जो आप लोगोंको कष्ट दे रहे हैं उनका हृदय शुद्ध हो जाये।

मुर्दार मांस कुछ अस्पृश्य जातियोंको छोड़कर दूसरे लोग नहीं खाते। अछूतोद्धार मण्डलको धन्यवाद है कि उसने इस गन्दी आदतको छुड़ानेका प्रयत्न किया और आप लोगोंको भी धन्यवाद है कि आपने इसे छोड़ दिया। किन्तु शराब पीना भी उतना ही बुरा है। आप कहेंगे कि डाक्टर और अफसर लोग भी पीते हैं। किन्तु समर्थको दोष नहीं दिया जाता। आप लोग उनका मुकाबला न करें। यदि कोई कुछ बुरा काम करता है तो उसकी नकल नहीं करनी चाहिए। यों तो मालवीयजी महाराज लोगोंको शुद्ध कर देते हैं, यह अच्छा है; किन्तु असली शुद्धि तो आपके अपने प्रयत्नसे होनी चाहिए। आप लोगोंमें जागृति हो रही है। उसका आप दुरुपयोग न करें। जो बुरा है उसे कभी ग्रहण न करें। दूसरोंके प्रति घृणा आदि भाव कभी न आने

दें। अपनी बुराई दूर करनेका सदा प्रयत्न करें। तब लोग आपकी पूजा करेंगे। वे समझ जायेंगे कि उनमें जो बुराई है वह आपमें नहीं है।

मैं आप लोगोंसे एक त्याग चाहता हूँ। वह बहुत बड़ा नहीं है। बहुत साधारण है। आप लोग तो भूखों नहीं मरते हैं। अपने लिए उपार्जन कर लेते हैं। लेकिन देशके करोड़ों आदमी भूखों मरते हैं। वे अपने देहातोंको छोड़ना नहीं चाहते। उनके पास थोड़ी जमीन भी है। वे उसे छोड़कर कहीं जा नहीं सकते। उनके साथ एकता बनाये रखनेके लिए आप खद्दर धारण करें। ईश्वर आपका कल्याण करे।

आज, २६-९-१९२९

४१५. भाषण: हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारसमें

काशी
बुधवार, २५ सितम्बर, १९२९

आचार्य, अध्यापकगण, विद्यार्थियो, भाइयो, और बहनो,

इस विश्वविद्यालयमें मैं पहली ही बार नहीं आया हूँ, इससे पहले भी आ चुका हूँ। एक समय आपने मुझे खद्दरनिधि और दरिद्रनारायणके लिए पैसे दिये थे। आपने मुझे अभी १२८६-१४-६की थैली दी है। आप अभी कुछ और भी देंगे। आपने जो-कुछ दिया है और जो-कुछ देंगे उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। यह आपका सौजन्य है। किन्तु यदि आप मुझसे पूछें कि क्या इतनेमें आपको सन्तोष हुआ है तो मैं कहना चाहूँगा कि मुझे इस रकमसे सन्तोष नहीं हुआ है। आपके बारेमें मैं बराबर सुनता रहता हूँ। पूज्य मालवीयजी आप लोगोंके बारेमें कुछ-न-कुछ बातें बताते रहते हैं। जो-कुछ मुझे मालूम हुआ है, उससे मैं यह समझता हूँ कि आपकी शक्ति इससे अधिक है।

श्री जमनालाल बजाज यहाँ आये थे। खादीके सम्बन्धमें आप क्या करते हैं, उसके बारेमें उन्होंने मुझे बताया था। उस समय मुझे कुछ आशा हुई थी। लेकिन अब जो-कुछ देख और सुन रहा हूँ उससे मालूम होता है कि अभी तक आपके हृदय तक खादीका सन्देश नहीं पहुँचा है। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है पर यह दुःखकी बात जरूर है।

हिन्दू विश्वविद्यालय पूज्य मालवीयजी की बड़ी कृति है। वे ४० बरसोंसे भी अधिक समयसे अविच्छिन्न रूपसे सेवा करते आ रहे हैं। उन्होंने जैसी सेवा की है वह सबको मालूम है। उनकी सेवाका निचोड़ हिन्दू विश्वविद्यालय है। पूज्य मालवीयजी और मुझमें मतभेद है। दो भाइयोंमें जिस तरह मतभेद हो सकता है, उसी तरह हम दोनोंमें भी है। लेकिन इस मतभेदके कारण उनकी सेवासे कोई इनकार नहीं कर सकता। मालवीयजी की सफलताका माप विश्वविद्यालयकी सफलतासे किया जा सकता है और विश्वविद्यालयकी सफलताका नाप इस बातसे किया जा सकता है कि विद्यार्थियोंने कहाँतक अपने चरित्रका गठन किया है, भारतकी उन्नतिमें कहाँ तक हिस्सा लिया है, उनमें धर्मभाव कहाँतक बढ़ा है।

आप भारतके इस सपूतकी अविस्मरणीय सेवाके पात्र बननेकी दिशामें क्या-कुछ कर रहे हैं। उनकी अपेक्षा आपसे धुरन्धर साहित्य-महारथी बन जानेकी नहीं है; वे तो यह चाहते हैं कि आप अपने जीवनमें सच्चे धर्मको उतारकर हिन्दू धर्म और देशकी रक्षा करें।... याद रखिए कि मालवीयजी की यह सबसे बड़ी कृति इमारतोंके आलीशान होने अथवा १३०० एकड़के जिस क्षेत्रमें बनी है उसके कारण नहीं बल्कि आप क्या बनते हैं, इस आधारपर परखी जायेगी। . . . यदि आपके अपने चरित्रमें अपेक्षित पवित्रता प्रकाशित होती है तो यह आप किसी अन्य माध्यमसे उस हद तक प्रकाशित नहीं कर सकते जिस हद तक चरखेको अपनाकर कर सकते हैं। प्रभुके अनन्त नामोंमें कुछ इनेगिने धनवान लोगोंसे भिन्न करोड़ों लोगोंको सूचित करनेवाला नाम दरिद्रनारायण सर्वाधिक पवित्र है। इन भूखसे मर रहे करोड़ों लोगोंसे थोड़े-बहुत एकरूप होनेका सबसे सरल और उत्तम उपाय मेरे द्वारा बताई गई विविध पद्धतियोंसे चरखेका सन्देश फैलाना ही है। कुशल कातनेवाला बनकर, खादीको अपनाकर और उसके लिए आर्थिक मदद देकर यह सन्देश फैलाया जा सकता है। याद रखिए कि मालवीयजी ने जो सुविधाएँ आपके लिए मुहैया कर दी हैं वे इस अनन्त जन-समुदायको प्राप्त हो ही नहीं सकतीं। तब फिर आप अपने इन भाई-बहनोंको बदलेमें क्या देनेवाले हैं?[1]

चरखा छोटा-सा यन्त्र है, पर मेरी दृष्टिसे इसका बड़ा महत्त्व है। मेरे चरखेकी बात आप मानें या न मानें, पर चरखेमें मेरी श्रद्धा तो बढ़ती ही जा रही है। आपके यहाँ इतना बड़ा मकान है। आप जो-कुछ सुविधाएँ चाहें, यहाँ मिल सकती हैं। यहाँ ऐसे भी विद्यार्थी हैं जिनसे कुछ फीस नहीं ली जाती। ऐसे भी लोग हैं जिन्हें मालवीयजी महाराज पैसे भी दे देते हैं। छात्र और छात्राओंके लिए जो एक महापुरुष कर सकता है वह मालवीयजी कर रहे हैं।

जहाँ आप ऐसी हालतमें हैं वहाँ दूसरी तरफ करोड़ों आदमियोंको २४ घंटेमें एक बार रूखी रोटी और मैले नमकके सिवा कुछ नहीं मिलता। जगन्नाथजी में लोग भूखों मर रहे हैं। उनकी आँखोंमें तेज नहीं है। उनकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती है। मैं किसी भूतकालकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ, बल्कि वर्तमान समयकी ही बात सुना रहा हूँ। एक तरफ लोग पेट-भर खाते हैं, इतना ज्यादा खाते हैं कि उन्हें डाक्टरों और हकीमोंकी जरूरत पड़ती है। दूसरी ओर लोग भूखों मर रहे हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप इन भूखे मरनेवालोंके लिए क्या करते हैं। क्या आपके हृदयमें इन अस्थि-पंजरोंके लिए कोई स्थान है?

ईश्वरका सबसे अच्छा नाम दरिद्रनारायण है। विश्वनाथजी के दर्शनमें जबतक एक भी आदमीका निषेध बना है तबतक वहाँ ईश्वरका वास नहीं हो सकता। वहाँ अस्पृश्य प्रवेश नहीं कर सकता। अगर अस्पृश्य विश्वनाथजी[के मन्दिर]में जा सकें और 'ईश्वर' की कृपा हो जाये तो उनकी हड्डियाँ बची रह जायें। अगर आप ईश्वरका साक्षात्कार करना चाहते हों तो दरिद्रनारायणकी सेवा करें। आपने १२८६ रुपये मुझे

१. इस अनुच्छेदका मिलान **यंग इंडिया**, १०-१०-१९२९ में "प्रकाशित संयुक्त प्रान्तकी यात्रा-४" के विवरणसे कर लिया गया है।

दिये हैं। आप कुछ न देते उससे तो यह अच्छा ही है कि आपने मुझे यह रकम दी। लेकिन अगर आप दरिद्रनारायणके लिए खादी न पहनें तो यह रकम देनेसे भी क्या लाभ है?

आप खादी पहनें तो यह वाणिज्य-बुद्धि होगी। वस्त्र तो आपको चाहिए ही। यदि आप १)की खादी पहनें तो उसमें १३ आने गरीब लोगोंके हाथमें जाते हैं और अगर आप १)का विदेशी कपड़ा लें तो १३ आने बाहर चले जाते हैं। जैसी गरीबी हिन्दुस्तानमें है, वैसी धरतीके किसी और हिस्सेमें नहीं है। अगर आप यह गरीबी दूर करना चाहते हों तो खादी पहनें।

यह तो मैं जानता हूँ कि खादी पहननेवालोंमें दगाबाज, धोखेबाज और व्यभिचारी होते हैं। पर ये दोष खादी न पहननेवालोंमें भी पाये जाते हैं। ये दोष सामान्य हैं। जो खादी नहीं पहनते उनमें भी तो धोखेबाज, दगाबाज और व्यभिचारी होते हैं। खादी पहननेवाला दगाबाज या धोखेबाज है पर उसमें इतनी तो अच्छी बात जरूर ही है कि वह खादी पहनता है। मुझे एक वेश्या मिली थी जो खादी पहनती है। उसने कहा कि ईश्वरसे प्रार्थना कीजिए कि हम वेश्याएँ अपने दोषसे छूट जायें।

आप अपना हृदय शुद्ध करें और जो कुछ त्याग करें वह शुद्ध भावसे करें। आप जेल जायें या फाँसीपर जायें तो शुद्ध भावसे ही जायें। आप अपना दिल साफ कर लें। डिग्रियाँ तो सभी विद्यालयोंमें मिल सकती हैं। लेकिन आपके विश्वविद्यालयकी कुछ विशेषता होनी चाहिए। अब आप लोग जो-कुछ और देना चाहें दें, क्योंकि अभी आपने अपनी शक्तिके अनुसार नहीं दिया है। मालवीयजी तो पकड़-पकड़कर चन्दा लेते हैं। वे अपनी शक्तिका प्रदर्शन करें।

आज, ३०-९-१९२९

४१६. भाषण : काशी विद्यापीठके दीक्षान्त समारोह, बनारसमें[1]

२५ सितम्बर, १९२९

आचार्य नरेन्द्रदेवने, जो विद्यापीठके प्राण हैं, वैदिक विधिसे स्नातकोंके दीक्षान्त अनुशासनका प्रबन्ध किया था। सनद लेनेके योग्य घोषित होने तथा कुलपति डा० भगवानदासका आशीर्वाद प्राप्त करनेके पूर्व प्रत्येक स्नातकको इस विधिको पूरा करना था। . . . जब गांधीजी ने, इस उत्सवके लिए विशेष रूपसे तैयार किये पंडालमें प्रवेश किया तो उन्हें भी वैसा ही पीला वस्त्र पहनना पड़ा जैसा कुलपति और विश्वविद्यालयके अधिकारी पहने थे। . . .

इस पवित्र संस्कारकी पूर्ति पर गांधीजी को अपना दीक्षान्त भाषण देना था। . . . दीक्षान्त भाषण उनकी अपनी सरल हिन्दीमें था। . . . उन्होंने अपना भाषण

१. यह विवरण "संयुक्त प्रान्तकी यात्रा-४" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

यह कहते हुए आरम्भ किया कि राष्ट्रीय शिक्षाके प्रति उनका विश्वास दिनोंदिन बढ़ रहा है। उन्होंने इस बात पर पूर्ण आस्था प्रकट की कि राष्ट्रीय संस्थानसे बाहर निकलने पर ये विद्यार्थी अपनी योग्यताका पूरा-पूरा परिचय देंगे और स्वाधीनताके युद्धकी बागडोर सँभालेंगे। उन्होंने कहा :[1]

आज मैं आप लोगोंसे यहाँ कोई नई चीज कहनेके लिए नहीं आया हूँ। और मेरे पास कोई नई चीज है भी नहीं। मैं ऐसे समय पर जो-कुछ कहता आया हूँ करीब-करीब वही इस समय भी कहना चाहता हूँ। भाषामें भेद भले ही पड़े, बात वही होगी। मेरा विश्वास दिन-प्रतिदिन राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रीय विद्यालयोंमें बढ़ता जाता है। मैं भारतमें भ्रमण करते हुए सभी राष्ट्रीय विद्यापीठोंसे परिचित हो चुका हूँ। इस समय राष्ट्रीय विद्यालय और विद्यापीठ बहुत कम हैं; जितने हैं उनमें काशी विद्यापीठ एक बड़ी संस्था है। संख्याकी दृष्टिसे नहीं, प्रयत्न और गुणकी दृष्टिसे। इसके लिए किये गये प्रयत्नके साक्षी मुझसे बढ़कर आप ही लोग हैं।

वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भ सन् १९२० से हुआ था। यह मैं नहीं कहता कि इसके पहले राष्ट्रीय विद्यालय नहीं थे; परन्तु मैं इस समय उन्हीं राष्ट्रीय विद्यालयोंकी बात कह रहा हूँ जिनकी नींव असहयोग आन्दोलनके जमानेमें डाली गई थी। जो कल्पना सन् १९२०में इन राष्ट्रीय विद्यालयोंके लिए की गई थी उसमें पहले के राष्ट्रीय विद्यालयोंकी कल्पनासे कुछ भेद था। इस कल्पनाको ध्यानमें रखकर चलनेवाले हम थोड़े ही हैं और तदनुसार शिक्षा ग्रहण करनेवाले स्नातक भी बहुत थोड़े हैं। मैं अपने भारत-भ्रमणमें राष्ट्रीय स्नातकोंसे मिलता हूँ और उनसे बातचीत करता हूँ। इससे मैं यह देख पाया हूँ कि उनमें आत्मविश्वास नहीं है। बेचारे सोचते हैं कि फँस गये हैं, इसलिए किसी तरह निभा लें, फिर किसी-न-किसी काममें लग जायें और पैसा मिले। सभी स्नातकोंको तो नहीं, मगर बहुतोंकी ऐसी दशा है। उनसे मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। उनको जानना चाहिए कि आत्मविश्वास खोनेका कोई कारण नहीं है। स्वराज्यके इतिहासमें इन विद्यार्थियोंका दरजा छोटा नहीं रहेगा। उनका दरजा छोटा न रहे यह विद्यार्थियोंके हाथमें है। स्नातकोंको यह जो कागजका पुरजा, प्रमाणपत्र दिया गया है वह कोई बड़ी चीज नहीं है। वह तो कुलपतिके आशीर्वादकी निशानी है। उसमें प्राणप्रतिष्ठा हो गई है ऐसा मानकर आप स्नातकगण उसका संग्रह तो करें, परन्तु ऐसा हरगिज न सोचें कि उससे आजीविकाका प्रबन्ध कर लेंगे या धन पैदा करेंगे। आजीविकाका प्रबन्ध करना इन राष्ट्रीय विद्यापीठोंका ध्येय नहीं है। इससे आजीविका भी प्राप्त हो जाती है; परन्तु आप लोग समझ लें कि आप लोग आजीविकाकी प्राप्तिके भावसे इस विद्यापीठमें नहीं आते, कुछ और ही कामके विचारसे आते हैं। आप लोग राष्ट्रको अपना जीवन समर्पित करनेके लिए आते हैं, स्वराज्यका दरवाजा खोलनेकी शक्ति हासिल करनेके लिए आते हैं।[2]

१. यहाँ तकका अंश **यंग इंडिया**से और अगले दो अनुच्छेद **आज**से लिये गये हैं।

२. अगला अनुच्छेद **यंग इंडिया**से लिया गया है।

यदि आप अपनी शाला या महाविद्यालयकी तुलना सरकारी पाठशालाओं या महाविद्यालयोंसे करेंगे तो यह निराशाकी बात ही होगी। इन दोनोंका स्वरूप अलग-अलग है। आप जनताका शोषण करनेवाली सरकारकी संस्थाओंकी तरह यहाँ बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें तथा वेतनके रूपमें मोटी रकम पानेवाले विद्वान् प्राध्यापक या अध्यापक मनमानी संख्यामें नहीं रख सकते। आपके पास आर्थिक साधन जुट जायें तो भी आप ऐसा नहीं करेंगे। सरकारी शिक्षण संस्थाओंका मूलभूत उद्देश्य ऐसे क्लर्क और अन्य ऐसे लोगोंको तैयार करना है जो विदेशी सरकारको शासन चलाये रखनेमें सहायता दें। राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओंका लक्ष्य इसके बिलकुल विपरीत है। राष्ट्रीय संस्थाओंका उद्देश्य क्लर्क या ऐसे ही अन्य कर्मचारी तैयार करना नहीं है। उनका लक्ष्य तो किसी भी कीमत पर और सो भी जल्दीसे-जल्दी विदेशी शासनको समाप्त करनेके लिए कृतसंकल्प कार्यकर्त्ता तैयार करना है। स्वाभाविक है कि सरकारी शिक्षण संस्थाएँ विदेशी शासनके प्रति वफादार होंगी; किन्तु राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाएँ तो केवल देश के प्रति ही वफादार हो सकती हैं। सरकारी संस्थाओं में पढ़नेवालोंको अच्छे वेतन पर पद मिलनेकी सम्भावना होती है, जब कि राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा पूरी सेवाके बदलेमें केवल गुजारेके योग्य देनेका वचन मिल सकता है। आप लोगोंने अभी-अभी ऋण चुकानेकी शपथ[1] ली है। निस्सन्देह, जैसा कि मैक्स-मूलरने दुहराया है, हमारे लिए तो जीवन ही कर्त्तव्य-रूप है। कर्त्तव्यका ठीक निर्वाह करने पर अधिकार स्वयमेव मिल जाते हैं। लेकिन वह व्यक्ति जो केवल फलकी आशासे ही अपना दायित्व निभाता है, अपने दायित्वका ठीक निर्वाह नहीं कर पाता और अक्सर उन अधिकारोंको पानेमें भी असफल रह जाता है जिनकी वह आशा करता था। अथवा यदि वह अधिकार पानेमें सफल भी हो जाता है तो वे उसके लिए भारस्वरूप सिद्ध होते हैं। इसलिए सेवा करना ही आपका अधिकार है। जबतक आप देशकी आजादी पानेके लिए आवश्यक योगदान नहीं दे चुकते, तबतक आपके आराम लेनेका प्रश्न ही नहीं उठता। जब आप सरकारी और अपनी शिक्षण संस्थाओंके इस मूलभूत अन्तरको समझ लेंगे तो आपको अपनी पसन्दगी पर दुःख नहीं होगा।

१. नीचे मूल संस्कृत अंशका अनुवाद दिया जा रहा है:

प्रश्न: पूर्वजोंके प्रति आपका कर्तव्य क्या है?

उत्तर: मानव-मात्रको अन्याय, असहायावस्था तथा दारिद्र्यसे छुटकारा दिलाना और उसके स्थानपर बन्धुत्व, आत्मसम्मान एवं सत्यका प्रचार करना।

प्रश्न: ऋषियोंके प्रति आपका क्या कर्तव्य है?

उत्तर: अज्ञानके स्थानपर ज्ञानका, मिथ्याचार व दुराचारके स्थानपर सदाचारका, स्वार्थके स्थानपर त्याग और शुद्ध संस्कृतिका प्रचार तथा आध्यात्मिकताको वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवनका आधार बनाना।

प्रश्न: ईश्वरके प्रति आपका क्या कर्तव्य है?

उत्तर: मानव-मात्रमें सदाचारका प्रचार करना, प्राकृतिक शक्तियोंको सुरक्षित रखकर उन्हें मानवोपयोगी बनाना और अन्तमें संन्यास ग्रहण करनेमें अपने आपको ईश्वरार्पित कर देना।

प्रश्न: क्या आप इन कर्तव्योंका पालन करेंगे?

उत्तर: ईश्वरके अस्तित्वको साक्षी करके मैं वचन देता हूँ कि मैं इन कर्तव्योंके पालनका यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा। आपके आशीर्वाद एवं ईश्वर कृपासे मेरे प्रयत्न सफल हों।

परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि आपका संख्यामें कम होना भी आप लोगोंको अक्सर खटकता है। कुछ लोगोंके मनमें तो यह दुविधा भी घर कर गई है कि अपनी पुरानी संस्थाओंको छोड़कर यहाँ आना बुद्धिमानीका काम नहीं हुआ। वे मन-ही-मन यह भी सोचते हैं कि वहीं लौट जायें। मैं कहना चाहूँगा कि किसी भी बड़े उद्देश्य की प्राप्तिके लिए होनेवाले संघर्षमें अन्तिम निर्णय संघर्षरत व्यक्तियोंकी संख्या पर नहीं, परन्तु उनकी योग्यता पर निर्भर करता है। संसारके बड़ेसे-बड़े लोगोंको अपने पक्षमें अकेले ही खड़े रहना पड़ा है। इस सिलसिलेमें महान सन्तोंका उदाहरण दिया जा सकता है। जरथुस्त, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि अनेक ऐसे महापुरुष हैं जिनके नाम मैं गिना सकता हूँ और जो अपने सिद्धान्तों पर अकेले ही डटे रहे। हाँ, इन सभीको अपने-आप पर और ईश्वर पर जीवन्त विश्वास था और इस विश्वासके कारण कि ईश्वर उनकी ओर है, उन्हें कभी अकेलेपनका अनुभव नहीं हुआ। उस क्षणको याद कीजिए जब अबूबकर पैगम्बरके साथ शामिल धर्मयुद्धमें शत्रुकी एक विशाल फौजको अपने पीछे आते देखकर भविष्यकी आशंकासे काँप गये और बोले "शत्रुओंकी इस विशाल सेनाको तो देखिए जो हमारा पीछा कर रही है। हम दो ही व्यक्ति इस आपत्तिका मुकाबिला कैसे करेंगे?" पैगम्बरने अपने उस विश्वस्त साथीको बिना एक क्षण हिचकिचाये डपटकर कहा, "नहीं, अबूबकर, हम तीन हैं; क्योंकि ईश्वर हमारे साथ है।" यही नहीं, विभीषण और प्रह्लादके अपराजेय विश्वासका उदाहरण दिया जा सकता है। ऐसा ही सजीव विश्वास आप अपनेमें और ईश्वरमें रखें यही मेरी कामना है।[1]

आत्मविश्वास कैसा होना चाहिए? आत्मविश्वास रावणका-सा नहीं होना चाहिए जो समझता था कि मेरी बराबरीका कोई है ही नहीं। आत्मविश्वास होना चाहिए विभीषण जैसा, प्रह्लाद जैसा। उनके जीमें यह भाव था कि हम निर्बल हैं मगर ईश्वर हमारे साथ है और इस कारण हमारी शक्ति अनन्त है। अपने इसी विश्वास को जगानेके लिए आप स्नातक लोग विद्यापीठमें आते हैं।

आगरेमें एक सज्जनने एक कथा सुनाई थी। एक ब्राह्मणको ईश्वरका परिचय नहीं था। मगर उसने एक भोलेभाले आदमीके पूछनेपर उससे यह कह दिया कि तुम कुएँमें सिरके बल गिर पड़ो तो तुम्हें ईश्वर मिल जायेगा। उस आदमीको इस बात-पर विश्वास हो गया। उसने ऐसा ही किया और उसे ईश्वर मिल गया। मगर उस ब्राह्मणको सद्गति नहीं मिली — उसकी तो दुर्गति ही हुई। इसी तरह अगर अध्यापकोंमें आत्मविश्वास न हो किन्तु आपमें हो और आप स्वतन्त्रताको जानना चाहते हों तो आत्मबलपर निर्भर करके और ईश्वरका नाम लेकर उसके लिए प्रयत्न करें। आप उसे प्राप्त कर सकते हैं। विद्यापीठके स्नातक भूलकर भी यह न सोचें कि हम भी सरकारी कालेजोंमें शिक्षा पानेवालोंकी तरह नौकरीके लिए पढ़ते हैं।

मैं स्वराज्यका अर्थ बहुत दफा बता चुका हूँ। वह स्वराज्य शान्तिके मार्गसे, सभ्यताके मार्गसे मिल सकता है। वह धर्मराज्य है। धर्म-रहित स्वराज्य मेरी समझमें

१. इससे आगेका अंश आजसे लिया गया है।

किसी कामका नहीं है। राष्ट्रीय विद्यार्थी दूसरे प्रकारसे स्वराज्य पाना चाहें तो उसके लिए आवश्यक शक्ति उन्हें प्राप्त भी नहीं हो सकती। मैं अपनी जिम्मेदारीको समझते हुए यह सब कह रहा हूँ। आप धोखेमें न रहें, न दूसरोंको धोखेमें डालें। मेरे दिलमें जो बात है मैं वही कह रहा हूँ। जो आदमी देशके प्रति, धर्मके प्रति अपना कर्त्तव्य भूल जाते हैं वे धूर्त और अयोग्य कहलाते हैं। स्वराज्यके लिए सच्चे वीर, बहादुर सिपाही बनना विद्यार्थियोंका कर्त्तव्य है।

आज, २७-९-१९२९ तथा यंग इंडिया १०-१०-१९२९

४१७. रुपयेकी दो कीमतें

अजीब होते हुए भी यह सच है कि रुपयेकी कीमत उसके व्ययकी रीतिके अनुसार जुदा-जुदा होती है। अगर किसीका खून करनेके विचारसे कोई हथियार खरीदा जाये तो खरीदनेवाले मालिक और उसके हथियारकी तरह उसके द्वारा खर्च किया गया रुपया भी खूनसे रँगा हुआ माना जायेगा। इसके विपरीत अगर वही रुपया किसी भूखे मरनेवालेको भोजन करानेके लिए खर्च किया जाये तो उससे एक आफतके मारे प्राणीकी जान बच जाती है। पहले उदाहरणमें वह अपने मालिकको नरककी ओर घसीटता है, दूसरेमें वह अपने मालिकको स्वर्गके नजदीक पहुँचा देता है। अब हम देखें कि खादी खरीदनेमें रुपया किस तरह बँटता है। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समिति द्वारा तैयार आँकड़ोंके मुताबिक यह बँटवारा यों होता है :

	रु० आ० पा०
कपासकी खेती करनेवालेको	०—३—९
ओटनेवालेको	०—०—६
पींजनेवालेको	०—१—९
कातनेवालेको	०—३—९
जुलाहेको	०—४—९
धोबीको	०—०—६
व्यापारीको	०—१—०
कुल	१—०—०

इस तरह खादी पर खर्च होनेवाले रुपयेका कुछ भी देशसे बाहर नहीं जाता, उलटे उसकी पाई-पाई भारतके झोंपड़ों, किसानों और गरीब मजदूरोंकी जेबमें पहुँचती है। लेकिन अगर यही रुपया विदेशी कपड़ा खरीदनेमें लगाया जाये तो व्यापारीके इकन्नी रुपया मुनाफेको छोड़कर बाकीके १५ आने देशकी गरीब और पेटकी ज्वालासे ग्रस्त जनताको रोती-बिलबिलाती छोड़कर विदेशोंको चले जाते हैं। अगर विलायती कपड़ा भारतमें उत्पन्न कपाससे बना है तो भारतके किसानको उसमेंसे भी पौने चार आने मिल सकते हैं; किन्तु इसका एक अंश दलाल-सट्टेबाज हड़प जाते हैं। अगर

भारतसे इतनी अधिक कपास परदेश न जाये तो आज बम्बई और कलकत्तेमें सट्टेके नाम पर जो भयंकर और सर्वनाशी जुआ जारी है, वह भी न रहे। न जाने कब हमारे देश-प्रेमी यह सीधा-सादा राष्ट्रीय गणितशास्त्र समझेंगे और कब सदाके लिए विदेशी वस्त्रका त्याग करेंगे?

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २६-९-१९२९

४१८. विवाहमें सादगी

एक संवाददाताने मेरे पास कराचीके एक विवाह-समारोहके समाचार भेजे हैं। कहा गया है कि वहाँके एक धनवान सेठ श्री लालचन्दजी ने अपनी १६ वर्षकी लड़की के ब्याहके मौके पर तमाम फिजूलखर्चियाँ बन्द कीं और विवाह समारोहको उदात्त धार्मिक रूप देकर, उस अवसर पर कमसे-कम खर्च किया। समाचारोंसे पता चलता है कि सारे समारोहमें दो घंटेसे ज्यादा समय नहीं लगा; वैसे आम तौर पर ब्याहके मौकों पर कई दिन तक फिजूलखर्चियाँ होती रहती हैं। विवाह विधिका सारा काम एक विद्वान् ब्राह्मणके हाथों कराया गया था। उन्होंने वर-कन्या द्वारा उच्चारित सभी मन्त्रोंका अर्थ भी उन्हें समझाया। मैं सेठ लालचन्द और उनकी धर्मपत्नीको भी जिन्होंने बहुत दिनोंसे इस अपेक्षित सुधारके कार्यमें अपने पतिका पूरा-पूरा साथ दिया है, हृदयसे बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि देशके दूसरे धनी लोग सर्वत्र इस उदाहरणका अनुकरण करेंगे। खादी-प्रेमी यह जानकर प्रसन्न होंगे कि सेठ लालचन्द और उनकी धर्मपत्नी पक्के खादी-प्रेमी हैं और वरवधू भी खादीमें पूर्ण श्रद्धा रखते और सदा खादी पहनते हैं। यह विवाह-समारोह मुझे आगराके विद्यार्थियोंकी सभाका[1] स्मरण कराता है। उन्होंने एक मित्र द्वारा दी गई इस सूचनाकी पुष्टि की थी कि संयुक्त प्रान्तके कालेजों और विद्यालयोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थी स्वयं छोटी उम्रमें ब्याह दिये जानेके लिए उत्सुक रहते हैं और एक तरहसे माता-पिताको कीमती वस्तुएँ खरीदने, फिजूलखर्ची करने एवं बड़े-बड़े भोज या बढ़िया दावतें देनेको विवश करते हैं। मेरे मित्रने कहा था कि अत्यन्त उच्च शिक्षा प्राप्त माता-पिता भी सम्पत्तिके मिथ्याभिमानसे बरी नहीं हैं, और इसीलिए जहाँ तक रुपया बहानेका सम्बन्ध है, वे अनपढ़ मगर धनवान व्यापारियोंको भी मात कर देते हैं। ऐसे सब लोगोंके लिए सेठ लालचन्दजी का ताजा उदाहरण और सेठ जमनालालजी का कुछ समय पूर्वका उदाहरण एक पदार्थ-पाठ होना चाहिए, जिससे प्रेरणा लेकर वे तमाम फिजूलखर्चियोंसे हाथ खींच लें। किन्तु माता-पिताओंसे अधिक नवयुवकोंका यह कर्त्तव्य है कि वे बाल-विवाहका जोरोंसे विरोध करें; खासकर विद्यार्थी अवस्थाके विवाहोंका तो डटकर विरोध करें और हर तरहसे तमाम फिजूलखर्चियाँ बन्द करवायें। विवाहकी धार्मिक विधिके

१. देखिए "भाषण: विद्यार्थियोंके समक्ष, आगरामें", १३ सितम्बर, १९२९।

लिए तो ₹१०) से ज्यादाकी जरूरत नहीं होती, न होनी चाहिए और न विवाह-विधिके सिवा और किसी बातको विवाहका आवश्यक अंग ही मानना चाहिए। प्रजातन्त्रके इस जमानेमें जब कि धनी-निर्धन, ऊँच-नीच आदिके भेदोंको मिटानेका प्रयत्न किया जा रहा है, धनिकोंका यह कर्त्तव्य है कि वे अपने भोग-विलास और आमोद-प्रमोदों पर अंकुश रखकर गरीबोंको सन्तोषी जीवन बितानेका अवसर दें और 'भगवद्गीता'के 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः'[1] कथनको याद रखें। बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं, जनसाधारण उसीको आदर्श मानकर चलते हैं। इस कथनकी सचाई हम अपने रात-दिनके व्यवहारमें प्रतिपल अनुभव करते हैं, खासकर विवाहके अवसरों और मृत्युके बादकी क्रियाओंमें। केवल यह अनुकरण ही हजारों गरीब लोगोंके जीवनमें आवश्यक वस्तुओंके अभाव और सर्वनाशकारी ब्याजकी दरों पर लिये गये ऋण-भारसे जिन्दगी-भर दबे रहनेका कारण बना बैठा है, राष्ट्रीय शक्ति और साधनोंका यह अमित दुरुपयोग सहज ही रोका जा सकता है, बशर्ते कि देशके नौजवान, खासकर लक्ष्मीपुत्र, अपने लिए होनेवाली हर तरहकी फिजूलखर्चीके कट्टर दुश्मन और विरोधी बन जायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-९-१९२९

४१९. बुद्धि बनाम श्रद्धा

एक पत्रलेखकने मुझे 'प्रबुद्ध भारत' का सितम्बरका अंक भेजा है। इस अंकमें सम्पादकने मेरे उस उत्तरका प्रतिवाद प्रकाशित किया है, जो मैंने हाल ही में प्रकाशित उनकी लेख-माला "चरखा और खादी-विचार" के सम्बन्धमें लिखा था। अगर इस प्रतिवादसे सम्पादक सन्तुष्ट हैं और पाठकोंको भी सन्तोष होता है तो ठीक है; मैं और तर्क नहीं देना चाहता तथा अन्तिम निर्णय समय और अनुभव पर छोड़ता हूँ। लेकिन सम्पादक महोदयके उत्तरमें एक बात तो विचारणीय है। सम्पादकने मेरी उस टिप्पणीकी उपादेयताको चुनौती दी है जिसमें मैंने कहा था कि "तर्कोंके आधार पर किये जा रहे विचार-विमर्शमें सम्मानित दिवंगत पुरुषोंके वचनोंका हवाला देकर अनुमान निकालना श्रद्धास्पदोंका अपमान माना जाना चाहिए।" 'प्रबुद्ध भारत' स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित संस्थाका मुखपत्र है, इस कारण सम्पादक महोदय इस कथनसे विशेषतया रुष्ट हुए हैं। लेकिन मैं तो अपनी बातको ठीक ही कहूँगा। मेरे विचारसे तर्काश्रित वाद-विवादमें पंथ-विशेषके सदस्यों और उसके मुख-पत्रोंको तो अपने पंथके संस्थापकके वचनोंको घसीटनेसे बचना ही चाहिए; क्योंकि उनपर श्रद्धा न रखनेवाला व्यक्ति कदाचित् उक्त संस्थापककी वाणीको कोई महत्त्व ही न दे। यह ऐसा ही समझिए जैसे श्रीकृष्णके वचनोंका उस व्यक्तिके लिए जो कृष्ण-भक्त नहीं है, कोई महत्त्व नहीं है। यह बात अनुभवसिद्ध है कि उन सभी बातोंमें जहाँ भावनाओंकी

1. अध्याय ३-२१।

अपेक्षा तर्क ही प्रधान माना जा रहा हो, महापुरुषोंके लेखोंसे — फिर चाहे वे कितने ही महान् क्यों न हों — उदाहरण प्रस्तुत करना अप्रासंगिक होता है तथा ऐसा करनेसे उन बातोंके और अधिक उलझ जानेकी सम्भावनाएँ रहती हैं। मैं सम्पादक महोदय और पाठकोंके सामने यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैंने किसी महापुरुषके किसी कथन-विशेषके उल्लेखकी आलोचना नहीं की है; मैंने यह सुझाव अवश्य दिया है कि उक्त वचनोंका कोई निहितार्थ निकालनेकी अपेक्षा स्वयं पाठकोंको इन बातोंको समझने और अपने निर्णय लेनेकी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। उदाहरणके लिए, क्या तथाकथित ईसाइयोंने ईसामसीहके सच्चे सन्देशको नहीं तोड़ा-मरोड़ा है? क्या सन्देह-वादियोंने ईसामसीहके एक ही तरहके वाक्योंके बिलकुल विरोधी अर्थ नहीं निकाले हैं? इसी प्रकार 'भगवद्गीता'के उन्हीं श्लोकोंके विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायोंने क्या अलग-अलग और कभी-कभी तो विरोधी अर्थ तक नहीं निकाले हैं? किसीका वध करनेके लिए भी क्या 'गीता'की गवाही पेश नहीं की जाती? मुझे तो यह बिलकुल स्पष्ट लगता है और तर्ककी भी यह माँग है कि हमें किसी भी महापुरुषके, फिर चाहे जितने बड़े वे हों, वचनोंको प्रमाण-रूपमें प्रस्तुत करनेका यत्न नहीं करना चाहिए। आश्चर्यकी बात है कि जिस पत्र-लेखकने मुझे 'प्रबुद्ध भारत' की प्रति भेजी थी, उसीने भगिनी निवेदिताकी दो परस्पर-विरोधी उक्तियाँ भी भेजी हैं। उक्तियाँ निम्न हैं :

> **अन्य लोगोंकी तरह उन्होंने (विवेकानन्दने) बिना सोचे-समझे यह स्वीकार कर लिया था कि मशीनोंका प्रयोग खेतीके लिए वरदान सिद्ध होगा, परन्तु अब उन्होंने देख लिया है कि अमेरिकाके किसानको अपने कई मील लम्बे चौड़े खेतमें मशीनोंके उपयोगसे भले ही अधिक लाभ हो, किन्तु वही मशीनें भारतमें छोटी-छोटी जोतके मालिक किसानोंका थोड़ा-बहुत हित करनेके बजाय नुकसान ही अधिक करेंगी। दोनों देशोंकी समस्याएँ भिन्न हैं, इसका उन्हें पूरी तरह विश्वास हो गया था। हर मामलेमें, जिसमें उत्पादनके बँटवारेकी समस्या भी शामिल है, वे ऐसे सभी तर्कोंको सशंक होकर सुनते थे जिनमें छोटे-मोटे हितोंकी उपेक्षा की बात कही जाती थी। इस प्रकार वे अनजाने ही अनेक मामलोंकी तरह, इस मामलेमें भी पुरातन भारतीय सभ्यताकी भावनाओंको बनाये रखनेके पक्षमें दिखाई देते थे। ('मास्टर ऐज़ आई सॉ हिम,' पृष्ठ २३१)।**
>
> **उनके (विवेकानन्दके) अमेरिकी शिष्य उनके उस वर्णनसे सुपरिचित हो गये थे जिसमें वे एक पंजाबी महिलाका उल्लेख करते थे जो चरखा कातते हुए उसके स्वरमें 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्'की ध्वनि सुनती थी। इसका उल्लेख करते समय उनके मुख पर स्वप्निल सुख झलकने लगता था। (वही, पृष्ठ ९५)**

ये अंश स्वामीजी के विचारोंको ठीक-ठीक ढंगसे पेश करते हैं या नहीं, मैं कह नहीं सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-९-१९२९

४२०. टिप्पणियाँ

अलीभाइयोंपर प्रतिबन्ध[1]

दक्षिण आफ्रिकाकी महासभाके मन्त्रीकी ओरसे मुझे नीचे लिखा तार मिला है :

> **कार्य-समितिकी डर्बनमें बुलाई गई एक खास बैठकमें दक्षिण आफ्रिका संघकी यात्राके सम्बन्धमें संघ सरकारने अलीभाइयोंके मार्गमें जो रुकावटें डाली हैं, उन पर पूरा-पूरा विचार किया गया और बादमें नीचे लिखा प्रस्ताव पास हुआ :**
>
> **"दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसकी कार्य-समिति दक्षिण आफ्रिकाकी भारतीय जनताके प्रतिनिधिकी हैसियतसे, उन प्रतिबन्धोंके लिए दुःख प्रकट करती है, जो संघसरकारने अलीभाइयोंके दक्षिण आफ्रिका आनेके मार्गमें खड़े किये हैं और वह भारत सरकारके एजेंटसे प्रार्थना करती है कि वह इन शर्तोंको हटवानेके लिए आवश्यक कार्रवाई करे।"**

अब हमें इसका पता चल गया कि इस मामलेमें एजेंट महोदयकी कोशिशोंका क्या नतीजा हुआ। अलीभाइयों द्वारा स्वेच्छा और सौजन्यसे यह कह दिये जानेके बाद भी कि वे दक्षिण आफ्रिकामें रहते समय वहाँ राजनैतिक विषयोंकी चर्चा नहीं करेंगे, अपनी शर्तों पर अड़े रहनेकी जिद करके संघ सरकारने यह बता दिया है कि वह भारत सरकारकी कितनी परवाह करती है। जबतक भारत सरकार आजकी भाँति गैर-जिम्मेदार लोकमतके प्रति अनुत्तरदायी बनी रहेगी तबतक विदेशोंकी सरकारें उसका इसी तरह अपमान भी करती रहेंगी; फिर भले ही वे विदेशी राज्य 'डोमिनयन स्टेट्स' की हैसियतके हों या बिलकुल स्वतन्त्र। आशंका यही है कि जबतक हमारे आपसी झगड़े, विषैले मतभेद और तज्जन्य हमारी वर्तमान कमजोरी और बेबसी बने रहेंगे, तबतक हमें ऐसे अपमान हर रोज सहने ही पड़ेंगे।

खादी बनाम मिलें?

अक्सर सुना जाता है कि खादी-आन्दोलन एवं खादी-प्रचार मिल-व्यवसायके लिए हानिप्रद है; कुछ कांग्रेसी भी, जिन्हें इस विषयकी अधिक जानकारी होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। भले ही बाहरी तौर से उसके कारण मिल-व्यवसायका नुकसान क्यों न होता हो, मेरे विचारमें तो खादीको अपना काम निस्सन्देह करते ही रहना चाहिए। इसमें शक नहीं कि मुट्ठी-भर धनिकोंकी भौतिक समृद्धिके मुकाबले करोड़ों भूखों मरनेवालोंके हितका सवाल अधिक महत्त्वका है, होना चाहिए। लेकिन हकीकत तो यह है कि खादी-प्रचारके कारण मिल-व्यवसायको नुकसान नहीं हुआ, इतना ही नहीं, उलटे उससे उसे बहुत-कुछ जाहिरा लाभ पहुँचा है। इस बातका समर्थन श्री

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-९-१९२९ का उपशीर्षक "औद्धत्यकी सीमा" भी।

जे० ए० वाडिया-जैसे व्यक्ति तकने किया है। उस दिन भागीदारोंकी सभाके सभापति की हैसियतसे एक सवालका जवाब देते हुए उन्होंने कहा था कि खादी-प्रचारके कारण स्वदेशी मिलोंके कपड़ेकी बिक्री पर कोई बुरा असर नहीं पड़ा है। वे स्वयं खादीके हिमायती हैं। उन्होंने यह भी कहा कि "यह खादीका ही प्रताप है कि स्वदेशी सूतकी खपत इतनी अधिक बढ़ गई है। महात्मा गांधी स्वदेशी मिलके कपड़ोंके विरोधी नहीं हैं। उनके प्रचारने मिल-व्यवसायको लाभ ही पहुँचाया है।" आशा है, श्री वाडियाके इस अनायास प्राप्त कथनसे उन कई लोगोंकी शंका दूर हो जायेगी जो समझते हैं कि खादीके कारण मिल-व्यवसायको नुकसान हुआ है। थोड़ा-सा विचार करनेसे स्पष्ट ही पता चलेगा कि खादी मिल-व्यवसायको किसी तरह हानि नहीं पहुँचा सकती; इसका सीधा-सादा कारण यह है कि जहाँ मिलें हर साल करोड़ोंकी कीमतका कपड़ा बनाती हैं, वहाँ अखिल भारतीय चरखासंघ साल-भरमें ३० लाखसे ज्यादाकी खादी नहीं बना पाता। उलटे खादी-प्रचारके कारण लोगोंमें अभूतपूर्व स्वदेशी प्रेम पैदा हो गया है, और फलस्वरूप गरीब देहाती विलायती कपड़ोंकी अपेक्षा स्वदेशी मिलोंके कपड़ोंको तरजीह देने लगे हैं। यहाँ पाठक जरा यह भी जान लें कि कई मिलोंने खादीके साथ कैसा सुलूक किया है। उन्हें बेईमानी और बिना किसी झिझकके मोटा कपड़ा बनाना शुरू करके ऐसे नकली माल पर चरखेकी छाप चिपकाकर उसे खादीके नामसे बेचते तनिक भी शर्म नहीं आई। खादीने लोगोंमें जो स्वदेशी-भावना जाग्रत की है उससे लाभ उठाकर भी कुछ मिलवालोंने खादीको इस तरह पुरस्कृत किया है।

एक विचारदोष[1]

एक भाई लिखते हैं:

> **आपने अपने एक लेखमें एक जगह कहा है: "विवाह धर्म-सम्बन्ध है, इसलिए वह अकेले शरीरोंका ही सम्बन्ध नहीं बल्कि आत्माओंका ऐक्य भी है या होना चाहिए। ऐसा सम्बन्ध साथीकी मौतके बाद भी कायम रहता है। जहाँ आत्माओंका सच्चा मेल हो चुका हो वहाँ विधवा विधुरके पुनर्विवाहकी गुंजाइश ही नहीं हो सकती, यही नहीं बल्कि उनका पुनर्विवाह करना अनुचित और अनीतिपूर्ण भी होगा।"**
>
> **मगर उसी लेखमें आप दूसरी जगह कहते हैं: "मैं बालविधवाके पुनर्विवाहको इष्ट मानता हूँ; यही नहीं बल्कि ऐसी विधवा कन्याओंका पुनर्विवाह करना माता-पिताका परम धर्म है।" आप इन दो भिन्न बातोंकी एकवाक्यता कैसे सिद्ध करते हैं?**

मुझे इन दो विचारोंमें कोई विरोध नहीं दीख पड़ता। अगर कोई निर्दय माता-पिता किसी नन्हीं-सी बालिकाको स्वार्थ या अज्ञानके कारण, उसके हिताहितका विचार

१. इसी विषयपर २२-९-१९२८ के **नवजीवन**में भी एक लेख प्रकाशित हुआ था जिससे इसका मिलान कर लिया गया है।

न करके, उसकी इच्छा और सम्मतिके बिना ही किसीको सौंप दे तो इस तरहका सम्बन्ध विवाह-सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। ऐसा सम्बन्ध किसी हालतमें भी आध्यात्मिक तो नहीं कहा जा सकता। अतएव ऐसी बालिकाका पुनर्विवाह कर्त्तव्य बन जाता है। सच पूछा जाये तो ऐसे विवाहको पुनर्विवाह कहना ही अनुचित है। क्योंकि ऐसी कन्याका विवाह होता ही नहीं। अतएव ऐसी बालिकाके नामधारी पतिकी मृत्युके बाद उसके लिए कोई योग्य पति ढूँढ़ देना माता-पिताका सहज धर्म है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-९-१९२९

४२१. प्रेमका जादू

"खद्दरका अर्थशास्त्र"के लेखक श्री रिचर्ड ग्रेगको पाठक भली-भाँति जानते होंगे। उन्होंने मेरे पास फ्रेंच कवि रिशपिनकी नीचे लिखी एक नीति-कथा (पैरेबल) भेजी है:

> **एक विधवा माता अपने इकलौते लड़केके साथ रहती थी; दोनों एक-दूसरेके मददगार और परस्पर अभिन्न थे। लेकिन एक दुश्चरित्राने उस नवयुवकको मोह लिया। उसने उसका धन, स्वास्थ्य, प्रतिष्ठा, आत्माभिमान आदि सब-कुछ हर लिया और अन्तमें उसे हर तरह निकम्मा और उड़ाऊ बना दिया। एक दिन उस दुष्टा स्त्रीने नवयुवकसे अपनी प्रीतिका उत्कट परिचय देनेको कहा। उसने चाहा कि युवक अपनी माँकी हत्या करके उसके खूनसे सना ताजा कलेजा अपनी प्रेमिकाको भेंट करे। वह नौजवान अपनी माँके पास पहुँचा; तुरन्त उसने उसे कत्ल किया, उसके शरीरसे कलेजा निकालकर हाथ पर रखा और उस दुष्ट स्त्रीके पास दौड़ा चला। जल्दीमें फर्श परसे उसका पैर फिसल गया और वह औंधे मुँह गिर पड़ा। कलेजा हाथसे छिटककर दूर जा गिरा। तभी कलेजा बोला कि 'मेरे प्यारे बेटे, तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी?'**

पाठक इस नीति-कथाको अनर्गल कल्पनाका परिणाम समझकर उसकी उपेक्षा न करें। प्रेमसे भरा हृदय अपने प्रेमपात्रकी भूल पर दया करता है और आहत किये जाने पर भी उससे प्यार करता है। प्रेमी केवल सुखका साथी नहीं होता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-९-१९२९

४२२. पत्र-लेखकसे

'इतिहासके अध्यापक, एक शंकाग्रस्त अनुयायी'को

यद्यपि आपका पत्र थोड़ा महत्त्वपूर्ण है किन्तु मुझे खेद है कि मैं उसपर ध्यान नहीं दे पाऊँगा। मैं ऐसे पत्रलेखकोंको प्रोत्साहित नहीं करता जो प्रकाशन तो प्रकाशन, सम्पादकको आश्वस्त करनेके लिए भी अपना नाम देनेका साहस नहीं रखते। उन्हें सम्पादकों पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि वे जो-कुछ प्रकट नहीं करना चाहते वह प्रकट नहीं किया जायेगा। अगर आप अपनी शंकाओंका उत्तर चाहते हों और इसके लिए अपना नाम बतानेके लिए तैयार हों तो कृपया अपने तर्कोंको पुनः लिख भेजें क्योंकि आपका उक्त पत्र तो फाड़ दिया गया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-९-१९२९

४२३. दो प्रश्न

२६ सितम्बर, १९२९

मैं जब आगरेमें था, एक सज्जनने यह पत्र लिखा था:[1]

यदि इन महाशयको मेरे पास आनेसे किसीने रोका हो तो यह दुःख और शर्मकी बात है। हाँ, यह होता तो था कि बेचारे स्वयंसेवक मेरे स्वास्थ्यकी रक्षाकी फिक्र में रहते हुए समयका ख्याल अवश्य रखते थे। उनका प्रेम मुझे उनसे मिलनेवालों से बचानेमें खर्च होता था; प्रश्नकार और दर्शनाभिलाषी प्रेमवश समयकी मर्यादाका उल्लंघन करते थे। प्रेमकी दो विरुद्ध दिशाएँ होनेके कारण कुछ खींचतान जरूर होती थी। मिलनेवालोंको कुछ कष्ट भी होता था, परन्तु शामकी प्रार्थनाके समय सब आ सकते थे। किसीको रोकटोक न थी। और प्रार्थना खुले मैदानमें होनेके कारण सब कोई आ जाते थे। हरएकको इतना तो समझ लेना चाहिए कि जब एक से अनेक मिलनेवाले होते हैं तब कुछ-न-कुछ मर्यादा आवश्यक हो जाती है।

अब प्रश्न पर आऊँ:

एक अल्प प्राणी इस पृथ्वी-भरकी जनताके प्रति जितना समभावी हो सकता है, उतना होनेकी मैं कोशिश करता हूँ। इसलिए भारतवर्ष और गुजरात से उतना ही प्रेम करनेकी चेष्टा करता हूँ, जितना पृथ्वीके अन्य प्रदेशों से। लेकिन इस समभावका अर्थ यह नहीं है कि मेरी सेवा सबको एक-सी मिलती है या मिल सकती है। मेरी आत्मा काल, स्थल और प्रसंगके बन्धनसे मुक्त होनेके कारण उसका प्रेम तो सबके प्रति समान मात्रामें बँट जाता है। परन्तु चूँकि शरीर

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

बहुत ही मर्यादित है, और शरीर और शरीरस्थ इन्द्रियोंसे जो सेवा होती है वह भी मर्यादित है, इसमें मेरी भावनाका कोई दोष नहीं है। यह दोष विधिका है। शायद, इस दोषके कारण भारतवर्षको ऐसा अनुभव होता होगा कि मैं विशेषतया उसीका हूँ और गुजरातको इससे भी अधिक। गुजरातमें, उद्योगमन्दिर-वासियोंको और भी अधिक। वस्तुतः उद्योगमन्दिरकी मारफत मेरी सेवा सारे जगत्को मिलती है। क्योंकि उद्योग-मन्दिरकी मेरी सेवा गुजरात, भारतवर्ष और जगत्, किसीकी विरोधिनी नहीं है। और इसीको मैं स्वच्छ स्वदेशाभिमान मानता हूँ, तथा इसीमें मेरी कर्त्तव्यपरायणता निहित है। ऐसे ही अनुभवों परसे 'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' महावाक्यकी घोषणा हुई है।

अब दूसरा प्रश्न:

मेरी नम्र सम्मतिमें भारतवर्षकी दशाका मुझे ठीक ज्ञान हो सका है। इसका कारण मेरा भ्रमण नहीं, परन्तु सच्ची दशा जाननेकी मेरी तीव्र इच्छा है। पश्चिमसे बहुतेरे मुसाफिर कुतूहलवश यहाँ चले आते हैं, वे मुझसे भी ज्यादा भ्रमण करें तो भी भारतकी दशा नहीं जान सकते, क्योंकि उनमें वह जिज्ञासा नहीं होती। मेरा भ्रमण देशकी दशा जान सकनेका कारण तो हुआ, परन्तु जान सकनेकी जड़ जाननेकी इच्छामें छिपी हुई थी। प्रान्त-प्रान्तकी दशामें कोई भारी भेद नहीं है, न हो सकता है। मात्रामें कुछ न्यूनाधिकता सम्भव है। भारतवर्ष पराधीन और गरीब है। यह उसका महारोग है। इसका उपचार हुआ तो सबका हुआ। यदि इसका न हुआ तो और किसी चीजका नहीं हो सकता। इतनी सीधी-सादी, सरल बात जो समझेगा उसे भारतवर्षके दुःखोंके निवारणके लिए जो इलाज मैंने बताये हैं उन्हें समझनेमें कोई कष्ट नहीं हो सकता।

हिन्दी नवजीवन, २६-९-१९२९

४२४. पत्र: छगनलाल जोशीको

बनारस
२६ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारे कुल दो पत्र मिले और दोनों अलग अलग तारीखके। ऐसा ही कानपुरमें भी हुआ था। यह विचित्र बात है। इससे डाकवालोंकी सुस्ती और चुस्ती ही जाहिर होती है। एक ही जगह डाक भेजनेके जुदा-जुदा मार्ग हों तो लगता है कि डाक विभागके कार्यकर्त्ता मार्ग अपनी मर्जीसे चुन लेते हैं।

रघुनाथ वगैरा जयन्ती या किसी और कारणसे बीजापुरसे वहाँ आये हैं, यह मुझे ठीक नहीं मालूम होता। इसमें आनेवालोंका जो दोष देखता हूँ उससे ज्यादा हमारे वातावरणमें विद्यमान एक तरहकी लापरवाहीका दोष दिखाई देता है। यह बात खास तौर से रघुनाथके काम पर लागू होती है। पूनियोंकी कमी तो होती रहती है। रघुनाथ और गोविन्दजी दोनों मिलकर बड़ी मुश्किलसे उसे पूरा कर पाते थे। और रघुनाथ उसे छोड़कर चला आया है यह ठीक नहीं लगता। लगता है

छगनलाल भी ढीला हो गया है। इसके बारेमें उसे भी लिख रहा हूँ। जिनकी उपस्थिति जरूरी थी उन्हें रोक लेना उसका कर्त्तव्य था। सम्भव है वे आज्ञाका उल्लंघन करके चले जाते। ऐसा होता तो हम भी परिस्थिति समझ जाते और उससे कुछ सीख पाते। यह सब मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि हम अपनी खामियोंको पहचानें और भविष्यमें क्या किया जाना चाहिए, इसपर विचार करें। बीजापुरमें पूनियोंकी जो आवश्यकता है उसका विचार तो करना ही है। किन्तु यदि हम इसकी दवा खोज निकालें याने कर्त्तव्यपरायण हो जायें तो पूनियोंकी जरूरतको पूरा करना आसान हो जायेगा। मुझे लगता है कि रघुनाथको बीजापुर वापस जाना चाहिए। जिन्हें पिंजाईका काम अच्छी तरह आता है वे उद्योग-मन्दिरमें भी पींजकर तैयार की कई पूनियाँ इकट्ठी करें और उन्हें हर सप्ताह भेज दें तो क्या पूनियोंकी कमी कुछ कम न हो जायेगी? इसपर विचार कर लेना।

रोटीके काममें हमें जल्दी ही कुशलता प्राप्त कर लेनी चाहिए। गंगाबहनको स्त्री-विभागसे जितना आवश्यक हो उतना समय बचाकर भी रोटीके बिलकुल ठीक बनने पर ध्यान देना चाहिए; या फिर उसे छोड़ ही देना चाहिए। नहीं तो मुझे भय है कि उससे स्वास्थ्यको हानि होगी।

जयन्ती जैसे कभी-कभी आनेवाले अवसरोंका आयोजन करनेमें कुशल बननेसे अपने नित्यप्रतिके काम नियमपूर्वक कुशलतासे करनेकी शक्ति प्राप्त करनेमें मुझे ज्यादा लाभ दिखाई देता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४४६)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७: श्री छगनलाल जोशीनेसे** भी।

४२५. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

बनारस
२६ सितम्बर, १९२९

चि० ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा पत्र मिला है। बीजापुरमें तुम्हारी तबीयत अच्छी रही, यह जानकर प्रसन्नता हुई। इससे मुझे ऐसा लग रहा है कि फिलहाल बीजापुरमें रहना ही ठीक है। तुम्हें धीरे-धीरे अपनी तबीयत पूरी तरह सुधार लेनी चाहिए।

'गीताजी'का उच्चारण बिलकुल ठीक कर लेना है। गुजराती लिपि पढ़ पाते हो या नहीं? बीजापुरमें मानसिक स्थिति कैसी रहती थी? मेरी तबीयत अच्छी है। पर्याप्त फल और दूध-दही ले रहा हूँ। रोटी शुरू नहीं की। देवदास कल आ गया है। फिलहाल तो मेरे साथ ही रहेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० २३६५)की फोटो-नकलसे।

४२६. भाषण: स्त्री-सभा, काशीमें

काशी
२६ सितम्बर, १९२९

बहनो और माताओ,

मैं आपसे कुछ बात करना चाहता हूँ। उसमें एक बात यह है कि हम हिन्दुस्तानमें स्वराज्य चाहते हैं, तो हमें यह भी जानना चाहिए कि स्वराज्यका अर्थ क्या है। स्वराज्यका अर्थ रामराज्य है। स्वराज्यका अर्थ स्वेच्छाचारिता नहीं है। पर जब तक सीताराज्य न होगा तबतक रामराज्य कैसे हो सकता है? अगर आप लोग सीताकी तरह पवित्र हो जायें तो रामराज्य आ सकता है। सीता कोई महीन कपड़ा नहीं पहनती थीं, और न वे बहुत-सा जेवर लादती थीं। उनके हृदयमें दुखियोंके लिए दया थी। जिसके हृदयमें दया भरी हो, वह क्या नहीं कर सकता। स्त्रियोंके हृदयमें स्वभाव से ही दया होती है। आप लोगोंको यह जरूर सोचना चाहिए कि करोड़ों स्त्रियोंको खानेको अन्न नहीं मिलता, पहननेको कपड़ा नहीं मिलता, उनके बच्चोंको पीनेको दूध नहीं मिलता। आप उन्हें पैसा देंगी, आटा देंगी, कपड़ा देंगी, तो उन्हें इस तरह भिखारिन बना देंगी। जिसको ईश्वरने हाथ-पैर दिये हैं, जो हमारी तरह आदमी है, उसे मेहनत करके खाना चाहिए। इसलिए उनके हाथोंसे सूत कतवाया जाये। सात करोड़ रुपयेका कपड़ा विदेशसे भारत आता है। यह विदेशी वस्त्र ज्यादातर आप स्त्रियोंमें ही खपता है। आप सब खादी पहनें जिससे इतना धन बाहर न जाये।

आप छोटे-छोटे लड़के-लड़कियोंकी शादी न करें। १८ सालसे पहले लड़कियोंकी शादी नहीं की जानी चाहिए। उन्हें अच्छी शिक्षा दें। लड़कियोंके सामने इस तरहकी बात न किया करें कि हम तुम्हारी शादी कर देंगे बल्कि उनके सामने गार्गी, मैत्रेयीका दृष्टान्त रखें।

अछूतोंसे घृणा न करें। वे भी हमारी तरह आदमी हैं। उन्हें भी ईश्वरने बनाया है। मैला उठानेसे वे अछूत या घृणित नहीं हो जाते। इस तरह मानने लगें तब तो माँ भी अछूत है; क्योंकि वह भी मैला उठाती है। पर नहीं, वह तो पूज्य है। अगर वह ऐसा न करे तो बच्चा बचे ही नहीं। आप लोग प्रेमसे मुझे पैसे, रुपये, जेवर दे देती हैं। आप लोग मेरे कामके लिए आशीर्वाद दें कि मेरा काम पूरा हो जाये। अब जिन्हें जो देना हो सो दें।

आज, २७-९-१९२९

४२७. भाषण: बनारसकी सार्वजनिक सभामें

२६ सितम्बर, १९२९

सभापतिजी, भाइयो और बहनो,

आप लोग मुझे क्षमा करें कि मेरी आवाज आप सबतक नहीं पहुँच सकती। अब मुझमें १९२० जैसी शक्ति नहीं रह गई है। आपने मानपत्र दिया है, उसके लिए मैं आपका एहसान मानता हूँ। आपने जो पैसे दिये हैं, उसके लिए आपको धन्यवाद है। आप लोग जानते हैं कि जो मनुष्य दरिद्रनारायणका प्रतिनिधि बनकर आपके सामने आया है उसका पेट भर ही नहीं सकता, उसे इतने रुपयोंसे सन्तोष नहीं हो सकता। यह ठीक कहा गया है कि आपके यहाँसे जो रकम मिली है, वह बड़ी रकम नहीं है। श्री मालवीयजी और अन्य सज्जनोंके हस्ताक्षरोंसे पाँच लाख रुपयेकी अपील निकली थी। वह रकम अभी इकट्ठी नहीं हुई है। हम लोगोंके लिए यह शर्मकी बात है। आपसे मुझे अधिक पैसे मिलने चाहिए थे। तो भी आपने अपनी इच्छाके अनुसार जो रकम दी उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

मैं आपका बहुत समय नहीं लेना चाहता। अपना बहुत समय दे भी नहीं सकता, फिर मुझे कोई नई बात भी नहीं कहनी है। कांग्रेसने हमें रास्ता बता दिया है। उसने विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करनेको कहा है। अगर विदेशी वस्त्रका बहिष्कार काशीमें नहीं हो सकता तो फिर वह कहाँ हो सकता है। आप लोग खद्दर पहनें। आप लोगोंने खद्दरके लिए द्रव्य दिया है। यदि आप खद्दर नहीं पहनेंगे तो आपका द्रव्य देना व्यर्थ है।

कांग्रेसने दूसरी बात यह कही है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी अपना-अपना दिल साफ कर लें और आपसमें मेलसे रहें।

बाहर जो-कुछ हो रहा है वह न होने दें।[1] उस ओर आप ध्यान न दें। आप लोग सभामें आये हैं इसलिए सभाके कामकी ओर ध्यान दें। मैं तो यहाँसे हटनेवाला नहीं हूँ। (हर्ष ध्वनि) हम न हिन्दू राज्य चाहते हैं और न मुस्लिम राज्य। हम जो राज्य चाहते हैं उसमें अमीर, गरीब, किसान, मजदूर, जमींदार सबके अधिकारों और हितोंका ख्याल रखा जायेगा, सबका समान पद होगा। जबतक ऐसा नहीं होता तबतक स्वराज्य नहीं होगा।

तीसरी बात अस्पृश्यता-रूपी कलंक धो डालनेकी है। हिन्दू धर्ममें, जिसमें 'गीता' जैसा ग्रन्थ है और जिसने अद्वैतकी शिक्षा दी है, अस्पृश्यता जैसी कोई बात नहीं है। हिन्दू समाजमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण अवश्य हैं; किन्तु इसके माने यह नहीं हैं कि कोई किसीसे नीचा है। हमें अस्पृश्यता रूपी धब्बा दूर करना चाहिए और अस्पृश्य कहे जानेवाले लोगोंको अपनाना चाहिए। पाठशालाएँ और मन्दिर अस्पृश्योंके लिए खोल दिये जाने चाहिए और कुओंसे अस्पृश्योंको पानी लेने देना चाहिए।

१. इस अवसरपर सभाके बाहर कुछ शोरगुल हुआ था।

चौथी बात मुझे आपसे यह कहनी है कि जो लोग शराब, अफीम आदि नशीली वस्तुओंका व्यवहार करते हों, वे इन्हें छोड़ दें। जो लोग इनका व्यवहार न करते हों, वे नशीली चीजोंका व्यवहार करनेवालोंको प्रेमसे समझायें-बुझायें, जिससे वे इनका व्यवहार छोड़ दें।

पाँचवीं बात यह है कि आप लोग कांग्रेसके सदस्य बन जायें। कांग्रेसका सदस्य बननेका मतलब होगा कि आप ऊपर कहे कांग्रेसके कार्यक्रमका पालन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। कांग्रेसके सदस्य बननेसे आप कांग्रेसके ऐसे फरमान पालन करनेको बँध जाते हैं जो आपके धर्मके विरुद्ध न हों। अगर आप ये पाँच काम कर सकते हैं तो आप पहली जनवरी १९३० में स्वतन्त्र हो सकते हैं और अपनी प्रतिज्ञाका पालन कर सकते हैं। अगर हमारे मनमें इच्छा हो, आत्मबल हो, हममें शक्ति हो तो यह कार्यक्रम पूरा करनेमें कोई रुकावट नहीं है। यह ऐसा आसान कार्यक्रम है कि इसे, एक औरत जिसे अक्षर ज्ञान नहीं है और एक बूढ़ा जिसके शरीरमें बल नहीं है, पूरा कर सकता है। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह हमें यह कार्यक्रम पूरा करनेकी शक्ति दे और हमें सफलता मिले।

आज, २८-९-१९२९

४२८. पत्र: छगनलाल जोशीको

बनारस
२६ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हें मालूम ही है कि परशुराम जो पहले आश्रममें रह गया है आजकल हिन्दू यूनिवर्सिटीमें काम कर रहा है। कुछ दिनों बाद वह वहाँ आयेगा। आजकल वहाँ एक महीनेकी छुट्टी है; इतने दिनों वह वहीं रहेगा। उससे जो काम लेना हो ले लेना। सफाई आदि मजदूरीका काम तो वह करेगा ही। किन्तु जो खास तौर पर हिन्दी सीखना चाहते हैं, वे उससे हिन्दी भी सीखें।

तिलक विद्यालयका एक विद्यार्थी भी इस समय हिन्दू विश्वविद्यालयमें पढ़ रहा है। उसके मनमें भी बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ है और अब वह आश्रममें रहना चाहता है। तुम्हें पत्र लिखनेको कहा है। वह आज कह गया है। यदि वह अपने निश्चय पर कायम रहे तो उसे आने देना। लगता है कि वह वामनराव पतकीको अच्छी तरहसे जानता है।

लखनऊ
२७ सितम्बर, १९२९

ऊपरका भाग काशीमें लिखवाया था। अब लखनऊमें पूरा कर रहा हूँ। लखनऊमें कल आई हुई डाक आज मिली है। उसमें तुम्हारा ब्योरेवार पत्र मिल गया

है। तुमने अपनी कठिनाइयोंका बहुत अच्छा वर्णन किया है। नारणदासकी देखरेखमें चलनेवाली स्त्रियोंकी कक्षाओंके कामको जितना कम छेड़ा जाये उतना अच्छा है। रोटीको हारकर न छोड़ना पड़े तो अच्छा है। बीमार पड़नेवाले रोटीसे बीमार नहीं हुए, इसमें बीमार पड़नेवाली तो कोई बात ही नहीं है। बीमारीका एक कारण यह हो सकता है कि रोटी बनानेवालोंने मर्यादाका त्याग करके रोटी चखकर देखी हो। उस ग्रेजुएटके साथ यही हुआ था न?

लक्ष्मीके ज्यादा गुजराती सीखनेके शौकको पूरा करनेकी शक्ति हममें होनी चाहिए। वालजी अगर समय बचा सकें तो उनमें पूरी योग्यता है और सीखनेवालेको उनसे हमेशा सन्तोष होता है।

तुम्हारे पत्रसे मैं यह समझा हूँ कि महादेववाला घर मिल नहीं सका। सन्तोक को तो जब तुम कहो, मैं लिखनेको तैयार हूँ।

गंगाबहन रोटी बनाये, मेरा सुझाव यह नहीं था। किन्तु वह चीजोंको मिलाने आदि कामोंकी देख-रेख करे तो भी काफी होगा, मुझे ऐसा लगता है। हसमुखराय, पतकी या भानुशंकर भी शायद इस कामको कर सकेंगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४४७)की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो – ७ : छगनलाल जोशीने** से भी।

४२९. पत्र : अ० भा० च० सं०, मिर्जापुरके मन्त्रीको

मुकाम लखनऊ
२७ सितम्बर, १९२९

मन्त्री
अ० भा० च० सं०, मिर्जापुर
अहमदाबाद

प्रिय महोदय,

कांग्रेसकी आगामी प्रदर्शनीके बारेमें आपका २४ तारीखका पत्र मिला। मुझे डॉ० गोपीचन्दके नाम लिखे अपने पत्रका कोई उत्तर नहीं मिला है। इससे मैं यह अनुमान लगाता हूँ कि संघ प्रदर्शनीमें शामिल नहीं हुआ। अगर कोई परिवर्तन हुआ तो मैं सूचित करूँगा – जरूरत पड़ी तो तारसे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५६१०)की माइक्रोफिल्मसे।

४३०. पत्र : जगन्नाथको

मुकाम लखनऊ
२७ सितम्बर, १९२९

प्रिय जगन्नाथ,

आप और देशराज, दोनोंने इस बार बड़ी तत्परता दिखाई है और मुझे श्री ब्रेनकी गति-विधियोंके बारेमें पता चल सका है। उसमें देशराजका विवरण बहुत उपयोगी चीज सिद्ध होगी। बशर्ते कि जैसा मैं सोचता हूँ रिपोर्टमें दिया विवरण बिलकुल सही हो। मुझे पता है कि श्री ब्रेन लन्दनमें हम लोगोंके लगभग विरुद्ध मिथ्या प्रचार कर रहे हैं। लाला बनारसीदासके सम्बन्धमें मैंने पुरुषोत्तमदासजीसे भेंट की है और अब मुझे वस्तुस्थिति मालूम हो गई है। इस सम्बन्धमें कुछ करनेके पहले मैं देशराजके पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५६०७)की माइक्रोफिल्मसे।

४३१. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

मुकाम लखनऊ
२७ सितम्बर, १९२९

प्रिय जयरामदास,

मुझे तुम्हारे कई पत्र मिले, परन्तु अभी तो मैं मलकानीके पत्र पर ही विचार करूँगा। मैं तुम्हारे इस विचारसे सहमत हूँ कि यदि मलकानी अर्ध-सरकारी समितिमें शामिल न होते अथवा ऐसी समितिमें शामिल होनेको टाल जाते तो अच्छा रहता। इतनी बात मैंने उनसे कह दी है और यह भी कह दिया है कि जबतक वे समितिमें कार्य करते हैं, गुजरातसे भेजा पैसा सुरक्षित रखा जाये। यह पैसा एक सरकारी समितिके माध्यमसे नहीं खर्चा जा सकता। अच्छा होता यदि जमशेद[1], मलकानीको शामिल न करते। गुजरातके दानी सज्जनोंके दिये पैसेका उपयोग न करना उनके प्रति न्याय नहीं होगा। किन्तु यदि यह धन अर्ध सरकारी संस्थाओंके माध्यमसे खर्च किया जाये तो वह और भी अधिक गलत बात होगी। जमशेदजीने मुझे लिख भेजा है कि मैं मलकानीको यह अधिकार दे दूँ कि वह गुजरातसे प्राप्त उक्त धनराशिका बकाया अंश उनकी समितिको दे दें। मैंने इस सम्बन्धमें अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए पत्रोत्तर दे दिया है। इस बात पर भी खेद प्रकट किया है कि जमशेदजीने

१. कराचीके महापौर जमशेदजी मेहता।

मलकानीको अपने जालमें फाँस लिया; इससे उनकी सेवा करनेकी शक्ति सीमित हो गई। अब जो तुम्हें ठीक लगे, करो। मुझे आशा है, गुजरातमें तुम्हें सत्यनिष्ठ और संवेदनशील वातावरण मिला है।

हृदयसे तुम्हारा

श्री जयरामदास दौलतराम
कांग्रेस भवन
बम्बई

अंग्रेजी (१५६११)की माइक्रोफिल्मसे।

४३२. पत्र : छगनलाल जोशीको

लखनऊ
२८ सितम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

इमामसाहब आज सवेरे यहाँ पहुँच गये हैं। वे मजेमें हैं।

आत्मज्ञान बिना सच्ची अनासक्तिके नहीं हो सकता, यह बात बिलकुल सच है। अनासक्तिमें अज्ञान, निर्दयता और उदासीनताका समावेश कभी नहीं हो सकता। जो व्यक्ति सचमुच अनासक्त है उसका काम आसक्त मनुष्यके कामसे बहुत ज्यादा सुन्दर और सफल होता है। आसक्त मनुष्य कई बार घबरा जाता है, चिन्तामें कुछ भूल जाता है, उसके मनमें द्वेषका भाव भी आ जाता है। और द्वेषसे काम बिगड़ता जरूर है। अनासक्त इन सब दोषोंसे मुक्त रहता है। यह सब तुम्हें लिखनेकी कोई बात नहीं है। किन्तु अवसर आने पर ऐसी बातका स्मरण करा देनेका असर दूसरी तरहका ही होता है। तुम किसी भी तरह घबराहटमें न पड़ो। इसके लिए मुझे जैसा सूझ जाता है, मददके विचारसे वैसा लिख भेजता हूँ।

तुमने पैसेके बारेमें विद्यापीठसे जो पत्र-व्यवहार किया, वह मुझे तो ठीक ही लगता है। न्यासीके नाते तुम और क्या कर सकते थे। इससे गलतफहमी हो तो उसे क्षणिक समझकर सह लेना। जब तक तुम्हें यह विश्वास हो कि तुमने कोई काम आवेश या द्वेषरहित होकर किया है तबतक उसकी चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं है।

गुजराती (जी० एन० ५४४८) की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो–७: श्री छगनलाल जोशीने** से भी।

४३३. भाषण : लखनऊ विश्वविद्यालयके छात्रोंके समक्ष

२८ सितम्बर, १९२९

मानपत्रका[1] जवाब देते हुए महात्मा गांधीने इस बातपर दुःख प्रकट किया कि मानपत्र हिन्दुस्तानीमें न होकर अंग्रेजीमें है। लखनऊ उर्दू संस्कृतिका गढ़ है; इस कारण मानपत्र देवनागरी और उर्दू लिपियोंमें लिखा जाना चाहिए था। यह विश्व-विद्यालयमें अध्ययन करनेवाले हिन्दू-मुस्लिम छात्रोंके आपसी मेलजोलका परिचायक होता। गांधीजी ने उन लोगोंकी भर्त्सना की जो मातृभाषाकी उपेक्षा करके उस भाषाके अध्ययन पर जोर देते हैं जो विदेशी है। मैं स्वयं अंग्रेजी भाषाके अखबारका सम्पादन करता हूँ, जिससे यह तो निस्सन्देह सिद्ध होता है कि मैं अंग्रेजी भाषाका विरोधी तो नहीं ही हूँ। जो मैं चाहता हूँ वह यह है कि हर बातको अपनी उचित जगह मिले। उन्होंने जनरल बोथाका उदाहरण दिया और कहा कि इंग्लैंडके राजाके निमन्त्रण पर जब वे उनसे मिलने गये तो अपने साथ एक दुभाषिया भी ले गये थे; यद्यपि उन्हें अंग्रेजी भाषाका अच्छा ज्ञान था। यह सब केवल इसी बात पर जोर देनेके लिए किया गया था कि वे डच थे और अन्य भाषाओंकी तुलनामें डच भाषाका अधिक सम्मान करते थे। महात्मा गांधीने आशा प्रकट की कि भविष्यमें लखनऊ विश्वविद्यालयमें राष्ट्रीय भाषाके विकास पर जोर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
लीडर, २-१०-१९२९

४३४. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी बैठक, लखनऊमें

२८ सितम्बर, १९२८

मुझे मालूम है कि मेरा नाम प्रस्तावित हुआ था और मैं बहुमतसे चुन भी लिया गया था, किन्तु इतनी बड़ी जिम्मेदारी सँभालनेमें, मैं अपने-आपको बिलकुल अयोग्य पाता हूँ। यों यह एक बहुत बड़ा सम्मान है। इस अवसरका उपयोग मैं इस बातको स्पष्ट कर देनेमें करना चाहता हूँ कि यह मेरी कमजोरी ही है जिसके कारण मैं इस जिम्मेदारीको उठानेमें हिचकिचा रहा हूँ और इसे मैं 'यंग इंडिया' के माध्यमसे कई बार स्पष्ट भी कर चुका हूँ।

मेरे मनको सबसे ज्यादा तो इस बातने छुआ कि पण्डित मालवीय यहाँ आये; उनका यहाँ आनेका कोई इरादा नहीं था।

उनका यहाँ आनेका उद्देश्य मुझे केवल इस पदके लिए राजी करना-भर था। मैं देख पा रहा हूँ कि उन्हें बड़ी निराशा हुई है। यह तो ठीक है कि मैं यह

१. यह मानपत्र लखनऊ विश्वविद्यालय विद्यार्थी संघने दिया था।

जिम्मेदारी नहीं सँभालना चाहता किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कांग्रेसके कार्यक्रमसे अपने-आपको अलग-थलग रखूँगा। कुछ लोगोंने कहा है कि अगर मैं इस पदको स्वीकार नहीं करता तो वह एक और अभूतपूर्व गलती होगी। मगर मुझे ऐसा नहीं लगा और मेरी अन्तरात्मा मुझे इस जिम्मेदारीको सँभालनेकी इजाजत नहीं दे रही है।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि लाहौर कांग्रेसमें, जो भी कार्यक्रम आप तय करेंगे, उसमें मैं आप लोगोंके साथ रहूँगा।

मेरी समझमें इस वर्ष कांग्रेसका अध्यक्ष न बनकर मैं अधिक काम कर सकूँगा। मैं सदनको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैंने कलकत्तेमें जिम्मेदारी निभानेका जो वायदा किया था, मैं अपने उस वायदे पर दृढ़ हूँ। कांग्रेसका यह ताज, काँटोंका ही है; इसे कोई भी स्वीकार नहीं करता। क्यों? क्योंकि इसमें बहुत बड़ी जिम्मेदारीका सवाल आ जाता है। मैं सुझाव दूँगा कि अबतक जो-कुछ हुआ है उसे भुलाकर आप किसी अन्यको चुन लें। मैं अपनी पूरी शक्तिके साथ उसे सहयोग दूँगा। मैं बुरीसे-बुरी सम्भाव्य स्थितिके लिए तैयार रहूँगा। मैं १ जनवरी, १९३०को आरम्भ होनेवाली लड़ाईसे भागना नहीं चाहता। कांग्रेसके कामके लिए कार्यक्रम बनाने और योजनाएँ तैयार करनेमें मैं पूरे मनसे सहयोग दूँगा। जिस बातकी मैं आपसे आशा रखता हूँ वह तो यह है कि आप अपने मनोंसे यह व्यर्थकी बात निकाल दें कि अगर मैं अध्यक्ष न बनूँ और मोतीलालजी भी आगे न आयें तो कांग्रेस ठप्प हो जायेगी। आप लोगोंको अपने विश्वास पर अचल रहना चाहिए और कामको आगे बढ़ाना चाहिए।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २-१०-१९२९

४३५. पत्र : छगनलाल जोशीको

[२८ सितम्बर, १९२९के पश्चात्][2]

चि० छगनलाल जोशी,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। रंगूनसे कोठारीकी मारफत आया हुआ और पैसा भी होना चाहिए। लगभग ३५,००० रुपये आये थे, मुझे कुछ ऐसा याद पड़ता है। काठियावाड़-परिषद् या किसी दूसरे खातेमें देखना। ऐसा भी हो सकता है कि उसका कुछ भाग देशबन्धु खादी-कोषमें पड़ा हो; क्योंकि सारे पैसेका काठियावाड़में इस्तेमाल नहीं किया जाना था। इसलिए इसके बारेमें खबर जमनालालजीके यहाँसे या कोठारी से पूछने पर मिलेगी। रंगूनवाले इस हिसाबको छापना चाहते हैं।

स्त्री-विभागमें फेरफार स्थगित करनेकी बात समझ गया हूँ। उसे कायम रखा जा सके, तो बहुत अच्छा ही होगा। किन्तु जबरदस्ती न करना। गंगाबहन या वसु-

1. बैठकमें जवाहरलाल नेहरूको कांग्रेसका अध्यक्ष चुना गया।
2. साधन-सूत्रके अनुसार।

मती यह प्रयत्न करते-करते टूट न जायें, इसका ध्यान रखना है। अपनी इच्छासे काम करते-करते वे थककर टूटें तो उसकी चिन्ता नहीं है। किन्तु जहाँ प्रेम अथवा शर्मके कारण कोई ऐसे प्रयोगमें लगा रहे वहाँ टूट जाना ठीक नहीं है।

इस समय तो महादेव वहीं . . .[1]

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने

४३६. एक नौजवानके तीन सवाल

एक नौजवानने तीन सवाल पूछे हैं। पहला सवाल यों है :[2]

मेरे विचारमें ऐसे भयंकर व्याह, व्याह नहीं, एक प्रकारसे बलात्कार हैं। कानून कुछ भी कहता हो, ये धर्म-विरुद्ध तो हैं ही। अगर इस तरह बिकी हुई बालिका छुड़ाई जा सके तो मैं जरूर उसे छुड़ाऊँ और किसी योग्य वरके साथ उसका ब्याह कर दूँ। जहाँ-जहाँ ऐसे ब्याह हों, नवयुवक उन्हें जनताके सामने रखें, कन्याके माता-पिताका पता लगाकर उनके पास जायें, और जिस बूढ़े पुरुषने विवाह किया हो उसे समझायें कि वह उस कन्याको मुक्त कर दे। इन कामोंके लिए नवयुवकोंका योग्य, प्रतिष्ठित और विनयशील होना जरूरी है। कन्या सचमुच बालिका होनी चाहिए। वरकी उम्रके मुकाबले कन्या छोटी भले हो, लेकिन वह समझदार है और स्वेच्छासे ब्याही गई है तो वहाँ कोई उपाय नहीं चल सकता। ऐसी युवती स्त्रियाँ समाजमें पड़ी हैं, जो धनके लोभसे वृद्ध पुरुषोंके हाथ अपना शील बेचतीं और बादमें न करने योग्य काम करती हैं। इन्हें समझाना बड़ा मुश्किल है। लेकिन जहाँ कन्या बालिका है, नासमझ है, पिता या अभिभावकने सिर्फ पैसेके लोभसे जिसे बेच दिया है, वहीं कुछ किया जा सकता है। जब एक-दो ऐसे मामलोंमें नवयुवक अपनी सफलता सिद्ध कर सकेंगे, तब बूढ़े पुरुष बालकन्याको ढूँढ़ना छोड़ देंगे और वय:प्राप्त विधवाको ढूँढ़कर अपनी विषयेच्छा तृप्त करेंगे।

दूसरा प्रश्न यों है :[3]

सट्टा पूरी तरह जुआ है। उससे जनताको तनिक भी लाभ नहीं पहुँचता। इसमें शंका भी नहीं कि इससे व्यापार भी बिगड़ता है। सट्टेका धन चोरीके धनके समान

१. पत्र अधूरा है।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें कुछ बूढ़ोंके कम उम्रकी बालिकाओंके साथ हुए विवाहोंका उल्लेख था और कहा गया था कि बूढ़ोंने पैसा देकर ये विवाह किये थे और जातिसे बहिष्कृत होनेपर दण्डस्वरूप फिर कुछ पैसा पंचायतको देकर समाजमें शामिल हो गये थे।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें कहा गया था कि पहले सट्टेके विरोधमें बातें करनेवाले अनेक शिक्षित युवक बादमें सट्टेबाजोंके यहाँ नौकरी करते देखे जा रहे हैं और फिर वे स्वयं भी धीरे-धीरे सट्टा करने लगे हैं।

है। सट्टेको बन्द करनेके लिए लोकमतको सुशिक्षित और जाग्रत बनाना चाहिए। यह बुराई बहुत पुरानी है, और आज सर्वव्यापक बन गई है। जबतक मनुष्य-जाति लोभ का त्याग नहीं करती, तबतक किसी-न-किसी रूपमें सट्टा जीवित ही रहेगा। नवयुवक संसारकी सारी बुराइयोंको नहीं रोक सकते। अगर वे स्वयं शुद्ध बन जायें तो बहुत-कुछ हो सकता है।

तीसरा प्रश्न :

क्या विवाहके अवसर पर जातिभोज देना उचित है? बारातमें ३०–३० या ४०–४० आदमियोंका जाना मुनासिब है?

जातिभोज जितना त्याज्य है उतना ही त्याज्य बारातमें जाना है। इनके कारण निरर्थक खर्च बढ़ता है, और धार्मिक विधिकी गम्भीरताको हानि पहुँचती है। जो नवयुवक ब्याहे जायें उन्हें जातिभोज और बारातकी प्रथाका दृढ़तापूर्वक विरोध करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-९-१९२९

४३७. टिप्पणी

उपवास बनाम सत्य आचार

एक पाठक लिखते हैं :

मनोवृत्ति पर काबू कैसे प्राप्त हो, इस प्रश्नको लेकर हमारे मण्डलमें चर्चा छिड़ी थी। हम सब इस निश्चयपर पहुँचे कि उपवास या सत्य आचरण ही इसके दो मार्ग हैं; किन्तु दोनोंमें सरलतर कौन-सा है, हम इसका निर्णय न कर सके।

मालूम होता है कि इस मण्डलने उपवास और सत्य आचरणके प्रभावका निरीक्षण नहीं किया है। अन्यथा यह प्रश्न खड़ा ही न होता। उपवासमें मनोवृत्तिको दबानेकी कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। अनेक अवसरोंपर उपवास करनेवालेकी मनोवृत्ति मलिन होती देखी गई है। एकादशी वगैराके उपवास करनेवालोंमें से बहुतेरोंका स्वभाव उपवास-कालमें इतना उग्र बन जाता है कि उनके आसपासके लोग उनके नजदीक जाते हुए काँपते हैं। अगर उपवासमें मनोवृत्ति पर काबू प्राप्त करनेकी स्वतन्त्र शक्ति होती तो बहुत पहलेसे ही असंख्य भुक्खड़ोंका कल्याण हो गया होता। हाँ, इतना जरूर कहा जा सकता है कि जिसे मनोवृत्ति पर काबू पानेकी इच्छा है, उसे उपवास यत्किंचित् सहायता जरूर करते हैं।

मगर सत्य आचरण मनोवृत्तिको अंकुशमें रखनेका सर्वोपरि साधन है। उसमें मनोवृत्ति पर काबू बनाये रखनेकी अपार और अमोघ शक्ति है। अतएव सत्यके साथ उपवासकी तुलना की ही नहीं जा सकती। जिसमें सत्य नहीं है, वह सचाईके साथ मनोवृत्ति पर काबू पा ही नहीं सकेगा। लेकिन जो सत्यशील है उसके लिए मनोवृत्ति

पर अंकुश रखना एक सहज बात है। सत्यका आचरण करते हुए मनोवृत्तिको काबूमें रखना अनिवार्य हो जाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-९-१९२९

४३८. टिप्पणी : जयकृष्ण भणसालीको

२९ सितम्बर, १९२९

जो ईश्वरका भक्त है उसके साथ तो वनस्पति भी बातें करती है; क्योंकि वह उसमें ईश्वर और उसकी लीलाको देखता है। भक्ति-रसके इन अनेक स्वरूपोंको हमने पहचाना नहीं है। यदि पहचान लें तो भक्तिका सौन्दर्य तत्काल बढ़ जाये।

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने

४३९. भाषण : लखनऊमें

२९ सितम्बर, १९२९

महात्माजी ने नगरपालिका-भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहरानेकी रस्म अदा की। झंडा फहरानेके बाद महात्माजी ने देरसे पहुँचनेके लिए जनतासे क्षमा माँगी।

आप लोगोंने इस अवसर पर यहाँ आनेका अवसर देकर जो सम्मान मुझे दिया है उसके लिए मैं आभारी हूँ। लेकिन मैं चाहूँगा कि आप इस तिरंगे झंडेका महत्त्व पूरी तरह समझें। यह केवल खादीका निरर्थक टुकड़ा नहीं है। झंडेका लाल रंग त्यागका प्रतीक है जब कि सफेद पवित्रताका और हरा आशाका। तीनों रंग केवल एक ही उद्देश्यके लिए हैं और वह है एकताका। प्रत्येक नागरिकका यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि एक बार लहराये जानेके बाद यह झुकने न पाये।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३०-९-१९२९

४४०. भेंट : 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे

२९ सितम्बर, १९२९

महात्मा गांधीने 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे विशेष भेंटमें अ० भा० कां० कमेटीकी लखनऊमें हुई बैठकके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा :

अ० भा० कां० कमेटीकी बैठककी कार्यवाही बहुत शान्तिपूर्वक चली और लाहौर कांग्रेसका सभापतित्व अस्वीकार करनेसे सम्बन्धित मेरे स्पष्टीकरणके बाद बैठकमें किसी प्रकारकी अनावश्यक उत्तेजनाका प्रदर्शन नहीं किया गया। कलकी कार्यवाहीसे अ० भा० कां० कमेटीकी बुद्धिमत्ताका परिचय मिला।

यह पूछे जाने पर कि देशको आगे बढ़ानेके लिए लाहौर कांग्रेसमें क्या कार्यक्रम बनाया जायेगा, महात्माजी ने कहा :

लाहौर कांग्रेस क्या-कुछ करेगी सो तो मैं नहीं कह सकता।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २-१०-१९२९

४४१. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

लखनऊ

मौनवार, ३० सितम्बर, १९२९

बहनो,

लखनऊ तो परदा-प्रथाका केन्द्र माना जाता है। यहाँ मुसलमान बहनें बहुत रहती हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि उनका दुःख कैसे मिटे? मैं तो एक ही जवाब दे सकता हूँ न? हम खुद ही अपने बन्धन गढ़ते हैं। कल ही इन बहनोंकी सभा थी। उन्हें वहाँ परदेमें रहनेके लिए किसीने मजबूर नहीं किया था; मगर उन्होंने खुद ही मान लिया था कि परदेके बिना चल ही नहीं सकता। ऐसी अड़चनें दूर करनेके लिए आश्रम है और उसकी डोर तुम्हारे हाथमें है यदि तुम बन्धन तोड़कर, मर्यादा-धर्मका पालन करके, ज्ञान लेकर, सेवा-परायण बन जाओ तो दूसरी बहनोंके लिए सहजमें ही उदाहरण बन जाओगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०३)की फोटो-नकलसे।

४४२. पत्र : तारामती मथुरादास त्रिकमजीको

लखनऊ
३० सितम्बर, १९२९

तुम्हारे पूज्य पिताके देहान्तका समाचार मुझे देवदासने दिया था। उसी वक्त लिखनेका विचार किया था लेकिन फिर बात ध्यानसे उतर गई। मृत्युसे मुझे बहुत आघात नहीं पहुँचता और उसपर आश्वासन भी इसीके अनुकूल देता हूँ। जन्म और मृत्युमें कोई अन्तर नहीं है; यह मैं प्रतिदिन और भी स्पष्ट रूपसे देख रहा हूँ। यह दोनों एक ही चीजके दो पक्ष हैं। हमारा दोनोंमें आना-जाना होता रहता है। मैंने कई बार चूहोंको एक बिलसे दूसरेमें आने-जानेका खेल खेलते हुए देखा है। जेलकी कोठरीमें मुझे भी कई बार एक दीवार तक पहुँचकर फिर दूसरी दीवारकी ओर जाना पड़ता था। अब सोचा, किस दीवारको छोड़ा और किसे पकड़ा। यह तो हुई ज्ञान-वार्ता; किन्तु है यह सच्ची। इससे मनको जितनी तसल्ली दे सको देना। फिर काल तो अपना स्मृतिपट पोंछनेका काम कर ही रहा है। ऐसा न होता तो कौन जाने हम कहाँ होते।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

४४३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

लखनऊ
३० सितम्बर, १९२९

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले हैं। मैं लखनऊसे लिख रहा हूँ। तुमने अखबारोंमें देख लिया होगा कि मैंने अध्यक्ष-पदसे इनकार कर दिया है। मेरी तबीयत अच्छी है। वजन ठीक बढ़ा है। और भी बढ़नेकी सम्भावना है।

अब तो सुशीलाके आनेकी राह ही देख रहा हूँ।

यहाँका (संयुक्त प्रान्तका) दौरा नवम्बरके ठेठ आखिरी सप्ताह तक चलेगा। अधिक लिखनेका समय नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७६०)की फोटो-नकलसे।

४४४. पत्र : नारणदास गांधीको

लखनऊ
मौनवार [३० सितम्बर, १९२९][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारा प्रणाम मिल गया है। मगर पत्रमें तुमने मुझे घबराहटमें डालनेवाली एक बात भी लिखी है कि छगनलालका वजन घटता जा रहा है और अब वह सिर्फ ९६ रतल रह गया है। भले ही तुम्हारे स्वभावसे उसके स्वभावका पूरा मेल नहीं बैठता मगर तुम जाओ और उसकी मदद करो। न जानेका कारण तुमने नहीं लिखा है। उसके पत्रमें तो इतना ही लिखा है कि शायद तुम्हें उसकी बातसे दुःख हुआ हो। छगनलालको कुछ हफ्तोंके लिए आराम मिलना चाहिए। यह मुझे जरूरी दिखाई दे रहा है और यह भी लगता है कि ऐसा तभी हो सकता है जब तुम बोझ उठा लो। तुम्हारे रास्तेमें कुछ कठिनाइयाँ हों तो लिखना। पुरुषोत्तमका वजन बहुत कम बना हुआ है। क्या टट्टी अपने-आप और बिना दवाके आती है? उसके हजीरामें रहनेका प्रबन्ध हो जाये तो अच्छा है। वह वहाँ थोड़ा समय बिताकर देखे तो ठीक होगा।

जमनादासका छाजन अच्छा क्यों नहीं हो रहा है? क्या उसने इसके बारेमें कोई सबब लिखा है?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने

४४५. पत्र : छगनलाल जोशीको

[सितम्बर १९२९ के अन्तमें][2]

चि० छगनलाल,

दो दिन हो गये तुम्हारी ओरसे पत्र नहीं मिला।[3] इसका यह अर्थ मत लगाना कि तुम्हें अकारण ही क्यों न हो, रोज पत्र लिखना है।

खालीशपुर आश्रमका बिल वापस भेज रहा हूँ। यह खादी बिना मँगाये भेजी गई है। किन्तु उसकी कीमत ठीक लगे तो उन्हें पैसा भेज देना। यह खादी कैसी है, सूत कैसा है, इसके बारेमें मुझे लिखना।

१. सोमवार ३० सितम्बर, १९२९ को गांधीजी लखनऊमें थे।
२. साधन-सूत्रमें यह पत्र १–१०–१९२९ के पत्रके अक्टूबरसे पहले दिया गया है।
३. गांधीजी यही वाक्य दो बार लिख गये थे।

बड़ी गंगाबहन शान्त हो गई है क्या? यशोदादेवीका क्या हुआ?

कृष्णमैया देवीके बारेमें पता लगाना। छुट्टी देनी पड़े तो दे देना। महावीरसे चुपचाप पूछा जा सके तो पूछना कि ये सब लोग बार-बार बीमार क्यों पड़ते रहते हैं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने

४४६. पत्र : फूलचन्द शाहको

फैजाबाद
१ अक्टूबर, १९२९

भाईश्री ५ फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। वनठलीके मेघवाल भाई मकान बनाना चाहते हैं, किन्तु वे इसके लिए भी रियासतसे पैसा प्राप्त क्यों नहीं करते? क्या किसीने रियासतको अर्जी दी थी? यदि उन्हें मदद देनी ही पड़े तो अन्त्यज-समिति मदद क्यों नहीं देती? दूसरी रीतिसे मदद देना आवश्यक लगे तो भी इसपर तो विचार किया ही जाना चाहिए कि हम जामनगर जैसी रियासतमें खर्च करें या नहीं। यदि इसमें कोई आपत्ति न जान पड़े तो समिति रियासतको बाकायदा एक पत्र लिखकर देखे कि रियासत उनके लिए मकान क्यों नहीं बनाती।

यदि बढ़वानकी अन्त्यज-शालाके लिए उसकी अपनी जमीन आवश्यक हो तो समितिको उसका विचार भी कर लेना चाहिए।

इस विषयमें जहाँ मेरी सहायताकी खास जरूरत जान पड़े वह भी समितिके मारफत लेना कदाचित अधिक योग्य होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८५८) की नकल से।
सौजन्य : फूलचन्द शाह

४४७. पत्र : शिवाभाईको

फैजाबाद
१ अक्टूबर, १९२९

भाई शिवाभाई,

मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ लिया है। मुझे इतनी जानकारी नहीं है कि मैं स्वतन्त्र रूपसे उसकी परीक्षा कर सकूँ। मोटे तौर पर तो तुम्हारा तर्क ठीक जान पड़ता है। किन्तु तुम्हें इस विषयमें अप्पा साहब और जेठालालके साथ पत्र-व्यवहार करना चाहिए। मैं तुम्हारा पत्र अप्पा साहबको तो भेजे ही दे रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९४९३) की फोटो-नकलसे।

४४८. पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको

फैजाबाद
१ अक्टूबर, १९२९

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने चरखा-वर्गका काम हाथमें लिया, यह अच्छा हुआ। इसे परिपूर्णता तक पहुँचाया जा सके तो पहुँचाना। इसके लिए तुम्हें अपनी तबीयत दुरुस्त कर लेनी चाहिए। उतना ही श्रम करना जितना शरीर सहन कर सके। दूध, गेहूँ और सब्जियोंसे बनी हुई चीजें अधिक लिया करो। गेहूँसे बनी चीजें और सब्जियाँ मुख्य खुराक होनी चाहिए। यदि पचा सको तो कुछ ताजी और कच्ची सब्जी भी लेनी चाहिए। बच्चे काममें लगते जा रहे हैं, यह अच्छा हुआ है। मोतीबहनका ज्वर बिलकुल चला गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७३२)की फोटो-नकलसे।

४४९. पत्र : छगनलाल जोशीको

[१ अक्टूबर, १९२९][1]

चि० छगनलाल,

मैं आज अकबरपुरमें हूँ। साथमें सिर्फ बा, कृपलानीजी और कान्ति हैं। अब्बास अनायास ही मिल गया है। उसे यहाँ [कामसे] आना था। यहाँ रहनेकी कठिनाईके कारण बाकी लोगोंको लखनऊ छोड़ आया हूँ। यहाँ कुछ ही घंटे रहना है।

तुमने कलके पत्रमें मेरा विश्वास प्राप्त करनेके बारेमें लिखा था। विश्वास तो असीम है। नहीं तो हमारी आपसमें निभ नहीं सकती थी। मुझे चिन्ता तो तुम्हारे स्वास्थ्य, तुम्हारी स्थिरता और आत्मविश्वासकी रहती है। यदि तुममें ये चीजें बनी रहें तो तुम बाकी सभी कुछ कर सकोगे।

जिस कामको न कर सको उसे हाथमें मत लो। यदि वह हाथमें है ही और छोड़ना पड़े तो भी मैं आड़े नहीं आऊँगा। शक्तिमें कमी नहीं आनी चाहिए और जो-कुछ करो वह ठीक तरहसे हो। अधीर होकर कुछ नहीं करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४७९) की फोटो-नकलसे।

४५०. पत्र : छगनलाल जोशीको

जौनपुर

बुधवार [२ अक्टूबर, १९२९][2]

चि० छगनलाल,

फैजाबादके पतेपर भेजी गई डाक कल मिल गई।

इसके साथ शीरींबहनका ३०० रुपयोंका चैक भेज रहा हूँ। उसे फुटकर खातेमें जमा कर देना ताकि खादी, अन्त्यज आदि जिस काममें जरूरत हो उसमें इसका इस्तेमाल किया जा सके।

इसके साथ भाई माधवलालके लिए पत्र है। उसे पढ़कर दे देना। वे चर्चा करना चाहें तो कर लेना।

गोसेवा-प्रदर्शनीका वर्णन लिख भेजना। शहरकी प्रदर्शनीमें कितने लोग आये थे? गोसेवा-प्रदर्शनीमें कितने लोग आये थे? अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। मगन-

१. गांधीजीके अकबरपुरमें उपस्थित होनेके उल्लेखसे।

२. गांधीजी इस दिन जौनपुरमें थे।

भाईसे की गई तुम्हारी माँग मुझे तो ठीक लगती है। ऐसे शुद्ध व्यवहारको हम सब समझ नहीं पाते। दिल्लीके श्री आयरलैंडकी बात तो मैं तुम्हें बता चुका हूँ न? वे एन्ड्रयूजके परम मित्र हैं। एन्ड्रयूजने उनकी साइकिल इस्तेमाल की, उसके लिए उन्होंने उनसे दो-तीन रुपये ले लिये; क्योंकि वे अपने-आपको साइकिलका ट्रस्टी मानते थे। शिमला जाते समय उन्होंने मुझसे सैकंड क्लासका भाड़ा लेनेसे इनकार कर दिया और इन्टरका ही भाड़ा लिया। ऐसा अति शुद्ध व्यवहार परम मित्रोंके बीच होना ही चाहिए। हरिश्चन्द्र, तारामती और रोहितका उदाहरण तो हमारे पास है ही। तुम निर्भय रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४७८) की फोटो-नकलसे।

४५१. हिन्दू पत्नी

नीचे एक भाईके लम्बे पत्रका सारांश[1] दे रहा हूँ, जिसमें उन्होंने अपनी विवाहिता बहनके दुःखोंका वर्णन किया है:

> थोड़े समय पहले मेरी बहनका विवाह एक ऐसे व्यक्तिके साथ हो गया, जिसके चरित्रसे हम अनजान थे। यह व्यक्ति बादमें इतना लम्पट और विषयी साबित हुआ . . .। बहनने उन्हें समझाया, लेकिन वे उसके इस 'औद्धत्य' को सह न सके . . .। मेरी बहनका हृदय टूक-टूक हो गया है। हम लाचार हैं। कृपा कर कहिए, हम या हमारी बहन क्या करें? हिन्दू धर्मकी शर्मभरी अवस्थाका यह एक चित्र है — उस हिन्दू धर्मकी, जिसमें स्त्रियोंको सर्वथा पुरुषों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसमें स्त्रियोंको न कोई अधिकार प्राप्त हैं और न रियायतें ही। . . . हजारों बहनें इस अन्यायका शिकार बनकर रात-दिन आर्त स्वरसे रोती-कलपती रहती हैं। जबतक हिन्दू धर्मसे ये और ऐसी ही अन्य बुराइयोंका नाश नहीं होता, क्या उन्नतिकी आशा की जा सकती है?

पत्र-लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने पूरे पत्रमें अपनी बहनके दुःखोंका रोमांचकारी चित्र खींचा है। इस सारांशमें वे सब बातें नहीं आ सकतीं। पत्र-लेखकने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है। उन्होंने हिन्दू धर्मकी जो निन्दा की है, वह असीम दुःखकी वेदनाका परिणाम होनेसे क्षम्य भले हो, किन्तु उनका यह कथन एक उदाहरणके आधार पर खड़ा किया गया है, अतः अतिव्याप्त और अतिरंजित है। क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएँ अपनी गृहस्थीकी रानी बनकर पूर्ण सन्तोष और सुखकी जिन्दगी बिताती हैं। वे अपने पतियों पर इतना प्रभुत्व

1. अंशत उद्धृत।

रखती हैं कि कोई भी स्त्री उनसे ईर्ष्या कर सकती है। यह प्रभुत्व उन्हें प्रेमके कारण प्राप्त होता है। पत्र-लेखकने निर्दयताका जो उदाहरण पेश किया है, वह हिन्दू धर्मकी बुराईका चिह्न नहीं, बल्कि मनुष्य-स्वभावमें निहित उस बुराईका नमूना है, जो किसी एक ही जाति या धर्मके मनुष्योंमें नहीं पाई जाती, बल्कि सब जातियों और सब धर्मोंके मनुष्योंमें मिलती है। क्रूर पतिके खिलाफ तलाक दे देनेकी प्रथासे भी उन स्त्रियोंकी रक्षा नहीं हुई है, जो न तो अपना अधिकार जताना जानती हैं, न जताना चाहती हैं। अतएव सुधारकोंको चाहिए कि वे और कुछ नहीं तो सिर्फ सुधारोंके खातिर ही अतिरंजन या अतिशयोक्तिसे काम लेनेसे बाज आयें।

तथापि इस पत्रमें जिस घटनाका उल्लेख किया गया है, वैसी घटनाएँ हिन्दू-समाजके लिए सर्वथा असाधारण नहीं हैं। हिन्दू संस्कृतिने स्त्रीको पतिकी अत्यधिक गुलाम बनाकर और उसे पतिके सर्वथा अधीन रखकर बड़ी भारी भूल की है। इसके कारण पति कभी-कभी अपने अधिकारका दुरुपयोग करते हैं और पशुवत् व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरहके अतिचारका उपाय कानूनका आश्रय लेनेमें नहीं, बल्कि विवाहिता स्त्रियोंको सच्चे अर्थोंमें सुशिक्षित बनाने और पतियोंके अमानुषी अत्याचारके विरुद्ध लोकमत जाग्रत करनेमें है। प्रस्तुत मामलेमें जिस उपायसे काम लिया जाना चाहिए वह अत्यन्त सरल है। इस संकटग्रस्त बहनके दुःखको देखकर रोने या अपनी लाचारीका अनुभव करनेके बजाय उसके भाई और दूसरे रिश्तेदारोंको चाहिए कि वे उसकी रक्षा करें, उसे यह समझायें, सिखायें तथा विश्वास दिलायें कि एक पापी-दुराचारी पतिकी खुशामद करना या उसकी संगतिकी आशा रखना उसका कर्त्तव्य नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि उसका पति उसकी जरा भी चिन्ता नहीं रखता — तनिक भी परवाह नहीं करता। अतएव कानूनी बन्धनको तोड़े बिना ही वह अपने पतिसे अलग रह सकती है। और अपने मनमें यह अनुभव कर सकती है कि उसका ब्याह कभी हुआ ही नहीं अवश्य ही एक हिन्दू पत्नीके लिए, जो तलाक नहीं दे सकती, इस सम्बन्धमें कानूनकी रू-से भी दो मार्ग खुले हैं: एक तो मारपीट करनेके कारण पतिको सजा दिलानेका और दूसरा, उससे जीविकाके लिए आजीवन सहायता पानेका। लेकिन अनुभवसे मुझे पता चला है कि अगर सर्वदा नहीं तो बहुधा यह उपाय निरर्थकसे भी बुरा सिद्ध हुआ है। इसके कारण किसी भी सती स्त्रीको कभी सुख नहीं मिला, उलटे पतिका सुधार, असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य जरूर बन गया है। समाजको इस रास्ते कदापि नहीं जाना चाहिए, पत्नीको तो किसी हालतमें भी नहीं। प्रस्तुत मामलेमें तो लड़कीके माता-पिता उसको निबाह लेनेमें सब तरह समर्थ हैं; लेकिन जिन सताई हुई स्त्रियोंको यह आश्रय प्राप्य न हो, उन्हें भी आश्रय देनेवाली अनेक संस्थाएँ देशमें दिन-दिन बढ़ रही हैं। एक और प्रश्न रह जाता है; वे युवती स्त्रियाँ जो अपने क्रूर पतिका साथ छोड़कर अलग होती हैं, या जिन्हें पति स्वयं घरसे निकाल देते हैं, जो तलाकसे मिलनेवाली सुविधा प्राप्त नहीं कर सकतीं अपनी विषयेच्छाको कैसे तृप्त करेंगी? मेरे विचारमें यह कोई इतना गम्भीर प्रश्न नहीं है; क्योंकि जिस समाजने युगोंसे तलाककी प्रथाको त्याज्य मान रखा है, उस समाजकी

स्त्रियाँ एक बार वैवाहिक जीवनका कटु अनुभव पा लेने पर दुबारा विवाह करना ही नहीं चाहतीं। जब किसी समाजका लोकमत इस तरहकी सुविधा प्राप्त करना चाहता है, तो मेरे विचारमें वह मिल भी जाती है। पत्र-लेखकके पत्रसे जहाँतक मैं समझ सका हूँ, उनकी यह शिकायत तो कदापि नहीं है कि पत्नी अपनी विषयेच्छा तृप्त नहीं कर पा रही है। उन्हें शिकायत तो पतिके भयंकर और बेलगाम व्यभिचारकी है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मनोवृत्तिको पलट देना ही इसका उपाय है। हमारी और अनेक बुराइयोंके समान ही बेबसीकी भावना भी एक काल्पनिक बुराई है। दूषित कल्पनाके कारण शोक और दुःखका जो साम्राज्य समाजमें फैला हुआ है, वह थोड़ेसे मौलिक विचार और नये दृष्टिकोणके आते ही नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। ऐसे मामलोंमें मित्रों और रिश्तेदारोंको चाहिए कि वे अत्याचारके शिकारको शिकारीके पंजेसे छुड़ाकर ही सन्तोष न मान बैठें; बल्कि ऐसी स्त्रीको समझाकर उसे सार्वजनिक सेवाके योग्य बनानेका प्रयत्न करें। इन स्त्रियोंके लिए इस तरहकी शिक्षा पतिके शंकास्पद सहवाससे कहीं अधिक सुखद और लाभप्रद होगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३-१०-१९२९

४५२. सहस्रमुखी दानव

छुआछूतके दानवने अपने सहस्र मुखोंसे विषैले दाँतोंका जितना प्रदर्शन दक्षिणमें किया है, वैसा भयंकर प्रदर्शन अन्यत्र कहीं नहीं किया। इस क्षेत्रका एक पत्र-लेखक इस प्रकार लिखता है:

> **चूँकि कट्टरपंथियोंमें इस बातका भय है कि अस्पृश्यताका प्रचार करनेवाले इस प्रश्नको अनावश्यक रूपसे इतना महत्त्व दे रहे हैं जिससे छुआछूतके मूलभूत प्रश्न और समस्याएँ और अधिक उलझ सकती हैं और अनावश्यक तनाव उत्पन्न हो सकता है; मैं चाहता हूँ कि आप छुआछूतके कार्यका क्षेत्र और मर्यादा निर्धारित करनेके लिए अपने सुस्पष्ट विचार, प्रश्नोंके रूपमें नीचे लिखी बातोंके आधार पर दें।**

यद्यपि मैं नहीं समझता कि 'अस्पृश्यताके प्रचारक' या यों कहें 'अस्पृश्यता-निवारण'के प्रचारकोंने ऐसा कुछ किया है जिससे ऐसा तनाव पैदा हुआ है जो टाला जा सकता था। फिर भी उन प्रश्नों पर विचार करना ज्यादा अच्छा होगा जो उन लोगोंके मनमें भी उठते हैं जिनके इरादे किसी भी प्रकारसे खराब नहीं हैं और जो, यथासम्भव छुआछूत-निवारण आन्दोलनको अपना समर्थन दे सकते हैं किन्तु जो अनजानेमें ही सदियों पुराने पूर्वाग्रहोंसे चिपटे हुए हैं।

पत्र-लेखकका पहला प्रश्न है:

> **क्या आप यह समझते हैं कि वर्णाश्रम धर्म भारतकी राष्ट्रीयताके निर्माणसे मेल नहीं खाता?**

पहली बात तो यह है कि वर्णाश्रम धर्मका छुआछूत या आजकलकी रूढ़ जाति-प्रथासे सम्बन्ध नहीं है। दूसरी बात यह है कि वर्णाश्रम धर्म, जैसा मैं जानता-समझता हूँ, भारतकी राष्ट्रीयताके विकासमें बाधक नहीं है। इसके विपरीत, यदि वर्णाश्रम धर्मका वही भाव है जैसा मैंने लिया है, तो वह सच्ची राष्ट्र-भावनाओंके विकासमें योग देगा।

दूसरा प्रश्न है:

क्या आप यह सोचते हैं कि स्पर्श या दृष्टि-दोषोंको वैदिक कालसे ही मान्यता मिलती आ रही है?

मुझे वेदोंका इतना ज्ञान तो नहीं है कि मैं उसके आधार पर विश्वासपूर्वक कुछ कह सकूँ; किन्तु वेदोंकी पवित्रतामें मुझे पूर्ण विश्वास है और मैं यह कहनेमें किसी संकोचका अनुभव नहीं करता कि स्पर्श और दृष्टि-दोषोंका वेदोंमें कहीं उल्लेख नहीं है। किन्तु मेरी तुलनामें सर्वश्री सी० वी० वैद्य और पण्डित सातवलेकर जैसे विद्वान् इसपर साधिकार कह सकेंगे। फिर भी मैं इतना जरूर और कहना चाहूँगा कि नैतिकताके विरुद्ध कोई भी आचरण, फिर चाहे वह वैदिक कालसे ही क्यों न होता आया हो, तत्काल छोड़ देने योग्य है। यह आचरण तो वेदोंकी मान्यताओंके विपरीत है; और इससे भी बढ़कर वह आधारभूत आचार-शास्त्रके विपरीत है।

अगले चार प्रश्नोंको सार-रूपमें इस प्रकार रखा जा सकता है:

क्या आप यह नहीं मानते कि कर्मकाण्ड आकर्षण-शक्तिके नियमों पर आधारित है और स्पर्श एवं दृष्टिका दोष, जन्म व मृत्युके समयके सूतकोंका विधान मनकी पवित्रताके लिए है?

जहाँ तक इस प्रकारके विधानोंका सवाल है, यह तो कहना ही होगा कि उनकी कोई कम-ज्यादा उपादेयता तो है ही; किन्तु वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य शास्त्रों, और संसारके अन्य धर्म-ग्रन्थोंमें भी, यह बात स्पष्ट रूपसे कही गई है कि मनकी शुद्धता एक आन्तरिक प्रक्रिया है। शारीरिक प्रक्रियाओंसे उत्पन्न आकर्षण-शक्ति मनसे मन पर पड़नेवाले प्रभावोंसे उत्पन्न सूक्ष्म आकर्षण शक्तिकी तुलनामें कुछ भी नहीं है। यदि बाहरी शुद्धिके लिए किये कर्मकाण्डके फलस्वरूप व्यक्ति दम्भी बन जाये और वह अपने-आपको, अपने साथी मनुष्योंकी तुलनामें श्रेष्ठ माने, और अपने साथियोंको पशुओंके समान, अथवा उनसे भी बुरा समझे तो ऐसे कर्मकाण्ड आत्माका हनन करने लगते हैं।

सातवाँ प्रश्न है:

क्या आप समझते हैं कि जीवन्मुक्त लोगों पर अर्थात् उन लोगों पर जो इस शरीरमें ही मुक्त हो गये हैं, विधि-निषेधका बन्धन नहीं होता; और क्या उनका आचरण सामान्य लोगोंके आध्यात्मिक उत्थानमें सहायक होता है?

मैं नहीं समझता कि कोई व्यक्ति फिर चाहे वह कितना ही ऊँचा क्यों न उठ गया हो, यदि संसार और संसारी लोगोंमें रहता है, तो वह साधारण मर्त्य जीवों

पर लागू होनेवाले विधि-निषेधसे मुक्त कैसे हो सकता है। अतः विधि-निषेध तर्क-सम्मत होने चाहिए। इनके द्वारा आत्माका हनन नही होना चाहिए। छुआछूत सम्बन्धी नियम आत्माके विकासमें बाधक सिद्ध किये जा चुके हैं और ऐसा ही फिर सिद्ध किया जा सकता है। ये नियम हिन्दू धर्मकी उदात्त भावनाओंके पूर्णतः विपरीत हैं।

तब प्रश्न किया गया है:

क्या आप वर्ण-धर्म में विश्वास नहीं करते?

इस विषयमें मैं अपना विश्वास इन पृष्ठोंमें अनेक बार स्पष्ट कर चुका हूँ; और मैं उसपर अटल हूँ। मेरे विचारसे वर्ण-धर्मका छुआछूत अथवा एक वर्गकी दूसरे वर्गसे श्रेष्ठताके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

अगला प्रश्न है:

नीचे लिखे श्लोकमें छुआछूतके बारेमें अपवादोंका उल्लेख है:

कल्याणे तीर्थयात्रायां राष्ट्रकोपे च संभ्रमे।
देवोत्सवे च दारिद्रये स्पृष्टिदोषो न विद्यते।।

कल्याणकारी अवसरों पर, तीर्थयात्रा और राष्ट्रीय प्रकोपके समय, संभ्रमकी स्थितिमें, देवोत्सवके समय या निर्धनताके दौरान छुआछूतका दोष नहीं लगता। इन अपवादोंसे नियमकी पुष्टि होती है। क्या आप इस प्रमाणको अपने सेवा-कार्य पर भी लागू करेंगे और छुआछूतकी सीमा निश्चित करेंगे?

जिस विद्वान्‌ने इस श्लोककी रचना की है उसने अपने अपवाद-क्षेत्रमें, जिनकी कल्पना की जा सकती थी उन सभी अवसरोंको शामिल कर लिया है। इसलिए मैं चाहूँगा कि छुआछूतके समर्थक 'यंग इंडिया' के पाठकोंके लिए उन अवसरोंका विवरण दें, जो संभ्रम, दरिद्रता और कल्याणकारी अवसरोंकी श्रेणीमें नहीं आते। उक्त पत्र-लेखकने भी भयंकर दरिद्रता नहीं देखी है या कभी विभिन्न प्रान्तोंके लोगोंके बारेमें सोचा नहीं है; जहाँ छुआछूतका पालन केवल पारम्परिक आधार पर ही हो रहा है। किसीने भी विवेकपूर्वक अछूतोंके न देखने योग्य और दूर रखे जाने योग्य होनेकी बातकी समझदारीके साथ कोई परिभाषा नहीं दी है।

अन्तिम प्रश्न है:

राजनीतिको अध्यात्मवादके रंगमें रँग देनेके लिए आप छुआछूतके मामलेमें किस हद तक छूट देना चाहेंगे?

इसकी कोई सीमा नहीं है। राजनीतिमें अध्यात्मवादी विचारधाराको लानेका मूल आधार है छुआछूतके उस रूपको, जिसमें वह आज भी प्रचलित है, समूल नष्ट कर दिया जाये। जन्म अथवा धन्धेके साथ जुड़ा छुताछूतका सिद्धान्त अत्यधिक दूषित सिद्धान्त है और मनुष्यकी धार्मिक भावनाओंके विरुद्ध है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१०-१९२९

४५३. चरखेका गीत

सुदूर अमेरिकासे मार्जरी कैनेडी फ्रेजरने गेलिक भाषाके एक मधुर गीतका अंग्रेजी उल्था भेजा है; जो इस प्रकार है:

> **स्नेह दिया है, मैंने तुझको, मेरे प्रियतम**
> **स्नेह दे सकी बहिन न जैसा कभी बन्धुको**
> **और न जैसा माता भी शिशुको दे पाई**
> **तू चरखा है और तार मैं,**
> **जिसे नियति ही चला रही है।**

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१०-१९२९

४५४. 'तुम्हें बहकाया जा रहा है'

अमेरिकासे रवाना होनेके पहले दीनबन्धु सी० एफ० एन्ड्रयूजने 'क्रिश्चियन सेंच्युरी' के मई अंकमें प्रकाशित रेनहोल्ड नेबुरकी लेखनीसे निकला एक लेख[1] भेजा है; वह नीचे दिया जा रहा है। इस लेखको मैं अनुच्छेदोंके मूल शीर्षकोंके साथ, जैसाका-तैसा छाप रहा हूँ। इसमें गति और आवश्यकतासे ज्यादा उत्पादन अथवा कहिए, केवल लाभके लिए किये गये उत्पादनमें निहित भ्रान्तिको व्यावहारिक ढंगसे समझाया गया है। अगर हमारे यहाँ दोष हैं तो पश्चिमके निवासियोंके सामने भी हमारे मुकाबिलेमें कम परेशानियाँ नहीं हैं। मैं चाहता हूँ कि इस लेखसे पाठक यह समझ लें कि किसीकी सन्दिग्ध पद्धतिकी नकल करके हम अपनी कमियोंको दूर करनेका यत्न न करें। सबसे पहले हमें अपनी कमियोंके कारणोंको धैर्यपूर्वक समझना होगा और इसके बाद उतने ही धीरजके साथ हमें स्वयं इनका उपचार जानना होगा। फिर आशा और निश्चय लेकर इसपर अमल भी करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१०-१९२९

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

४५५. युवकोंकी कसौटी

पिछली ता० २९ सितम्बरके दिन पण्डित जवाहरलाल नेहरूको अगले सालके लिए महासभाका कर्णाधार चुनकर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने बड़ी बुद्धिमानीसे काम लिया है। जो जाति जान चुकी है और आजादीके लिए तड़प रही है उसके लिए कोई भी महान् पुरुष, फिर वह महात्मा ही क्यों न हो, अनिवार्य नहीं है। जिस तरह एक सम्पूर्ण वस्तु उसके अंशसे बड़ी होती है, उसी तरह कांग्रेस भी, जो कि सारे राष्ट्रकी प्रतिनिधि संस्था है, उसके बड़ेसे-बड़े अंशसे सर्वदा बड़ी है। और एक प्राणवान संस्थाके नाते उसे अपने बड़ेसे-बड़े सुप्रसिद्ध सदस्योंके बिना भी काम चला लेना चाहिए। अपने निर्णय द्वारा कांग्रेस कमेटीने यह सिद्ध कर दिया है कि वह कांग्रेसकी आन्तरिक शक्तिमें विश्वास रखती है।

कुछ लोग यह सोचकर भयभीत हो रहे हैं कि सत्ताके इस तरह बूढ़ोंसे निकल कर जवानोंके हाथमें चले जानेसे कांग्रेस नष्ट हो जायेगी — उसके दुर्दिन निकट आ लगेंगे। लेकिन मुझे यह भय नहीं है। अगर महासभाका राजदण्ड मेरे जैसे पुरुषके निर्बल हाथोंमें रहता तो अवश्य ही इस दुर्दिनका डर बना रहता। मैं पाठकोंको एक रहस्यपूर्ण बात बता देना चाहता हूँ। वह यह है कि इस भारको सँभालनेके सम्बन्धमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूके नामकी सिफारिश[1] करनेसे पहले मैंने उनसे यह पक्का कर लिया था कि आया वह इस भारको उठानेकी काफी ताकत अपनेमें अनुभव करते हैं या नहीं। उन्होंने अपने स्वभावके अनुरूप कहा था: "अगर बोझ मेरे सिर लाद ही दिया जायेगा तो, मुझे आशा है, मैं उसे उठानेमें पीछे न हटूँगा।" वे अपने ढंगके बेजोड़ वीर हैं। देश-प्रेमके क्षेत्रमें उनसे बढ़कर और कौन है? कुछ लोग कहते हैं, "जवाहरलाल जल्दबाज और साहसी या गर्म-मिजाज है।" लेकिन इस समयके लिए तो ये बातें भी विशेष गुणरूप हैं। और जहाँ उनमें एक योद्धाके समान साहस और चपलता है, वहाँ एक राजनीतिज्ञकी-सी बुद्धिमत्ता और दूरन्देशी भी है। अनुशासनके वे पूरे भक्त हैं और ऐसे समय भी जब कि अनुशासनमें रहना अपमान-सा प्रतीत होता था उन्होंने उसका कट्टरताके साथ पालन करके बताया है। इसमें शक नहीं कि अपने आसपासवालोंके मुकाबले वे बहुत ज्यादा अतिवादी और उग्रविचारवादी हैं। लेकिन साथ ही वे नम्र और व्यवहारकुशल इतने हैं कि किसी बात पर इतना अधिक जोर नहीं देते कि वह अमान्य हो जाये। जवाहरलाल स्फटिक के समान शुद्ध हैं। उनकी सचाईके सम्बन्धमें तो शंकाकी गुंजाइश ही नहीं। वे एक निडर और निष्कलंक सरदार हैं। राष्ट्र उनके हाथोंमें सुरक्षित है।

लेकिन अब देशके नौजवानोंकी कसौटी होगी। सालभर हुआ, नौजवानोंमें जागृति की लहरें उठ रही हैं। साइमनकमीशनके बहिष्कारकी उज्ज्वल सफलतामें नौजवानोंका

१. देखिए "ताज कौन पहने?" १-८-१९२९।

नि:सन्देह अधिकसे-अधिक हाथ था। जवाहरलाल नेहरूके इस चुनावको वे अपनी उन सेवाओंका पुरस्कार मान सकते हैं। लेकिन इस सफलताके कारण नौजवान ऐसा न समझ लें कि वे जो करना था सो कर चुके। अभी तो उन्हें कई मंजिलें तय करनी पड़ेंगी, तब कहीं राष्ट्रको उसका जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त होगा। जब भाप अपने-आपको एक मजबूत लेकिन छोटेसे पात्रमें कैद कर लेती है तो वह महान् शक्ति-शालिनी बन जाती है और बादमें नपे-तुले किसी छोटेसे रास्तेसे निकलकर एक ऐसी प्रचण्ड गति उत्पन्न कर देती है कि उसके द्वारा बड़े-बड़े जहाज और भारी वजनदार मालगाड़ियाँ चलाई जा सकती हैं। इसी तरह देशके नौजवानोंको भी स्वेच्छासे अपनी अखूट शक्तिको एक सीमामें आबद्ध कर लेने और उसे अंकुशमें रखनेकी जरूरत है जिससे मौका पड़ने पर वे उसका उचित परिमाणमें आवश्यक उपयोग कर सकें। पण्डित जवाहरलालजी का राष्ट्रपति बनाया जाना बतलाता है कि राष्ट्रको नौजवानोंमें कितना विश्वास है। अकेले जवाहरलाल कुछ नहीं कर सकते या बहुत ही कम कर सकते हैं। देशके नौजवानोंको उनकी भुजा और दृष्टि बनकर काम करना चाहिए। आशा है, देशके नौनिहाल अपनेको इस विश्वासके योग्य सिद्ध करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१०-१९२९

४५६. टिप्पणियाँ

उचित श्रेयके अधिकारी

भोपालके नवाबकी प्रशंसा[1] — और सो भी नपेतुले शब्दोंमें — करनेके कारण अनेक संवाददाता मुझ पर बिगड़ उठे हैं। लेकिन अगर मैं ऐसा न करता तो असौजन्य और उससे भी अधिक सत्यको छिपानेका अपराधी बनता। नवाब साहबका आतिथ्य स्वीकार करके और उनके निवासस्थानकी, जिसे महल कहना उपयुक्त नहीं, सादगीका प्रत्यक्ष अनुभव करके भी अगर मैं वस्तुस्थितिको छिपाये रहता और जो बात कहने योग्य थी उसे न कहता तो अपने अतिथिके प्रति और स्वयं अपने प्रति बेवफादार ठहरता। मैंने कोई ऐसी बात नहीं कही जो सदाके लिए या सबके लिए प्रशंसाका प्रमाण ठहरे। मेरे पास ऐसे कोई साधन भी नहीं थे, जिनके आधार पर मैं भोपालके शासनके सम्बन्धमें अपनी राय कायम कर सकता। इच्छा होती तो भी मेरे पास इस विषयको समझने-करनेका समय नहीं था। इसलिए शासनके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर करनेकी मुझमें न कोई पात्रता थी, न उसका मुझे कोई हक था। एक संवाददाताने देशी राज्य परिषद् द्वारा तैयार की गई रिपोर्टमें से एक टिप्पणी की नकल मेरे नाम भेजी है। उसके आधारपर अपनी राय कायम करनेमें मैं असमर्थ हूँ।

१. देखिए "भाषण: सार्वजनिक सभा, भोपालमें", १०-९-१९२९।

वैसे भी, टिप्पणीमें लगाये नये अभियोगों पर राज्यके अधिकारियोंकी राय ले लेने एवं उनकी बात सुन लेनेके पहले ही उसे प्रकाशित कर देना मैं उचित नहीं समझता। लेकिन चूँकि मैं नपे-तुले शब्दोंमें प्रशंसाके दो शब्द कह गया हूँ और देशी राज्योंके सम्बन्ध में अपना विश्वास प्रकट कर चुका हूँ, पूरे-पूरे विश्वासके साथ उक्त टिप्पणी मैंने नवाबके पास भेज दी है; मुझे आशा है, वह उसे ध्यानसे पढ़ेंगे और उदारतापूर्वक उसपर विचार भी करेंगे।

नागरी प्रचारिणी सभा

नागरी प्रचारिणी सभा, (काशी)के मन्त्रीजी ने नीचे लिखी विज्ञप्ति प्रकाशनार्थ भेजी है:

> **काशीकी भारतीय कला-परिषद्‌ने अपने चित्रों, मूर्तियों और अन्य ऐतिहासिक तथा साहित्यिक वस्तुओंका समूचा संग्रह नागरी प्रचारिणी सभाको सौंप दिया है। इस बहुमूल्य संग्रहकी कीमत एक लाख रुपयेसे भी ज्यादा बताई जाती है। इस वस्तु-संग्रहालयको सजाकर रखनेके लिए सभाने अपने भवनकी दूसरी मंजिलका सारा हिस्सा, जो २५,०००)की लागतसे बना था, दे दिया है। सभा अपने सदस्यों और दूसरे सज्जनोंसे, जो इस काममें दिलचस्पी रखते हैं, प्रार्थना करती है कि वे उक्त संग्रहालयके लिए कलापूर्ण या ऐतिहासिक वस्तुएँ देकर या दिलाकर सभाकी सहायता करें। जो सज्जन अपनी चीज किन्हीं शर्तों पर भेजना चाहें, वे खुशीसे वैसा कर सकते हैं। ऐसी शर्तोंका यथोचित पालन किया जायेगा। आशा है, कला, भूगर्भ विज्ञान, साहित्य और इतिहास आदिसे प्रेम रखनेवाले सज्जन इस काममें हमारी सहायता करेंगे।**

इस विज्ञप्तिके मिलनेसे पहले ही मैं उस विशाल भवनको देख आया था, जिसमें संग्रहालय स्थायी रूपसे रहेगा। मैंने संग्रहालयमें रखी हुई वस्तुएँ भी देखी हैं और वे दर्शनीय हैं। आशा है, सभाकी अपीलके उत्तरमें कलाप्रेमी जनताकी ओरसे सभाको समुचित एवं उदार आश्रय मिलेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१०-१९२९

४५७. संयुक्त प्रान्तका धर्म

महासभाकी बागडोर इस वर्ष संयुक्त प्रान्तके एक महान् पुरुषके हाथोंमें है और आगामी वर्ष वह उन्हींके नवयुवक सुपुत्रके हाथोंमें रहेगी। इसलिए भारतवर्षके प्रति संयुक्त प्रान्तका कर्त्तव्य बहुत ज्यादा बढ़ गया है। मुझे याद नहीं आता कि कभी किसी प्रान्तके दो नेता, लगातार एकके बाद एक सभापति हुए हों। पिताके बाद पुत्रके गद्दी-नशीन होनेका तो यह पहला ही दृष्टान्त है। जिस प्रान्तमें पिताके रहते हुए पुत्र इतना योग्य माना जाता हो कि पिताके बाद दूसरे ही वर्षमें वह एक महान् राष्ट्रका नेता बने, उस प्रान्तके लिए अवश्य ही यह गौरवकी बात है।

दूसरे, संयुक्त प्रान्त हिन्दुस्तानके मध्य भागमें बसा हुआ है। संयुक्त प्रान्तमें भारत की स्वतन्त्रताका एक युद्ध हो चुका है। संयुक्त प्रान्त ही पूज्य मालवीयजी का सेवा-क्षेत्र है। संयुक्त प्रान्त ही में हिन्दुओंके सर्वोत्तम तीर्थस्थान हैं और संयुक्त प्रान्तमें मुसलमानी बादशाहतके स्मारक रूप अनेक स्तम्भ,स्मृति-चिह्न भी हैं। इस या ऐसे संयुक्त प्रान्तके लोग अगर जी-तोड़ मेहनत करें, पूरा-पूरा प्रयत्न करें तो अगले साल भारतवर्षकी अभिलाषाके परिपूर्ण होनेमें कुछ भी कष्ट न हो।

संयुक्त प्रान्त बड़े-बड़े जमींदारों और ताल्लुकेदारोंका केन्द्र है। साथ ही वहाँ निर्धनता भी है। सम्भव है, संयुक्त प्रान्तकी गरीबी उत्कलकी गरीबीसे बहुत कम न हो। कई स्थानोंमें तीन-तीन सालसे बराबर अकाल पड़ता चला आ रहा है। लोगोंके पास न काम है, न पैसा है और वे भूखों मरते हैं। जिसमें उन्हें स्थायी काम मिले और वे भूखों मरनेसे बचें उनके लिए तो वही स्वराज्य हो सकता है। अगर संयुक्त प्रान्तके नौजवान चाहें तो वे गाँवोंमें प्रवेश करके चरखा-प्रचार द्वारा जनताको काम और दाम, दोनों दे सकते हैं। साथ ही विदेशी वस्त्र-बहिष्कार भी सम्पन्न किया जा सकता है। चरखेका जिक्र मैंने एक मिसालके तौर पर किया है। मैं तो यही चाहता हूँ कि किसी-न-किसी तरह हम अपने इन करोड़ों भाई-बहनोंकी बेकारी और उनकी भुखमरी का नाश करें और उनकी सेवामें लग जायें। जबतक हम दूरसे ही उनके बारेमें विचार रखेंगे, परन्तु उनके पास जाकर उनके कष्टोंको जानने और उन्हें मिटानेकी कोशिश नहीं करेंगे, तबतक हमें समझ रखना चाहिए कि हमने कुछ नहीं किया, और उस दशामें स्वराज्य हमारे लिए आकाश कुसुमकी तरह एक काल्पनिक वस्तु-मात्र बना रहेगा।

हिन्दी नवजीवन, ३-१०-१९२९

४५८. पत्र : एम० हिंधेडेको

मुकाम आजमगढ़
३ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा पुस्तिकाओंके[1] लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। यह सूचित करते हुए मुझे खेद है कि प्रयोग असफल-से सिद्ध हुए और इसलिए उन्हें फिलहाल छोड़ना पड़ा है। इन्हें मैं किन्हीं अधिक अच्छे मुहूर्तमें जब मेरे पास ऐसे प्रयोगोंके लिए समय अधिक होगा, आरम्भ करूँगा। मुझे यह तो मानना ही चाहिए कि दूधके बदले लिया जा सकनेवाला पदार्थ मुझे नहीं मिला है। सोयाबीनसे दूध प्राप्त करनेका सुझाव जरूर आया है; उसे मैं आजमा नहीं सका हूँ। भारतमें सोयाबीन आसानीसे नहीं मिलता। मैं इसे पानेकी कोशिश कर रहा हूँ। यों दूधके बिना स्वस्थ रहना कठिन नहीं है; लेकिन लम्बी बीमारीके बाद आनेवाली कमजोरी हटानेमें दूधका उपयोग न किया जाये तो बड़ा फर्क पड़ता है। मेरे चालीससे भी अधिक साथियोंने बिना राँधा भोजन करनेका प्रयोग किया था किन्तु उनमें से अधिकांशको इसमें सफलता नहीं मिली, इस कारण उन्होंने इसे छोड़ दिया।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० हिंधेडे
अरनेरिंगसुंडरसुगल्सर
फ्रेड्रिक्सबर्ग एले २८
कोबिनहाव्न–५

अंग्रेजी (एस० एन० १५१९७)की फोटो-नकलसे।

१. एम० हिंधेडेने भोजन-सम्बन्धी अंग्रेजीकी कुछ पुस्तिकाएँ भेजी थीं। लेखक शाक-सब्जी व फल आदि खानेकी सलाह तो देता था, पर दूध पीनेमें उसका विश्वास नहीं था।

४५९. पत्र : फ्रेड्रिक बी० फिशरको

मुकाम आजमगढ़
३ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

पिछले महीनेकी २५ तारीखको लिखे आपके पत्रके लिए धन्यवाद। साबरमतीसे जो कागजात मुझे भेजे गये हैं उनमें मुझे न्यूयार्क 'गोल्डन रूल फाउंडेशन'[1] का वह पत्र नहीं मिला जिसका उल्लेख आपने किया है। आपके पत्रसे मैंने उसके सारांश का अनुमान लगा लिया है। यह पत्र लिखाते समय एक बातकी ओर मेरा ध्यान अवश्य जा रहा है और वह है भारतीय बच्चोंके लिए दूधकी कमी। अमेरिकावासी मित्र हमारी रचनात्मक सहायता इस प्रकार कर सकते हैं कि वे दान देनेकी अपेक्षा गो-पालनके शास्त्रीय ज्ञानके विशेषज्ञोंकी व्यवस्था करें। वे ऐसे विशेषज्ञ भेजें जो लोकोपकारके नाम पर अनुचित लाभ उठानेवाले न होकर सच्चे अर्थोंमें जनसेवी हों और जो केवल ज्ञान देनेकी दृष्टिसे ही काम करें। वे भारतमें पशुओंकी स्थितिका अध्ययन करें और हमें सिखायें कि हम अपने पशुओंकी नस्ल कैसे सुधार सकते हैं और वर्तमान पशुधनसे अधिकसे-अधिक दूध किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। इस विचारको यदि उचित भावनासे समझाया जा सके तो इसे काफी व्यापक रूप दिया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्री० फ्रेड्रिक बी० फिशर
बिशप निवास
मेथॉडिस्ट एपिसकोपल चर्च
३, मिडिल्टन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १५६०२)की फोटो-नकलसे।

१. 'गोल्डन रूल फाउंडेशन' संसार-भरके बच्चोंके कल्याण हेतु स्थापित 'नियर ईस्ट रिलीफ एसोसिएशन' की उत्तराधिकारी संस्था थी।

४६०. पत्र : एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोको

मुकाम आजमगढ़
३ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। समझमें नहीं आता कि आपको किस प्रकार सान्त्वना दूँ। आपने मुझे एक रिपोर्ट भेजी थी और यह भी चाहा था कि मैं उसके बारेमें स्पष्ट रूपसे अपने विचार लिखूँ। किन्तु मैं आपकी इच्छा पूरी नहीं कर सका। 'हाफ बार्न'[१] (वर्णसंकर) शब्दको आप अत्यधिक अपमान-सूचक क्यों मानते हैं? इसका एक सुपरिचित अर्थ है और इसका प्रयोग मैंने उन लेखोंमें भी देखा है जिनका मन्शा आंग्ल-भारतीयोंको अपमानित करनेका नहीं है। शासन करनेवाली जातिके समान ही, किसी औरके द्वारा किये जानेवाले दावेका भी अगर मैं दृढ़तापूर्वक विरोध करूँ तो इसमें गलत क्या है? विरोध तो किया ही जाना चाहिए; शासक-जातिके ऐसे दावोंका प्रतिरोध हो रहा है और क्रान्तिकारी नतीजे सामने आनेवाले हैं। मैं जानता हूँ कि हमारा जन्म हमारे वशकी बात नहीं है; लेकिन जन्मको छिपानेका प्रयत्न किया जा रहा है। वह उसी प्रकार दुःखकी बात है जिस प्रकार ब्रिटिश उपनिवेशों या यूरोपमें रहनेवाले भारतीयों द्वारा अपने मूलको छिपानेके निरर्थक प्रयत्न मुझे दुःखद जान पड़ते हैं। शायद मैं ऐसे कितने ही आंग्ल-भारतीयोंको अधिक निकटसे जानता हूँ जिन्हें 'आंग्ल-भारतीय' शब्दका ही पता नहीं है। वे तो केवल इतना जानते हैं कि उनके पिता कोई यूरोपवासी थे और वे उन्हें और उनकी माताको असहाय अवस्थामें छोड़ कर चल दिये हैं। क्या आप निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि नेतागण "अब अपने भाग्यको भारतीयोंके साथ जोड़नेके लिए तैयार हैं?" मैं जानता हूँ कि आपकी निजी इच्छा तो यही है। लेकिन नेताओंमें अधिकांशकी यह इच्छा कदापि नहीं हो सकती। अपने पत्रके अन्तिम अनुच्छेदमें आपने लिखा है कि मैं पत्रको 'यंग इंडिया'में प्रकाशित कर दूँ। अगर आप चाहेंगे तो मैं छाप दूँगा किन्तु मैं आपको इस बात पर इस तरह जोर देनेकी सलाह न दूँगा। आपका पत्र कटु आलोचनाका विषय बन जायेगा। आंग्ल-भारतीयोंकी समस्या जितनी आप समझ सके हैं, उससे भी ज्यादा कठिन है और केवल समाचार-पत्रोंमें लिखने-भरसे इसका समाधान नहीं हो सकता। इसे तो ऐसे प्रबुद्ध आंग्ल-भारतीय ही सुलझा सकते हैं जो हालातकी पेचीदगीको समझते हैं और उन लोगोंको उबारनेके लिए नीचे उतरकर आनेके लिए तैयार हैं, जिनकी न तो गोरी चमड़ी है और न ही जिनके पास इतना पैसा है जिससे वे अगुओंकी तरह खतरनाक और बनावटी जीवन जी सकें। मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं इने-गिने सम्पन्न आंग्ल-भारतीयोंके मामलोंमें रुचि नहीं रखता; क्योंकि

१. आंग्ल-भारतीय लोगोंके लिए प्रयुक्त शब्द, देखिए "आंग्ल भारतीय", २९-८-१९२९।

मैं उन असंख्य लोगोंमें रहता हूँ जो अपने ही लोगों द्वारा बड़ी निर्ममताके साथ बहिष्कृत कर दिये जानेके कारण भयंकर एकाकी जीवन बिता रहे हैं; और बहिष्कार करनेवाले ये लोग अपने-आपको कुलशील सम्पन्न मानते हैं।

हृदयसे आपका,

श्री मोरेनो
महाप्रधान
एंग्लो-इंडियन लीग
२, वेलेजली स्क्वायर
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १५६३१)की फोटो-नकलसे।

४६१. पत्र : अमीना कुरैशीको

आजमगढ़
३ अक्टूबर, १९२९

चि० अमीना,

तुम्हारा पत्र मिला। बहुत खुशी हुई। यह गुजराती तो कुरैशीकी लिखी हुई है, किन्तु इसमें कोई हर्ज नहीं है। तुम्हारी तबीयत अच्छी रहती होगी और छोटी बेगमें भी आनन्द करती होंगी। उर्दूका अभ्यास चल रहा है या नहीं? क्या पढ़ रही हो? लिखनेका अभ्यास कायम रखा है या नहीं? छोड़ दिया हो तो फिर शुरू कर देना।

इमाम साहबसे कहना कि यहाँ आजमगढ़में मौलाना सुलेमान नदवी रहते हैं। वे मुझे शिबली मंजिल दिखाने ले गये थे। इस मंजिलमें अरबी और उर्दूकी बहुत-सी किताबें हैं और उसकी स्थापना मरहूम मौलाना शिबलीकी यादगारमें की गई है।

बापूकी तुम दोनोंको दुआ

गुजराती (जी० एन० ६६५५)की फोटो-नकलसे।

४६२. पत्र : बसन्तकुमार बिड़लाको

आजमगढ़
३ अक्टूबर, १९२९

चि० बसन्तकुमार[1],

तुमारा खत और सुत पाकर मुझे बहोत आनन्द हुआ। तुमारे लीये सुत अच्छा माना जाय। अब मेरा संदेश यह है। क्योंकि कातनेका आरंभ कर दीया है उसे यज्ञ समझकर चलाते रहना और नित्य दरिद्रनारायण अर्थात हमारे कंगाल भाई बहनोंका चिंतवन करना।

मोहनदासके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ६१७८ से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

४६३. पत्र : छगनलाल गांधीको

गाजीपुर
३ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला है। तुम्हें प्रभुदासकी चिन्ता तो होती होगी। लेकिन इस चिन्ताको मनमें बनाये रखनेके बदले उसे कम करनेका प्रयत्न करना। प्रभुदास लिखता है कि मुझे तुम दोनोंकी जो चिन्ता होती होगी उसे उसका बुखारसे ज्यादा ध्यान है। यह सिद्ध हो जाये कि उसे नीचा प्रदेश अनुकूल नहीं आता तो उसे अल्मोड़ामें ही रहने देना चाहिए। वहाँ भी काम तो है ही और वहाँ भी उसका कुछ लोगोंसे सम्बन्ध बन गया है; इसलिए रहनेमें भी असुविधा नहीं होगी। शायद यह पत्र मिलनेके समय तक प्रभुदास तुम्हारे पास ही पहुँच जायेगा। मुझे आशा है कि अब उसका बुखार टूट गया होगा।

मैंने रघुनाथको वहाँ पहुँच जानेके लिए लिखा है। उमिया, कुसुम और वसुमती बहनको भी लिखा है। इसलिए पूनियोंकी तकलीफ तो समाप्त हो जायेगी। उसके जानेके बाद तुमने कैसे काम चलाया? मुझे लगता है कि जब वहाँ पूनियाँ न हों

१. घनश्यामदास बिड़लाका पुत्र।

तब आश्रमसे मँगाकर भी काम चलाना ही चाहिए। किसी वस्तु या मनुष्यकी प्रतिष्ठा तभी दृढ़ हो सकती है जब उस वस्तु या मनुष्यके बारेमें बहुतसे व्यक्तियोंको एक-सा अनुभव हो। इसलिए मैं चाहता हूँ कि वहाँका काम चाहे जितना कम हो, पर सुव्यवस्थित हो जाये। अभी तो जो तुम्हें मिल सके हैं, तुम उन्हींसे काम ले रहे हो। अब ऐसा करनेके बदले तुम्हें कमसे-कम कितने आदमी चाहिए; इसका विचार करना चाहिए और उसीके अनुसार बन्दोबस्त कर लेना चाहिए।

इतना निश्चय तो कर ही लेना है कि पूनियोंका काम तैयार होनेवाले नये कार्यकर्त्ताओंसे ही कराना है। ऐसा करनेसे कौन-कौन इसमें कुशल हो सकते हैं इसका भी अनुमान हो जायेगा। एक मन पूनियाँ आश्रमसे भेजें तो भेजनेमें कितना खर्च होगा? इसपर विचार कर लेना। वीजापुरको संस्थाकी तरह चलानेमें क्या खर्च होगा, इसका अनुमान लगानेकी आवश्यकता है। वहाँ खादीकी उत्पत्ति पर कितना लगाना है वह बादमें देख लेंगे।

मैं दो चीजें देखता हूँ। एक तो वहाँकी सचमुचकी गरीब औरतोंको काम देना और दूसरे वहाँ आश्रमको अत्यन्त छोटे लेकिन पूर्णतया सुव्यवस्थित आधार पर खड़ा करना। किन्तु इसके मध्यबिन्दु तो इस समय तुम हो। जैसे वर्धामें विनोबा हैं। वर्धाका विकास, जैसे कल्पना की थी, उस तरहसे अपने ढंगका हुआ है, वीजापुरका दूसरी तरहसे अपने ढंगका हुआ है। वर्धामें हम सोच-विचार कर गये। वीजापुरमें अनायास ही। वीजापुर गंगाबहन और रुस्तमजी सेठका स्मारक है। एक पुराने आश्रमवासी और साथी होनेके नाते, जान पड़ता है, तुम्हें वहाँ शान्ति मिल रही है। इसलिए वहाँ स्वतन्त्र रूपसे आश्रम-नियमोंका पालन करनेवाली शाखाके तौर पर बुनाई शाला चल सके तो मुझे अच्छा लगेगा। इस सब पर तुम विचार कर लेना और मुझे लिखना।

यह पत्र कुछ समय लगाकर लिखा है, इसलिए इसकी नकल छगनलाल जोशीको भी भेज रहा हूँ ताकि उसे भी मेरे विचार मालूम हो पायें और उसे कुछ सुझाव देना हो तो दे सके। वीजापुरकी जमीन जब भी खरीदी जा सके खरीद लेना है। इसका ध्यान तो रखोगे ही।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने

४६४. पत्र : छगनलाल जोशीको

गाजीपुर
३ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

इसके साथ छगनलाल [गांधी]को लिखे पत्रकी[1] नकल भेज रहा हूँ। समय मिले तो उसके बारेमें अपने विचार मुझे लिखना। इस बारेमें दूसरोंके साथ भी सलाह कर लेना।

आज तो लिखनेके लिए कुछ विशेष नहीं है। रुक्मिणी[2] वगैराकी बीमारीकी खबर मुझे देना बिलकुल ठीक है। ऐसी खबर देनी भी चाहिए। अब तो रोग निःशेष हो गया होगा। चार्ट[3] अच्छे बने हों तो उन्हें छपवा लेना जरूरी है।

गोविन्दबाबूका पत्र वापस भेज रहा हूँ। उसका काम मुझे तो कभी सन्तोष-दायक नहीं लगा। किन्तु इस मनुष्यको खूब दुःख सहन करना पड़ा है। यथाशक्ति मेहनत करनेवाला है और त्यागी है। इसलिए उसकी पत्नीके भरण-पोषणके लिए जो भेजते हैं, वह भेजते रहें। दूसरी चीजोंके बारेमें उसे लिखते रहा करो। उसका जो असर होना होगा सो होगा। उससे रिपोर्ट वगैरा मँगाते रहना ताकि कुछ अंकुश तो रहे। फिर उसे स्वयं चरखेमें बहुत श्रद्धा है, ऐसा नहीं लगता। यह करना चाहिए, यह समझकर वह करता रहता है। हो सकता है इसमें मैं उसके साथ थोड़ा अन्याय भी कर रहा होऊँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४५०)की फोटो-नकलसे।

४६५. मुन्नालालको लिखे पत्रका अंश

३ अक्टूबर, १९२९

उद्योग मन्दिर और सत्याग्रह आश्रमके बीच तुम जो भेद करते हो वह ठीक नहीं है। उसमें रहनेवाले तो वही लोग हैं। किन्तु उन्होंने स्वयं अपनी अपूर्णताका भान होने पर अधिक उचित नाम ग्रहण कर लिया है। यज्ञकी तरह उद्योग करने पर आत्मदर्शन अपने-आप हो जाता है। ऐसा ही देशोद्धारके बारेमें समझना। यदि सच्चे हृदयसे देशके उद्धारका काम करें तो हम आत्मोद्धार भी [जरूर] करेंगे;

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. सर राघवाचारीकी पुत्री।

३. आश्रमशालाकी प्रदर्शनीके लिए खादी, गोसेवा आदि प्रश्नोंसे सम्बन्धित चार्ट।

देशोद्धारकका ज्यादा नम्र नाम देशसेवक है। इसलिए सच्ची सेवामें देशसेवा, आत्म-सेवा और ईश्वरसेवा भी सम्मिलित है। उसके बारेमें मनमें तनिक भी शंका न आने देना।

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने

४६६. उत्तर 'इंग्लिशमैनको'[1]

[४ अक्टूबर, १९२९के पूर्व][2]

इस सम्बन्धमें आयोजित कोई भी सम्मेलन मुझे तभी आकर्षित कर सकता है जब वह सीजरकी पत्नीकी तरह शंकाओंके परे हो।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-१०-१९२८

४६७. पत्र : एच० बी० तेजूमलको[3]

मुकाम गोरखपुर
४ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

१. प्रार्थना करना जरूरी है क्योंकि यह आत्माकी खुराक है; उसी प्रकार जिस प्रकार भोजन शरीरके लिए आवश्यक है।

२. शरीर प्रार्थना पर नहीं टिका रह सकता। शरीरके लिए सच्चा श्रम ही प्रार्थना है।

३. रोग-मुक्तिके लिए प्रार्थनाका उपयोग करना प्रभुके दानका दुरुपयोग है।

४. प्रार्थनाको अपनी तरक्की या इसी तरहकी अन्य सांसारिक सुविधाओंके लिए जोतना उसका और भी बड़ा दुरुपयोग है।

५. प्रार्थनासे आध्यात्मिक उन्नति और बुरी प्रवृत्तियोंको दबानेमें अत्यधिक सहायता मिलती है।

६. 'हरिनाम' की जितनी भी बड़ाई की जाये थोड़ी है किन्तु प्रार्थनामें 'हरिनाम' के प्रयोगकी भी सीमा है।

१. समाचार-पत्र द्वारा किये गये प्रश्नके उत्तरमें। गांधीजी से पूछा गया था कि लन्दनमें होनेवाले गोलमेज सम्मेलनमें यदि उन्हें आमन्त्रित किया गया तो उनका क्या रुख होगा?

२. इसी तारीखको कलकत्तासे 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' द्वारा प्रकाशित हुआ था।

३. एच० बी० तेजूमलके पत्र, २९ सितम्बर, १९२९ (एस० एन० १५३५८) के उत्तरमें।

७. अगर एककी अपेक्षा दूसरेकी प्रार्थना जल्दी फलवती हो जाती है तो इसका अर्थ यह है कि उस व्यक्तिमें जितनी चाहिए उतनी लगन नहीं है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५३५९)की फोटो-नकलसे।

४६८. पत्र : हरिश्चन्द्र दासको

मुकाम गोरखपुर
४ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप निस्सन्देह रचनात्मक कार्यों तथा अन्य समाजसेवाके कार्य करके अध्ययन-कालमें भी देश-सेवा कर सकते हैं। आप प्रतिदिन कमसे-कम एक घंटे तक मन लगाकर सूत कातकर असंख्य भूखे लोगोंकी सहायता कर सकते हैं। आप अपनी छुट्टियाँ देहातोंमें बिता सकते हैं और वहाँ सफाईका काम करके ग्रामवासियोंकी सेवा कर सकते हैं। ऐसी और भी कई बातें हैं जो आपको अपने-आप सूझ सकती हैं।

हृदयसे आपका,

श्री हरिश्चन्द्र दास,
डा० खा० बारीपाड़ा,
मयूरभंज रियासत

अंग्रेजी (एस० एन० १५६०८)की फोटो-नकलसे।

४६९. पत्र : प्रताप एस० पण्डितको

मुकाम गोरखपुर
४ अक्टूबर, १९२९

प्रिय प्रताप,

गिरिराज अपने कामोंके बारेमें मुझे लिखता रहता है। लेकिन मैं चाहूँगा कि उसकी प्रगतिके सम्बन्धमें आप अपने स्वयंके अथवा अपने फोरमैनके विचार लिख भेजें। पत्र लिखकर भेजनेके लिए आप गिरिराजको सौंप दे सकते हैं अथवा उससे मेरा पता प्राप्त कर सकते हैं।

हृदयसे आपका

अंग्रेजी (एस० एन० १५६१६)की माइक्रोफिल्मसे।

४७०. पत्र : गिरिराजको[1]

मुकाम गोरखपुर
४ अक्टूबर, १९२९

प्रिय गिरिराज,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे खुशी है कि अपनी टाँगोंकी रक्षाके लिए तुमने 'लम्बे बूट' खरीदे हैं। आशा है, तुम अब पूरी तरह स्वस्थ हो गये होगे। तुम्हें अपने स्वास्थ्यको ठीक रखना चाहिए।

मरे पशुओंकी खाल हमारी आवश्यकता-भरके लायक तो मिल ही सकती है। क्या मैंने तुम्हें नहीं बताया कि हम लोग भारतसे बाहर नौ करोड़की लागतकी मुर्दा पशुओंकी खालका निर्यात करते हैं। तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतमें लाखों लोग नंगे पाँव रहते हैं। सर नलिनीरंजन सरकारने मुझसे कहा था कि चमड़ा कमानेके विभिन्न कारखानोंकी असफलताका कारण हमारे देशमें चमड़ेकी थोड़ी माँगका होना है। बहरहाल मैंने तुमसे इस तरहके किताबी सवालोंकी आशा नहीं की है। संसारमें बहुत-सी बुराइयाँ ऐसी ही बौद्धिक ऊहापोहके कारण चल रही हैं। उदाहरणके लिए मांस खानेवालोंका कहना है कि यदि वे शाकाहारी हो जायें तो यह पृथ्वी उन जानवरोंसे ही भर जायेगी जिन्हें आज वे खा रहे हैं। सन्तति-निरोधका प्रचार करनेवाले अन्य बातोंके अलावा यह भी कहते हैं कि यदि गर्भ-निरोध के कृत्रिम साधन नहीं अपनाये गये तो आबादी आवश्यकतासे अधिक घनी हो जायेगी। यही नहीं, युद्धकी जरूरत भी इस आधार पर सिद्ध की है कि अगर युद्ध न हों तो हम लोग महामारी या बीमारियोंके कारण मरेंगे। ब्रह्मचर्यका विरोध अन्य बातोंके अलावा इस आधार पर भी किया जाता है कि यदि सभी ब्रह्मचारी बन गये तो संसार समाप्त हो जायेगा। क्या तुम्हें यह नहीं सूझता कि इस तरहके प्रश्न पर विचारका समय तब आयेगा जब हम नौ करोड़की लागतका मरे जानवरोंका चमड़ा अपने उपयोगमें ले आयेंगे। मैं प्रताप पण्डितको पत्र लिख रहा हूँ और इसके साथ संलग्न कर रहा हूँ। मशीनके उपयोगके सम्बन्धमें तुम्हारा तर्क उपयुक्त ढंगसे प्रस्तुत नहीं हुआ है। हम बेशक चमड़ा कमानेका कारखाना चला सकते हैं, और उसके द्वारा दो काम कर सकते हैं। एक, ग्रामवासियोंको उसमें प्रशिक्षित करनेका और दूसरा जो मरे ढोरोंकी खालके बने जूते पहनना चाहते हैं उन लोगोंके लिए जूते तैयार करके देनेका। मशीनके सम्बन्धमें मुख्य विचारणीय बात यह है कि इसके प्रयोगके फलस्वरूप उन लोगोंकी मजूरी नहीं मारी जानी चाहिए जिन्हें और दूसरी तरहका काम नहीं दिया जा सकता। तुम देखोगे कि यह एक ही तर्क तमाम आपत्तियोंका निराकरण कर देता है। हम हाथसे की जानेवाली क्रियाओंकी जगह किसी और पद्धतिको नहीं

१. गिरिराजके हिन्दीमें लिखे पत्र (एस० एन० १५६१२), २८-९-१९२९ के उत्तरमें।

अपनाना चाहते। हम तो हाथसे की जानेवाली क्रिया-पद्धतिको निर्दोष बनाना चाहते हैं। लेकिन जहाँ बिलकुल जरूरी हो हमें मशीनके प्रयोगसे हिचकिचाना नहीं चाहिए। क्या तुम जानते हो कि जीवन-रक्षा करनेमें सहायक कई अत्यन्त सूक्ष्म साधनोंको मशीनकी सहायताके बिना तैयार करना असम्भव था। आखिरकार सीधा-सादा चरखा भी तो कुल मिलाकर एक मशीन ही है। सावधान तो हमें उन बड़ी-बड़ी मशीनोंसे होना चाहिए जो हाथसे नही परन्तु मानवेतर शक्ति जैसे भाप, बिजली आदिसे चलती हैं; लेकिन छोड़ना इन्हें भी नहीं है। अगर अब भी तुम्हें समझमें न आया हो तो तुम मेरे तर्कों पर फिर सवाल उठा सकते हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत गिरिराज
सूरजमल ओंकारमलकी चाल
माटुंगा, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५६१३)की फोटो-नकलसे।

४७१. पत्र : सतीशचन्द्र मुखर्जीको

मुकाम गोरखपुर
४ अक्टूबर, १९२९

प्रिय सतीशचन्द्र,

खादी प्रतिष्ठानके सतीशबाबूके नाम मेरे पत्रकी प्रतिलिपि आपकी जानकारीके लिए संलग्न कर रहा हूँ। मैंने सोचा कि मैं उस पत्रमें लिखी बातें आपसे न छिपाऊँ, यद्यपि उन्हें पढ़कर आपको दुःख हो सकता है। मैं तो यही चाहूँगा कि आप इनसे दुखी होनेकी बजाय तटस्थ भावसे इस बारेमें सोचें।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १

अंग्रेजी (एस० एन० १५६३०)की माइक्रोफिल्मसे।

४७२. पत्र : माधवजी वी. ठक्करको

गोरखपुर
४ अक्टूबर, १९२९

चि० माधवजी,

तुम्हारा पत्र मिला। व्यापारके विषयमें मैं तुमको सलाह दूँ इसके पहले मुझे तुम दोनोंसे फुरसतके साथ मिलना जरूरी है। तुम्हारे भाई लोग क्या कहते हैं? फिलहाल तुम काम नहीं कर रहे हो, तो समय किस प्रकार बिताते हो? ऐसे अनेक प्रश्नोंके उत्तर चाहिए। पत्र-व्यवहारके द्वारा इसे न तुम समझा सकते हो और न मैं ही पूरी तरह समझ सकता हूँ। इसलिए मेरी इच्छा है कि यदि तुम जल्दीमें न होओ तो फुरसतसे कहीं मिलो। कार्यक्रम तो चार दिनोंका है, किन्तु मैं सोमवारको छोड़कर बाकीके सभी दिनोंमें गोरखपुरके आसपासके हिस्सोंमें घूमता रहूँगा और रातको आकर सो जाया करूँगा। थका हुआ लौटूँगा, इसलिए दूसरे काम करनेकी इच्छा कम ही रहेगी। इसके सिवाय कुछ-न-कुछ स्थानीय मामले भी होते हैं। इसलिए तुम्हें गोरख-पुर बुलाना तो रद ही कर रहा हूँ। इसीलिए तार नहीं कर रहा हूँ। यह पत्र तुम्हें रविवारकी सुबह मिल जाना चाहिए। इसका जवाब मिलनेके बाद हम मिलनेका निश्चय करेंगे। फिलहाल जो खुराक ले रहे हो, सो ठीक है। खाँसी तो नहीं चलनी चाहिए। कभी-कभी कफ गिरता है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। छाछ अथवा दहीमें दससे बीस ग्रेन तक सोडा मिलाकर लोगे, तो खटाई बिलकुल खत्म हो जायेगी। मैं तो रोज दही लेता हूँ, किन्तु थोड़ा सोडा डालकर। सोडा डालकर हिलानेसे जब उफान आये, तो समझ लेना कि उसकी खटाई कार्बन डाइऑक्साइड गैस बनकर खत्म हो गई है। अगर शक्ति अनुभव करते हो, तो अनाज लेनेकी जल्दी मत करना। खाने पर होनेवाले खर्चको सहन करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६७९३)की फोटो-नकलसे।

४७३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

गुगली [संयुक्त प्रान्त]
५ अक्टूबर, [१९२९][1]

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारा पत्र मिला। सीताकी तस्वीर भी मिली। सुन्दर है। तुम इसे बहुत-से कपड़े पहनाकर कोमल तो नहीं बना रहे हो?

हिन्दू और मुसलमानोंके बीचमें जो वैमनस्य चल रहा है, फिलहाल उसे अनिवार्य मानता हूँ। इसका उपाय है धैर्य और समय। थोड़ा भी रोष किये बिना तुम जो सेवा करते हो, करते रहना। विरोध हो तो उसे सहन करना। लोग विरोध करते हैं, इससे हारना या ऊब जाना शोभा नहीं देता। मैं इतना तो जरूर चाहता हूँ कि हारकर या ऊबकर तुम्हें वहाँसे भागना न पड़े। फिर भी मेरी इच्छाका ख्याल करनेके बजाय अपनी शक्तिको तोलकर काम करना ही ठीक है, यह समझ लेना। यह पत्र संयुक्तप्रान्तके एक गाँवसे लिखवा रहा हूँ। मैंने बहुत करके यह तो लिख ही दिया है कि काशीमें देवदास मेरे साथ ही गया है।

अभी तो मेरा निर्वाह दूध, दही और फलोंपर हो रहा है। माफिक आ गये हैं, ऐसा लगता है। सबकी तबीयत अच्छी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७६१)की फोटो-नकलसे।

४७४. पत्र : काशीनाथको

गोरखपुर जाते हुए
शनिवारकी रात, ५ अक्टूबर, १९२९

भाई काशीनाथ,

इसके साथका अधिकांश तो रेलगाड़ीमें ही लिखना पड़ा है और इसलिए उसे पैंसिलसे ही लिखना पड़ा। यह लेख तुमने चायके विषयमें जो-कुछ लिख भेजा था, उसके आधारपर तैयार किया है। इसे पढ़नेपर जो प्रश्न मनमें उठे, वे मुझे लिख भेजना, ताकि यदि फिरसे लिखने जैसा लगे तो लिख दूँ। पाखण्डसे सम्बन्धित लेख अभी नहीं पढ़ा सका हूँ। वह अगली बार।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५२४०) की फोटो-नकलसे।

१. ५ अक्टूबर, १९२९ को गांधीजी गोरखपुरके आसपासका दौरा कर रहे थे। गुगली गोरखपुरके पास है।

४७५. तार: एच० टी० सिल्कॉकको[1]

[५ अक्टूबर, १९२९ के बाद]

द्वारा जी० डब्ल्यु० भाव
फ्रैन्ड्स मिशन,
इटारसी, म० प्र०

पत्र मिला। सत्ताईस अक्टूबरसे पहली नवम्बरतक जिला मेरठमें, दो को दिल्ली, तीनको बुलन्दशहर, चार और पाँचको अलीगढ़, छ:को मथुरा, सातको वृन्दावन। क्या आप सत्रह और चौबीसके बीच मसूरी आ सकते हैं?

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५२४७)की फोटो-नकलसे।

४७६. शास्त्रीय बनाम व्यावहारिक

एक विद्यार्थी लिखते हैं:

> **कई बार आप ऐसे शास्त्रीय या आदर्श उत्तर देते हैं कि उनसे मनको क्षणिक समाधान तो प्राप्त होता है, किन्तु व्यवहारके समय समस्या फिर जैसी-की-तैसी उलझी हुई मिलती है। जैसे आप कह देते हैं: "संख्या बलपर लड़ना कायरका काम है।" ऐसे वाक्योंसे मनको तत्काल समाधान तो होता है, लेकिन व्यवहारके समय यह निरर्थक ठहरता है। आप आत्मबलपर हवाई किले बाँधनेको कहते हैं, लेकिन क्या सच ही वह विश्वसनीय है? जिन विद्यार्थियोंको अभी चरखे और खादी पर ही विश्वास नहीं है उन्हें आप आत्मबलपर रहनेका उपदेश करते हैं। क्या आप ऐसा अनुभव नहीं करते कि आपका यह काम 'पत्थर पर पानी' डालते रहनेके समान है?**

मैं तो यह मानता हूँ कि जब मैं आत्मबलकी बातें करता हूँ तब केवल 'पत्थर पर पानी' नहीं डालता। फिर भी यदि ऐसा होता ही हो तो भी 'रसरी आवत जात तें, सिलपर होत निसान'का सन्तोष मुझे है। दूसरे, पत्थरपर भी जब पानी एक ही जगह बराबर गिरता रहता है तो उसमें भी छेद हो जाता है। जिस पत्थर

१. एच० टी० सिल्काकके ५-१०-१९२९ के पत्रके उत्तरमें। (एस० एन० १५२४),

पर से होकर पानीकी धारा बहती है, वह आखिर रजकणमें — धूलमें परिणत हो जाता है। क्योंकि वही उसका मूल रूप है। जिसे लेखक आज शास्त्रीय या आदर्श अथवा काल्पनिक मानते हैं उसीको वे कल व्यावहारिक कहने लगेंगे। संसारमें यह सदा होता आया है। विद्यार्थियोंका आत्मबलकी बातें न समझ सकना हमारी दीनताका सूचक है। जो वस्तु सत्य है, शाश्वत है, वही समझमें न आये, और जो क्षणिक है वह व्यावहारिक कही जाये — किमाश्चर्यमतः परम्।

यह बात हमारे सामने रात-दिन सिद्ध होती रहती है कि अकेले संख्या बलसे कुछ नहीं होता, फिर भी यह अव्यावहारिक क्यों कही जाती है? क्या यह स्पष्ट नहीं कि हम ३० करोड़ होते हुए भी एक लाखसे दबे हुए हैं? अकेले सिंहको देखकर ही असंख्य भेड़ें अपनी जान लेकर भागती हैं; इसका क्या कारण है? भेड़ोंको अपनी पामरताका ज्ञान है, सिंहको अपनी शक्तिका। यही इनका आत्मबल है। आत्मबलको काल्पनिक या आकाश-कुसुमवत् मानना ही भूल है।

मैं संख्या बलका निरादर नहीं करता। उसे भी स्थान है; किन्तु उसी हालतमें जब उसके पीछे आत्मबल हो। अगर असंख्य चींटियाँ एक साथ किसी हाथी पर धावा बोल दें तो उसका प्राण लेकर ही छोड़ें। इन चींटियोंको एकताका ज्ञान होगा। शरीरसे अनेक होते हुए भी मनसे वे एक होंगी। उनमें आत्मबल होगा। हममें भी जब एक होनेका ज्ञान उदय होगा, हमारा आत्मबल बढ़ेगा, और उसी क्षण हम बन्धनमुक्त हो जायेंगे।

राष्ट्रीय विद्यालयोंमें भले ही मुट्ठीभर विद्यार्थी हों, किन्तु यदि वे श्रद्धालु हैं तो बलवान हैं। सरकारी विद्यालयोंमें पढ़नेवाले असंख्य विद्यार्थी यदि वे देशके लिए नहीं जी रहे हैं तो उनकी संख्याका क्या मूल्य हो सकता है? शास्त्र कहते हैं कि वस्तुका मूल्य उसके गुणमें है, विस्तार या संख्यामें नहीं। यह बात अनुभव-सिद्ध है और इसी कारण व्यावहारिक है। जो व्यवहारमें कार्य-साधक न बन सके, वह शास्त्रीय नहीं, शब्दाडम्बर-मात्र है।

जब गेलीलियोने कहा था कि पृथ्वी गेंदके समान गोल है और अपनी धुरी पर घूमती है, तब उसकी बातको काल्पनिक कहकर लोगोंने उसका मजाक उड़ाया था। आज हम जानते हैं कि पृथ्वीको तश्तरीके समान चपटी और स्थिर कहनेवाले कल्पनागृहमें रहते थे, और गेलिलियोने जो-कुछ कहा था वह व्यावहारिक था।

आजकलकी शिक्षाका रुख आत्माको भुलानेकी तरफ होनेसे हमें आत्म बलकी बात नीरस प्रतीत होती है, और प्रतिदिन नष्ट होनेवाले शरीर बलपर ही हमारी आँखें ठहरती हैं। हमारी मन्दताकी यह पराकाष्ठा है।

लेकिन मेरे मनमें धैर्य है; क्योंकि मुझे अपनी बातपर विश्वास है। मेरे विश्वासकी इमारत मेरे अपने और मेरे साथियोंके अनुभवपर चुनी गई है। अगर हरएक विद्यार्थी जिस बातकी इच्छा करे, उसपर तटस्थ होकर अमल भी करे तो वह इन वाक्योंका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकता है:

१. केवल संख्या बलका कोई मूल्य नहीं है।

२. आत्मबलको छोड़कर दूसरे सब बल क्षणिक और निरर्थक हैं। अगर ये दोनों बातें सच हों तो प्रत्येक विद्यार्थीको चाहिए कि वह आत्मबलको पहचान ले और उसकी अभिवृद्धि करनेका प्रयत्न करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-१०-१९२९

४७७. ईश्वरके सम्बन्धमें

एक मित्र यों लिखते हैं :[1]

यह सवाल कई लोगोंके हृदयमें उठता है, अतः इसपर थोड़ा विचार कर लें। मित्रके कथनानुसार मेरा कथन लचर हो सकता है; किन्तु मुझे उसका ज्ञान नहीं है। मुझे जैसा अनुभव हुआ है, मैंने वैसा लिखा। वह अनुभव अवर्णनीय है। उसकी तो झाँकी-भर दी जा सकती है। उसके वर्णनमें भाषा भी प्राकृत ही हो सकती है। ईश्वरकी दस्तन्दाजीकी तुलना मनुष्यकी दस्तन्दाजीसे कैसे की जा सकती है? ईश्वर और उसके नियम परस्पर भिन्न नहीं हैं। कर्म किसीको छोड़ता नहीं, न ईश्वर ही किसीको छोड़ता है। दोनों एक ही वस्तु हैं। एक विचार हमें कठोर बनाता है और दूसरा नम्र। संसारमें कोई-न-कोई अपूर्व चेतनमय शक्ति काम कर रही है, उसे आप चाहे, जिस नामसे पुकारें, लेकिन वह हमारे प्रत्येक काममें हस्तक्षेप तो किया ही करती है। हमारा प्रत्येक विचार कर्म है। कर्मका फल होता है। फल ईश्वरी नियमके अधीन है। यानी, हमारे प्रत्येक काममें ईश्वर और उसका नियम हस्तक्षेप किया ही करता है; फिर हम इसे जानते हों, या इससे अनजान हों; इसे स्वीकार करें या अस्वीकार।

इस संसारमें आकस्मिक घटना नामकी कोई चीज नहीं है। जो-कुछ होता है नियमानुसार होता है। बात केवल यही है कि हमारी पामरता इतनी अधिक है कि हम उसकी गतिसे अनभिज्ञ रहते हैं। मेरे पाससे होकर साँप चला जाता है, तो भी मुझे नहीं काटता, मैं इसे दैवयोग क्यों मानूं? ईश्वरी कृपा क्यों नहीं? या, क्या मैं इसे अपने पुण्यकर्मोंका फल मान लूं? मगर पुण्यकर्मोंके अभिमानका दंश तो सर्पदंशसे भी अधिक जहरीला होता है। ईश्वर-कृपाके सामने अभिमान चूर-चूर हो जाता है।

श्रद्धाके बारेमें पहले लिख चुका हूँ,[2] अतएव दुबारा नहीं लिखूंगा। अन्धश्रद्धाको मैं नहीं मानता। जहाँ मैं स्पष्ट ऐहिक कारणका अनुभव करूँ, वहाँ तो बुद्धिसे ही

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। प्रश्नमें आत्मकथाके दूसरे खण्डके अध्याय २१ का फीनिक्स, टॉल्स्टाय और साबरमती आश्रमसे प्रारम्भ "वह भ्रम भी संग्रहणीय है' तकके अनुच्छेद देकर अनेक शंकाएँ उठाई गई थीं और अन्तमें पूछा गया था कि श्रद्धा और बुद्धिके क्षेत्र और उनकी मर्यादाएँ क्या हैं?

२. देखिए पृष्ठ ४८१–२।

काम लूँगा। लेकिन बुद्धिके थक जानेपर श्रद्धाको आगे बढ़ाऊँगा और संयोग या दैवयोगकी बात नहीं सोचूँगा।

लेकिन मैं इस तरह बुद्धिवाद द्वारा ईश्वरपर श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर सकता। मैंने थोड़े तर्कका उपयोग किया है; इसका किसीपर प्रभाव पड़े तो ठीक है। मैं अपने लेखों द्वारा दूसरोंमें ईश्वरके प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर सकता। मैं कबूल करता हूँ कि मेरा अनुभव अकेले मुझे ही मदद कर सकता है। जिन्हें शंका हो वे सत्संगकी खोज करें। खोज करनेमें पुरुषार्थ तो है ही; उससे पुरुषार्थ करनेका अवसर तो सबको मिल ही सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-१०-१९२९

४७८. खादीका अर्थ

एक बारह वर्षके किशोर लिखते हैं:

> **एक साल तक पहनी हुई फटी धोतीमें से मैंने छः रूमाल बनवाये थे। उनमें से एक प्रदर्शनीमें यह बतानेके लिए भेजा है कि धोतियोंका ठीक-ठीक उपयोग कर चुकनेपर भी वे निरर्थक नहीं जातीं, उलटे उनका सुन्दर उपयोग किया जा सकता है।**

यह कोई आश्चर्यकारक उपयोग नहीं है। अगर कोई चाहे तो मिलकी मोटी धोतीका भी इस तरह उपयोग किया जा सकता है। लेकिन उक्त बातमें मुख्य बात तो यह है कि अधिकतर खादी पहननेके बाद ही ऐसे विचार उठते हैं। खादी हमें गरीबोंका विचार करना सिखाती है, इसी कारण हम उसका सावधानीसे — चिन्तापूर्वक उपयोग करते हैं। दूसरे, बारह वर्षके किशोरमें इस तरहकी कमखर्चीके विचारोंका पैदा होना आश्चर्यजनक है। खादी-प्रवृत्तिके कारण अनेक कुटुम्बोंमें ऐसे सुन्दर परिवर्तन होते देखे गये हैं। मैं चाहता हूँ कि दूसरे नौजवान भी इन किशोर भाईका अनुकरण करें। पाठक यह ध्यानमें रखें कि आर्थिक दृष्टिसे इन किशोर युवकको इस तरहकी कमखर्चीकी कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन जहाँ सारा भारत एक कुटुम्ब माना जाता हो, वहाँ तो भारतमाताके एक करोड़पतिके बालकको भी कमखर्चीसे काम लेना चाहिए और बचे हुए द्रव्यको गरीब भाई-बहनोंकी सहायतामें खर्च करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-१०-१९२९

४७९. पत्र : छगनलाल जोशीको

गोरखपुर
६ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं अध्यक्ष नहीं बना इसलिए जनवरीमें कुछ-न-कुछ करनेकी — मेरे स्वभाव और गीताकी शिक्षाके अनुसार — मेरी जिम्मेदारी दुगुनी हो गई है। जिस तरह पैसा न लेनेवालेकी पैसा लेकर काम करनेवालेसे ज्यादा जिम्मेदारी होती है, या गीताकी भाषामें कहें तो ताज पहनकर काम करनेवालेके मनमें मोह होना सम्भव है, किन्तु ताज त्यागकर किये गये काममें मोहरहित होनेकी ज्यादा सम्भावना है।

और यदि मेरी जिम्मेदारी बढ़ती है तो आश्रमवासियोंकी भी बढ़ती है। हो सकता है, देश कुछ न कर सके और मुझे आश्रमवासियोंमें इसकी योग्यता दिखाई दे तो उनकी मारफत कुछ-न-कुछ अवश्य किया जा सकता है। इसलिए तुम लोगोंके लिए निराश होने या निश्चिन्त होनेका कोई कारण नहीं है। किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि मेरे पास कामकी कोई योजना है। वह तो प्रभु देगा, तभी होगी। मेरी नैया तो विश्वाससे चलती है।

इसे प्रार्थनामें पढ़कर सुना सकते हो। यह सुबहकी प्रार्थनाके समय पढ़ने लायक है, साँझकी प्रार्थनाके समय नहीं। इतना काम रहते हुए और बातोंके बारेमें लिख सकूँ तो अच्छा हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४५१)की फोटो-नकलसे।

४८०. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

गोरखपुर
६ अक्टूबर, १९२९

चि० ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा पत्र मिला है। माताजी कुछ सेवा तो तुम्हारे पाससे लेती नहीं हैं इसलिए दिल्ली जानेका कोई धर्म है ऐसा तो मुझे प्रतीत नहीं होता है। आश्रम या बीजापुरमें रहनेका धर्म मैं महसूस कर सकता हूँ। क्योंकि दोनोंमें से किसी जगह पर रहते हुए तुम्हें तो भविष्यकी तैयारी ही करनी है और शरीरको अच्छा बनाना है। परन्तु [यह] मेरे महसूस करनेपर [अवलम्बित] न रहना चाहिए। तुम्हारी अन्तरात्मा जो कहे उसीका पालन करो। दिल्ली जानेका मौकूफ रहे तो मेरी सलाह यह है कि बीजापुर जाना। वहाँ शरीर प्रकृति ज्यादा अच्छी रहती है ऐसा तुमको अनुभव हुआ है, इसलिए हाल तो वहीं रहना अच्छा है। धुनकीका काम रघुनाथ, गोविन्दजी इत्यादि तो अच्छी तरह जानते ही हैं। वे कुछ न कुछ तो बतायेंगे ही। अगर कुछ कमी रह जायेगी तो आश्रममें आकर दुरस्त कर लेना। बहुत कुछका तो महावरा [हो जाने] से पता चल जायेगा और ज्यों-ज्यों शक्ति आती जायेगी त्यों-त्यों रस भी ज्यादा पैदा होगा। कुछ भी परिवर्तन यहाँसे तो करवानेका साहस मैं नहीं करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

अब तो तुमको काफी अनुभव ज्ञान मिल गया है कि क्या खाना और क्या नहीं खाना।

मेरी शरीर प्रकृति अच्छी है। अभी तो वही खाना चलता है। समयकी संख्या और दूधकी मात्रा कम है। चारके बदले तीन रतल दूध और दही लेता हूँ।

(जी० एन० २३६६) की फोटो-नकलसे।

४८१. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

मौनवार, ७ अक्टूबर, १९२९

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। तुममें से कौन मेरे साथ यात्रा कर सकता है इसका विचार मुझे कई बार आता है। यात्राका उद्देश्य तो यही है कि विद्यार्थी बालक या बालिकाएँ सेवाके लिए ज्यादा तैयार हों। इस दृष्टिसे मुझे इतनी बातें आवश्यक लगती हैं।

१. यात्रामें साथ रहनेका उम्मीदवार अपने आजके विचारोंके अनुसार अपना जीवन सेवामें अर्पित करनेका इरादा रखता है।

२. उसे चरखा-शास्त्रका पूरा ज्ञान है; वह पिंजाई और ओटाई करता है। हमें जितने बारीक सूतकी जरूरत है वह उतना बारीक सूत कातता है। औजारोंकी मरम्मत कर सकता है। रुईकी पहचान कर सकता है। सूत जाँच सकता है। उसे सूतका अंक मालूम करना आता है, आदि।

३. उसके अक्षर सुन्दर हैं और वह जल्दी लिख सकता है।

४. उसे काफी भजन याद हैं और वह उन्हें गा सकता है।

५. खान-पानमें संयम पसन्द करता है और उसका पालन करता है और कहीं भी क्यों न जाये वहाँ उनका पालन करनेको तत्पर है।

इनके अतिरिक्त और बातोंपर भी तुम विचार कर सकते हो। यह तुम्हारे और शिक्षकोंके विचार करने योग्य है।

यदि तुममें से कोई इन शर्तोंसे चौंके तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं जानता हूँ कि जितनी जरूरत है उतने जागृत हम नहीं रहे। इतना कर सकना तो तुम सबके लिए एक मामूली बात होनी चाहिए। १२ वर्षसे ज्यादा और १५ वर्षसे कम उम्रके बीचके सभी विद्यार्थियोंको 'गीता' जबानी याद न हो, ऐसा नहीं होना चाहिए। प्रतिदिन एक श्लोक याद करें तो दो वर्षमें 'गीता' पूरी कण्ठस्थ हो जाये। बूँद-बूँदसे सागर भरता है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो : श्री छगनलाल जोशीने

४८२. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

गोरखपुर
[७ अक्टूबर, १९२९][1]

बहनो,

समय-समयपर तुम लोगोंकी याद आती रहती है। सफरमें जैसे-जैसे बहनोंको देखता हूँ, वैसे-वैसे तुम्हारे सामने पड़े हुए कामका विचार आया करता है और वैसे-वैसे समझता हूँ कि उत्तम तालीमका सम्बन्ध तो हृदयसे है। अगर उसमें शुद्ध प्रेम प्रकट हो, तो बाकी सब-कुछ अपने-आप आ जाता है। सेवाका क्षेत्र अमर्यादित है। सेवाकी शक्ति भी अमर्यादित बनाई जा सकती है, क्योंकि आत्माकी शक्तिकी कोई मर्यादा है ही नहीं। जिसके हृदयके कपाट खुल गये हैं, उसके हृदयमें तो सब-कुछ समा सकता है। ऐसे आदमीका किया हुआ जरा-सा काम भी खिल उठता है। जिसके हृदय बन्द हैं, उसका ज्यादा काम भी नहीं के बराबर होगा। विदुरकी भाजी और दुर्योधनके मेवेमें यही अर्थ छिपा हुआ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०४)की फोटो-नकलसे।

४८३. पत्र : छगनलाल जोशीको

गोरखपुर
मौनवार, ७ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। इसके साथ छगनलाल गांधीका पत्र भेज रहा हूँ। माणसासे कोई [धुनाई] सीखनेके लिए आये तो उसे रखनेका सुझाव मुझे ठीक लगता है।

तुम्हारे भेजे हुए तार तो वापस भेज रहा हूँ। सीधे यहाँ आये हुए तारोंके ढेरको तो मैंने कूड़ेकी टोकरीमें डाल दिया है।

टिड्डियोंने यहाँ भी काफी नुकसान किया है। वहाँ क्या हुआ यह अब मालूम होगा।

आज मेरा समय समाप्त हो गया है; इसलिए ज्यादा नहीं लिखता।

बापूके आशीर्वाद

१. बापुना पत्रो : आश्रमनी बहेनोनेसे।

[पुनश्चः]

यह लिखनेके बाद आजकी डाक आ गई। काकीके दर्दके बारेमें सुनकर आश्चर्य हुआ है। एकाएक कैसे दर्द हो गया? सम्भव है काका भी खबर भेजें।

तुम्हारे इस वजनको बढ़ा हुआ नहीं कह सकते। बाहर जा सको, तो अच्छा होगा। तुम्हें शरीर कमजोर नहीं होने देना चाहिए।

जयन्ती मुझे हरिद्वारमें मिल जाये तो ठीक है। किन्तु सारा कार्यक्रम तो अब तक तुम्हारे पास पहुँच ही चुका होगा। उसमें से जो जगह चाहे वह पसन्द कर ले। किन्तु हरद्वारकी १४–१५ तारीखें ठीक जान पड़ती हैं। उससे पहले छोटे-छोटे गाँवोंमें घूमना है।

नारणदासका पत्र आया है। नारणदास-जैसे लोगोंको तुम्हें जीत ही लेना चाहिए। उसकी सरलता, स्वच्छता और स्पष्टतापर तो मैं मुग्ध हूँ। उसका पूरा-पूरा उपयोग करनेकी हममें अर्थात् मुख्य रूपसे तुममें शक्ति आनी ही चाहिए। किन्तु यह तो हुए मेरे विचार और मेरी इच्छा; असली बात तो तुम्हारे विचार और तुम्हारी इच्छाकी है।

बापू

गुजराती (जी० एन० ५४६६)की फोटो-नकलसे।

४८४. तार: शंकरलाल बैंकरको

[८ अक्टूबर, १९२९][1]

बैंकर
मजूर आफिस
अहमदाबाद

मध्यस्थता सम्बन्धी मंगलदासका वक्तव्य मिला। उनसे नकल ले लें और यदि किसी बातका विशेष उत्तर देना हो तो तार द्वारा सूचित करें। मैं नहीं समझता कि किसी लम्बे-चौड़े प्रतिवादकी जरूरत है।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५१६)की माइक्रोफिल्मसे।

१. एस० एन० रजिस्टरके अनुसार। यह तार न्यूयार्कसे सिडनी स्टांगके २ सितम्बर, १९२९ के पत्रके पीछे लिखा है।

४८५. तार: मंगलदास गिरधरदासको

[८ अक्टूबर, १९२९][1]

सेठ मंगलदास गिरधरदास
अहमदाबाद

मध्यस्थता सम्बन्धी वक्तव्य मिला। अगर अबतक इसकी नकल मजूर कार्यालयको नहीं दी है तो कृपया दे दें ताकि यदि वे कुछ करना चाहें तो वह मैं भी जान सकूँ। आशा है आप स्वस्थ हैं।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५१६)की माइक्रोफिल्मसे।

४८६. पत्र: छगनलाल जोशीको

गोरखपुर
८ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

इसके साथ अयोध्याप्रसादका मुझे लिखा पत्र और उसका जवाब भेज रहा हूँ। दोनों देख जाना। वह क्या कहना चाहता है यह समझमें नहीं आया। मथुरादासके बारेमें भी जो लिखा है सो समझमें नहीं आया। उसकी क्या शिकायत है इसका भी अनुमान नहीं लगा। तुम्हें मालूम हो तो लिखना।

रणछोड़भाईका भाषण पढ़ लिया है। उसमें से कुछ लेने लायक नहीं लगा। भाई पारनेकरका भी पढ़ लिया है। उसमें गोशालाकी उन्नतिका वर्णन तो नहीं है किन्तु क्या करना है, इसका उल्लेख है। इसे छापनेकी जरूरत नहीं है। ऐसे विवरणमें गायोंके दूधमें वृद्धिके आँकड़े, उनकी खुराक और वजनके आँकड़े, दूधमें चर्बी आदिका प्रमाण, गायकी ठीक कीमत, अपंग जानवरोंको रखनेसे होनेवाले खर्चके आँकड़े हों और फिर सिर्फ दुधारू गायोंके खर्चके आँकड़े हों, बछड़ोंके बड़े होनेतक होनेवाला खर्च, खस्सी करानेपर बैलसे होनेवाला लाभ और न करानेपर होनेवाली हानि, जेलकी[2] गायोंका, कांकरेजी आदि गुजरातकी दूसरी नस्लोंसे मुकाबला, हिसारकी गायसे

१. एस० एन० के रजिस्टरके अनुसार।

२. मूलके अनुसार; जेलकी डेरियोंमें प्रायः विदेशी नस्लकी गायें रखी जाती थीं; कदाचित् उनसे तुलना ही अभिप्राय है।

मुकाबला, गायका भैंसके साथ मुकाबला, आदि बातोंकी पूरी जानकारी हो तो वह विवरण बहुत मूल्यवान हो जाये; यह सब जानकारी हमारे पास होनी ही चाहिए। क्योंकि अब हम शाला चला रहे हैं और विद्यार्थियोंको सिखा रहे हैं। हमारा इरादा खादी सेवाकी तरह इसमें भी प्रमाणपत्र देनेका है। और अन्तमें उपाधि भी देना चाहते हैं। इसलिए हमारे पास जैसा मैंने सुझाव दिया है वैसा विवरण होना चाहिए। इस तरहके कितने ही विवरण तो पूरी-पूरी पुस्तकोंके रूपमें मिल सकते हैं। हमारे लिए तो यह क्षेत्र नया है इसलिए हमें तो सभी विवरण ऐसे ही बनाने चाहिए; मुझे अपने कार्यकर्त्ताओंसे ऐसी आशा भी है। यह पत्र पारनेकर और वालजीको पढ़ा देना। सुरेन्द्र भी इसे पढ़ ले।

क्या प्रदर्शनीके समय आवश्यक सुधार हो गये थे? गोमूत्रका पूरा उपयोग होता है? जिस गन्दगीकी तरफ मैंने ध्यान खींचा था, वह दूर हो गई है?

आगराम एक चौंका देनेवाली बात सुनी। जहाँ हमारी गायोंके चमड़ेका वजन २० रतलके आसपास होता है वहाँ यूरोपकी गायके चमड़ेका वजन लगभग अस्सी होता है। आजतक मैं यह मानता था कि तले और एड़ीके लिए चमड़ा हम पूरी दुनियामें भेजते हैं। आगरामें खबर मिली कि वहाँ गाय-बैलके चमड़ेमें से ही तले और एड़ियाँ बनती हैं और वे हमारे भैंसके चमड़ेसे भी ज्यादा मजबूत होती हैं। इसमें अतिशयोक्ति हो सकती है, किन्तु इस सबका पता तो लगाना ही चाहिए।

किन्तु सुरेन्द्रकी रिपोर्ट मैं अभी पूरी नहीं पढ़ सका। उसे पढ़नेपर अपने विचार भी लिखूंगा। पारनेकरकी रिपोर्ट इसके साथ वापस भेज रहा हूँ।

ऊपरका भाग सवेरेके पाँच बजे गोरखपुरमें लिखाया था। यह भाग बस्तीमें लिखा रहा हूँ। बस्तीकी डाक मिल गई है।

प्रभाशंकरको हम डाक्टरवाला घर नहीं दे सकते। क्योंकि अब डाक्टर तो कभी भी आ सकता है। फिर आजकल रतिलाल और प्रभाशंकरकी खूब अनबन है। उसने डाक्टर मेहताको भी खासा हैरान कर रखा है। इसलिए उसके बंगलेमें तो उसे रहने नहीं दिया जा सकता। आश्रममें जगह होती तो जरूर उसे दे देते। इसलिए उसे लिखना कि डॉ० मेहताके बंगलेके सिवा और जगह तो है ही नहीं और बंगलेका कुछ भाग मणिलाल कोठारीके पास है; नीचेका भाग खाली है किन्तु वह खास तौर पर डाक्टर मेहताके लिए खाली कराया गया है। आश्रममें बाकी सब कोठरियाँ भरी हुई हैं।

बुधाभाईको मैंने जो प्रमाणपत्र दिया है उसे कोई वेद-वाक्य नहीं मान लेना है। मुझपर तो दूरसे ही जो छाप पड़ी है, मैं वही कह सकता हूँ। और जो छाप पड़ी है उससे उलटा विचार करूँ या अवसर आनेपर जो छाप पड़ी है उसे न कहूँ तो सत्यव्रतपर आँच आती है। इसलिए वास्तवमें मेरा प्रमाणपत्र गलत भी हो तो भी मैं तो यही दे सकता था। हरिहर आदि जो उसके सम्पर्कमें आये हैं वे जो कहें उसीको अधिक महत्व देना चाहिए, ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए तुम बुधाभाईसे मिलो और तुम्हें जैसा ठीक लगा हो वही कहो; इसमें तनिक भी संकोच

न करना। ऐसा करनेका यह अर्थ होगा कि हमने मित्र-धर्मका पालन किया और इससे उसका भला होगा। यदि उसने अपनी पत्नीको मारा हो तो यह पाप ही माना जायेगा। ऐसा करनेका उसे कोई अधिकार नहीं है। मगर उसने उससे बोलना बन्द कर रखा हो तो यह भी समझमें आनेवाली बात नहीं है; यों कई बार यह सत्याग्रहकी तरह किया तो जा सकता है।

माधवलालके बारेमें समझ गया। माधवलालका पत्र मेरे पास नहीं आया। उसकी पत्नीके लिए हम पैसा नहीं भेज सकते, सामान्य तौरपर तो यही कहा जा सकता है। माधवलाल मन्द बुद्धि है इसलिए उसके बोलनेका दुःख तो हमें नहीं मानना चाहिए। यदि हम उसकी यह मन्दता सहन कर सकें तो शायद आगे चलकर उसकी बुद्धि खुल जाये। उससे एकान्तमें सद्भावके साथ बात करना। और अपना विचार उसे समझाना। इस व्यक्तिको अब इतने दिनोंतक अपने पास रखकर छोड़ नहीं सकते। वह शुद्ध हृदयका व्यक्ति लगता है; इसलिए उसका उपयोग तो होगा ही। किस प्रकारसे हो यह देखना बाकी है।

नदीका बहाव बदलनेके बारेमें किसी अनुभवी इंजीनियरकी सलाह लेना जरूरी है। कोई इंजीनियर ही ऐसा टोटका बता सकता है।

लगता है बुखारने काफी लोगोंको दबा रखा है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४५२)की फोटो-नकलसे।

४८७. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

गोरखपुर
८ अक्टूबर, १९२९

भाईश्री वालजी,

इसके साथ भाई नगीनदासका पत्र और उनका लेख भेज रहा हूँ। उनकी इच्छा है कि यह लेख 'यंग इंडिया' की पूर्तिके रूपमें प्रकाशित किया जाये। यद्यपि उसमें कही गई मूल बात ठीक है और उसमें दिये गये आँकड़े इत्यादि मूल्यवान हैं, फिर भी जन-साधारण इसे आसानीसे समझ जाये, यह इस तरह नहीं लिखा गया है। मैं मानता हूँ कि यह बहुत छोटा किया जा सकता है। यदि तुम्हें इतना अवकाश हो, तो भाई नगीनदासके लेखमें से एक नया लेख बना लेना जो छोटा हो और जिसमें सब ठीक बातें आ जाती हों। यदि समयके अभाव अथवा और

किसी कारणसे यह करना सम्भव न दिखे तो ये दोनों वापस भेज देना। शरीर सँभालना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं पढ़ा है।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७४०२)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई

४८८. पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

गोरखपुर
८ अक्तूबर, १९२९

भाईश्री,

बम्बईके दूध और उसके अन्तर्गत बी० बी० ऐंड सी० आई० में दूध और उसके साधनोंके लिए पड़नेवाली दरके सम्बन्धमें भाई जगजीवनदास अमुलखरायके आन्दोलनसे आप परिचित हैं। उनके पत्रोंसे ऐसा लगता है कि बी० बी० ऐंड० सी० आई०का अधिकारी-वर्ग केवल अभिमानवश भाई नगीनदासकी माँग स्वीकार नहीं करता। किन्तु ऐसा मानते हुए संकोच होता है। आपको इस बारेमें कुछ जानकारी है, और बहुत-कुछ कर सकते हैं, ऐसा भाई नगीनदास लिखते हैं। यदि आप इस सम्बन्धमें मुझे कुछ बता सकें, तो बतानेकी कृपा करेंगे।

नमकके सम्बन्धमें क्या चल रहा है? मैं तो अभी लिख नहीं पाया; पर यह बात तो मेरे मनम घूम ही रही है। पैनिंगटनका वह पुराना भाषण मैंने देख लिया था। उसमें मुझे कुछ मिला नहीं। इससे ज्यादा अच्छा साहित्य आपके ध्यानमें हो तो मुझे भेज दें। १४ व १५ तारीखको मैं हरिद्वारमें रहूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासके कागजात, फाइल सं० ८४/१९२९
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय व पुस्तकालय

४८९. पत्र : भूपेन्द्रनाथ बनर्जीको[1]

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। इसके लिए धन्यवाद। जितेन्द्रनाथ दासके अनशन करके देह छोड़नेके मामलेपर मैंने चुप रहना ही उचित समझा क्योंकि मैं यह अनुभव करता हूँ कि इस सम्बन्धमें मेरा अपने विचारोंको लिखना देशके हितकी बजाय अहित करना ही होता। संसारमें ऐसी अनेक बातें हैं जिनके बारेमें मेरा मत निश्चित है लेकिन जब मैं यह सोचता हूँ कि उन विचारोंको प्रकट करनेसे कोई लाभ होनेवाला नहीं है तो मैं उन्हें अपनेतक ही सीमित रखता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री भूपेन्द्रनाथ बनर्जी
३–१, लेंसडाउन लेन
कालीघाट, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १५५९८)की माइक्रोफिलमसे।

४९०. पत्र : भूपेन्द्रनाथ घोषको

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मैंने उपवास और अनशनके बारेमें 'यंग इंडिया' में जो लेख लिखे हैं उन्हें देखनेके बाद आपको लगेगा कि उसमें मेरे चुप रहनेकी हदतक जानने योग्य कारण मिल जायेंगे। जितेन्द्रनाथ दासके अनशन करके देह त्याग देनेके बारेमें मैंने मौन रहना ही उचित समझा क्योंकि इस मुसीबतकी घड़ीमें मेरे विचारोंको प्रकट करने से देशका भला होनेके बजाय बुरा ही अधिक होगा।

हृदयसे आपका,

श्री भूपेन्द्रनाथ घोष
९/१/ए नन्दराम सेन स्ट्रीट
डा० खा० हटखोला, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १५५९८-अ)की माइक्रोफिलमसे।

१. भूपेन्द्रनाथ बनर्जीके २५ सितम्बर, १९२९ के पत्र (एस० एन० १५५९७)के उत्तरमें।

४९१. पत्र : गिरिराजको

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय गिरिराज,

तुम्हारा पत्र मिला। अगर तुम चाहो और प्रो० छाया तुम्हें निजी तौरपर पढ़ाना स्वीकार कर लें तो मेरा विचार है कि वी० जी० इन्स्टीट्यूट जानेकी जरूरत नहीं रहेगी। दरअसल यह सब तो तुम स्वाध्याय द्वारा ही प्राप्त कर सकते हो। निरीहताकी इस परिस्थितिपर, जो हम अपने चारों तरफ देखते हैं, हमें काबू पाना ही है। तुम्हारा प्रशिक्षण इतना हो चुका है कि तुम प्रशिक्षककी सहायताके बिना किसी भी विषयकी उच्च शिक्षा स्वाध्याय द्वारा प्राप्त कर सकते हो। प्रयोगशालाकी जरूरत पड़ सकती है। इसका प्रबन्ध आसानीसे किया जा सकता है। लेकिन मैं चाहूँगा कि इस बारेमें जल्दी न की जाये। पहली चीज तो चमड़ा कमानेका व्यावहारिक अनुभव पा लेना है। जब तुम इस कार्यमें प्रशिक्षित हो जाओगे तब तुम्हारे लिए सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करना आसान हो जायेगा और तुम्हारा क्रियात्मक अनुभव तुम्हें सिद्धान्तकी असंगतियोंको जाँचनेमें सहायक होगा। मैं ऐसे कई लोगोंको जानता हूँ जो चमड़ा कमानेका किताबी ज्ञान तो रखते हैं परन्तु खालका एक टुकड़ा भी नहीं कमा सकते। इसलिए मैं चाहूँगा कि अभी तो तुम अच्छी तरह अपने-आप चमड़ा कमानेकी योग्यता प्राप्त करो; इतनी अच्छी कि गाँवके चमड़ा कमानेवालोंके मुकाबिलेमें तो आ ही जाओ। यह काम भी आसान नहीं लगेगा। तुम जानते हो कि गाँवमें चमड़ा कमानेवाले लोगोंको रसायनशास्त्रका ज्ञान नहीं होता। मौजूदा शिक्षा-प्राणालीने हर बात कठिन बना दी है; और इसीलिए वह अधिकांश लोगोंकी पहुँचके बाहर भी है। हमें इस प्रणालीको उलट देना होगा।

अंग्रेजी (एस० एन० १५६१५)की माइक्रोफिल्मसे।

४९२. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय जयरामदास,

जमशेदजी मेहताने मुझे दो पत्र लिखे हैं जिसमें प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि सरकारी अधिकारी समितिका नाममात्रके लिए अध्यक्ष तो हैं; किन्तु उनकी समिति किसी तरह भी सरकारी समिति नहीं है। अध्यक्ष भी सरकारने थोपा नहीं है बल्कि वह एक सभामें चुना गया था। मुझे यह भी बताया गया है कि पूरी जिम्मेदारी समितिको सौंप दी गई है। इस बातकी पुष्टि कृपलानीने भी की है जो हाल ही में थोड़े समयके लिए हैदराबाद गये थे। इसलिए मैं सोचता हूँ गुजरातसे भेजे पैसों पर लगाया गया प्रतिबन्ध हटा दूँ। पैसे मलकानीके पास हैं; लेकिन अभी मैं उसके पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इस बीच अगर तुम्हें कुछ कहना हो तो पत्र लिखो या तार दो। मेरे कार्यक्रमकी प्रति संलग्न है। तुम्हारी घरेलू कठिनाइयोंको समझ रहा हूँ। तुम पहिले उस तरफ ध्यान दो। परन्तु दिसम्बर-जनवरीमें हालात क्या होंगे इनके बारेमें कुछ कह सकना जल्दबाजी होगी। इसके पहले हमारी भेंट होगी ही तभी अगले वर्षके कार्यक्रम पर विचार-विमर्श हो सकेगा। कर्नाटक और गुजरातके भी दौरेके बारेमें अपने विचार लिखें।

हृदयसे तुम्हारा,

संलग्न : कार्यक्रम

श्री जयरामदास दौलतराम
कांग्रेस भवन, ४१४, गिरगांव बैंक रोड
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५६३७) की माइक्रोफिल्मसे।

४९३. पत्र : ओ० बी० डी० सिल्वाको[1]

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। तदर्थ धन्यवाद। आपके यहाँ श्रीलंकामें ही एक विशेषज्ञ हैं, जिन्हें आश्रममें प्रशिक्षण मिला था। वे कताईका काम देखते हैं। उनका नाम और पता नीचे दे रहा हूँ :

जयवर्धन जयरामदास
५९, वेलम पिट्या
कोलम्बो

जहाँतक श्रम-सम्मेलनका सम्बन्ध है, उसमें किसी भी एशियाई संगठनको प्रतिनिधित्व मिल सकता है। मुझे विश्वास है कि आपको केवल प्रार्थनापत्र ही भेजना पड़ेगा। अगर कोई कठिनाई हो तो कृपया मुझे सूचित करें।

हृदयसे आपका,

श्री ओ० बी० डी० सिल्वा
"लॉरिस्टन"
मुतवाल, कोलम्बो (श्रीलंका)

अंग्रेजी (एस० एन० १५२०२)की फोटो-नकलसे।

१. ओ० बी० डी० सिल्वाके पत्र (एस० एन० १५२०१), २०-९-१९२९ के उत्तरमें। पत्रमें लिखा था : "आपको तो मालूम ही है कि यहाँ चरखेका उपयोग नहीं हो रहा है। लेकिन बेरोजगारी और आर्थिक स्थितिमें जो गिरावट आ गई उसके कारण लोग परेशान हो गये हैं। यहाँ केवल एक सूती मिल है। चर्खा कार्यक्रम चलानेके लिए काफी गुंजाइश है और हम यह काम शुरू करने जा रहे हैं। पैसोंकी व्यवस्था हो जानेपर एक ही महीनेके लिए सही, क्या आप आश्रमसे कोई सहायक भेज सकेंगे? बम्बईमें एशियाई श्रम-सम्मेलन हो रहा है। श्रीलंकाका कोई प्रतिनिधि उसमें नहीं है। अपने प्रभावका प्रयोग करके इसका कारण मालूम कर सकें तो कृपा होगी। . . . मैं समझता हूँ कि आप हमारी मदद करेंगे।"

४९४. पत्र : गंगानाथ झाको[1]

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

अपनी आगामी इलाहाबाद यात्राके दौरान आपके विद्यार्थियोंके बीच भाषणके निमन्त्रणके लिए धन्यवाद। मैं यह उल्लेख करना चाहता हूँ कि ठीक समय और तारीखके बारेमें आप पण्डित जवाहरलाल नेहरूसे बात कर लें।

हृदयसे आपका,

उपकुलपति
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
सीनेट हाउस
इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १५६२७)की फोटो-नकलसे।

४९५. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय कुमारप्पा,

आपका पत्र परिपूर्ण और स्पष्ट था और उसमें सभी बातें आ गई थीं। तत्काल प्राप्ति सूचित न कर सकनेपर आप मुझे क्षमा करें। लगातार यात्रा करते रहनेके कारण उसके मिलनेकी खबर इससे पहले नहीं दे सका। आपने यह कैसे सोच लिया कि मैंने पहलेसे ही कोई धारणा बना ली है। मुझे आपका पत्र इतना पसन्द आया कि मैंने उसे कुमारी एवेलिन गेडगेको भेज दिया है और उन्हें सुझाव दिया है कि वे आपके साथ सीधा पत्र-व्यवहार करें। अपने पत्रमें आपने जो-कुछ लिखा है, मैं उसे ठीक मानता हूँ। आशा है, आप वहाँ स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कुमारप्पा
विद्यापीठ, अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १५६३६)की फोटो-नकलसे।

१. गंगानाथ झाके पत्र (एस० एन० १५६२६), २-१०-१९२९ के उत्तरमें। गांधीजी विद्यार्थियोंके मध्य १७-११-१९२९ को प्रातः बोले थे।

४९६. पत्र : के० ए० फिटरको[1]

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। जिन किताबोंका[2] आपने उल्लेख किया है वे आश्रममें आ गई हैं। नवम्बरके अन्ततक मेरे आश्रम पहुँचनेकी कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि मुझे इन पुस्तकोंको देखनेका अवसर कब मिल सकेगा। मैं यह भी बता दूँ कि हम 'नवजीवन' में पुस्तकोंकी समीक्षा नहीं देते।

हृदयसे आपका,

श्री के० ए० फिटर
मन्त्री, ईरान लीग
हार्नबी रोड, कोर्ट, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५२४६)की माइक्रोफिल्मसे।

४९७. पत्र : आसासिंहको[3]

मुकाम बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

अगर आप अपने आविष्कारको चरखा-संघके मन्त्रीके पास देखनेके लिए भेजें तो उसे गुप्त रखनेका ऐसा प्रबन्ध कर दिया जायेगा कि कोई उसकी नकल न कर सकें। आप चाहें तो अपनी खोजपर किसीको दिखाये बिना ही एकस्व अधिकार

१. के० ए० फिटरके पत्र (एस० एन० १५२४५), २३-९-१९२९के उत्तरमें।

२. एफ० के० दादाचानजी द्वारा लिखी "अवेस्ता जवाहिरो" पुस्तक-माला। इन पुस्तकोंमें धर्म-सम्बन्धी तुलनात्मक विवेचन दिया है। पुस्तकोंमें जरथुश्त और अन्य धर्मोंकी नई व्याख्या की गई है। पत्र-प्राप्तकर्ताने पुस्तकोंकी **नवजीवन**में समीक्षाका अनुरोध किया था।

३. आसासिंहके पत्र दिनांक २४ सितम्बर, १९२९के उत्तरमें। पत्रमें लिखा था : "चरखेके सम्बन्धमें प्रकाशित आपके विज्ञापनके उत्तरमें जिसमें आपने ऐसे चर्खेकी माँग भी की है जिसपर प्रतिदिन आठ घंटेमें १६,००० गज सूत काता जा सके, मैंने एक ऐसे चर्खेका नमूना तैयार किया है जो आपकी आवश्यकताओंको लगभग पूरा करता है। इस चर्खेपर आप, प्रचलित चरखेके मुकाबिलेमें जिसपर मुझे पता लगा है कि २५०० से ३००० गज सूत आठ घंटेमें काता जा सकता है, छः गुना अधिक सूत कात सकते हैं। क्या आप मुझे वह तरीका बतायेंगे जिससे मैं अपनी इस खोजको चरखा-संघको भेजते समय गुप्त रख सकूँ। मुझे भय है कि अगर मैं इसे एकस्व अधिकारके लिए प्रार्थनापत्रके साथ दूँ तो कोई इसकी नकल कर लेगा।" (एस० एन० १५३५६)।

(पेटेन्ट) प्राप्त कर लें। अगर आप एकस्व अधिकार प्राप्त कर लें और फिर कोई उसकी नकल करे तो उससे कुछ नहीं होता; क्योंकि उस अवस्थामें किसी अन्य व्यक्ति द्वारा व्यापारिक स्तरपर उसका उपयोग कर सकना सम्भव नहीं होगा।

हृदयसे आपका,

आसासिंह महोदय
मारफत : कमर्शियल बुक कम्पनी
ब्रैन्ड्रेथ रोड, लाहोर

अंग्रेजी (एस० एन० १५३५७)की माइक्रोफिल्मसे।

४९८. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

बस्ती
८ अक्टूबर, १९२९

चि० ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा पत्र मिला।

बुखार आता जाता है वह अच्छा नहीं है। मेरा तो खयाल है कि तुम्हारे बिजापुर ही जाना और वहाँ जीतनी मदद दी जा सकती है इतनी देना। लेकिन शरीरको बिगाड़कर कभी नहीं। हजम हो सके तो रोटी खानेमें कोई हानि नहीं है। नवंबरकी ता० २६को आश्रममें पहुँचनेकी उमिद रखता हूँ। जितने दिन बाकी रहेंगे उसमें से आधा आश्रममें और आधा वर्धेमें देनेका इरादा है।

जी० एन० २३६७की फोटो-नकलसे।

४९९. पत्र : रैहाना तैयबजीको

मुकाम बस्ती
९ अक्टूबर, १९२९

प्रिय रैहाना,

पिताजीके सम्बन्धमें कितना दुखद समाचार दिया है तुमने? मैं जानता हूँ, कि वे जब बीमार पड़ते हैं कितने निरीह हो जाते हैं। तुम्हारा पत्र दो दिन पहले ही मिला। इसलिए अब तो ऑपरेशन[1] हुए तीन सप्ताहसे अधिक हो गये हैं; मैं आशा करता हूँ कि पिताजी पहलेकी तरह ही पुट-पुट बोलने लगे होंगे। खैर, तुम मुझे पूरी-पूरी जानकारी भेजना और आवश्यक हो तो हरद्वारके पतेपर, जहाँ मैं

१. नाकका ऑपरेशन।

लगभग १४ तारीखतक पहुँच जाऊँगा, तार भेजना। १७ से २४ तक मैं मसूरीमें रहूँगा। महिलाओंको उत्तराधिकार दिलानेके सम्बन्धमें तुम्हारी जानदार दलीलें मुझे पसंद आईं। स्पष्ट है कि तुम 'यंग इंडिया' नियमित रूपसे नहीं पढ़तीं, 'नवजीवन' तो उससे भी कम — तुम्हें गुजराती वर्णमाला लिखना आता है फिर भी। उत्तराधिकार के प्रश्नपर मैंने 'यंग इंडिया'[1] में विचार व्यक्त किये हैं, किन्तु तुम्हारे पत्रके भागको विवेच्य विषय बनाकर मैं तुम्हारी इच्छाके अनुरूप इस विषयपर पुनः लिखूँगा। महिलाओंपर समर्थ पुरुषों द्वारा थोपी अयोग्यताओंके लिए मेरा लड़कियों-जैसा क्रोधित होना जरूरी नहीं है।

जतीनदासके सम्बन्धमें मैं जान-बूझकर चुप्पी साधे हूँ क्योंकि मैं इस उपवासको उचित नहीं मानता। लेकिन मैंने अपनी राय प्रकट नहीं की है; क्योंकि अधिकारी उसे तोड़-मरोड़ कर उसका बहुत अधिक दुरुपयोग करते।

तुम्हारा,
बापू

कु० रैहाना तैयबजी
मुकाम बड़ोदा

अंग्रेजी (एस० एन० ९६११)की फोटो-नकलसे।

५००. पत्र : छगनलाल जोशीको

बस्ती
९ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

कल तुम्हें लम्बा पत्र[2] लिखवाया है। एक बात रह गई थी और वह है विश्वासके बारेमें तुम्हारा उल्लेख। भाषा विचार-वहन करनेका कितना निर्बल साधन है, यह देखकर मैं हँस पड़ा। विश्वासपात्रताका तुमने जो अर्थ बनाया है उसे समझ लेनेपर ही तुम्हारी बात समझ सका हूँ। किन्तु जिस सिलसिलेमें तुमने यह वाक्य लिखा उससे तो मैंने यही अर्थ निकाला कि तुम मेरा विश्वास प्राप्त करनेके लिए आतुर रहते हो। मैं यह नहीं समझ सका कि मिले हुए विश्वासके लिए पात्र बननेका उल्लेख है। लेकिन अब समझ गया हूँ और यह प्रयत्न तो हमेशा किये जाने लायक है ही। किन्तु ऐसा प्रयत्न करते हुए चिन्ता तनिक भी नहीं करनी चाहिए।

१. देखिए : "महिलाओंकी स्थिति", १७-१०-१९२९।
२. देखिए "पत्र : छगनलाल जोशीको", ८-१०-१९२९।

जिनका विश्वास हमें प्राप्त है, उनका विश्वास न खो देनेका प्रयत्न मोहका सूचक है। मनुष्य इतना अपूर्ण प्राणी है कि वह आज किसीपर विश्वास करता है और कल ही किसी छोटी बात पर उसे सम्पूर्ण रूपसे वापस ले लेता है। किसीका ऐसा विश्वास मिले तो भी क्या और न मिले तो भी क्या? किन्तु हमें तो पूरे संसारके विश्वासका पात्र बनना है; क्योंकि हमारा एक भी साँस ले सकना, पूरे संसारके हमारे प्रति विश्वासपर निर्भर है। यदि ऐसा न होता तो हमने कबका एक-दूसरेको मार डाला होता। इसलिए विश्वासपात्रता तो मात्र कर्त्तव्य-परायणता है। तटस्थ भावसे उसीका पालन करना चाहिए।

इसलिए मैं तुमसे जो माँगता हूँ वह है – कितना भी काम होनेपर निश्चिन्तता और आसपासके वातावरणके प्रति अतीव उदारता। जब यह आ जायेगी तब तुम्हारा काम बिलकुल सरल हो जायेगा क्योंकि तब तुम्हारे शब्द तीरकी तरह सीधे लगेंगे और एक ओर माधवलाल और दूसरी ओर नारणदास इनमें से कोई तुम्हारे एक भी वचन का उलटा अर्थ नहीं करेगा।

यह पत्र बहुत संक्षिप्त करके लिखा है इसलिए यदि मेरी कोई बात समझनेमें कठिनाई हो तो उत्तरमें अपनी शंका लिख भेजना। तब मैं विशेष रूपसे समझानेका प्रयत्न करूँगा।

काकीके स्वर्गवासके बारेम ब्यौरेवार पत्रकी आशा करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४५३)की फोटो-नकलसे।

५०१. पत्र : जमनादास गांधीको

मानकपुर[1] जाते हुए
९ अक्टूबर, १९२९

चि० जमनादास,

यह पत्र चलती गाड़ीमें लिख रहा हूँ, इसलिए पैंसिलसे ही लिखा जा सकता है। शालाका विवरण पढ़ लिया है। मैं जो चाहता था, वह इसमें नहीं आया। विवरणके अन्तमें अपनी माँग स्पष्ट रीतिसे रखनी चाहिए। अब उसके विषयमें लिखना या तार करना। कार्यक्रम साथमें दे रहा हूँ। कमसे-कम कितने रुपये चाहिए और कितनी किस्तोंमें?

तार करो तो उसमें इतना ही देना। पत्रमें यह भी लिखना कि तुम अधिकसे-अधिक कितना चाहते हो। स्कूलकी जमीनके लिए जो किराया देना पड़ता है वह तो तुम्हें अखरता ही है। जमीनको खरीद ही लिया जाये तो अच्छा। ठाकोर साहबसे

१. गुजरातीमें ‘मनकापुर’ लिखा है, शहरका नाम मानकपुर है।

मिल सको तो मिल लेना। जमीनको खरीद लेनेमें क्या खर्च पड़ेगा? क्या बात है कि अभी तुम्हारी छाजन ठीक नहीं हुई? उसका क्या उपाय कर रहे हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८६९९)से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

५०२. सन्देश: सिख लीगको

मानकपुर
[९ अक्टूबर, १९२९][1]

लायलपुरमें होनेवाले सिख लीग-सम्मेलनको मेरी शुभ कामनाएँ दें। मैं यह आशा तो करता ही हूँ कि लीग सोच-समझकर कांग्रेसका वहिष्कार नहीं करेगी। वह यह भी समझ लेगी कि मामला अन्तिम रूपसे तय नहीं हुआ है बल्कि बातचीत और समझौतेके लिए मार्ग खुला है।

[अंग्रेजीसे]
ट्रिब्यून, १२-१०-१९२९

५०३. पत्र: गंगाबहन वैद्यको

मानकपुर
९ अक्टूबर, १९२९

चि० गंगाबहन (बड़ी),

तुम्हारा पत्र बहुत दिनसे नहीं मिला। सप्ताहमें एक बार तो लिखा ही करो।

काकीके पास अन्तिम समयमें तो तुम रही ही होओगी। कोई और रहा हो, तो वह मुझे उस समयकी बात लिखकर भेजे।

तुम्हारा वजन कितना है? क्या खाती हो? लक्ष्मी आजकल कैसा व्यवहार कर रही है? रैयाका अब क्या हाल है? रोटी बनानेमें तुम्हारा कितना समय जाता है? रोटी अब कैसी बन पा रही है?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो: गं० स्व० गंगाबहेनने

१. इस तारीखको गांधीजी मानकपुरमें थे।

५०४. कांग्रेसका संगठन

इन पृष्ठोंमें बार-बार यह कहा गया है कि कांग्रेसके परिपूर्ण संगठनका अर्थ ही लगभग स्वराज्य पा जाना है। प्रत्येक देशके लिए यह सिद्धान्त ठीक नहीं बैठेगा, मगर भारतके लिए उसकी विशिष्ट परिस्थितिमें यह ठीक है। अंग्रेजी राज्यने हमपर जो मोहिनी-मन्त्र फूँका है, हम उसके वशीभूत हो गये हैं। लेकिन अंग्रेजी राज्यका मतलब उसकी सैनिक शक्तिसे उतना नहीं है, जितना कि ब्रिटिश संगठनसे है। मुट्ठी-भर विदेशियोंकी, जिनकी भाषा, संस्कृति और स्वभाव एकदम विजातीय हैं, सैनिक निरंकुशताके किये कुछ भी नहीं हो सका होता, अगर उनमें वह संगठन न होता जिसके बलपर उन्होंने लोगोंको इतना नचा डाला है। जिस क्षण उनके इस मन्त्रका प्रभाव दूर होगा, उसी क्षण इस शासनका भी लोप हो जायेगा। उस हालतमें अंग्रेज हमारे देशकी इच्छानुसार हमारे मित्र या सेवक बनकर ही रह सकेंगे। उनके जानो-माल और न्याय-हितोंकी रक्षाका आधार राष्ट्रकी सद्भावनाओं और उसके सौजन्य पर निर्भर रहेगा, न कि गोलाबारूदसे लैस किलोंपर; क्योंकि करोड़ोंकी संख्यामें जागे हुए लोगोंके राष्ट्रके सामने मुट्ठी-भर लोगोंकी रक्षाका यह तरीका नगण्य है।

महासभाके संगठनकी परिपूर्णता इस कसौटीपर कसी जा सकती है:

१. हरएक गाँवमें कांग्रेसके प्रतिनिधि होने चाहिए।

२. हरएक सदस्यको यह समझना चाहिए कि कांग्रेस क्या चीज है और उसे सदैव उसकी आज्ञाओंके पालनमें तत्पर रहना चाहिए।

हमारे देशमें कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है, जो सच्चे अर्थमें राष्ट्रीय और राजनैतिक है। कांग्रेस अपने ढंगकी सबसे पुरानी संस्था है। देशके सर्वाधिक प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषोंने उसकी सेवा की है। और इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि यही देशकी सबसे अधिक शक्तिमान संस्था है। ऐसी संस्थाके लिए सुदूर देहातमें पहुँच जाना और गाँव-गाँवमें अपना झंडा फहराना कोई मुश्किल नहीं है, न होना चाहिए।

आइए, इस बातको मद्देनजर रखकर हम मन्त्री द्वारा हाल ही में प्रकाशित एक दिलचस्प और बोधप्रद पत्रिकाका अवलोकन करें। पत्रिकामें अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बम्बई बैठकके प्रस्तावानुसार बनाये गये सदस्योंका प्रान्तवार विशद पृथक्करण दिया गया है। इसके साथके आँकड़े नीचे दिये जाते हैं:

प्रान्त	कोटा	बनाये गये सदस्य
१. अजमेर	१,१२०	१४,५९४
२. आन्ध्र	३६,७६३	२९,०००
३. असम	८,३३७	(?)
४. बिहार	७२,५८८	७८,१०७

५. बंगाल	१,२४,४१३	९३,३८५
६. बरार	७,६८८	७,६८८(?)
७. बर्मा	२,०००(?)	१,९०४
८. मध्यप्रदेश (हिन्दी)	२०,२०५	२८,८२७
९. मध्यप्रदेश (मराठी)	६,५८६	११,६११
१०. बम्बई	१७,०००	११,८८९
११. दिल्ली	६,९५४	६,०७१
१२. गुजरात	७,३९६	१५,९९०
१३. कर्नाटक	१३,२४४	१०,०३८
१४. केरल	७,७४७	३,२६५
१५. महाराष्ट्र	२१,७२०	२४,६०८
१६. सीमाप्रान्त	२,०००	२,०००(?)
१७. पंजाब	५१,७१८	२७,४९०
१८. सिन्ध	८,२००	२,६१५
१९. तमिलनाड	५१,७८४	४,५००(?)
२०. संयुक्त प्रान्त	१,०७,७२४	६७,८४९
२१. उत्कल	१२,४२१	६,९४५
कुल	५,८,७९०८	४,४८,४१६

पाठकोंको इन आँकड़ोंसे सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। उन्हें पत्रिका मँगवा कर प्रान्तवार और जिन जिलोंके अंक मिल सके हैं उनके जिलेवार पृथक्करणका मनन करना चाहिए। अगर उनका मन देशभक्तिकी दिशामें थोड़ा भी जागृत है, तो इस मननसे उन्हें अवश्य ही लाभ होगा। अजमेरको छोड़कर, जिसकी सदस्य-संख्याकी अभी जाँच हो रही है, गुजरात ही सबसे आगे है; उसके सदस्योंकी संख्या नियत संख्याके दूनेसे भी ज्यादा है। गुजरातके अलावा बिहार, मध्यप्रदेश (हिन्दी) और मराठी तथा महाराष्ट्र ही ऐसे प्रान्त हैं, जिन्होंने अपने लिए निश्चित संख्यासे अधिक सदस्य बनाये हैं। बरार और सीमाप्रान्तने अपना हिस्सा-भर पूरा किया है। शेष अपना हिस्सा भी पूरा नहीं कर सके हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि फी चार सौ आदमी एक सदस्य बनाना जरूरी माना गया था। इनमें देशी राज्य, बर्माका और सीमाप्रान्तकी आबादीका समावेश नहीं किया गया था। इस दृष्टिसे यह संख्या हर तरह कम ही थी। संख्या-पूर्ति न होनेपर जुर्माना भी रखा गया था। इसमें शक नहीं कि आम तौरपर कार्यकर्त्ताओंने अपने-अपने प्रान्तसे सदस्य बनानेके लिए उचित श्रम किया। लखनऊकी बैठकमें कांग्रेस कमेटीने जुर्मानेकी शर्तको ढीला कर दिया, क्योंकि वैसा करनेमें बहुत-से प्रान्त पृथक कर दिये जाते। लेकिन अब इस रियायतसे लाभ उठाकर उन प्रान्तोंको, जो अपना हिस्सा पूरा नहीं कर सके हैं जी-तोड़ मेहनत करके कोटा पूरा कर देना चाहिए।

पत्रिकामें दिये गये अंकोंके पीछे एक गम्भीर वास्तविकता छिपी हुई है। और वह यह है कि न तो अबतक हमारे पास पूरे कार्यकर्त्ता हैं और न सुदूर देहातोंमें ही हम अभी घुस पाये हैं। कई जिले तो पिछड़े हुए मानकर ही अछूते छोड़ दिये हैं। कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंकी दृष्टिमें तो कोई भी जिला पिछड़ा हुआ नहीं होना चाहिए, और अगर कोई हो ही, तो वह उनकी अधिक चिन्ता और अधिक ध्यानका पात्र है। बारडोलीके पिछड़े हुए प्रदेश इन दिनों बड़ेसे-बड़ा रचनात्मक काम करके दिखा रहे हैं। उन दिनोंका पिछड़ा हुआ चम्पारन आज अधिकसे-अधिक सदस्य बना कर सिर ऊँचा किये खड़ा है। चम्पारनको ४,५२२ सदस्य बनाने थे, मगर उसने बनाये हैं १५,००० सदस्य। इस बातका लगातार अनुभव होता रहा है कि जहाँ ठोस, प्रामाणिक और निरन्तर काम किया गया है वहाँके लोगोंने, जो पहले अतिशय पिछड़े हुए माने जाते थे, अब आश्चर्यजनक प्रगति और उत्साह दिखाया है। अतः यद्यपि बहुत-कुछ किया जा चुका है, फिर भी हमारे ध्येयकी प्राप्तिके लिए तो अभी अनन्त गुना अधिक काम करना है। हम इतने ही से सन्तोष न मान बैठें कि दूसरी राजनैतिक संस्थाओंके मुकाबिले हमारा संख्याबल अधिक है।

बात तो यह है कि कांग्रेस और दूसरी संस्थाओंके बीच किसी भी तरहकी होड़ नहीं होनी चाहिए। अगर हम सचाईसे काम करते रहेंगे तो एक दिन वह भी आयेगा जब सब एक स्वरसे कांग्रेसको एकमात्र राष्ट्रीय संस्था कबूल करेंगे और अपनी-अपनी संस्थाके सदस्य बने रहकर भी कांग्रेसके सदस्य बननेमें गौरव समझेंगे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कांग्रेसको रचनात्मक कामके क्षेत्रमें आश्चर्यकारक तरक्की करके दिखानी चाहिए और विरोधी विचार रखनेवालोंके साथ तबतक उदारतम व्यवहार करना चाहिए जबतक कि उनके किसी कार्यसे हमारी राष्ट्रीय संस्थाके निश्चित ध्येयको कोई हानि न पहुँचती हो।

साथ ही हम केवल नाममात्रकी सदस्यतासे ही सन्तुष्ट न हो जायें। कार्यकर्त्ताओंको नये सदस्योंके सम्पर्कमें रहना चाहिए, उनसे मेलजोल बढ़ाना चाहिए, उनके सुख-दुःखमें हाथ बँटाना चाहिए। सम्भव है, नये लोग सदस्य बनते समय खादी न पहनते हों — उसके महत्वको न जानते हों। सदस्यताके लिए तो उद्देश्यको मानना और चार आने या सूतके रूपमें चन्दा देना-भर काफी है। लेकिन अगर सदस्य नियमित रूपसे खादी नहीं पहनता है तो वह कांग्रेसके चुनावके समय मत देनेसे वंचित रहता है। कार्यकर्त्ताओंका यह कर्त्तव्य हैं कि वे नये सदस्योंको यह नियम समझायें और कांग्रेसका इतिहास बतलायें। कार्यकर्त्ता उनके सुख-दुःखमें भाग लें जिससे लोगोंको पता चले कि कांग्रेस किसीपर जोर-जुल्म करनेवाली संस्था नहीं बल्कि हरएक आफतके मारेकी सच्ची मददगार है। अगर इन प्राथमिक शर्तोंका ठीक-ठीक पालन किया जाये तो कोई कारण नहीं कि कांग्रेस एक जबरदस्त और अदम्य संस्था न बन सके।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१०-१९२९

५०५. टिप्पणियाँ

धन्यवाद

मैं उन बहुसंख्यक मित्रोंको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरे जन्म-दिवसके निमित्तसे बधाइयाँ भेजनेकी कृपा की है। व्यक्तिगत पत्र न लिख सकनेके कारण वे मुझे क्षमा करेंगे।

एक उत्साह-वर्धक प्रयत्न

खादी प्रतिष्ठानके श्री सतीशचन्द्र दासगुप्तने जुलाई और अगस्तके कार्यके नीचे लिखे आँकड़े[1] मेरे पास भेजे हैं। वे अपने पत्रमें लिखते हैं:

> **धान बोने और पौधोंको रोपनेके काममें जुलाई, अगस्तका सारा तथा सितम्बरका भी कुछ समय लग जानेके कारण इन महीनोंमें राष्ट्रीय संघके कामकी रफ्तार बहुत धीमी रही है। अब फिरसे काम शुरू हुआ है; देखना है, अब भी पहलेका-सा उत्साह बराबर टिकता है या नहीं।**

पाठक देखेंगे कि जो काम हुआ है, वह थोड़ा है, तथापि उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता; क्योंकि हरएक रचनात्मक या ठोस कामका आरम्भ छोटे पैमानेपर ही होता आया है। लेकिन जहाँ-जहाँ कार्यकर्त्ता सच्चे रहे और काम बराबर होता रहा है, वहाँ वह नित्य सफल होता हुआ हजार गुना अधिक बढ़ा है। बोगराके कातने-वालोंको छोड़कर, क्योंकि आँकड़ेमें उनके सूतकी तादाद नहीं दी है, कुल ३७९ कतैयोंने दो महीनोंमें १०२ सेर सूत काता है। इस हिसाबसे फी आदमी हर दो महीनेका लगभग २० तोला सूत हुआ, यानी एक आदमीने हर रोज $\frac{1}{3}$ तोला सूत काता। इतना सूत कातनेमें प्रतिदिन आध घंटेसे ज्यादाका समय नहीं लगता। लेकिन देहातियोंके लिए लगातार साल-भर तक हर रोज आध घंटा सूत कातना कोई मामूली बात नहीं है। इस १०२ सेर सूतसे १० अंकके सूतकी साधारण लम्बाईवाली कोई ७५ साड़ियाँ बन सकती हैं। किसी लाभप्रद धन्धेको हानि पहुँचाये बिना लोगोंकी इतनी सहायक आमदनी बढ़ जाती है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह सब काम ऐसे समय किया गया है, जब लोगोंको धान बोने और रोपने वगैरासे फुरसत नहीं थी। इस दृष्टिसे राष्ट्रीय संघका कार्य हर तरह प्रशंसनीय ही नहीं, बल्कि एक विशाल वृक्षका बीजरूप भी है।

ठीक रास्ता

नये जागरणके श्रेयस्कर परिणामोंमें से एक अच्छी बात यह हुई है कि हमारे युवक अब रोज-रोज श्रमकी और ऐसे धन्धोंकी जिनमें नीतिके विरुद्ध कुछ नहीं है

१. नहीं दिये जा रहे हैं।

प्रतिष्ठाको ज्यादा ठीक तरहसे समझते जा रहे हैं। मैंने गाजीपुरमें एक नाईको देखा जो वहीं पढ़-लिखकर वहाँकी नगरपालिकाकी एक प्राथमिक शालामें शिक्षक हो गया और उसने अपना परम्परागत धन्धा भी नहीं छोड़ा है। उसे प्रतिमास सत्रह रुपयेका जो स्वल्प वेतन मिलता है, अपने धन्धेके बलपर वह उसमें लगभग दस रुपयोंकी वृद्धि कर लेता है। उसने बताया कि यदि वह अपना पूरा समय धन्धेमें ही लगाये तो उसे काफी अधिक मिल जाये। यह नापित-शिक्षक विश्वासपूर्वक खादी पहनता है और उसने यह भी बताया कि अवकाशके समयमें उसके परिवारके सभी लोग कातते हैं और वे सब खादीधारी हैं। इन दिनों अपना धन्धा छोड़े बिना एक नाई सज्जन उद्योग मन्दिरमें खादी-सेवा-संघका शिक्षाक्रम पूरा कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि ऐसे उदाहरणोंका जितना अनुकरण इस समयतक हुआ है उससे कहीं ज्यादा हो। छुट-पुट वकील और डाक्टर सूत कातें या इक्के-दुक्के नाई और दर्जी राष्ट्र सेवा करें, यह काफी नहीं है; होना तो यह चाहिए कि अपना-अपना धन्धा करते हुए हजारों कारीगर, किसान और अन्य पेशेवर लोग श्रमकी प्रतिष्ठाको समझकर राष्ट्रीय-सेवा करें और केवल शरीरश्रममें लगे हुए लोग अपना काम करते हुए साहित्यके गौरवको समझें और इस तरह सभी लोग राष्ट्रको ऊँचा उठाने और नीचे न गिरने देनेमें जितना योगदान कर सकते हैं, करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१०-१९२९

५०६. तुलसीदासजी

कुछ सज्जन पूछते हैं:

> रामायणको आप सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते हैं, परन्तु समझमें नहीं आता क्यों? देखिए, तुलसीदासजीने स्त्री-जातिकी कितनी निन्दा की है? बालि-वधका कैसा समर्थन किया है, विभीषणके देशद्रोहकी किस कदर प्रशंसा की है। सीताजी पर घोर अन्याय करनेवाले रामको अवतार बताया है। ऐसे ग्रन्थमें आप कौन-सा सौन्दर्य देख पाते हैं? आप कहीं तुलसीदासजीके काव्य-चातुर्यके लिए तो रामायणको सर्वोत्तम ग्रन्थ नहीं समझते? यदि ऐसा हो तो, कहना पड़ेगा कि आपको काव्य-परीक्षाका कोई अधिकार नहीं है।

उपरोक्त सारे प्रश्न एक ही मित्रके नहीं हैं; भिन्न-भिन्न मित्रोंने भिन्न-भिन्न अवसरोंपर जो-कुछ कहा और लिखा है, यह उसका सार है। यदि ऐसी एक-एक बातको लेकर देखें तो, सारीकी-सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। सन्तोष यही है कि इस तरह प्रत्येक ग्रन्थ और प्रत्येक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। एक चित्रकारने अपने टीकाकारोंको उत्तर देनेके लिए अपने चित्रको

प्रदर्शनीमें रखा और नीचे इस तरह लिखा, "इस चित्रमें जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हों, वह उस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।" परिणाम यह हुआ कि चित्रके अंग-प्रत्यंग दोषपूर्ण बताये गये। मगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था। टीकाकारोंने तो वेद, बाइबल और कुरानमें भी बहुतेरे दोष बताये हैं, परन्तु उन ग्रन्थोंके भक्त उनमें दोषोंका अनुभव नहीं करते। प्रत्येक ग्रन्थकी परीक्षा समूचे ग्रन्थके मर्मको देखकर ही की जानी चाहिए। यह बाह्य परीक्षा है। अधिकांश पाठकोंपर ग्रन्थ-विशेषका क्या असर हुआ है, यह देखकर ही ग्रन्थकी आन्तरिक परीक्षा की जाती है। किसी भी साधनसे क्यों न देखा जाये रामायणकी श्रेष्ठता ही सिद्ध होती है। ग्रन्थको सर्वोत्तम कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं कि उसमें एक भी दोष नहीं है। परन्तु रामचरितमानसके बारेमें यह दावा अवश्य है कि उससे लाखों मनुष्योंको शान्ति मिली है। ईश्वर-विमुख लोग उसके पारायणसे ईश्वर-सम्मुख हुए हैं और आज भी होते जा रहे हैं। मानसका प्रत्येक पृष्ठ भक्तिसे भरपूर है। मानस अनुभव-जन्य ज्ञानका भण्डार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पापका समर्थन करनेके लिए रामचरितमानसका सहारा लेते हैं। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि लोग रामचरितमानसमें से अकेले पापका ही पाठ सीखते हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि तुलसीदासजीने स्त्रियों पर अनिच्छासे अन्याय किया है। इसमें और ऐसी ही अन्य बातोंमें तुलसीदासजी अपने युगकी प्रचलित मान्यताओंसे परे नहीं जा सके; अर्थात् तुलसीदासजी सुधारक नहीं, बल्कि भक्त-शिरोमणि थे। इन बातोंमें हम तुलसीदासजीके दोषोंका नहीं, परन्तु उनके युगके दोषोंका दर्शन अवश्य करते हैं।

ऐसी दशामें सुधारक क्या करें? क्या उनको तुलसीदासजीसे कुछ सहायता नहीं मिल सकती? अवश्य मिल सकती है। रामचरितमानसमें स्त्री-जातिकी काफी निन्दा मिलती है, परन्तु उसी ग्रन्थ द्वारा सीताजीके पुनीत चरित्रका भी हमें परिचय मिलता है। बिना सीताके राम कैसे? रामका यश सीताजी पर निर्भर है। सीताजीका रामजी पर नहीं। कौशल्या, सुमित्रा आदि भी मानसके पूजनीय पात्र हैं। शबरी और अहिल्याकी भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राक्षस था, मगर मन्दोदरी सती थी। ऐसे अनेक दृष्टान्त इस पवित्र भण्डारमें से मिल सकते हैं। मेरे विचारमें इन सब दृष्टान्तोंसे यही सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी ज्ञानपूर्वक स्त्री-जातिके निन्दक नहीं थे। ज्ञान-पूर्वक तो वे स्त्री-जातिके पुजारी ही थे। यह तो स्त्रियोंकी बात हुई।

परन्तु बालि-वधादिके बारेमें भी दो मतोंकी गुंजाइश है। विभीषणमें तो मैं कोई दोष नहीं पाता हूँ। विभीषणने अपने भाईके साथ सत्याग्रह किया था। विभीषणका दृष्टान्त हमें यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासकके दोषोंके प्रति सहानुभूति रखना या उन्हें छिपाना देशभक्तिके नामको लजाना है, इसके विपरीत देशके दोषोंका विरोध करना सच्ची देशभक्ति है। विभीषणने रामजीकी सहायता करके देशका भला ही किया था। सीताजीके प्रति रामचन्द्रके बर्तावमें निर्दयता नहीं थी, उसमें राजधर्म और पति-प्रेमका द्वन्द्व-युद्ध था।

जिसके दिलमें इस सम्बन्धकी शंकाएँ शुद्ध भावसे उठें, उन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके अर्थको यन्त्रवत् स्वीकार न करें। जिस विषयमें हृदय शंकित है, वे उसे छोड़ दें। सत्य, अहिंसादिकी विरोधिनी किसी वस्तुको स्वीकार न करें। रामचन्द्रने छल किया था, इसलिए हम भी छल करें, यह सोचना औंधा पाठ पढ़ना है। यह विश्वास रखकर कि रामादि कभी छल नहीं कर सकते, हम पूर्ण पुरुषका ही ध्यान करें और पूर्ण ग्रन्थका ही पठन-पाठन करें। परन्तु 'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता' न्यायानुसार सब ग्रन्थ दोषपूर्ण हैं, यह समझकर हंसवत् दोष-रूपी नीरको निकाल फेंकें और गुण-रूपी क्षीर ही ग्रहण करें। इस तरह अपूर्णमें सम्पूर्णकी प्रतिष्ठा करना, गुणदोषका पृथक्करण करना, हमेशा व्यक्तियों और युगोंकी परिस्थिति पर निर्भर रहेगा। स्वतन्त्र सम्पूर्णता केवल ईश्वरमें ही है और वह अकथनीय है।

हिन्दी नवजीवन, १०-१०-१९२९

५०७. पत्र : गंगाबहन झवेरीको

गोंडा
१० अक्टूबर, १९२९

चि० गंगाबहन,

तुम स्त्री-मण्डलकी अध्यक्षा हो, इसलिए तुम्हें सिद्धान्तके विषयमें जागरूक माना जा सकता है। तुममें विवेक-बुद्धि है, तुम चतुर हो और तुम्हें दुनियाका खासा अनुभव है। तुमने सुख-दुःख देखे हैं। तुम . . .[1] की पड़ोसिन हो, इसलिए नीचे लिखे प्रश्नोंके जवाब देना। उससे मेरा मार्गदर्शन होगा।

तुम . . .[2] की पत्नीके विषयमें क्या जानती हो? क्या . . .[3] इस बहनके प्रति निरन्तर अन्याय ही किया करता है? कपासकी चोरीको लेकर उसने पत्नीको पीटा था, इस दोषके विषयमें तो मुझे खबर है। मैं . . .[4] के सामान्य बरतावके विषयमें जानना चाहता हूँ। क्या तुम बुधाभाई और . . .[5] के बीचके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी मलिनता मानती हो? यदि मानती हो, तो उसका आधार क्या है। इनको लेकर बहनोंमें बहुत चर्चा चल रही है, ऐसा लगता है यह क्या बात है? हमारा नियम तो यह है कि कोई किसीकी पीठ पीछे निन्दा करे ही नहीं। और यदि किसी विषयमें सन्देह पैदा हो जाये तो उसे दूर कर लिया जाना चाहिए। यदि वह सन्देह किसी मजबूत आधारपर आधारित हो तो किसी औरसे उसके विषयमें एक भी शब्द कहनेसे पहले जिसके विषयमें शक हुआ है, उसे उसीके सामने रखना चाहिए और धीरजके साथ उसकी बात सुननी चाहिए। यदि मैंने इस नियमका पालन न किया होता, तो मुझे कितने ही लोगोंका साथ छोड़ देना पड़ता। तुम्हें पत्र लिखने का मन तो कई बार होता है, किन्तु मनको समझा लेता हूँ। और सभी बहनोंके नाम जो पत्र लिखा जाता है, उसीमें सन्तोष मान लेता हूँ।

१. से ५. नाम छोड़ दिये गये हैं।

नानीबहन झवेरीका क्या हाल है? वह मुझे लिखनेवाली थी। किन्तु उसने लिखा तो नहीं। क्या पन्नालालकी तबीयत ठीक रहती है? खेतीके कामकी ठीक तरक्की हो रही है? टिड्डियोंसे कुछ नुकसान तो नहीं हुआ? क्या महेश शामकी प्रार्थनामें अब कुछ कम ऊधम करता है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३०९७)की फोटो-नकलसे।

५०८. पत्र: छगनलाल जोशीको

गोंडा
१० अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

. . .[1] का पत्र इसके साथ तुम्हें पढ़नेके लिए भेज रहा हूँ। उसको जो जवाब लिखा है, उसे पढ़कर उसे दे देना और उससे साफ-साफ बात कर लेना। मुझे उसका पत्र निर्मल लगा है। . . .[2] में क्रोध तो है ही। किन्तु यह मनुष्य सच बोलनेवाला है; ऐसी उसकी छाप मुझपर पड़ी है।

. . .[1] के साथ उसका सम्बन्ध मैंने तो हमेशा ही पवित्र माना है। मुझे यह तो अभी मालूम हुआ है कि . . .[4] उसकी सगी बहन नहीं है।

देखता हूँ कि . . .[1] ने अपना पत्र तो तुम्हें पढ़ा दिया था; इसलिए उसे भेजनेकी जरूरत नहीं है। . . .[1] ने क्या अन्याय किया है, यह मुझे लिखना।

पर-स्त्री और पर-पुरुषोंके सम्बन्धमें बहुत गलत अफवाहें उड़ती हैं, इसका हमें अनुभव है। यह सही है कि कई बार ये सम्बन्ध मलिन भी सिद्ध हुए हैं; किन्तु उससे हमारे डर जानेका कोई कारण नहीं है। ऐसा तो इस संसारमें हुआ ही करता है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य तो यही है कि हम प्रत्येक किस्सेकी तटस्थतासे जाँच करें। और जबतक शंका करनेका सबल कारण न मिले तबतक ऐसे सम्बन्धोंको निर्दोष मानें। इसमें हमारे धोखा खानेकी सम्भावना तो सदा है; किन्तु निर्दोषको दोषी ठहरानेके जोखिमके बजाय धोखा खानेका जोखिम उठाना हमेशा ज्यादा अच्छा है। तुम इस बातका ध्यान रखकर अपना निर्णय करना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

दुबारा नहीं देखा।

चम्पाको लिखा पत्र पढ़ लेना। इससे तुम्हारे लिए निर्णय करना आसान हो जायेगा।

गुजराती (जी० एन० ५४५४)की फोटो-नकलसे।

१. से ३. नाम छोड़ दिये गये हैं।

५०९. पत्र : एक मित्रको

गोंडा
१० अक्टूबर, १९२९

भाई . . .,[१]

तुम्हारा पत्र मिला। इसमें गुप्त रखने लायक तो कोई बात ही नहीं है। तुमसे जो दोष हुआ है, उसे तो तुमने मान ही लिया है। इसलिए उसके बारेमें ज्यादा कहनेकी कोई जरूरत नहीं है।

किसी भी स्त्रीको मारनेका अधिकार पुरुषको नहीं है। पुरुष क्या अपनी स्त्रियोंके प्रति कम अपराध करते हैं? किन्तु यदि स्त्री प्रत्येक अपराधके लिए अपने पतिको मारने लग जाये तो आज हमें संसारमें बहुत कम पति जीवित दिखाई दें। और यदि स्त्रीको ऐसा करनेका अधिकार नहीं है तो पुरुष यह अधिकार कैसे ले सकता है? यह सब तुम्हें उलाहना देनेके लिए नहीं लिख रहा हूँ; किन्तु अपराधका गाम्भीर्य समझने और अच्छी तरह देख सकने तथा फिर ऐसा अपराध न करनेकी दिशामें और सावधान रहनेके लिए लिख रहा हूँ।

फिर तुम तो अपनी पत्नीके प्रति भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हो, इसलिए तुम्हारे लिए तो उसके प्रति उदासीन रहना और भी जरूरी हो जाता है। यह मेरी स्त्री है, तुम्हें ऐसा विचार भी मनसे निकाल देना चाहिए। उसे मित्र मानकर जितनी हो सके उतनी सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। उसने कपासकी चोरी की है तो उसका पैसा भर देना चाहिए। फिर भी चोरी करे तो उसे निर्वाह लायक पैसे देना तय करके किसी दूसरे स्थान पर रहनेके लिए कह सकते हो।

फिर ठीकसे देखें तो उसका तकिया इस्तेमाल करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं था। जबतक तुम दोनोंके बीच झगड़ा बना रहता है तबतक तुम्हें उसकी सेवा या उपकार नहीं लेना चाहिए; और तकिया इस्तेमाल किया इसमें तुमने उसकी सेवा नहीं तो उपकार तो लिया ही है।

फिर एक सूक्ष्म बात भी तुम्हारे सामने रखता हूँ। जिस स्त्रीके बारेमें हमारे मनमें विकार पैदा होना सम्भव हो, ब्रह्मचर्यका पालन करनेके इच्छुकको उसकी एक भी वस्तुका उपयोग नहीं करना चाहिए। उसमें तकिये जैसी वस्तु जिसका उसने हमेशा स्पर्श किया हो और जिस वस्तुका अपनी विकारकी दशामें हमने भी उपयोग किया हो, ऐसी वस्तुका तो कभी उपयोग नहीं करना चाहिए। तुमने जिन व्रतोंका वर्णन किया है वे ठीक हैं। यदि उनमें दूधका निषेध न रखा हो तो दूध और दही लेना अच्छा रहेगा। अपनी शक्तिसे बढ़कर कोई भी व्रत नहीं लेना। व्रत न ले सको तो उसमें हानि नहीं, किन्तु लेकर छोड़नेसे बहुत हानि हो सकती है।

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

. . . के[1] साथ तुम्हारे सम्बन्धके बारेमें लोगोंमें चर्चा होती हो तो उससे तनिक भी न डरना। इस अफवाहका कोई कारण नहीं, इतना तुम कह सको और तुम्हारी आत्मा साक्षी दे सके तो तुम सुरक्षित हो। अपनी पत्नीके साथ साफ-साफ बात कर लेना। तुम्हारी तरफसे कुछ भी अपराध हुए बिना यदि वह उपद्रव करती रहे तो तुम उसे दृढ़तापूर्वक कहीं और जानेके लिए कह देना। इस वक्त तो तुम्हारी सहिष्णुताकी कसौटी और उसके प्रति किये गये अपराधके प्रायश्चित्तके तौरपर उसका वहाँ रहना तुम्हें सहन करना ही है। इसके बाद भी कुछ विशेष पूछना हो, पूछ लेना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने

५१०. तार : जवाहरलाल नेहरूको

बाराबंकी,
११ अक्टूबर, १९२९[1]

जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

जैसा पहले तय हुआ था लाहौरके शार्दूलसिंहके जरिए सिख लीगको सन्देश[2] भेज दिया है।

गांधी

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी फाइल संख्या १३४ ई, १९२९।
सौजन्य : स्मारक नेहरू संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।
२. देखिए पृष्ठ ५८४।

५११. पत्र : छगनलाल जोशीको

बाराबंकी,
११ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

गोंडासे हम अब बाराबंकी आ गये हैं। नहा-धोकर सभा आदि हो जानेके बाद फिर रवाना हो जायेंगे। इसलिए आज तो इतना ही लिखकर समाप्त करता हूँ। रातको हरदोईमें रहेंगे। डाक वहाँ मँगाई है, ऐसा प्यारेलाल कह रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४५५)की फोटो-नकलसे।

५१२. भाषण: राजनैतिक सम्मेलन, हरदोईमें

११ अक्टूबर, १९२९

अपने भाषणमें महात्माजी ने कहा :

हमें आदत हो गई है कि हम प्रस्ताव तो पास कर डालते हैं मगर उनपर अमल नहीं करते। मैं चाहता हूँ कि यह आदत छोड़ दी जाये। हमारी उन्नतिकी राहमें यह मुख्य रुकावट है। अगर हमने सन् १९२१ में किये अपने वायदे निभाये होते तो स्वराज्य कमीका मिल गया होता। हमारी परीक्षाका एक मौका और आने-वाला है और इस प्रदेशके लोगों पर तो विशेष जिम्मेदारी है, क्योंकि आपके प्रदेशसे अगली कांग्रेसके लिए राष्ट्रपति चुना गया है। नौजवानों पर और भी अधिक जिम्मे-दारी है। पण्डित जवाहरलाल आपके प्रदेशके हैं। इसके साथ-साथ वे नौजवान भी हैं। अगर आप अपनी और उनकी इज्जत बनाये रखना चाहते हैं, तो जो कुछ आप कहते हैं उसपर अमल करें। आपने छुआछूत विरोधी प्रस्ताव पास किया है। मैं आशा करता हूँ कि आप इसी प्रकार हिन्दू-मुस्लिम-एकता एवं विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारके प्रस्ताव भी पास करेंगे। विदेशी वस्त्रका बहिष्कार खद्दरके उपयोग द्वारा ही सम्भव है। अगर आप इन प्रस्तावोंको पास करें तो इनपर अमल भी कीजिए। मैं आशा करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आप हमारे सामने आनेवाले बड़े संघर्षके लिए तैयार हों।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १४-१०-१९२९

५१३. खादी और अस्पृश्यता-निवारण

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

भारतीय नगरपालिकाओंका कर्त्तव्य

इस 'गज़ट' के सम्पादकने मुझसे नीचे लिखे प्रश्नका उत्तर देनेके लिए कहा है:

> **भारतकी नगरपालिकाएँ खादी और अस्पृश्यता-निवारणके लिए क्या कर सकती हैं?**

मेरा उत्तर नीचे लिखे अनुसार है:

खादीके मामलेमें नगरपालिकाएँ इस प्रकार मदद कर सकती हैं—

पहली बात, कर्मचारियोंकी वर्दीके लिए खादीका प्रयोग करें। इसका प्रभाव तभी पड़ेगा जब सदस्य स्वयं भी खादी पहनें।

दूसरी बात, अस्पतालों और ऐसी ही अन्य संस्थाओंके लिए केवल खादीका कपड़ा खरीदें।

तीसरी बात, नगरपालिकाएँ अपने अधीन चलनेवाले स्कूलोंमें तकली और धुनकीको दाखिल करें।

चौथी बात, खादी पर लगे सभी प्रकारके कर हटा दिये जायें और नगरपालिका की सीमामें स्थापित खादी भण्डारोंको अनुदान दिया जाये।

अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमें नगरपालिकाएँ नीचे लिखे तरीकोंसे सहायता दे सकती हैं—

पहला, ऐसे सुधारको बढ़ावा दें जिसके अधीन नगरपालिकाओंके स्कूलोंके निरीक्षक एक न्यूनतम निश्चित संख्यामें अछूत लड़के-लड़कियोंको स्कूलमें भर्ती करनेके लिए जोर दे सकें।

दूसरा, विशेष रूपसे अछूतोंके बच्चोंकी शिक्षाके लिए आदर्श स्कूलोंकी स्थापना करें।

तीसरा, अछूत प्रौढ़ोंके लिए रात्रि कक्षाएँ चलायें।

चौथा, नगरपालिकाओंके अधीन काम करनेवाले सभी अछूतोंके लिए उचित स्तरकी आवास-व्यवस्था करें।

पाँचवाँ, मन्दिरोंके न्यासियोंको इस बातके लिए राजी करें कि वे अछूतोंके लिए मन्दिर खोल दें। जहाँ ऐसा करना सम्भव न हो वहाँ उपयुक्त स्थानों पर विशेष रूपसे अछूतोंके लिए और साधारण तौर पर आम जनताके लिए आकर्षक मन्दिरोंका निर्माण किया जाये और जन-साधारणको अछूतोंके साथ इन मन्दिरोंमें अर्चना की प्रेरणा दी जाये।

छठा, अछूतोंके लिए विशेष रूपसे उपलब्ध स्कूलों, मन्दिरों और क्लबोंको अनुदान दें।

हिन्दू धर्ममें प्रविष्ट सबसे बड़ी बुराई छुआछूत ही है। पश्चिमके देशोंमें यहूदियोंको अछूत माननेकी भावना पाई जाती है। वह ऐसी ही बुराई है। उन लोगोंको शहरसे बाहर अछूत बस्तियों (घेटों) में रहनेके लिए बाध्य किया जाता है। यह दोष हमारे यहाँ कब आया इसका इतिहास मुझे मालूम नहीं है। जब तथाकथित उच्च वर्गके लोगोंने ऐसे लोगोंसे, जिन्हें वे नीचे दर्जेका समझते थे, अपने-आपको अलग रखनेकी बात सोची, सामाजिक रूपमें इसका आरम्भ तबसे माना जा सकता है। यह बुराई वर्णाश्रम धर्मका अंग न होकर उसका एक व्यंग, एक विकृति है; इसे जाति-प्रथाके रूपमें प्रस्तुत करना गलत है। आज पाई जानेवाली असंख्य जातियों एवं उप-जातियोंको देखकर लगता है कि इनका हिन्दू धर्मके प्रारम्भिक चार वर्णोंके विभाजनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

अपने छोटे रूपमें छुआछूतका मतलब है 'अछूतों'को न छूना और उनके साथ कोई सामाजिक सम्बन्ध भी न रखना। इसीका भयानक रूप है अछूतोंको एक निश्चित दूरी पर रहने अथवा नजरके सामने न आने देनेके लिए मजबूर करना। दक्षिण भारतमें अछूतोंके एक निश्चित दूरी तक पास आ जाने अथवा कुछ भागोंमें तो दिखाई दे जानेसे भी सवर्ण अपनेको अपवित्र हुआ मानते हैं। ऐसे लोगोंकी संख्या अधिक नहीं है जिन्हें एक निश्चित दूरी पर रहने अथवा आँखोंसे ओझल रहने के लिए विवश किया जाता है; लेकिन 'अछूतों'की संख्या लगभग ६ करोड़ आँकी गई है। मेरी अपनी रायमें यह बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई संख्या है।

यद्यपि मैं अपने-आपको कट्टर हिन्दू मानता हूँ एवं वेदों तथा अन्य हिन्दू-धर्म-ग्रन्थोंके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है तथा मैं एक पण्डितके रूपमें नहीं अपितु एक धार्मिक प्रवृत्तिवाले व्यक्तिके समान हिन्दू धर्मग्रन्थोंको जानने-समझनेका प्रयत्न करनेका दावा करता हूँ, किन्तु वेदों और अन्य धर्म-ग्रन्थोंमें मुझे ऐसा कोई आधार दिखाई नहीं देता जो छुआछूतकी इस निर्मम प्रथाके जारी होनेका कारण हो। 'स्मृतियों'में आये हुए कुछ विवादास्पद उल्लेखोंको छोड़कर, छुआछूतकी धारणा हिन्दू धर्मके सिद्धान्तके सर्वथा विपरीत है; हिन्दू धर्म अहिंसाको आधार मानता है और उसमें स्पष्ट घोषणा की गई है कि सारे प्राणी समान हैं; कृमि-कीट तक इसमें शामिल माने गये हैं।

परन्तु मेरे जैसा सुधारवादी हिन्दू धर्मके इन मूलभूत सिद्धान्तोंसे ही सन्तुष्ट होकर चुप नहीं बैठा रह सकता, क्योंकि मैं इस क्रूर परिस्थितिको जानता हूँ कि इस धर्मके प्रचारक, वर्ग-विशेषके नर-नारीकी सन्तान होने-मात्रसे, अपने असंख्य साथियोंको, जो हर दृष्टिसे उन्हींके समान हैं, समाजसे बहिष्कृत किये हुए हैं।

लेकिन छुआछूतकी यह प्रवृत्ति शीघ्र ही एक गई-गुजरी बात बन जायेगी। मानवके साथ अन्याय करनेवाले पापमय सिद्धान्तके प्रति हिन्दू समाज अब सतर्क हो गया है। सैकड़ों हिन्दू कार्यकर्त्ता अब दलितोंके उद्धारके लिए प्रयत्नशील हैं। इन कार्यकर्त्ताओंमें स्व० स्वामी श्रद्धानन्द और स्व० लाला लाजपतरायका नाम लिया जा

सकता है। शायद इन लोगोंको परम्परावादी हिन्दू नहीं माना जाता लेकिन पण्डित मदनमोहन मालवीयने भी, जिन्हें समस्त हिन्दू परम्परापरायण मानते हैं, इस दिशामें चलनेवाले सुधारोंमें अपनी पूरी-पूरी सहमति और शक्तिका उपयोग आरम्भ कर दिया है। कोई भी यह देख सकता है कि अब उद्धारके लिए शान्तिसे, किन्तु दृढ़तापूर्वक, कार्य हो रहा है। अछूतोंके लिए तथाकथित उच्च वर्णवाले हिन्दू स्कूल और छात्रावास तैयार करा रहे हैं। अछूतोंके इलाजकी व्यवस्था हो रही है। दूसरे ढंगसे भी उन्हें मदद दी जा रही है। इन प्रयत्नोंका सरकारसे कोई सम्बन्ध नहीं है। लगता है कि ये सब हिन्दुओं द्वारा की जा रही आत्मशुद्धिके लक्षण हैं। अन्तमें यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने सन् १९२०में ही अपने रचनात्मक कार्यक्रममें छुआछूत-निवारणके कामको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि छुआछूत एक भयंकर सामाजिक बुराई तो है, परन्तु उसके पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। जहाँतक मुझे मालूम है, अछूतोंको कानूनकी दृष्टिसे किसी प्रकारकी निर्योग्यताका सामना नहीं करना पड़ता।

फिर भी सुधारकोंके लिए यह कार्य कठिन है। उन्हें जन-साधारणको अपने विचारोंके अनुकूल ढालना पड़ता है। सामान्य लोग सुधारककी दलीलोंको बुद्धिसम्मत तो मानते हैं किन्तु समाज-बहिष्कृत अपने भाइयोंको मिलानेकी दिशामें कोई कदम उठाते हुए हिचकिचाते हैं। बहरहाल छुआछूतका अन्त निकट ही है और हिन्दू धर्मको बच गया ही समझिए। जैसा मैंने ऊपर कहा है, हमारी नगरपालिकाएँ इस समस्याको हल करनेमें बहुत ज्यादा योग दे सकती हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलकत्ता नगरपालिका गजट, पाँचवाँ वार्षिक अंक, शनिवार, २३-११-१९२९; तथा एस० एन० १९८५४से भी।

५१४. पत्र : अमल होमको

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

मुझे आपके दो पत्र मिले। आपके 'गज़ट' के लिए कुछ उपयोगी वस्तु लिख भेजनेका अवकाश नहीं है। फिर मुझे इस बात पर भी बहुत अधिक विश्वास नहीं है कि मैं कुछ ऐसा लिख पाऊँगा जो लाभदायी ठहरे। फिर भी मैं एक लेख संलग्न[1] कर रहा हूँ। देखिए, यह आपके कामका है या नहीं।

हृदयसे आपका,

संलग्न :

श्री अमल होम
सम्पादक, 'कलकत्ता म्युनिसिपल गज़ट'
केन्द्रीय नगरपालिका कार्यालय
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १५६०५) की नकलसे।

५१५. पत्र : फ्रेडरिक स्टैंडेनेथको

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

जन्म-दिन पर आपकी शुभकामनाएँ मिलीं। मुझे मालूम है कि आप अपने सभी कामोंमें मेरा विज्ञापन करते रहते हैं। मैं यह जरूर चाहता हूँ कि आप जाने या अनजानेमें मुझे बढ़ा-चढ़ाकर पेश न करें। याद रखिए, मित्रोंको उनकी योग्यतासे कुछ कम दिखाना सदा अच्छा ही रहता है। जितने दिन मैं दौरे पर हूँ, आपको अधिक नहीं लिख पाऊँगा। मैं दूध, दही और फलोंके सेवन द्वारा स्वस्थ हूँ। अन्न या दाल अथवा सब्जियोंका उपयोग मैंने अभी तक आरम्भ नहीं किया है।

हृदयसे आपका,

श्री फ्रेडरिक स्टैंडेनेथ
ग्रेज (सीरियामें)
आस्ट्रिया

अंग्रेजी (एस० एन० १५६५४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

५१६. पत्र : हरि जी० गोविलको[1]

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा समाचार-पत्रकी कतरनके[2] लिए धन्यवाद। आप श्री होम्ससे पता चलायें कि 'आत्मकथा'के अमेरिकी संस्करणका क्या हो रहा है?

हृदयसे आपका,

श्री हरि जी० गोविल
इंडिया सोसाइटी ऑफ अमेरिका
११०७, टाइम्स बिल्डिंग
न्यूयार्क सिटी

अंग्रेजी (जी० एन० १०२५)की फोटो-नकलसे।

५१७. पत्र : टागे बंडगार्डको[3]

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके कृपापूर्ण निमन्त्रणने मेरा मन छू लिया; किन्तु निकट भविष्यमें डेन्मार्क पहुँचनेकी मुझे कोई सम्भावना नहीं दिखती।

हृदयसे आपका,

श्री टागे बंडगार्ड
सिल्कबोर्ग
डेन्मार्क

अंग्रेजी (एस० एन० १५१८५)की फोटो-नकलसे।

१. हरि जी० गोविलके पत्र (एस० एन० १५६५६), ६-९-१९२९ के उत्तरमें।

२. न्यूयार्क हेरॉल्ड ट्रिब्यूनकी कतरन।

३. टागे बंडगार्डके पत्र (एस० एन० १५१८४), अगस्त १९२९ के उत्तरमें। पत्र लेखकने गांधीजीको उनके जन्म-दिवसपर बधाई भेजी थी और उन्हें डेन्मार्क, विशेषकर अपने जन्मस्थानके सुन्दर वातावरणका उल्लेख करके, आनेका निमन्त्रण दिया था।

५१८. पत्र : इलीनौर एम० हॉगको[1]

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। जिस परिचय-पत्रकी आपने माँग की है, उसे लिख भेजनेमें मैं असमर्थ हूँ। कृपया क्षमा करें।

हृदयसे आपका,

कु० इलीनौर एम० हॉग
२११५, एफ स्ट्रीट, एन० डब्ल्यू०,
वाशिंगटन, डी० सी०
संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रेजी (एस० एन० १५६६१)की फोटो-नकलसे।

५१९. पत्र : हेनरी एस० सॉल्टको[2]

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर मुझे आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। बेशक, आपकी किताब ही शाकाहार पर लिखी गई अंग्रेजीकी पहली किताब[3] थी जो मेरे देखनेमें आई थी और उससे शाकाहारमें मेरी श्रद्धाको अडिग बनानेमें जबरदस्त मदद मिली थी। जहाँ-

१. इलीनौर एम० हॉगके पत्र (एस० एन० १५६६०), ३०-८-१९२९के उत्तरमें। पत्रमें कुमारी हॉगने भारतमें अपने प्रस्तावित अध्ययनका गांधीजी से समर्थन चाहा था। अध्ययनका विषय था : "सहकारिता आन्दोलनका भारतीय राष्ट्रीय भावनासे सम्बन्ध।" यह विषय जॉर्ज वाशिंगटन विश्वविद्यालयमें उनके शोध-प्रबन्धका था। गांधीजी की सिफारिशपर वे प्रस्तावित अध्ययन कार्यके लिए गंगेनहम् मैमोरियल फाउंडेशनसे एक वर्षके लिए छात्रवृत्ति चाहती थीं।

२. हेनरी एस० सॉल्टके पत्र (एस० एन० १५६६२), १८-९-१९२९के उत्तरमें।

३. सॉल्टने गांधीजीकी **आत्मकथा**में अपनी पुस्तक **ए प्ली फॉर वैजीटेरियनिज्म** का उल्लेख किया था। इन्हीं सज्जनने लगभग ४० वर्ष पूर्व थोरोकी जीवनी प्रकाशित कराई थी और वे अब इस सामग्रीको अपने अमेरिकी मित्र रेमंड ऐडम्सको, जो थोरोका पूरा जीवन चरित्र लिखना चाहते थे, सौंप देना चाहते थे। सॉल्ट यह जानना चाहते थे कि गांधीजी ने थोरोके बारेमें क्या-कुछ पढ़ा है और उसका उनपर क्या प्रभाव हुआ है। क्योंकि उनके विचारमें थोरो और गांधीजी के विचारोंमें बहुत कुछ ऐक्य था। . .

तक मुझे याद है, थोरोकी रचनाओंसे पहले-पहल मेरा परिचय सन् १९०७ में हुआ; या हो सकता है उसके बाद तब हुआ, जब मैं निष्क्रिय प्रतिरोधके घमासान संघर्षमें लगा हुआ था। सविनय अवज्ञा पर लिखा थोरोका निबन्ध मुझे मेरे एक मित्रने भेजा था। मुझपर इसका गहरा असर पड़ा। इस निबन्धके एक भागका अनुवाद मैंने 'इंडियन ओपिनियन', जिसका मैं उन दिनों सम्पादन कर रहा था, के पाठकोंके लिए किया था। इस निबन्धके बहुत बड़े-बड़े अंश मैंने उस पत्रके लिए चुने थे। यह निबन्ध मुझे इतना युक्तिपूर्ण और सत्य जान पड़ा था कि मेरे मनमें थोरोके बारेमें और जाननेकी इच्छा हुई। इस हेतु मैंने तुम्हारी लिखी थोरोकी जीवनी पढ़ी। मैंने उनका निबन्धसंग्रह 'वाल्डेन' और अन्य सभी लघु निबन्ध बहुत प्रसन्नताके साथ पढ़े हैं और उनसे लाभान्वित हुआ हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री हेनरी एस० सॉल्ट
२१, क्लेवेलैंड रोड
ब्राइटन (इंग्लैंड)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६६३)की फोटो-नकलसे।

५२०. पत्र : के० वी० स्वामीको[1]

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सूर्य-नमस्कार करनेसे आपके कुष्ठरोगमें काफी लाभ हो रहा है। अच्छे हो जाने पर कृपया मुझे फिर लिखें। यदि आप अपने स्वास्थ्यके सम्बन्धमें डाक्टरी प्रमाणपत्र प्राप्त कर सकें तो अच्छा रहे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत स्वामी, बी० ए०
व्यापारी, पारलाखिमेडी

अंग्रेजी (एस० एन० १५६६५)की फोटो-नकलसे।

१. के० वी० स्वामीके पत्र (एस० एन० १५६६४), दिनांक १२ सितम्बर, १९२९ के उत्तरमें। स्वामी कुष्ठरोगसे पीड़ित थे जो काफी बढ़ गया था। सूर्य नमस्कार शीर्षकसे औंधके पंत-प्रधान द्वारा लिखी पुस्तककी विधिसे उन्होंने सूर्य नमस्कार शुरू किया। तेरह महीनों तक व्यायाम करनेके बाद उन्हें बहुत अधिक लाभ हुआ। उन्होंने आशा व्यक्त की थी कि आगामी छः महीनोंमें वे पूरी तरह स्वस्थ हो जायेंगे। स्वामी चाहते थे कि गांधीजी उनका उदाहरण छाप दें ताकि उनकी तरह रोगसे पीड़ित अन्य लोगोंकी सहायता हो जाये।

५२१. पत्र : एडले कॉफ्मैनको

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अगर आप भारत आनेकी कोई सूरत निकाल सकें तो मैं आश्रममें आपका स्वागत करूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५६५५)की फोटो नकलसे।

५२२. पत्र : सी० विजयराघवाचार्यको

मुकाम हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

सेलममें २ अक्टूबरको हुई सार्वजनिक सभाके विवरणकी प्रति और आपके पत्रके लिए धन्यवाद। महादेवने आपके बारेमें सभी खबरें दीं; परन्तु मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि आप अभी तक पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुए। आशा है, अब तक आप पहलेसे अच्छे हो चुके होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० विजयराघवाचार्य
'आराम'
सेलम
(दक्षिण भारत)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६६६)की फोटो-नकलसे।

५२३. पत्र : छगनलाल जोशीको

हरदोई
१२ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जब काममें लगे हुए हो और मुझे खास लिखनेको कुछ न हो तो सिर्फ लिखनेकी खातिर लिखनेका लोभ न करना। आश्रमसे डाक तो आती ही है; उससे मैं जान लेता हूँ कि सब कुशल है।

यदि द्वारकानाथको रहने दो या रखो तो उसे ६० रु० देने चाहिए। दिनकर-रायको अभी १५० रु० नहीं चाहिए, ऐसा मुझे लगता है। जबतक पति-पत्नी दोनों आश्रममें रहें तबतक उनका काफी खर्च बचेगा। घरका किराया तो देना नहीं होगा। फिर रहन-सहन भी कुछ बदलेगा ही; इसलिए यदि वे चाहें तो अपनी भावी आवश्यकताएँ भी आसानीसे कम कर सकते हैं। इसलिए उसकी बाहरकी कोई खास जरूरत न हो तो मैं उसे ७५ रु० देना पसन्द करूँगा और जब हमें उसका अनुभव हो जाये और उसे जहाँ चाहे वहाँ निर्भयतापूर्वक भेज सकें और उस वक्त वह अधिक चाहे तो १५० रु० भी दिये जा सकते हैं। इस समय तो दिनकरराय आदर्श गोसेवक बनेगा, इस आशासे उसे अपने पास रखें। इसलिए हमारा उसे अपने नियमके अनुसार ही पैसा देना ठीक होगा। यह सब समझकर कार्यवाहक मण्डलको जैसा ठीक लगे वैसा करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४५६)की फोटो-नकलसे।

५२४. गुजरातियोंका प्रेम

जब कि मैं जगह-जगह प्रेम-रूपी जलमें स्नान कर रहा हूँ, प्रान्त-प्रान्तके प्रेममें भेद करना अथवा उसकी कीमत आँकना निरर्थक है, अनुचित भी हो सकता है। मूक बनकर इस प्रेमका पान करनेमें अथवा यों कहिये कि इसे सह लेनेमें ही उपकारका सर्वोत्तम प्रतिदान है। मैं यह जानता हूँ तो भी हमेशा इस नियमका पालन नहीं हो पाता। गुजराती भाई जहाँ होते हैं, वहाँ वे मुझे ढूंढ़ निकालते हैं, मेरे लिए कुछ विशेष काम करनेकी जी-तोड़ मेहनत करते हैं; और उपकारका यत्किंचित् बदला नहीं चाहते। ऐसी एक ताजी घटना कानपुरमें हुई, जिसे मैं भूल नहीं सकता। वहाँ गुजरातियोंने मुझे अलग सभामें आनेका न्यौता दिया और अपनी संख्या और अपने धन्धेके लिहाजसे, और जिस तरह कानपुरमें चन्दा इकट्ठा किया गया था उसे देखते हुए, उन्होंने एक ठीक-सी रकम दी। रकम १,१५२)की थी। लेकिन मैं ठहरा लालची।

दरिद्रनारायणके प्रतिनिधिको लोभी होना ही चाहिए। इस कारण कानपुरके नागरिकों ने इसके पहले जो कर रखा था वह मुझे बहुत कम मालूम हुआ। मैंने डाक्टर मुरारीलालसे शिकायत की। उन्होंने इसे मंजूर किया। शहरमें फिरसे चन्दा उगाहनेका निश्चय किया गया। इस व्यवस्थाके हो चुकने पर मैं गुजरातियोंकी सभामें गया। वहाँ भी मैंने वही शिकायत की। सभाने उसी समय शिकायत पर गौर किया। फल यह हुआ कि १,१५२) में १,०३९-१४-६ और मिला दिये गये। बालकों और उनके शिक्षकोंकी ओरसे मिले हुए २५-४ आने इससे अलग थे। इस तरह कुल मिलाकर २,२१७-२-६ पा० मिले। गुजराती बहनोंने जो कुछ दिया था वह तो इसमें शामिल ही नहीं है। ऊपरकी तमाम रकमोंकी तफ़सील मेरे सामने पड़ी है, लेकिन यहाँ उन नामोंके उल्लेखकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता। यह तो मेरे हृदयके भावोंका उफान-भर है। ऐसा प्रेम मुझे जिन्दा बनाये रखता है, मेरे आशावादको बढ़ाता है। और यह बिलकुल सच है; इसमें अतिशयोक्ति जरा भी नहीं है। जो सौ देता है उसीसे दो सौकी आशा की जाती है, जो कुछ नहीं देता, उससे फूटी कौड़ीकी भी आशा नहीं की जा सकती। अतएव गुजराती जिस प्रेमरसका पान मुझे करा रहे हैं, उसीसे वे अपने-आपको कृतकृत्य न मान बैठें। मैंने अनेक बार लिखा और ततोधिक बार कहा है कि चूंकि हमारे देशमें विदेशी बनियोंका राज्य है, जब हमारे देशी व्यापारी जागेंगे तभी स्वराज्य हस्तामलकवत् सुलभ हो जायेगा। अगर देशमें किन्हीं बन्दूकचियोंका राज्य होता तो सम्भव था कि कोई हिंसावादी बन्दूक-धारणकी जरूरत देशके लिए सिद्ध कर देता। लेकिन जहाँ व्यापारके लिए राज्य किया जाता हो, वहाँ व्यापारके नष्ट होते ही राज्य भी नष्ट हो सकता है, यह बात सहज ही समझमें आ सकती है। इस व्यापार पर हम दो तरीकोंसे अपना अधिकार स्थापित कर सकते हैं: एक, विदेशियोंके समान बनकर; दूसरे, उनके व्यापारको असम्भव बना-कर। विदेशी सरकारका मुख्य व्यापार कपड़ेका व्यापार है, दूसरे सब काम उसके पिछलगुए हैं। अगर कपड़ेका व्यापार डूबे तो उनके सारे जहाज डूब जायें। यह बात मैं नहीं कहता, अंग्रेजी लेखक कहते हैं, कह गये हैं। अतएव गुजराती या दूसरे भारतवासी जो द्रव्य देते हैं, वह उनका यत्किंचित् प्रायश्चित्त-मात्र है। सच्चा प्राय-श्चित्त तो अपने व्यापारको शुद्ध बनाकर ही किया जा सकता है। जिस व्यापारसे देशको नुकसान होता हो उसे छोड़ना ही सच्चा प्रायश्चित्त है। दान देनेवाले खुद इसे महसूस कर रहे हैं और वे इस बातको कबूल भी करते हैं। जिस बातको हम महसूस करते हों, उसीके मुताबिक अगर हम काम भी करने लगें तो स्वराज्य बहुत दूर न रह जाये। और वही सच्चा स्वराज्य होगा।

कपड़ेका यह बहुत बड़ा व्यापार गुजरातियों और मारवाड़ियोंके हाथमें है। यहाँ 'गुजराती' शब्दका व्यापक अर्थ करना चाहिए। गुजराती वह है, जो गुजराती भाषा बोलता है। इस दृष्टिसे उनमें गुजरातमें बसनेवाले मुसलमान, पारसी, ईसाई वगैरा सब आ जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें, अगर ये दो प्रान्त जाग जायें तो दूसरे प्रान्त अपने-आप जाग उठेंगे। मैं तो उस मंगलमय घड़ीकी रात-दिन प्रतीक्षा करता रहता हूँ।

गुजरातियोंके प्रेमका अनुभव मुझे यह आशा दिला रहा है कि उस मंगलमय अवसरको लानेमें गुजरातियोंका अधिकसे-अधिक हाथ रहेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-१०-१९२९

५२५. एक विनाशक कुटेव

सुदूर युगांडासे एक भाई लिखते हैं:[1]

इस कुटेवको हम राष्ट्रीय कुटेव कह सकते हैं। यह बुरी आदत पड़ोसीके प्रति हमारी लापरवाही और अविनयकी सूचक है। यह हमारे आलस्यका परिणाम है कि लोक-जागृतिके बावुजूद अबतक हममें यह बुरी आदत विद्यमान है। इस कुटेवके कारण समाजमें रोग तो फैलते ही हैं, साथ ही विदेशोंमें हमारी बड़ी निन्दा भी की जाती है।

यह बुरी आदत धर्मकी विरोधिनी है। जब मैं सन् १९१५में स्वदेश आया था तब इस गन्दगीकी ओर मेरा ध्यान गया था और तभी मैंने यह जाननेकी कोशिश की थी कि जुदा-जुदा धर्मोंमें इस सम्बन्धमें क्या कहा गया है। मुझे ठीक याद नहीं आता कि वह संग्रह इस समय कहाँ है, लेकिन इस दौरेमें हिन्दू धर्म-शास्त्रोंके एक-दो श्लोक हाथ लग गये हैं, उनका सारांश नीचे दिये देता हूँ:

नदी, तालाब आदि जलाशयोंमें न तो कोई मल-मूत्रादि त्याग करे, न थूके।

—कृष्णयजुर्वेद

बीच गाँव या शहरमें, मन्दिरमें, श्मशानमें, आँगनमें, चौगानमें, जलाशयमें या सड़क पर कोई मल-मूत्रादि त्याग न करे।

— चरक

नाक मसलना, दाँत कटकटाना, नाखून चबाना, अँगुलियाँ बजाना, जमीन कुरेदना, तिनके तोड़ना, मिट्टी कुरेदना आदि अशोभन काम किसीको नहीं करने चाहिए।

— चरक

आजकल तो इस सभ्यताका लोप-सा हो गया जान पड़ता है। अथवा यों कहिए कि जिन दिनों ये ग्रन्थ रचे गये थे उन दिनों भी लोगोंमें ये बुरी आदतें पाई जाती थीं, इसी कारण ऋषि-मुनियोंने उस तरफ लोगोंका ध्यान खींचा था; मगर उनमें आज-तक सुधार नहीं हो सका। भूतकालमें वस्तुस्थिति चाहे जो रही हो, आज तो इन कुटेवोंको समाप्त करनेका उपाय करना ही चाहिए।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने भारतीय लोगोंकी चाहे जहाँ थूक देनेकी आदतका उल्लेख किया था और अंग्रेजोंके रूमालमें नाक साफ करके उसे फिर जेबमें रखने तथा पेरिसमें थूकनेके लिए जेबमें डिब्बियाँ रखनेके कथित रिवाजको भी घिनौना कहा था।

प्रस्तुत पत्र-लेखकने पश्चिमी देशोंके दोनों तरीकोंको घिनौना कहा है। उनमें घिन तो है ही। लेकिन हमारा तो शरीर ही मल-मूत्रकी खान है, ऐसी दशामें हम रुचिकर उपायोंकी आशा क्यों रखें? ये काम इस तरह किये जाने चाहिए कि जिससे हम और हमारे पड़ोसी रोगोंको फैलानेके डरसे बच सकें। यही किया जा सकता है। आम सड़कसे जाते हुए खाँसी आये या थूकना पड़े या खकार बाहर डालना जरूरी हो जाये तो उसे रूमाल पर या साफ डिब्बीमें झेलनेके सिवाय और कोई उपाय दिखाई नहीं देता। रूमालमें लेना पड़े तो जिस रूमालसे एक बार काम लिया हो उसे इस तरह लपेट कर जेबमें रखना चाहिए कि उससे हाथ या जेब खराब न हों। डिब्बी रखनेकी तो उन्हींको जरूरत पड़ सकती है, जिन्हें क्षय वगैरा रोग हों और बार-बार थूकना पड़ता हो। लेकिन अक्सर यह होता है कि गन्दे पदार्थको किसी वस्त्रमें झेलनेकी जरूरत नहीं पड़ती। गाड़ीमें बैठे हों तो जरा उठ कर बाहर थूकनेकी तकलीफ गवारा करनी चाहिए। रास्ता चलते हों तब एकान्त जगह ढूँढ़कर जहाँ लोग चलते-फिरते न हों, ऐसे कोनोंमें या झाड़-झंकाड़ोंके बीच थूक सकते हैं। जिसमें विवेक-बुद्धि पैदा हो गई है, जिसे दूसरोंकी सुविधा की चिन्ता है, उसे इन मामलोंके सीधे उपाय अपने-आप सूझ जाते हैं। दूर या पासकी यात्राके लिए रवाना होते समय अपने शरीरकी जरूरतों – हाजतोंका अन्दाजा लगाकर बुद्धिमान आदमी ऐसी तरकीब ढूँढ़ निकालेगा, जिससे दूसरोंको कमसे-कम कष्ट या असुविधा हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-१०-१९२९

५२६. पत्र : छगनलाल जोशीको

मुरादाबाद

१३ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल जोशी,

तुम्हारा ९ तारीखका पत्र यहाँ पहुँच गया है। दो दिन मेरे पत्र वहाँ नहीं मिले यह आश्चर्यकी बात है। मुझे भणसालीको तो रोज ही लिखना पड़ता है। इसलिए तुम्हें लिखे बिना भी शायद ही कोई दिन गया होगा। किन्तु प्रतिदिन स्थान बदलता है इसलिए हो सकता है कि डाक निकलनेकी अनियमितताके कारण नियमसे न मिल पाई हो।

रामगोपालका स्वास्थ्य इतना ज्यादा खराब हो गया, यह आश्चर्य की बात है। अब रोटी ठीक बनती है? जयदेव कल मिल गया है। हरद्वारमें तो वही सब काम देखेगा। देवशर्माजी भी कल ही मिलेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४५७)की फोटो-नकलसे।

५२७. पत्र : ईश्वरलाल जोशीको

मुरादाबाद
१३ अक्टूबर, १९२९

चि० ईश्वरलाल,

छगनभाई छुट्टी दें तो तुम जरूर एक बरसके लिए मुक्त हो जाओ। मेरी तो सलाह है कि तुम्हें मद्रास जाना चाहिए। वहाँ तो अंग्रेजी ही बोलनी पड़ती है। मैं तुम्हें राजगोपालाचारीके आश्रममें रखूंगा। इससे तुम अंग्रेजी भी सीख लोगे और उन्हें भी मदद मिलेगी। आठ घंटे किताब पढ़ते रहकर भी अंग्रेजी नहीं आती। जब अंग्रेजी ही बोलनी, सुननी पड़े, तभी वह आती है। यह बात वहाँ सध सकती है, किन्तु फिर भी तुम्हें कुछ और सूझता हो तो जरूर वैसा ही करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२७८)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ईश्वरलाल जोशी

५२८. भाषण : मुरादाबादमें

१३ अक्टूबर, १९२९

'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'वन्देमातरम्'के नारे लगाते हुए काफी बड़ी संख्या में उपस्थित जन-समूहने गांधीजी की रेलवे स्टेशन पर अगवानी की। अपने दलके लोगों सहित गांधीजी मौलवी अब्दुल कलामके मकानमें ठहरे। वहाँ उनके सम्मानमें बहुत बड़े भोजका आयोजन किया गया।

प्रातःकाल गांधीजी ने ब्रजरत्न हिन्दू सार्वजनिक वाचनालयका उद्घाटन किया। वाचनालयके तालेके साथ जुड़ी हुई एक जंजीर उन्होंने नीलाम की जिससे ७६ रुपये प्राप्त हुए।

टाउन हालके मैदानमें उन्होंने नगरपालिका और जिला बोर्डसे मानपत्र प्राप्त किये और उन मंजूषाओंकी नीलामी की जिनमें रखकर मानपत्र भेंट किये गये थे। गांधीजी चन्दा इकट्ठा करनेके लिए आतुर थे परन्तु श्रोता मौजूदा समस्याओं पर उनका विस्तृत भाषण सुनना चाहते थे।

२३८५ रुपयेकी थैली भेंट करते हुए उनसे अनुरोध किया गया कि जिस स्नेहभावनासे श्रीकृष्णने सुदामाके तन्दुल स्वीकार किये थे उसी भावनासे वे उसे स्वीकार करें।

महात्मा गांधीने इतना अवश्य कहा कि सुदामाका तो सर्वस्व ही उतना था और उसने अपना वह सर्वस्व दे दिया था; किन्तु मुरादाबादकी आबादीको देखते हुए यह धन बहुत कम है। उन्हें पहले यह तार मिला था कि मुरादाबाद किसी भेंटके रूपमें कोई बड़ी रकम नहीं दे सकेगा, परन्तु इसके बाद विद्यार्थियोंने तार दिया था कि वे चन्दा इकट्ठा करनेके लिए बड़ी मेहनत कर रहे हैं और वे ही उन्हें आमन्त्रित कर रहे हैं। गांधीजीने पूछा कि वे विद्यार्थी कहाँ गये? अगर मुरादाबादकी आबादीके अनुकूल थैली नहीं दी जा सकती थी, तो उन्हें क्यों बुलाया गया।

मानपत्रका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि मंजूषाका सबसे अच्छा उपयोग तो उसे बेचकर रकम प्राप्त कर लेना ही होगा। मैं इसे अपने पास तो रख नहीं सकता।

उन्होंने जिला बोर्डके उस परिपत्रकी आलोचना की जिसमें अध्यापकोंको आदेश दिये गये थे कि वे अपने विद्यार्थियोंको देशकी आजादीके बारेमें बोलनेसे रोकें। वे नहीं चाहते थे कि बच्चे गुलामीकी जंजीरोंमें जकड़े पड़े रहें। उन्होंने कहा कि बोर्ड द्वारा, जिसके अध्यक्ष व अधिकांश सदस्य चुने हुए होते हैं, इस तरहके परिपत्रका जारी किया जाना शर्मनाक है। उन्होंने इस बातकी निन्दा की कि लोग व्यक्तिगत लाभके लिए ही चुनाव लड़ते हैं।

नगरपालिका बोर्ड द्वारा दिये मानपत्रका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि उसमें साम्प्रदायिक तनाव पैदा न होनेका दावा किया गया है; किन्तु यह तो एक प्रकारकी सशस्त्र तटस्थता ही हुई। मैं तो दोनों जातियोंमें सच्चा प्रेम देखना चाहता हूँ। इस प्रकारका प्रेम स्थापित करके मुरादाबाद सारे भारतके लिए उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रान्तके नौजवानोंकी दुहरी जिम्मेदारी है। उन्हें कांग्रेसको बहुत बड़ी सफलता दिलानी चाहिए; क्योंकि भारतने इसी प्रान्तसे पिता और पुत्रको एकके बाद-एक राष्ट्रपति चुना है।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, १६-१०-१९२९

५२९. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

हरद्वार
मौनवार [१४ अक्टूबर, १९२९][1]

बहनो,

आज हम गंगाके उद्गमके नजदीक पहुँच गये हैं। यहाँसे बिलकुल नजदीक ही गंगाका सपाट भूमिपर बहना प्रारम्भ होता है। अब आगे बढ़नेपर धीरे-धीरे पहाड़ आयेगा।

आज मौनवार होनेके कारण कुसुम, प्रभावती और कान्ति देवदासके साथ प्रसिद्ध स्थान देखने निकले हैं। यहाँ कुदरतकी तो कृपा है, मगर इन्सानने सारी जगह बिगाड़ रखी है।

आज बस इतना ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०५)की फोटो-नकलसे।

५३०. पत्र : छगनलाल जोशीको

हरद्वार
मौनवार, १४ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

दो दिनकी डाक आज यहाँ एक-साथ मिल गई है।

पृथुराजका पत्र साथ भेजने की बात लिखी है; किन्तु वह रह गया; वह तुम्हारे पत्रके साथ नहीं है।

अपने स्वास्थ्यके बारेमें तुम्हें लापरवाही नहीं करनी चाहिए। जब बहुत दिनोंसे ज्वर आ रहा है, तो थकान तो होनी ही चाहिए। इच्छा तो तुम्हें मसूरी बुला लेनेकी होती है; किन्तु फिर भी तुम्हें मसूरीमें ज्यादा नहीं रखा जा सकेगा; और तब कुछ फायदा नहीं होगा। मैं तो चाहता हूँ कि तुम वर्धा या गुडुपाल्यम जाओ। ठंडी जलवायुमें जाना हो तो अल्मोड़ा जाओ। मुझे तो लगता है कि तुम्हारा बाहर जाना ही काफी होगा। रमणीकलाल वहाँ आ सके तभी निकल सकते हो, यह भी जरूरी नहीं होना चाहिए। नारणदास सँभाले तो उसे सौंप सकते हो, यदि चाहो तो उसे समझाऊँ। चाहे जैसे भी हो तुम्हें बाहर निकलना चाहिए। स्वास्थ्यको हदसे ज्यादा बिगड़ने मत दो।

१. हरद्वार पहुँचनेके उल्लेखसे।

छगनलाल गांधीका दूसरा पत्र भी तुम्हारी जानकारीके लिए भेज रहा हूँ। वह धीरे-धीरे तुम्हें सीधा लिखना शुरू कर देगा। उसमें हमेशा इस तरहका संकोच रहा है। उसे सहन कर लेना।

राष्ट्रीय स्त्री सभा खादीपर कसीदेके कामके लिए विदेशी रेशमी सूतका उपयोग करती है; सो मेरी सहमतिसे ही। इस विषयमें एक बार 'नवजीवन' में लिख चुका हूँ। फिर लिखनेकी जरूरत नहीं। उसका कोई ज्यादा ही अर्थ लगा लेगा। अपने कपड़े सीनेके लिए हम जो धागा काममें लाते हैं वह भी ऐसा ही होता है। कढ़ाई-सिलाईसे एक कदम आगे है। अभी हम खादीकी धरतीतक ही पहुँचे हैं। खादीकी धरतीके श्रृंगारके लिए विदेशी रंग और विदेशी धागा इस्तेमाल करते हैं। ऐसा होने पर भी मैंने खादी भण्डारोंमें ऐसा माल रखनेका विरोध किया है। लेकिन प्रदर्शनोंमें उसके लिए अलग 'स्टाल' खोलनेका विरोध नहीं किया। इसमें सिद्धान्तका प्रश्न नहीं है। व्यवहार, विवेक और क्या सम्भव है, इसका प्रश्न है।

एक विशेष मर्यादाके भीतर रहते हुए अन्य प्रान्तोंके लोगोंसे विवाह-सम्बन्ध करने ही चाहिए। दोनों एक-दूसरेकी भाषा सीखें, यह मैं जरूरी मानता हूँ। रुखीकी सगाईमें यह बात है। इसमें तो पुरुषको गुजरातीका अच्छा ज्ञान है ही। ससुराल-वालोंको न हो तो मुझे उसकी चिन्ता नहीं। पक्की उम्रमें विवाह करनेपर अलग घर बनानेका विचार रहता है; [क्योंकि तब] ससुरालवाले अड़चन खड़ी नहीं कर पाते और स्त्रीको उनका दबाव नहीं सहना पड़ता। यहाँ तो दोनों भाषाएँ मिलती-जुलती हैं। और हिन्दी तो राष्ट्र-भाषा हुई; इसलिए उसे दोनों जानते हैं। इसलिए भाषा न जाननेकी अड़चनकी बात नहीं है। किन्तु इसपर ज्यादा नहीं लिखता। दूसरे प्रान्तोंके साथ सम्बन्ध बाँधते हुए विचार करनेकी जरूरत तो है ही। किन्तु प्रतिबन्ध लगानेकी जरूरत नहीं दिखाई देती।

मैंने सोचा था कि काकीके स्वर्गवासके सम्बन्धमें समाचार आजकी डाकसे मिलेगा, पर सो नहीं मिला। अब कल तो आना ही चाहिए। महादेवका तार आये हुए चार दिन हो गये हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४५८)की फोटो-नकलसे।

५३१. छगनलाल जोशीको

[१४ अक्टूबर, १९२९के बाद][1]

चि० छगनलाल,

कल शामको दो दिनकी डाक एक-साथ मिली। पृथुराजका पत्र भी मिला।

गुजरातकी खादीकी बिक्रीके बारेमें जब मैं वहाँ आऊँगा तब चर्चा करेंगे। और उसके बारेमें सोच चुकनेपर 'नवजीवन' में लिखूंगा। उसे बेच देना मुश्किल नहीं होगा। अगर थोड़ी-बहुत खादी जमा हो जाती है तो इसमें चिन्ताकी बात नहीं है। खादीकी कमीके समय यह जमा होना उपयोगी भी सिद्ध हो सकता है। हमारे पास उसे ठीकसे रखनेकी व्यवस्था जरूर होनी चाहिए।

पंजाब तुम बेशक जा सकते हो।[2] वहाँकी आबोहवा अब रोज-रोज ठंडी होती चली जायेगी और अहमदाबादके मुकाबलेमें बहुत अधिक होगी। इसलिए तुम्हें काफी गरम और ओढ़ना वगैरा ले जाना चाहिए।

भणसालीपर तो हमको नजर रखनी ही पड़ेगी।

नारणदासको ऐसा लगता है कि उसके कामकी शक्तिके विषयमें तुम्हारे मनमें भरोसा नहीं है और तुम मन-ही-मन उससे मदद भी नहीं लेना चाहते। उसका तो यहाँतक ख्याल है कि शायद तुम उद्योग-मन्दिरमें उसका रहना ही पसन्द नहीं करते। मैंने उसे लिखा है कि बहुत करके यह तुम्हारा ख्याल ही है। किन्तु फिर भी जबतक उसके मनमें यह ख्याल बना है, तबतक वह खुले मनसे जिम्मेदारीके काम हाथमें नहीं लेगा। यह सन्देह तो तुम्ही हटा सकते हो। कैसे, सो कहना कठिन है।

अगर बीजापुरका काम ठीक चलता रहे, तो मैं तुम्हें सलाह दूंगा कि कुछ दिनों तक खादीकी ऊँची दरोंकी चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारा पत्र छगनलालको भेज रहा हूँ। मुझे लगता है कि जब कभी भी मुझे कोई ऐसा पत्र लिखे तो मेरा उस पत्रको सम्बन्धित व्यक्तिके पास भेज देना ही ठीक होगा। तुम्हारे पत्रके पीछे जो स्पष्ट प्रामाणिकता है उसे तो कोई भी समझ लेगा।

आश्रममें हमेशा रहनेके खयालसे किसी डाक्टरको बुलानेकी मैं जरूरत नहीं देखता। यदि मन्त्री उचित ढंगसे विवरण लिखता रहे तो उससे दस तरहकी बातोंकी सही जानकारी मिल जायेगी। सालमें ऐसे कितने मौके आते हैं जब हमें डाक्टरकी जरूरत पड़ती ही हो। दो-चार बारका ही जल्दी-जल्दी आना, ऐसा लग सकता है मानो डाक्टर कई बार आया हो। फिर भी मुझे डाक्टरको कुछ देनेकी जरूरत तो लगती ही है। अगर वह लेनेसे इनकार कर दे, तो मैं कोई हर्ज नहीं देखता। वह जो-कुछ लेना स्वीकार करेगा, वह उसकी फीससे तो कम होगा ही। हम उसे

१. पृथुराजके पत्रके उल्लेखसे। देखिए पिछला शीर्षक।

२. लाहौर कांग्रेस में शामिल होने के लिए। देखिए खण्ड ४२, "पत्र : छगनलाल जोशीको", २३-१०-१९२९।

बदलेमें जो दे सकते हैं, सो तो असलमें हमारी सतर्कता, संयम और कर्त्तव्यके प्रति रोज-रोज बढ़नेवाली निष्ठा ही हो सकती है। हमारे बुलानेपर डाक्टर हमेशा आ जाता है, इसीसे जाहिर होता है कि वह हम लोगोंको सुयोग्य सेवक समझता है।

जहाँ कताईका काम चलना है, अगर वहाँ दवाएँ वितरण करनेके लिए भी कोई स्थान रख दिया जाये तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। ख्याल इतना ही रखना है कि यह औषधालय कताई-घरसे अधिक महत्वपूर्ण न बन जाये। इस क्षेत्रमें गोविन्द बाबूकी गतिविधियोंमें यही हो रहा है। मेरे मनपर ऐसी छाप है कि कुमिल्लाके अभय-आश्रममें इन दोनों बातोंका सुन्दरताके साथ समन्वय हो सका है।

मगनलालके स्मारकके विषयमें तुमने जो लिखा है, सो ठीक है। मेरा ख्याल है, तुम वर्धा पहुँचोगे; ठीक है न?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४७७)की फोटो-नकलसे।

५३२. पत्र : छगनलाल जोशीको

हरद्वार
१५ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

जयन्तीको कल सवेरे पहुँच जाना चाहिए था; उसके बदले वह शामको पहुँचा। पहली रातका जागरण हो जानेके कारण सहारनपुरपर जहाँ गाड़ी बदलनी चाहिए थी वहाँ वह सोता ही रहा और स्टेशन निकल गया। वह बादमें जागा। फिर लौटकर आया। इसीमें समय चला गया।

काकीके बारेमें जाननेके लिए मैं बहुत आतुर हो गया था। सो जितना जयन्तीसे मालूम कर सका उतना किया। अब शंकर स्वस्थ हो गया होगा। कल छगनलाल गांधीका पत्र रह गया था, उसे आज भेज रहा हूँ। उसके आँकड़ोंमें जहाँ भूल लगे, वहाँ उसका ध्यान तो खींचना ही है; किन्तु मुझे भी बताना। कठोरका काम तो अब दीवालीके बाद ही होगा न?

दीवाली तो अब पास ही आ गई है। बचपनमें तो दशहरासे ही दीवालीको आया हुआ मान लेते थे। और अमावस्याके दिन, यह समझकर कि दीवाली आकर चली गई उदास हो जाते थे। किन्तु अभी देव [शयनी] दीवाली तो मनानी है, इस तरह मनको फुसलाकर कार्त्तिक पूर्णिमातक अध्ययन आदिके विषयमें शिथिल रहते थे। अब दीवालीके बाद संयुक्त रसोईघर चलाना है कि नहीं इस समस्याका फैसला करना है। इस बारेमें मुझसे कुछ बात करनी हो तो करना। किन्तु मुझसे पूछे बिना स्वतन्त्र रूपसे निर्णय करना हो तो भी कर सकते हो। इसमें मुख्य जिम्मेदारी बहनोंकी है। इसलिए वे अच्छी तरह विचार कर लें। उन्हें उसमें फायदा दिखाई देता है या नुकसान, यह हरएक अपने-अपने लिए विचार ले। एक बार निर्णय कर लेनेपर

फिर अधिक चर्चा आदि न करें; और इसीमें बहुत दिन न निकाल दें। निर्णय लेनेमें भी ज्यादा समय नहीं लगाना चाहिए। दीवाली आनेपर फिर विचार करनेकी गुंजाइश तो रखी ही है। इसलिए मैंने सोच लिया है। फिर भी इस छूटका तुम सब निःसंकोच उपयोग कर सको, मैंने इसीलिए यह बात छेड़ी है। किन्तु हमें उसे रोज चर्चा करनेका विषय तो नहीं बनाना है।

देवदासको जामियामें एक मददगारकी जरूरत है। उसे मालूम हुआ है कि ईश्वरलाल अंग्रेजीके लिए बाहर जाना चाहता है। इसलिए उसने आज सुझाव दिया है कि ईश्वरलाल जामियामें जाये तो उसे भी मदद मिलेगी और वह ईश्वरलालको स्वयं अंग्रेजी सिखा देगा। जामियामें ईश्वरलालको वैसा अंग्रेजी वातावरण नहीं मिलेगा जैसा राजाजीके आश्रममें मिल सकता है। किन्तु जितना अवकाश वहाँ नहीं मिल सकता, उतना अवकाश अवश्य मिलेगा। ईश्वरलालसे पूछना, यदि उसकी इच्छा हो तो फौरन दिल्ली चला जाये। देवदास अभी वहाँ फौरन नहीं जा सकेगा इसलिए फिलहाल वह देवदासके बदले बालकोंको कातना सिखाये। और बादमें देवदास वहाँ पहुँच जायेगा। म ईश्वरलालको जबरदस्ती नहीं भेजना चाहता। उसकी इच्छा हो, तभी जाये। देवदास तो कान्तिको बुलाना चाहता था किन्तु मैंने सोचा कि तुम कान्तिको वहाँसे नहीं भेज सकोगे। और मुझे यह भी लगता है कि यदि कान्ति काफी अरसेके लिए दुग्धालयसे जाता है तो उसमें उसकी रुचि कम हो जायगी और मिला हुआ ज्ञान भी जाता रहेगा। और अन्तमें दोनोंसे हाथ धोना पड़ेगा। ईश्वरलाल जानेको तैयार न हो और कोई दूसरा जाना चाहे, तो उसका नाम मुझे बताना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

दुबारा नहीं देखा।

गुजराती (जी० एन० ५४५९) की फोटो-नकलसे।

५३३. पत्र : गंगादेवी सनाढ्यको

हरद्वार
१५ अक्टूबर, १९२९

चि० गंगादेवी,

तुमारा शरीर अब कैसा है? इस बातका ख्याल तो हमेशा आता है। डाक्तरने ओपरेशनका तो मौकुफ ही किया है क्या? अगर ओपरेशन करना चाहे तो करवा लेना। बीलकुल डरना नहीं। आजकल कितना सोनी है? तोतारामजीकी आंख कैसी है?

बापुके आशीर्वाद

जी० एन० २५४१ की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

गोसेवा-संघ

सन् १९२४ के दिसम्बरकी २८वीं तारीखके दिन बेलगाँवमें गोरक्षा परिषद्का अधिवेशन हुआ था। उस परिषद्ने 'अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल' नामक एक स्थायी मण्डल स्थापित करनेका प्रस्ताव स्वीकार किया था और उसका संविधान बनानेके लिए एक समिति नियुक्त की थी। समितिकी बैठक सन् १९२५ के जनवरी महीनेकी २६ तथा २८वीं तारीखको दिल्लीमें हुई थी। समिति द्वारा बनाये गये संविधानका मसविदा कुछेक संशोधनोंके बाद १९२५ के अप्रैलकी २८वीं तारीखको बम्बई की माधवबागवाली सार्वजनिक सभामें मंजूर कर लिया गया। चूंकि यह अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल भारतवर्षकी जनताका ध्यान आकर्षित करने और उसका समर्थन तथा सहानुभूति प्राप्त करनेमें इस हदतक सफलता नहीं पा सका है कि उसे एक अखिल भारतीय संगठन माना जाये, इस कारण उसके सदस्योंने १९२८ के जुलाई महीनेकी २५ तारीखको साबरमती आश्रममें इकट्ठे होकर उसको भंग कर दिया और नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया:

चूंकि अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल एक अखिल भारतीय संस्था होनेके अपने दावेके अनुरूप प्रजाका ध्यान और सहानुभूति अपनी ओर नहीं खींच सका है, और चूंकि इसका काम अपने उद्देश्योंके धीमे प्रचार और विशेषकर मण्डलके उद्देश्यानुसार सत्याग्रहाश्रममें चलते हुए दुग्धालय और चर्मालयको मदद देनेसे कुछ अधिक नहीं बढ़ पाया है, और चूंकि जो-कुछ दान तथा शुल्क मिले हैं वे भी मुख्यत: उपर्युक्त प्रयोगोंमें दिलचस्पी लेनेवाले मित्रोंकी ओरसे ही मिले हैं, और चूंकि मण्डलमें जितनी आशा थी उसकी तुलनामें बहुत ही कम गोशालाएँ और पिंजरापोल शामिल हुए हैं, इसलिए मण्डलके वर्तमान सदस्य इसे भंग करने और किसी रूपमें इसका अस्तित्व न रखते हुए, 'गोसेवा संघ' का अपेक्षाकृत कम आडम्बरपूर्ण नाम देनेका संकल्प करते हैं और इस संघके कार्यों और कोष तथा अन्य सामान और सम्पत्तिके प्रबन्ध तथा नियन्त्रणका भार अन्तिम रूपसे संघकी निम्नांकित स्थायी प्रबन्ध समितिको सौंपनेका निश्चय करते हैं। (सदस्योंके नाम नीचे देखिए) स्थायी समितिको धन खर्च करने, उक्त प्रयोग चलाने, अपनी संख्या बढ़ाने, किसी सदस्यके निकल जाने अथवा उसकी मृत्यु होनेपर दूसरेको नियुक्त करने, बहुमतसे किसी सदस्यको निकालने, सामान्य तौर पर पुराने मण्डलके उद्देश्योंपर अमल करने, संघकी व्यवस्थाके लिए विधान तथा नियमावली बनाने और समयानुसार उनमें परिवर्तन करनेका पूर्ण अधिकार होगा।

गोसेवा संघकी स्थायी समिति इस प्रस्तावके मुताबिक संघके लिए निम्नलिखित विधान अंगीकृत करती है:

गोसेवा संघका उद्देश्य और उसे सफल बनानेके साधन भूतपूर्व गोरक्षा मण्डलके उद्देश्य और साधनोंके अनुरूप होंगे। वे उद्देश्य और साधन निम्नलिखित हैं:

उद्देश्य

गोरक्षा हिन्दू जातिका धार्मिक कर्त्तव्य होते हुए भी, चूँकि हिन्दू इसके पालनमें असफल रहे हैं और चूँकि भारतकी गाएँ और उनकी सन्तति दिन-दिन दुर्बल होती जा रही है:

इसलिए गोरक्षा धर्मका भली-भाँति पालन करनेके लिए यह अखिल भारतीय गोरक्षा सभा स्थापित की जाती है।

इस सभाका उद्देश्य सभी प्रकारके नैतिक साधनों द्वारा गाय और उसकी सन्तति की रक्षा करना होगा।

गोरक्षाका अर्थ गाय और उसकी सन्ततिको निर्दयतासे और वधसे बचाना है।

टिप्पणी – जिन जातियोंमें गोवध अधर्म नहीं माना जाता या गोवधकी आवश्यकता मानी जाती है, उनपर किसी प्रकारका बल-प्रयोग या दबाव डालना इस सभाकी आधारभूत नीतिके विरुद्ध होगा।

साधन

सभा अपने कामके लिए निम्नलिखित साधन अपनायेगी:

१. जो लोग गाय-बैल आदिको कष्ट देते हैं, उन्हें प्रेमभावसे समझाना और समझानेके लिए लेख लिखना, प्रचारक भेजना, व्याख्यान देना, इत्यादि;

२. जिनके गाय-बैल बीमार व अशक्त हो जायें और जो उनका पालन करनेमें असमर्थ हों, उनसे जानवरोंको ले लेना;

३. मौजूदा पिंजरापोलों और गोशालाओंकी व्यवस्थाका निरीक्षण-नियन्त्रण करना, उनकी सुव्यवस्थाका प्रबन्ध करनेमें व्यवस्थापकोंको सहायता देना और नये पिंजरा-पोल और गोशालाएँ भी स्थापित करना;

४. गोशालाओं आदिकी मारफत आदर्श पशु-प्रजनन करके और सुव्यवस्थित दुग्ध-शालाओंके जरिए शुद्ध तथा सस्ते दूधका प्रचार करना;

५. मृत जानवरोंका चमड़ा कमानेके लिए चर्मालय खोलना और इस तरह अपंग जानवरोंका हिन्दुस्तानके बाहर भेजा जाना रोकना।

६. चारित्र्यवान् और सुशिक्षित लोगोंको इस काममें लगाना और गोसेवकोंको छात्र-वृत्ति देकर गोसेवाके लिए तैयार करना;

७. गोचर भूमिके लोप होनेके कारणों और उसके लाभ या उसकी हानियोंकी जाँच-पड़ताल करना;

८. बैलोंको बधिया करनेकी आवश्यकता है या नहीं, इसकी जाँच करना, यदि वह आवश्यक और उपयोगी माना जाये तो बधिया करनेका कोई हानिरहित तरीका निकालना; या मौजूदा तरीकेमें कोई बड़ा परिवर्तन करना;

९. कोष जमा करना; और

१०. गोरक्षाके लिए दूसरे आवश्यक साधनोंका उपयोग करना।

सदस्यता

अठारह वर्षसे अधिक उम्रवाला कोई भी व्यक्ति, स्त्री या पुरुष, जो इस संघके उद्देश्यको स्वीकार करे और

१. प्रतिवर्ष ५) चन्दा दे; अथवा

२. वर्ष-भरमें १२,००० गज एक-सा, मजबूत और अपने हाथसे काता हुआ सूत संघमें जमा करे; अथवा

३. वर्ष-भरमें संघको मरी हुई दो गायें या बैलोंका कमाया हुआ या कच्चा चमड़ा भेजे;

वह इस संघका सदस्य हो सकता है।

एक मुश्त ५००) देनेवाले सज्जन संघके आजीवन सदस्य माने जायेंगे।

सदस्योंके कर्तव्य

इस संघकी कल्पना ऐसे सेवकोंकी संस्थाके रूपमें की गई है, जिनके अधिकार कम और कर्त्तव्य अधिक हैं, या जो कर्त्तव्योंको अधिकारोंके रूपमें मानेंगे। अतएव सदस्योंके कर्त्तव्य निम्नलिखित होंगे :

१. जब-जब दूध अथवा दूधसे तैयार होनेवाले पदार्थोंका उपभोग करनेका समय आये, तब-तब जहाँतक हो सके, गायके दूधका ही उपयोग करना।

२. जब कभी चमड़ेकी चीजें निजी काममें लानी पड़ें, कुदरती तौरपर मरे हुए ढोरोंके चमड़ेका ही उपयोग करना। मारे गये गाय-बैलोंके चमड़ेका इस्तेमाल बिलकुल न करना। चमड़ेकी दूसरी चीजोंके लिए भी यथासम्भव मृत जानवरोंके ही चमड़ेका उपयोग करना।

३. यदि सदस्य दूधके लिए ढोर रखें, तो गाय ही रखें, भैंसें हरगिज नहीं। जहाँ-जहाँ दूधके लिए भैंसें पाली जाती हों, वहाँ-वहाँ गायें पालनेकी पैरवी करना।

४. जहाँ-जहाँ पिंजरापोल, गोशाला या ऐसे ही मानवीयतापूर्ण उद्देश्यसे दूसरी कोई संस्था काम कर रही हो, वहाँ-वहाँ गोसेवा-संघका सन्देश पहुँचाना।

५. अगर कोई सदस्य दुग्धालयका काम करते हुए मुनाफा कमाते हों, तो उन्हें चाहिए कि जबतक भारत-भरमें गो-पालन अपने पैरोंपर खड़ा न हो जाये, तबतक अपने गुजारे-भरका खर्च निकालकर मुनाफेकी शेष राशि गोरक्षामें ही लगानेका निश्चय कर लें।

६. साधन-सम्पन्न लोगोंको समझाना कि वे दया-धर्मकी दृष्टिसे दुग्धालय और चर्मालयके धन्धेको हाथमें लें।

७. चर्मालय और दुग्धालयका काम करनेके लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त करनेकी कोशिश करना और यथासम्भव गोसेवाके जरिए ही जीविका-निर्वाह करना।

समर्थक

जो व्यक्ति सदस्यताके कर्त्तव्योंका अनुमोदन करते हुए भी उनके पूर्ण पालन में असमर्थ हो, पर जो ऐसी सामर्थ्य पैदा करनेकी कोशिश करता हो और जो संघकी अन्य शर्तोंको पूरा करता हो, वह संघका समर्थक माना जायेगा।

व्यवस्था

संघकी सारी व्यवस्था निम्नलिखित सदस्योंकी स्थायी समितिके हाथोंमें रहेगी :

मोहनदास करमचन्द गांधी (अध्यक्ष)
रेवाशंकर जगजीवन झवेरी (कोषाध्यक्ष)
जमनालाल बजाज
वैजनाथ केडिया
मणिलाल वल्लभजी कोठारी
महावीरप्रसाद पोद्दार
शिवलाल मूलचन्द शाह
परमेश्वरीप्रसाद गुप्त
दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर
विनोबा भावे
छगनलाल खुशालचन्द गांधी
छगनलाल नाथुभाई जोशी
नारायणदास खुशालचन्द गांधी
सुरेन्द्रनाथ जायसवाल
चिमनलाल नरसिंहदास शाह
पन्नालाल बालाभाई झवेरी
यशवन्त महादेव पारनेकर
वालजी गोविन्दजी देसाई (मन्त्री)

इस समितिको संघका धनव्यय करने, दुग्धालयों, चर्मालयोंके प्रयोग करने, संघके उद्देश्यको आगे बढ़ानेके लिए अन्य प्रयोग करने, अपनी संख्या बढ़ाने, किसी सदस्यके त्यागपत्र देने अथवा मर जानेपर या किसी दूसरे कारणसे स्थान खाली होनेपर उसकी पूर्ति करने, किसी सदस्यको पर्याप्त और उचित कारणोंसे बहुमत द्वारा पृथक करने और संघकी व्यवस्थाके लिए विधान तथा नियमावली बनाने और समयानुसार उसमें परिवर्तन करनेका पूर्ण अधिकार होगा।

संघके सदस्य ही स्थायी समितिके सदस्य नियुक्त किये और रखे जा सकेंगे।

समितिकी बैठकमें कार्यवाह संख्या ५ रहेगी।

असाधारण अवसरोंपर संघकी बैठक बुलाये बिना, अथवा बुलाई गई बैठकमें कार्यवाह संख्या पूरी न होनेपर भी, आवश्यक कार्रवाई करनेका अधिकार अध्यक्षको रहेगा। लेकिन अध्यक्ष अपने ऐसे कार्यकी सूचना सदस्योंको तुरन्त ही दे देगा।

जब समितिकी बैठक बुलाना कठिन हो, अथवा आवश्यक न दीख पड़े, तो मन्त्री किसी भी प्रस्तावको परिपत्र द्वारा सब सदस्योंके पास भेजकर उनका लिखित मत प्राप्त कर सकेंगे; और अगर किसी भी सदस्यने विरोध न किया हो तो प्रस्ताव नियमानुसार स्वीकृत समझा जायेगा। अगर किसी सदस्यका जवाब १५ दिनमें न आये तो यह समझा जायेगा कि वे आपत्ति करनेके अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहते।

संघकी बहियाँ सभी देख सकेंगे। हर साल योग्य लेखा-परीक्षक द्वारा उसकी जाँच कराई जायेगी और हर छः महीनेपर लेखा-विवरण प्रकाशित किया जायेगा।

कोपाध्यक्षपर सारे आमद-खर्चका लेखा रखनेकी जिम्मेदारी होगी और एक हजार रुपएसे अधिककी सभी रकमें उनकी मंजूरीसे किसी बैंकमें ही रखी जायेंगी।

संघ-विषयक पत्र-व्यवहार नीचे दिये पतेपर करना चाहिए।

वालजी गोविन्दजी देसाई
मन्त्री, गोसेवा संघ

उद्योगमन्दिर
साबरमती

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ६-६-१९२९

परिशिष्ट २

सतीशचन्द्र दासगुप्तका पत्र

[२४ अगस्त, १९२९के पूर्व]

बापू,

निरंजन बाबूके मामलेके सम्बन्धमें आपका पत्र मिला। उनसे सम्बन्धित आपके निर्णयका मैं स्वागत करता हूँ। मैं भी अपने ढंगसे उनकी सहायता करनेकी कोशिश करता रहा हूँ। मैंने उन्हें सलाह दी थी कि यदि वे चाहते हों कि खादीके काममें लगे रहें; और ऐसा दुःख उन्हें भविष्यमें न झेलना पड़े तो उन्हें अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियोंको एक नये ढंगसे व्यवस्थित करना चाहिए।

कृष्टोदासजी कल मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने आपके नाम हेमप्रभाके पत्रका उल्लेख किया था। आपने उसे कामकाजी पत्र समझा, क्योंकि उसमें आपको प्रतिष्ठान के स्वामित्वका दायित्व अपने ऊपर लेनेके लिए आमन्त्रित किया गया था। मैं इसपर दिल खोलकर खूब जोरोंसे हँसा। वह तो विशुद्ध प्रेम-पत्र ही था। क्या प्रेम इतना फीका हो सकता है कि उसे पहचाना न जा सके? और इसका मूल कारण क्या था? हेमप्रभाके मनमें आपके सान्निध्यकी उत्कट इच्छा थी। स्वयं यात्रा करनेमें असमर्थ होनेके कारण सोदपुरके सभी लोगोंको आपकी उपस्थितिसे लाभान्वित करानेकी इच्छुक होनेके

कारण ही, उसने चाहा था कि आप सोदपुरको अपना स्थान बना लें और यहाँके सभी आश्रमवासियोंके आध्यात्मिक उत्थानको आपकी उपस्थितिसे प्रेरणा मिले।

लेकिन बात केवल पत्रके विषयतक नहीं है। कृष्टोदासने और भी जो कहा, उसे मैं हँसीमें नहीं टाल सका। उन्होंने अलमोड़ामें आपके साथ हुई उस बातचीतका विवरण दिया जिसमें मेरा और प्रतिष्ठानका जिक्र हुआ था।

निरंजन बाबू साबरमतीसे लौटते हुए मुझसे मिले थे। मेरी उत्कलकी रिपोर्टपर आपकी फबतीके बारेमें उन्होंने भी मुझसे कहा था, जिसे मैं तब बिलकुल नहीं समझ सका था, यद्यपि जो-कुछ उन्होंने कहा उससे मुझे कष्ट हुआ था। अब कृष्टोदासजीसे मिलनेके बाद निरंजन बाबूके कथनका अर्थ खुल गया। इन सभी बातोंमें आपने अपने साथ भारी अन्याय किया है। देखिए, कुछ समय बीतने दीजिए।

आज सुबह जागने पर मैं जब प्रार्थना-स्थलकी ओर जा रहा था, मनमें मार्कस-ऑरेलियस का एक विचार बरबस कौंध गया और भीतर अन्तःकरणसे एक स्वर उठने लगा: "आज मुझे प्रहारोंका सामना करना पड़ेगा . . . पर मुझे कोई भी आहत नहीं कर सकेगा।" दोपहरको दो बजे कृष्टोदासजी आये और निस्सन्देह प्रहार ही मिले।

प्रणाम सहित,

सतीश

अंग्रेजी (एस० एन० १५११८)की माइक्रोफिल्मसे।

परिशिष्ट ३

मु० रा० जयकरका पत्र

३९१, ठाकुरद्वार
निजी बम्बई
२३ अगस्त, १९२९

प्रिय महात्माजी,

मैं आपको यह लिख रहा हूँ; मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इसका कोई गलत अर्थ नहीं लगायेंगे। बम्बईमें आजकल ऐसा कुछ फैशन चल पड़ा है कि अपने समाजके पक्षमें बोलनेवाले किसी भी हिन्दूको साम्प्रदायिक कहकर उसकी निन्दा की जाती है; और मुसलमान नेताओंपर ऐसे आरोप नहीं लगाये जाते। मुझे विश्वास है कि आप ऐसी किसी एकांगी कसौटीपर मेरे विचारोंको कसकर उनके बारेमें अपनी राय नहीं बनायेंगे।

आपको यह पत्र लिखनेका मेरा प्रयोजन यही है कि मैं (हिन्दू महासभासे बाहर के) हिन्दुओंके विशाल समुदायकी इस आशंकासे आपको अवगत करा दूँ कि हिन्दू-मुस्लिम समस्याके बारेमें नेहरू-समितिके प्रतिवेदनमें सुझाये गये हलमें इस वक्त कोई थोड़ा-बहुत बदलाव करनेकी कोशिशके परिणाम काफी दूरतक जा सकते हैं। मेरा

ख्याल है कि आप यह बात जानते हैं कि प्रतिनिधित्वको साम्प्रदायिक आधारपर बरकरार रखनेके विरुद्ध होते हुए भी, अनेक हिन्दुओंने नेहरू समिति द्वारा सुझाये गये हलको एक प्रकारके समझौतेके रूपमें केवल इसलिए स्वीकार कर लिया था कि शान्ति और पारस्परिक मेलजोल बना रहे। मैंने कलकत्तामें पिछले दिसम्बरमें हुए सर्वदलीय सम्मेलनकी बैठकके दौरान अपने भाषणमें मुसलमानोंकी माँगोंके बारेमें कहा ही था कि समझौता चार सर्वमान्य सिद्धान्तोंपर ही आधारित है और कलकत्ता सम्मेलनमें मुसलमानों द्वारा पेश की गई माँगें उन सिद्धान्तोंका घोर उल्लंघन करती हैं। उस समय ये माँगें केवल पाँच या छ: थीं। लेकिन अब उनकी संख्या बढ़कर १४ हो गई हैं। इन पाँच या छ: माँगोंको भी उस समय कलकत्तामें अखिल भारतीय प्रतिनिधियोंने, जिनमें सिख और ईसाई प्रतिनिधि भी थे, एक भारी बहुमतसे अस्वीकार कर दिया था।

उनके उस निर्णयका एक आधार यह था कि उस समय उन माँगोंको लेकर मुसलमान चार सर्वविदित दलोंमें बँट गये थे। उन चारमें से तीन दल तो किसी भी कीमतपर संयुक्त निर्वाचक मण्डलको स्वीकार करनेके विरुद्ध थे; इसलिए यह स्पष्ट नहीं दिख रहा था कि श्री जिन्ना किन मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, और यदि उनकी माँगोंको स्वीकार कर लिया जाता है तो समूचे मुसलमान समाजका कितना बड़ा भाग उसपर राजी हो जायेगा।

इस मामलेमें मेरी अपनी यह राय है कि यदि हम सब लोग नेहरू समितिके प्रतिवेदनपर ही अपना ध्यान केन्द्रित करें और सभी सारभूत प्रश्नोंके बारेमें उसके सुझावोंको स्वीकार कर लें, तो ज्यादा अच्छा हो। फिर यदि हिन्दू-मुस्लिम समस्याके बारेमें प्रतिवेदनके सुझावोंमें मामूली-सी कुछ घटा-बढ़ी करनेकी आवश्यकता महसूस हो और यदि ऐसी संभावना हो कि उसे करनेके बाद अधिकांश मुसलमान जनता उन सुझावोंको माननेके लिए तैयार हो जायेगी तो अन्तिम रूप देते समय उनपर विचार किया जा सकता है। अन्तिम रूप देनेकी अवस्था मैं उसको मानता हूँ जब हिन्दुओं, मुसलमानों और सरकारके प्रतिनिधि आदान-प्रदानकी भावनासे एक स्थानपर बैठें और एक ऐसे समझौतेको अन्तिम रूप दें जो हमारे भावी संविधानकी शर्तें निश्चित कर दे। अन्तिम रूप देनेकी इस अवस्थाका उल्लेख मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे लगता है कि अभी मुसलमानोंको कोई ज्यादा रियायतें देनेमें बहुत ही बड़े-बड़े खतरे हैं। तब सरकार उन सभी रियायतोंको चुन-चुनकर किसी ऐसे संविधानमें शामिल कर देगी जो हमारे उद्दिष्ट उस संविधानसे जिसमें हम इन रियायतोंको शामिल करना चाहेंगे, सर्वथा भिन्न होगा और तब माना यह जायेगा कि हिन्दुओंको कोई भी आपत्ति करनेका अधिकार नहीं रह गया है क्योंकि आपत्ति जिन विषयोंको लेकर की जा रही है उनके बारेमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच समझौता हो ही चुका है।

हमारा पिछला अनुभव बताता है कि यह आशंका निर्मूल नहीं है। १९१६ के लखनऊ समझौतेके समय और उसके बाद जो भी हुआ उसे छोड़िए; मैं आपको बहुत

ही हालका एक उदाहरण बतलाता हूँ। आपको याद होगा कि कलकत्तामें मुस्लिम लीगके प्रवक्ता श्री जिन्नाने खुले आम दावा किया था कि नेहरू समितिके प्रतिवेदनमें सिन्धके विभाजनको हालाँकि इसी शर्तपर स्वीकार करनेकी बात कही गई थी कि भारतको समिति द्वारा सुझाई गई रूपरेखाके अनुरूप संविधान मिल जाये, लेकिन मुसलमानोंको यह स्वतन्त्रता भी रहनी चाहिए कि सरकार द्वारा उससे बिलकुल ही अलग किस्मका कोई संविधान लागू करनेपर मुसलमानोंमें उसके अन्तर्गत भी, सिन्धके विभाजनको स्वीकार करनेकी छूट रहे। मैं जिस खतरेका उल्लेख कर रहा हूँ, वह इस बातसे बहुत ही स्पष्ट रूपमें सामने आ जाता है।

मेरे पास यह विश्वास करनेके समुचित कारण मौजूद हैं कि इस बार सरकार मुसलमानोंको अनुचित किस्मके कोई विशेषाधिकार नहीं देगी। इसीलिए मुसलमानोंका एक तबका इस सिर-तोड़ कोशिशमें लगा है कि ऊपरसे यह दिखे कि वे जो रियायतें चाहते हैं, उनको देनेपर कांग्रेस सहमत हो चुकी है। इसीलिए सावधानी बरतनेकी जरूरत है।

ये कुछ विचार हैं जिनकी ओर ठीक ढंगसे आपका ध्यान आकर्षित करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। यों यह सम्भव है कि आप स्वयं इनके बारेमें भली-भाँति सभी कुछ जानते हों।

आपके स्वास्थ्यकी इस नाजुक हालतमें भी इस मामलेमें आपको परेशान करनेके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

हृदयसे आपका,
एम० आर० जे०

महात्मा गांधी
साबरमती

जयकरके व्यक्तिगत कागजात: पत्र-व्यवहार फाइल सं० ४०७, ६, पृष्ठ १४९-५१।
सौजन्य: नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, द्वितीय संकरण पृष्ठ ३५९।

नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली।

साबरमती संग्रहालय : पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल और १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं, देखिए खण्ड १, द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३५५।

'आज': बनारससे प्रकाशित हिन्दी दैनिक।

'कलकत्ता म्युनिसिपल गजट': पाँचवाँ वार्षिक अंक, शनिवार, २३ नवम्बर १९२९।

'ज्योत्स्ना' मुंशी अजमेरी अंक १९६९, सरदार पटेल कालेज, चिरगाँव, (झांसी)

'नवजीवन' (१९१९-१९३२) : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'प्रजाबन्धु': अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया' (१९१९–१९३२) : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'शिक्षण अने साहित्य' (गुजराती) : 'नवजीवन'का साप्ताहिक-परिशिष्ट, २१ जुलाई, १९२९से प्रकाशित।

'हिन्दी नवजीवन': (१९२१–१९३२) : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' (अंग्रेजी) : जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९५८।

'बापुना पत्रो–६–गंगाबहेनने' (गुजराती) : गं० स्व० सम्पादक, काकासाहब कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापुना पत्रो–७–श्री छगनलाल जोशीने' (गुजराती) : सम्पादक, छगनलाल जोशी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६२।

'बापुना पत्रो–५–कु० प्रेमाबहेन कंटकने' (गुजराती) : सम्पादक, काकासाहब कालेलकर; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापुना पत्रो–९–श्री० नारणदास गांधीने' (गुजराती) : सम्पादक, नारणदास गांधी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६४।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : संग्रहकर्त्ता, मथुरादास त्रिकमजी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ जूनसे १५ अक्टूबर, १९२९)

१ जून: गांधीजी साबरमती आश्रम, अहमदाबादमें थे।

१२ जून: भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्तको ८ अप्रैलको असेम्बलीमें दो बम फेंकनेके अपराधमें आजीवन कारावासकी सजा सुनाई गई।

१३ जून: बरेलीमें कार्यकर्त्ताओंकी बैठकमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावके अनुसार कांग्रेसके पुनर्गठनके प्रश्नपर चर्चा की।

१४ जून: नैनीतालमें खद्दर, साम्प्रदायिक एकता, मद्य-निषेध और अस्पृश्यता निवारणके सम्बन्धमें भाषण किया।

१५ जून: भुवाली गये।

१६ जून: ताड़ीखेतमें प्रेम विद्यालयके वार्षिक समारोहमें भाषण किया।

१८ जून: अलमोड़ामें ईसाई सम्प्रदायके समक्ष भाषण किया।

२० जून: अलमोड़ामें अपने भाषणके दौरान पद्मसिंहकी मृत्युका उल्लेख बड़े मार्मिक शब्दोंमें किया।

२१ जून: अलमोड़ासे कौसानीके लिए प्रस्थान।

२७ जून: कौसानीमें 'भगवद्गीता' का अनुवाद पूरा किया।

२ जुलाई: कौसानीसे प्रस्थान।

४ जुलाई: सुबह काशीपुर पहुँचे और शामको दिल्लीके लिए प्रस्थान।

५ जुलाई: दिल्लीमें।

६ जुलाई: साबरमती आश्रम पहुँचे।

२३ जुलाई: कादीकी एक सार्वजनिक सभामें भाषण किया।

२६ जुलाई: इलाहाबाद पहुँचे। 'मेयो हाल' में कार्य समितिकी बैठकमें भाग लिया।

२७ जुलाई: इलाहाबादमें अहिंसापूर्ण असहयोग आन्दोलनसे सम्बन्धित प्रस्ताव पेश किया जिसे कार्य समितिने अन्तमें भारी बहुमतसे स्वीकृत किया।

२८ जुलाई: बम्बई कांग्रेस मुस्लिम पार्टीको सन्देश।

२ अगस्त: तिलककी बरसीपर साबरमती आश्रममें भाषण।

११ अगस्त: बम्बई पहुँचे; मु० अ० जिन्नाके निवासपर एक 'गुप्त' सम्मेलनमें भाग लिया; "सामान्य हितोंके मामलों" पर चर्चा की; रातमें अहमदाबादके लिए प्रस्थान।

१२ अगस्त: अहमदाबाद लौटे।
पेचिशकी शिकायत।

१५ अगस्त: बिना राँधे आहारका प्रयोग त्याग दिया और डाक्टरी चिकित्सा कराई।

१८ अगस्त : कांग्रेसके ४४वें लाहौर अधिवेशनकी स्वागत समितिकी एक बैठकमें अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

२० अगस्त : कांग्रेसकी अध्यक्षता स्वीकार नहीं की और उस पदके लिए पण्डित जवाहरलाल नेहरूके नामकी सिफारिश की।

६ सितम्बर : अहमदाबादसे बम्बईके लिए प्रस्थान।

७ सितम्बर : बम्बईमें चार समारोहोंमें भाग लिया : विले पार्लेकी राष्ट्रीय पाठशालाके शिल्प खण्डका उद्घाटन किया; महिला हितकारी आश्रमकी आधारशिला रखी; नेत्रहीनोंके वनिता आश्रममें एक सभाकी अध्यक्षता की; कालबादेवीमें अ० भा० च० सं० के खादी भवनकी नई इमारत देखने गये।

९ सितम्बर : 'एसोसिएटेड प्रेस' ने पंच-फैसलेकी घोषणाको स्थगित रखनेके लिए मिल-मजदूरोंसे की गई गांधीजीकी अपील प्रकाशित की।

१० सितम्बर : भोपालमें, सार्वजनिक सभामें भाषण; साँची गये और आगराके लिए भोपालसे प्रस्थान।

११ सितम्बर : आगरा पहुँचे, संयुक्त प्रान्तका दौरा विधिवत आरम्भ किया; सार्वजनिक सभामें भाषण; महिलाओंकी सभामें भाषण।

१२ सितम्बर : 'यंग इंडिया' में कांग्रेसकी अध्यक्षतासे इनकार करनेका स्पष्टीकरण किया।

१३ सितम्बर : आगरा कालेजमें विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण।

१८ सितम्बर : आगरासे दयाल बाग गये।

२० सितम्बर : मैनपुरीमें।

२१ सितम्बर : फरूखाबादमें।

२२ सितम्बर : कानपुरमें, जिला मण्डल और नगरपालिका द्वारा भेंट किये गए मानपत्रोंके उत्तरमें भाषण।
खुर्दरा मालके व्यापारियों और कपड़ा बाजार कर्मचारी संघ द्वारा भेंट किये गये मानपत्रोंके उत्तरमें भाषण।

२४ सितम्बर : कानपुरम, विद्यार्थियोंकी सभामें भाषण।

२५ सितम्बर : काशीमें, अछूतोंकी सभामें भाषण।
हिन्दू विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण।

२६ सितम्बर : महिलाओंकी दो सभाओंमें भाषण।
काशी विद्यापीठ, काशीमें भाषण।
राष्ट्रीय विद्यापीठ, काशीके दीक्षान्त समारोहमें भाषण।
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें भाग लेने लखनऊके लिए बनारससे प्रस्थान।

२७ सितम्बर : लखनऊमें, सार्वजनिक सभामें भाषण।

२८ सितम्बर : लखनऊ, विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण।
अ० भा० कां० क०की बैठकमें भाषण।

२९ सितम्बर: 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे भेंट।

जवाहरलाल नेहरू लाहौर अधिवेशनके अध्यक्ष पदके लिए निर्वाचित हुए।

१ अक्टूबर: फैजाबादमें।

२ अक्टूबर: जौनपुरमें।

३ अक्टूबर: आजमगढ़ व गाजीपुरमें।

४ अक्टूबर: गोरखपुरमें।

८ अक्टूबर: गोरखपुरसे बस्ती पहुँचे।

९ अक्टूबर: १० बजे दोपहर मनकपुर पहुँचे, राजासाहबके महलमें भाषण।

३ बजे शाम कार द्वारा गोंडाके लिए प्रस्थान।

१० अक्टूबर: गोंडामें।

११ अक्टूबर: बाराबंकी पहुँचे।

हरदोई पहुँचे; राजनीतिक सम्मेलनमें भाषण।

१३ अक्टूबर: मुरादाबादमें, ब्रजरत्न हिन्दू सार्वजनिक पुस्तकालयका उद्‌घाटन किया।

सार्वजनिक सभामें भाषण किया।

१४ अक्टूबर: हरद्वार पहुँचे।

१५ अक्टूबर: हरद्वारमें।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

ध

न

फ

ब

म

ल

ह